SACHITRA AYURVED

1959 G.K.U.

113006

# आयुर्वेद

वर्ष ११]   कलकत्ता, जनवरी, १९५९   [अंक ७

## आयुर्वेद से राष्ट्र को बड़ी आशाएं

राष्ट्र की स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को हल करने में आयुर्वेद का अधिकाधिक उपयोग करने के लिए सरकार उत्सुक है, लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि वैद्यगण संगठित होकर अपने अनुभवों और ज्ञान-ज्योति को प्रज्वलित करें। आयुर्वेद को निरन्तर बढ़ाते रहने और नयी-नयी औषधियों को प्रयोग-परीक्षण के बाद आयुर्वेद में मिलाते रहने का उपदेश हमारे प्राचीन आचार्यों ने भी किया है। अतएव, यह आवश्यक है कि वैज्ञानिक अनुसन्धान की सहायता से आयुर्वेद-शास्त्र को विकसित किया जाय। राष्ट्र को आयुर्वेद से बड़ी आशाएँ हैं और वैद्यगण अपने विज्ञान को विकसित कर राष्ट्र की आशाओं की पूर्ति कर सकते हैं।

– रानी पद्मावती

स्वास्थ्य-मंत्रिणी, मध्यप्रदेश

प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि

१, गुप्ता लेन, कलकत्ता-६

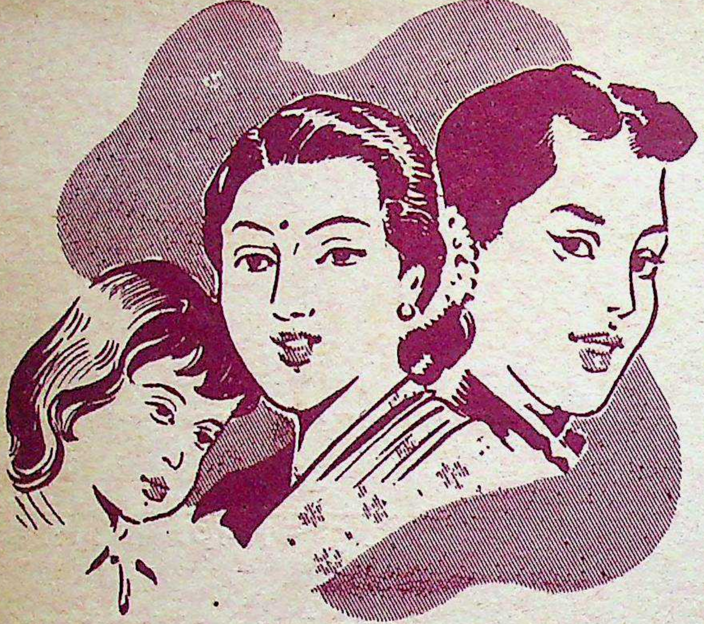

बैद्यनाथ च्यवनप्राश कफ-खाँसी-नाशक एक औषधि-मात्र नहीं है। यह परम पुष्टिकारक रसायन भी है। इसका सेवन बालक, वृद्ध और युवा–सभी उम्र के लोग–सब समय कर अपने शरीर को स्वस्थ बनाये रखने में सक्षम होते हैं। आप भी इसका सेवन करें और जीवन के आनन्द से सदैव भरे-पूरे रहें।

सब समय, सबके लिये सेवनीय

बैद्यनाथ
च्यवनप्राश
अष्टवर्गयुक्त

श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि॰

देशी दवाओं का सब से बड़ा और विश्वासी कारखाना

कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

851

113006

113006

## समन्वय का आदर्श !!!

आयुर्वेद, एलोपैथी, यूनानी, होमियोपेथी आदि चिकित्सा-पद्धतियों के समन्वय का आज बोलबाला है। परन्तु इस दिशा में जितना प्रयत्न चाहिए उतना हुआ नहीं है। वस्तुतः,

## भावी पीढ़ी के मार्गदर्शनार्थ

**समन्वयात्मक पद्धति से ग्रन्थों का लेखन तथा प्रकाशन सर्वोपरि आवश्यक है।**

**बैद्यनाथ-प्रकाशन**

# आयुर्वेदीय क्रियाशारीर

**समन्वयप्रधान दृष्टि से लिखे गए ग्रन्थों में मूर्धन्य** कहा जा सकता है।

**ग्रन्थ के लेखक** हैं : सचित्र-आयुर्वेद परिवार के सुविदित सदस्य, सूरत के आयुर्वेद महाविद्यालय के उपाचार्य तथा मुंबई राज्य सरकार के आयुर्वेदिक रिसर्च बोर्ड के सभ्य
**वैद्य रणजितराय देसाई** आयुर्वेदालंकार, आयुर्वेदाचार्य

**संपूर्ण प्राचीन वाङमय से** दोषों, धातुओं, उपधातुओं तथा मलों की क्रिया के रूप में **शरीर-क्रिया-विज्ञान के सिद्धान्तों का दोहन और संदोहन कर** व्याख्या के व्याज से **नव्य मत भी प्रायः संपूर्ण** इस ग्रन्थ में संकलित किया गया है। विषय का निरूपण इस दृष्टि से किया गया है कि विद्यार्थी **रोगों के निदान और चिकित्सा में क्रियाशारीर की उपयोगिता तथा उपादेयता** को भी समझते जाएँ !

रायल अठपेजी साइज के ११०० पृष्ठों के अनेक चित्रों से युक्त ग्रन्थ का मूल्य केवल ११) रखा गया है। **आज ही** अपनी प्रति मँगाइए। **अन्यथा चतुर्थ संस्करण की प्रतीक्षा** करनी होगी।

प्रकाशक
श्री **बैद्यनाथ** आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
१, गुप्ता लेन, कलकत्ता -६

सम्पादक—कामेश्वर शर्मा 'कमल'

# विषय-सूची

| विषय | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|
| आयुर्वेद पद्धति का विकास वाञ्छनीय | श्री डी० पी० करमरकर | ५१९ |
| सम्पादकीय | | ५२० |
| अ० भा० आ० शास्त्रचर्चा-परिषद् | क० विजयकाली भट्टाचार्य | ५३३ |
| वैद्य सम्मेलन के समक्ष समस्याएँ | श्री मदनगोपाल वैद्य, एम. एल. ए. | ५२५ |
| अतिसार में दोषभेद से द्रवत्वभेद | वैद्य रणजितराय | ५२८ |
| रक्तपित्त-विमर्शः | वैद्य ज्योतिर्मित्र आचार्य, ए. एम. वी. एस. | ५३३ |
| आयुर्वेद-पाठचक्रम सम्बन्धी रूपरेखा | वैद्य भा० वि० गोखले, आयुर्विद्यापारंगत | ५४० |
| तिब्बत का चिकित्सा-शास्त्र | वैद्य प्रतापकुमार पोपटभाई | ५४४ |
| क्या द्विविध ओज-कल्पना श्री चक्रपाणिकृत है ? | वैद्य शंकरलाल शर्मा, भिषगाचार्य | ५४९ |
| ओज-परिचय | वैद्य भगवती प्रसादजी | ५५४ |
| धन्वन्तरि-जयन्तीसमारोह | | ५५७ |
| आयुर्वेद-जगत् | | ५८८ |

## ग्राहकों को नया कलेण्डर मुफ्त

सचित्र आयुर्वेद के सभी नये-पुराने ग्राहकों को नयेवर्ष १९५९ का सुन्दर बहुरंगा वैद्यनाथ कलेण्डर मुफ्त दिया जायगा। हमें आशा है कि जनवरी ५९ के अन्तिम सप्ताह तक ग्राहकों के पास कलेण्डर अवश्य भेज दिया जायगा।

—सम्पादक

वार्षिक मूल्य ५) आयुर्वेद-यूनानी समन्वयांक २) रुपये एक प्रति ५० नये पैसे

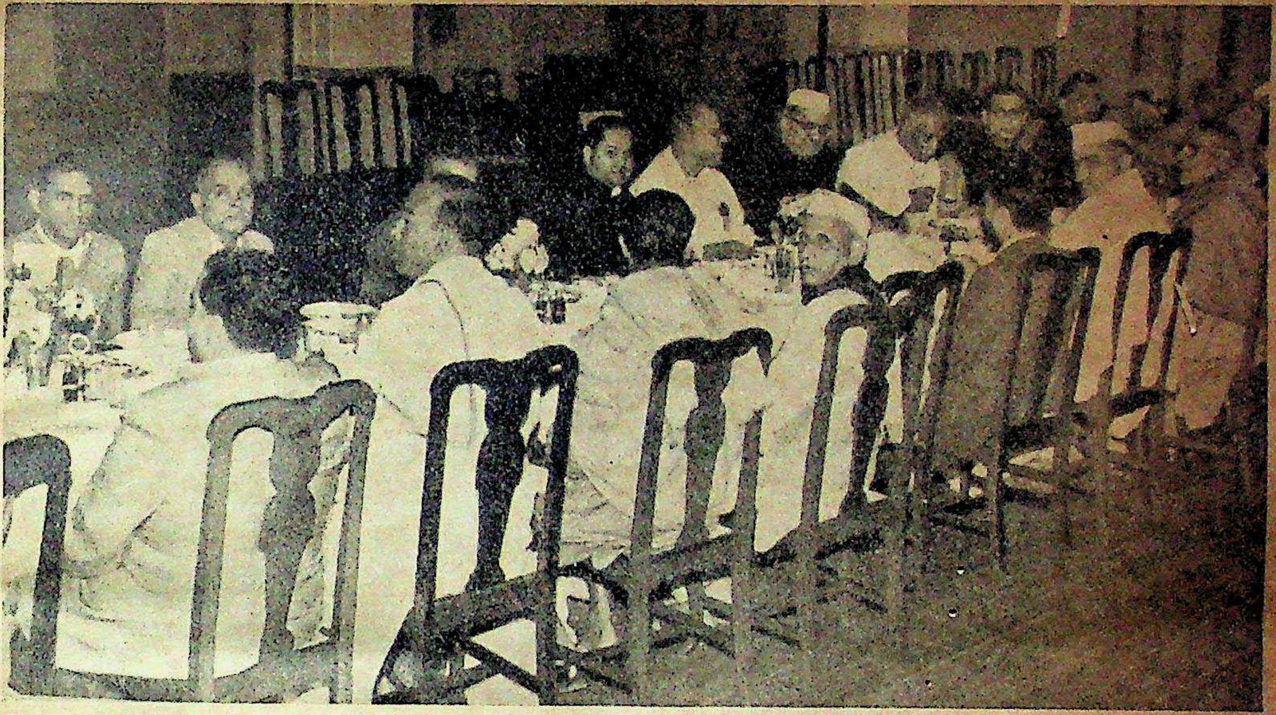

अखिल भारतीय राज्य चिकित्सा-परिषद् सम्मेलन के प्रतिनिधियों को श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० की ओर से कलकत्ता के ग्रेट इस्टर्न होटल में नैश-भोज दिया गया था। चित्र में केन्द्रीय स्वास्थ्य-मन्त्री श्री डी० पी० करमरकर, पश्चिम बंगाल के स्वास्थ्य-मन्त्री श्री अनाथबन्धु राय तथा 'भवन' के डायरेक्टर श्री बनवारीलाल शर्मा के साथ सम्मेलन में भाग लेने के लिए एकत्र अन्यान्य वैद्य-कविराज दिख रहे हैं।

री दवाओं का सबसे बड़ा
र विश्वासी कारखाना
श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
विशिष्ट एजेन्ट- अरविन्द औषधालय, बाढ़

बिहार के स्वास्थ्य-मन्त्री श्री बीरचन्द पटेल श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के बाढ़ (पटना) स्थित बिक्रय-केन्द्र का उद्घाटन करते दिखाई दे रहे हैं।

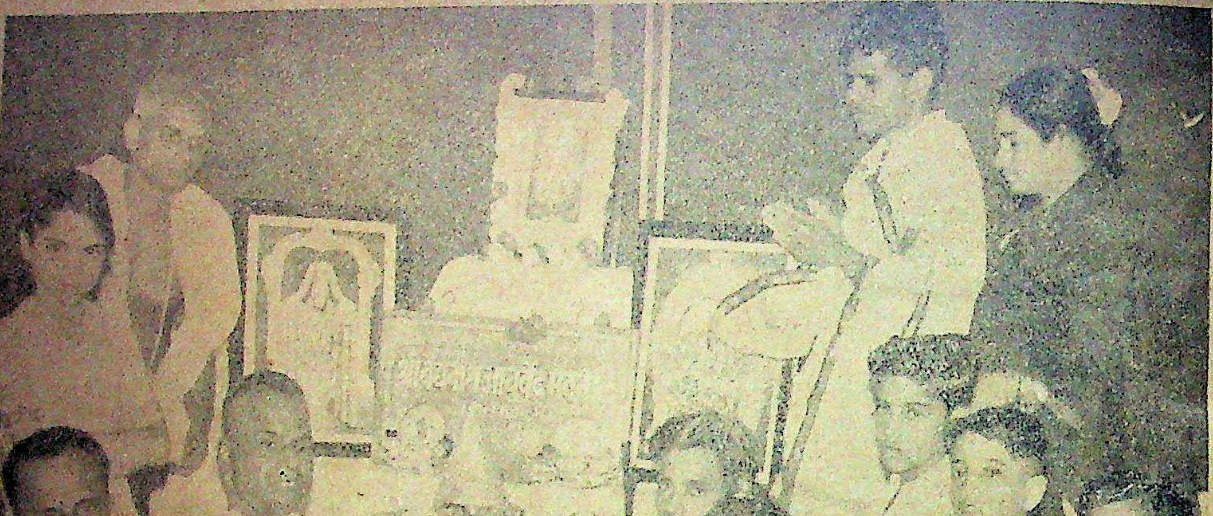

काकीनद में धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर आयोजित वैद्य-सभा का भव्य दृश्य।

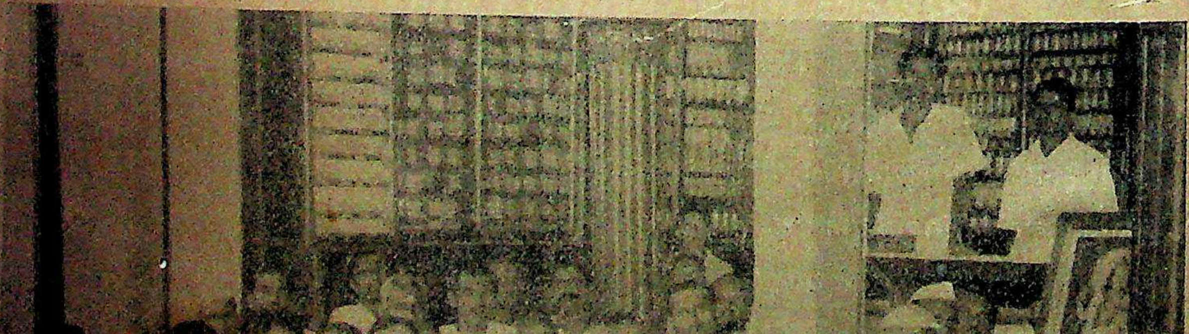

समस्तीपुर में धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर आयोजित वैद्य सभा का भव्य दृश्य

आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन-समादृत और सर्वाधिक बिक्री होनेवाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख-मासिक पत्र

श्री धन्वन्तरये नमः

# सचित्र आयुर्वेद

आयुःकामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष ११ | कलकत्ता, जनवरी १९५९ | अंक ७

## आयुर्वेद-पद्धति का विकास वांछनीय

चाहे आधुनिक चिकित्सा पद्धति हो या प्राचीन चिकित्सा-पद्धति, हमें अनिवार्यतः उन तरीकों को प्रोत्साहित करना होगा, जिनसे अधिकाधिक लोग व्याधिमुक्त हो सकें। भारतीय चिकित्सा-पद्धति की महानता को प्रतिष्ठित करने के लिए वैज्ञानिक अनुसन्धान और सामूहिक प्रयास आवश्यक है। शरीर में कोई असंतुलन पैदा होना ही रोग है और उस असंतुलन को ठीक करने से ही रोगमुक्ति सम्भव है। आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति का आधार ही आरोग्य और स्वास्थ्य है। सरकार भी रोगों की रोकथाम की अपेक्षा स्वास्थ्य और आरोग्य पर विशेष जोर दे रही है। अतएव, आयुर्वेद-पद्धति का अधिकाधिक विकास वांछनीय है। जनता का भी यह कर्त्तव्य है कि औषधियों पर निर्भर रहने के बदले स्वस्थ जीवन-यापन के आयुर्वेदीय तरीके को अपनायें।

**श्री डी० पी० करमरकर**

केन्द्रीय स्वास्थ्य-मंत्री

## राज्य चिकित्सा-परिषद् के निर्णय

अखिल भारतीय राज्य चिकित्सा-परिषद का चतुर्थ अधिवेशन, जो गत २५, २६, २७ दिसम्बर को कलकत्ते के आशुतोष मेमोरियल हाल में आन्ध्र आयुर्वेदिक बोर्ड के अध्यक्ष डा० ए. लक्ष्मीपति की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ है, कई दृष्टियों से ऐतिहासिक महत्व रखता है। पहली बात जो पर्याप्त महत्वपूर्ण प्रतीत होती है वह यह है कि भारत के प्रायः सभी राज्यों के प्रतिनिधि इस सम्मेलन में सम्मिलित हुए थे और केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री श्री डी० पी० करमरकर के द्वारा सम्मेलन उद्घाटित हुआ था। अखिल भारतवर्षीय स्तर पर प्रतिनिधित्व प्राप्त सम्मेलन अपने स्वरूप की विराटता के साथ-साथ इस अर्थ में भी अधिक महिमान्वित होता है कि उसके द्वारा किए गए निर्णयों पर राष्ट्रव्यापी स्वीकृति की मुहर लगी होती है। जहाँ तक कलकत्ता अधिवेशन का प्रश्न है, यह मानना होगा कि सम्मेलन में समवेत प्रतिनिधियों ने व्यापक दृष्टिकोण लेकर आयुर्वेद-यूनानी समन्वय, पाठ्य-क्रम-निर्धारण, भेषज-संहिता का निर्माण, तथा पूर्व स्नातक और स्नातकोत्तर शिक्षण सम्बन्धी समस्याओं पर विचार-विमर्श किया। सम्मेलन में भाग लेनेवाले प्रतिनिधि, जिनमें आयुर्वेद विभाग के डायरेक्टर तथा आयुर्वेद-यूनानी कालेजों के प्राध्यापक और आचार्य थे, इस बात पर एकमत थे कि नवीन विज्ञान की छाया से आयुर्वेद-चिकित्सा-शास्त्र को सर्वथा पृथक् रखकर उसका सर्वाङ्गीण विकास कदापि नहीं किया जा सकता। आयुर्वेद यदि अपनी प्राचीन थाती को ही संजोए रखकर आधुनिक प्रगतियों से अपने को सर्वथा पृथक् रखने की भूल करेगा तो निश्चय ही उसकी वही स्थिति होगी जो स्थिति चीन-जापान में वहाँ की देशी चिकित्सा-पद्धतियों की हुई। यहाँ स्मरणीय है कि जापान-चीन आदि देशों में आधुनिक वैज्ञानिक प्रगतियों के प्रति उपेक्षा-भाव अपनाए जाने के फलस्वरूप उन देशों की देशी चिकित्सा पद्धतियाँ अपना ही अस्तित्व खो बैठीं और उनके स्थान पर एलोपैथी प्रतिष्ठित हो गयी। आज उन देशों में वहाँ की देशी चिकित्सा-पद्धतियों का नाम शेष भी नहीं रह गया—यह स्थिति मिथ्या राष्ट्रप्रेम तथा कट्टर रूढ़िवादिता के परिणामस्वरूप ही उत्पन्न हुई। निश्चय ही इस संभाव्य खतरे की ओर से हमें सतर्क रहना है। विज्ञान के क्षेत्र में यह संकीर्णता एवं छुआछूत क्यों? विज्ञान विज्ञान है और वह नित नवीन प्रयोगों के बल पर नए-नए सत्यों को उद्घाटित करता रहता है——बुद्धिमानी इस बात में है कि विज्ञान द्वारा अर्जित उपलब्धियों से हम अपने ज्ञान-विज्ञान को समृद्ध करते रहें और अपने ज्ञान तथा शास्त्र का आधुनिकीकरण करते जावें। प्रत्येक समझदार व्यक्ति इस बात से सहमत होगा कि अन्य विज्ञानों का समावेश आज हमें खुले मस्तिष्क से उठाना चाहिए। इससे आयुर्वेद समृद्ध होगा और आगे बढ़ेगा।

आयुर्वेद-जगत में मिश्र-अमिश्र के प्रश्न पर पिछले कई वर्षों से जो विवाद चल रहे हैं, उनका एक प्रकार से सम्मेलन में अन्त-सा कर दिया गया। क्योंकि सम्मेलन में भाग लेनेवाले प्रतिनिधियों की यह निश्चित मान्यता थी कि आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम में आयुर्वेद को प्रमुखता देते हुए अन्यान्य पद्धतियों के साररूप को उदारतापूर्वक सम्मिलित किया जाना चाहिए। एक ऐसे पाठ्यक्रम के निर्माण में किसी भी आयुर्वेदप्रेमी के लिए आपत्ति का कारण नहीं रह जाता, जिसमें आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों की रक्षा करते हुए अन्यान्य चिकित्सा-पद्धतियों का समन्वित रूप ग्रहण किया जाय। इस बात से सभी विवेकशील व्यक्ति सहमत होंगे कि आयुर्वेद-शास्त्र को पुनर्व्यवस्थित करने के लिए शारीर-शास्त्र——शरीर-रचना-शास्त्र (फीजियोलाजी-एनाटॉमी) तथा प्राणिशास्त्र (बायोलाजी) आदि विविध शास्त्रों के आधुनिक ढंग के ज्ञान की हमें आज अत्यन्त अपेक्षा है। इन शास्त्रों का पूर्णतया अध्ययन किए बगैर जो व्यक्ति चिकित्सा-क्षेत्र में कदम रखेगा वह निश्चय ही नीम-हकीम होगा——इसमें रत्ती भर भी संदेह के लिए स्थान नहीं है।

इसी प्रकार आधुनिक वैज्ञानिक साधनों एवं उपकरणों के उपयोग का जहाँ तक प्रश्न है, आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सा पद्धतियों के अन्तर्गत उन उपकरणों का उपयोग करना कथमपि अनुचित नहीं है। आधुनिक यंत्र यथा एक्स-रे,

थर्मामीटर, स्टेथिस्कोप प्रभृति यंत्रों का उपयोग एक आयुर्वेदज्ञ भी कर सकता है——ये उपकरण केवल एलोपैथी के लिए हैं, ऐसा मानना क़दापि ठीक नहीं। शारीर-शास्त्र को समझकर सर्जरी का काम वैद्य भी कर सकता है। सर्जरी चिकित्सा की एक विशेष विधि है और कोई कारण नहीं कि वैद्य इस विशेष विधि को न अपनावें। किन्तु, आधुनिक विज्ञान की सहायता लेने का अर्थ कदापि यह नहीं होना चाहिए कि आयुर्वेद के मूल सिद्धान्तों को ही हम भूल बैठें, प्रत्युत् वात-पित्त-कफ के सिद्धान्त को ही आधार मानकर हमें मिश्रण ((इनटेग्रेशन) की दिशा में प्रयत्नशील होना चाहिए। क्योंकि ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में किसी भी प्रकार का पूर्वग्रह अथवा संकीर्ण मनोवृत्ति वांछनीय नहीं हो सकती। विज्ञान के क्षेत्र में पारस्परिक आदान-प्रदान का नैरन्तर्य सदैव बना रहना चाहिए——नहीं तो नवीनतम अन्वेषणों से विलग होकर कोई भी शास्त्र, चाहे उसके पीछे कितनी भी गौरवपूर्ण प्राचीन परम्पराएँ क्यों न हों——आगे चल कर अपनी उपादेयता खो बैठेगा और जन-जीवन से पृथक हो जायगा।

आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति के विकास-क्रम में हमें स्पष्ट दिखाई देता है कि समय-समय पर आवश्यकतानुसार कितने ही संशोधन-परिवर्द्धन होते रहे। दृष्टान्त-स्वरूप नागार्जुन के काल में रस-चिकित्सा को ग्रहण करके आयुर्वेद के स्वरूप में विस्तार किया गया——उसी तरह यदि आज आयुर्वेदज्ञ अथवा यूनानी चिकित्सक शल्य-शालाक्य को ग्रहण कर अपनी-अपनी चिकित्सा-पद्धतियों की उपादेयता की वृद्धि करने का शुभ प्रयास करें तो उससे हमारी देशी चिकित्सा-पद्धति की उपादेयता जनता की दृष्टि में और भी बढ़ जायेगी। पाठचक्रम में आधुनिक विज्ञान को सम्मिलित करने के अतिरिक्त संस्कृत के अध्ययन पर भी जोर दिया गया है, जो हमारी दृष्टि में अत्यन्त आवश्यक है। आयुर्वेद का विशाल वाङ्मय संस्कृत में ही है, इस कारण संस्कृत में अच्छी योग्यता हुए वगैर किसी भी अध्येता के लिए यह संभव नहीं है कि वह आयुर्वेद-शास्त्र के मर्म को छू सके। हम तो यहाँ तक कहने को बाध्य हैं कि संस्कृत के बिना आयुर्वेद की कल्पना ही नहीं की जा सकती। इसलिए मात्र 'चंचुप्रवेश' से हमारा काम नहीं चलेगा। संस्कृत में अच्छी योग्यता हुए वगैर आयुर्वेद में कोई कैसे निष्णात हो सकता है। सम्मेलन के प्रतिनिधियों ने संस्कृत ज्ञान की अनिवार्यता विषयक प्रश्न पर गंभीर विवेचन करके ही संस्कृत को पाठ्यक्रम के अन्तर्गत अनिवार्य रूप से सम्मिलित किया है, और निस्सन्देह यह निर्णय सुन्दर हुआ है, क्योंकि आयुर्वेद संस्कृत के ज्ञान के अभाव में पूर्ण विकसित नहीं हो सकता। आयुर्वेद को प्रगति-पथारूढ़ करने के लिए यह परम जरूरी है कि संस्कृत भाषा के पठन-पाठन तथा आयुर्वेद के ज्ञान के प्रसार के लिए राज्य तथा जनता को विशेषरूप से ध्यान देना चाहिए।

ऋषियों द्वारा पोषित एवं संवर्द्धित प्राचीन चिकित्सा-पद्धति को पुनरुज्जीवित करने की दिशा में सब से बड़ा उपयोगी कदम शोध को अपनाकर ही उठाया जा सकता है। आयुर्वेद इस देश की मिट्टी से उत्पन्न चिकित्सा-शास्त्र है और इसके पीछे हजारों वर्षों का सांस्कृतिक बल है——किन्तु शोध के सहारे ही इसमें नवीन शक्तियों का संचार किया जा सकता है। इस विशाल देश में जो आयुर्वेद-वाङ्मय यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है, उसका संग्रह कर शोध के जरिए, यदि परिशोधित रूप में उसे उपलब्ध किया जाय तो बड़ा काम होगा। जैसा कि उत्तर प्रदेश के आयुर्वेद डायरेक्टर श्री कुलकर्णी ने कहा—यह काम समस्त भारत में स्थान-स्थान पर जामनगर की तरह ही स्नातकोत्तर प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना करके किया जाना चाहिए, क्योंकि आयुर्वेद ऐसे प्रयासों के बल पर ही दुनिया के समक्ष अपने वास्तविक रूप में आ सकेगा। इसलिए, सरकारी अथवा गैर सरकारी स्तर पर शोध-कार्य को अधिकाधिक आगे बढ़ाना अभीष्ट है। राज्याश्रय की अपेक्षा तो हर स्थिति में होगी ही——राज्याश्रय पाकर ही एलोपैथी इतनी महिमान्वित हो सकी। अतः कोई कारण नहीं कि राज्याश्रय पाकर आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति अपने खोए हुए गौरवपूर्ण स्थान पर पुनः प्रतिष्ठित क्यों नहीं हो सकता।

## टिप्पणियाँ

### आयुर्वेद के प्रति उपेक्षा क्यों ?

आयुर्वेद के प्रति पश्चिम बंग सरकार जिस प्रकार की उपेक्षा प्रदर्शित कर रही है उस पर सर्वत्र चिन्ता प्रकट की जायेगी। अभी हाल में आयुर्वेद विज्ञान परिषद् के २७ वें अधिवेशन में इस बात पर गम्भीर चिन्ता व्यक्त की गयी है कि राज्य सरकार आयुर्वेद के प्रति 'सौतेली माँ' जैसा व्यवहार

कर रही है। इसमें सन्देह नहीं कि राज्य सरकार और केन्द्रीय सरकार द्वारा जिस प्रकार पश्चिमी चिकित्सा-पद्धति को संरक्षण तथा प्रोत्साहन दिया जा रहा है उसकी तुलना में आयुर्वेद के लिए कुछ भी नहीं किया जा रहा है। राज्याश्रय प्राप्त होने के कारण ही देश में 'एलोपैथी' का जहाँ व्यापक प्रसार होता जा रहा है वहां आयुर्वेद का धीरे-धीरे ह्रास हो रहा है। पश्चिम बंग सरकार ने तो अन्य राज्य सरकारों के स्तर पर अभी आयुर्वेद को संरक्षण प्रदान करना स्वीकार नहीं किया है। डा० नलिनीरंजन सेन गुप्ता ने यह ठीक ही कहा है कि आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति बहुत कुछ देश की आवश्यकताओं के अनुरूप है तथा इसे स्वतन्त्र और परम्परागत रूप से ही विकसित करना चाहिए। आजकल आयुर्वेदज्ञों में भी पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति के अनुसरण की प्रवृत्ति बढ़ रही है। यह प्रवृत्ति घातक है। नब्ज को देख कर रोग की ज़ड़ पकड़ने वाले आयुर्वेदज्ञ भी अब 'स्टेथिसकोप' का सहारा लेने लगे हैं। आयुर्वेद विज्ञान 'एलोपैथी' तथा अन्य चिकित्सा-पद्धतियों की तुलना में अत्यधिक प्राचीन है तथा इसकी अपनी विशेषताएँ हैं। औषधि-विज्ञान की दृष्टि से आयुर्वेद के समक्ष दूसरी कोई चिकित्सा-पद्धति नहीं टिक सकती। पश्चिम बंग सरकार के लिए यह लज्जा और कलंक की बात है कि वह आयुर्वेद को प्रोत्साहन देने में अभी अन्य सरकारों से भी पीछे है। आयुर्वेद को राज्य सरकार का संरक्षण और प्रोत्साहन अविलम्ब प्राप्त होना चाहिए तथा इसके लिए यदि आवश्यकता समझी जाय तो एक आदेश भी जारी किया जा सकता है। आशा है, पश्चिम बंग सरकार आयुर्वेद की माँग पर सहानुभूतिपूर्ण ढंग से विचार करेगी और उन्हें किसी प्रकार से हतोत्साहित नहीं करेगी। अभी हाल में भारत सरकार के स्वास्थ्य मन्त्री श्री करमरकर ने भी आयुर्वेद के महत्व को स्वीकार किया था। राज्य सरकार को इस पर भी ध्यान देना चाहिए। पश्चिम बंगाल में आयुर्वेद का समुचित विकास हो—इसके लिए प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

## कैंसर व आयुर्वेद

आंध्र प्रदेश आयुर्वेद बोर्ड ने सिकन्दराबाद में एक कैंसर उपचार केन्द्र खोलने की घोषणा की है। इस तरह का एक केन्द्र इलूरू में भी खोला जायेगा और इन्थमाला में इस तरह का एक केन्द्र पहले से ही चल रहा है। पर खेद का विषय यह है कि उत्तरी भारत में इस तरह के केन्द्र खोलने और कैंसर के उपचार के लिए आयुर्वेद चिकित्सा की समुचित व्यवस्था करने की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। प्रायः सभी राज्यों की सरकारें कैंसर की एलोपैथी चिकित्सा की व्यवस्था करने पर काफी धन खर्च कर रही है, जब कि एलोपैथी में आपरेशन के अलावा कैंसर की कोई अन्य चिकित्सा नहीं है। यह आपरेशन भी उसका शर्तिया इलाज नहीं माना जाता और इतने बड़े आपरेशन के बाद भी शरीर के किसी अन्य भाग में कैंसर के प्रकट होने का खतरा बना रहता है। कई देशों में एलोपैथी द्वारा कैंसर का इलाज करने और उसके लिए प्रभावकारी दवाएँ खोज निकालने के लिए प्रयोग हो रहे हैं। पर अभी तक कोई विशेष सफलता हासिल नहीं हुई है। दूसरी ओर, आयुर्वेद द्वारा कैंसर का इलाज बिना आपरेशन के हो जाता है। फिर भी उससे पूरा लाभ नहीं उठाया जा रहा है और हम व्यर्थ ही इस विवाद में इतना उलझ गये हैं कि आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति वैज्ञानिक है अथवा नहीं, उसकी इस बहुमूल्य देन से भी अपने को वंचित किये हुए हैं। क्या यह बुद्धिसंगत है कि कैंसर की आयुर्वेदीय चिकित्सा से तब-तक लाभ उठाने की समुचित व्यवस्था न की जाय जब तक इस बात का अन्तिम रूप से निर्णय न हो जाय कि आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति वैज्ञानिक है अथवा नहीं ?

शास्त्रीय और शुद्ध
बैद्यनाथ रस-रसायन
जाड़े में सेवन करें
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता · पटना
झाँसी · नागपुर

# अखिल भारत आयुर्वेदशास्त्र-चर्चा-परिषद का अधिवेशन

**श्री क० विजयकाली भट्टाचार्य, एम० ए०**

विगत तीन वर्षों से अखिल भारत आयुर्वेदशास्त्र-चर्चा-परिषद् में आयुर्वेदीय शारीर-शास्त्र के विषय में आलोचना एवं प्रत्यालोचना हो रही है। प्रत्येक स्थान पर भारत के स्थानीय पंडित-सुधि प्रायः आलोचना एवं चर्चा करते हैं। चरक, सुश्रुत, वाग्भट एवं प्राचीन टीकाकारों के ग्रन्थों में शारीर विषयक जितने भी शब्द उल्लिखित हैं सभी का संग्रह कर कोश बनाने की आवश्यकता प्रथम है। आयुर्वेद शास्त्रोक्त शारीर विषयक उन शब्दों के अर्थ एवं मत अस्पष्ट हैं। उन्हीं के समाधानार्थ इस परिषद् की स्थापना हुई। श्री वैद्यराज यादवजी त्रिकमजी महोदय ने सर्वप्रथम इस विषय में प्रोत्साहन दिया। उसी प्रोत्साहन से उत्साहित हो श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के प्रतिष्ठाता श्री रामनारायण शर्मा वैद्य ने इस कार्य को आरम्भ किया। प्रत्येक प्रदेश के शारीर-विषयक अध्यायकों एवं विद्वानों का सम्मेलन बुलाने में अर्थ-व्यय बहुत होता है और आवागमन में कठिनाइयाँ भी होती हैं। शास्त्र-चर्चा-परिषद् का प्रथम अधिवेशन पटना में, द्वितीय अधिवेशन हरिद्वार में और तृतीय अधिवेशन बीकानेर राज्य के रतनगढ़ नामक स्थान में सम्पन्न हुआ है। रतनगढ़ में आयुर्वेदशास्त्र के ऋषिकल्प आचार्य पं० मणिरामजी शर्मा ने एक लाख चालीस हजार रुपये खर्च कर धन्वन्तरि मन्दिर बनवाया है इस मन्दिर में चिकित्सालय एवं आयुर्वेद के अष्टांग विभागों की शिक्षा का पूर्ण प्रबन्ध है। इसी मन्दिर के शुभ-उद्घाटन के अवसर पर आयुर्वेदशास्त्र-चर्चा-परिषद् के अधिवेशन का आयोजन भी किया गया। अधिवेशन में अखिल भारत के आयुर्वेद-आचार्यों ने भाग लिया। बंगाल, गुजरात, पूना, बम्बई, जामनगर, काशी, दिल्ली, मध्यप्रदेश, राजस्थान के शारीरशास्त्र के विशेषज्ञ महारथियों ने इसमें अपना-अपना योगदान दिया। पूर्व के दोनों अधिवेशनों में प्रस्तावित विषय पर प्रतिदिन बारह से सोलह घण्टे तक आलोचनाएँ लगातार छः दिनों तक हुईं। केवल छः दिन के लिए ही कई-कई विद्वान् सम्पूर्ण वर्षभर प्रयास करते ही रहे हैं। इन्होंने आयुर्वेदशास्त्र के शास्त्रानुगत शब्दों तथा विषय वस्तु का संग्रह कर आयुर्वेदशास्त्र-चर्चा-परिषद् के सम्मुख रखा, जिससे शास्त्रानुगत शब्दों एवं अर्थों का संकलन निर्मूल हो सकता है ऐसा प्रयत्न इस परिषद् में अच्छी तरह से हुआ। कलकत्ता के शारीर-शास्त्र के विशेषज्ञ भी इसमें सम्मिलित हुए। यामिनी-भूषण अष्टांग आयुर्वेद कालेज के सुपरिण्टेण्डेण्ट श्री प्रेमानन्द काव्यतीर्थ एवं शारीरशास्त्र के प्राध्यापक श्री ब्रजेन्द्रचन्द्र नाग इसमें सम्मिलित हुए। यद्यपि मैं शारीरशास्त्र का अध्यापक नहीं हूँ तथापि परिषद् के विशेष आमन्त्रण पर वहाँ पहुँचा था। वहाँ निखिल भारत के प्रायः तीस विद्वान् पहुँचे थे। भोजन एवं आवास-स्थान की व्यवस्था में किसी प्रकार की भी त्रुटि न थी। परिषद् की आलोचना में किसी भी प्रकार की कमी दृष्टिगत न हुई। विशेषतः महर्षिकल्प मणिरामजी शर्मा के नव-प्रतिष्ठित आयुर्वेद विद्यालय में परिषद् का अनुष्ठान परम सुन्दर हुआ। सभा में उपस्थित सुधिवृन्द आलोचना के विषय से पहले से ही परिचित थे। आलोचना का स्तर देख कर ऐसा प्रतीत हुआ कि विद्वान् अध्यापकों ने विषय का एक लम्बे समय तक गहन अध्ययन किया होगा। विषय वस्तु के सम्मुख आने पर उसके समाधान की अथक कोशिश की गयी जो विद्वानों के हार्दिक प्रयत्न से सफलीभूत भी हुई। शास्त्र विरोधी कार्य कहीं न हो जाये, साथ ही वास्तविकता क्षरित भी न हो इस बात का ध्यान पहले से ही रखा गया था। तदर्थ हम वैद्य रामनारायणजी शर्मा को अभिनन्दित करते हैं। उनके द्वारा उपार्जित अर्थ का सद्व्यय आयुर्वेदोन्नति में अवश्यमेव सहायक होगा——इसमें लेशमात्र सन्देह नहीं। समालोचना की दृष्टि से देखने पर इनका इसमें रचनात्मक सहयोग रहा।

कलकत्ता में मैंने आयुर्वेद गवेषणा विद्यापीठ की स्थापना की है। उसमें प्रति रविवार को कलकत्ता के विशिष्ट आयुर्वेद के विद्वानों को बुला कर विद्यापीठ का कार्य प्रारम्भ किया है। प्रायः एक वर्ष से शारीरशास्त्र के विषय में आलोचना हो रही है। अतः अखिल भारत आयुर्वेदशास्त्र-चर्चा-परिषद् में, कलकत्ते के गवेषणा विद्या-

पीठ के विशिष्ट प्रतिनिधियों का विशेष योगदान, गुरुता एवं मर्यादापूर्वक सम्पन्न हुआ। परिषद् के अधिवेशन में एक दिन राजस्थान के स्वास्थ्य मन्त्री और आयुर्वेद के डाइरेक्टर ने आकर प्रोत्साहन दिया। अन्तिम दिन राजस्थान के मुख्य मन्त्री ने उपस्थित हो चार विशिष्ट पंडितों को स्वर्ण-पदक से पुरस्कृत किया और वृद्ध-पंडित गोडवोले शास्त्री को विशिष्ट पुरस्कार प्रदान किया।

## भावी सम्भाव्यता

नव्य शारीर-विज्ञान एवं प्राचीन आयुर्वेद शारीर-विज्ञान के एक समन्वयात्मक ग्रन्थ में पारिभाषिक शब्दों का विशेष उपयोग हो सकेगा। किन्तु आयुर्वेदशास्त्र के निदानादि ग्रन्थों में आयुर्वेदशास्त्र की जो शारीर-संज्ञाएँ व्यवहार की गई हैं उसमें आयुर्वेद शारीर-क्रिया-विज्ञान का विशिष्ट परिचय है। जब तक आयुर्वेद के अपने शारीर-क्रिया-विज्ञान का स्पष्टीकरण नहीं हो जाता, तब तक इन संज्ञाओं से शास्त्र व्याख्यान अच्छी तरह नहीं हो सकता। सूक्ष्म-शारीर ज्ञान के लिए नव्य-विज्ञान की आवश्यकता अवश्य है, किन्तु आयुर्वेद-शारीर-क्रिया-विज्ञान के साथ उसका सामाञ्जस्य होना आवश्यक है। इस ज्ञान को स्वीकार कर आयुर्वेदशास्त्र का परिपाक एवं पुष्टिकरण करना चाहिए। इसके लिए विद्वानों की दीर्घ साधना ही उपयुक्त है। शारीर विषयक गवेषणा में आयुर्वेद का वैशिष्टय यही है कि शारीर क्रिया-विज्ञान की दार्शनिक भित्ति के आधार पर आयुर्वेद के शारीर-ज्ञान का विकास हुआ। नव्य-विज्ञान में शारीर ज्ञान के आधार पर शारीर-क्रिया-विज्ञान का विकास हुआ। दोनों के दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न हैं, अतएव सामञ्जस्य करने में कठिनाई अवश्य है। इसमें आयुर्वेदशास्त्र-चर्चा-परिषद् का विषय अवश्य सहायक होगा। अतः श्री रामनारायण शर्मा वैद्य को अखिल भारत-व्यापी प्रयत्न के लिए बंगाल के आयुर्वेद समाज की ओर से मैं अभिनन्दित करता हूँ।

**आवश्यकता है**

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के तत्वावधान में संचालित होने वाले "श्वासरोग पर आयुर्वेदानुसन्धान" कार्य में सहकारार्थ, एक ऐसे अनुभवी डाक्टर की आवश्यकता है जो आयुर्वेद में पूर्ण आस्था रखते हों और M. B. B. S. सहित पैथालाजी (विकृति विज्ञान) के निष्णात विशेषज्ञ हों और जो कि अनुसन्धान कार्य तथा रोगियों की मल-मूत्र, श्लेष्म, रक्तादि परीक्षाओं का यथावत् विवरण प्रस्तुत कर सकें। आयुर्वेद पद्धति का ज्ञान रखने वालोंको प्राथमिकता दी जायगी। वेतन-क्रम ३५० : २०-४५० : ई-बी-१५ : ६०० रु०

पूर्ण विवरण सहित आवेदन करें

**श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड**

(अनुसन्धान विभाग) झाँसी

# वैद्य सम्मेलन के समक्ष समस्याएँ

**श्री मदनगोपाल वैद्य एम० एल० ए०**

प्रसन्नता की बात है कि अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन का अधिवेशन १९५९ के फरवरी मास में भारत की राजधानी दिल्ली में हो रहा है और उसका उद्घाटन राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी के हाथों होने जा रहा रहा है। यह वैद्य-समाज का सौभाग्य है कि उन्हें एक आयुर्वेद-प्रेमी राष्ट्रपति मिला है।

उपर्युक्त अधिवेशन एक महत्त्वपूर्ण संक्रान्ति के समय में हो रहा है। पिछले दस वर्षों में देश के अनेक राज्यों से आयुर्वेद को राज्यमान्यता मिली है और तत्सम्बन्धी कानून भी अनेक प्रदेशों में बन गये हैं। प्रथम–द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में भी आयुर्वेद को स्थान मिला है जिसमें उत्तरोत्तर प्रगति हो रही है। आज सारा स्वास्थ्य व चिकित्सा विभाग डाक्टरों के हाथ में हैं और यह डाक्टर-वर्ग अब निश्चित रूप से आयुर्वेद की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखकर उसका नाश करने पर तुला है और ऑल-इण्डिया मेडिकल कानफरेन्स के अध्यक्ष-पद से आयुर्वेद का विरोध गत कई वर्षों से किया जा रहा है। १९५४ में अध्यक्षपद से डा० एस० सी० सेन ने लखनऊ अधिवेशन मे भाषण देते हुए आयुर्वेद का विरोध किया और यह सिफारिश की थी कि पंचवर्षीय योजना में इसे कोई स्थान न मिलना चाहिये। १९५५ के अक्टूबर मास में इण्डियान मेडिकल कौंसिल की कार्यकारिणी ने एक प्रस्ताव पास किया कि डाक्टरों को आयुर्वेद-यूनानी-होमियोपैथी के कालेजों से सहयोग न करना चाहिये। १९५८ में पुनः आल इण्डिया मेडिकल कानफरेन्स के अध्यक्ष-पद से आयुर्वेद का घोर विरोध किया गया। इस वैज्ञानिक युग में डाक्टरों की यह अवैज्ञानिक कार्यवाही बड़ी आश्चर्यजनक हैं। वैद्य-समाज में भी शुद्ध आयुर्वेद व मिश्र आयुर्वेद का कल्पित झगड़ा चल रहा है।

ऐसी विषम स्थिति में दिल्ली का यह अधिवेशन बड़ा महत्त्वपूर्ण है। राष्ट्रपति इसका उद्घाटन करने जा रहे हैं। अतः अब वैद्य समाज को भी अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं व्यवस्थित ढंग से विवेकपूर्वक करना है और ऐसी क्रान्तिकारी योजना बनानी है जिससे आयुर्वेद की हर प्रकार से अभिवृद्धि हो, आयुर्वेद देश-समाज व जनता की आधुनिक सब आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। समाज में सर्वाङ्गपूर्ण क्रियाकुशल वैद्यों का निर्माण हो सके और आयुर्वेद की प्रामाणिकता व स्टैण्डर्ड ऊँचा हो। आयुर्वेद को केवल भारत में बन्द करके न रखें वरन इसको एक सार्वभौम शास्त्र व चिकित्सा-पद्धति बनावें, तभी वास्तव में आयुर्वेद का उद्धार होगा। भाषा के बन्धन से मुक्त होकर दुनियाँ के सब देशों में और सब भाषाओं में आयुर्वेद का प्रसार करना है। इसकी सत्यता व वैज्ञानिकता को सारी दुनिया के सामने प्रकट करना है। यह सब काम वैद्य समाज को करना है। सरकार इसमें केवल सहायता दे सकती है तथा कुछ पथप्रदर्शन भी कर सकती है। यह काम है भी वैद्यसमाज का और आयुर्वेद के उद्धार का उत्तरदायित्व भी वैद्यसमाज पर है। हममें व शास्त्र में योग्यता व क्षमता होगी तो सारी दुनियाँ हमारी सहायता करेगी। भारत के यशस्वी चिकित्सक वैद्य श्री एस० एम० मित्र ने इंग्लैण्ड में एक लम्बे अरसे तक चिकित्सा-कार्य किया और लाखों रुपया पैदा किया। साथ ही हजारों हताश व असाध्य रोगियों को अच्छा किया। आज उनका नाम अमर है। हमें ऐसे चिकित्सकों की आवश्यकता है। ऐसे ही लोग आयुर्वेद का उद्धार कर सकते हैं।

यदि हम आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति समझते हैं तो बड़ा गलत करते हैं। आयुर्वेद तो सार्वभौम शास्त्र है और दुनियाँ की सभी चिकित्सा-पद्धतियों के सिद्धान्त आयुर्वेद में सन्निहित हैं। होमियोपैथी-एलोपैथी आदि आयुर्वेद के एक अंग मात्र हैं और अधूरे शास्त्र हैं। इनमें पूर्णता कभी आ नहीं सकती।

आयुर्वेद एक सत्य त्रिकालावाधित प्रगतिशील वैज्ञानिक शास्त्रहै, जिसमें चिकित्सा के सब मूल सिद्धान्तों का समावेश है। आयुर्वेद एक सत्य वैज्ञानिक आधार पर स्थित है, जिसमें कभी परिवर्तन नहीं होनेवाला है। केवल उसका वाह्यस्वरूप देश-काल-अनुभव के आधार

पर बदलता रहता है, परन्तु सिद्धान्त अटल व अपरिवर्तनीय है।

हमें आयुर्वेद के वैज्ञानिक आधार का दर्शन सारे विश्व को कराना है। तभी यह सार्वभौम चिकित्सा-पद्धति बनेगी। दुनियाँ के सब देशों में आयुर्वेद के चिकित्सक भेजने हैं। दुनियाँ की सब भाषाओं में आयुर्वेद के नवीन ग्रंथ देने हैं। इसकी योजना वैद्य-समाज को करनी है। अब आयुर्वेद को केवल भारत में सीमित नहीं रखा जा सकता। आयुर्वेद के व्यवसाय को भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बनाना है। तभी दुनियाँ आयुर्वेद का चमत्कार देखेगी।

यह तो हुई विदेशों की बात। अपने देश में भी वैद्य-समाज के पास आयुर्वेद के विकास व अभिवृद्धि की कोई योजना नहीं है। योजना बनने पर उसकी पूर्ति के साधन भी एकत्रित करने होंगे। परन्तु योजना का लक्ष्य केवल डाक्टरों की बराबरी करना ही न होना चाहिये। आयुर्वेद का अहित डाक्टरों द्वारा उतना नहीं हो रहा है जितना कि छद्मचर वैद्यों द्वारा हुआ है तथा हो रहा है। स्वयंभू वैद्यों के कारण ही आयुर्वेद बदनाम हो रहा है, और लोग भस्म खाने से भी डरते हैं। रजिस्टर्ड वैद्यों में भी छद्मचर वैद्यों या नीमहकीमों की पर्याप्त संख्या है जिनसे आयुर्वेद बदनाम हो रहा है और जिनके कृत्यों के कारण योग्य भी अयोग्य हो रहे हैं। अयोग्यों के कारण योग्यों को भी अधिकार नहीं मिल रहा है। आयुर्वेद की झूठी उपाधि बाँटने वाला भी निन्दनीय नहीं समझा जाता। एकाध सप्ताह की इंजेक्शन की ट्रेनिंग देकर रुपया ठगने वाले लोगों या संस्थाओं की भी कोई निंदा नहीं करता और इनका रोजगार चलता ही जा रहा है। उसमें वैद्य समाज सहयोग कर रहा है तथा वैद्य-संगठन उसकी निंदा नहीं करता। एक हफ्ते की ही ट्रेनिंग में वैद्य डाक्टर बन जाता है और आयुर्वेदज्ञ एलोपैथी के नाम सुई लगाता है। वैद्य बनने के लिये प्रवेश योग्यता की कोई आवश्यकता नहीं--केवल साधारण पढ़ना-लिखना आना चाहिये। ऐसी नीमहकीमी की स्थिति का जबतक नाश नहीं होता--आयुर्वेद बदनाम होता रहेगा। हजार रुपया साल व्यय करने वाली संस्था अपने को एक लाख रुपया खर्च करने वाली संस्था के बराबर समझती है जिससे आयुर्वेद का कोई स्टैण्डर्ड व प्रामाणिकता नहीं बन पाती है। किसी तरह यदि वैद्य बन भी गये तो उनकी योग्यता बढ़ाने की कोई योजना वैद्य समाज ने नहीं बनायी जिससे उन्हें कुछ शिक्षा मिले और आयुर्वेद की जो बदनामी हो रही है वह अब तो बन्द हो जाय। अतः वैद्य समाज से छद्मचारिता को यथाशीघ्र दूर करना है।

वैद्यों के अधिकार, वेतनक्रम व मान्यता की समस्या आजकल बड़ी गम्भीर हो रही है। वैद्य अपना वेतनक्रम डाक्टरके बराबर, प्रतिष्ठा व अधिकार भी डाक्टर के बराबर चाहता है। परन्तु योग्यता के सम्बन्ध में सब मौन हैं। स्वयं आयुर्वेद विद्यापीठ ने अपने प्रिंसपल का वेतनक्रम ३००) मासिक रखकर आयुर्वेद का बड़ा अहित किया है। एक हायर सेकण्डरी स्कूल-कालेज के प्रिंसपल का वेतनक्रम भी इससे अधिक होता है। जब हम स्वयं अपना स्टैण्डर्ड ३००) का बनाते हैं तो सरकार से इससे अधिक की आशा क्यों करते हैं? दिल्ली में ३००) महीना मोटर गैरेज का किराया पड़ता है। परन्तु वैद्य समाज में प्रिंसपल का वेतन ३००) है। पता नहीं इस वेतनक्रम पर वैद्य कैसे मिल जाते हैं? लोग कह सकते हैं कि त्यागी वैद्य ही इस पद पर जाते हैं परन्तु इस त्याग से वैद्य समाज का क्या स्टैण्डर्ड है। यह विदितनहीं होता। डा० देशमुख यूनीवर्सिटी ग्रांट कमीशन के अध्यक्ष है जिसका वेतनक्रम ३०००) है, परन्तु वे १) वेतन लेते हैं। यहाँ वेतनक्रम भी दिखाई देता है और त्याग भी। काशी विश्वविद्यालय के कुलपति का वेतनक्रम है परन्तु मालवीयजी वेतन नहीं लेते थे। यह त्याग है, वेतनक्रम तो होना ही चाहिये। विद्यापीठ के प्रिंसपल का वेतनक्रम १५००) मासिक से कम न होना चाहिये। तब सरकार पर इसका असर पड़ेगा। हम वैद्य समाज के लिये अधिकार चाहते हैं और चाहते हैं सरकार से; परन्तु सरकार यह काम स्वयं नहीं कर सकती क्योंकि सरकार को शास्त्र का ज्ञान नहीं है। किस योग्यता के वैद्य को क्या अधिकार मिलना चाहिये--इसका सुझाव वैद्य समाज को सरकार के सामने रखना चाहिये। सब वैद्यों को, वे चाहे जिस योग्यता के हों, समान अधिकार नहीं मिल सकता। अतः वैद्य समाज का योग्यता के अनुसार वर्गीकरण करना पड़ेगा और उसीके अनुरूप अधिकार भी मिलेगा।

वैद्य संगठन को इस सम्बन्ध में अपना निश्चित सुझाव देना चाहिये अन्यथा सरकार इसके लिये कोई कमेटी बना देगी और तब कालान्तर में इसका निर्णय होगा। यदि वैद्य समाज स्वयं इसका निर्णय कर ले तो सरकार को उसे शीघ्र कार्यान्वित करने में सहूलियत होगी। एक बात में जरूर

वैद्यसमाज से निवेदन करना चाहता हूँ। वह यह है कि मान लिया इस सम्बन्ध में वैद्य सम्मेलन ने कोई निश्चय किया और वह सबकी सम्मति से सही या उचित न हो तो भी हमें उस आधारभूत निर्णय को एक बार मान लेना चाहिये। क्योंकि इससे वैद्योंके अधिकार मिलने का श्रीगणेश हो जायगा और बाद को अधिकारों में संशोधन व परिवर्तन तो होता ही रहेगा। परन्तु गाड़ी चलनी चाहिये। दुनियाँ में किसी विषय पर सर्वसम्मत निर्णय हो नहीं सकता। अतः जो भी सुझाव हो उसे प्रथम कार्यान्वित करना चाहिये। बाद में अनुभव व तर्क के आधार पर उसमें संशोधन होना चाहिये। इस समय में सुझाव नहीं देना चाहता, पर यह जरूर चाहता हूँ कि वैद्य समाज वैद्यों के अधिकार सम्बन्धी रूप-रेखा का निर्णय करे। उसके बिना वह अधिकार पाने में स्वयं विलम्ब कर रहा है।

वैद्यों के अधिकार, सुविधाएं आदि की एक सूची बननी चाहिये और उन अधिकारों के उपयोग करने की अधिकारिणी वैद्य-श्रेणी कौन-सी है, इसका निर्णय हो जाना चाहिये। वैद्य समाज का सुझाव यदि सामने हो तो सरकार को उसे कार्यान्वित करने में सुविधा होगी। इसके लिये वैद्यों की योग्यता का वर्गीकरण करना नितान्त आवश्यक है क्योंकि सब वैद्यों को समान अधिकार मिल नहीं सकते क्योंकि उनकी योग्यता में महान् अन्तर है।

वैद्यक शिक्षा का उद्देश्य केवल शुद्धायुर्वेद या मिश्रायुर्वेद न होना चाहिये, वरन् सर्वाङ्गपूर्ण क्रियाकुशल वैद्यों के निर्माण की योजना होनी चाहिये जो देश, समाज व जनता की आधुनिक आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। छद्मचर वैद्यों की सृष्टि अब बन्द हो जानी चाहिये। उपाधि वितरण कर धन कमाने वाला संस्थाओं तथा वैद्यों का वहिष्कार होना चाहिये। आयुर्वेद की पढ़ाई साधनहीन विद्यालयों में न होकर साधन सम्पन्न विद्यालयों में होनी चाहिये। इसके लिये विद्यालयों के न्यूनतम स्तर का मापदंड निर्धारित होना चाहिये। यह काम भी वैद्य समाज का है। शिक्षा संस्थाओं में प्रति विद्यार्थी के लिये कम से कम ५ रोगी शय्याओं की भी व्यवस्था होनी चाहिये : शिक्षा का माध्यम व पुस्तक-लेखन का माध्यम भी निर्धारित होना चाहिये। प्रवेश योग्यता भी देश-काल के अनुरूप होनी चाहिये।

आयुर्वेद में नव्य साहित्य का निर्माण तथा प्राचीन साहित्य का प्रतिसंस्कार भी एक महत्त्वपूर्ण समस्या है और इसकी योजना भी वैद्य सम्मेलन को बनानी चाहिये। यह कार्य पूर्णतया वैद्य समाज का है, परन्तु वैद्य समाज इस ओर बड़ा उदासीन है। काम शुरू करने के पूर्व साहित्य का सर्वे भी किया जा सकता है। तब आगे की योजना बननी चाहिये।

वैद्य सम्मेलनों के अवसर पर शास्त्रीय विवेचन भी ६ मास पूर्व निर्धारित विषय पर होना चाहिये, जिससे शास्त्र की प्रगति हो सके। बैद्यनाथ भवन की ओर से शास्त्रचर्चा परिषद की व्यवस्था होती है परन्तु यह काम स्थायी रूप से व्यवस्थित तथा नियोजित ढंग से तीव्रगति के साथ होना चाहिये। आयुर्वेद की मौलिकता की रक्षा करते हुए, शास्त्रोत्कर्ष की योजना बननी चाहिये तथा देश में उपलब्ध सभी साधनों का उपयोग इसके लिये करना चाहिये।

अन्वेषण-कार्य के बिना आयुर्वेद का उद्धार नहीं हो सकता। आयुर्वेद के लुप्त अंग व क्रियाकलाप को फिर से संजीवित करना है। आयुर्वेद के सिद्धान्तों की नव्य मीमांसा करके उसको पुनः प्रतिष्ठापित करना है। त्रिदोषादि को आधुनिक युग की कसौटी पर कसना है, तब वास्तविक आयुर्वेद की प्रगति होगी। इसके लिये भी ठोस योजना बनानी है और सब साधनों व व्यक्तियों का वैज्ञानिक रूप में नियोजन करना है। इस काम के संचालन का भार वैद्य समाज को स्वतः लेना चाहिये।

देश में सफल चिकित्सालयों के निर्माण व विस्तार की योजना भी बनानी है। यह काम केवल यशस्वी पीयूष-पाणि चिकित्सक ही कर सकते हैं और योजना के अनुसार उन्हें इसमें हाथ बँटाना चाहिये।

वैद्य समाज की ओर से (Ayurved Market Expansin Bord) बनाना चाहिये, जो व्यवसाय वृद्धि के लिये सुझाव देना तथा आयुर्वेद के व्यवसाय को अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय बनावेगा।

इन प्रमुख समस्याओं के अतिरिक्त कुछ वैज्ञानिक समस्याएँ भी हैं। भारत के अनेक प्रदेशों में आयुर्वेद की उन्नति के लिये कानून बने हैं परन्तु केन्द्रीय सरकार की ओर से अबतक कोई कानून नहीं बना है जिससे भारत भर में आयुर्वेद की शिक्षा व स्टैण्डर्ड की एकसूत्रता व प्रामाणिकता स्थापित की जा सके। कानून की दृष्टि से यह प्रदेशीय सरकार के अधिकार की बात है। परन्तु Drugs

(शेषांश ५३९ पृष्ठ पर)

# अतिसार में दोष-भेद से द्रवत्व भेद

**वैद्य रणजितराय**

विषय-प्रवेश के पूर्व विषय से किंचित् संबद्ध परन्तु आयुर्वेद के स्वाध्याय-प्रवचन (अध्ययनाध्यापन) से सविशेष संबद्ध एक विषय के प्रति वाचकों का चित्त आकृष्ट करना चाहता हूँ। आशा है, आयुर्वेद के उपबृंहण की जिस शुद्ध दृष्टि से यह अवतरणिका लिखी जा रही है उसी दृष्टि से इस पर ऊहापोहकर वाचक नीति-निर्धारण करेंगे तथा आयुर्वेद का पथ प्रशस्त करेंगे।

## निदान के उपबृंहण की आवश्यकता

अतिसार के विषय में शीर्षकोक्त जिस वस्तु का विचार इन पंक्तियों में किया जायगा उसमें अधिक आधार चरक-संहिता में दी गयी संप्राप्ति का होगा। कई संस्थाओं में होने वाले अध्यापन, परीक्षाओं में निदान-विषयक उत्तर पुस्तकों के अवलोकन एवं निदान-चिकित्सा (काय चिकित्सा) विषय पर लिखे जाने वाले लेख, ग्रन्थ आदि पर दृष्टिपात करने से यह एक दुःस्थिति देखने में आती है कि हमारा निदान-विषयक क्षेत्र प्रायः माधव-निदान की सीमाओं में ही आबद्ध रहता है। आयुर्वेद को इसके पूर्ण रूप में देखना हो तो इस क्षेत्र को हमें अधिक विशाल बनाना ही होगा। मैं देख रहा हूँ, स्थिति में परिवर्तन आ रहा है, परन्तु इस परिवर्तन को वेगवत्तर बनाना चाहिए।

'निदाने माधवः श्रेष्ठः' यह उक्ति केवल प्रसिद्धि के कारण सत्य और अङ्गीकरणीय नहीं है। माधव की श्रेष्ठता उसकी पूर्णता के कारण तो कदापि नहीं है। उसकी श्रेष्ठता का प्रमुख कारण मेरी दृष्टि में यह है कि, आयुर्वेद का एक अङ्ग से आठ अंगों में विभाजन जो आज 'विषय प्रधान' अनेक अङ्गों के रूप में हो गया है वह कुछ आज का नहीं है। चिरकाल से आयुर्वेद इस दिशा में गति करता रहा है। वर्तमान में कालबल से उसका विभाजन नवीन चिकित्सा-शास्त्र के निकट आ गया है, इतना ही। विषय-प्रधान विभाजन की इस शैली को मूर्त रूप देने में निदानकार माधव का भी बड़ा हाथ रहा है। वैसे तो उपलब्ध संहिता ग्रन्थों में जो शारीर स्थान, निदान स्थान आदि के रूप में स्थान-विभाग देखा जाता है वह भी इस बात का गमक (सूचक) है कि निदान, चिकित्सा आदि के रूप में विषयों का विभाजन संहिताकाल में भी आरम्भ हो चुका था, तथापि माधव ने निदान पर पृथक् ही ग्रन्थ उपनिबद्ध कर इस प्रक्रिया की प्रगति में ऐतिहासिक स्थान प्राप्त कर लिया है।

आयुर्वेद ही नहीं, शास्त्रान्तरों में भी कालानुरूप विषयों के पुनर्विभाजन की यह पद्धति स्थान प्राप्त कर चुकी थी। व्याकरण इस विषय का सुसिद्ध दृष्टान्त है। महर्षि पाणिनि ने इस विषय का ग्रन्थन सुविदित अन्य दृष्टि से किया था। पश्चात्कालभावी भट्टोजि दीक्षित आदि ने पाणिनीयाष्टक से विषयानुसार सूत्रों का दोहन और संदोहन कर संधि, समास, सुबन्त, तिङन्त आदि प्रकरणों के रूप में कौमुदी आदि ग्रन्थों का निर्माण किया। इस प्रयत्न की उज्ज्वलता ने अपनी सहज सहृदय हृदयाह्लादकता के कारण जनमानस में सदा के लिए स्थान प्राप्त कर लिया। आयुर्वेद के क्षेत्र में भी यही स्थिति रही है। स्वयं अष्टाङ्ग संग्रह कार ने भी अपने ग्रन्थ के निर्माण में यही दृष्टि रखी है। आठ अङ्गों के विभाग को वे उतना विच्छिन्न नहीं कर सके, तथापि पूर्वाचार्यकृत विभाजन से कुछ कदम आगे वे अवश्य बढ़ गए हैं। ग्रन्थारम्भ में ही उन्होंने जो स्थापना की है उसके प्रकाश में उनके समस्त प्रयास को देखना आवश्यक है। वे कहते हैं---

**युगानुरूपसंदर्भो विभागेन करिष्यते।**
**तेऽर्थाः स ग्रन्थबन्धश्च संक्षेपाय क्रमोऽन्यथा॥**

संग्रह की यह विशिष्टता है कि, ग्रन्थकार ने विषय को विशद करने के लिए खूब विस्तार किया है, अपने अनुभव का लाभ अनुगामियों को देने के लिए पूर्वाचार्यों के ही शब्दों में कुछ-कुछ परिवर्तन भी किया है, विषय में परिवर्धन भी प्रचुर प्रमाण में किया है। पद्य के साथ गद्य भी खूब-खूब रखा है। कारण, पद्य विद्वज्जन के लिए उपयोगी हो सकता है, पर सामान्य विद्यार्थी विषय को समझ सके इस प्रयोजन से तो गद्य का ही महत्त्व है।

हृदयकार ने भी विषय की पूर्णता तथा विशदता का उतना ही ध्यान रखा है। अपने अनुभव से ग्रन्थ में कुछ वृद्धि भी की है। अनुपयुक्त या अप्रचलित बातें छोड़ दी हैं। परन्तु ग्रन्थ का निबन्धन ललित पद्यों में किया है। रचना पद्यमयी होने पर भी जैसा कि ऊपर कहा है, हृदयकार ने विषय की पूर्णता में कोई बाध नहीं आने दिया है।

माधवकर ने भी अपनी कृति में विषय को पूर्ण रखने की दृष्टि रखी होती तो उनका प्रयास सर्वथा अभिनन्दनीय होता। परन्तु सत्य स्थिति यह है नहीं। विद्यार्थियों के सुख बोधार्थ विषय को संक्षिप्त करने के प्रयत्न में उन्होंने उसे अत्यन्त अपूर्ण रहने दिया है। चरक में कोई बात पद्य में न हो––गद्य में हो––वह लेने योग्य हो तो स्वनिर्मित पद्य के रूप में उसे गुम्फित करने का हृदयकार के समान प्रयास न कर केवल पद्य ही चरक या सुश्रुत से लेकर इतिकर्तव्यता की समाप्ति माधव ने कर दी है। चरक में आया अतिसार का प्रस्तुत प्रकरण, ज्वर प्रकरण, राजयक्ष्मा की सामान्य संप्राप्ति तथा उसके विशिष्ट लक्षणों की संप्राप्ति का प्रकरण, पाण्डु रोग, कामला आदि के प्रकरण अपने दोनों हाथ ऊपर उठाए कब से इस बात की पुकार कर रहे हैं कि माधव ने हमें अन्यायपूर्वक अपनी कृति में स्थान नहीं दिया है। अब जब कि सहस्रावधि वर्षों के पश्चात् जनता तथा जनतन्त्र दोनों की आयुर्वेद के प्रति अभिरुचि और अभिरति उद्‌बुद्ध हुई है और तदाश्रित नाना प्रयत्न आयुर्वेद के पुनरुज्जीवनार्थ किए जा रहे हैं किंवा नवीन प्रयास आरम्भ करने की योजनाएँ बनाई जा रही हैं, तब आयुर्वेद-संबन्धी निदानांश भी माधव निदान की लक्ष्मण-रेखा तक ही मर्यादित न रहकर मिलें इतने उद्‌गमों से विषय का संग्रह कर उसका (अन्य अङ्गों का भी) पुनर्निर्माण किया जाना चाहिये।

आयुर्वेद के इतर अङ्गों के सदृश निदान भाग का प्रतिसंस्कार करने के लिए चरक-सुश्रुत-संग्रह-हृदय इन प्रसिद्ध संहिताओं तथा उनकी प्राचीन (अंग्रेजों के भारत में आने के पूर्व की) टीकाओं का तो आश्रय लेना ही चाहिए, संप्रत्येव उपलब्ध काश्यपसंहिता में भी विपुल सामग्री बिखरी पड़ी है। उसमें आया अम्लपित्त का प्रकरण, पार्श्वशूल का प्रकरण (जो नवीनोक्त ड्राई तथा वेट दोनों प्लुरिसियों की स्पष्ट प्रतीति कराता है), विषमज्वर की व्याख्या, प्रतिश्याय, किटिभादि कुष्ठों का प्रकरण इस विषय के उत्तम उदाहरण हैं। स्वयं माधवनिदान तथा उसकी उभय व्याख्याएँ भी अनेक प्रकार से उपादेय हैं। आमवात तथा अम्लपित्त का वर्णन चरक-सुश्रुत-वाग्भटद्वय में मिलता ही नहीं। माधव ही इन विषयों में आयुर्वेदज्ञों के चिरकाल से परम प्रमाण चले आए हैं। अम्लपित्त का उल्लेख काश्यप में अवश्य है, पर उसकी उपलब्धि तो अभी ही हुई है। कई छोटे-छोटे रोग, उदाहरणतया नेत्र रोगाधिकार का कुञ्चन, प्राचीन संहिताओं में हैं ही नहीं। माधव-निदान की टीकाएँ भी अनेक दृष्टियों से उपयोगी हैं। एक छोटा-सा दृष्टान्त इसका भी लें। **श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की प्रेरणा से श्रद्धेय आचार्य दामोदर शर्मा गौडजी ने प्राचीन तन्त्रों से शारीर संज्ञाओं का जो संकलन किया है उसमें माधव निदान की उभय टीकाओं का भी महत्त्वपूर्ण भाग है। गौडजी के प्रयत्न अन्तिम रूप लेंगे तभी यह वस्तु प्रकाश में आकर समक्ष आएगी।**

निदान के प्रतिसंस्कार की बात करें। अब तो वेद से अद्यावधि उपलब्ध समस्त प्राचीन वाङमय का अवगाहन सुतरां आवश्यक माना जाने लगा है। उसके लिए प्रयत्न भी आरम्भ हो गए हैं। परन्तु वे अभी तो सूची व्यूह के द्वार पर खड़े महारथी की कक्षा तक ही पहुँचे हैं। प्राचीन वाङ्मय जो चीनी आदि भाषाओं में अनूदित होकर तत्तद्देश से पुनः यहाँ आने लगा है, परन्तु जिस के मूलग्रन्थ भारत में नाममात्र भी शेष नहीं रहे, उसका भी आलोडन मूक सेवकों की प्रतीक्षा कर रहा है। मूल जातियों (आदि वासियों), वृद्ध पुरुषों, जनता, परम्परागत वैद्यों आदि में बिखरे आयुर्वेद के सिद्धान्त तथा प्रयोग भी एकत्र हों तो शास्त्र का उपबृंहण पूर्ण कक्षा को पहुँच सकता है। किं बहुना, इस क्षेत्र में कार्य करने की अभिरुचि जिन्हें हो वे स्वयं ही एतद्विषयक अधिक ऊहापोह कर ही सकते हैं।

अतिसार-विषयक शीर्षकोक्त विचार के आधारभूत वचनों को ठीक समझ लिया जाए तो दोष-भेद से अतिसार की पृथक् चिकित्सा का मार्ग भी प्रशस्त हो सकता है। निदान तथा चिकित्सा में दोष परक यह दृष्टि ही आयुर्वेद का प्राण है। इस दृष्टि से शास्त्र की चिन्ता हो तथा सुचिकित्सक प्रयोग पूर्वक इस दृष्टि को व्यवसाय में लाएँ इसी प्रयोजन से अतिसार को दृष्टान्त बनाकर विचार प्रस्तुत किया जा रहा है। अनेक विद्वान् इसी शैली से

विचार करने लगे हैं। उसे अधिक वेग तथा प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

## अतिसार की संप्राप्ति संक्षेप में

सुश्रुत ने अतिसार की जो संप्राप्ति दी है वह संक्षेप में मूलभूत दोष और तत्कृत दुष्टि के प्रति सम्यक् संकेत करती है। एतद्विषयक सुश्रुत का प्रसिद्ध पद्य अधोलिखित है—

**संशम्यापां धातुरन्तः कृशानुं**
**वर्चोमिश्रो मारुतेन प्रणुन्नः।**
**वृद्धोऽतीवाधः सरत्येष यस्माद्**
**व्याधिं घोरं तं त्वतीसारमाहुः॥**

सु० उ० ४०।६

शरीर का द्रव धातु अपने-अपने आशयों से आकृष्ट हो आमपच्यमानाशय में प्रविष्ट होता है। अपने द्रवत्व के कारण यह अग्नि को मन्द कर देता है। (अतएव अतिसार में लङ्घन प्रथम विधेय हुआ करता है)। शारीर द्रवधातु पुरीष से मिश्रित होता है। पुरीष मिश्रित यह द्रव धातु **अति** मात्रा तथा **अति** संख्या में अधोमार्ग से निःसृत होता है। इस अतिसरण के कारण ही घोर इस रोग को अति (ती) सार नाम दिया गया है। संग्रह तथा हृदय में भी अतिसार की संप्राप्ति इसी आशय की दी गयी है।

चरक-शारीर स्थान ७।१५ में शरीर के द्रव धातु की उपस्थिति पुरीष, मूत्र, स्वेद, त्वचा,[1] लसीका, रुधिर आदि द्रव धातु इनमें बताई है। उक्त पद्य की डल्हन-टीका में द्रव शब्द से कफ, स्वेद, पित्त, रस आदि की गणना की है चरक ने दोष-भेद से अतिसार के द्रव-भेद की जो विशद संप्राप्ति दी है उससे द्रव धातु की इन सर्व योनियों (आश्रयों) का ग्रहण न्याय्य प्रतीत होता है। अब चरकाचार्य के मत से दोष-भेद से पृथक् संप्राप्ति देखते हैं।

## वातिक अतिसार

वात के प्रकोप के कारणों का निर्देश कर उसके द्वारा अतिसार की संप्राप्ति दर्शाते चरकाचार्य कहते हैं: × × **वायुः प्रकोपमापद्यते, पक्ता चोपहन्यते। स वायुः कुपितोऽग्नावुपहते मूत्रस्वेदौ पुरीषाशयमुपहृत्य ताभ्यां पुरीषं द्रवीकृत्य अतीसाराय प्रकल्पते**—च० चि० १९।५। पुरीष के द्रवी भाव के कारण यहाँ कुपित वायु के प्रभाव से आशयापकृष्ट हो पुरीषाशय को प्राप्त हुए मूत्र और स्वेद कहे गए हैं। इन दोनों मलों में द्रवत्व का प्रमाण कितना होता है यह कहने की आवश्यकता नहीं। इतर दोषोत्थ अतिसारों में द्रवीभाव के कारण भूत द्रवधातु में द्रवत्व अल्प और अल्पतर होता है। परिणामतया, उनके स्वरूप-भेद एवं लक्षण-भेद के अतिरिक्त चिकित्सा की दृष्टि से स्मरणीय विशिष्टता यह होती है कि : वातिक अतिसार में शारीर अब्धातु का सरण अधिक मात्रा में और द्रुत वेग से होता है। अतः **उदकक्षय (डीहाइड्रेशन) की संभावना वातिक अतिसार में सविशेष होती है।** ऐसे अतिसार में, विशिष्ट उपचार तन्त्रकार ने बताए हैं। उन्हें पीछे अपवाद रूप से देखेंगे।

वातिक अतिसार की भूयिष्ठोदकता (जलाधिक्य) के विशिष्ट लक्षण चरकादि आचार्यो ने ये बताएँ हैं। **विज्जलम्**—इन्दु ने इसका अर्थ **क्लिन्नोदक प्रायम्** दिया है। यहाँ **विड्जलम्** पाठान्तर है। टीकाकार चन्द्र ने इसका अर्थ **किण्वोदक प्रायम्** दिया है। दोनों अर्थ स्पष्ट हैं। **विप्लुतम्**—चक्रपाणि ने इसका अर्थ **प्रसरणशीलम्** दिया है। इसका तात्पर्य है भूमि पर पड़ते ही अपने द्रवत्व के कारण जल के समान फैल जाने वाला। **अवसादि**—इसका अर्थ चक्रपाणि ने दिया है—**भूमौ पतितं लीनं भवति**; तात्पर्य—भूमि पर पड़ते ही पुरीष जो प्रायः द्रवरूप होता है वह अन्दर चूस लिया जाता है; किसी ने मलोत्सर्ग किया है, यह प्रत्यक्ष-दर्शन से विशेष विदित नहीं होता। **द्रवम्**—अर्थ व्यक्त है। **विबद्धमूत्रवातम्**—मूत्रगत अब्धातु पुरीषाशय को अपकृष्ट हुआ होने से मूत्र का विबन्ध (संग, अप्रवृत्ति किंवा अल्पप्रवृत्ति) होती है। इसके अतिरिक्त **शुष्कास्यता, सफेनता** आदि भेदक लक्षण वातातिसार में होते हैं। अब पैत्तिक अतिसार में द्रवत्व का स्वरूप तथा कारण देखते हैं।

---

[1] १—त्वचा में जल बाहर से पहली उदकधरा त्वचा के नीचे रहता है। किसी कारण व्रण होने पर यह त्वचा छिन्न हो जाती है तो यह अब्धातु बाहर क्षरित होने लगता है। तब इसे लसीका यह विशिष्ट संज्ञा दी जाती है। चरक ने लसीका का यह स्पष्ट अर्थ दिया है। काश्यप ने भी लसीका का यही अर्थ दिया है। तथापि कविराज गणनाथ सेन जी ने इसे वर्तमान 'लिम्फ' के अर्थ में निबद्ध कर दिया है। इस पर विद्वानों को विचार करना चाहिए। अंग्रेजी में लसीका को 'सीरम' कहते हैं।

113006

## पैत्तिक अतिसार

पैत्तिक अतिसार की संप्राप्ति बताते हुए निदान भूत पित्त के कोप के कारणों का निर्देश कर आगे चरकाचार्य कहते हैं——**पित्तं प्रकोपमापद्यते । तत् प्रकुपितं द्रवत्वादूष्माण-मुपहत्य पुरीषाशय विसृतमौष्ण्याद् द्रवत्वात् सरत्वाच्च भित्त्वा पुरीषमतिसाराय कल्पते ॥** च० चि० १६।८। अर्थात् पित्त में जो स्वाभाविक द्रवत्व और तदाश्रित सरत्व (अनुलोमन) गुण होता है वही पुरीष के द्रवीभाव का कारण होता है। पित्त में द्रवत्व का अर्थ है, वह स्वयं द्रवरूप होता है तदतिरिक्त लवण आदि द्रव्यों के सदृश आ समन्ततः शरीर के अब्धातु का आकर्षण (आॅस्मोसिस) कर जहाँ स्वयं स्थित होता है उस स्थल पर द्रवत्व या क्लेद के प्रमाण में वृद्धि कर देता है। अवयव-भेद से वृद्ध अब्धातु के परिणाम में भेद होता है। यहाँ आमपच्यमानाशय या महास्रोत में द्रवत्व की वृद्धि सरत्व अर्थात् मल और वात की अति प्रवृत्ति के रूप में परिणत होती है। पैत्तिक अतिसार में द्रवत्व–सरत्व होते हुए भी उक्त कारणानुसार वातिक अतिसार की अपेक्षया ये गुण न्यून तथा मल-प्रवृत्ति की संख्या भी अल्प होती है। श्लैष्मिक अतिसार में द्रवत्व और भी कम होता है।

पैत्तिक अतिसार के विषय में प्रसंगोपात्त एक अन्य वस्तु का निर्देश कर दूँ। पित्तातिसार के कारणभूत पित्त के प्रकोप का निदान बताते हुए चरक ने सूर्य के ताप तथा उष्ण मारुत (लू) को भी स्मरण करते हुए कहा है——**प्रततान्गिसूर्यसंतापोष्णमारुतोपहतगात्रस्य ।** व्रण प्रश्नाध्याय में पित्त के प्रकोपक कारणों के प्रकरण में भी सुश्रुत ने इस काल को स्मरण करते कहा है——**तदुष्णैरुष्णकाले च घनान्ते च विशेषतः**——सु० सू० २१।२२। डल्हन ने उष्णकाले का अर्थ ग्रीष्मे दिया है। यत्सत्यं, प्रत्येक दोष के प्रकोप के कारणों को दो प्राथमिक विभागों में विभक्त किया जा सकता है—प्रकोपक अहिताहार-विहार तथा प्रकोपक काल (ऋतु आदि)। उष्णकाल या ग्रीष्म ऋतु में पित्त का प्रकोप होने से उत्पन्न होनेवाले रोगों में एक पैत्तिक अतिसार भी है। यही नव्य चिकित्सा का 'समर डायरिया' है। आयुर्वेद-मत से इसमें पित्त को स्मरण रखें तो उसकी दोष-प्रत्यनीक चिकित्सा बड़ी हितावह सिद्ध होती है। मिश्र शिक्षणालयों में इसका आयुर्वेदिक स्वरूप ध्यान में न लाकर 'समर डायरिया' नाम से ही इसे स्मरण किया जाता है, जिससे उपचार की दिशा भी विभ्रान्त हो जाती है।

द्रवाधिक्य के कारण वातिक अतिसार के समान संख्या में मल प्रवृत्ति पैत्तिक अतिसार में होती नहीं। अलबत्ता मल **मांसतोयप्रख्य** (सु० उ० ४०।१०) होता है। इसका अर्थ डल्हन ने **मांसधावनोदक सदृश** दिया है। इसमें एक स्मरणीय लक्षण **अतिदुर्गन्धम्** होता है। पित्त का अपना स्वभाव ही दुर्गन्ध होने से निरामावस्था में भी पैत्तिक अतिसार में पूतिगन्ध होती है। तथापि इसमें समावस्था के समान पित्त की शुद्धि के लिए कदाचित् स्वल्प विरेचन उचित होता है। कारणभूत दोष की शुद्धि होने से कार्यरूप अतिसार स्वयं शान्त हो जाता है।

पैत्तिक अतिसार में दाहादि ख्यात लक्षणों के अतिरिक्त अन्य स्मरणीय लक्षण स्वेद और मूर्च्छा होते हैं। स्वेद प्रायः तुषार की कणिकाओं के सदृश तथा प्रायः ललाट पर होता है। स्वल्पता के कारण गुजराती में इसे 'झरी' कहते हैं। मूर्च्छा प्रायः स्वल्पकाल के लिए तमोदर्शन के रूप में हुआ करती है। तृष्णा भी होती है, परन्तु वह उतने उदकक्षय की सूचक नहीं जितना वातातिसार में होता है। वातातिसार में भी तृष्णा का उल्लेख लक्षण तया वाग्भट ने किया है।

शास्त्रीय दृष्टि से इस अतिसार के विषय में एक स्पष्टता चक्रपाणि ने की है और वह यह कि : यों पित्त अग्नि के समान होने से उसका वर्धक होना युक्त प्रतीत होता है तथापि यहाँ पित्त के पाचक-तीक्ष्ण गुण का विरोधी द्रव गुण वृद्धि को प्राप्त हुआ होता है, वह अग्नि को उपहत करता है।——**द्रवत्वादुष्माणमुपहत्येति यद्यपि पित्तमुष्णमग्नेः समानतया वर्धकं भवतीति युज्यते तथापि द्रवत्वादूष्माणमग्निरूपं हन्तीत्यर्थः।** पैत्तिक ग्रहणी के प्रकरण में चरक तथा चक्रपाणि ने इसी विषय को भूयः स्पष्ट करते कहा है :

**कट्वजीर्णविदाह्यम्लक्षाराद्यैः पित्तमुल्बणम् ।**
**अग्निमाप्लावयद्धन्ति जलं तप्तमिवानलम् ॥**

च० चि० १५।६५

**पैत्तिकग्रहण्यां पित्तस्याग्निसमानतया वर्धनमेव युक्त-मित्याशंक्य पित्तस्य द्रवत्वेनाग्निहननं क्रियते इति दर्शयन्नाह–**

**आप्लावयद्धन्त्यनलमिति। आप्लावनं द्रवेणार्द्रीकरणम्। उष्णस्यापि द्रवतया अग्निनिर्वापणे दृष्टान्तमाह––जलं तप्तमित्यादि।**

**––चक्रपाणि**

इसके विपरीत पित्त का तीक्ष्ण गुण-वृद्धि को प्राप्त हुआ हो तो अपने प्रसिद्ध लक्षणों से युक्त तीक्ष्णाग्नि नामक रोग होता है। अंशांश कल्पना से रोग-भेद का यह उत्तम उदाहरण है। अब श्लैष्मिक अतिसार में द्रवोत्पत्ति का कारण देखें।

## श्लैष्मिक अतिसार

निदानभूत श्लेष्मा के कोप के कारणों का उल्लेख कर अतिसार की संप्राप्ति का निर्देश करते चरकाचार्य कहते हैं––**श्लेष्मा प्रकोपमापद्यते। स स्वभावाद् गुरुमधुरशीतस्निग्धः स्रस्तोऽग्निमुपहत्य सौम्यस्वभावात् पुरीषाशयमुपहत्योपक्लेद्य पुरीषमतिसाराय कल्पते।**

(यहाँ दूसरे 'उपहत्य' में हन् धातु गति अर्थ में प्रयुक्त हुई है।) अतिसार में पुरीष का द्रवत्व और उसकी प्रवृत्ति का बहुसंख्यकत्व ये दो व्याधि-लक्षण होते हैं। श्लैष्मिक अतिसार में मलप्रवृत्ति के संख्याधिक्य का कारण उक्त वचन में चरक ने बताया है कि : अपने स्वाभाविक गौरव, माधुर्य, शैत्य और स्नेह के कारण कफ का स्रंसन (मलद्वार की दिशा में गति) होती है। पुरीष की अति प्रवृत्ति का कारण इतना ही होता है। उसके द्रवत्व का कारण होता है––कफ अपने इन्हीं गुणों के कारण पुरीष का उपक्लेदन (उपस्नेहन) करता है। जैसे आटे को गूँदने के लिए पानी दिया जाता है या उसमें घी या तैल (या एरण्ड तैल) का मोहन दिया जाता है वैसी ही स्थिति कफ के द्वारा किंचित् द्रवाधिक्य होने में पुरीष की होती है। इससे कितना कम द्रवत्व श्लैष्मिक अतिसार में होता है इसकी कल्पना की जा सकती है। सुश्रुत ने पुरीष के **सान्द्र** विशेषण द्वारा तथा वाग्भट ने **घन** इस विशेषण द्वारा इसी स्वरूप का निर्देश किया है।

श्लैष्मिक अतिसार में भी मल की प्रवृत्ति उतनी हो या न हो, मलोत्सर्ग के वेगों की संख्या तो अधिक होती ही है। उसका कारण स्वयं कफ होता है। यह कफ कभी-कभी पुरीषधरा कला में विलीनावस्था में होता है––तब यह रस धातु से पृथक् हुआ होता है। इस अवस्था में यह कला में ही चिपटा रह सकता है। तब इसे स्तब्ध-विलीन कहते हैं। अथवा यह चल हो सकता है और मलप्रवृत्ति के प्रयत्नवश बाहर पतित होता है। तब इसे चल-विलीन कहते हैं। विलीन के विपरीत अवस्था में यह लीनावस्था में होता है। तब यह अपने आश्रयभूत रस धातु से पृथक् नहीं हुआ होता। कारण उसके अग्नि––रसाग्नि––की मन्दता आदि होते हैं। जैसे कई मिष्टान्न बनाते समय उष्णता पर्याप्ति हो तो एक काल आता है जब घी अन्न से पृथक् हुआ उपलब्ध होता है वैसे रसाग्नि की बलवत्ता आदि अनुकूल परिस्थिति हो तो कफ अपने आश्रयभूत धातु से पृथक् हो जाता है। इसीको उसकी लीनावस्था कहते हैं। ऐसी स्थिति में यह धातु से कोष्ठाभिमुख गति करने में समर्थ होता है। लीनावस्था में रस धातु के अन्तर्गत रहा कफ स्थान भेद से अन्य लक्षणों के अतिरिक्त उस स्थान पर उत्सेध तथा स्रोतोरोध (अन्तर्गत विवर की अल्पता) को उत्पन्न करता है। अंग्रेजी में इस स्थिति को 'कंजेश्चन' कहा जाता है। श्वास, प्रतिश्याय, श्लेष्मला योनि, श्लैष्मिक अतिसार, प्रवाहिका आदि कफ भूयिष्ठ सर्व रोगों में श्लेष्मा की ये दो-चार अवस्थाएँ हो सकती हैं। वात इसी प्रकार आश्रयभूत अन्न के किट्ट में लीन या विलीन होता है तथा पित्त मूल धातु रक्त में।

प्रकृत श्लैष्मिक अतिसार में लीन या विलीन किसी भी अवस्था में स्थित श्लेष्मा के कारण विशिष्ट लक्षण होता है––**कृतेऽपि अकृतसंज्ञः।** चरक और वाग्भट ने ये शब्द प्रयुक्त किए हैं। इनका अर्थ अरुण ने दिया है : **कृतेऽपि पुरीषोत्सर्गे अकृतसंज्ञः––कृत-पुरीषोत्सर्गः इति संवेदना न भवति।** संस्कृत सरल और स्पष्टार्थक है। स्थिति यह होने से रोगी को पुनः-पुनः मिथ्या या अल्पशः मलप्रवृत्ति के वेग होते हैं। **सृष्टविट्कोऽपिभयः वेगाशङ्की** शब्दों द्वारा सुश्रुत ने यह स्थिति व्यक्त की है। मलादि की प्रवृत्ति न हो तो उसके लिए बल-प्रयोग करना पड़ता है। **सप्रवाहिकम्** विशेषण से चरक तथा वाग्भट ने यह स्थिति निर्दिशत की है। लीन या विलीन कफ मलप्रवर्तक वायु अपान को आवृत ((इरिटेट) करता है, जिसके कारण मलोत्सर्ग की आशङ्का तथा प्रवाहण हुआ करते हैं।

## प्रवाहिका श्लैष्मिक अतिसार का ही भेद

इस प्रकरण द्वारा हम आयुर्वेद के सिद्धान्त को समझने में उपयुक्त एक अन्य प्रकरण में प्रवेश करते हैं। हमारी

स्थापना है कि : पूर्वाचार्यों ने प्रवाहिका को पृथक् रोग न मानकर अतिसार का भेद-विशेष ही उसे माना है। इसका उपयोगी फलितार्थ क्या है, इसका उल्लेख भी हम इस प्रकरण में करेंगे।

चरक ने तो स्पष्ट ही प्रवाहिका का पृथक् उपदेश नहीं किया है। निदान-प्रकरण में श्लैष्मिक अतिसार के प्रकरण में ऊपर जो शब्द आए हैं उन्हें छोड़कर प्रवाहिका का कोई निर्देश ही नहीं है। चिकित्सा के अधिकार में भी आरम्भ में ही—

**आमे परिणते यस्तु विबद्धमतिसार्यते।**
**सशूलपिच्छमल्पाल्पं बहुशः सप्रवाहिकम्॥**
च० चि० १९।३४

इस पद्य द्वारा प्रवाहिका का शब्दशः उल्लेख कर आगे उसकी विशिष्ट चिकित्सा दी है। अडतीसवें पद्य में **'खडो हन्यात् प्रवाहिकम्'** इस वचन में प्रवाहिका यह संज्ञा ही दी है। पूर्व लिखित पद्य की टीका में चक्रदत्त ने सुश्रुतोक्त प्रवाहिका का लक्षण उद्धृत कर कहा है कि इस प्रकरण में आचार्य ने प्रवाहिका नाम से प्रसिद्ध रोग की ही चिकित्सा दी है। आगे अतिसार की क्षीरपानावस्था में भी प्रवाहिका को इन वचनों में आचार्य ने स्मरण किया है—

**विबद्धवातवर्चास्तु बहुशूलप्रवाहिकः।**
**सरक्तपिच्छस्तृष्णार्तः क्षीरसौहित्यमर्हति॥**
च० चि० १९।५१

आगे (श्लो० ५३) फलश्रुति में भी कहा है :

**एवं क्षीरप्रयोगेण रक्तं पिच्छा च शाम्यति।**
**शूलं प्रवाहिका चैव विबन्धश्चोपशाम्यति॥**

निदान और चिकित्सा दोनों अधिकारों में वाग्भट ने शब्दशः चरक की ही पद-पद्धति का अनुसरण किया है। प्रवाहिका में क्षीर का प्रयोग अनुभव से बड़ा ही गुणकारी सिद्ध हुआ है, प्रसंगवश इतनी सूचना कर पुनः मूल विषय पर आता हूँ।

सुश्रुत ने प्रवाहिका का विचार अतिसार के ही अध्याय में पृथक् किया है। **'वायुः प्रवृद्धो निचितं बलासम्'** इत्यादि उसका पद्य प्रसिद्ध होने से यहाँ उद्धृत नहीं करता हूँ। जो द्रष्टव्य है वह यह कि—इस पद्य की उत्थानिका में डल्हन ने स्पष्ट पदों में प्रवाहिका को अतिसार-विशेष ही कहा है। उसके मूल शब्द हैं—**इदानीं प्रवाहिकासंज्ञमतीसारभेदमाह—वायुरित्यादि।**

प्रवाहिका अतिसार का ही भेद है, यह वस्तु ग्रहणी की परिभाषा को विशद करने में अति उपयोगिनी है। ग्रहणी के लक्षण में आए अतिसार शब्द से प्रवाहिका का भी ग्रहण करना चाहिए। यत्सत्यं, प्रवाहिका कफ-प्रधान होने से उसमें अग्निमान्द्य के लक्षण सविशेष विद्यमान होते हैं, और उसमें स्वल्पमात्र अहिताहार-विहार हो तो ग्रहणी-विकृति का संभव अधिक होता है। प्रत्यक्ष में भी ग्रहणी के पूर्व प्रवाहिका (डिसेण्ट्री) की ही विद्यमानता अधिक रुग्णों में देखी जाती है।

## वातातिसार की विशेष चिकित्सा

ऊपर कहा है कि, वातातिसार में मल में द्रवत्व विशेष रहता है तथा उसके वेग भी अधिक संख्या में होते हैं। परिणामतया, वातिक अतिसार में ही उदकक्षय की भीति विशेषतया रहती है। इसीलिए सुश्रुत ने अधोलिखित पद्य में जो विशिष्ट चिकित्सा बताई है वह निश्चित ही वातिक अतिसार को ही लक्षित करके उपदिष्ट हुई समझनी चाहिए।

**योऽतिद्रवं प्रभूतं च पुरीषमतिसार्यते।**
**तस्यादौ वमनं कुर्यात् पश्चाल्लङ्घनपाचनम्॥**
सु० उ० ४०।३२

अतिसार की प्राथमिक चिकित्सा लङ्घन-पाचन रूप होती है। इसकी उपयोगिता के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। इतना विशेष जानना चाहिए कि अतिसारारम्भक दोष साम हो तब तो लङ्घन विधेय होता ही है, परन्तु दोष निराम हो, उस काल में भी लङ्घन किंचित् कराना ही चाहिए। कारण, ऊपर अतिसारों की जो संप्राप्ति बताई है उसमें कहा है कि अब्धातु का आमपच्यमानाशयगत अग्नि से संसर्ग होने से वह मन्द हो जाती है। अतिसार मात्र में लङ्घन की जो महिमा बताई गयी है, उसे इस सत्य के प्रकाश में देखने से ही उसका स्वरूप विशद होगा। इस प्रकार लङ्घन अतिसार में प्रथमावश्यक होते हुए, भी वातिक अतिसार उसका अपवाद है। एतद्विषयक मार्गदर्शक उक्त पद्य का अर्थ है कि : पुरुष को अति द्रव और अति प्रभूत (संख्याधिक) अतिसरण होता हो तो लङ्घन और पाचन पहिले न कराना चाहिए। पहले वमन कराना चाहिए, पश्चात् लङ्घन और पाचन।

अतिसार में वमन देने से वायु जो अत्यधिक कुपित हो अति सरण का हेतु होता है, उसकी गति विलोम एवं

ऊर्ध्वमुख होने से सरण या स्रंसन स्वभावतः न्यून संख्या में होता है। आगे मल के पाचन और शोषण का कर्म जिस अग्नि तथा वायु का है वह मल पर क्रिया करने का अवसर अधिक प्राप्त होने से उसका संग्रह भी सविशेष होता है।

सुश्रुत ने आगे चिकित्सा में वामक द्रव्य का उदाहरण नहीं दिया है तथापि पीछे के ग्रन्थकारों ने अङ्कोल का जो उपयोग अतिसार में दिया है वह वातिक अतिसारों में उपदिष्ट वमन के प्रयोजन से ही है। अङ्कोल का प्रयोग भावप्रकाश तथा चक्रपाणि ने दिया है। उनके मूल वचन ये हैं——

**अङ्कोलमूलकल्कस्तण्डुलपयसा समाक्षिकः पीतः।**
**सेतुरिव वारिवेगं झटिति निरुन्ध्यादतीसारम्॥**

(सेतु का अर्थ पुल प्रसिद्ध है। परन्तु इसका पाली या बाँध अर्थ भी आयुर्वेद तथा इतर वाङ्मय में प्रसिद्ध है। इस पद्य में इसका पाली अर्थ ही है। श्लोक का अर्थ यह है)——अङ्कोल के मूल का कल्क तण्डुलोदक तथा मधु के अनुपान से पीने से अतिसार के वेग ऐसे ही रुक जाते हैं जैसे पाली लगने से पानी का वेग। चक्रदत्त ने भी कहा है——

**तण्डुलजलपिष्टाङ्कोठ मूलकर्षार्धपानमपहरति।**
**सर्वातिसार ग्रहणी रोग समूहं महाघोरम्॥**

यहाँ अङ्कोल के मूल के रस की मात्रा आधा तोला लिखी है। एवं अतिसार के अतिरिक्त ग्रहणी पर भी इसकी उपयोगिता दर्शायी है। 'महाघोर' विशेषण का अर्थ वातातिसारोक्त उक्त लक्षण ही समझा जा सकता है।

निघण्टुकारों ने अङ्कोल के फल का रस वामक बताया है। यथा निघण्टु रत्नाकर में कहा है **रसो वान्तिकरश्चास्य।** परन्तु अनुभव से इसका मूल भी वामक विदित हुआ है। कहीं-कहीं विष-भक्षण होने पर वमन कराने के लिए इसका उपयोग आज भी होता है। अतिसार में अन्य वामक कल्पों का भी व्यवहार कर देखाना चाहिए।

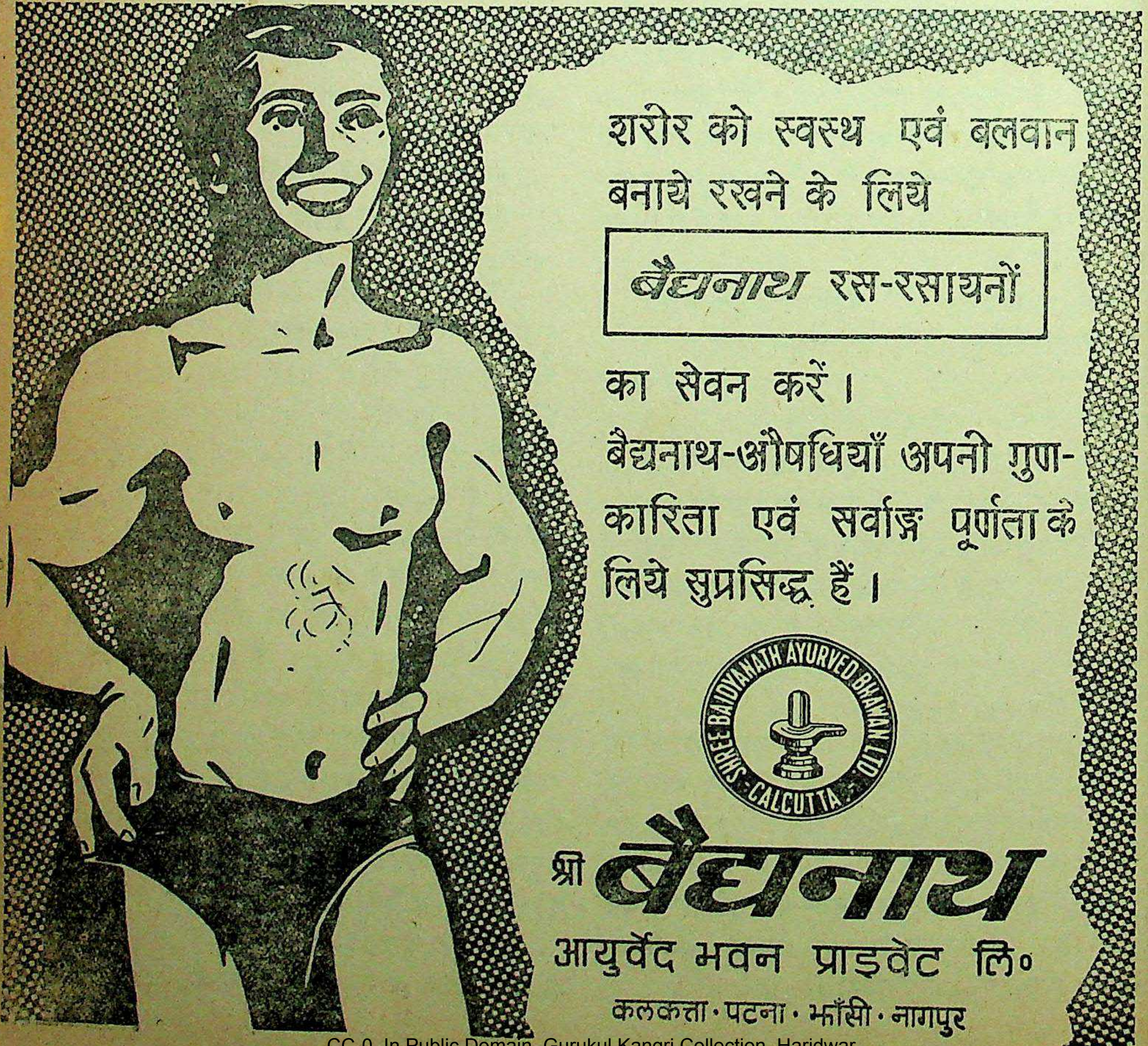

शरीर को स्वस्थ एवं बलवान बनाये रखने के लिये

बैद्यनाथ रस-रसायनों

का सेवन करें।

बैद्यनाथ-औषधियाँ अपनी गुण-कारिता एवं सर्वाङ्ग पूर्णता के लिये सुप्रसिद्ध हैं।

SHREE BAIDYANATH AYURVED BHAWAN LTD. CALCUTTA

श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता • पटना • झाँसी • नागपुर

# रक्तपित्त-विमर्शः

वैद्य ज्योतिर्मित्र आचार्य, ए० एम० बी० एस०, आयुर्वेदाचार्य

### व्याधिपरिचयः

यस्मिन् व्याधौ रक्तपित्तयोः प्रकोपादूर्ध्वतः (श्रोत्रादिभ्यः सप्तरन्ध्रेभ्यः) अधस्ताच्च रन्ध्राभ्यां मलमूत्रपथाभ्याम्, स्त्रीषु योनितश्च यो विकृतरक्तस्रावः (Haemorrhage) सम्प्रवर्त्तते स रक्तपित्तनाम्ना व्यपदिश्यते।

महामतिनाऽऽत्रेयेणास्य गणना पित्तविकारेषु शोणितजरोगेषु[1] च कृताऽस्ति, यस्य समर्थनं सुश्रुतवाग्भटाभ्यामपि विहितं स्वकीयतन्त्रयोः। वस्तुतस्तु प्रदुष्टं पित्तमेवासृजा समं मिश्रीभूय तद्रूपात्मकं सद्व्याधिरूपेण विभाव्यते[2]। आचार्यचक्रपाणिरस्य नामाभिधानप्रसङ्गे[3] रक्तयुक्तं पित्तम्[4] रक्ते दूष्ये पित्तम्[5] रक्तवत् पितम् इति व्याख्यात्रयं दत्तवान्। सुश्रुते "रक्तञ्च पित्तञ्च" इति व्याख्या दृश्यते। द्विविधनिरुक्तिमभिवीक्षमाणाः सन्देहसन्दोहे निपतन्ति विद्वांसस्तदत्र विजयरक्षितस्य "···पित्तं रक्तं च धातुरूपं, न तु केवलं रक्तं, रक्तपित्तमिति व्यपदेशानुपपत्तेः। अथ पित्तेन दुष्टं रक्तं रक्तपित्तमित्युच्यते, तदा पितरक्तमिति व्यपदेशः प्रसज्येत, एतेन रक्तं च पित्तं चेति द्वन्द्वसमासान्निरुक्तिरुक्ता सुश्रुतेन। ननु, चरके रागपरिप्राप्तं पित्तं रक्तपित्तम्, इत्युक्तं, तेन रक्तं च तत् पित्तं चेति कर्मधारयसमासेन निरुक्तिरुक्ता। अत्र च कारणत्रयमुक्तं, यदाह—"संयोगाद्दूषणात्तत्तु सामान्याद्गन्धवर्णयोः। रक्तस्य पित्तमाख्यातं रक्तपित्तं मनीषिभिः॥" इति, तत्कथं न विरोधः? नैवम्, अत्रापि रक्तप्रवृत्तः, दुष्टं हि रक्तं पित्ते रागमादधत्तत्संसर्गि रक्तं स्वयमपि प्रवर्त्तते इति पूर्व एवार्थः। तेन "रक्तं च पित्तं चेति रक्तपित्तं, रक्तं च तत् पित्तं चेत्युभयथाऽपि निरुक्तावदोषः" इति व्याख्यानमपाकरोति कृत्स्नं भ्रमात्मकं तथ्यमिति। उभयत्रतयोर्दृष्टिकोणयो र्न कश्चिदविसंवादः। कर्मधारय-द्वन्द्वसमासात्मकं द्वन्द्वमेव शेमुषीमतां पुरतः प्रतिभाति, चिकित्सायान्तु न कश्चित् प्रतितन्त्रात्मकसिद्धान्तो दरीदृश्यते यमाश्रित्य किमपि चिकित्सासौकर्यमापद्येत। रोगस्य निदानविनिश्चय एव चिकित्साया मूलाश्रयो भवति—इतिकृत्वा विमृश्यते यथामति किंचिदरुचिपार्थक्यं भगवतोश्चरकसुश्रुतयोः।

कर्मधारयसमासे विशेष्यस्य प्राधान्यम्; द्वन्द्वे तूभयोः; यदि पूर्वोक्तं पक्षमाश्रित्य चिकित्स्यते व्याधिस्तर्हि पित्तस्य मुख्यत्वं समुपजृम्भते; तच्च मूलकारणं व्याधेरिति निर्दशितमुभाभ्याम्। द्वन्द्वे चोभयोः पदयोः प्राधान्यं द्योत्यते—तदपि शास्त्रसम्मतम् यतश्च द्वयमपि निस्सरति लिङ्गरूपेण रक्तं लिङ्गिरूपेण पित्तं—पित्तस्य रक्तयोनित्वाद्रक्तस्यापि च रक्तिमा पित्तानुग्रहादितिकृत्वाऽत्र मिथोऽनुग्राह्यानुग्राहकभावात्प्रकटीभवति द्वयोर्महत्वम्। विषयविशदीकरणाय पाञ्चभौतिकी विश्लेषणाऽऽवश्यकी तदधस्ताद् विभावनीयम्—

### रक्तपित्तयोः पाञ्चभौतिकी संघटना

| विश्लेष्य-द्रव्यम् | वायव्यम् | आप्यम् | तैजसम् | वायव्यम् | नाभसम् |
|---|---|---|---|---|---|
| रक्तम्<br>पित्तम् | विस्रता<br>पूतिता | द्रवता<br>द्रवम्<br>सरम् | रागः<br>तीक्ष्णम् | स्पन्दनम् | लघुता |

---

[1]—चरक सू० २०।१४, चरक सू० २४।१२

[2]—संसर्गाल्लोहितप्रदूषणाल्लोहितगन्धवर्णानुविधानाच्च पित्तं लोहितपित्तमित्याचक्षते।—च० नि० २।५ च० चि० ४।६

[3]—...किमयं सौम्यस्तेजस? इति। अत्रोच्यते-स खलु द्रवानुसारी स्नेहनजीवनतर्पणधारणादिभिर्विशेषैः सौम्य इत्यवगम्यते—सुश्रुत सू० १४।३

[4]—स खल्वाप्यो रसो यकृत्प्लीहानौ प्राप्य रागमुपैति—सु० सु० १४।४

[5]—तेजो रसानांसर्वेषां यदुच्यते पित्तोष्मणः स रागेण रसोरक्तत्वमृच्छति। च० चि० १५
रञ्जितास्तेजसा त्वापः शरीरस्थेन देहिनाम्।
प्रसन्नेन रक्तमित्यभिधीयते। सु० सू० १४।५

उपरितनं प्रकोष्ठकं समभिवीक्ष्य द्वयोरेकमेव मूलं प्रतीयते। आहारजरस एव यकृत्प्लीहानौ प्राप्य रागमुपैति वस्तुतस्तु एष सौम्य एव। रञ्जकपित्तस्य रागेणैवासृक्तामुपयाति रसः। वाग्भटमतिरिच्योरी कुर्वन्ति सर्वे रुजकपित्तस्यस्थानं यकृत्प्लीहानौ—केवलमेष एव आमाशयम्[1]; भवतु नामारुचिवैचित्र्यम्—"तत्राप्यामाशयो विशेषेण पित्तस्थान" मिति चरकेण पित्तस्य स्थानं प्रतिपादितम्। तच्च विवर्णनं वाग्भटस्यापि परमपुष्टिकरम्। रक्तक्षयेऽसाध्यघातकपाण्डौ व यकृदामाशयखण्डप्रयोगो व्याधिहरोदृश्यते—भवति चात्र—

अतिनिःस्रुतरक्तो वा क्षौद्रयुक्तं पिबेदसृक्।
यकृद् वा भक्षयेदाजमामं पित्तसमायुतम्॥

पाश्चात्य चिकित्सकैरपि रक्ताल्पतायां यकृत्खण्डोपयोगो विधीयते यस्य सिद्धान्तविमर्शना नव्यचिकित्साग्रन्थेषु दर्शनार्हा। घातकरक्ताल्पतायां (Pernicious Anaemia) चिकित्साप्रसङ्गे प्राच्यायुर्वेदीयसिद्धान्त एवावतारितः प्रतीयते—

Lightly cooked or raw minced whole liver ½ lb. daily was first used. This was later replaced by daily doses of dessicated stomach-Powder (B.P.C.) 10-30 G., by liquid or dry liver extracts (B.P.), and more recently by proteolysed liver preperations.

—Savill's Systems of Medicine, Page 696, Ed. of 1955.

इति विनिगमनादामाशयस्य पित्तस्थानप्रामुख्यं दृढ़ी भवति "सामान्यं वृद्धिकारण" मित्यधिकृत्य चिकित्सोपादेयता समुपयुज्यते। इति प्रपञ्चसमीक्षणेन रक्तपित्तयोः सम्बन्धः कार्यकरता च विशदी भवति।

### रोगनिदानम्

सर्वं पित्तप्रकोपकमाहारविहारसेवनं यच्च व्यासतो निर्दिष्टमस्ति[2] बृहत्त्रय्याम्, रक्तवहस्रोतसो दुष्टिरेव च रक्तपित्ते कारणं यच्च निर्दिष्टम्—

विदाहीन्यन्नपानानि स्निग्धोष्णानि द्रवाणि च।
रक्तवाहीनि दुष्यन्ति भजतां चातपानलौ॥च. वि. ५।१४

सुश्रुतस्य निदानं चरकादपि स्पष्टतरं प्रतीयते। अनेन क्रोध-शोक-भयायासादि मानसकारणैरपि पित्तप्रकोपः प्रदर्शितः[1]। उपर्युक्तमानसकारणैः कट्वम्ल-लवणक्षार तीक्ष्णोष्णभूयिष्ठाहारविहारौ नित्यं भजतो जनस्य दुष्टो रसः पित्तं प्रकोपयति "तस्य पित्तस्योष्मणा स्विद्यतः स्विन्नीभवतो धातोर्धातोः प्रतिधातुमांसादिभ्यो धातुभ्यः क्षरता द्रवांशेन भूयोऽधिकतरं संवृद्धिमधिगच्छति प्राप्नोति" इति विशदयाञ्चकार चरकोपस्कारकारः श्रीयोगीन्द्रनाथ सेनः। व्यासतो निदानं नात्र प्रपञ्च्यते तदग्रन्थनिकरैर्विभावयन्तु सुधियः। माधवकर एनं निदानार्थकररोगे[2]ऽजीगणत् चरकदृशा।

### पूर्वरूपस्य लक्षणानि

अनन्नाभिलाषः, भुक्तस्यविदाहः, शुक्ताम्लगन्धरसोद्गारः, मुहुर्मुहुश्छर्देरागमनं, छर्दितस्य वीभत्सता, स्वरभेदः, गात्राणां सदनम्, परिदाहः मुखाद्धूमागम इव, मुखस्य लोहलोहितमत्स्यामगन्धित्वमिव, शकृन्मूत्रस्वेद-लाला सिंघाणकादिमलानां रक्तहरितहारिद्रत्वम्, अङ्गवेदना, लोहितनीलपीतश्यावानामर्चिष्मतां च रूपाणां स्वप्ने दर्शनं चेत्यादि चरकेण विवृतम्[3], सुश्रुतेन[4] शीतकामित्वमेकमपरं लक्षणं सन्निवेशितम्।

### रोगस्यात्मा (प्रकृतिः स्वभावो वा)

रोगोऽयमाशुकारी पित्तयोनित्वाद् व्याख्यातः, निदानचिकित्साध्याययोरात्ययिको दावाग्नेरिव प्रचण्डो महावेगी महागदश्चाभिमतः[5]।

### रोगस्य प्रकाराः

पृथग्दोषजम्—श्लैष्मिकं, वातिकं, पैत्तिकञ्च।

द्वन्द्वजम्—कफवातजम्, कफपित्तजम्, वातपित्तजं च।

---

[1] —आमाशयाश्रयं पित्तं रञ्जकं रसरञ्जनात्।
अष्टांग हृदय—सूत्र

[2] —चरक निदान अ० २।४; अष्टाङ्ग संग्रहः निदान ३।, तस्योष्णं तीक्ष्णमम्लं च कटूनि लवणानि च। घर्मश्चान्नविदाहश्च.......॥ च० चि० ४।६

[1] —सुश्रुत उत्तर० ४५।,

[2] —माधव निदानस्य पञ्चनिदानलक्षणे १५–१६ श्लोकौ। चरक, नि० १७।

[3] —चरक नि० २।६; अ० सं० नि० अ० ३

[4] —सुश्रुत उत्तर० ४५।

[5] —आमाशयाद्व्रजेदूर्ध्वमधः पक्वाशयाद्व्रजेत्। विदग्धयोर्द्वयोश्चापि द्विधा मार्गं प्रवर्त्तते॥ केचित् सयकृतः प्लीह्न प्रवदन्त्यसृजो गतिम्॥ सु० उ० ४५।

सन्निपातजम्(त्रिदोषजम्)—वात-पित्त-कफसंसृष्टम् ॥

### उत्पत्तिस्थानं मार्गश्च

रक्तपित्तस्याधिष्ठानं यकृत्प्लीहानावधिकृत्य रक्तवहं स्रोतोऽस्ति। ऊर्ध्वग रक्तपित्तस्यामाशयान्निर्गमनं भवति अधोगस्य च पक्वाशयात्। ऊर्ध्वाधोमार्गाभ्यां रक्त प्रवृत्तिर्भवति।

बहुश्लेष्मणि शरीरे श्लेष्मसंसर्गादूर्ध्वं प्रतिपद्यमानं विकृतं रक्तं कर्णनासानेत्रास्येभ्यः प्रच्यवते। बहुवाते तु शरीरे वातसंसर्गादधः प्रवर्त्तमानं दुष्टं शोणितं मूत्रापत्यपुरीषमार्गेभ्यः प्रच्यवते; बहुश्लेष्मवाते तु शरीरे श्लेष्मवातसंसर्गाद् द्वावपि मार्गौ प्रतिपद्यते, तन्मार्गप्रतिपद्यमानं रक्तं सर्वेभ्य एव यथोक्तेभ्यः खेभ्यः प्रस्रवति। प्रचुरपित्तप्रकोपे यदा गात्रस्य कृत्स्नेभ्यो रोमकूपेभ्यो रक्तं प्रवर्त्तते तदाऽऽन्तिकी, असंख्येयाऽपरापरपर्याया गतिरभिधीयते रोगिण आसन्नमृत्युत्वात्[1]।

अर्वाच्यचिकित्साप्रणाल्यामस्याधोनिर्दिष्टाः प्रकाराः सन्ति तान् प्राच्यपथातिथीकृत्य यथामति समन्वेत्यायुर्वेदीयविभागानुसारं दद्मो विशदज्ञानं प्रसङ्गे रक्तपित्तस्य :—

**१—ऊर्ध्वगरक्तपित्ते**

(i) नासापथ निस्सृत रक्तस्रावः (Epistaxis)
(ii) कर्णपथप्रवृत्तरक्तस्रावः (Otorrhagia)
(iii) नेत्रपथनिस्सृत रक्तस्रावः
(iv) मुखप्रवृत्तरक्तस्रावो द्विधा।
  (अ) आमाशयोत्थितः (रक्तवमनम् Hæmatemesis)
  (इ) फुप्फुसोत्थितः (रक्तनिष्ठीवनम् Hæmoptysis)
(v) दन्तवेष्ट प्रवृत रक्तस्रावः (शीतादः Scurvy)

**२—अधोगरक्तपित्ते**

(i) गुदपथ प्रवृत्तरक्तस्रावः (Melaena)
(ii) मूत्रपथ प्रवृत्त रक्तस्रावः (Hæmaturia)
(iii) मासिकधर्मकालिकाधिकरजः स्रावः (Menorrhagia)
(iv) गर्भाशयान्मासिकधर्म व्यतिरिक्तकालीनस्रावः (Metrorrhagia)
(v) स्वाभाविकरजःस्रावावराधादितरस्थानीयस्रावः (Vicarious menstruation)

**त्रिदोषजरक्त स्रावः**

(i) त्वचो रक्त स्रुतिः (Purpura)

### उपर्युक्त सर्वविधरक्तपित्तस्य विभावनम्

कर्णविवराभ्यां नासारन्ध्राभ्यांञ्च यद्रक्तं निस्सरति तद्धि दीर्घकालस्थायि सदपि, सामान्यत उदकमिश्रितं तनु च भवति तदनु नासारन्ध्रबहिर्गं शीनं कृष्णं गाढं सश्लेष्म च भवति।

दन्तवेष्ट-रसना-तालु-कण्ठेभ्यो निस्स्रुतं रक्तं सश्लेष्म, फेनिलं तथा लालास्रावजुष्टं भवति। फुफ्फुसोत्थरक्तं लोहितोज्ज्वल वर्णाभं भवति वातसंसर्गात् फेनिलं सम्पद्यते। आमाशयादागतमामाशयरसमिश्रितं भवति, एतद्धि रक्तं अन्नमिश्रिते पिष्टकॉफीवर्णाभं (Coffe ground) संजायते।

प्रायशो गुदद्वाराबहिर्भूतं शोणितं नेदीयसो भागस्यैव भवति, स्वल्पपरिमाणस्रुतौ निस्सरिष्णुमलभागे रक्तपित्तक लिङ्गेन ज्ञास्यते। प्रभूतप्रस्रुतौ जवान्निस्सरण शीलत्वादुष्णमाशुगामि च भविष्यति। ऊर्ध्वप्रदेशान्निर्गतं रक्तं कृष्णवर्णाभं दृश्यते, क्वचिच्चोर्ध्वप्रदेशान्निसृतरक्तपरिमाणमेतावद् भवति यद्रक्तंसंहतं भूत्वा मलसदृशमभिलक्ष्यते।

नारीषु ऋतुकाले बीजकोषाद् यो रक्तस्रावः सम्प्रवर्त्तते सदोषभेदात् स्थानीय स्रावेण सह मिश्रीभूय रक्तकृष्णयोरन्यतरवर्णस्य ग्रन्थिना फेनेन वा सह विभिन्न वर्णो भवति। मासिक धर्मस्य रक्तमपि बहुधा परिवर्त्तमानमेव प्रवर्त्तते। यदि मासिकधर्मव्यतिरिक्ताद्रुग्हेतोः रक्तस्रावः प्रवर्त्तते स खलु प्राकृताभः कदाचिच्च शीन इति। मूत्रपथनिस्सृतो रक्तस्रावोऽश्मर्यादिबहुहेतूनां परिणामस्वरूपेण तत्रत्यकलाविदरणादभवितुं शक्यते। स रक्तस्राव उदकभूयिष्ठलोहितवर्णाभः कदाचित्तन्तुमान् पिच्छाभश्च निस्सरति।

### दोषभेदाद् रक्तपित्तस्य लक्षणानि

श्लैष्मिकम्—सान्द्रं सपाण्डु सस्नेहं पिच्छिलं च भवति।
वातिकम्—श्यावारुणवर्णाभं सफेनं रूक्षं तनु च भवति।
पैत्तिकम्—बटादिकषायवर्णाभं, गोमूत्रसन्निभं, कृष्णं, मेचकाभं, आगारधूमाभम्, अञ्जनसन्निभं च पैत्तिकं भवति।
द्वन्द्वजम्—यद् द्विदोषलक्षणसम्पन्नं भवति तद्द्वन्द्वजमुच्यते।
सन्निपातजम्—यत्र त्रयाणां दोषाणामेकत्रोपस्थितिस्तद्धि सन्निपातजमुच्यते।

### साध्यासाध्यत्वम्

ऊर्ध्वगं रक्तपित्तं साध्यम्, अधोगं याप्यम्, उभयगमसाध्यम्—इति कृत्स्नं हेत्वादिकमुपनिबद्धमस्ति

---

[1] अ० सं० नि० अ० ३, च० चि० ४।

चिकित्सारहस्यमुद्घाटयता भगवताऽऽत्रेयेण निदानस्थाने 'प्रतिमार्गं च हरणं रक्तपित्ते विधीयते" इति सूत्रं साध्यासाध्यसम्बन्धनोपदिष्टम् । तद्हेतूनुपन्यसन् आचार्य चक्रपाणिविवृतौ व्यशदयद् 'विरेचनं पित्तहराणाम्' इति सूत्रानुसारं पित्तप्राबल्येन विरेचनं समुपयुज्यते तच्चाधोमार्गादेवसम्पद्यते न चोर्ध्वमुखाद् यतश्च विरेचनौषधयो हि सलिलपृथिव्यात्मकत्वादधोगस्वभावा भवन्ति । वैचित्र्यमत्र त्वेतद् यत्––प्रस्तुतोर्ध्वंग रक्तपित्ते विरेचनं कार्यते, शास्त्रानुमतस्तत्र हेतुः––रक्तपित्तनामाऽयं रोगः पित्तदोषप्रमुखः श्लेष्मानुबन्धी च, तर्हि "गौणं निरपेक्ष्यमुख्यमाजयेत्" इति न्यायमधिकृत्य प्रभूतप्रवृद्धपित्तजयार्थं विरेचनं कार्यते पित्तस्य प्रभूतत्वात् कफस्याल्पत्वान्मधुर भूयिष्ठं भेषजं प्रदाय व्याधिप्रत्यनीका चिकित्सा क्रियते न च दोषप्रत्यनीका । पित्ते किलौष्ण्यं तैक्ष्ण्यं च भवति––तन्मधुरौषधयो हि जलगुणभूयिष्ठाः शाम्यन्ति पित्तं "ह्रासहेतुर्विशेषश्च" इति सिद्धान्तमधिकृत्य शीतेनोष्णोपरमः क्रियते––इति सर्वतन्त्रसिद्धान्तः प्रतिफलितो भवति । मधुरे स्निग्धशीत गुरुगुणा भवन्ति तदधिकृत्य पित्तह्रासः सम्पद्यते न च बलासवृद्धिस्तस्याल्पमात्रत्वात् । पित्तशमने तिक्तकषायरसावपि सहयोगिनौ भवतः, द्वयोश्च श्लेष्मोपशमनक्षमतापि सिद्धान्त निभालनादितिमौलिकी रसतत्त्वववेचनाऽधस्तात् सारणीक्रममनुसृत्य दिग्दर्श्यतेः—

## विरेचनस्य योगावहत्वम्

| दोषनाम | रसः | रसः | रसः |
|---|---|---|---|
| पित्त शामक रसाः | कषायः | मधुरः | तिक्तः |
| कफ शामक रसाः | कषायः | कटुः | तिक्तः |

पित्तशामकानुपातः $\frac{\text{कषायः+तिक्तश्च}}{३}$ $\frac{\text{मधुरः}}{३}$

श्लेष्म शामकानुपातः $\frac{\text{कषायः+तिक्तश्च}}{३}$ $\frac{\text{कटुः}}{३}$

$\frac{\text{कषायः२}}{३}$ $\frac{\text{तिक्तः२}}{३}$ $\frac{\text{मधुरः१}}{३}$ वा $\frac{\text{कटुः१}}{३}$

इति दोषशामकानुपातानुसारेण तिक्तकषायरसौ श्लेष्माणं पित्तं च मिथोऽनुग्राहकभावेन शमयतः, मधुरस्यापि लंघनादिना कफेजिते भेषजता सिद्धा भवत्येव । भागत्रय॰ एक एव रसो (मधुरः) विषमो दृश्यते तस्यापि लंघनादिनाकृते ह्युपयोगः । वमनेन केवलं कफमेव उदीर्णं भविष्यति न च प्रभूत प्रवृद्धं पित्तम् । इति बहूनामोषधीनां[1] योगित्वात्साध्यमिदमूर्ध्वगं रक्तपित्तमिति निष्कर्षः ।

**अधोगं याप्यम्––**

यावच्चिकित्सास्यात्तावदेवोपरमःस्यादिति विचारानुसारं अधोगं रक्तपित्तं याप्यं भवति, तत्कारणं चेत्थमवगन्तव्यम्––अत्राधोगे रक्तपित्ते वमनं विधीयते, "वमनं श्लेष्महराणाम्" इति चरकोक्त्या प्रभूत-प्रवृद्ध पित्तस्यापहरणे नोपपद्यते श्रेष्ठत्वेन यतो हि चात्र वातानुबन्धो भवति गौणत्वेन, प्राधान्यं तु पित्तस्यास्त्येव । कषाय तिक्तरसौ पित्तं जयतः, वायोश्च प्रकोपणं कुर्वतः । एकोमधुररस एव पित्तं वातं च क्षपयति इति कृत्वाऽत्र वमनस्याल्पयोगिता सिध्यति, केवलं मधुररसस्यैकस्य प्रयोगादल्पभेषजोपयोगित्वाद् योगवाहित्वाच्च याप्यमस्ति, यतश्च वातप्रशमनाः मधुराम्ललवणरसाः सन्ति तेषु चाम्ललवणौ पित्तप्रकोपकौ । इति कृत्वा नात्र संगतिः प्रसज्यति तच्चाधस्ताद्विशदी-क्रियते–

पित्तशामकरसाः––मधुरकषायतिक्ताः

वातशामकरसाः––कट्वम्ललवणाः

पित्तप्रकोपण रसाः––कट्वम्ललवणाः

वातप्रकोपण रसाः––कटुतिक्तकषायाः

यदि पित्तहरौ तिक्तकषायावुपयुज्येते तर्हि अनुबन्धोवातः प्रकोपमापद्यते यदर्थं चिकित्साविधानं समापन्नं केवल मधुररस एव पित्तंवातं च जयतीत्यल्पौषधत्वं सिध्यत्यधोगस्य वमनं हि कफानुगं पित्तं हरति पित्तप्राधान्ये तन्नोपपद्यत इति कृत्वा वमनस्य भेषजस्य चाल्पयोगित्वाद् याप्यमिदमधोगं रक्तपित्तम् ।

मधुररसः शमयति पित्तं वातं । प्रकोपयतः तिक्तकषायौ

**उभयगस्यासाध्यता**

पूर्वोक्तोर्ध्वगाधोगकारणादसाध्यमस्तीदमुभयगं रक्तपित्तम् । यतश्च यद्यधोगस्य विरेचनं स्यात्तच्छास्त्रसम्मतं दोषकरञ्च वमने त्वल्पोपादेयता सिद्धैव, ऊर्ध्वगे वमनस्यानुपयोगित्वाद्विरेचनस्य योगित्वात्परस्परं विरुद्धं भवति––अतो नास्ति उभयमार्गे रक्तपित्ते शोधनम् ।[2]

---

१––तत्र यदूर्ध्वभागं तत्साध्यं, विरेचनोपक्रमणीयत्वाद्वह्वौषधत्वाच्च. . .।च॰ नि॰ २।९ च॰ नि॰ २।१२।१४

२––रक्तपित्तं तु यन्मार्गौं द्वावपिप्रतिपद्यते । असाध्यमितितज्ज्ञेयं पूर्वोक्तादेवकारणात् ॥

नहि संशोधनं किञ्चिदस्त्यस्य प्रतिमार्गगम् । प्रतिमार्गं च हरणं रक्ते पित्ते विधीयते ॥––चरक नि. २।१८-१९

अत्र व्याधिप्रत्यनीका चिकित्सा प्रशस्ता। ननु मा भवतु संशोधनम्, शमनं तूपयुक्तं भविष्यत्येव तन्न—संशोधनवदेवोभयमार्गानुसारित्वेन वातकफानुबन्धात् संशमनमपि अपार्थकं युगपद्वातकफशामकत्वाभावाच्च। अस्मिस्तु मधुररसः कफकारी, तिक्तकषायौ वातकरौ, अन्येऽवशिष्टास्त्रयो रसाः पित्तकरा एव भवन्तीत्यापाततः संसृष्ट दोषस्योभयगस्य वाऽसाध्यत्वं सिद्धचति।

### असाध्यलक्षणम्

यद्रक्तपित्तकृष्णमथवा नीलं शक्रधनुष्प्रभं, वाससोरञ्जनमिव अतिमात्रं पूति, दौर्बल्याद्युपद्रव परीतं भवति तच्चासाध्यत्वेन कीर्त्यते[1]। अथ च यत्कुणपगन्धसममतीवरक्तमतीवकृष्णवर्णाभमुभयमार्गप्रवृत्तं कफ वात संसृष्टं कण्ठे रुद्धं सकासं च भवति तदसाध्यं मन्यते। किन्तु द्विमार्गप्रवृत्तं रक्तपित्तं मार्गमेकं विहायान्यतरमाश्रयति तर्हि तद्याप्यं भवति।

### साध्यस्यलक्षणम्

हेमन्तशिशिरजमेकपथप्रवृत्तमभिनवं बलवति रोगिणि साध्यं भवति। रोगस्योष्णयोनित्वाच्चिकित्सायां शीतोपचाराद्व्यज्यते महत्त्वम्।

### रक्तपित्तजरक्तस्य परीक्षणम्

लोहित (रक्त) पित्तज रक्तं श्व-काकौ नाश्नीतः अतिविगुणत्वात्[1]।

### उपद्रवा

अस्मिन् रक्तपित्ते दौर्बल्यम्, श्वासः कासः ज्वरो, वमनं मदः, पाण्डुता, दाहो, मूर्च्छा भुक्तान्नविदाहः, अधैर्यम्, हृदिपीडा, पिपासा, अतिसारः, शिरसि तपनं, दुर्गन्धितनिष्ठ्यूतनिस्सरणम्, अरुचिः, स्वरभङ्गोऽरतिश्चेति लक्षणानि भवन्ति (सावशेषो निबन्धः)

---

[1] —द्रष्टव्यमरिष्टात्मकं पूर्वरूपम्—चरक इन्द्रिय ५।११

"लोहितपित्तसन्देहे तु किं धारिलोहितं लोहितपित्तं वेति श्वकाकभक्षणाद् धारिलोहितमभक्षणाल्लोहित पित्तमित्यनुपातव्यम्। चरक विमान ४।७

---

शेषांश ] **वैद्य सम्मेलन के समक्ष समस्याएँ** [ ५२७ पृष्ठ का

औषधियों तथा विषों Poisons का नियन्त्रण तथा चिकित्सा-व्यवसाय का नियन्त्रण प्रदेशीय व केन्द्रीय सरकार दोनों के अधिकार में है। फिर भी भारत में एक-सा कानून बनाने की दृष्टि से Medical Profession के नियन्त्रण के लिये केन्द्र से कानून बनाया गया है। Drugs व Poisons के लिये भी केन्द्र से कानून है। उसी प्रकार आयुर्वेद की व्यवस्था, उन्नति व नियंत्रण के लिये, भारत में आयुर्वेद की एकसूत्रता व प्रामाणिकता की स्थापना के लिये केन्द्र से. कानून बनना चाहिये और जबतक कानून नहीं बनाता है तबतक राष्ट्रपति भी संविधान की धारा २६३ के अनुसार अपने अधिकार से Central Council of Ayurved & Unani का निर्माण कर सकते हैं। इसको यथा शीघ्र कार्यान्वित किया जाना चाहिये। इसी प्रकार Central Institute of Ayurvedic Research भी कायम होना चाहिये। जो देश भर में अन्वेषण के काम को नियोजित करेगा और विभिन्न संस्थाओं व व्यक्तियों को विभिन्न कार्य व्यवस्थित रूप से सुपुर्द करेगा तथा सरकारी व गैर सरकारी सब साधनों का नियोजित रूप में उपयोग करेगा।

इसके अतिरिक्त आयुर्वेद विभाग को डाक्टरों के नियन्त्रण से मुक्त करने की भी एक व्यावहारिक समस्या है। इण्डियन मेडिकल कौंसिल के प्रस्ताव तथा आल इण्डिया मेडिकल कानफ़रेन्स के अध्यक्षों के भाषणों के बावज़ूद उनके हाथ में ही आयुर्वेद का नियन्त्रण रखना न्याय व नैतिकता दोनों ही दृष्टि से अनुपयुक्त है। अतः आयुर्वेद विभाग को डाक्टरों के नियंत्रण से मुक्त किया जाय। यदि ऐसा न हो सके तो डाइरेक्टर वह होना चाहिये जो आयुर्वेद की भी कोई परीक्षा पास हो।

ऊपर जितनी भी बातें कही गई है सबके लिये वैद्य समाज को योजना बनाकर उसके साधनों को जुटाकर उसे कार्यान्वित करना है और अपनी गति को कई गुना बढ़ाना है—जिससे आयुर्वेद एक सार्वभौम चिकित्सा पद्धति बन सके और उसका व्यवसाय अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय हो जाय।

# आयुर्वेद-पाठ्यक्रम सम्बन्धी रूपरेखा–२

वैद्य भा० वि० गोखले, आयुर्विद्यापारंगत

अब मैं रोग निदान तथा चिकित्सा के बारे में अपना विचार प्रदर्शित करूँगा। इन दोनों का एक ही विषय म समावेश होता है। विषय अत्यन्त विस्तृत होने के कारण इसका अध्ययन काल दो भागों में विभक्त होगा। प्रथम भाग में दो वर्ष तथा दूसरे के लिये एक वर्ष की अवधि होगी। इसके प्रत्यक्ष ज्ञान के क्षेत्र आतुरालय, प्रयोगशाला तथा पञ्चकर्म विभाग आदि विभाग होंगे। प्रथम भाग के लिये २० रुग्ण शय्या की व्यवस्था होगी। बाह्य विभाग का भी उपयोग किया जायगा। इस विभाग में एक प्राध्यापक, एक सहायक तथा एक गृहवैद्य (Hocure-Phynian) होंगे। प्रयोगशाला तथा यह विभाग मुख्यतः अध्यापन के लिये ही होगा। इस विभाग में आशुकारी व्याधियों के रुग्ण ही लिये जायेंगे। ज्वर, अतिसार, रक्तपित्त, अजीर्ण, विसूचिका, कास, श्वास, आमवात, शूल, शिरोरोग, रोमान्तिका, विस्फोटक, विसर्प, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र तथा वातव्याधि के रुग्णों का प्रवेश होगा। चिकित्सा—वनौषधि तथा सिद्धौषधि—उभयविध होगी। रुग्ण-परीक्षा के लिये एक छोटा-सा रुग्ण-परीक्षा-पत्रक आयुर्वेदीय पद्धति के अनुसार होगा। जिसमें दोष-धातु-मल तथा रोग-निदान आदि का उल्लेख होगा। परीक्षा में प्रवेश के हेतु प्रत्येक विद्यार्थी को कम-से-कम १५ रुग्ण पत्रिका भरना अनिवार्य होगा। इन पत्रिकाओं का उपयोग बाह्य रुग्ण विभाग में भी किया जा सकेगा। मुख्यतः व्याधि की प्राथमिक चिकित्सा का ज्ञान कराया जाय। प्रयोगशाला में आयुर्वेदीय पद्धति से कृमि, मल, मूत्र, रक्तादि की परीक्षा की जाय। इन परीक्षा पद्धतिओं के पुनरुज्जीवन के लिये अधिक प्रयास करना होगा। विद्यार्थीओं के लिये प्रात्यक्षिकों की व्यवस्था की जाय। पञ्चकर्म विभाग का भी यथावश्यक उपयोग किया जाय। औषधि-योजना भी निश्चित तथा स्थिर हो। लक्षणानुरूप समय-समय पर उसमें परिवर्तन न किया जाय। वनस्पति-चिकित्सा से सिद्धौषधि-चिकित्सा यह क्रम विद्यार्थी के ज्ञान के लिए उपयोगी होगा। उससे आशुकारी रोगों की प्रभावी चिकित्सा तथा साध्यासाध्यत्व का उत्तम ज्ञान होगा। क्योंकि उसके निदान में विशेष कठिनाई नहीं होती। "आशु क्रियाकरणात्" वह व्यधि शीघ्र व्यक्त होती है। इस अवधि में चिकित्सा विषयक ज्ञान पर अधिक लक्ष्य दिया जाय।

**औषधि-योजना**—उनकी मात्रा तथा अनुपान का ज्ञान विद्यार्थियों को होना चाहिये। इस वर्ष की अवधि के पश्चात् विश्वविद्यालय अथवा तत्सम संस्था द्वारा परीक्षा लेने की व्यवस्था की जाय। अन्तिम १ वर्ष का समय विशेषतः चिरकारी व्याधियों के अध्ययन के लिये रखा जाय जिसके लिये भी २० शय्या की व्यवस्था होनी चाहिये। अध्यापन के लिये प्राध्यापक, सहायक तथा उपवैद्य का एक मण्डल होगा। जीर्ण व्याधि के रुग्ण ही इस विभाग में प्रविष्ट किये जायँ। विशेषतः ग्रहणी, पाण्डु, प्रमेह, कुष्ठ, राजयक्ष्मा, अम्लपित्त, अग्निमान्द्य तथा प्रथम विभाग में वर्णित व्याधियों के जीर्ण रोगी भी इस विभाग में प्रविष्ट होंगे। पथ्यापथ्य विचार, पञ्चकर्म विचार, तथा अन्य समस्त आयुर्वेदीय चिकित्सा का इस विभाग में अत्यन्त दक्षता पूर्वक तथा कार्यकारण सम्बन्ध के साथ अध्यापन किया जाय। अध्यापक का अनुभव उच्च-श्रेणी का होना चाहिये। रुग्ण-परीक्षा पत्रक भी सूक्ष्म तथा विस्तृत हो। कम-से-कम दस विस्तृत पत्रकों का भरना विद्यार्थियों के परीक्षा में प्रविष्ट होने के लिये आवश्यक होगा। रुग्ण-परीक्षा तथा उपचार का समस्त कार्य विद्यार्थी करेंगे। प्राध्यापक के साथ प्रातः आतुरालयीय अवेक्षण (Round) के साथ विद्यार्थी का होना आवश्यक है। तथा संध्याकाल में उपवैद्य के साथ रुग्णों का निरीक्षण करना अनिवार्य होगा। बारी-बारी से रात में भी उक्त कार्य करना होगा। मल-मूत्रादि की परीक्षा प्रयोगशाला में करना होगा। पाठ्यक्रम के अनुसार इस अवधि में शल्य, काय तथा प्रसूति आदि सम्बन्धी उपचार भी आयुर्वेदीय होना आवश्यक होंगे। अनुभव से अब यह स्पष्ट हो चुका है कि आयुर्वेदीय विशिष्ट उपचार पद्धति से प्राकृत प्रभूति में पूर्णतः सफलता प्राप्त होती है। स्त्री रोग सम्बन्धी उत्तम

आयुर्वेदीय उपचार उपलब्ध है। बाल रोगों के लिये भी कार्यक्षम ऐसी आयुर्वेदीय चिकित्सा वर्तमान है। मूढ़गर्भ, स्त्री रोग सम्बन्धी शल्यकर्म तथा अन्य सभी शल्यकर्मोक्त प्रधान कर्मों के लिये आवश्यक संमोहन तथा शास्त्र कौशल के अतिरिक्त पूर्वकर्म तथा पश्चात् कर्म में आयुर्वेदीय उपचार शतप्रतिशत फलप्रद सिद्ध हो सकते हैं। दग्ध व्रण, नेत्र रोग, मुख रोग तथा अन्य व्याधियों में आयुर्वेदीय उपचार से लाभ होता पाया गया है। अतः उपरोक्त प्रसूति, स्त्री रोग तथा काय रोग सम्बन्धी आयुर्वेदीय उपचार से लाभ होता है। इसकी प्रचिति विद्यार्थियों को हो इसी लिये पाठ्यक्रम की इस अवधि में मैंने यह योजना रखी है।

उपरोक्त रुग्ण-शय्या के अतिरिक्त प्रसूति-विभाग में बाल, स्त्री तथा प्रसूति मुख्यतः यह रूपरेखा आयुर्वेद के के लिये बीस शय्या, तथा शल्य-शालाक्य में बीस शय्याओं की व्यवस्था होने पर पाठ्यक्रम की इस अन्तिम अवधि में क्रमशः विद्यार्थियों को कार्य करने का अवसर मिलेगा। इसी अवधि में प्रसूति तन्त्र, बाल रोग तथा शल्य-शालाक्य सम्बन्धी आयुर्वेदीय ज्ञान उसे कराया जाय। प्रसूति तन्त्र, बाल तथा स्त्री रोग के लिये एक अध्यापक , सहायक तथा उपवैद्य का मण्डल तथा शल्य-शालाक्य के लिये भी इसी तरह ३ अध्यापकों की नियुक्ति होनी चाहिये। इन विभागों में विद्यार्थियों को अनेक कर्मों का प्रत्यक्ष अभ्यास करने का अवसर मिलना चाहिए।

इस तरह की व्यवस्था होने पर अध्ययन पूर्ण करके बाहर आनेवाला विद्यार्थी निश्चय ही आयुर्वेदीय क्षेत्र में कार्यक्षम सिद्ध होगा, ऐसा मेरा मत है। इस व्यवस्था में उसे प्रात्यक्षिक अनुभव तथा निरीक्षण करने का अवसर मिलने से वह अवश्य दृष्टकर्मा तथा कृतकर्मा होकर यह व्यवस्था उसमें आयुर्वेद में विश्वास तथा श्रद्धा निर्माण करने में सहायक होगी।

पाठ्यक्रम सम्बन्धी मुख्य विषयों को मैंने स्पष्ट किया है, अतः अब तद्विषयक अन्य महत्त्व की अन्य बातों को मैं सारांश में देता हूँ।

### विद्यार्थियों की प्रवेश योग्यता

किसी भी प्रकार के पाठ्यक्रम की सफलता उसमें प्रविष्ट होनेवाले विद्यार्थी तथा अध्यापकों की योग्यता पर निर्भर करती है। यह अत्यन्त महत्त्व का विषय है। इस आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा-संस्था में प्रविष्ट होनेवाले विद्यार्थी की प्रवेश योग्यता क्या हो यह मेरा प्रथम प्रश्न है। विद्यार्थी जितना अधिक शिक्षित होगा उतनी ही उसकी बुद्धि अत्यन्त प्रगल्भ, जिज्ञासा तीव्र तथा उत्तरदायित्त्व का ज्ञान उसे स्पष्ट होगा। एम० एस० सी०, बी० एस० सी०, एम० एम० बी०, एम० ए० आदि उपाधि प्राप्त कुछ व्यक्तियों ने आयुर्वेद में प्रवेश किया है जिनमें उपरोक्त गुण अधिकतया पाये गये हैं। अल्प योग्यतावाले अनेक व्यक्तियों ने आयुर्वेद की परीक्षा पास की है परन्तु इन दोनों प्रकार के व्यक्तियों में जमीन-आसमान का अन्तर होता है। अतएव, प्रवेश योग्यता को न्यून करने का विचार मुझे स्पर्श तक नहीं कर पाता है। बम्बई राज्य के अन्तर्गत डिपलोमा पाठ्यक्रम की व्यवस्था प्रथम थी, जिसमें मैट्रिक प्रवेश योग्यता थी। तत्पश्चात् डिग्रीकोर्स प्रारम्भ होने पर इन्टर सायन्स (बी–ग्रूप) प्रवेश योग्यता की गई। प्रवेश योग्यता के स्तर में वृद्धि होने से विद्यार्थियों की योग्यता में भी वृद्धि हुई है ऐसा मेरा अनुभव है। कोई अध्यापक प्रवेश योग्यता को न्यून करने का आग्रह करता हो, तो यह निश्चित समझा जाय कि उसे इस योग्यतावाले विद्यार्थियों से भय होता है। "शिष्यादिच्छेत्पराजयम्"– ऐसी अध्यापक की वृत्ति होनी चाहिए। पिछले पृष्ठों में जिन पराक्रमी बुद्धिवन्तों के (Intellectuol gounts) निर्माण की आयुर्वेद के क्षेत्र में मैंने आवश्यकता प्रकट की थी उनके निर्माण के लिये प्रवेश योग्यता को कम करने से काम नहीं होगा। केवल इन्टर सायन्स प्रवेश रखने से ही मेरा समाधान नहीं है, परन्तु उसके साथ उत्तम संस्कृत की कोई परीक्षा भी उत्तीर्ण होना मैं आवश्यक मानता हूँ। ऐसे छात्रों के प्रवेश में अधिक प्रधानता दी जाय, तो उत्तम छात्र उपलब्ध हो सकेंगे। विश्वविद्यालयों में इन्टर सायन्स के पाठ्यक्रम में संस्कृत के अध्यापन की व्यवस्था करने का प्रयत्न किया जाय। परन्तु जब तक यह सम्भव न हो सके तब तक अन्य कोई-सी मान्य संस्कृत परीक्षा उत्तीर्ण छात्रों को प्रधानता देना आवश्यक है।

प्रवेश सम्बन्धी प्रधानता देने के लिये निम्न व्यवस्था की जा सकती है।

(१). (अ) तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ की संस्कृत चतुर्थ परीक्षा अथवा तत्सम अन्य संस्था की परीक्षा पास कर लेने के साथ-साथ इन्टर सायन्स (बी-ग्रूप) उत्तीर्ण छात्र को

उसके प्रतिज्ञात अंकों में ७ प्रतिशत की वृद्धि की जाय। अथवा (ब) प्रवेश के पूर्व एक संस्कृत विषय में परीक्षा ली जाय, जिसको पास कर लेने के लिये ५० प्रतिशत अंकों की आवश्यकता होगी। यह परीक्षा लिखित तथा मौखिक दोनों होगी। तथा यह पास कर लेनेवाले विद्यार्थी के प्रतिशत अंकों में ७ प्रतिशत की वृद्धि की जाय।

### अध्यापकों की योग्यता

विश्वविद्यालय से सम्बद्ध संस्थाओं में जहाँ-जहाँ डिग्री कोर्स की व्यवस्थाएँ हैं वहाँ पर अर्वाचीन अथवा आयुर्वेदीय कोई भी विषय के अध्यापक का स्तर स्नातकोत्तर उपाधि होता है। आर्टस् के लिये एम० ए०, सायन्स के लिए एम० एस० सी० वा पी० एच० डी०, कॉमर्स के लिए एम० कॉम०। वैसे ही अर्वाचीन वैद्यक के लिए एम० डी० उपाधियुक्त अध्यापक अनिवार्यतः रखा जाता है। परन्तु दुर्दैववश आयुर्वेद में स्नातकोत्तर शिक्षण की व्यवस्था अत्यल्प है। अतएव, इस व्यवस्था में कुछ काल तक शिथिलता रखनी होगी। विषय कितना हो, उसके व्याख्यान कितने हों इस विषय में प्रायः अत्यन्त चर्चा की जाती है, जो वस्तुतः गौण बात है। वास्तविक दृष्टि से अध्यापक कैसा हो यह विषय अधिक महत्त्व का है। उत्तम प्राध्यापक तथा कनिष्ठ अध्यापक के अध्यापन में अत्यन्त अन्तर होता है। शिक्षा-क्षेत्र में अध्यापक की योग्यता पर ही शिक्षा-संस्था का वैभव निर्भर होता है। अतएव, अध्यापक किसी राजमान्य स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त अथवा राजमान्य उपाधि प्राप्त करने पर कुछ वर्षों का अनुभव प्राप्त, ऐसा ही हो। यह अनुभव प्रधानता आतुरालय के कार्य तथा अध्यापन सम्बन्धी कार्य का होना चाहिये। विविध श्रेणी के अध्यापक के लिये निम्नलिखित नियमों का पालन अवश्य होगा।

(१) **प्राध्यापकवर्ग**—(१) स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण तथा पाँच वर्ष का अनुभव अथवा सरकारमान्य उपाधि—१० वर्ष का अनुभव।

(२) **सहायक वैद्य**—(१) स्नातकोत्तर उपाधि अथवा राजमान्य उपाधि—पाँच वर्ष का अनुभव।

(३) **उपवैद्य या दर्शक**—राजमान्य उपाधि प्राप्त।

आयुर्वेदीय स्नातक किस तरह का हो इसका विवेचन मैंने लेख के प्रारम्भ में किया है तथा इस विषयक रूपरेखा भी मैंने दी है। अतएव, उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए अध्यापकों का निर्वाचन किया जाय।

### पाठ्यक्रम की अवधि तथा परीक्षा

आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम स्नातकपूर्व तथा स्नातकोत्तर इस तरह दो प्रकार का होना चाहिए। उपरोक्त प्रवेश योग्यता के विवेचन के पश्चात् स्नातकपूर्व पाठ्यक्रम पाँच साल का रखा जाय ऐसा मैंने पूर्व लिखा है। स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम दो साल का हो। स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम इस लेख का विषय न होने से उसका वर्णन यहाँ नहीं करेंगे। मुख्यतः यह रूपरेखा आयुर्वेद के प्रधान विषयों के बारे में ही है। इसके अतिरिक्त स्वस्थवृत्त, विषतन्त्र तथा आयुर्वेद का इतिहास आदि अन्य विषयों को भी पढ़ाना होगा।

आयुर्वेद में जिनका वर्णन नहीं है अथवा जो लुप्त हो चुके हैं तथा व्यावहारिक दृष्टि से आवश्यक हैं; ऐसे विषयों को अर्वाचीन वैद्यक से ग्रहण किया जाय, ऐसा मेरा स्पष्ट मत है। इनमें एनोटॉमी, फिजिऑलॉजी, पॅथॉलॉजी, टॉक्सिकॉलॉजी आदि विषयों का समावेश होगा। इन विषयों के कितने अंशों का समावेश होना चाहिए। यह मैं नहीं लिखूंगा क्योंकि प्रमाण की अपेक्षा इनकी उपयुक्तता और प्रत्यक्ष कलात्मक ज्ञान को मैं अधिक महत्त्व देता हूँ। इन विषयों के लिये भी प्राध्यापक का स्तर विश्वविद्यालय के नियमों के अनुसार हो। **मात्र इन सब विषयों की परीक्षा पाठ्यक्रम के ४ वर्ष तक समाप्त हो जानी चाहिये।** अन्तिम परीक्षा के लिये तो केवल आयुर्वेदीय विषयों को ही रखा जाय, क्योंकि विद्यार्थी अन्तिम ज्ञान ले कर ही बाहर जाता है, अतः वह ज्ञान केवल आयुर्वेदीय ही होना इष्ट है।

आयुर्वेदीय तथा अर्वाचीन विषयों की कुल पाँच परीक्षाएँ रखनी चाहिए। समस्त परीक्षाएँ से विश्वविद्यालय अथवा तत्सम संस्था द्वारा ली जायँ।

(१) **प्रथम परीक्षा**—प्रथम वर्ष के अन्त में हो जिसमें १. पदार्थ विज्ञान, २. संस्कृत, ३. आयुर्वेद का इतिहास तथा ४. रसशास्त्र ये चार विषय हों।

(२) **द्वितीय परीक्षा**—दूसरे वर्ष के अन्त में हो; जिसमें १. शारीर दोषधातुमल-विज्ञान, २. द्रव्यगुण तथा ३. एनाटॉमी-फिजिऑलॉजी आदि विषय हों।

(३) **तृतीय परीक्षा**—तृतीय वर्ष के अन्त में, १. स्वस्थवृत्त-विषतन्त्र, २. हाईजीन, बेक्टरिऑलॉजी, ३. टॉक्सिकॉलॉजी तथा न्यायवैद्यक इन विषयों में हों।

(४) **चतुर्थ परीक्षा**--चतुर्थ वर्ष के अन्त में, १. रोग-निदान तथा चिकित्सा (प्रथम खण्ड), २. मेडिसिन तथा पैथोलॉजी, ३. सर्जरी, ४. मिडवायफ्री-ग्यायनेकॉलॉजी आदि विषयों में हों।

(५) **पञ्चम परीक्षा**--पञ्च वर्ष के अन्त में, १. रोग निदान तथा चिकित्सा (द्वितीय खण्ड), २. शल्य-शालाक्य तथा ३. सौतिक स्त्री-बाल रोग इन तीन विषयों में हों।

### पाठ्यक्रम की सारांश रूपरेखा

यह रूपरेखा केवल आयुर्वेदीय विषयों के लिए ही सीमित है।

(१) **विषय--पदार्थ विज्ञान तथा संस्कृत**
**अध्यापक**--दो--१ प्राध्यापक, २ सहायक
**अध्यापनकाल**--एक वर्ष ;
**परीक्षा**--प्रथम वर्ष के अन्त में
प्रत्यक्ष ज्ञान के साधनों की आवश्यकता नहीं।

(२) **विषय--शारीर तथा दोषधातुमल-विज्ञान**
**अध्यापक**--तीन--१. प्राध्यापक, २. सहायक, ३. दर्शक
**अध्यापनकाल**--२ वर्ष
**परीक्षा**--द्वितीय वर्ष के अन्त में
**प्रत्यक्ष ज्ञान के साधन**--१ शवच्छेदगृह, २ प्रयोगशाला **३. आतुरालय-रुग्ण शय्या २०**

(३) **विषय--द्रव्यगुण तथा रसशास्त्र**
**अध्यापक**--चार--१. प्राध्यापक, २. सहायक, ३. दर्शक-दो
**अध्यापनकाल**--२ वर्ष
**परीक्षा**--द्वितीय वर्ष के अन्त में
**प्रत्यक्ष ज्ञान के साधन**--१, औषधि निर्माणशाला, २. वनस्पति उद्यान, ३. वस्तु संग्रहालय, ४. आतुरालय रुग्ण शय्या-२० (शारीर विषय की ही), ५. बाह्य शल्य विभाग।

(४) **विषय--रोग-निदान तथा चिकित्सा (प्रथम खण्ड)**
**अध्यापक**--तीन--१. प्राध्यापक, २. सहायक, ३. उपवैद्य
**अध्यापनकाल**--२ वर्ष
**परीक्षा**--चतुर्थ वर्ष के अन्त में
**प्रत्यक्ष ज्ञान की व्यवस्था**--१. आतुरालय, २० शय्या, २. बाह्य रुग्ण विभाग, ३. प्रयोगशाला, ४. पञ्चकर्म विभाग।

(५) **विषय--रोग-निदान तथा चिकित्सा (द्वितीय खण्ड)**
अध्यापकवर्ग--तीन--१. प्राध्यापक, २. सहायक, ३. उपवैद्य
**अध्यापनकाल**--एक वर्ष
**परीक्षा**--पञ्चम वर्ष के अन्त में
**प्रत्यक्ष ज्ञान के साधन**--१. आतुरालय २० रुग्णशय्या, २. बाह्य रुग्ण विभाग, ३. प्रयोगशाला, ४. पञ्चकर्म

(६) **विषय--शल्य-शालाक्य**
**अध्यापकवर्ग**--तीन--१. प्राध्यापक, २. सहायक, ३. उपवैद्य
**अध्यापनकाल**--एक वर्ष
**परीक्षा**--पञ्चम वर्ष के अन्त में
**प्रत्यक्ष ज्ञानके साधन**--१. आतुरालय-२० रुग्णशय्या, २. शल्यकर्म मन्दिर, ३. बाह्य रुग्ण विभाग

(७) **विषय--सौतिक स्त्री और बाल-रोग**
अध्यापन व्यवस्था--पूर्ववत् ; १. रुग्णशय्या-२०, २. प्रसूति विभाग, ३. बाह्य रुग्ण विभाग।

समस्त परीक्षाएँ विद्यापीठ अथवा तत्सम संस्था द्वारा ली जाय। तथा उनमें उत्तीर्ण होने के लिये प्रत्येक विषय में ४०प्रतिशत प्राप्तांक का होना आवश्यक हो।

उपरोक्त १०० आतुर शय्याओं की व्यवस्था आयुर्वेदीय विषयों के लिये है। इस तरह की व्यवस्था होने पर ही ५० छात्रों को प्रवेश दिया जाय। साधारणतया प्रत्येक छात्र के लिये दो आतुर शय्या की व्यवस्था आतुरालय में हो।

इसके अतिरिक्त अर्वाचीन वैद्यक के प्रत्यक्ष ज्ञान के लिये भी रुग्ण शय्या होनीं चाहिये। जिनकी संख्या ५० से अधिक न हो। उनमें शल्य-शालाक्य प्रसूति आदि की व्यवस्था हो। ५० से अधिक छात्रों को प्रवेश कराना हो तो उपरोक्त अनुपात से रुग्ण शय्याओं की व्यवस्था हो।

भारत के समस्त राज्यों में इस ढंग की कम-से-कम एक अथवा दो आदर्श आयुर्वेदीय शिक्षा संस्था होनी चाहिये। आयुर्वेदीय स्नातकों का स्तर सरकारी सेवा में अथवा व्यवसायी अधिकारों के विषय में एम० बी० बी० एस० से किसी तरह कम नहीं समझा जाय।

विद्यमान शिक्षा संस्थाओं ने मेरी इन सूचनाओं पर विचार करके यदि उनका अनुसरण किया तो आयुर्वेद को उज्ज्वल भविष्य प्राप्त होगा ऐसी मेरी धारणा है। इस तरह की स्नातकपूर्वपाठ्यक्रम की व्यवस्था जगह-जगह पर होने से स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के स्तर में भी आवश्य वृद्धि होगी।

प्रिन्सिपल-आयुर्त्रेद-स्नातकोत्तरशिक्षण कालेज
जामनगर (वम्बई)

# तिब्बत का चिकित्सा-शास्त्र

**वैद्य प्रतापकुमार पोपट भाई**

**श्री प्रतापकुमार भाई प्राचीन दस्तावेजों, शिलालेखों आदि की शोध और उनके आधार पर देश-विदेश में भिन्न-भिन्न कालों में आयुर्वेद की परिस्थिति के अनुसन्धानमें बड़ा रस लेते हैं। उनके एतद्विषयक लेख "सचित्र आयुर्वेद" में भी प्रकाशित होते रहे हैं। प्रस्तुत लेख उसीका एक नमूना है। वास्तव में इस प्रकार की सामग्री भी बड़ी मूल्यवान् है। कोई संस्था वैद्य प्रतापकुमार भाई की क्षमता का उपयोग कर आयुर्वेद का अद्यावधि सर्वाङ्गीण इतिहास लिखाने का भार ले तो आयुर्वेद की यह बड़ी भारी सेवा कही जायगी। ——संपादक**

तिब्बत पूर्व का एक रहस्यमय देश है। वहाँ जाने के लिए अनेक यात्रियों को उत्कण्ठा होती थी, परन्तु बहुत कम वहाँ पहुँच पाए——इनमें कई तो छलपूर्वक गये। आज भी वहाँ पहुँचना सुगम नहीं है। कोई दस वर्ष से चीनी प्रजातन्त्र की छाया उस देश पर आने पर तिब्बत पहुँचने का मोटर का मार्ग तैयार हो गया है——एक महान साहस-तुल्य इस मार्ग ने तिब्बत को नई दुनिया और नई हवा के अति निकट ला दिया है।

तिब्बत बौद्ध धर्मानुयायी देश है। **'ओम् मणि पद्मे हुम्'** उनका विश्वविदित मन्त्र है। दस वर्ष पूर्व वहाँ मोटर न थी, विद्युत् न थी। शताब्दियों पूर्व वहाँ जो जीवन-क्रम रहा होगा वही प्रवर्तमान था। उस देश के चिकित्सा शास्त्र का परिचय प्राप्त करने की आकांक्षा इस लेखक को बहुत समय से थी। यात्रा-वर्णन तो बहुत लिखे जा चुके हैं, परन्तु उन सबको पढ़ने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। तथापि दो यात्रा-विवरणों के आधार पर निम्न वक्तव्य प्रस्तुत करते हुए हमें आनन्द होता है।

× × ×

१९५१ में अमेरिकन यात्री (लघु) लोवेल थोमस ने **आउट ऑफ दिस वर्ल्ड** नामक यात्रा-वर्णन प्रकाशित किया था। लेखक और उसके पिता——वह भी एक प्रख्यात यात्रा-लेखक हैं——अनेक यातनाएँ सहन कर एक साथ तिब्बत पहुँचे थे। उस यात्रा का और वहाँ की परिस्थिति का वर्णन इस पुस्तक में है।

तिब्बत के चिकित्साशास्त्र-विषयक निम्न निर्देश उसमें प्राप्त होते हैं—रोगों के प्रतिबन्ध के लिए तिब्बत-वासी गण्डों और ताबीज़ों को जो महत्त्व देते हैं, उसे देखकर भी जाना जा सकता है कि तिब्बत में चिकित्सा-शास्त्र का क्या स्थान है? मेरा वक्तव्य केवल उत्तान और चिकित्सकेतर व्यक्ति की गवेषणा का परिणाम है, यह समझ लेना चाहिए। अपरंच, तिब्बत में ऐसे किन्हीं आँकड़ों या जनगणना का उल्लेख विद्यमान नहीं है कि जिसके आधार पर चिकित्सा शास्त्र-रोग या ऐसी ही अन्य जानकारी स्पष्ट मिल सके।

ल्हासा के चकपोरी (अर्थ——लोह-पर्वत) के शिखर पर चिकित्सा-शास्त्र की शाला है। वहाँ तिब्बत के सब बड़े मठों से विद्यार्थी आते हैं। वहाँ का पाठ्यक्रम आठ वर्ष का है। इस अवधि का महत्तर भाग विद्यार्थी मन्त्रों और श्लोकों को कण्ठस्थ करने में व्यतीत करते हैं। वे लोग कतिपय चिकित्सोपयुक्त वनस्पतियों का ज्ञान अवश्य संपादन करते हैं, परन्तु लोगों को एनेटॉमी या शरीर के मुख्य उपाङ्गों के स्थानों अथवा उनके कार्य का कोई ज्ञान नहीं है। रोगी को सांसर्गिक रोग हुआ हो तो उसकी नाड़ी-परीक्षा एक लंबे सूत्र के सहारे की जाती है।

मसूरिका के कारण वहाँ बहुत संकट रहता है, परन्तु तिब्बती टीके का भी ज्ञान प्राप्त करने लगे हैं। कस्तूरी, कपूर और वत्सनाभ ल्हासा की शिक्षण-संस्थाओं के स्नातकों को परिचित होते हैं। तथापि दलाई और पञ्चान लामा के मल और मूत्र से तैयार किए कल्प किसी भी रोग की चिकित्सा के लिए हितावह माने जाते हैं। अधिकांश तिब्बती मंत्रविद्या और भूतनाश पर सविशेष आधार रखते हैं। कैसी भी बीमारी हो, लामा को घर पर बुलाया जाता है और वह आकर धर्मशास्त्र और प्रार्थना-ग्रन्थ का पाठ करता है।

तिब्बतियों के पञ्चमहाभूत ये हैं——**पृथ्वी, लोह, जल, काष्ठ और अग्नि।**

लगभग आठ वर्ष पूर्व, एलन विनिङ्गटन-नामक एक अंग्रेज पत्रकार ने चीनी सरकार तथा तिब्बत के दोनों लामाओं के अतिथि रूप में इस देश की यात्रा चीनी सेना द्वारा तैयार किए हुए नये मोटर-मार्ग से की थी। उनका कहना है कि उनको वहाँ पर्यटन की सब प्रकार की सुविधा दी गई थी। लोग उनके असंख्य प्रश्नों के उत्तर शान्ति से देते थे। उन्होंने तिब्बत के नवीनता के प्रति प्रयाण करते वातावरण का सविस्तार अवलोकन किया था। लामाओं ने उनको तिब्बत के विषय में सत्य वस्तुस्थिति प्रकाशित करने की अनुज्ञा दी थी। उनके ग्रन्थ **"तिब्बत"** (प्रकाशक: लोरेन्स एण्ड विशार्ट, लंदन, १९५७) में कुछ अधिक स्पष्ट उल्लेख हैं। उनको अब देखें :—

रोग वा दुर्घटनाएँ स्वाभाविक कारणों से होती हैं, ऐसा तिब्बत के लोग मानते नहीं। यह सर्व परिणाम अशुभ भूतों का है, ऐसी इन लोगों की धारणा है। रोगी धन देकर अपने लिए धर्मगुरुओं से प्रार्थना कराते हैं। बहुत से साधु चिकित्साशास्त्र के जानकार हैं, परन्तु उनका व्यवसाय अन्य साधुओं तथा धनवानों तक सीमित रहता है।

परन्तु, भगवान बुद्ध के एक सदेह अवतार की चिकित्सा चीनी सेना द्वारा भेजे हुए डाक्टर के हाथ सफलता से होने पर वहाँ आतुरालय खोले जाने लगे। इनका प्रथम लाभ साधुओं ने ही लिया। (तिब्बत के दस लाख निवासियों में कोई डेढ़ लाख साधु हैं)।

शरीर में प्रविष्ट और संचरण करती इल्ली भी तिब्बती के मन एक आत्मा होने से उसकी हत्या उचित नहीं। धर्म के प्रति इस तीव्र आस्था को आघात न पहुँचे इस रीति से अर्वाचीन आरोग्य-शास्त्र की बातें लोगों को समझाने का प्रयत्न किया जा रहा है। रोगी का विश्वास संपादन करने के लिए उसकी धार्मिक मान्यताओं की उपेक्षा न करनी चाहिए, ऐसी आगन्तु चिकित्सकों की नीति है।

तिब्बती लामाओं का एक अपना चिकित्सा शास्त्र है, जो प्राचीन चीनी चिकित्सा-शास्त्र, वनौषधि-शास्त्र, धर्म और ज्योतिष के आधार पर रचा गया है। सभी चिकित्सक साधु होते हैं। चिकित्सा-काल में किसी अनुभूत वानस्पतिक चूर्ण के साथ वे किसी बड़े लामा के मलमूत्र-मिश्रित गुटिकाएँ भी रोगी को देते हैं। ये गुटिकाएँ रोगी को ग्रहों की दृष्टि से शुभ दिन में लेनी होती हैं। पहले निर्धन जनता के लिए किसी प्रकार के वैद्यकीय उपचार की व्यवस्था न थी। धन दे सकें ऐसे लोग रोग का आविर्भाव होने पर प्रार्थना के लिए साधुओं को दक्षिणा देते थे।

तिब्बती चिकित्सा-शास्त्र पर प्राचीन चीनी चिकित्सा शास्त्र का अच्छा प्रभाव है। एक्युपंक्चर (शरीरावयव में रोग-निवारण के लिए आवश्यक प्रतिक्रियाएँ—रीएक्सन—उत्पन्न करने के लिए शरीर के विभिन्न भागों में अत्यन्त सूक्ष्म सुई चुभोना), मोक्सीबश्चन (वानस्पतिक वर्त्तियों के जलते हुए किनारे द्वारा ताप देकर त्वचा और अन्तर्गत शरीरावयवों में चेतनोत्पादन) आदि प्रक्रियाएँ और अनेक वानस्पतिक योग चीनी चिकित्सा-शास्त्र से लिए गए हैं।

× × ×

तिब्बत के एक अग्रणी वैद्य का नाम है **चीन रोब नोबो।** ल्हासा के (प्राचीन) आतुरालय के वे प्रधान चिकित्सक हैं। उनका शिक्षण (उपर्युक्त) वैद्यकशाला में हुआ था। ईश्वर के अंश भाग ही नहीं किन्तु सजीव ईश्वर माने जाने वाले दलाई लामा के वह निज चिकित्सक हैं। (जान बूझकर स्वयं परमेश्वर को भी चिकित्सा करानी पड़े इसमें तिब्बतियों को कुछ भी अनौचित्य नहीं प्रतीत होता)। चिकित्सा-शास्त्र का विद्यालय ३०० वर्षों से चल रहा है, जबकि आतुरालय १९१५ में चालू हुआ। इन दोनों स्थलों पर साधुओं को ही चिकित्सा-शास्त्र सिखाया जाता है।

श्री विनिङ्गटन ने एक संपूर्ण दिन वैद्य चिनरोब के साथ बिताया था। वे लोग जिस कमरे में बैठे थे वहाँ रङ्गीन चित्र थे और प्रतिकृतियाँ भी थीं। शरीर के अन्तर्गत उपाङ्गों का अवास्तविक स्थलों पर निर्देश करते हुए चित्र थे। रचना शारीर सिखाने के लिए शवच्छेद आवश्यक न था, किन्तु उक्त चित्र और प्रतिकृतियाँ उनके लिए प्रर्याप्त थे।

इन चित्रों में दिखाया गया था कि रक्ताभिसरण शरीर की दाहिनी ओर होता है और पित्ताभिसरण बाँयी ओर। पुरुष का हृदय और स्त्री का हृदय पृथक्-पृथक् स्थलों पर होते हैं। एक चित्रावली में गर्भाधान और प्रसव की विशदता की गई थी। इसका आरम्भ युवक-युवती के मिलन से होता दिखाया गया था। एक अन्य चित्र में कतिपय शस्त्र दिखाए गये थे। परन्तु, लामा-धर्म शस्त्र क्रिया की अनुज्ञा नहीं देता, कारण, शरीर का छेदन एक पाप है।

प्रत्येक रोगी के दोनों हाथों में तीन प्रकार की नाड़ियाँ होती हैं। इनमें प्रत्येक शरीर के विभिन्न अवयवों से आती हैं।

तिब्बत के पाँच सौ साधु वैद्य केवल प्रधान साधुओं धनवानों तथा सैनिकों का उपचार करते हैं। चिकित्सक होने के लिए पंद्रह वर्ष का शिक्षण आवश्यक है। इसमें नौ वर्ष चिकित्सा-शास्त्र के चार ग्रंथ कण्ठस्थ करने में लगते हैं। वे एक ही दिन में शास्त्रों को कण्ठस्थ कर सकें ऐसी तीव्र स्मरण-शक्ति आवश्यक मानी जाती है। परीक्षा लेते समय परीक्षक द्वारा उच्चारित एकाध पंक्ति से संबद्ध श्लोकों की परम्परा जो बोल सके वही वैद्य बन सकता है। नाड़ी-परीक्षा, दर्शन मात्र से मूत्र की परीक्षा, नेत्र-परीक्षा और रोग-निदान भी शाला में सिखाया जाता है। साथ ही ग्रहविद्या का शिक्षण अनिवार्य है; कारण, अशुभ काल पर रोग की परीक्षा, औषध-योजना, योग-निर्माण या औषध का अङ्गिकार आदि अकिंचित्कर होते हैं।

तिब्बत की प्रणाली के अनुसार गर्भ उदर में ३८ सप्ताह रहता है। रोग-निदान का आरम्भ उस समय से ही होता है। निदान के लिए छः वस्तुओं की परीक्षा की जाती है : **नाड़ी, नेत्र, कर्ण, जिह्वा, वर्ण** और **मल**। यह परीक्षा होने के अनन्तर प्रार्थनाओं और औषधों की योजना की जाती है।

वैद्य चिनरोब ने श्री विनिङ्गटन को कहा कि, रोगी की मृत्यु के लिए वैद्य उत्तरदायी है। भगवान बुद्ध सर्वज्ञ हैं; और शास्त्रों का संपूर्ण ज्ञाता वैद्य शास्त्राज्ञा का यथावत् पालन करे तो रोगी कदापि मर नहीं सकता। शास्त्रों में चिकित्सा-शास्त्र का समग्र ज्ञान निरूपित है। रोगी मरता है तो वैद्य शास्त्रों को पुनः पारायण कर उसने क्या भूल की थी यह ढूंढ़ निकालता है।

चिकित्साशास्त्र का प्रथम ग्रन्थ २००० वर्ष पूर्व लिखा गया था। इसके लेखक विद्वान् ईश्वर के ही एक अवतार थे। मूल ग्रन्थ का विस्तार उनके पश्चात् एक अन्य वैद्य ने किया था।

नाड़ी से होते निदान की विशदता करने में वैद्य चिनरोब ने आनाकानी की थी, ऐसा श्री विनिङ्गटन लिखते हैं। "नाड़ी परीक्षा प्रातः सूर्योदय के समय ही यथार्थ हो सकती है।" तथापि श्री विनिङ्गटन की नाड़ी वैद्य चिनरोब ने देखी थी। लेखक वैद्य के सामने बैठ और बायीं कोहनी जानु पर टेक कर उन्होंने अपनी नाड़ी दिखाई। चिनरोब ने अपने दाहिने हाथ की तीन अगुलियाँ लेखक की कलाई पर सावधानी से रखी। उन्होंने मौन रहकर गिनती की, और अपने श्वासोच्छ्वास की संख्या से नाड़ी की गति की तुलना की और लेखक की ओर सस्मित नेत्रों से देखा। उनका निदान था कि, लेखक में उष्णता की अधिकता थी और जल अत्यल्प था। यह निदान यथार्थ था, कारण, पिछली रात को योजित एक बड़े भोज में लेखक ने अत्यधिक मद्यपान किया था।

चिनरोब ने समझाया कि, प्राणी और वनस्पति मात्र पाँच तत्त्वों से बने हुए हैं : **धातु, काष्ठ, जल, अग्नि** और **पृथ्वी**। इनमें प्रथम से दूसरे की, दूसरे से तीसरे की इस क्रम से शक्ति अल्प है। इन पञ्चतत्त्वों को सम रखना ही चिकित्साशास्त्र का मुख्य सिद्धान्त है। उदाहरणतया, किसी व्यक्ति में अग्नि की क्षीणता हो तो वह जल तत्त्व से यथेष्ट कार्य नहीं कर सकता। वार्धक्य में जिसके शरीर में अग्नि तत्त्व का क्षय हो जाए ऐसे व्यक्ति कृश शरीर, दुर्बल, वक्र-पाद, और स्थूल शिर वाले होते हैं। उपचारार्थ पर्वतों की सूर्याभिमुख अधित्यकाओं में उगनेवाली वनौषधियों और स्वेदन द्वारा इस व्यक्तिमें अग्नि तत्त्व की वृद्धि की जा सकती है।

श्री विनिङ्गटन ने प्रश्न किया—आप एपेण्डिसाइटिस का निदान कर सकते हैं? उत्तर मिला हाँ। एपेण्डिसाइटिस के जीर्ण रोगियों को अच्छा किया जा सकता है। परन्तु रोग की तरुणावस्था के लिए कोई औषध नहीं।

रुग्णालय की निर्माणशाला में समग्र एशिया की ६००० वनस्पतियाँ हैं। अन्य कई प्रकार की जानकारी भी प्राप्त हुई। कृत्रिम संतति-निग्रह अवैध है। क्षय के लिए गैंडे का शृङ्ग रामबाण है। फिरङ्ग की चिकित्सा के लिए पारद वर्षों से उपयोग में आ रहा है। सम्मोहिनी का ज्ञान तिब्बती चिकित्साशास्त्र को २००० वर्ष से है।

यह सम्मोहिनी टटुरा (धतूरा ?) के क्षुप के मूल में से निकाली जाती है। अनुभवी व्यक्ति द्वारा इसका शास्त्रानुसार उपयोग किया जाय तो कोई बारह घण्टे तक सम्मोहन रह सकता है। शरीर के भार, वय और प्रकृति के आधार पर इसकी मात्रा का निश्चय किया जाता है। परन्तु तिब्बती धर्मशास्त्रों में केवल एक शस्त्रकर्म के लिए धतूरे

का उपयोग मान्य है। अङ्ग च्छेद—संप्रति योग्य शस्त्रों के अभाव में यह शस्त्रकर्म भी किया नहीं जाता।

सभी औषध-कल्पों का निर्माण शुक्ल पक्ष में होना चाहिए। कारण, चन्द्रमा की कला के विकास के साथ रोगी की प्रकृति भी विकसित होती है। परन्तु, कारणवशात् अन्य समय में निर्माण करना ही पड़े तो निश्चित शुभ दिन तिब्बती पञ्चाङ्ग से ढूँढ़ कर उस दिन करना चाहिए। तिब्बती मन्तव्यानुसार पृथ्वी समतल है और इसका विभाजन चन्द्र की परिक्रमाओं के अनुसार होता है।

विनिङ्गटन ने पूछा—रोगी का देहान्त वैद्य के अज्ञान के कारण अथवा शास्त्र-विषयक उसकी भ्रान्ति के कारण हो तो क्या वैद्य को किसी प्रकार का दण्ड दिया जा सकता है? चिनरोव का उत्तर था: चिकित्सक की वृत्ति प्रामाणिक हो तो उसको दण्ड नहीं हो सकता। भूल मनुष्य मात्र से होती है। परन्तु वैद्य का मानस ही अपराध हो तो उसे विधान के अनुसार दण्ड दिया जा सकता है। रोगी को जिस बात से अनिष्ट हो वह वर्ज्य है।

इन दिनों चिकित्साशास्त्र के विषय में भी तिब्बती में प्रचण्ड मनोमन्थन चल रहा है। विनिङ्गटन ने पूछा—न्यूमोनिया की क्या चिकित्सा आप करते हैं, (इस रोग से तिब्बती में बहुत प्राणहानि होती है।)

चिनरोव ने स्वीकार किया कि अब इस रोग के लिए ऑरीओमाइसीन के सूचिवेध दिए जाते हैं। अपरंच, देशीशाला में से उत्तीर्ण हुए साधु-वैद्य नये आतुरालय में तीन वर्ष के पाठ्यक्रम द्वारा मुख्यतया सर्जरी और गुह्य रोगों का ज्ञान सम्पादन करते हैं। तिब्बती चिकित्सक मानते हैं कि वे कायचिकित्सा में पारङ्गत हैं, नवीन विज्ञान से उन्हें केवल सर्जरी सीखनी है।

× × ×

अस्तित्व में आए हुए नए आतुरालयों का भारी संख्या में लाभ लिया जा रहा है। स्वास्थ्य विषयक भविष्य बताने वाले ज्योतिषी भी, अब रोगियों को नए आतुरालय का लाभ उठाने की प्रेरणा देते हैं। दक्षिणा लेकर आतुरालय में जाने के लिए शुभ मुहुर्त्त वे निकाल देते हैं।

नए आतुरालय में एक देशी चिकित्सक गुह्य रोगों पर अनुभव प्राप्त कर रहे हैं। उन्होंने विनिङ्गटन को बताया कि हमारे चिकित्साशास्त्र में फिरङ्ग की चिकित्सा के लिए पारद का उपयोग पुरातन काल से हो रहा है। पारद का निर्माण एक श्वेत चूर्ण के रूप में होता है। इसके सेवन के पश्चात् रोगी को अपना मुख एक घण्टा खुला रखना पड़ता है, ऐसा न करनेवाले रोगी के दाँत बाहर निकल आते हैं। इस चिकित्सा से फिरङ्ग शुष्क हो जाता है और रोगी स्वस्थ हुआ माना जाता है। यह देशी चिकित्सक नये शिक्षण के प्रति अधिक झुकाव रखने लगा था।

अन्य एक साधु वैद्य सर्जरी का शिक्षण ले रहा है। उसने कहा: पहले उदर के अन्तर्गत आघात के रोगियों को केवल विश्राम की सलाह दी जाती थी। प्रायः उसकी मृत्यु हो जाती थी। तिब्बती शास्त्र में शरीर में अपनी ओर से छेदन करने का (शस्त्रकर्म करने का) निषेध किया गया है। फोड़ा भी काटा नहीं जा सकता। शवच्छेद तो होना ही नहीं। इस चिकित्सक ने उदर के अन्तरावयवों को नए आतुरालय में शस्त्रकर्मों के प्रसंग में प्रथम बार ही देखा था।

ल्हासा के लोह पर्वत के शिखर पर स्थित देशी विद्यालय वास्तव में एक मन्दिर है। इसके नाम का अर्थ है: बहुजन-हित। ल्हासा के निवासी उच्चवर्गीय साधुओं और बड़े अधिकारियों की चिकित्सा के लिए साधु-वैद्य इस विद्यालय में तैयार किए जाते हैं।

इस विद्यालय में ६४ विद्यार्थी शास्त्रों का शिक्षण ले रहे हैं। विद्यालय की मीनार से प्रत्येक मास में तीन बार विजयदेव को लक्ष्य में रख बारह फीट लम्बी दुन्दुभियों के नाद किए जाते हैं। विद्यालय में एक भी रोगी नहीं होता।

नव्य चिकित्सा का लाभ स्वयं साधु ले रहे हैं, इसलिए जनता भी उसके प्रति प्रवृत्त हुई है।

## एक्युपंक्चर

इस लेख में चीन आदि देशों में प्रचलित चिकित्सा-पद्धति 'एक्युपंक्चर' का निर्देश आया है। आयुर्वेद महाविद्यालय सूरत के एक प्राध्यापक **श्री शान्ताराम भाई** ने इस पद्धति पर अंग्रेजी में आए एक लेख के आधार पर इस पद्धति का संक्षिप्त परिचय लेखक को भेजा है। उपयोगी होने से उसे यहाँ दिया जाता है।

एक्युपंक्चर तथा मोक्सीवश्चन इन दोनों कर्मों का चीनी नाम है: **चेनचीउ**। इन कर्मों के मूल उद्गम स्थान का इतिहास आज तक जाना नहीं जा सका। परन्तु ईसा से ३००० वर्ष पूर्व तक यह चिकित्सा प्रचलित थी,

इसके प्रमाण उपलब्ध हैं। उस काल में धातुओं का सामान्य उपयोग ज्ञात न होने से, एक्युपंक्चर के लिए पत्थर की सुइयों का व्यवहार होता था। ईसवी सन् १७४४ तक इन कर्मों में परिवर्तन होते रहे। परन्तु पश्चात् उनकी अधोगति हुई। जनरल चांग काई शेक के राज्य काल में चीनी चिकित्सा-शास्त्र पर प्रतिबन्ध होने से, ये कर्म बहुत पिछड़ गए।

चीन के वर्तमान तन्त्र ने प्राचीन चीनी चिकित्सा-शास्त्र के पुनरुज्जीवन की सुविधा की है। पेकिङ्ग के रेडक्रोस आतुरालय में काम करनेवाले रशियन डॉक्टरों ने चीन के प्राचीन चिकित्सा-शास्त्र का गम्भीर अध्ययन आरम्भ किया है। डॉक्टरों की विनति को स्वीकार कर चीनी चिकित्सकों ने उनके शिक्षणार्थ चीनी चिकित्सा-शास्त्र की कक्षाएँ चालू की हैं।

जानकारी प्राप्त हुई है कि, अनेक विध रोगों पर उपर्युक्त चेनचीउ चिकित्सा का उपयोग हो रहा है। कहा जाता है कि नाड़ीसूत्रों के रोगों और अन्य मानस रोगों में इस चिकित्सा से अद्‌भुत परिणाम प्राप्त हुए हैं। सूतिका रोगों तथा शालाक्य रोगों में भी इस चिकित्सा के अच्छे परिणाम आते हैं। एक रशियन डॉक्टर ने तो अपने शरीर पर अनुभव करके इस चिकित्सा की परीक्षा की है।

उपर्युक्त डॉक्टर को इक्कीस दिन से दाहिने पैर में गृध्रसी और रेटीक्युलाइटिस के कारण तीव्र शूल रहता था। पैर में अन्दर कुछ ज़ोर से खिंचता हो ऐसी उनको प्रतीति होती थी। घुटने से पैर मोड़ना उनके लिए दुःसह था। सतत सेक करते रहने पर भी कोई लाभ न था। चीनी चिकित्सा-पद्धति के निष्णात डॉ० कुओ के कहने से उन्होंने एक्युपंक्चर आजमाने का निश्चय किया।

रोगी के दाहिने नितम्ब के एक निश्चित भाग में सुई भोंकी गई। आरम्भ में रोगी को कोई लाभ न हुआ, परन्तु कुछ समय पश्चात् उस नितम्ब में एक प्रकार की सुखद उष्णता का अनुभव होने लगा। क्रमशः गृध्रसी से पीड़ित पैर में जैसे पिपीलिका-सञ्चार हो रहा हो ऐसी संज्ञा होने लगी और मूल वेदना शान्त होती गई। पश्चात्, चीनी चिकित्सक ने बारह सेन्टीमीटर लम्बी एक सुवर्णमय सुई उसी स्थल पर भोंक दी और सुई को ऊपर-नीचे हिलाया, तथापि रोगी को किसी प्रकार की वेदना न हुई। जहाँ, सुई भोंकी थी उस भाग की त्वचा सुषुप्त हो गई और वेदना शान्त हो गई। दस-पन्द्रह मिनट पश्चात् जब सुई निकाली गई तो उस भाग की सुषुप्ति का नाश हुआ और जो अधिक ऊष्मा प्रतीत होती थी वह भी अल्प हो गई। इतने अल्प काल में अपने आप को स्वस्थ पा कर रशियन डॉक्टर स्तब्ध हो गए। वहाँ उपस्थित उनके डॉक्टर मित्रों को विशेष विस्मय हुआ।

एक अन्य प्रसंग में, ट्राइजेमिनल न्युराइटिस के तीव्र शिरःशूल से पीड़ित एक रोगी के ललाट में भिन्न-भिन्न स्थलों पर दो बार सुई चुभाई गई। उसको एक साथ पाँच-पाँच सुइयाँ लगाई गईं। इस चिकित्सा के अनन्तर उनकी वेदना निर्मूल हो गई है। ऐसा रोगी कहता है।

इस चिकित्सा में ऐसी क्या विशिष्टता है, जो निश्चित परिणाम लाती है? एक से अधिक स्थलों पर शरीर में सुइयाँ चुभोने से वेदना कैसे शान्त होती होगी? इन सब की व्याख्या के लिए जो आधुनिक ज्ञान डॉक्टरों के पास है, उसकी किसी भी कसौटी पर एक्युपंक्चर को कसा नहीं जा सकता। यह कोई मिकेनीकल स्टिम्युलेशन वा रिफ्लेक्टरी रीएक्शन भी नहीं है। कारण, एक तीसरे प्रसंग में दन्त-शूल के रोगी की चिकित्सा के लिए उसके बाहु के मध्य भाग में सुई भोंकने से वेदना लुप्त हो गई थी। कई बार, अमुक निश्चित लक्षणों के लिए एक से अधिक सुइयाँ शरीर में अनेक स्थलों पर चुभोनी पड़ती हैं। इतना ही नहीं, किन्तु सुई चुभोने के पश्चात् शरीर में कुछ मिनिटों से चौबीस घण्टों तक रहने दिया जाता है। इसका परिणाम अवश्य प्राप्त होता ही है। क्षय जैसे रोगों में भी यह चिकित्सा यशस्वी हो रही है।

एक्युपंक्चर के लिए चीनी चिकित्सा-शास्त्र ने शरीर के विविध स्थल शतियों के अनुभव के बाद निश्चित किए हैं। कहा जाता है, पुराकाल में यह चिकित्सा सीखने के लिए कांसे की प्रतिमाएँ बनाई जाती थीं। पश्चात्, प्रतिमाओं पर मोम का आवरण चढ़ाया जाता था। मूल प्रतिमा में सुई भोंकने के निश्चित छिद्र होते थे, जो मोम के लेप से बन्द हुए होते थे। प्रतिमा के अन्दर जल भर दिया जाता था। विद्यार्थी को सुई चुभोने का स्थल बताने का आदेश करने पर वह उचित स्थल पर सुई चुभोता तभी जलोत्सर्ग होता और विद्यार्थी सफल माना जाता। शरीर का सविस्तर परिचय कराने के लिए यह प्रथा अनुकरणीय है।

जैसे एक्युपंक्चर समझने के लिए आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र के पास कोई भूमिका नहीं है, वैसे एक्युपंक्चर का आविष्कार कैसे हुआ होगा यह जानने के लिए भी प्राचीन चिकित्सा-शास्त्र में कोई आधार दृष्टिगोचर नहीं होता। जो हो, इस समय तो एक्युपंक्चर और मोक्सीबश्चन को विज्ञान की कसौटी पर चढ़ाने के लिए चीन और रशियन के डॉक्टर तैयार हो गये हैं।

—गुजराती से अनुवाद—**वैद्य शरत्कुमारव्यास**

# क्या द्विविध ओज-कल्पना श्री चक्रपाणिकृत है ?

**वैद्य शंकरलाल शर्मा, भिषगाचार्य**

विगत कुछ समय से "सचित्र आयुर्वेद" में ओज के विषय में चर्चा हो रही है। इस चर्चा में दो पक्ष हैं—**प्रथम पूर्व पक्ष और दूसरा सिद्धान्त पक्ष।** पूर्व पक्ष का मत है कि ओज एक ही है, पर-अपर ओज के दो भेद श्री चक्रपाणि की कल्पना है। सिद्धान्त पक्ष का मत है कि ओज के दो भेद श्री चक्रपाणि की ही कल्पना नहीं है, अपितु यह मूल संहिता ग्रन्थों में ही निर्दिष्ट है।

सितम्बर के "सचित्र आयुर्वेद" में पूर्व पक्ष की तरफ से एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसके पढ़ने से मालूम हुआ है कि ओज क्या है? इस विषय में विभिन्न विद्वान् लेखकों के पृथक्-पृथक् मत हैं। अतः मेरी इच्छा भी हुई कि मैं इस विषय में कुछ लिखूँ। इसी भावना से प्रेरित होकर ओज के विषय में कुछ लिखने को उद्यत हुआ हूँ।

ओज का वर्णन करते हुए आचार्य सुश्रुत ने लिखा है—"तत्र रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तत् खल्वोजस्तदेव बलमित्युच्यते, स्वशास्त्र सिद्धान्तात्।" इसकी व्याख्या में आचार्य डल्हन ने लिखा है कि—"परम् उत्कृष्टम्, तेज इव तेजः, तेजो घृतं वा, घृतं यथा कृत्स्नक्षीरस्नेहस्तथैवोजोऽपि कृत्स्नधातुः स्नेह इत्यर्थः। "यत्परं तेज इति यदुत्कृष्टं सारः" इत्यन्ये व्याख्यानयन्ति। तन्त्रान्तरे तु ओजः शब्देन रसोऽप्युच्यते, जीव शोणितमपि ओजः शब्देनामनन्ति केचित्, उष्माणमपि ओजः शब्देनापरे वदन्ति।" उक्त लक्षण में पर शब्द का उत्कृष्ट अर्थ किया है, तेज शब्द से तेज जैसी कान्ति (चमक) मानी है अथवा तेज शब्द से घृत जैसी चिकनाई वाला पदार्थ का ग्रहण किया है, जैसे दूध में घृत की चिकनाई रहती है वैसे ही रस-रक्तादि शुक्रान्त धातुओं में जो एक तरह की चिकनाई है, **वह ओज है।** दूसरे आचार्यों के मत में "यत् परं तेजः" का अर्थ उत्कृष्ट सार किया है। भिन्न-भिन्न तन्त्रान्तरों में ओज शब्द से कहीं रस का, कहीं जीवशोणित का—तो कहीं उष्मा को भी ओज माना है।

उक्त सूत्र की आचार्य डल्हन ने जो व्याख्या लिखी है तथा मूल पाठ के अनुसार भी "ओज" का यही अर्थ निकलता है कि रस से लेकर शुक्र तक की जो सात धातु हमारे शरीर में विद्यमान हैं उनमें जो एक तरह की कान्ति (चमक) है, **वही ओज है।** वस्तुतः यह है भी ठीक। कारण यह है कि हम लोग प्रायः हमेशा देखते ही हैं कि ओज या क्रान्ति उन्हीं व्यक्तियों में मिलती है जिनका शारीरिक संगठन ठीक है, अर्थात् जो पूर्ण स्वस्थ हैं, जिनकी धातुओं का मान आयुर्वेदानुसार है।

**ओज के गुण**—ओज सोमगुणयुक्त है, चिकना है, शीत है, स्थिर अर्थात् शरीर के अवयवों में स्थिरता लानेवाला है, फैलनेवाला है, श्रेष्ठगुणयुक्त है, कोमल है, ल्हेसदार है, प्राणों का स्थान है अर्थात् शरीर में ओज के रहने से ही यह जीवित रह सकता है, ओज सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है। यदि ओज न रहे तो शरीर की स्थिति न रहे। जैसा कि लिखा भी है—

ओजः सोमात्मकं स्निग्धं शुक्लं शीतं स्थिरं सरम्।
विविक्तं मृदु मृत्स्नञ्च प्राणायतनमुत्तमम्॥
देहः सावयवस्तेन व्याप्तो भवति देहिनाम्।
तदभावाच्च शीर्यन्ते शरीराणि शरीरिणाम्॥

ऊपर महर्षि सुश्रुत मतानुसार ओज के विषय में विचार किया गया है। अब आगे महर्षि अग्निवेश के मतानुसार विचार किया जाता है।

ओज के विषय में अग्निवेश (चरक) संहिता में आगे लिखे अनुसार वर्णन किया है—"हृदि तिष्ठति यत् शुद्धं रक्तमीषत् सपीतकम्। ओजः शरीरे संख्यातं तन्नाशान्ना विनश्यति।" इसकी व्याख्या में श्री चक्रपाणिजी ने लिखा है कि—"शुद्धं अर्थात् श्वेतं रक्तमीषत् किञ्चिद्रक्तं, सपीतकम्—ईषत् पीतम्, तेजः शुक्लवर्णमोजः, रक्तपीतौ तु वर्णाविन्नानुगतौ। किंवा, इषदित्यल्पप्रमाणमोजः, तेनाष्टबिन्दुकमोज इति दर्शयति—यदुक्तं तन्त्रान्तरे "प्राणाश्रयस्यौजसोऽष्टौ विन्दव हृदयाश्रया" इति। इस व्याख्या में ओज का श्वेतवर्ण बतलाया, लाल और पीतवर्ण साधारण रूप में है। अथवा इषत् पद अल्प प्रमाणे का वाचक है, जिससे हृदय में रहनेवाला ओज आठ बिन्दु प्रमाण

है, क्योंकि तन्त्रान्तर में प्राणाश्रय ओज के आठ बिन्दु लिखे हैं। यह है मूल पद्य की श्री चक्रपाणिकृत व्याख्या का अल्प अंश। यदि मूलपाठ पर विचार किया जावे तो यह व्याख्या युक्तिसंगत है, केवल कल्पना ही नहीं है। मूल पद्य में "हृदितिष्ठति" जो पद है इसमें हृदि सप्तम्यन्त प्रयोग है और "तिष्ठति" क्रिया का अर्थ "स्थिर रहता है" होता है, जिससे उक्त पद्य का अर्थ यह हुआ कि—"श्वेत और पीत रक्तवर्णवाली जो अल्पवस्तु हृदय में स्थिर रहती है, वह ओज है, उसके नष्ट होने से मनुष्य मर जाता है"। इससे यह स्पष्ट हो गया कि अल्प प्रमाण अर्थात् अष्ट विन्द्वात्मक ओज हृदय में ही रहता है, वह शरीर में अन्यत्र नहीं जाता; क्योंकि हृदय को अपने कार्य में सशक्त बनाना उसी अष्टविन्द्वात्मक ओज का काम है, मस्तिष्क का हृदय से गति सम्बन्धी कोई सम्बन्ध नहीं है। व्याधि-विज्ञान के रचयिता डा० श्री आशानन्दजी पञ्चरत्न ने भी लिखा है कि—"हृदय की गति का सम्बन्ध मस्तिष्क से नहीं है।" हृदय में गति क्यों होती है? उसका प्रेरक कौन है? इसका निश्चय विकसित आधुनिक विज्ञान भी नहीं कर सका किन्तु आयुर्वेद स्पष्ट कहता है कि "तन्नाशान्नाविनश्यति" अर्थात् हृदयस्थ ओज के नष्ट होने से मनुष्य मर जाता है। कारण यह है कि ओज के नष्ट होने से ही सहसा हृद्गति का अवरोध होकर "हार्टफेल" हो जाता है। प्रायः यह देखने में आता है कि देखने में भले-चंगे आदमी भी अचानक हृत्कार्यावरोध से इहलीला समाप्त कर देते हैं, यह उसी हृदयस्थ ओज के क्षय से होता है।

पूर्व पक्षवाले यहाँ यह शंका कर सकते हैं कि अष्टविन्द्वात्मक ओज हृदय में किस जगह रहता है? इसका उत्तर यह है कि जीवन-व्यापार हृदय की ठीक क्रिया पर ही निर्भर है और हृदय की ठीक क्रिया सूक्ष्म ओज पर निर्भर है। वह सूक्ष्म ओज हृदय के सभी विभागों में स्थायी रूप से विद्यमान है और उसका पोषण स्थूल अर्द्धाञ्जलि परिमित ओज से होता रहता है। मधुमेह में भी इसी स्थूल ओज का क्षय होता है, अष्टविन्द्वात्मक का नहीं। आगे चरक शारीर स्थान में लिखा है कि, "तावदेव श्लेष्मलस्यौजसः" अर्थात् श्लेष्मगुणयुक्त ओज का अर्धाञ्जलि प्रमाण है, यह ओजोवाही धमनियों में सञ्चरण करता हुआ शरीर का पोषण करता रहता है, इसीको लक्ष्य में रख कर कहा है कि—

"तेन मूलेन महता महामूलामता दश।
ओजोवहाः शरीरेऽस्मिन् विधम्यन्ते समन्ततः।।
येनौजसा वर्तयन्ति प्रीणिताःसर्वजन्तवः।
यदृते सर्वभूतानां जीवितं नावतिष्ठते।।
यत्सारमादौ गर्भस्य यत्तद् गर्भरसाद्रसः।
सम्वर्तमानं हृदयं समाविशति यत्पुरा।।
यस्य नाशात्तु नाशोऽस्ति धारि यद् हृदयाश्रितम्।
च० सू० अ० ३०

ओज को वहन करनेवाली दश धमनियाँ हृदय से युक्त होने के कारण महामूला (जिनका मूल महत् अर्थात् हृदय है) हैं, ये शरीर में चारों तरफ ओज पहुँचाती हैं। जिस ओज से तृप्त हो कर सभी प्राणी अपना जीवन-चक्र चलाते हैं, जिसके न रहने से किसी भी प्राणी का जीवन स्थिर नहीं रह सकता है। जो ओज गर्भ का भी सार है अर्थात् शुक्र-शोणित में भी ओज की विद्यमानता से ही गर्भ-स्थापक गुण आता है एवं जो ओज गर्भ रस अर्थात् कलल रूप, उसमें भी सारभूत है और जब हृदय बन जाता है, तो पहले हृदय में प्रविष्ट होता है और फिर सारे शरीर में फैलता है। तात्पर्य यह हुआ कि जो ओज गर्भ की तीनों अवस्थाओं में भी विद्यमान रहता है। जिसके नाश होने से अवश्य ही नाश हो जाता है और जो ओज हृदय में रहता है। उक्त पद्यों की संस्कृत व्याख्या में श्री चक्रपाणिजी ने लिखा है—"सामान्येन द्विविधमप्योजो ग्राह्यम्" अर्थात् सामान्यतया दोनों (पर, अपर) ओजों का ग्रहण करना चाहिये।

उक्त विवरण से भी ओज का द्वैविध्य सिद्ध होता है अर्थात् सूक्ष्म या पर ओज हृदयाश्रित है और स्थूल या अपर ओज ओजोवह धमनियों में रहता है। इस तरह आयुर्वेद सिद्धान्तानुसार दो तरह के ओज की सिद्धि होती है। इसको समझने या समझाने में किसी कठिनाई का अनुभव नहीं होता।

यदि ओज एक ही होता तो पहले "हृदि तिष्ठति यत् शुद्धम्" यह लिख कर पुनः "श्लेष्मलस्यौजसोऽर्धाञ्जलि" यह क्यों लिखा। दूसरी बात यह है कि ओज के सूत्रस्थान में जो गुण लिखे हैं वे मद्य प्रकरण में जो गुण वर्णित हैं, उनसे भिन्न हैं। कारण यह है कि हृदय में जो ओज रहता है वह जीव शोणित के कारण कुछ लाल एवं पीत वर्ण का है और चिकित्सा स्थान में श्लेष्मल ओज के गुणों का वर्णन किया गया है। हृदय में यदि ओज की स्थिति

न मानी जावे तो वह क्रियाशील किस तरह रह सकता है, क्योंकि अपर ओज तो शरीर में भ्रमण करता रहता है—हृदय में तो बहुत स्वल्पकाल रहता है। अतएव, द्विविध ओज की कल्पना आर्षसम्मत है केवल चक्रपाणि जी की कल्पना नहीं है।

पूर्वपक्ष के मत में ओज का अर्थ पोषक रस है, किन्तु पोषक रस को ओज मानना उचित नहीं, क्योंकि शास्त्र में पोषक रस और ओज का पृथक्-पृथक् निर्देश है, जैसा कि चरक में लिखा है—"पुष्यन्ति त्वाहाररसात् रस-रुधिर-मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रौजांसि" इसकी व्याख्या में श्री चक्रपाणि ने लिखा है कि—अत्र "यद्यपि ओजः सप्तधातुसाररूपम्, तेन धातुग्रहणेनैव लभ्यते, तथापि प्राणधारणकर्तृत्वेन पृथक् पठति।" इस व्याख्या से ओज का अर्थ होता है सातो धातुओं का सार। इसी तरह पहले भी लिखा जा चुका है कि जैसे दूध में घृत साररूप में है, वैसे ही धातुओं में जो स्नेह या चिकनाई है, वह ओज है। यह ठीक है कि पोषक रस ही सभी धातुओं का पोषणकर्ता अवश्य है, किन्तु इतना मात्र से ही उसकी ओज संज्ञा नहीं हो सकती। पोषक रस तभी शरीर का उपकारक हो सकता है जब कि उसका प्रत्येक धात्वग्नि से समुचित पाक हो। समुचित पाक होने से जो चिकनाई प्रत्येक धातु में उत्पन्न होती है, वही ओज है।

पोषक रस और ओज का प्रमाण भी शास्त्र में भिन्न-भिन्न लिखा है। इसी तरह ओज-क्षय और रस-क्षय के लक्षण भी शास्त्र में पृथक्-पृथक् लिखे हैं। जैसे रस-क्षय के चिह्न शास्त्र में लिखे हैं—

घट्टते सहते शब्दं नोच्चैर्द्रवति शूल्यते।
हृदयं ताम्यति स्वल्पचेष्टस्यापि रसक्षये ॥६४॥
च० सू० अ० ७

इसी तरह ओजः क्षय के लक्षण निम्नलिखित हैं—

विभेति दुर्वलोऽभीक्ष्णं ध्यायति व्यथितेन्द्रियः।
दुश्छायो दुर्मनारूक्षः क्षामश्चैवौजसः क्षये ॥७३॥
च० सू० अ० १७

रस-वृद्धि और ओज-वृद्धि के लक्षण भी पृथक्-पृथक् और विभिन्न ही लिखे हैं। यदि शास्त्रकारों को पोषक रस ही ओज इष्ट होता तो वे पृथक्-पृथक् क्यों लिखते।

शास्त्र में कहीं-कहीं रस तथा रक्त एवं सौम्य श्लेष्मा के लिए भी ओज शब्द का प्रयोग आता है किन्तु उन स्थलों पर कहीं गुण साम्य से तथा कहीं कारण-कार्य भाव से समझना चाहिए। जैसे "आयुर्घृतम्" अर्थात् घृत ही आयु नहीं है परन्तु घृत के जो स्निग्धादि गुण हैं वे शरीरेन्द्रिय सत्त्वात्म संयोग आयु के लिए हितकर है।

ओज के विषय में अभी तक जो-जो विचार विद्वान् वैद्यों के प्रकाशित हुए हैं उन पर भी यहाँ विचार करना अप्रासंगिक नहीं होगा—एक विद्वान् वैद्य ओज के दो भेदों के खण्डन में सुरा का उदाहरण देते हैं, उनका कथन है कि "आचार्य सुरा प्रकरण में हृदय स्थानिक ओज का क्षय लिखते हैं और हृदय में तो आपके मत से पर ओज ही रहता है तथा उसके क्षय से मृत्यु मानते हैं" किन्तु इस विषय में मेरा नम्र निवेदन यह है कि प्रत्येक वस्तु में गुणावगुण रहते हैं। उदाहरणार्थ अन्न को ही ले लीजिये, सम मात्रा में और समय पर किया हुआ भोजन शरीर-वृद्धिकारक होता है किन्तु वही अन्न अधिक मात्रा में सेवन करने पर अजीर्ण, विसूचिकादि भयंकर रोग कारक या कभी-कभी मृत्युकारक भी हो जाता है। इसी तरह मद्य भी सम मात्रा में शरीर के लिए लाभदायक है, जैसा कि लिखा भी है—"हर्षमूर्जं बलं पुष्टिमारोग्यं पौरुषं परम्। युक्ता पीतं करोत्याशु मद्यं मदसुखावहम्" ॥६१॥ च० चि० २४ अ०। इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से गुणों का उल्लेख है परन्तु यहाँ विस्तारभय से सभी नहीं लिखे गये। वही मद्य मात्रा से अधिक पान करने पर, मात्रा की वृद्धि के अनुसार जो-जो उपद्रव करता है उन्हें तीन भागों में विभक्त किया गया है—यथा प्रथममद, द्वितीयमद, तृतीयमद,। इनमें प्रथम मद में तो कोई कष्टदायक उपद्रव नहीं होते, द्वितीयमद में प्रथम की अपेक्षा कुछ अधिक उपद्रव और तृतीयमद में मद्य की प्रकृति के अनुसार रोग या मृत्यु तक भी हो सकती है।

अब यहाँ यह विचार करना है कि मद्य हृदय में पहुँच कर पहले किस ओज पर अपना असर करता है। ओज को कफ वर्ग की वस्तु आपने भी माना है और मद्य-प्रकरण में जो ओज के गुण लिखे हैं वे भी श्लेष्मल ओज के ही लिखे हैं—अतः यह निश्चय होता है कि मद्य का असर पहले अपर ओज पर होता है। यहाँ यह ध्यान रहे कि हृदय की मांसपेशियों में तो पर ओज रहता है और अपर ओज हृदय से संयुक्त ओजोवह धमनियों द्वारा शरीर में भ्रमण करता रहता है। आपने यहाँ यह शंका की है कि कदाचित् भेदवादियों के मत में सुरा अपर ओज का ही ह्रास करती है,

पर का नहीं, पुनः आपने उत्तर में लिखा है कि देवता कभी पक्षपात नहीं करते अर्थात् आपके मत में दोनों ओजों पर सुरा अपना असर करती है किन्तु इसमें पक्षपात की क्या बात है। प्रत्येक वस्तु या द्रव्यों में अपनी-अपनी शक्ति होती है, वह वस्तु या द्रव्य अपनी शक्ति के अनुसार कार्य करता है, लिखने का तात्पर्य यह है कि पहले सुरा का असर पर ओज के श्रेष्ठ गुणों के कारण, उस पर नहीं होता। यदि सुरा प्रथम पर ओज को नष्ट कर मृत्युकारक होती है, यह बात मान ली जावे तो नीचे लिखे पद्य की संगति किस प्रकार हो सकती है—

मद्यं हृदयमाविश्य स्वगुणैरोजसो गुणान्।
दशभिः देश संक्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम् ।।२९।।
च० चि० २४ अ०

इस पद्य में आचार्य ने स्पष्ट लिखा है कि मद्य अपने लघूष्णादि दश गुणों से गुरु-शीतादि ओज के दश गुणों को क्षुब्ध (विचलित) कर मन को विकृत करता है। यहाँ मन की विकृति ही लिखी है। यदि पर ओज पर असर करती तो अवश्य ही मृत्यु होती किन्तु विकृति मात्र ही होती है। यह देखा भी जाता है कि मद्यपायी की मृत्यु साधारण मद्यपान से प्रायः नहीं होती। मृत्यु तो तभी होती है जब कि सुरा का अत्यधिक प्रयोग किया जावे या अधिक तीक्ष्ण मद्य हो, ऐसी स्थिति में तो पर ओज पर भी असर होगा ही; परन्तु पहले तो अपर ओज का नाश होगा पुनः पर ओज का नाश होते ही मृत्यु होगी। इस तरह दो ओज मानने पर कोई आपत्ति नहीं होती। आपने भी लेख के अन्त में लिखा है कि—अर्थात् "हृत्पेशीगत ओज हृदय में स्थायी रहता है, तथा धमनी वाह्य ओज प्रक्षिप्त होता रहता है।" आपके द्वारा यह मानने पर क्या यहाँ यह प्रश्न नहीं होगा कि आपके मत से सुरा किस ओज पर अपना असर करेगी?

दूसरे लेखक महोदय ने हृदयावरण के मध्य में जो एक श्लेष्मल तरल होता है, उसे पर ओज की संज्ञा दी है, परन्तु यह पर ओज नहीं है, क्योंकि यह हृदय के अन्दर नहीं है, वल्कि दोनों आवरणों के मध्य में है। यदि यह क्षीण हो जावे तो हृत्प्रदेश में पीड़ा तो अवश्य हो सकती है, परन्तु मृत्यु नहीं हो सकती। यदि यह तरल बढ़ जावे तो हृद्रोग या अन्य रोग हो जाता है, किन्तु ओज के बढ़ने पर तो कोई बीमारी नहीं होती और शरीर में वल, प्रसन्नता, कान्ति आदि बढ़ते हैं। इस तरह का तरल सन्धियों में तथा फुफ्फुसावरणादि में भी विद्यमान रहता है। उन स्थानों में भी इसके ह्रास से पीड़ा आदि उपद्रव और वृद्धि से उरस्तोयादि रोग हो जाते हैं अतः इसको पर-ओज मानना उचित नहीं।

इसी तरह सीरम एल्ब्यूमीन को स्थूल ओज मानते हैं। यद्यपि कुछ विद्वान् वैद्य इसे ओज संज्ञा तो अवश्य देते हैं, किन्तु ओज के लक्षण जो शास्त्र में लिखे हैं वे सब-के-सब उसमें नहीं मिलते। एल्ब्यूमीन प्रायः मूत्र में आता है, तब उसका क्षय समझना चाहिये परन्तु ओज-क्षय होने पर जो लक्षण होते हैं वे उक्त द्रव के क्षय होने पर दृष्टिगोचर नहीं होते हैं अतः इसे भी ओज नहीं कहा जा सकता।

तीसरे लेखक महोदय ओज के विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि चरक, सुश्रुतादि महर्षियों ने "ओज नाम की कोई वस्तु है" यह वेदों के अध्ययन से जाना था, उन्होंने शवच्छेद करके प्रत्यक्ष अनुभव नहीं किया, अतएव, उन्हें यह ज्ञान नहीं था कि वृषण ग्रन्थियाँ शुक्र बनाती हैं।" इस विषय में मेरा नम्र निवेदन है कि यदि उनको (चरक, सुश्रुत को) यह ज्ञान नहीं था तो वे "शुक्रवहानां स्रोतसां वृषणौमूलं शेफश्च" च० वि० अ० ५। अर्थात् शुक्रवाही स्रोतों का मूल वृषण (अण्डकोश) एवं शेफ (मूत्रेन्द्रिय) है एवं "शुक्रवहे द्वे तयोर्मूलं वृषणौ स्तनौ च, तत्र विद्धस्य क्लीवता, चिरात् प्रसेको रक्तशुक्रता च" सु० शा० अ० ९। अर्थात् शुक्र को वहन करनेवाले दो स्रोत हैं, उनका मूल वृषण एवं स्तन हैं, उनके विद्ध होने पर मनुष्य नपुंसक हो जाता है या शुक्र का स्राव विरकाल से होता है अथवा शुक्र में रक्त मिला हुआ आता है, अपना उक्त मत कैसे व्यक्त करते। उक्त विवरण से स्पष्ट हो गया कि यह शुक्र है न कि ओज। यह बात अवश्य है कि जो व्यक्ति अपने शुक्र की रक्षा करता है उसका शरीर तेजस्वी बन जाता है। क्योंकि शुक्राग्नि से शुक्र का पाक हो कर उससे भी ओज तो बनता ही है यह बात आयुर्वेदसम्मत भी है अतएव, कई आचार्य ओज को शुक्र की उपधातु भी मानते हैं। इस विषय में श्री चक्रपाणिजी का मत यह है कि—"शुक्रन्तु ओजो जनकत्वात् धात्वन्तर्गतमेव, ओजस्त्विह न धातुषु नाप्युपधातुषु पठितं तस्य सप्तधातुसाररूपतया सप्तधात्वन्तर्गतत्वादेव, अतएव तस्याग्निरपि पृथङ्नोक्तः।" तात्पर्य यह है कि शुक्र ओजोजनक होने के कारण धात्वन्तर्गत ही है, किन्तु ओज न तो धातु है और न उपधातु, किन्तु वह ओज सातो धातुओं में सार रूप में विद्यमान है। इससे

पूरा स्पष्ट हो गया कि ओज सातों धातुओं में सार रूप में विद्यमान रहता है, वही अपर ओज है और पर-ओज हृदय में रहता है ।

चतुर्थ लेखक महोदय ने मेरुदण्ड सह त्रिपथगुहा को हृदय संज्ञा दी है और सुषुम्ना के अन्तर्गत जो तरल है उसको ओज माना है; किन्तु हृदय शब्द, जिसका कि वर्णन आयुर्वेदीय संहिताओं में विभिन्न स्थानों पर आया है, वह वक्षगुहागत हृदय का ही वाचक है, ऐसा मूल ग्रन्थ से तथा श्री चक्रपाणिकृत व्याख्या से एवं सर्वाङ्गसुन्दरा व्याख्या में प्रमाण रूप से उद्धृत पद्य से मालूम पड़ता है । एतदर्थ “क्या हृदय शब्द मस्तिष्क का भी वाचक है ?” शीर्षक संस्कृत का मेरा लेख देखें जो आयुर्वेद महा-सम्मेलन पत्रिका के १० वें अङ्क में प्रकाशित हुआ है । सुषुम्नान्तर्गत तरल को ओज संज्ञा नहीं दी जा सकती, क्योंकि वह हृदय में नहीं है । वह कुछ क्षारीय है, जब कि ओज मधुर स्वभाववाला है जैसा कि चरक में लिखा है—‘ओजः पुनर्मधुरस्वभावं, तद् यदा वायुः रौक्ष्यात् कषायत्वेनाभिसंसृज्य मूत्राशयेऽभिवहति, तदा मधुमेहं करोति ।’ च० नि० ४ अ० । अर्थात् ओज मधुर होता है, उस ओज को वायु रूक्षता के कारण कषाय रस युक्त करके जब मूत्राशय में ले जाता है तब मधुमेह रोग हो जाता है ।” लेखक महोदय ने जिसे ओज लिखा है क्या वह उक्त चरक प्रतिपादित ओज से साम्य रखता है ? नहीं । सुषुम्ना में जो तरल है, वह एक तरह का श्लेष्मल द्रव है, जिसे ओज कहना युक्तिसंगत नहीं है । लेख का संक्षिप्त रूप—“ओज दो हैं, यह मूल चरक में ही निर्दिष्ट है, “हृदि तिष्ठति यत् शुद्धम्” यह पर-ओज तथा “तावदेव श्लेष्मलस्यौजसः” यह अपर ओज है । दो ओज की कल्पना श्री चक्रपाणिकृत नहीं है, उन्होंने तो केवल सरलता से समझाने के लिए विशद व्याख्या की है ।

विभिन्न लेखक महोदयों ने शरीर के विभिन्न तरलों को जो ओज संज्ञा दी है, वे ओज नहीं हैं, क्योंकि आयुर्वेदोक्त ओज के लक्षण उनमें पूरे नहीं मिलते ।

पोषक रस भी ओज नहीं है । यदि पोषक रस को ओज माना जावे तो ओज का पृथक् वर्णन क्यों किया गया ? रस-क्षय और ओज-क्षय के लक्षण भी शास्त्र में पृथक्-पृथक् लिखे हैं ।

यदि एक ही ओज माना जावे तो हृदय की गति किस तरह सम्भव हो सकेगी, क्योंकि हृदय की गति का सम्बन्ध मस्तिष्क से नहीं है, स्वतन्त्र रूप से हृदय की गतियाँ हृदय में ही उत्पन्न होती हैं, यह आधुनिक विज्ञान भी मानता है । इसलिए हृदय की गति सम्यक् प्रकार से होती रहे जिससे सम्पूर्ण शरीर क्रियाशील रहता है, एतदर्थ हृदय में पृथक् ओज की सत्ता माननी ही होगी । शरीर में भी पृथक् ओज की सत्ता माननी ही पड़ेगी, क्योंकि शरीर में भी बिना ओज के सौन्दर्य, बुद्धि आदि गुणों का अभाव रहेगा । अतः दोनों ओजों की सत्ता माननी चाहिये ।

**निदान और चिकित्सा में लाभ**—आयुर्वेद त्रैकालिकी चिकित्सा मानता है जैसा कि चरक शारीर स्थान में महर्षि पुनर्वसु ने अपने शिष्य अग्निवेश को उपदेश दिया है । प्रत्येक ऋतु में जो नियमादि बतलाये हैं और साधारण ऋतुओं में जो शोधन-क्रम बतलाया है, वह सब वर्तमान तथा भावी व्याधि निवृत्यर्थ लिखा है । एवमेव, ओज के विषय में भी महर्षि ने लिखा है कि ओज की रक्षा करते हुए प्रत्येक मनुष्य ऐसा कोई कार्य न करे जिससे मन को कष्ट हो एवं जो वस्तु हृदय के लिए लाभप्रद हो और ओज के लिए भी हितकर हो तथा स्रोतों को भी ठीक करनेवाला आहार-विहार सेवन करना चाहिये, मन को शान्त रखना चाहिये और तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के उपाय करने चाहिएँ । मन में जितनी अशान्ति रहेगी उतनी ही शरीर के लिए हानि है । काम, क्रोध, लोभादि से मन में विकृति आती है और उससे ओज जैसे उत्कृष्ट शरीर-तत्त्व को हानि पहुँचती है इसीलिए चरक में लिखा है—

तन्महत्ता महामूला तच्चौजः परिरक्षता ।
परिहार्या विशेषेण मनसो दुःखहेतवः ।।
हृद्यं यत् स्याद् यदौजस्यं स्रोतसां यत् प्रसादनम् ।
तत्तत्सेव्यं प्रयत्नेन प्रशमो ज्ञानमेव च ।।

—च० सू० ३ अ०

श्री गो० रा० चमड़िया औषधालय
पो० फतेहपुर (शेखावाटी) जि० सीकर
(राजस्थान)

# ओज-परिचय

वैद्य भगवती प्रसाद

ओज क्या वस्तु है ? ओज की उत्पत्ति कहाँ से होती है—इस सम्बन्ध में वैद्य-समाज के भीतर काफी मतभेद चल रहा है। "ओजपूर्ण हृदय" शीर्षक प्रथम लेख में उसके स्वरूप का वर्णन संक्षेप में किया था। फिर "सचित्र आयुर्वेद" के अक्टूबर के अङ्क में "ओज की खोज" शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था ; जिसमें ओज को रक्तस्थ द्राक्ष-शर्करा (Glucose) मान लिया गया है। लेखक लेख लिखने में सिद्धहस्त हैं। लेख में द्राक्ष-शर्करा को सिद्ध करने के लिए कई प्रमाण भी उन्होंने उद्धृत किये हैं। फिर भी आयुर्वेद के प्राचीन शास्त्र के वचनों के संरक्षणार्थ दुःखपूर्वक मुझे कहना पड़ता है कि विद्वान् लेखक को शास्त्र का तात्पर्यार्थ समझ में नहीं आया होगा, या अधिक विचार करने का समय नहीं मिला होगा।

द्राक्षशर्करा को ओज कहना, यह विचार शिथिल-मूलवाला है। उस लेख में प्रमाण रूप से उद्धृत किये गए, उन शास्त्र वचनों का तात्पर्य इस लेख में देखने पर लेखक समझ सकेंगे। एवं अन्य सामान्य बोधवाले वैद्य-बन्धु और विद्यार्थीवर्ग भी ओज के सच्चे स्वरूप को जान सकेंगे।

"ओज की खोज" में जो वचन प्रमाण रूप से दर्शाये गए हैं, उनका विचार प्रारम्भ में करेंगे। फिर आवश्यक स्पष्टीकरण और विचारों की दृढ़ता के लिए इतर प्रमाण उपस्थित किए जाँयगे।

सुश्रुत संहिता सूत्र स्थान अध्याय १५ में लिखा है कि—

रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तत् खल्वोजस्तदेव बलमित्युच्यते, स्वशास्त्र सिद्धान्तात् ।।

तत्र बलेन स्थिरोपचितमांसता सर्वचेष्टास्वप्रतिघातः, स्वरवर्णप्रसादो, बाह्यानामाभ्यन्तराणां च करणानामात्मकार्य प्रतिपत्तिर्भवति ।।२०।।

भवन्ति चात्रः—

ओजः सोमात्मकं स्निग्धं शुक्लं शीतं स्थिरं सरम् ।
विविक्तं मृदु मृत्स्नं च प्राणायतनमुत्तमम् ।।
देहः सावयवस्तेन व्याप्तो भवति देहिनः ।
तदभावाच्च शीर्यन्ते शरीराणि शरीरिणाम् ।।
अभिघातात् क्षयात् कोपच्छोकाद् ध्यानाच्छ्रमात् क्षुधः ।
ओजः संक्षीयते ह्येभ्यो धातुग्रहणनिःसृतम् ।
तेजः समीरितं तस्माद् विस्रंसयति देहिनः ।।

तत्र विस्रंसो व्यापत् क्षय इति (त्रयो दोषाः) लिङ्गानि भवन्ति

(१) संधि विश्लेषो, गात्राणां सदनं, दोषच्यवनं, क्रियासंनिरोधाश्च विस्रंसे ।

(२) स्तब्ध गुरुगात्रता, वातशोफो, वर्णभेदो, ग्लानिस्तन्द्रा, निद्रा च व्यापन्ने ।

(३) मूर्च्छा, मांसक्षयो, मोहः, प्रलापो, मरणमिति च क्षये ।।

**ओज परिचय**—रस से शुक्र पर्यन्त सब धातुओं के भीतर जो उत्कृष्ट तेज (जीवनीय शक्ति प्रधान सार) है, उसी को ओज कहते हैं। वह सुश्रुत संहिता के सिद्धान्तानुसार चिकित्सा-दृष्टि से बल भी कहलाता है (रस, रक्त, मांस, मेदा, मज्जा, अस्थि, वीर्य, इन सब में जीवनशक्ति-धारक ओज रहा है)।

**ओज कार्य**—बलरूप ओज के प्रभाव से मांस की दृढ़ता होना (मांस के दृढ़ होने पर इतर धातु भी दृढ़ रहती है)। सब प्रकार के शारीरिक व्यापार अप्रतिहत (प्रतिबंध रहित) होना, स्वर और वर्ण निर्मल रहना तथा बाह्य करण (पञ्च कर्मेन्द्रियाँ) और आभ्यन्तर करण (पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च प्राण, मन और बुद्धि), इन सब से अपने-अपने व्यापार में योग्य प्रवृत्ति कराना, ये सब नियमित होते हैं।

**ओजस्वरूप**—ओज सौम्य, स्निग्ध (स्नेह गुणयुक्त), शुक्ल (स्वच्छ), शीतल, स्थिर, देहस्थैर्यंकर, सर (प्रसरणशील), विविक्त (स्वच्छ), मृदु (अवयवों को कोमल रखनेवाला और स्वयं भी कोमल), मृत्स्न (पिच्छिल) और श्रेष्ठ प्राणायतन (पञ्च प्राण विद्युच्छक्ति–Electricity) का श्रेष्ठ आधार रूप या अष्टाङ्ग संग्रहकार के शब्दों में जीवितास्पद है।

पञ्च प्राणों का निवास ओजपूर्ण हृदय में है। इस सम्बन्ध में विशेष विचार "वातदोष के स्थान और कार्य" शीर्षक लेख में अगले मास में दर्शाया जायगा।

**ओज का स्थान और कार्य**—इस ओज से सब जीवों के सर्वाङ्ग व्याप्त रहते हैं। जिस स्थान में इसका अभाव हो, उसका नाश (अपक्षय या ह्रास) हो जाता है। यदि समस्त देह में अभाव हो जाय, तो देह (जीवन) का ही विनाश हो जाता है। कारण, विद्युत् प्रधान ओज ही देह का धारक है।

**ओज-क्षय के हेतु**—अभिघात (शारीरिक अथवा मानसिक आघात-विस्रंस का हेतु विशेषतः शारीरिक अभिघात), क्षय (धातुओं का ह्रास या अपक्षय) तथा कोप, ध्यान (चिन्ता), श्रम, क्षुधा (अनशन)—इन सब का अतियोग एवं धातुग्रहणनिःसरण (ओज धातु को ग्रहण करनेवाले (धारक) हृदय से उसका निःसरण चाहे एक समय में अत्यधिक हो या शनैः-शनैः निःसरण), इन सब कारणों से ओज का क्षय होता है।

**ओज के क्षय-प्रकार और लक्षण**—ओज-क्षय के ३ प्रकार हैं। विस्रंस, व्यापत् और क्षय। (१) विस्रंस अर्थात् चोट लगने पर ओज (ब्रह्मवारि Ceribro-spinal fluid) निकल जाना (या सुषुम्ना काण्ड में छिद्र करके ओज को निकाल देना), ऐसा होने पर संधिविश्लेष (सांधाओं की शिथिलता), अंगों की थकावट, वातादि दोषों की विकृति (वात, पित्त, कफ, तीनों संरक्षकों या एक या दो का बलहीन हो जाना), बुद्धि, मन, वाणी और शरीर को क्रिया करने में प्रतिबन्ध होना, ये लक्षण उपस्थित होते हैं। (२) वातादि दोष या रस-रक्तादि दूष्य की विकृति जन्य व्यापत् होने पर देहावयवों में स्तब्धता, अंगों का भारीपन, वातिक-शोथ (बहुधा शरीर का फूल जाना), वर्ण परिवर्तन (श्यामता आ जाना), ग्लानि, तन्द्रा (इन्द्रियों की अकर्मण्यता) और निद्रावृद्धि, ये चिह्न प्रतीत होते हैं (३) ओजक्षयावस्था (अपकर्ष, Degeneration पूति भाव की प्राप्ति) होने पर मूर्च्छा (Syncope), मांसक्षय (मांस को पूति अवस्था की प्राप्ति हो जाना), मोह (वैचित्य), प्रलाप (असम्बद्ध भाषण) और मृत्यु, ये सब लक्षण विकार के बल के अनुसार दृष्टिगोचर होते हैं।

**ओजक्षय लक्षण**—चरक संहिता, सूत्रस्थान, अध्याय १७ में दर्शाये हैं कि:—

विभेति दुर्बलोऽभीक्ष्णं ध्यायति व्यथितेन्द्रियः।
दुश्छायोदुर्मना रूक्षः क्षामश्चैवोजसः क्षये॥

ओजक्षय पीड़ित भयभीत, दुर्बल, निरन्तर चिन्तामग्न, इन्द्रियों के गोलकों में व्यथा, देह के भिन्न-भिन्न भाग में वेदना हो जाना, विवर्ण (श्याम वर्ण), संशयग्रस्त, दुराग्रही, रूक्ष और क्षीण प्रतीत होता है। यह लक्षण पूर्णांश में (Obsessive Neurasthenia) रोग के लक्षणों के साथ मिलता है, यह गत लेख में दर्शाया गया था।

सुश्रुत संहिता में आगे चिकित्सार्थ मार्ग-दर्शन भी कराया है। विस्रंस और व्यापद्, इन दोनों प्रकारों में ओजवर्द्धक विशेष क्रिया करना इष्ट है। आहार-विहार और औषधोपचार, तीनों के अनुकूल होने पर ओज-वृद्धि हो जाती है एवं ओज की रचना भी योग्य बन जाती है; किन्तु क्षयावस्था की सम्प्राप्ति होने पर यदि अति मूढ़ता आ गई हो, तो उस रोगी का त्याग करना चाहिए (चाहे असाध्य कह कर फिर रोगी की प्रसन्नतार्थ उपचार करते रहें)।

जीवनीय गुण की औषधियाँ, सुवर्ण, मुक्ता, प्रवाल, विशेष संस्कृत पारद योग आदि; नया पोषक अन्न, दूध, ताजे फल, घृत, तैल आदि; विशुद्ध जलवायु का सेवन, ये सब ओज-वृद्धि में सहायक हैं। मानसिक प्रसन्नता, ब्रह्मचर्य का पालन, दुर्व्यसनों का अभाव, इन सब की भी सहायता की पूर्ण आवश्यकता है।

दीर्घकाल पर्यन्त जमीन में दबाया हुआ अन्न, कई वर्षों का पुराना अन्न, सूखा मांस, कृत्रिम घृत, बासी भोजन, डिब्बों में बन्द किया हुआ पुराना भोजन और प्रतिकूल जलवायु में निवास, इन सब कारणों से योग्य ओजोत्पत्ति नहीं होती। खनिज अम्ल (टार्टरिक, साइट्रिक, सलफ्यूरिक आदि एसिड), मंद विषयुक्त भोजन, परस्पर विरोधी अन्न, ये सब ओज को हानि पहुँचाने वाले हैं।

प्राणिज या खनिज विष-सेवन, आम विष, कृमि जन्य विष, पूय, मधुमेहज विष, कुष्ठ, क्षय, फिरंग आदि विभिन्न रोगों के कीटाणुओं से उत्पन्न विष, इनकी प्राप्ति होने पर ओज की रचना विकृति (Lessening of Cerebro-spinal fluid) अपक्षय-पूतिभाव की प्राप्ति होती है।

ब्रह्मचर्य का नाश, अनशन, चिन्ता आदि कारणों से भी ओज में से जीवनीय शक्ति का ह्रास होता है। इन सब कारणों को संक्षेप में दर्शाने के लिए भगवान् धन्वन्तरिजी ने विस्रंस, व्यापत् और क्षय, ये तीन प्रकार दर्शाये हैं।

ओज के भीतर प्राणों के पोषक आहार (जीवनीयशक्ति) का निवास स्थान है। इस ओज में से विशष अंश रक्त, मांस आदि धातुओं को स्वास्थ्य की रक्षा के लिए दिया जाता है। विभिन्न वातसंस्थान-वातवाहिनियाँ आदि के व्यापारार्थ प्रतिदिन कुछ अंश खर्च होता रहता है एवं देह के संरक्षणार्थ उनमें जीवनीय शक्ति को सबल रखनी पड़ती है। शेष ओज हृदय (मस्तिष्कस्थ हृदय) के विशेष भाग दो त्रिपथ गुहा (Lateral Ventricles) और उनसे सम्बन्ध वाली गुहाओं में संगृहीत रहता है। जिसमें से आवश्यकतानुसार सर्वदा उपयोग होता रहता है।

इस ओज का आकर्षण रस धातु में से होता रहता है। ऐसा प्राचीन आचार्यों का वचन है।

यथा—

रसधातोः परं धाम पच्यमानात् प्रसीदति।
सौम्यस्वभाव रक्ताग्रे यत्तदोजः प्रकीर्तितम्॥

रस में से रक्तधातु का निर्माण होने के पहले पच्यमान अवस्था वाली रस धातु में से सौम्य स्वभाव वाला सार जो मस्तिष्कस्थ हृदय में आकर्षित हो जाता है, वह ओज कहलाता है।

सामान्यतः स्वस्थावस्था में हृदय के भीतर अर्धाञ्जलि (१५० c.c. करीब ५ औंस) ओज रहता है, खर्च के अनुरूप रस धातु में से प्राप्त होता रहता है। क्वचित् शीर्ष जलोदर (Hydrocephalus) रोग की संप्राप्ति हो जाय, तो ५०० c.c. या अधिक ओज संगृहीत हो जाता है; किन्तु वह ओज विकृत होता है, शुद्ध स्वरूप में नहीं रहता। अन्य रोगों से भी हृदयस्थ ओज में न्यूनाधिकता होती रहती है।

यह हृदय ओजपूर्ण रहता है, ऐसा अन्य प्राचीन आचार्य का वचन अष्टाङ्ग हृदय सूत्रस्थान अध्याय १२—श्लोक १५ की टीका में लिखा है—

हृदयं मनसः स्थानमोजसश्चिन्तितस्य च।
मांसपेशीमयो रक्तपद्माकारमधोमुखम्॥
योगिनो यत्र पश्यन्ति सम्यग् ज्योतिः समाहिताः।
रसो यः स्वच्छतां यातः स तत्रैवावतिष्ठते॥
ततो व्यानेन विक्षिप्तः कृत्स्नं देहं प्रपद्यते॥

मन, ओज और चित्त (चेतन) का निवास स्थान हृदय है। वह मांसपेशी का बना है। रक्त और अधोमुख पद्माकार-सा है। योगीजन जिस स्थान में ज्योति (प्राणवायु के संयोग से उत्पन्न प्रकाश का) दर्शन करते रहते हैं; जिसमें रस (परिवर्तित ओज) स्वच्छ हो कर आकर्षित होता रहता है तथा भरा रहता है, फिर जहाँ से व्यानवायु रक्तवाहिनियाँ, वातवाहिनियाँ आदि के द्वारा देह के समस्त अङ्ग-उपाङ्गों में पहुँचाता रहता है—उस ओजपूर्ण स्थान को हृदय संज्ञा दी है।

इन्द्रिय व्यापार-शास्त्र का विवेचन करनेवाली नव्य चिकित्सा-शास्त्र की पुस्तक Handbook of Physiology and Biochemistry में लिखा है कि—

The chief absorption occurs after the fluid has left the ventricles. i.e, while it is the subarachnoid space, and takes place mainly into the blood-stream. A smaller fraction is absorbed into the perineural lymphatics of the cranial and spinal nerves. The exact path of absorption into the blood-vessels is, according to Weed, through the arachnoidal villi which project as blind processes of the arachnoid into the sinuses of the dura matter, specially superior longtitudinal.

ओज का प्रवाह जो गुहाओं में आकर्षित हुआ है, निःसृत होने पर उसका मुख्य शोषण होता है, जहाँ मध्यमा वृत्ति (Arachnoid membrane) और बहिर्वृति (Dura mater) के मध्य में रहा हुआ अवकाश है, उस ब्रह्मोदकुल्या (Subarchnoid cavity) स्थान में शोषण होता है। यह ओज विशेषतः रक्तस्राव के भीतर स्थान लेता है। इसकी अपेक्षा न्यूनांश में शोषण मस्तिष्क और सुषुम्नास्थ वातवाहिनियों से सम्बन्ध वाली और चारों ओर लगी हुई लसीका वाहिनियों में होता है, शोषण का सच्चा मार्ग रक्तवाहिनियों से सम्बन्ध वाला है। यह शोषण जिस तरह घास की भूमि में से जल का शोषण करता है, उस तरह ब्रह्मकुल्या की श्लैष्मिक कला में से रसांकुरिकाओं (Arachnoidal villi) द्वारा होता है। बहिर्वृति की सिराकुल्या (Sinuses) के भीतर में यह क्रिया ब्रह्मकुल्या की अज्ञात प्रवृत्ति सदृश है। एवं यह विशेषतः उत्तरा अनुदीर्घा सीता (Superior longitudinal) से सम्बन्ध वाली होने की मान्यता है।

प्राचीन आचार्यों और नव्य पाश्चात्य चिकित्साशास्त्रियों का कथन, जहाँतक उक्त ओज को स्वीकार करने का प्रश्न है दोनों एक सा है। इस सम्बन्ध में विचर करने के लिए विद्वानों से मेरा नम्र निवेदन है जिससे कि विषय का अधिकाधिक निरूपण व विश्लेषण हो सके।

# आयुर्वेद को राष्ट्रीय-चिकित्सा घोषित किया जाय

## बैद्यनाथ-संस्थान द्वारा आयुर्वेद-पक्ष में देशव्यापी आन्दोलन

## स्थान-स्थान पर जन-सभाओं में प्रस्ताव स्वीकृत

**गत धन्वन्तरि-जयन्ती के अवसर पर गांव-गांव और नगर-नगर में श्री बैद्यनाथ प्रतिष्ठान द्वारा आयुर्वेद के पक्ष में जनमत प्रदर्शन करने के लिए विभिन्न आयोजन किए गये थे, जिनमें प्रभातफेरियों, जुलूसों और जनसभाओं के कार्यक्रम रखे गये थे। सभाओं में सर्वत्र यह प्रस्ताव स्वीकृत हुए कि "आयुर्वेद को ही भारत की राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति घोषित किया जाय तथा आयुर्वेद को समुन्नत करने के लिए आवश्यक कार्यवाही की जाय।" 'सचित्र आयुर्वेद' के गतांक में प्रस्तावों का पूरा विवरण तथा कई राज्यों में अनुष्ठित सभाओं के विवरण प्रकाशित किए जा चुके हैं। शेष स्थानों के समाचारों को स्थानाभाववश संक्षेप में यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है।**

## पश्चिम बंगाल

### रानीगंज (बर्दवान) में समारोह

रानीगंज स्थित श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के बिक्री-केन्द्र में श्री बनवारी लाल भालोटिया के सभापतित्व में धन्वन्तरि-जयन्ती-समारोह धूमधाम से मनाया गया। प्रधान अतिथि का आसन पश्चिम बंग विधान सभा के सदस्य श्री आनंद गोपाल मुखर्जी ने ग्रहण किया। कुमारी विजय लक्ष्मी के वन्देमातरम् गान के बाद पं० केशव प्रसाद चौबे द्वारा स्वागत-भाषण पढ़ा गया। श्री हाफिज़ मुहम्मद रेज़ा, श्री आर० वी० चौबे तथा श्री बाल गंगाधर शर्मा ने आयुर्वेद, धन्वन्तरि जयन्ती तथा यूनानी चिकित्सा-पद्धति पर भिन्न-भिन्न रूप से प्रकाश डाला। श्री शमशुल हक ने "आयुर्वेद और धन्वन्तरि" शीर्षक कविता पढ़ी। प्रधान अतिथि श्री आनन्द गोपाल मुखर्जी ने कहा कि आयुर्वेद के आदि प्रवर्तक श्री धन्वन्तरि भगवान ने वास्तव में इस चिकित्सा-पद्धति द्वारा देश का जितना कल्याण किया है, वह सराहनीय है।

उन्होंने कहा कि वैद्यों को संगठित हो आयुर्वेद के उत्थान में सारी शक्ति लगा देनी चाहिये। सभा में सर्वसम्मति से दो प्रस्ताव स्वीकृत किये गये, जिसकी प्रतियां स्वास्थ्य मंत्री भारत सरकार तथा स्वास्थ्य मंत्री पश्चिम बंग सरकार के पास भेज दी गयीं। अंत में सभापति जी ने अपने भाषण द्वारा जनता तथा वैद्यों को संगठित हो धन्वन्तरि जयन्ती को सार्वजनिक रूप देने का अनुरोध किया। सभापति के भाषण के बाद प्रसाद-वितरण कर सभा की कार्यवाही शेष की गई।

### कुल्टी में वैद्य-सभा

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के विशिष्ट एजेन्ट, श्री बिन्देश्वरी सिंह, हरिनन्दन सिंह, केन्दुआ बाजार कुल्टी के आयोजन पर स्थानीय केन्दुआ बाजार में खूब धूम-धाम से धन्वन्तरि जयन्ती मनाई गयी। इस अवसर पर भगवान धन्वन्तरि की विधिवत् पूजा के बाद, एक सभा का आयोजन किया गया, जिसका सभापतित्व श्री दया सिंह ने किया। श्री बिन्देश्वरी सिंह, हरिनन्दन सिंह की ओर से स्वागत भाषण किया गया, जिसमें आयुर्वेद और तिब्ब चिकित्सा-पद्धति का एकीकरण, सरकार की वैमुखी-वृत्ति, पञ्चवर्षीय योजना में आयुर्वेद, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० द्वारा किये गये शोधकार्यों एवं प्रयत्नों की चर्चा की गयी। भाषण के क्रम में श्री ब्रजनन्दन शास्त्री वैद्य ने आयुर्वेद और पश्चिमी चिकित्सा-पद्धतियों का तुलनात्मक विवेचन करते हुए आयुर्वेद की महत्ता बतलाई। श्री राम बड़ाई ओझा ने आयुर्वेद के प्रति सरकार की उपेक्षा-पूर्ण नीति की आलोचना की। श्री दया सिंह जी ने सभापति के पद से भाषण करते हुए आयुर्वेद-शास्त्र की प्रशंसा की। आपने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० द्वारा आयुर्वेद के पुनरुत्थान के कार्यों की सराहना

करते हुए, स्थानीय विशिष्ट एजेन्ट श्री विन्देश्वरी सिंह, हरिनन्दन सिंह को धन्यवाद दिया। धन्यवाद-ज्ञापन के बाद प्रसाद-वितरण हुआ और सभा की कार्यवाही समाप्त की गयी।

## खड़गपुर में समारोह

खड़गपुर में बैद्यनाथ औषधियों के विशिष्ट एजेन्ट श्री शर्मा औषधालय के तत्वावधान में धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर एक वैद्य-सभा का आयोजन किया गया। सभा में स्थानीय वैद्य-हकीम-डाक्टर तथा जनसाधारण बड़ी संख्या में उपस्थित थे। सर्वप्रथम भगवान धन्वन्तरि का पूजन हुआ। तत्पश्चात श्री के० बी० कौल के सभापतित्व में सभा की कार्यवाही आरम्भ हुई। केन्द्र-व्यवस्थापक ने स्वागत-भाषण पढ़ा। इसके बाद कई प्रमुख वक्ताओं ने अपने भाषण में आयुर्वेद की विविध समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए वैद्यों से एकताबद्ध होकर आयुर्वेदोत्थान के लिए प्रयास करने का अनुरोध किया। सभापति जी ने अपने भाषण में आयुर्वेद की महत्ता बताते हुए कहा कि आज के युग में आयुर्वेद के गुणों को प्रत्यक्ष करके दिखाना सर्वाधिक आवश्यक है। उन्होंने आयुर्वेद में अनुसन्धान करने पर विशेष जोर दिया। अन्त में दोनों प्रस्ताव स्वीकृत हुए और धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई।

## पुरूलिया में समारोह

पुरूलिया स्थित बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के बिक्री-केन्द्र में श्री किरीटी भूषण मुखर्जी के सभापतित्व में श्री धन्वन्तरि-जयन्ती-महोत्सव खूब उत्साह एवं उमंग के साथ मनाया गया। श्री हनुमान दास मल्ल द्वारा स्वागत-भाषण पढ़ा गया और दोनों प्रस्ताव पास करके महामान्य राष्ट्रपति महोदय और केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री तथा प्रांतीय स्वास्थ्य मंत्री महोदय को भेज दिये गये। कई वैद्यों के सामयिक भाषणोपरान्त प्रसाद-वितरण कर सभा समाप्त हुई।

## माल्दा में सभा

माल्दा में श्री सत्य फार्मेसी के तत्वावधान में धन्वन्तरि-जयन्ती के अवसर पर एक वैद्य-सभा का आयोजन किया गया। सभा में स्थानीय वैद्य-हकीम-डाक्टर तथा जनसाधारण बड़ी संख्या में उपस्थित थे। सर्वप्रथम भगवान धन्वन्तरि का पूजन हुआ। तत्पश्चात कविराज व्रजगोपाल सेन के सभापतित्व में सभा की कार्यवाही आरम्भ हुई। श्री रामस्वरूप जोशी ने स्वागत-भाषण पढ़ा। इसके बाद कई प्रमुख वक्ताओं ने अपने भाषण में आयुर्वेद की विविध समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए वैद्यों से एकताबद्ध होकर आयुर्वेदोत्थान के लिए प्रयास करने का अनुरोध किया। सभापति जी ने अपने भाषण में आयुर्वेद की महत्ता बताते हुए कहा कि आज के युग में आयुर्वेद के गुणों को प्रत्यक्ष करके दिखाना सर्वाधिक आवश्यक है। उन्होंने आयुर्वेद में अनुसन्धान करने पर विशेष जोर दिया। अन्त में दोनों प्रस्ताव स्वीकृत हुए और धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई।

# बम्बई राज्य

## नागपुर में भव्य समारोह

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के ग्रेट नाग रोड स्थित नव-निर्मित कार्यालय भवन में आयुर्वेद-विज्ञान के प्रवर्तक भगवान् श्री धन्वन्तरि जी की जयन्ती विशाल समारोह के रूप में मनायी गयी। समारोह का उद्घाटन नागपुर नगर-निगम के महापौर श्री मदनगोपाल अग्रवाल ने किया तथा अध्यक्षता प्रोफेसर ठाकुर बलवन्त सिंह जी ने की। इसमें नगर के समस्त वैद्यों के अलावा प्रतिष्ठित नागरिकों, सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं, प्रशासनाधिकारी वर्ग, साहित्यकार, पत्रकार आदि ने भी बहुत बड़ी संख्या में भाग लिया। सुप्रसिद्ध राष्ट्रसन्त श्री तुकड़ो जी महाराज ने भी विशिष्ट सम्मान्य अतिथि के रूप में पधार कर समारोह को सुशोभित किया।

सर्वप्रथम महापौर श्री मदनगोपाल अग्रवाल ने भगवान् श्री धन्वन्तरि की प्रतिमा का अनावरण कर समारोह का उद्घाटन किया। इस अवसर पर आपने वैद्य-समाज से श्री धन्वन्तरि जी के लोक-कल्याण के आदर्श ध्येय का अनुसरण कर आयुर्वेद को, वर्तमान परिस्थितियों को परिलक्षित रखते हुए, प्रगतिशील बनाने का महत्त्वपूर्ण सुझाव दिया। विशिष्ट लाभदायी योगों को गुप्त रखने की

निन्दनीय परिपाटी से। हुई आयुर्वेद की क्षति की चर्चा करते हुए आपने वैद्य-समाज को विशिष्ट योगों को प्रकट कर उनसे संसार को लाभ पहुँचाने की उदार भावना को अपनाने का परामर्श दिया। आयुर्वेदीय औषधियों को यथार्थ में गुणकारी बनाने एवं उनमें एकरूपता लाने के लिये श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० और इसी प्रकार की उच्चस्तर पर कार्य करने वाली अन्य संस्थाओं के परस्पर सहयोग से औषधियों के निर्माण का एक स्तर निश्चित कर उसके अनुसार कार्य करने की सलाह दी। आयुर्वेदिक चिकित्सा की उपयोगिता और श्रेष्ठता को स्वीकार करते हुए आपने जनता तथा सरकार से आयुर्वेद की उपयोगिता से पूरा लाभ उठाने का अनुरोध किया।

तदनन्तर अध्यक्ष श्री बलवन्त सिंह जी ने श्री धन्वन्तरि जी का षोडशोपचार पूजन किया। उपस्थित सभी लोगों ने धन्वन्तरि जी के प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति प्रकट की। कार्यालय के प्रधान वैद्य पं० मोहनलाल चतुर्वेदी ने सुललित संस्कृत श्लोकों से भगवान् श्री धन्वन्तरि जी की वन्दना की। इसके बाद व्यवस्थापक श्री ग्यारसीलाल जी मोदी ने स्वागत-भाषण पढ़ा।

आदरणीय राष्ट्रसन्त तुकड़ोजी महाराज ने श्री धन्वन्तरि जी के गुणों पर प्रकाश डालते हुए उनके द्वारा निर्मित आयुर्वेद को मानव-कल्याण का महान् कार्य बतलाया। आपने आयुर्वेद का अन्य शास्त्रों तथा जन-जीवन से गहरा सम्बन्ध सिद्ध करते हुए कुछ आश्चर्यजनक गुणकारी वनस्पतियों की प्रत्यक्षदर्शी घटनाओं को सुनाया। आपने श्री वैद्यनाथ आ० भवन प्रा० लि० के कार्य-विस्तार पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए इस संस्था द्वारा की जाने वाली सार्वजनिक सेवाओं की भी सराहना की। आपने कहा कि सरकार को भी आयुर्वेद को सहयोग देना चाहिये। सरकार के सहयोग से आयुर्वेद अवश्य आगे बढ़ेगा। आपने कहा कि वैद्य-समाज को पहले संगठित होकर आयुर्वेद की उन्नति की योजना बनानी चाहिये, जिसके अनुसार हम आयुर्वेद को आगे बढ़ा सकें। श्री अनिरूद्धाचार्य वेंकटाचार्य महाराज ने अपने भाषण में अथर्ववेद के साथ आयुर्वेद का सम्बन्ध बताते हुए आयुर्वेद की सोपपत्तिक व्याख्या की तथा उसके सिद्धान्तों की उपयोगिता प्रकट करते हुए मानव-स्वास्थ्य-रक्षा के लिये उनको अपनाने की आवश्यकता बतलायी। आपने कहा कि भौतिक युग के यन्त्रों पर निर्भर न होकर हमें अपनी शक्ति का सदुपयोग और पुरानी परम्पराओं पर अमल करना चाहिये। संसार की सुख-शान्ति के लिये भारतीय अध्यात्मवाद बहुत उच्च वस्तु है और इसी प्रकार अध्यात्मवाद से अनुप्राणित आयुर्वेद-विज्ञान भी विश्व-आरोग्य के लिये बहुत श्रेष्ठ है।

विदर्भक्षेत्र के आयुर्वेद उपसञ्चालक श्री रामेश्वरदयाल जी साहित्यायुर्वेदाचार्य ने अपने भाषण में "आयुर्वेद क्या है?" इसका बहुत तत्त्वपूर्ण विवेचन किया और वैद्यसमाज को अन्य लोगों द्वारा की गयी वैज्ञानिक प्रगति को भी उदार-भावना से अपनाकर लाभ उठाने का सुझाव दिया एवं आयुर्वेदिक क्षेत्र में अनुसन्धानों द्वारा सामयिक स्वास्थ्य समस्याओं को हल करते रहने का सत्परामर्श दिया। आज के वैज्ञानिक चकाचौंध के युग में आयुर्वेद को आगे बढ़ाने के लिये वैद्य-समाज की कठिन परिश्रम करने की आवश्यकता आपने बतलायी। वैद्यराज पं० शिवकरणजी शर्मा छांगाणी, आयुर्वेदाचार्य ने एलोपैथी चिकित्सा की तुलना में आयुर्वेद को शुद्ध चिकित्सा सिद्ध करते हुए उसे रोग को समूल नष्ट करने में सक्षम एवं एक विकार को नष्ट कर अन्य विकार की उत्पत्तिकारक दोष से रहित श्रेष्ठ पद्धति बतलाया और कहा कि यही कारण है कि सदियों तक राज्य से उपेक्षित रहने पर भी आयुर्वेद आज भी जीवित है और अपनी उपयोगिता को प्रकट कर रहा है। आपने आयुर्वेद के आठो अङ्गों की समुन्नति के लिये वैद्य-समाज का ध्यान आकर्षित करते हुए आयुर्वेदीय शल्य-चिकित्सा के महत्त्व को प्रकट किया तथा विदेशी चिकित्साओं को आत्मसात कर उनसे लाभ उठाने का आग्रह किया।

श्री मोहनलाल वैद्य ने स्वतन्त्रता-प्राप्ति में नेताओं के साथ कन्धे मिलाकर वैद्य-समाज द्वारा सहयोग दिये जाने का उल्लेख करते हुए कहा कि आयुर्वेद की समुन्नति के लिये हमारी राष्ट्रीय सरकार समुचित ध्यान नहीं दे रही है। वैद्य पं० दीनदयालु तिवारी, आयुर्वेदाचार्य ने आयुर्वेद के संबंध में सरकारों का कोप को बतलाते हुए कहा कि द्राक्षासव और द्राक्षारिष्ट पर एक्साइज ड्यूटी लगाकर सरकार ने आयुर्वेद की प्रगति में बाधा उपस्थित की है। ये दोनों वस्तुएँ, जिनमें ५-१० प्रतिशत से अधिक मद्यांश नहीं होता और न जिनसे कभी नशा होता है, केवल औषधि रूप में व्यवहार की जाती हैं। ऐसी चीजों पर ड्यूटी का प्रतिबन्ध लगाना उचित नहीं है। आपने आयुर्वेद की प्रगति

से सम्बन्धित दो प्रस्ताव उपस्थित किये। उपस्थित सभी लोगों ने प्रस्तावों का एकमत से समर्थन कर सर्व-सम्मति से पास किया।

इसके पश्चात् समागत सज्जनों को धन्यवाद देकर समारोह सानन्द विसर्जित हुआ।

**श्री महल आयुर्वेदिक स्टोर्स, नागपुर** में पं० दीनदयालु तिवारी, आयुर्वेदाचार्य की अध्यक्षता में वैद्य-सभा हुई। भगवान् धन्वन्तरि का पूजन वेदमन्त्रोच्चार पूर्वक वैद्य करमचन्द शास्त्री तथा श्री सीतारामजी वैद्यराज ने किया।

तदनन्तर वैद्य करमचन्द शास्त्री ने स्वागत-भाषण दिया। डाक्टर गोरे ने अपने भाषण में भगवान् धन्वन्तरि जी के उपदेशों पर वैज्ञानिक प्रकाश डाला। आपने कहा कि हमें आयुर्वेद की प्रगति करनी चाहिये। सभापति महोदय ने आयुर्वेद की परम्परा कायम रखने के लिए आयुर्वेद-सेवा निमित्त संगठित रूप से प्रयत्न करने का निवेदन किया। आपने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के संचालकों द्वारा की जाने वाली आयुर्वेद की सेवा तथा श्री भगवान् धन्वन्तरि जी के प्रति अगाध श्रद्धा की प्रशंसा करते हुए कहा कि, सर्व वैद्य बन्धुओं को उनके आदर्शों का अनुसरण करना चाहिए। अन्त में आगन्तुक महानुभावों के प्रति आभार प्रकट करते हुए सभा की कार्यवाही विसर्जित की गयी।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के **न्यू इतवारी रोड नागपुर स्थित बिक्री-केन्द्र** में भगवान धन्वन्तरि की पूजा पं० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा तथा वैद्यरसीताराम जी के द्वारा की गई। श्री दामोदर लक्ष्मीकान्त जी पुराणिक की अध्यक्षता में वैद्य-सभा सम्पन्न हुई।

स्वागत-भाषण पं० जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने पढ़ा। पश्चात् दीनदयालु तिवारी ने आयुर्वेद की स्थिति पर भाषण किया। उन्होंने कहा कि वैद्यों को अथक प्रयत्न करना चाहिये। आपसी भेदभाव मिटाकर लगन से आयुर्वेद की सेवा करनी चाहिये। वैद्य ताराचन्द जी, वैद्य ज्वाला प्रसाद शास्त्री, डा० चुन्नीलाल शाह डा० जयसवाल आदि के भी भाषण हुए।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के बिक्री-केन्द्र **श्री नागपुर आयुर्वेद औषधालय, भन्डारा रोड इतवारी** में श्री धन्वन्तरि जयन्ती धर्मचन्द्रोदय मठ चान्दोद (बड़ौदा) के कुलपति सर्वदर्शनाचार्य, तर्क-वेदान्त शिरोमणि स्वामी श्री अनिरुद्धाचार्य जी की अध्यक्षता में मनाई गई। स्वागत-भाषण वैद्यराज श्री सीताराम जी शास्त्री द्वारा पढ़ा गया। समारोह में नगर के गण्यमान्य वैद्यजन तथा भारी संख्या में नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति सम्मिलित हुए। सभी ने भगवान श्री धन्वन्तरि को श्रद्धांजली अर्पित की। अध्यक्ष के भाषणोपरान्त भगवान का प्रसाद-वितरण हुआ तथा प्रसाद-वितरण के बाद समारोह आनन्द मंगल के साथ समाप्त हुआ।

### जलगाँव में वैद्य-सभा

श्री राजेन्द्र स्टोर्स, जलगाँव में धन्वन्तरि-जयन्ती-उत्सव बड़ी धूमधाम से डाक्टर प्र० धो० खानोलकर, सिविल सर्जन जलगाँव (पू० खानदेश) की अध्यक्षता में मनाया गया। प्रथम श्री वैद्य लक्ष्मीनारायण लाठी ने स्वागत-भाषण दिया। तत्पश्चात् दोनों प्रस्ताव स्वीकृत हुए। सभापति जी के सामयिक भाषण के बाद धन्यवाद देकर कार्यवाही समाप्त हुई।

### खामगाँव में समारोह

खामगाँव में बैद्यनाथ-औषधियों के विशिष्ट एजेंट श्री अरुण फार्मेसी की ओर से धन्वन्तरि जयन्ती धूमधाम से मनाई गयी। इस समारोह में विशाल संख्या में वैद्य-डाक्टर और सम्भ्रान्त नागरिक शामिल हुए। धन्वन्तरि-पूजनोपरान्त वैद्य-सभा हुई, जिसका सभापतित्व डाक्टर ब० वा० देशपाण्डे ने किया। स्वागत-भाषण के बाद कई वैद्यों के सामयिक भाषण हुए। दोनों प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। अन्त में सभापति जी ने अपने भाषण में आयुर्वेदिक उन्नति के हेतु वैद्यों से संगठित रूप में प्रयास करने की अपील की। धन्यवाद-ज्ञापन कर सभा की कार्यवाही समाप्त हुई।

### अकोला में भव्य समारोह

अकोला में श्री अकोला आयुर्वेद औषधालय की ओर से श्री धन्वन्तरि जयन्ती पूरे उत्साह से मनायी गयी। धन्वन्तरि-पूजन के पश्चात् एक सभा हुई। जिसका सभापतित्व पं० शिवगुलाम पांडेय ने किया। वैद्य सत्यदेव शर्मा ने स्वागत-भाषण किया। तदनन्तर श्री कृष्णराव जी कुरकुटे वैद्य ने आयुर्वेद के अभ्युदय के लिये वैद्यों को संगठित होकर प्रयत्न करने तथा आत्मालोचन करने के लिये आग्रह किया। वैद्य कृष्णदास खीमजी ने आयुर्वेद और यूनानी

स्वामी
ई गई।
ी द्वारा
जन तथा
त हुए।
त की।
ण हुआ
के साथ

ी-उत्सव
ल सर्जन
ा गया।
ा दिया।
जी के
ार्यवाही

ट एजेंट
धूमधाम
में वैद्य-
न्वन्तरि-
डाक्टर
बाद कई
र्वसम्मति
ाषण में
स करने
ार्यवाही

ओर से
गयी।
ा सभा-
दिव शर्मा
राव जी
संगठित
ी आग्रह
यूनानी

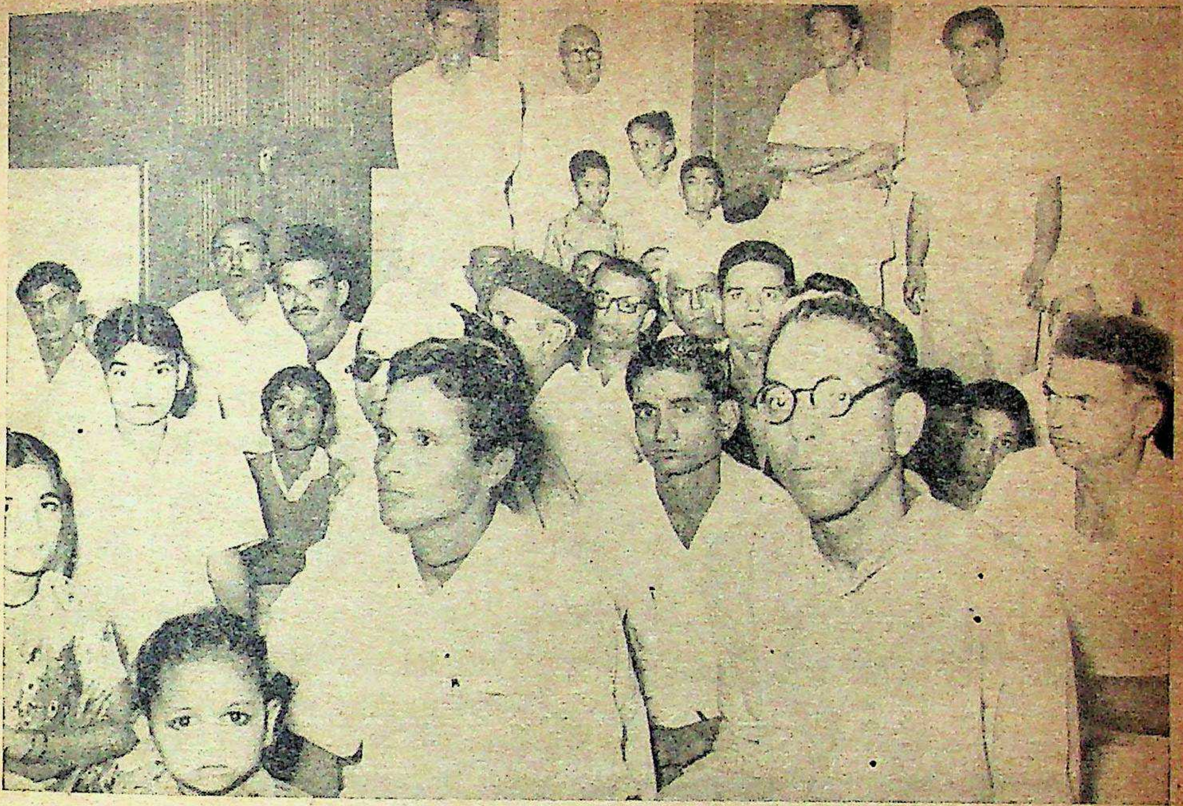

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर जोधपुर में आयोजित वैद्य सभा का एक भव्य दृश्य

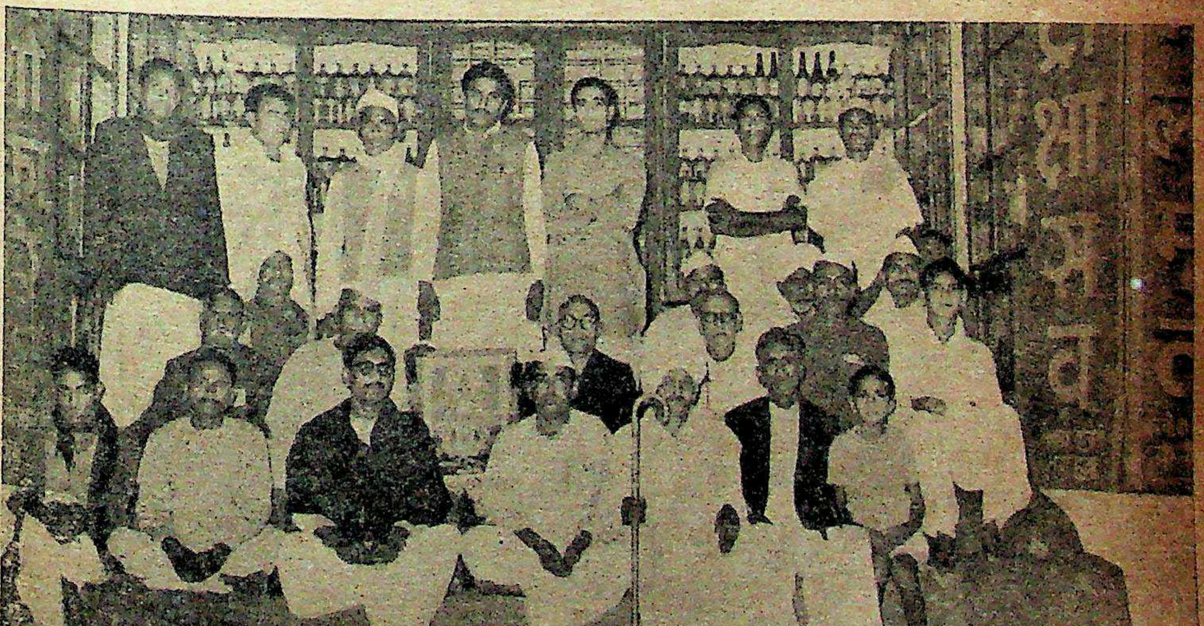

धन्वन्तरि जयन्ती पर मुरेना में आयोजित वैद्य-हकीमों की सभा का एक दृश्य

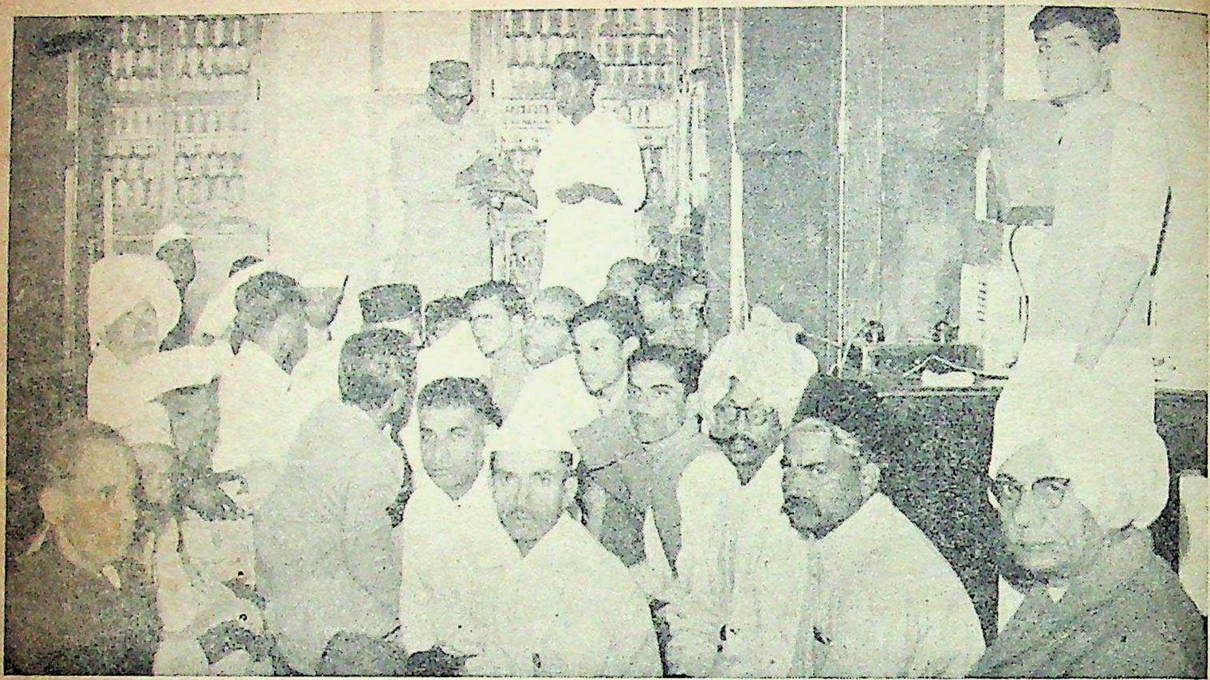

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर अजमेर में आयोजित वैद्य-सभा का एक सुन्दर दृश्य

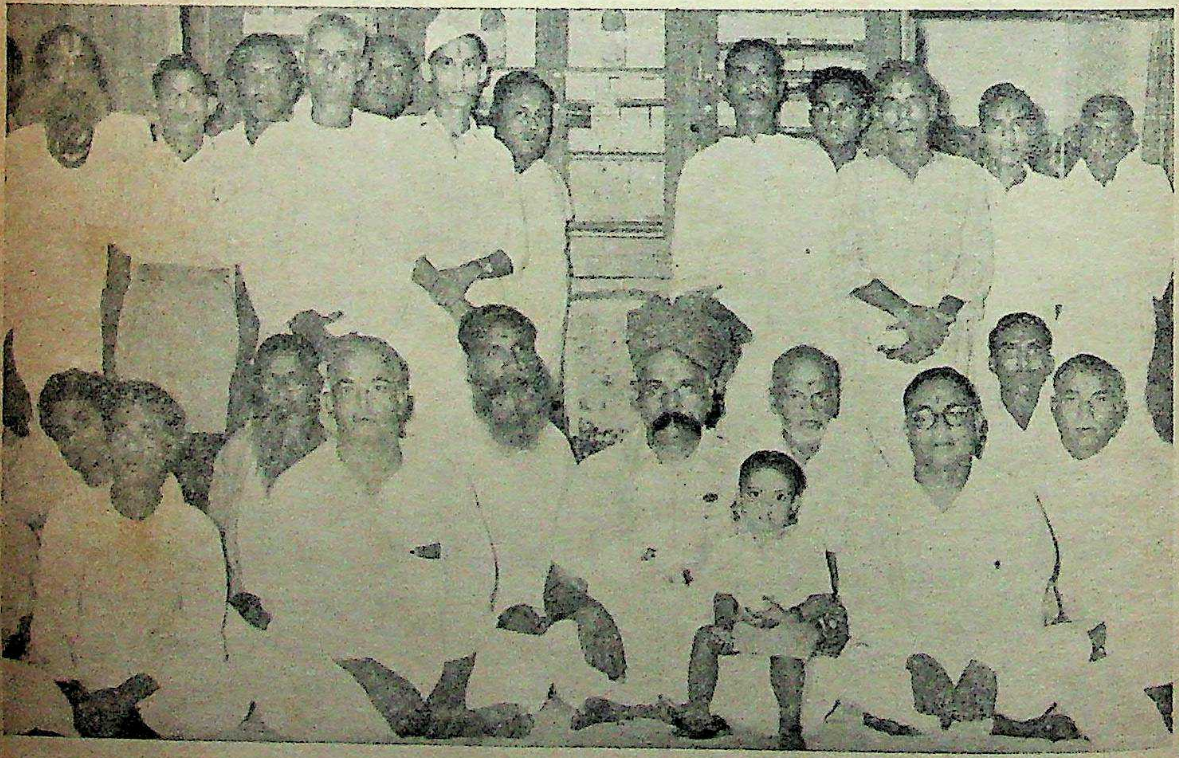

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर रायगढ़ में आयोजित वैद्य-हकीमों की सभा का एक दृश्य

का सम
के संबं
शाह ने
आत्मा
महत्ता

पुरी

श्री
केन्द्र मे
मनाया
वाचस्प
हाल मे
गया।
भाषण
ने जन
दामोदर
भाषण
पद्धति
योगिता
का सम
महापात्र
शालाक
ढंग से प्र
के उपयं
प्रयत्नशी

उ
एम० ए
आयुर्वेद
हिक उ
प्रत्येक
कल्याण

अन
भाषण
और गवे
सिर्फ यू

का समन्वय करके चिकित्सा-पद्धति में एकतारूपता लाने के संबंध में विद्वत्तापूर्ण भाषण दिया। डाक्टर एल० टी० शाह ने अश्वगंधा के महत्त्व पर प्रकाश डाला। स्वामी आत्मानन्दजी सरस्वती ने आयुर्वेद के त्रिदोष स्वरूप की महत्ता एवं आयुर्वेदीय सिद्धान्त की अपरिवर्तनशीलता के सम्बन्ध में भाषण दिया। अन्त में सभापति जी ने अपने भाषण द्वारा सभी वक्ताओं के भाषण में उठाये गए सभी मुद्दों पर प्रकाश डाला तथा अन्य चिकित्सा पद्धतियों से आयुर्वेद की विशेषता प्रतिपादित की। आभार प्रदर्शन एवं प्रसाद वितरण के बाद सभा का कार्य सम्पन्न हुआ।

# उड़ीसा

## पुरी में भव्य समारोह

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के पुरी बिक्री-केन्द्र में श्री धन्वन्तरि जयन्ती-महोत्सव पूरे समारोह से मनाया गया। इस उपलक्ष में उत्कल विधान सभा के वाचस्पति पं० नीलकण्ठ दास के सभापतित्व में पुरी टाउन हाल में एक विराट साधारण सभा का आयोजन किया गया। सर्वप्रथम कविराज श्री विक्रमचन्द्र रथ ने स्वागत-भाषण पढ़ा। इसके बाद कविराज श्री आनन्द महापात्र ने जनस्वास्थ्य के सम्बन्ध में भाषण दिया। कविराज दामोदर शास्त्री ने आयुर्वेद में दार्शनिक तत्त्व के विषय में भाषण दिये। श्री रामचन्द्र मिश्र ने आयुर्वेद-चिकित्सा-पद्धति के उत्कर्ष की भारतवासियों के पक्ष में विशेष उपयोगिता बताई और आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सा पद्धतियों का समन्वय वांछनीय बताया। कविराज अतुल्य चन्द्र महापात्र ने अपने भाषण में भगवान धन्वन्तरि के शल्य-शालाक्य चिकित्सा विषयक उपदेश और उपयोग को सुन्दर ढंग से प्रतिपादन कर आयुर्वेद-मत में शल्य-शालाक्य-चिकित्सा के उपयोग को आधुनिक युगोपयोगी बनाने हेतु वैद्यों को प्रयत्नशील होने के लिये अनुरोध किया।

उड़ीसा विधान सभा के सदस्य श्री हरिहर वाहिनिपति, एम० एल० ए० ने अपने भाषण में कहा कि श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के कर्तृपक्ष द्वारा आयुर्वेद की सामुहिक उन्नति के पथ पर जैसी चेष्टा हो रही है, वैसा ही यदि प्रत्येक आयुर्वेद-प्रतिष्ठान कार्य करे तो आयुर्वेद का प्रभूत कल्याण साधन हो सकता है।

अन्त में सभापतिजी का एक सुचिन्तित और सारगर्भ भाषण हुआ। आयुर्वेद में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार और गवेषणा करने का अनुरोध करते हुए उन्होंने कहा कि सिर्फ यूनानी नहीं, पाश्चात्य चिकित्सा-प्रणाली भी भारतीय परंपरा से पैदा हुई है। वैद्यों को चाहिए कि वे आयुर्वेद की अतीतगौरव-गाथा गाकर ही सन्तुष्ट न हों अपितु आयुर्वेद को सर्वतोभावेन समुन्नत बनाने का प्रयास करें। अन्त में दोनों प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए और धन्यवाद-ज्ञापन कर सभा समाप्त हुई।

## सम्बलपुर में वैद्य-सभा

सम्बलपुर स्थित श्री सम्बलपुर आयुर्वेद भण्डार में धन्वन्तरि जयन्ती का आयोजन बड़ी धूमधाम से किया गया। सर्वप्रथम भगवान धन्वन्तरि की पूजा यथाविधि की गई। तत्पश्चात् वैद्य-सभा का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। नगर-पालिका के प्रधान श्री व्रजेन्द्रनाथ कर ने सभापति का पद ग्रहण किया। स्वागत-भाषण में श्री नरेन्द्रनाथ वैद्य शास्त्री ने बड़े ओजस्वी शब्दों में बताया कि आयुर्वेदिक चिकित्सा के प्रसार में 'भवन' कितना प्रयत्नशील है। उन्होंने कहा कि सरकार जन-स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के विषय में पाश्चात्य देशों का अनुकरण करने की अपेक्षा राष्ट्रीय भावना के साथ राष्ट्रीय स्तर पर विचार करे और शीघ्र ही एक स्पष्ट-राष्ट्रीय स्वास्थ्य-नीति एवं राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति की घोषणा करे। भारत की जनता आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति को ही चाहती है। अतः इसी को आधुनिक विज्ञान के नव्य विषयों से समन्वित करें तथा इसी आधार पर देश भर में स्वास्थ्य-कार्य-प्रणाली का पुनर्गठन किया जाय।

उन्होंने वैद्यों से अनुरोध किया कि वे सरकार से आग्रह करें कि आयुर्वेद की वास्तविक उन्नति के लिये सुयोग्य वैद्यों की नियुक्ति और कालेजों की सरकार की ओर से स्थापना की जावे। इसी सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि शास्त्रोक्त औषधियों पर चमत्कारिक औषध विज्ञापन कानून एवं आसव-अरिष्टों पर मद्यकर कानून न लगाने का वे अनुरोध करें। वैद्यों को डाक्टरों के समान सुविधाएँ

दी जावें, वेतन दिया जावे, और रोगी प्रमाणपत्र आदि का अधिकार भी मिले। सभा ने प्रस्तावों को स्वीकार किया।

श्री कीर्तिप्रकाश गुप्त ने कहा कि इस चिकित्सा-पद्धति की महान अनुभव से भरी हुई खोजों की समता कोई चिकित्सा पद्धति नहीं कर सकती। आयुर्वेदिक चिकित्सा के विकास को उन्होंने राष्ट्र-प्रेम का प्रश्न बताया और कहा कि आर्थिक दृष्टि से भी वर्तमान परिस्थिति में इसके प्रसार से देश का पैसा देश में रहेगा और विदेशी मुद्रा की समस्या नहीं उठेगी एवं भारत की गरीब जनता कम पैसे में अच्छा इलाज पा सकेगी।

श्री पूर्णचन्द्र शास्त्री आयुर्वेद-आचार्य ने अपने भाषण में इस शास्त्र सम्बन्धी अनेक बातों का उल्लेख करते हुए इसके गौरवपूर्ण अतीत की तुलना वर्तमान वैज्ञानिक उन्नति से की।

अन्त में सभापति महोदय ने आयुर्वेद को रोगों के मूल कारण की ओर ध्यान देने वाला एवं स्थाई इलाज बताया।

सभा का विसर्जन करते हुए केन्द्र-व्यवस्थापक वैद्य बैद्यनाथ त्रिवेदी ने सभी आगन्तुक महानुभावों को धन्यवाद दिया।

# आसाम

## गौहाटी में समारोह

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के गौहाटी कार्यालय में धन्वन्तरि जयन्ती बड़े समारोह के साथ गवर्नमेण्ट आयुर्वेदिक कालेज के प्रिंसिपल श्री जगदीशचन्द्र भट्टाचार्य की अध्यक्षता में मनाई गई। धन्वन्तरि-पूजन के बाद सर्वप्रथम स्वागत-भाषण पढ़ा गया। तत्पश्चात् वैद्यराज श्री जगदीशप्रसाद शर्मा का आयुर्वेद के सम्बन्ध में भाषण हुआ। श्री धर्मनाथ तर्कतीर्थ ने उत्सव की महत्ता और आयुर्वेद सम्बन्धी प्रचार का ध्येय बताया। श्री घनश्याम दास चतुर्वेदी ने दो प्रस्ताव पेश किये जो सर्वसम्मति पास हुए। इसके बाद उन्होंने भवन द्वारा किये जा र आयुर्वेद सम्बन्धी कार्यों का जिक्र किया तथा इलाहाबाद में बनने वाले कालेज व कारखाने का उद्देश्य बताया। साथ ही आगन्तुकों के प्रति आभार प्रकट किया। अन्त में सभापति जी ने 'भवन' द्वारा किये जा रहे आयुर्वेद-उत्थान के कार्यों का वर्णन किया एवं श्रीरामनारायण जी वैद्य की भरि-भूरि प्रशंसा की।

# मध्यप्रदेश

## इन्दौर में सभा

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर इन्दौर में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड के विशिष्ट एजेण्ट श्री ओमप्रकाश आयुर्वेदिक स्टोर्स की ओर से एक सभा का आयोजन हुआ। वैद्या डॉ० श्रीमती तारादेवी जैन ने अध्यक्षता की। सर्वप्रथम वैद्य पं० जयनारायण शर्मा ने वैद्य-हकीम व अन्य सभी उपस्थित सज्जनों का हार्दिक स्वागत करते हुए भाषण दिया। इसके बाद सभाध्यक्ष की ओर से दोनों प्रस्ताव उपस्थित किए गये। वैद्य हरिकृष्ण जोशी ने प्रस्तावों का समर्थन करते हुए कहा कि आयुर्वेद की वास्तविक उन्नति तभी सम्भव है जब कि सरकार अपना सक्रिय सहयोग आयुर्वेदशास्त्र को दे। वैद्य मामनचन्द शर्मा, आयुर्वेदाचार्य ने आयुर्वेद का महत्व, प्राचीन आयुर्वेद और आधुनिक समय में उसका ह्रास आदि-आदि कारणों पर प्रका डालते हुए यह बतलाया कि आधुनिक वैज्ञानिक युग आयुर्वेद-शास्त्र की उन्नति तभी सम्भव है जब कि वह अप प्राचीन स्वरूप को त्याग कर इस समय के स्वरूप को ग्रह करे। जब तक आयुर्वेद और यूनानी का समन्वय न होगा तब तक आयुर्वेद उन्नति नहीं कर सकेगा, क्योंकि दो चिकित्सा-प्रणालियों में परस्पर मेल है। वैद्य चन्द्रशेख शास्त्री एवं वैद्य ख्यालीरामजी ने भी प्रस्तावों का समर्थ किया।

अन्त में दोनों प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुए। अध्यक्षा ने अपने भाषण में वैद्यों और हकीमों से अनुरो किया कि वे एकतावद्ध होकर कार्य करते हुए अपने विज्ञा को समुन्नत करने का प्रयास करें। उन्होंने बैद्यना

प्रतिष्ठान की आयुर्वेद-सेवाओं की प्रशंसा की और अन्य संस्थानों को भी इसी प्रकार का प्रयास करने का परामर्श दिया। धन्यवाद-ज्ञापन कर सभा विसर्जित हुई।

## उज्जैन में भव्य सभा

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के उज्जैन स्थित बिक्री-केन्द्र में भगवान धन्वन्तरि का जयन्ती-महोत्सव श्री अवन्तिका देशी चिकित्सक मण्डल के साथ संयुक्त रूप से उत्साहपूर्वक मनाया गया। विद्वान् पण्डितों द्वारा वेदोक्त विधि से भगवान श्री धन्वन्तरि का पूजन एवं सामूहिक स्तवन के बाद श्री अवन्तिका देशी चिकित्सक मण्डल के अध्यक्ष वैद्य पं० केसरीलालजी व्यास, आयुर्वेदाचार्य, की अध्यक्षता में सभा की कार्यवाही आरम्भ हुई। वैद्य पं० गुलाबचन्द शर्मा ने स्वागत-भाषण पढ़ा। वैद्य पं० अनन्तराजजी आयुर्वेदाचार्य, चेयरमैन बृहन्नगरपालिका उज्जैन, ने भगवान श्री धन्वन्तरि को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए महोत्सव के महत्व पर प्रकाश डाला तथा पद्मभूषण पं० सूर्यनारायणजी व्यास का अभिनन्दन किया। डॉ० कृष्णदयाल पाठक ने अखिल भारत में जन-जन के दुःख-निवारण का भगीरथ प्रयत्न करनेवाली श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० जैसी संस्था की प्रशंसा करते हुए अपने आयुर्वेद संबंधी मनोभाव व्यक्त किए। इसके बाद पं० वासुदेव शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, पं० गोपीकृष्ण शास्त्री व्याकरणाचार्य, पं० दयाशंकर वाजपेयी साहित्य-व्याकरणाचार्य, वैद्य पं० बसन्तीलाल आदि विद्वानों के भाषण हुए। सम्मान्य अतिथि पद्मभूषण पं० सूर्यनारायणजी व्यास ने ज्योतिष एवं आयुर्वेद का निकट सम्बन्ध बताते हुए रत्न और उपरत्नों का शास्त्रोक्त तुलनात्मक विवेचन किया और कहा कि यदि चिकित्सा-क्षेत्र में ज्योतिष-शास्त्र का भी उपयोग हो, तो अत्यधिक सफलता सम्भव है। आपने यह भी कहा कि आयुर्वेद-ज्योतिष दोनों ही भारत की प्राचीन निधियाँ हैं। दोनों का ही राष्ट्र के हित में उत्थान आवश्यक है।

तदनन्तर डॉ० रामदत्त तिवारी ने दो प्रस्ताव उपस्थित किये तथा दोनों प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए।

अन्त में अध्यक्ष महोदय ने सामयिक समस्याओं पर विचार प्रकट करते हुए श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के संचालक वैद्यराज पं० रामनारायणजी शर्मा शास्त्री द्वारा किये जा रहे प्रयत्नों की सराहना की और कहा कि अन्य भेषज निर्माणशालाओं के संचालकों को शास्त्रीजी का अनुकरण करना चाहिये तथा देशी चिकित्सकों को इस संस्था को पूर्ण सहयोग देना चाहिये।

सभा विसर्जन-काल में श्री अवन्तिका देशी चिकित्सक मण्डल के प्रधान मन्त्रीजी श्री बाबूलाल मित्तल ने समागत महानुभावों का आभार माना।

## रतलाम में सभा

रतलाम में बैद्यनाथ-औषधियों के विशिष्ट एजेण्ट श्री मक्खनलाल दीक्षित वैद्य की ओर से धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर एक सभा का आयोजन किया गया। सभा में स्थानीय वैद्य, हकीम, डाक्टर और सम्भ्रान्त नागरिक अच्छी संख्या में एकत्र हुए। वैद्यराज कृष्णानन्दजी आयुर्वेदाचार्य ने सभापति का आसन ग्रहण किया। सर्वप्रथम श्री वनबारीलाल दीक्षित ने स्वागत-भाषण किया। तत्पश्चात् आगत वैद्य-हकीमों में से कुछ वैद्यों के सामयिक भाषण हुए। दोनों प्रस्ताव भी सभा में उपस्थित किए गये और सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित हुए। अन्त में सभापतिजी ने अपने भाषण में आयुर्वेद-विज्ञान की वास्तविक उन्नति के लिए वैद्यों से संगठित होकर कार्य करने तथा आयुर्वेद में अनुसन्धान करने का अनुरोध किया। बैद्यनाथ-संस्थान द्वारा किए जा रहे आयुर्वेद के विकास-कार्यों की सराहना करते हुए आपने अन्यान्य प्रतिष्ठानों को भी आयुर्वेदोन्नति के लिए कार्य करने की सलाह दी। अन्त में धन्यवाद-ज्ञापन कर सभा की कार्यवाही समाप्त हुई।

## गुना में जयन्ती-समारोह

गुना में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के बिक्री-केन्द्र की ओर से धन्वन्तरि जयन्ती-महोत्सव श्री रतनलालजी लाहोटी, एडवोकेट की अध्यक्षता में बड़े ही उत्साह से मनाया गया। सर्वप्रथम श्री धन्वन्तरिजी महाराज का पूजन वैद्य-बन्धुओं एवं जनता के समक्ष श्री पं० गूजरमलजी द्वारा कराया गया। तदुपरान्त श्री जगदीशचन्द शर्मा ने स्वागत-भाषण पढ़ा। श्री नारायण प्रसाद शर्मा वैद्य, श्री रामलालजी वैद्य एवं बफा साहब हकीम के आयुर्वेद विषयक भाषण हुए एवं आसव-अरिष्टों पर मद्य-कर का तीव्र विरोध किया गया। अन्त में अध्यक्ष महोदय का भाषण हुआ। आपने वैद्यों तथा हकीमों को अपना संगठन बना कर आयुर्वेद को उन्नति पर ले जाने के लिए जोर दिया।

अन्त में दोनों प्रस्ताव पारित हुए और धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई।

## मेहगाँव (भिण्ड) में वैद्य-सभा

मेहगाँव (भिण्ड) में बैद्यनाथ औषधियों के विशिष्ट एजेण्ट श्री चित्रगुप्त कार्यालय की ओर से धन्वन्तरि-जयन्ती के अवसर पर एक सभा का आयोजन किया गया। सभा में स्थानीय वैद्य-हकीम-डाक्टर और सम्भ्रान्त नागरिक अच्छी संख्या में एकत्र हुए। श्री नाथूराम नारोलिया ने सभापति का आसन ग्रहण किया। सर्वप्रथम श्री वीरसेन जैन वैद्य ने स्वागत-भाषण किया। तत्पश्चात् आगत वैद्य-हकीमों में से कुछ वैद्यों के सामयिक भाषण हुए। दोनों प्रस्ताव भी सभा में उपस्थित किए गये और सर्वसम्मति से पारित हुए। अन्त में सभापतिजी ने अपने भाषण में आयुर्वेद-विज्ञान की वास्तविक उन्नति के लिए वैद्यों से संगठित होकर कार्य करने तथा आयुर्वेद में अनुसन्धान करने का अनुरोध किया। वैद्यनाथ-संस्थान द्वारा किए जा रहे आयुर्वेद के विकास-कार्यों की सराहना करते हुए आपने अन्यान्य प्रतिष्ठानों को भी आयुर्वेदोन्नति के लिए कार्य करने की सलाह दी। अन्त में धन्यवाद-ज्ञापन कर सभा की कार्यवाही समाप्त हुई।

## मुरैना में समारोह

मुरैना में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० बिक्री-केन्द्र मुरैना आयुर्वेदिक स्टोर्स के तत्वावधान में भगवान धन्वन्तरि का जन्म-दिवस उल्लासपूर्ण वातावरण में मनाया गया। सभा की अध्यक्षता मुरैना जिले की वैद्यसभा के अध्यक्ष श्री प्रयागनारायणजी शास्त्री ने की। सर्वप्रथम स्वागत-भाषण पढ़कर सुनाया गया। भगवान धन्वन्तरि का पूजन सामूहिक रूप से किया गया। श्री भाई दयालजी, श्री पं० गणेशीलालजी व जानकीवल्लभ द्विवेदी आदि के भगवान धन्वन्तरि व आयुर्वेद पर भाषण हुए। सभा में दोनों प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुए। अन्त में बिक्री-केन्द्र-व्यवस्थापक सुशीलकुमार कौशिक ने वैद्य-बन्धुओं के प्रति आभार प्रकट किया।

## विदिशा में सभा

विदिशा में बैद्यनाथ-औषधियों के विशिष्ट एजेण्ट श्री काशीनाथ आयुर्वेद भवन विदिशा की ओर से धन्वन्तरि-जयन्ती के अवसर पर एक सभा का आयोजन किया गया। सभा में स्थानीय वैद्य-हकीम-डाक्टर और सम्भ्रान्त नागरि अच्छी संख्या में एकत्र हुए। श्री पं० चन्द्रशेखर शास् धर्माधिकारी ने सभापति का आसन ग्रहण किया। सर्व प्रथम श्री रामकृष्ण सिलाकारी वैद्य ने स्वागत-भाषण किया तत्पश्चात् आगत वैद्य-हकीमों में से कुछ वैद्यों के सामयि भाषण हुए। दोनों प्रस्ताव भी सभा में उपस्थित कि गये और सर्वसम्मति से पारित हुए। अन्त में सभापति ने अपने भाषण में आयुर्वेद-विज्ञान की वास्तविक उन्नति लिए वैद्यों से संगठित होकर कार्य करने तथा आयुर्वे में अनुसन्धान करने का अनुरोध किया। बैद्यना संस्थान द्वारा किए जा रहे आयुर्वेद के विकास कार्यों सराहना करते हुए आपने अन्यान्य प्रतिष्ठानों को आयुर्वेदोन्नति के लिए कार्य करने की सलाह दी अन्त में धन्यवाद-ज्ञापन कर सभा की कार्यवाही समाप हुई।

## डबरा में समारोह

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के बिक्री-केन्द्र डबरा डा० हेतराम चतुर्वेदी की अध्यक्षता में श्री धन्वन्तरि महोत्स सोत्साह मनाया गया। समारोह में स्थानीय सम्भ्रान्त व्यापारी एवं विद्वान् वैद्यजन उपस्थित थे। स्वामी ब्रह्मानन्दजी उदासीन ने भी उपस्थित रह कर सभा कार्यवाही में अंश ग्रहण किया। धन्वन्तरि-पूजन ए वन्दना के पश्चात् पं० बिहारीलाल शास्त्री साहित्यरत्न आयुर्वेदाचार्य ने धन्वन्तरि जयन्ती का शास्त्रीय विवेच किया और कहा कि धन्वन्तरि जयन्ती वैद्यों का व्यावसायि समारोह न होकर स्वास्थ्य के आराध्य देवता धन्वन्तरि स्मृति-दिवस है। सभा में दोनों प्रस्तावों को सर्वानुमति से पारित किया गया। इसके पश्चात् स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने आयुर्वेद को स्वतन्त्र रूप से आयु का वेद बताते हुए ऋ एवं यजुर्वेद के उदाहरणों से पुष्टि करते हुए युक्तियुक्त तार्किक तथा न्यायसंगत विवेचन किया तथा आरोग्य रहने के उपाय एवं रोग-निदान तथा उपचार सम्बन्ध में सोदाहरण मीमांसा की। अन्त में अध्यक्ष महोदय को साभार धन्यवाद प्रदान कर सभा विसर्जि हुई।

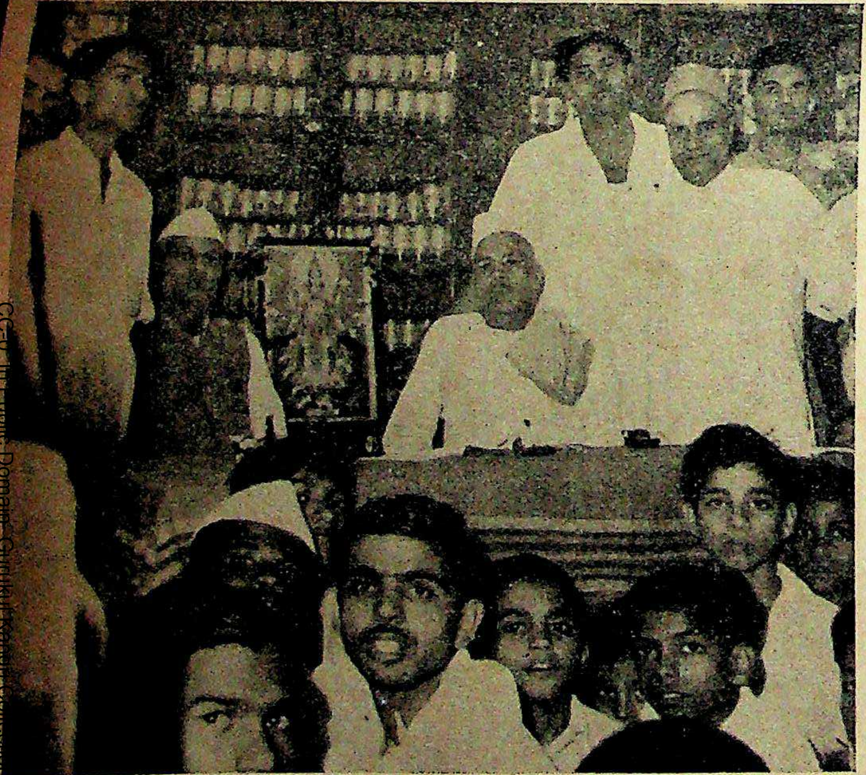

धन्वन्तरि जयन्ती पर गोन्दिया में वैद्य-सभा

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के मैनेजिंग डायरेक्टर पं० रामदयाल जोशी के स्वागतार्थ [illegible] में आयोजित समारोह के तीन दृश्य।

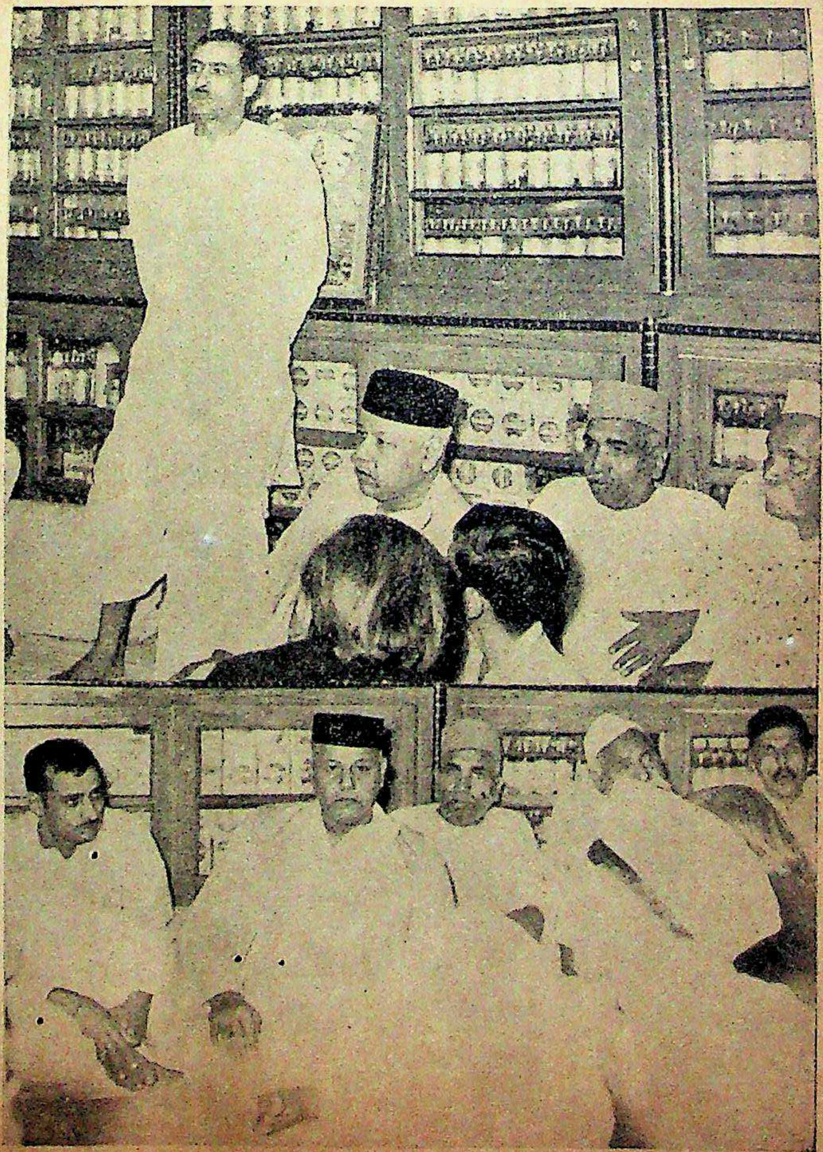

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के डायरेक्टर श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा के स्वागतार्थ आत्रेय आयुर्वेद भवन, इटारसी की ओर से आयोजित

धन्वन्तरि जयन्ती पर अलवर में वैद्य सभा

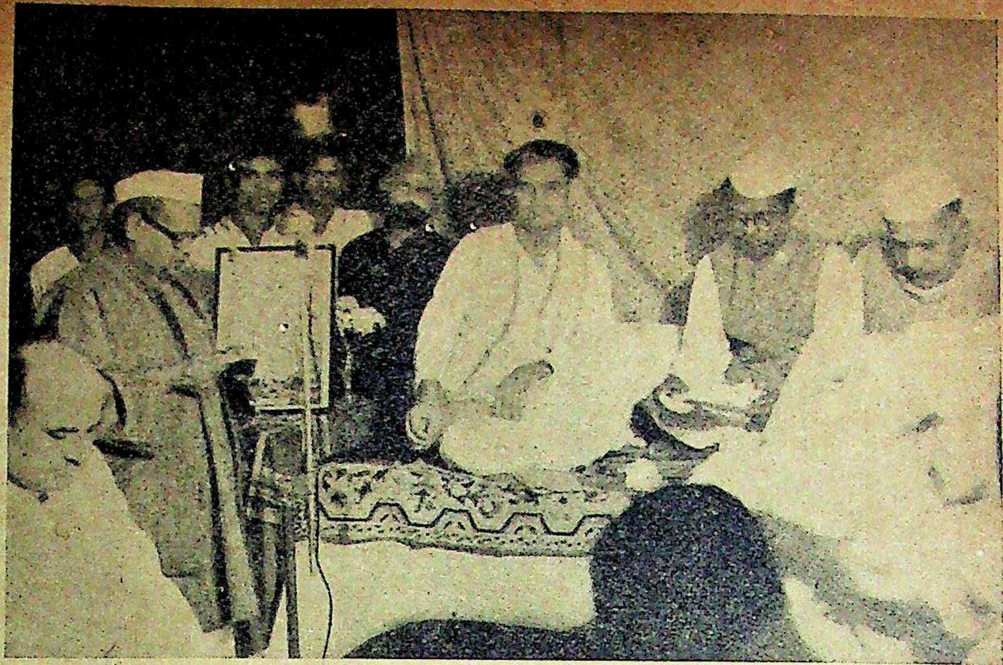

छपरा में धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर आयोजित वैद्य सभा का भव्य दृश्य

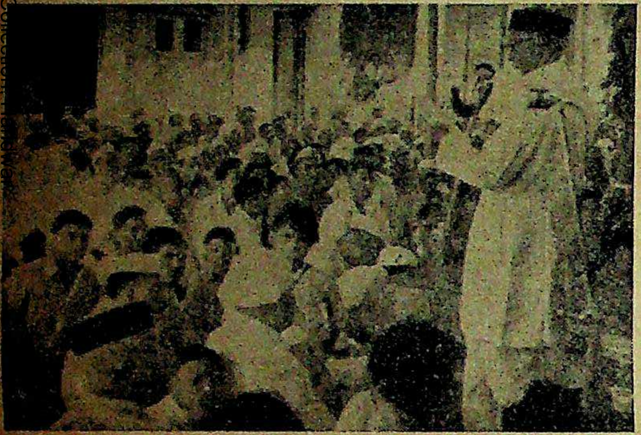

धन्वन्तरि जयन्ती पर इटारसी में वैद्य सभा

धन्वन्तरि जयन्ती पर सागर में वैद्य सभा

## भोपाल में भव्य सभा

भोपाल में बैद्यनाथ-दवाओं के विशिष्ट एजेण्ट श्री घासीराम वनबारीलाल द्वारा धन्वन्तरि जयन्ती-समारोह विधिपूर्वक मनाया गया, जिसकी अध्यक्षता श्री मथुराप्रसाद दुब उप-स्वास्थ्य मन्त्री, मध्यप्रदेश ने की।

भगवान धन्वन्तरि के पूजनोपरान्त वैद्य, हकीम एवं अन्य आगत सज्जनों के समक्ष वैद्य श्री हरद्वारीनन्द मिश्र, आयुर्वेदाचार्य ने स्वागत-भाषण पढ़ा। तदुपरान्त वैद्यवर्ग ने अपने विचार प्रकट किये। श्री हरिद्वारीनन्द मिश्र ने सभा के सम्मुख दो प्रस्ताव रक्खे जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। अन्त में उप-स्वास्थ्य मन्त्री महोदय ने अपने भाषण में आयर्वेद के प्रति अपनी विशेष रुचि व्यक्त की और आयुर्वेदिक औषधि-निर्माताओं को औषधि-निर्माण में विशुद्धता तथा ईमानदारी बरतने पर जोर दिया एवं वैद्यवर्ग को नियमित गोष्ठियों का आयोजन कर आयुर्वेद को प्रगति-पथ पर अग्रसर करने का परामर्श दिया। श्री हनुमान प्रसादजी ने आगत सज्जनों के प्रति आभार-प्रदर्शन किया। इसके बाद सभा विसर्जित हुई।

## जबलपुर में समारोह

धन्वन्तरि जयन्ती-समारोह श्री बैद्यनाथ आयुवद भवन प्राइवेट लिमिटेड के जबलपुर बिक्री-केन्द्र में वैद्यवर पं० सुन्दरलाल शुक्ल, प्राणाचार्य की अध्यक्षता में सोत्साह मनाया गया। धन्वन्तरिजी के पूजन के बाद स्वागत-भाषण वैद्य गंगाधर शास्त्री द्वारा पढ़ा गया।

श्री भी० वी० डेग्वेकरजी ने अपने भाषण में कहा कि हमारी स्वतन्त्रता के पूर्व की सरकार ने आयुर्वेद की ओर जितना ध्यान दिया था, दुःख है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार ने आयुर्वेद के प्रति उतना ध्यान नहीं दिया। राष्ट्रीय सरकार आयुर्वेद की उन्नति के लिए जो कमीशन मुकर्रर करती है, उसमें वैसे व्यक्ति रहते हैं जो आयुर्वेद के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं रखते। इससे लाभ के बजाय हानि अधिक होती है। हम चाहते हैं कि वास्तव में हमारी सरकार आयुर्वेद की उन्नति चाहती है तो आयुर्वेद-विशेषज्ञों को ही कमीशन में रखे ताकि उससे आयुर्वेद की उन्नति हो सके। पं० गंगाविष्णु पाण्डेय ने कहा कि जब तक वैद्य-समाज सुसंगठित होकर अपने पैरों पर खड़ा नहीं होता तब तक आयुर्वेद की उन्नति असम्भव है। आपने आयुर्वेद को अवैज्ञानिक बतानेवालों को उत्तर देते हुए कहा कि अगर ऐसा ही है तो फिर यह हजारों वर्षों से आज तक जीवित कैसे रहा? आयुर्वेद में इतनी क्षमता है कि बिना सरकारी अवलम्बन के भी वह घर-घर व्याप्त है। इससे साफ जाहिर है कि आयुर्वेद अवैज्ञानिक नहीं है।

अन्त में सभापतिजी ने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० की शुभ-कामना करते हुए कहा कि आयुर्वेद के उत्थान के लिये यह आयोजन बहुत ही प्रशंसनीय है। आज आयुर्वेद की स्थिति बड़ी ही दयनीय और विचारणीय है। वर्तमान शासक पाश्चात्य शिक्षा के कायल हैं। यही कारण है कि आयुर्वेद की स्थिति दयनीय बनती जा रही है, जो हम वैद्यों के लिये खतरनाक साबित हो रही है।

विदेशी सरकार के रहते यदि यह स्थिति होती तो हमें दोष देते हुए शोभा प्राप्त होती, पर अपनी सरकार से क्या कहा जाय? मिश्रित चिकित्सा शिक्षा-प्रणाली वाले एलोपैथिक प्रणाली को अपना रहे हैं और आयुर्वेद के प्रति उनके मन में घृणा के भाव उत्पन्न होते जा रहे हैं। यह आयुर्वेद के लिये दुर्भाग्यपूर्ण है। प्रत्येक नगर में वैद्य सभा का पुनर्गठन किया जावे और कम-से-कम एक माह में प्रत्येक स्थल पर क्रमबद्ध आयुर्वेद का प्रचार-प्रसार किया जावे तथा आयुर्वेद व यूनानी चिकित्सकों का सहयोग प्राप्त कर जनता को आयुर्वेद-यूनानी के प्रति आकर्षित करके श्रद्धा के भाव उनमें भरे जायँ। आयुर्वेद का महत्व जनता के समक्ष रखा जावे तभी आयुर्वेद का उत्थान हो सकता है।

सरकार को चाहिये कि आयुर्वेद की उन्नति की ओर कदम उठाते समय कमीशन बनाया जावे तो उसमें आयुर्वेदिक विद्वानों और अनुभवी व्यक्तियों का चुनाव करके उन्हें उचित प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाय जिससे आयुर्वेद की उन्नति हो सके।

## टीकमगढ़ में सभा

टीकमगढ़ में बैद्यनाथ-औषधियों के विशिष्ट एजेण्ट श्री जैन मेडिकल स्टोर्स की ओर से धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर एक सभा का आयोजन किया गया। सभा में स्थानीय वैद्य-हकीम-डाक्टर और सम्भ्रान्त नागरिक अच्छी संख्या में एकत्र हुए। श्री धनप्रसाद जैन ने सभापति का आसन ग्रहण किया। सर्वप्रथम बिक्री-केन्द्र-व्यवस्थापक ने स्वागत-भाषण किया। तत्पश्चात् आगत वैद्य-हकीमों

में से कुछ वैद्यों के सामयिक भाषण हुए। दोनों प्रस्ताव भी सभा में उपस्थित किए गये और सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित हुए। अन्त में सभापतिजी ने अपने भाषण में आयुर्वेद-विज्ञान की वास्तविक उन्नति के लिए वैद्यों से संगठित होकर कार्य करने तथा आयुर्वेद में अनुसन्धान करने का अनुरोध किया। बैद्यनाथ-संस्थान द्वारा किए जा रहे आयुर्वेद के विकास-कार्यों की सराहना करते हुए आपने अन्यान्य प्रतिष्ठानों को भी आयुर्वेदोन्नति के लिए कार्य करने की सलाह दी। अन्त में धन्यवाद-ज्ञापन कर सभा की कार्यवाही समाप्त हुई।

## अमरावती में भव्य सभा

श्री अमरावती औषधि भण्डार जवाहर रोड, अमरावती में श्री धन्वन्तरि महोत्सव वैद्य श्री गुरुप्रसादजी मिश्र की अध्यक्षता में सोत्साह मनाया गया। विद्वान् वैद्यों ने आयुर्वेद व स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों पर सामयिक भाषण दिये।

सभा में सर्वसम्मति से निम्न प्रस्ताव स्वीकृत हुए—आयुर्वेदोन्नति के लिये सरकार को चाहिये कि जिस प्रकार घरेलू उद्योग धन्धों को मदद करती है, उसी प्रकार आयुर्वेद को भी अपनाये तथा आयुर्वेद पर लगे सभी प्रतिबन्धों को शीघ्र हटावे। सेलटैक्स (बिक्री-कर) से आयुर्वेद को मुक्त किया जाय। आसव-अरिष्टों को मद्य श्रेणी से पृथक् किया जाय। आयुर्वेदोन्नति के लिये उचित व न्याय-युक्त वैद्यों को कदम उठाना चाहिये तथा उसके लिए कटिबद्ध होकर कार्य करना चाहिये। आयुर्वेद व यूनानी के संगठन के लिये समयानुकूल कार्य करने की आवश्यकता है।

अनेक वक्ताओं के भी भाषण हुए, जिनमें कहा गया कि आयुर्वेदोन्नति के लिये अनुसन्धान आवश्यक है। इसके प्रभाव-चमत्कार को दिखाने के लिये आवश्यक है कि अनुसन्धान किया जाय। सरकार की सहयोगिता व सद्भावना आयुर्वेद के साथ उसी प्रकार होनी चाहिये जिस प्रकार खादी व अन्य धन्धों के लिये है। आयुर्वेदोन्नति के लिये यह आवश्यक है कि सरकार भी शीघ्रातिशीघ्र सभी प्रतिबन्धों को हटायें।

## माण्डला फोर्ट में सभा

माण्डला फोर्ट में बैद्यनाथ-औषधियों के विशिष्ट एजेण्ट की ओर से धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर एक सभा का आयोजन किया गया। सभा में स्थानीय वैद्य-हकीम-डाक्टर और सम्भ्रान्त नागरिक अच्छी संख्या में एकत्र हुए। श्री दिगम्बर दत्तजी शर्मा ने सभापति का आसन ग्रहण किया। सर्वप्रथम श्री बलराम मोदी ने स्वागत-भाषण किया। तत्पश्चात् आगत वैद्य-हकीमों में से कुछ वैद्यों के सामयिक भाषण हुए। दोनों प्रस्ताव भी सभा में उपस्थित किए गये और सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित हुए। अन्त में सभापतिजी ने अपने भाषण में आयुर्वेद-विज्ञान की वास्तविक उन्नति के लिए वैद्यों से संगठित होकर कार्य करने तथा आयुर्वेद में अनुसन्धान करने का अनुरोध किया। बैद्यनाथ संस्थान द्वारा किए जा रहे आयुर्वेद के विकास-कार्यों की सराहना करते हुए आपने अन्यान्य प्रतिष्ठानों को भी आयुर्वेदोन्नति के लिए कार्य करने की सलाह दी। अन्त में धन्यवाद-ज्ञापन कर सभा की कार्यवाही समाप्त हुई।

## खण्डवा में भव्य सभा

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड के खण्डवा स्थित बिक्री-केन्द्र के तत्वावधान में धन्वन्तरि जयन्ती बड़े उत्साह और समारोह के साथ मनायी गयी। इस अवसर पर वैद्यों एवं आयुर्वेद-प्रेमियों की एक सार्वजनिक सभा डाक्टर पुण्डलीकजी संत (सर्वांगानन्द चैतन्य) की अध्यक्षता में हुई। सर्वप्रथम श्री मदनलालजी भामा ने भगवान धन्वन्तरि का विधिवत् वैदिक पूजन किया। श्री किशनजी भामा ने स्वागत-भाषण दिया। तत्पश्चात् आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा घोषित करने और पाठ्यक्रम तथा स्वास्थ्य-प्रणालियों को समन्वय प्रणाली पर पुनर्गठित करने, केन्द्रीय शासन तथा प्रान्तीय शासन में प्रथम आयुर्वेद विभाग खुलवाने, आयुर्वेद-औषधियों पर से बिक्री-कर हटाने और समस्त प्रान्तों में एक समान पाठ्यक्रम निर्धारित करने, आसव-अरिष्टों से प्रतिबन्ध हटाने आदि के सम्बन्ध में प्रस्ताव श्री केशवरावजी वैद्य ने रखा और उसका समर्थन श्री गनपतिरावजी वैद्य ने किया। धन्वन्तरि जयन्ती, आयुर्वेद विज्ञान और प्रस्तावों के समर्थन में खण्डवा जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष डाक्टर श्रीरामजी कुलकर्णी, आयुर्वेदालंकार, पं० काशीनाथजी शास्त्री, श्री अनोखेलालजी अरझेर वकील आदि वक्ताओं के भाषण हुए। समागत प्रमुख व्यक्तियों में खण्डवा के सिविल सर्जन डाक्टर वि० पु संत, श्री वैद्य दामोदरजी शास्त्री, पं० कृष्णरावजी सितो वैद्य, श्री दुलीचन्दजी जैन वकील, पं० भागीरथजी शास्त्री

आदि महानुभावों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। धन्यवाद के पश्चात् कार्यवाही समाप्त हुई।

## छतरपुर में भव्य सभा

छतरपुर में श्री रामनाथ मुकुन्दीलाल की ओर से भगवान धन्वन्तरि की जयन्ती का उत्सव बड़ी धूमधाम से वैद्यराज देवेन्द्रचन्द्र जोशी के सभापतित्व में मनाया गया, जिसमें स्थानीय वैद्यों के अतिरिक्त नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति भी उपस्थित थे। स्वागत-भाषण के पश्चात् सभा का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ।

श्री रामकृपाल मिश्र, वैद्य मदनमोहन दीक्षित और वैद्य पं० मथुराप्रसाद ने आयुर्वेद की महत्ता बतलायी। श्री लक्ष्मण सिंह जी बघेल ने आयुर्वेद के स्तम्भ वात-पित्त कफ व पंचमहाभूत का विवेचन करते हुए यह पुष्ट किया कि आयुर्वेद पूर्ण वैज्ञानिक है। अन्त में सभापति महोदय ने भाषण दिया। दोनों प्रस्ताव स्वीकृत हुए और धन्यवाद देकर कार्यवाही समाप्त हुई।

## यवतमाल में सभा

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर यवतमाल में बैद्यनाथ औषधियों के विशिष्ट एजेण्ट पं० वृजमोहन शर्मा, साहूकार पेठ की ओर से एक सभा का आयोजन किया गया; जिसमें स्थानीय वैद्य, हकीम, डाक्टर और सम्भ्रान्त नागरिक बड़ी संख्या में एकत्र हुए। भगवान धन्वन्तरि की विधिवत् पूजा के बाद सभा की कार्यवाही वैद्य पुरुषोत्तम लक्ष्मण भट्ट की अध्यक्षता में आरम्भ हुई। सर्वप्रथम श्री रामेश्वर प्रसाद जोशी ने स्वागत-भाषण पढ़ा। तत्पश्चात् कई वैद्यों-हकीमों के सामयिक भाषण हुए, जिनमें आयुर्वेद की उन्नति के हेतु वैद्यों से संगठित होकर कार्य करने का अनुरोध किया गया। आयुर्वेद के उत्थान के लिए बैद्यनाथ-प्रतिष्ठान द्वारा किए जा रहे बहुमुखी प्रयत्नों की सराहना करते हुए वैद्य-समाज से आग्रह किया गया कि वे इन कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। तत्पश्चात् दोनों प्रस्ताव स्वीकृत हुए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भेजी गयीं। सभापतिजी ने अपने भाषण में आयुर्वेद को आधुनिक युगोपयोगी बनाने के लिए वैद्य-समाज से अनुरोध किया। अन्त में धन्यवाद देकर कार्यवाही समाप्त हुई।

## बिलासपुर में सभा

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर बिलासपुर में श्री लक्ष्मी औषधालय की ओर से वैद्य-समाज एवं प्रतिष्ठित सज्जनों की एक आम सभा हुई। सभा का सभापतित्व पं० राजकुमार शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य ने किया। सभा में दोनों प्रस्ताव पास हुए। सर्वप्रथम वैद्य छाजूलाल शर्मा ने स्वागत-भाषण पढ़कर सुनाया। श्री वा० जे० देवरस ने बताया कि पाठ्यक्रम में समानता लाने की नितान्त आवश्यकता है। सभापतिजी ने अपने भाषण में कहा कि शास्त्रोक्त औषधियों पर चमत्कारिक औषध विज्ञापन कानून एवं आसव-अरिष्टों पर मद्य-कर कानून लगाना नितान्त अनुचित तथा अव्यवहारिक है, क्योंकि आसव-अरिष्ट कदापि मद्य की श्रेणी में नहीं आ सकता और शास्त्रोक्त औषधियों के गुण-धर्म चमत्कारिक विज्ञापन की सीमा में नहीं आते। अतः इन कानूनों को और स्वदेशी औषधियों पर लगाये गये अन्य प्रतिबन्धों से आयुर्वेद और यूनानी औषधियों को मुक्त किया जावे। देशी औषधियों का मान निश्चित करने के लिए यदि सरकार आ०-यूनानी के विद्वानों से सम्मति लेकर कोई पृथक् और व्यावहारिक कानून बनाये तो वैद्य-हकीम उसका स्वागत करेंगे।

## रायगढ़ में सभा

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड के रायगढ़स्थ बिक्री-केन्द्र के तत्वावधान में स्थानीय प्रगतिशील आयुर्वेद सम्मेलन के माननीय अध्यक्ष कविराज पं० हरबिलासराय शर्मा के सभापतित्व में धन्वन्तरि जयन्ती का समारोह सोत्साह सम्पन्न हुआ। उक्त अवसर पर प्रगतिशील आयुर्वेद सम्मेलन की कार्यकारिणी के समस्त सदस्य, अन्यान्य वैद्य-बन्धु तथा नगर के विशिष्ट नागरिकगण उपस्थित थे। बिक्री-केन्द्र के व्यवस्थापक पं० किशोरीलाल शर्मा ने स्वागत-भाषण पढ़कर सुनाया। विभिन्न वक्ताओं ने भगवान धन्वन्तरि की जयन्ती की विशेषता, आयुर्वेद के महत्व तथा उसके विकास की आवश्यकता के विषय में अपने विचार व्यक्त किये। तत्पश्चात् आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति घोषित करने के सम्बन्ध में दो प्रस्ताव पारित किये गये। उक्त प्रस्तावों की प्रतिलिपियाँ, महामाननीय राष्ट्रपति महोदय, केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री तथा मध्यप्रदेश के स्वास्थ्य मन्त्री के पास प्रेषित करने का निर्णय हुआ।

तदनन्तर व्यवस्थापक महोदय ने उपस्थित सज्जनों को धन्यवाद दिया तथा प्रसाद-वितरण के पश्चात् समारोह समाप्त हुआ।

## रायपुर में आयोजन

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर रायपुर में बैद्यनाथ औषधियों के प्रमुख बिक्रेता की ओर से एक सभा का भव्य आयोजन पं० बावनराम जी शर्मा की अध्यक्षता में किया गया जिसमें स्थानीय सभी प्रमुख वैद्य, हकीम डाक्टर और संभ्रान्त नागरिक उपस्थित थे। भगवान धन्वन्तरि की विधिवत पूजा के बाद सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। सर्वप्रथम आयोजक महोदय ने स्वागत-भाषण पढ़ा। तदुपरान्त समागत विद्वान वैद्यों एवं हकीमों के अत्यन्त सामयिक भाषण हुए, जिनमें आयुर्वेद की उन्नति के हेतु वैद्यों से संगठित होने की मार्मिक अपील की गयी। वैद्यनाथ-प्रतिष्ठान द्वारा आयुर्वेदोत्थान के लिए हो रहे बहुमुखी प्रयत्नों की सराहना करते हुए वैद्य-समाज से आग्रह किया गया कि वे इन कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। इसके बाद सर्व सम्मति से दोनों प्रस्ताव पारित हुए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भेजी गयीं। मनोनीत अध्यक्ष ने आयुर्वेद को युगानुरूप बनाने के लिए वैद्य-समाज से अनुरोध करते हुए अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया। अन्त में धन्यवाद ज्ञापन कर कार्यवाही समाप्त की गयी।

## डोंगरगढ़ में सभा

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर डोंगरगढ (म० प्र०) में बैद्यनाथ औषधियों के विशिष्ट एजेण्ट श्री लक्ष्मण भाई मणि जी चावडा की ओर से एक सभा का भव्य आयोजन किया गया जिसमें स्थानीय वैद्य, हकीम, डाक्टर और संभ्रान्त नागरिक उपस्थित हुए। भगवान धन्वन्तरि की विधिवत् पूजा के बाद सभा की कार्यवाही आरंभ हुई। सर्वप्रथम श्री लक्ष्मण भाई चावडा ने स्वागत-भाषण पढ़ा। तदुपरान्त विद्वान वैद्यों एवं हकीमों के अत्यन्त सामयिक भाषण हुए, जिनमें आयुर्वेद की उन्नति के हेतु वैद्यों से संगठित होने की मार्मिक अपील की गयी। बैद्यनाथ-प्रतिष्ठान द्वारा आयुर्वेदोत्थान के लिए हो रहे बहुमुखी प्रयत्नों की सराहना करते हुए वैद्य-समाज से आग्रह किया गया कि वे इन कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। इसके बाद सर्व सम्मति से दोनों प्रस्ताव पारित हुए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भेजी गयीं। मनोनीत अध्यक्ष ने आयुर्वेद को युगानुरूप बनाने के लिए वैद्य-समाज से अनुरोध करते हुए अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया। अन्त में धन्यवाद-ज्ञापन कर कार्यवाही समाप्त की गयी।

## रीवाँ में जयन्ती-महोत्सव

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर रीवाँ बिक्री केन्द्र में बैद्यनाथ औषधियों के विशिष्ट एजेन्ट श्री गोपीनाथ दूबे की ओर से एक सभा का भव्य आयोजन किया गया, जिसमें स्थानीय वैद्य, हकीम, डाक्टर और संभ्रान्त नागरिक उपस्थित थे। भगवान धन्वन्तरि की विधिवत् पूजा के बाद सभा की कार्यवाही आरंभ हुई। सर्वप्रथम श्री कृष्णबिहारी अवस्थी ने स्वागत-भाषण पढ़ा। तदुपरान्त समागत विद्वान वैद्यों एवं हकीमों के अत्यंत सामयिक भाषण हुए, जिनमें आयुर्वेद की उन्नति के हेतु वैद्यों से संगठित होने की मार्मिक अपील की गयी। बैद्यनाथ-प्रतिष्ठान द्वारा आयुर्वेदोत्थान के लिए किए जा रहे बहुमुखी प्रयत्नों की सराहना करते हुए वैद्य-समाज से आग्रह किया गया कि वे इन कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। इसके बाद सर्वसम्मति से दोनों प्रस्ताव पारित हुए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भेजी गयीं। मनोनीत अध्यक्ष ने आयुर्वेद को युगानुरूप बनाने के लिए वैद्य समाज से अनुरोध करते हुए अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया। अन्त में धन्यवाद देकर कार्यवाही समाप्त की गयी।

## सतना में समारोह

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर सतना (म० प्र०) में बैद्यनाथ औषधियों के विशिष्ट एजेण्ट की ओर से एक सभा का भव्य आयोजन किया गया, जिसमें स्थानीय वैद्य, हकीम, डाक्टर और संभ्रान्त नागरिक उपस्थित हुए। भगवान धन्वन्तरि की विधिवत् पूजा के बाद सभा की कार्यवाही आरम्भ हुई। सर्वप्रथम श्री वैद्य उमादत्त जी ने स्वागत-भाषण पढ़ा। तदुपरान्त समागत विद्वान वैद्यों एवं हकीमों के अत्यंन्त सामयिक भाषण हुए, जिनमें आयुर्वेद की उन्नति के हेतु वैद्यों से संगठित होने की मार्मिक अपील की गयी। वैद्यनाथ-प्रतिष्ठान द्वारा आयुर्वेदोत्थान के लिए किए जा रहे बहुमुखी प्रयत्नों की सराहना

श्री धन्वन्तरि जयन्ती समारोह
निर्माण शाला नागपूर
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन (प्रायवेट) लि.
ग्रेट नाग रोड नागपूर

नागपुर स्थित वैद्यनाथ-निर्माणशाला में आयोजित वैद्य-सभा के दो दृश्य (बाएं) श्री ग्यारसी लाल मोदी स्वागत-भाषण करते दिखाई दे रहे हैं और (दाएं) भगवान धन्वन्तरि को पुष्पांजलि समर्पित की जा रही है।

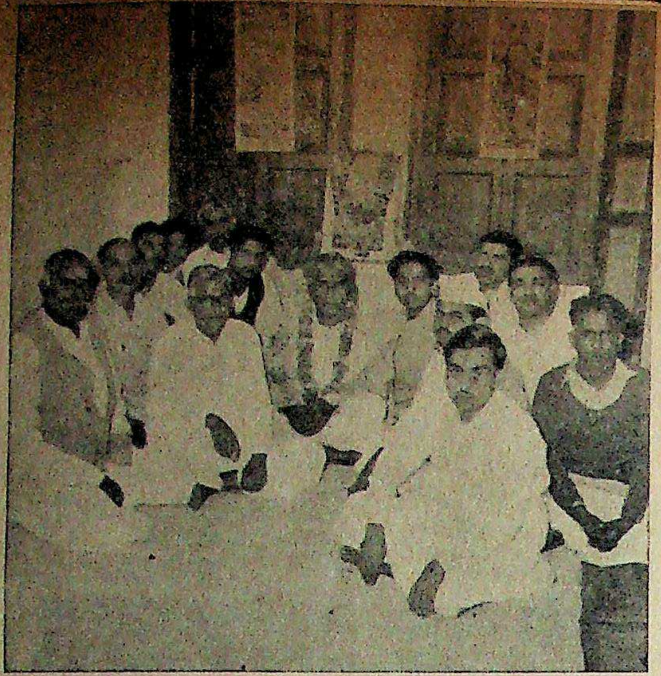

धन्वन्तरि जयन्ती पर इलाहाबाद में आयोजित वैद्य-सभा

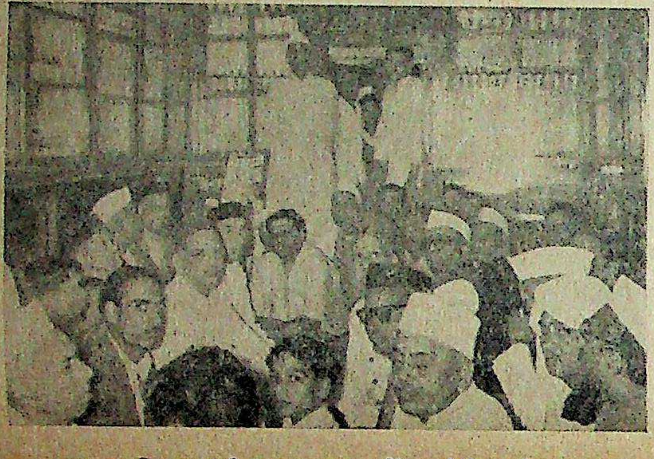

धन्वन्तरि जयन्ती पर लखनऊ में आयोजित वैद्य सभा

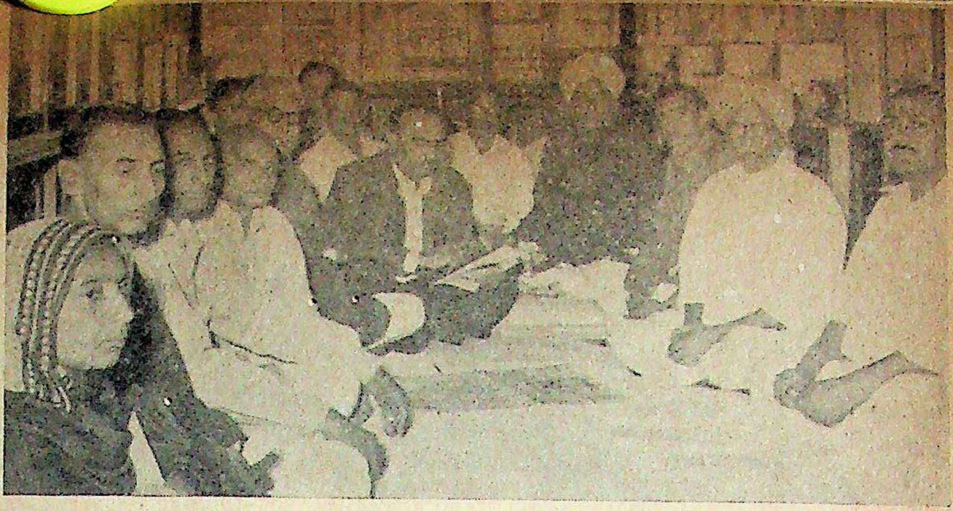

धन्वन्तरि जयन्ती पर देहरादून में आयोजित वैद्य-सभा का एक भव्य दृश्य

करते हुए वैद्य-समाज से आग्रह किया गया कि वे इन कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। इसके बाद सर्व सम्मति से दोनों प्रस्ताव पारित हुए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भेजी गयीं। मनोनीत अध्यक्ष ने आयुर्वेद को युगानुरूप बनाने के लिए वैद्य-समाज से अनुरोध करते हुए अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया। अन्तमें सधन्यवाद कार्यवाही समाप्त की गयी।

## सागर में भव्य आयोजन

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर कटरा बाजार, सागर (म०प्र०) में बैद्यनाथ औषधियों के विशिष्ट एजेण्ट श्री जगदीश प्रसाद शर्मा की ओर एक सभा का भव्य आयोजन किया गया, जिसमें स्थानीय वैद्य, हकीम, डाक्टर और सम्भ्रान्त नागरिक बड़ी संख्या में सम्मिलित हुए। भगवान धन्वन्तरि की विधिवत् पूजा के बाद सभा की कार्यवाही आरम्भ हुई। सर्व प्रथम श्री जगदीश शर्मा ने स्वागत-भाषण पढ़ा। तदनन्तर आगत विद्वान् वैद्यों एवं सज्जनों के आयुर्वेदोपयोगी भाषण हुए, जिनमें आयुर्वेद की उन्नति के हेतु वैद्यों से एकतावद्ध होने की मार्मिक अपील की गयी। आयुवदोत्थान के लिए वैद्यनाथ-प्रतिष्ठान द्वारा किए जा रहे बहुमुखी प्रयत्नों की सराहना करते हुए वैद्य-समाज से आग्रह किया गया कि इन कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। इसके बाद सर्वसम्मति से दोनों प्रस्ताव पारित किए गए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भेजी गयीं। मनोनीत अध्यक्ष ने आयुर्वेद को युगानुरूप बनाने के लिए वैद्य-समाज से अनुरोध करते हुए अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया। अन्त में सधन्यवाद कार्यवाही समाप्त हुई।

## गोंदिया में समारोह

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर गोंदिया में बैद्यनाथ औषधियों के विशिष्ट एजेण्ट वैद्य बजरंग लाल शर्मा की ओर से एक सभा का भव्य आयोजन किया गया,जिसमें स्थानीय वैद्य, हकीम, डाक्टर और सम्भ्रान्त नागरिक बड़ी संख्या में सम्मिलित हुए। भगवान धन्वन्तरि की विधिवत् पूजा के बाद सभा की कार्यवाही आरंभ हुई। सर्व प्रथम बिक्री-केन्द्र के व्यवस्थापक ने स्वागत-भाषण पढ़ा। तदनन्तर आगत विद्वान वैद्यों एवं सज्जनों के आयुर्वेदोपयोगी भाषण हुए,जिनमें आयुर्वेद की उन्नति के हेतु वैद्यों से एकतावद्ध होने की मार्मिक अपील की गयी। आयुर्वेदोत्थान के लिए बैद्यनाथ-प्रतिष्ठान द्वारा किए जा रहे बहुमुखी प्रयत्नों की सराहना करते हुए वैद्य-समाज से आग्रह किया गया कि वे इन कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। इसके बाद सर्वसम्मति से दोनों प्रस्ताव पारित किए गए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भेजी गयीं। मनोनीत अध्यक्ष ने आयुर्वेद को युगानुरूप बनाने के लिए वैद्य-समाज से अनुरोध करते हुए अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया। अन्त में धन्यवाद देकर कार्यवाही समाप्त हुई।

## राजनादगाँव में सभा

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर राजनादगाँव में वैद्यनाथ औषधियों के विशिष्ट एजेन्ट की ओर से एक सभा का भव्य आयोजन किया गया जिसमें स्थानीय वैद्य, हकीम, डाक्टर और संभ्रान्त नागरिक उपस्थित थे। भगवान धन्वन्तरि की विधिवत् पूजा के बाद सभा की कार्यवाही आरंभ हुई। सर्वप्रथम व्यवस्थापक ने स्वागत-भाषण पढ़ा। तदुपरान्त समागत विद्वान वैद्यों एवं हकीमों के अत्यन्त सामयिक भाषण हुए, जिनमें आयुर्वेद की उन्नति के हेतु वैद्यों से संगठित होने की मार्मिक अपील की गयी। वैद्यनाथ-प्रतिष्ठान द्वारा आयुर्वेदोत्थान के लिए हो रहे बहुमुखी प्रयत्नों की सराहना करते हुए वैद्य-समाज से आग्रह किया गया कि वे इन कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। इसके बाद सर्व सम्मति से दोनों प्रस्ताव पारित हुए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भेजी गयीं। मनोनीत अध्यक्ष ने आयुर्वेद को युगानुरूप बनाने के लिए वैद्य-समाज से अनुरोध करते हुए अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया। अन्त में धन्यवाद-ज्ञापन कर कार्यवाही समाप्त की गयी।

# राजस्थान.

## बीकानेर में सभा

बीकानेर में महन्त श्री भगवती दास जी के सभापतित्व में डा० जे० सेन एण्ड सन्स की ओर से धन्वन्तरि जयन्ती समारोह पर एक आम सभा हुई। इस सभा में बीकानेर के माने हुए वैद्य एवं अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति मौजूद थे। सर्व प्रथम श्री गंगादासजी वैद्य ने धन्वन्तरि भगवान का

पूजन बड़े उत्साह के साथ किया। तत्पश्चात् वैद्य श्री कृष्णकान्तजी आयुर्वेदाचार्य ने स्वागत-भाषण एवं प्रस्ताव पढ़कर सुनाए। सभी प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुए। वैद्य श्री मखनलाल शास्त्री ने धन्वन्तरि त्रयोदशी का महत्व बतलाया। इसी प्रकार अन्य वैद्यों के भाषण होने के पश्चात् सभापति महोदय ने एक ओजस्वी एवं सारगर्भित भाषण दिया। अन्त में धन्यवाद देकर सभा समाप्त हुई।

## जोधपुर में समारोह

जोधपुर में श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० की शाखा श्री जोधपुर आयुर्वेदिक स्टोर्स की ओर से धन्वन्तरि जयन्ती समारोह बड़ी धूमधाम से मनाया गया। विद्वान वेदपाठी पण्डितों के निर्देशन में श्री भगवान धन्वन्तरि की विधिवत् प्रथमतः पूजा समवेत समस्त वैद्यों द्वारा की गई। तत्पश्चात् वैद्यराज श्री मनसाराम जी आयुर्वेदाचार्य महाशय की अध्यक्षता में विराट सभा का आयोजन किया गया।

सर्व प्रथम कविराज श्रीतोष द्वारा स्वागत-भाषण किया गया। तत्पश्चात् वैद्य ऋषिदेव भिषगाचार्य द्वारा प्रस्ताव उपस्थित किये गये और सभी वैद्यों ने इसे स्वीकृत किया। सभापतिजी के सामयिक भाषण के बाद धन्यवाद देकर कार्यवाही समाप्त हुई।

## भरतपुर में भव्य सभा

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर भरतपुर में बैद्यनाथ औषधियों के प्रमुख बिक्रेता श्री राधारमण एण्ड ब्रादर्स की ओर से एक सभा का भव्य आयोजन किया गया, जिसमें स्थानीय सभी प्रमुख वैद्य, हकीम, डाक्टर और संभ्रान्त नागरिक उपस्थित थे। भगवान धन्वन्तरि की विधिवत् पूजा के बाद श्रीलादूराम जी चतुर्वेदी की अध्यक्षता में सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। सर्व प्रथम राजकीय औषधालय के प्रधान वैद्य ने स्वागत-भाषण पढ़ा। तदुपरान्त समागत विद्वान् वैद्यों एवं हकीमों के अत्यन्त सामयिक भाषण हुए, जिनमें आयुर्वेद की उन्नति के हेतु वैद्यों से संगठित होने की मार्मिक अपील की गयी। बैद्यनाथ प्रतिष्ठान द्वारा आयुर्वेदोत्थान के लिए हो रहे बहुमुखी प्रयत्नों की सराहना करते हुए वैद्य-समाज से आग्रह किया गया कि वे इन कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। इसके बाद सर्वसम्मति से दोनों प्रस्ताव पारित हुए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भेजी गयीं। मनोनीत अध्यक्ष ने आयुर्वेद को युगानुरूप बनाने के लिए वैद्य-समाज से अनुरोध करते हुए अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया। अन्त में धन्यवाद देकर सभा समाप्त की गयी।

## फतेहपुर में सभा

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर फतेहपुर (राजस्थान) में बैद्यनाथ औषधियों के प्रमुख बिक्रेता जीवन आयुर्वेदिक स्टोर्स की ओर से एक सभा का भव्य आयोजन किया गया, जिसमें स्थानीय सभी प्रमुख वैद्य, हकीम, डाक्टर और संभ्रान्त नागरिक उपस्थित थे। भगवान धन्वन्तरि की विधिवत् पूजा के बाद सभा की कार्यवाही पं० मनवोधन जी वैद्य की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुई। सर्वप्रथम प० अञ्जनीकुमार वैद्य ने स्वागत-भाषण पढ़ा। तदुपरान्त समागत विद्वान वैद्यों एव हकीमों के अत्यन्त सामयिक भाषण हुए, जिनमें आयुर्वेद की उन्नति के हेतु वैद्यों से संगठित होने की मार्मिक अपील की गयी। बैद्यनाथ-प्रतिष्ठान द्वारा आयुर्वेदोत्थान के लिए हो रहे बहुमुखी प्रयत्नों की सराहना करते हुए वैद्य-समाज से आग्रह किया गया कि वे इन कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। इसके बाद सर्वसम्मति से दोनों प्रस्ताव पारित हुए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भेजी गयीं। मनोनीत अध्यक्ष ने आयुर्वेद को युगानुरूप बनाने के लिए वैद्य-समाज से अनुरोध करते हुए अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया। अन्तमें धन्यवाद देकर सभा समाप्त की गयी।

## अजमेर में समारोह

अजमेर आयुर्वेदिक स्टोर्स में डा० श्री अम्बालालजी के सभापतित्व में श्री धन्वन्तरि जयन्ती बड़े समारोह के साथ मनाई गई। समारोह में नगर के सभी वैद्य बन्धु और प्रतिष्ठित जन उपस्थित थे। भगवान धन्वन्तरि के पूजन के पश्चात् वैद्य श्री ब्रह्मानन्द जी ने धन्वन्तरि-जयन्ती के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए आयुर्वेद की उपयोगिता बतायी। इसके बाद श्री हरिगोपाल दुबे, श्रीचन्द्र वैद्य, श्री लीलाधर वैद्य के भाषण हुए। श्री गोपालकृष्ण वैद्य ने कविता-पाठ किया। अन्तमें दो प्रस्ताव पास हुए। सभापति महोदय ने आयुर्वेद पर सारगर्भित भाषण दिया। अन्तमें प्रसाद वितरण कर उत्सव समाप्त हुआ।

## उदयभानगंज (धौलपुर में) समारोह

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर उदयभानगंज (धौलपुर) में बैद्यनाथ औषधियों के प्रमुख बिक्रेता श्री भीखाराम रामदयाल की ओर से एक सभा का भव्य आयोजन किया गया, जिसमें स्थानीय सभी प्रमुख वैद्य, हकीम, डाक्टर और संभ्रान्त नागरिक उपस्थित हुए। भगवान धन्वन्तरि की विधिवत् पूजा के बाद सभा की कार्यवाही डा० राजबहादुर सिंह वैद्य एम० एल० ए० के सभापतित्व में प्रारम्भ हुई। सर्वप्रथम श्री विश्वम्भर दयाल जी ने स्वागत-भाषण पढ़ा तदुपरान्त समागत विद्वान वैद्यों एवं हकीमों के अत्यन्त सामयिक भाषण हुए, जिनमें आयुर्वेद की उन्नति के हेतु वैद्यों से सगठित होने की मार्मिक अपील की गयी। बैद्यनाथ-प्रतिष्ठान द्वारा आयुर्वेदोत्थान के लिए हो रहे बहुमुखी प्रयत्नों की सराहना करते हुए वैद्य-समाज से आग्रह किया गया कि वे इन कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। इसके बाद सर्व-सम्मति से दोनों प्रस्ताव पारित हुए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भेजी गयीं। मनोनीत अध्यक्ष ने आयुर्वेद को युगानुरूप बनाने के लिए बैद्य-समाज से अनुरोध करते हुए अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया। अन्त में धन्यवाद देकर सभा समाप्त की गयी।

## हिण्डौन सिटी में समारोह

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर हिण्डौन सिटी में बैद्यनाथ औषधियों के प्रमुख बिक्रेता श्री गनेशीलाल रामस्वरूप की ओर से एक सभा का भव्य आयोजन किया गया, जिसमें स्थानीय सभी प्रमुख वैद्य, हकीम, डाक्टर और संभ्रान्त नागरिक उपस्थित थे। भगवान धन्वन्तरि की विधिवत् पूजा के बाद सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। सर्वप्रथम श्री शान्तिस्वरूप जी ने स्वागत-भाषण पढ़ा। तदुपरान्त समागत विद्वान वैद्यों एवं हकीमों के अत्यन्त सामयिक भाषण हुए, जिनमें आयुर्वेद की उन्नति के हेतु वैद्यों से संगठित होने की मार्मिक अपील की गयी। बैद्यनाथ—प्रतिष्ठान द्वारा आयुर्वेदोत्थान के लिए हो रहे बहुमुखी प्रयत्नों की सराहना करते हुए वैद्य-समाज से आग्रह किया गया कि वे इन कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। इसके बाद सर्व-सम्मति से दोनों प्रस्ताव पारित हुए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भेजी गयीं। मनोनीत अध्यक्ष ने आयुर्वेद को युगानुरूप बनाने के लिए बैद्य-समाज से अनुरोध करते हुए अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया। अन्त में धन्यवाद देकर सभा समाप्त की गयी।

## अलवर में सभा

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर अलवर में बैद्यनाथ औषधियों के प्रमुख बिक्रेता अग्रवाल मेडिकल स्टोर्स की ओर से एक सभा का भव्य आयोजन किया गया, जिसमें स्थानीय सभी प्रमुख वैद्य, हकीम, डाक्टर और संभ्रान्त नागरिक उपस्थित थे। भगवान धन्वन्तरि की विधिवत् पूजा के बाद सभा की कार्यवाही श्री श्रीमन्नारायणशास्त्री के सभापतित्व में प्रारम्भ हुई। सर्व प्रथम केन्द्र-व्यवस्थापक ने स्वागत-भाषण पढ़ा। तदुपरान्त समागत विद्वान वैद्यों एवं हकीमों के अत्यन्त सामयिक भाषण हुए, जिनमें आयुर्वेद की उन्नति के हेतु वैद्यों से संगठित होने की मार्मिक अपील की गयी। बैद्यनाथ-प्रतिष्ठान द्वारा आयुर्वेदोत्थान के लिए हो रहे बहुमुखी प्रयत्नों की सराहना करते हुए वैद्य-समाज से आग्रह किया गया कि वे इन कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। इसके बाद सर्व सम्मति से दोनों प्रस्ताव पारित हुए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भेजी गयीं। मनोनीत अध्यक्ष ने आयुर्वेद को युगानुरूप बनाने के लिए बैद्य-समाज से अनुरोध करते हुए अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया। अन्तमें धन्यवाद-ज्ञापन कर कार्यवाही समाप्त की गयी।

## गंगानगर में समारोह

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर श्री गंगानगर में बैद्यनाथ औषधियों के प्रमुख बिक्रेता श्री मोहनलाल महेन्द्रपाल की ओर से एक सभा का भव्य आयोजन किया गया, जिसमें स्थानीय सभी प्रमुख वैद्य, हकीम, डाक्टर और संभ्रान्त नागरिक उपस्थित हुए। भगवान धन्वन्तरि की विधिवत् पूजा के बाद सभा की कार्यवाही वैद्य श्री मणिराम जी शर्मा गौड़ भिषक्मणि के सभापतित्व में प्रारम्भ हुई। सर्व-प्रथम केन्द्र-व्यवस्थापक ने स्वागत-भाषण पढ़ा। तदुपरान्त समागत विद्वान वैद्यों एवं हकीमों के अत्यन्त सामयिक भाषण हुए, जिनमें आयुर्वेद की उन्नति के हेतु वैद्यों से संगठित होने की मार्मिक अपील की गयी। बैद्यनाथ प्रतिष्ठान द्वारा आयुर्वेदोत्थान के लिए हो रहे बहुमुखी

प्रयत्नों की सराहना करते हुए वैद्य-समाज से आग्रह किया गया कि वे इन कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। इसके बाद सर्व-सम्मति से दोनों प्रस्ताव पारित हुए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भेजी गयीं। मनोनीत अध्यक्ष ने आयुर्वेद को युगानुरूप बनाने के लिए वैद्य-समाज से अनुरोध करते हुए अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया। अन्त में धन्यवाद देकर सभा समाप्त की गयी।

# पंजाब

## जलन्धर में समारोह

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर जलन्धर में बैद्यनाथ औषधियों के विशिष्ट एजण्ट श्री जलंधर आयुर्वेदिक स्टोर्स की ओर से एक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें स्थानीय वैद्य, हकीम, डाक्टर और सम्भ्रान्त नागरिक बड़ी संख्या में एकत्र हुए। भगवान धन्वन्तरि की विधिवत् पूजा के बाद कविराज सतीन्द्रनाथ बसु के सभापतित्व में सभा की कार्यवाही आरम्भ हुई। सर्वप्रथम श्री सुदर्शन कुमारजी ने स्वागत-भाषण पढ़ा। तत्पश्चात् कई वैद्यों-हकीमों के सामयिक भाषण हुए, जिनमें आयुर्वेद की उन्नति के हेतु वद्यों से संगठित होकर कार्य करने का अनुरोध किया गया। आयुवद के उत्थान के लिए बैद्यनाथ-प्रतिष्ठान द्वारा किये जा रहे बहुमुखी प्रयत्नों की सराहना करते हुए वैद्य-समाज से आग्रह किया गया कि वे इन कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। तत्पश्चात् दोनों प्रस्ताव स्वीकृत हुए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भजी गयीं। सभापतिजी ने अपने भाषण में आयुर्वेद को आधनिक युगोपयोगी बनाने के लिए वद्य-समाज से अनुरोध किया। अन्त में धन्यवाद देकर कार्यवाही समाप्त हुई।

## अमृतसर में भव्य समारोह

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर अमृतसर में बद्यनाथ औषधियों के विशिष्ट एजेण्ट पं० कन्हैयालाल शंकरदत्त शर्मा की ओर से एक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें स्थानीय वैद्य, हकीम, डाक्टर और सम्भ्रान्त नागरिक बड़ी संख्या में एकत्र हुए। भगवान धन्वन्तरि की विधिवत् पूजा के बाद सभा की कार्यवाही श्री बलराम दास टण्डन एम. एल. ए. की अध्यक्षता म आरम्भ हुई। सर्व प्रथम श्री शंकरदत्त शर्मा ने स्वागत-भाषण पढ़ा। तत्पश्चात् कई वैद्यों, हकीमों, के सामयिक भाषण हुए, जिनमें आयर्वेद की उन्नति के हेतु वैद्यों से संगठित होकर कार्य करने का अनुरोध किया गया। आयुर्वेद के उत्थान के लिए बैद्यनाथ-प्रतिष्ठान द्वारा किये जा रहे बहुमुखी प्रयत्नों की सराहना करते हुए वैद्य-समाज से अनुरोध किया गया कि वे इन कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। तत्पश्चात दोनों प्रस्ताव स्वीकृत हुए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भेजी गयीं। सभापतिजी ने अपने भाषण में आयुर्वेद को आधुनिक युगोपयोगी बनाने के लिए वैद्य-समाज से अनुरोध किया। अन्त में धन्यवाद देकर कार्यवाही समाप्त हुई।

## रेवाड़ी में भव्य सभा

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर रेवाड़ी में बैद्यनाथ औषधियों के विशिष्ट एजेंट श्री भगवान औषध भण्डार की ओर से एक सभा का भव्य आयोजन किया गया, जिसमें स्थानीय वैद्य, हकीम, डाक्टर और सम्भ्रान्त नागरिक बड़ी संख्या में सम्मिलित हुए। भगवान धन्वन्तरि की विधिवत् पूजा के बाद सभा की कार्यवाही वैद्य-डा० त्रिलोकीनाथजी की अध्यक्षता में आरंभ हुई। सर्वप्रथम केन्द्र-व्यवस्थापक ने स्वागत-भाषण पढ़ा। तदनन्तर आगत विद्वान वैद्यों एवं सज्जनों के आयुर्वेदोपयोगी भाषण हुए, जिनमें आयुवद की उन्नति के हेतु वैद्यों से एकतावद्ध होने की मार्मिक अपील की गयी। आयुर्वेदोत्थान के लिए बैद्यनाथ-प्रतिष्ठान द्वारा किए गए जा रहे बहुमुखी प्रयत्नों की सराहना करते हुए वैद्य-समाज से आग्रह किया गया कि वे इन कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। इसके बाद सर्व सम्मति से दोनों प्रस्ताव पारित किए गए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भेजी गयीं। मनोनीत अध्यक्ष ने आयुर्वेद को युगानुरूप बनाने के लिए वैद्य-समाज से अनुरोध करते हुए अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया। अन्त में सधन्यवाद कार्यवाही समाप्त हुई।

## अम्बाला में समारोह

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर अम्बाला छावनी में बैद्यनाथ औषधियों के विशिष्ट एजेण्ट श्री कैलाश आयुर्वेदिक स्टोर्स की ओर से एक सभा का भव्य आयोजन किया गया, जिसमें स्थानीय वैद्य, हकीम, डाक्टर और संभ्रान्त नागरिक उपस्थित थे। भगवान धन्वन्तरि की विधिवत् पूजा के बाद सभा की कार्यवाही आरंभ हुई। सर्व-प्रथम केन्द्र व्यवस्थापक ने स्वागत-भाषण पढ़ा। तदुपरान्त समागत विद्वान वैद्यों एवं हकीमों के अत्यंत सामयिक भाषण हुए, जिनमें आयुर्वेद की उन्नति के हेतु वैद्यों से संगठित होने की मार्मिक अपील की गयी। वैद्यनाथ-प्रतिष्ठान द्वारा आयुर्वेदोत्थान के लिए किए जा रहे बहुमुखी प्रयत्नों की सराहना करते हुए वैद्य-समाज से आग्रह किया गया कि वे इन कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। इसके बाद सर्व सम्मति से दोनों प्रस्ताव पारित हुए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भेजी गयीं। मनोनीत अध्यक्ष ने आयुर्वेद को युगानुरूप बनाने के लिए वैद्य-समाज से अनुरोध करते हुए अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया। अन्त में सधन्यवाद कार्यवाही समाप्त की गयी।

# आंध्र प्रदेश

## हैदराबाद में समारोह

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड के हैदराबाद (भाग्यनगर) स्थित बिक्री केन्द्र में आयुर्वेद के प्रवर्तक भगवान धन्वन्तरि जी की जयन्ती समारोहपूर्वक मनाई गई। समारोह का उद्घाटन स्थानीय नगरपालिका के मेयर श्री कृष्णस्वामी मुदिराज के कर-कमलों द्वारा संपन्न हुआ। श्री सी० के० दिवाकरन् प्रिंसिपल राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, हैदराबाद ने अध्यक्ष-पद ग्रहण किया। सर्व प्रथम भगवान धन्वन्तरि जी की वन्दना की गई। मेयर महोदय ने भगवान धन्वन्तरि के चित्र का अनावरण करते हुए आयुर्वेद की उपयोगिता एवं महत्ता समझायी। इसके पश्चात् पं० कृष्णदेवजी शास्त्री ने स्वागत भाषण प्रस्तुत किया। समारोह में नगर के सभी गण्यमान्य वैद्य-हकीमों के अतिरिक्त अन्य नागरिकों ने भी भाग लिया।

श्री सी० के० दिवाकरन् ने आयुर्वेद की उन्नति के उपायों पर विवेचन किया। तदुपरान्त अन्य आयुर्वेद विशेषज्ञों एवं विद्वानों के ओजस्वी भाषण हुए जिसमें सर्वश्री विद्याधर जी विद्यालंकार, श्री गोवर्धनजी शर्मा वैद्यराज, श्री मोहन लालजी के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं। इसके पश्चात् सभी प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए। तदुपरान्त बिक्री केन्द्र व्यवस्थापक वैद्यराज जयरामदासजी द्वारा सभी आगन्तुक महानुभावों को धन्यवाद प्रदान करते हुए सभा का विसर्जन किया गया।

## नवीपेट (निजामाबाद) में सभा

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर नवीपेट, निजामाबाद में बैद्यनाथ औषधियों के प्रमुख बिक्रेता सूचीवेध उत्तम औषधालय की ओर से एक सभा का आयोजन किया गया। भगवान धन्वन्तरिकी विधिवत् पूजाके बाद सभा की कार्यवाही श्री द्विजराज शास्त्री के सभापतित्व में प्रारम्भ हुई। सर्व-प्रथम डा० लक्ष्मणराव आर्य वैद्यशास्त्री ने स्वागत-भाषण पढ़ा। तदुपरान्त समागत विद्वान वैद्यों एवं हकीमों के अत्यन्त सामयिक भाषण हुए, जिनमें आयुर्वेद की उन्नति के हेतु वैद्यों से संगठित होने की मार्मिक अपील की गयी। बैद्यनाथ-प्रतिष्ठान द्वारा आयुर्वेदोत्थान के लिए हो रहे बहुमुखी प्रयत्नों की सराहना करते हुए वैद्य-समाज से आग्रह किया गया कि वे इन कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। इसके बाद सर्व सम्मति से दोनों प्रस्ताव पारित हुए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भेजी गयीं। मनोनीत अध्यक्ष ने आयुर्वेद को युगानुरूप बनाने के लिए वैद्य-समाज से अनुरोध करते हुए अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया। अन्त में धन्यवाद-ज्ञापन कर कार्यवाही समाप्त की गयी।

## गांधीगंज (निजामाबाद) में सभा

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर गांधीगंज, निजामाबाद में बैद्यनाथ औषधियों के विशष्टि एजेण्ट वैद्य आर. जी. शर्मा की ओर से एक सभा का भव्य आयोजन किया गया, जिसमें स्थानीय वैद्य, हकीम, डाक्टर और संभ्रांत नागरिक

उपस्थित थे। भगवान धन्वन्तरि की विधिवत् पूजा के बाद सभाकी कार्यवाही प० रामानुजस्वामी आयुर्वेदाचार्य की अध्यक्षता में आरम्भ हुई। सर्वप्रथम वैद्य रतनलाल शर्मा ने स्वागत-भाषण पढ़ा। तदुपरान्त समागत विद्वान वैद्यों एवं हकीमों के अत्यन्त सामयिक भाषण हुए, जिनमें आयुर्वेद की उन्नति के हेतु वैद्यों से संगठित होने की मार्मिक अपील की गयी। वैद्यनाथ-प्रतिष्ठान द्वारा आयुर्वेदोत्थान के लिए हो रहे बहुमुखी प्रयत्नों की सराहना करते हुए वैद्य समाज से आग्रह किया गया कि वे इन कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। इसके बाद सर्व-सम्मति से दोनों प्रस्ताव पारित हुए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भेजी गयीं। मनोनीत अध्यक्ष ने आयुर्वेद को युगानुरूप बनाने के लिए वैद्य-समाज से अनुरोध करते हुए अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया। अन्त में धन्यवाद-ज्ञापन कर कार्यवाही समाप्त की गयी।

### काकीनद में सभा

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर काकीनद में बैद्यनाथ औषधियों के प्रमुख बिक्रेता श्री आयुर्वेद भवन की ओर से एक सभा का भव्य आयोजन किया गया, जिसमें स्थानीय सभी प्रमुख वैद्य, हकीम, डाक्टर और सभ्रांत नागरिक उपस्थित थे। भगवान धन्वन्तरि की विधिवत् पूजा के बाद श्री जी० सुब्रह्मण्यम् शास्त्री गुरु की अध्यक्षता में सभा की कार्यवाही प्रारंभ हुई। सर्व प्रथम श्री एम. बी. ए प्रसाद मूर्ति ने स्वागत-भाषण पढ़ा। तदुपरान्त समागत विद्वान वैद्यों एवं हकीमों के अत्यन्त सामयिक भाषण हुए, जिनमें आयुर्वेद की उन्नति के हेतु वैद्यों से संगठित होने की मार्मिक अपील की गयी। बैद्यनाथ प्रतिष्ठान द्वारा आयुर्वेदोत्थान के लिए हो रहे बहुमुखी प्रयत्नों की सराहना करते हुए वैद्य-समाज से आग्रह किया गया कि इन कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। इसके बाद सर्व-सम्मति से दोनों प्रस्ताव पारित हुए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भेजी गयीं। मनोनीत अध्यक्ष ने आयुर्वेद को युगानुरूप बनाने के लिए वैद्य-समाज से अनुरोध करते हुए अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया। अन्त में धन्यवाद देकर सभा समाप्त की गयी।

## दिल्ली

### राजधानी दिल्ली में समारोह

भगवान धन्वन्तरि के जन्म-दिवस के उपलक्ष में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के दिल्ली स्थित बिक्री-केन्द्र देहली आयुर्वेदिक स्टोर, चाँदनी चौक में कविराज श्री बैद्यनाथ सरकार, अध्यक्ष इण्डियन मेडिसन बोर्ड, दिल्ली के सभापतित्व में एक सभा का आयोजन किया गया। श्री धन्वन्तरि-पूजन के पश्चात् मंगलाचरण से सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। वैद्य शम्भू प्रसाद शर्मा ने आगन्तुक महानुभावों का स्वागत किया। तत्पश्चात् नगर के प्रमुख वैद्य श्री ओंकार प्रसादजी शर्मा, कविराज जागीरामजी गुप्ता, कविराज नित्यानन्दजी वर्मा, कविराज शिवनाथजी कनखल-वाले, हकीम श्री अंजुम साहब, हकीम मोतीरामजी एवं श्री वैद्यराज चन्द्रप्रकाशजी शास्त्री ने आयुर्वेद की उपयोगिता पर प्रकाश डाला।

अध्यक्ष कविराज श्री बैद्यनाथ सरकार ने उपस्थित महानुभावों एवं जन-समूह से निवेदन किया कि आयुर्वेद को पुनः उसका उचित स्थान दिलाने के लिये हमें कठोर परिश्रम एवं त्याग करना होगा। उन्होंने कहा कि बिना त्याग के किसी कार्य में सफलता नहीं मिलती है। जनता की निःस्वार्थ सेवा ही हमें अपना ध्येय बनाना होगा। सभा में दो प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुए और धन्यवाद ज्ञापन कर कार्यवाही समाप्त हुई।

# भारत के विभिन्न स्थानों में धन्वन्तरि-जयन्ती पर सभाएँ

### बिठोराकलाँ (पीलीभीत)

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, बिठौराकलाँ (पीलीभीत) म धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह वैद्य लाला पूत्तूलालजी की अध्यक्षता में सोल्लास मनाया गया। इस समारोह की विशषता यह भी थी कि आस-पास के हिन्दू-मुसलमान सभी सम्मिलित हुए और सब ने मिल कर धन्वन्तरि-पूजन में योगदान किया था। मंगलाचरण के साथ समारोह प्रारंभ हुआ। आगत विद्वानों के भाषण हुए। अध्यक्षीय भाषण के बाद सधन्यवाद सभा विसर्जित की गयी।

### चितबड़ागाँव

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, चितबड़ागाँव में पण्डित जगन्नाथ तिवारी बी० ए० एल० एल० बी० की अध्यक्षता में श्री धन्वन्तरि-जयन्ती-समारोह सुसम्पन्न हुआ। धन्वन्तरि-पूजन के बाद विविध विद्वानों के आयुर्वेद की महत्ता प्रदर्शित करते हुए सारगर्भित भाषण हुए और आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति के रूप में मान्य करने, आयुर्वेद का पृथक् विभाग खोले जाने, आसवारिष्टों पर मद्यकर जैसे कानून समाप्त करने आदि के सम्बन्ध में कतिपय प्रस्ताव स्वीकृत किये गए। साथ ही सरकार से इस आशय की मांग की गयी कि धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर देश भर में राजकीय स्तर पर स्वच्छता सप्ताह का आयोजन किया गया। अध्यक्षीय भाषण और संयोजक द्वारा धन्यवाद-ज्ञापन के पश्चात् समारोह समाप्त हुआ।

### वैदपुरा (इटावा)

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय वैदपुरा (इटावा) में श्री रामप्रताप सिंह बी० ए० एल० एल० बी० की अध्यक्षता में धन्वन्तरि-जयन्ती-समारोह बड़े ही उत्साह के साथ मनाया गया। धन्वन्तरि-पूजन के बाद विद्वान वैद्यों के समयोपयोगी भाषण हुए। वक्ताओं ने आयुर्वेद-शास्त्र में वर्णित दिनचर्या, रात्रिचर्या तथा ऋतुचर्या के बारे में विस्तृत रूप से प्रकाश डाला तथा धन्वन्तरि-दिवस की महत्ता बतायी। समारोह के मनोनीत अध्यक्ष ने अपने भाषण में आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति की जनप्रियता का उल्लेख करते हुए कहा कि आधुनिक चिकित्सा-पद्धतियों के मुकाबले में आयुर्वेद आज भी अधिक गुणवत्ता रखता है। संयोजक द्वारा धन्यवाद-ज्ञापन के बाद उत्सव समाप्त हुआ।

### शाह (फतहपुर)

राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय शाह (फतहपुर) में भगवान धन्वन्तरि का जयन्ती-महोत्सव समारोहपूर्वक ठाकुर मोहन सिंह की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। धन्वन्तरि-पूजन के बाद सभा की कार्यवाही प्रारंभ हुई। आयुर्वेदिक-चिकित्सा-प्रणाली की विशेषताओं का दिग्दर्शन कराते हुए विद्वान वैद्यों ने अपने भाषण में इस बात पर अधिक जोर दिया कि चिरकाल से आयुर्वेद मानव-समाज की सेवा करता आ रहा है और हमारा यह दावा आज भी सही है कि पीड़ित मानवता की आयुर्वेद द्वारा ही अधिकाधिक सेवा हो सकती है। उपस्थित जनसमूह से वक्ताओं ने चिकित्सालय में बन रहे आतुरालय के निर्माण के लिए आर्थिक सहायता की भी अपील की। तदुपरान्त अध्यक्षीय भाषण तथा धन्यवाद-ज्ञापन के बाद कार्यवाही समाप्त हुई।

### सरायममरेज (इलाहाबाद)

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, सरायममरेज इलाहाबाद में श्री धन्वन्तरि जयन्ती-महोत्सव समारोहपूर्वक हकीम माजिद हुसैन साहब की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर आयुर्वेदीय स्वास्थ्य-प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया था। प्रदर्शनकक्ष में नाना प्रकार के चित्रों, मॉडल्स, चार्ट्स तथा विविध सुभाषित व सुलभ वनस्पतियां आकर्षक ढंग से रखी गयी थीं। सभा की कार्यवाही धन्वन्तरि-बंदना के पश्चात् शुरु हुई। आगत विद्वानों के भाषण हुए। विद्वान वक्ताओं ने भगवान् धन्वन्तरि को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए आयुर्वेद की उपयोगिता तथा धन्वन्तरि जयन्ती-महोत्सव के महत्व पर प्रकाश डाला। अध्यक्षीय भाषण तथा धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित की गयी।

### वराई (वाराणसी)

राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय वराई (वाराणसी) में धन्वन्तरि जयन्ती-महोत्सव बड़े समारोह के साथ श्री श्री स्वामी जगन्नाथाचारी की अध्यक्षता में मनाया गया।

भगवान धन्वन्तरि की प्रतिमा पुष्प मालाओं से खूब सजायी गयी थी। मंगलाचरण के साथ सभा की कार्यवाही प्रारंभ हुई। कवितापाठ तथा समस्या-पूर्ति का कार्यक्रम भी बड़ा आकर्षक था। अध्यक्ष ने अपना लिखित भाषण पढ़ कर सुनाया, जो अत्यन्त समयोपयोगी था। अध्यक्षीय भाषण के बाद संयोजक द्वारा आभार-प्रदर्शित किए जाने पर सभा विसर्जित की गयी।

## हरचन्दपुर (रायबरेली)

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय के तत्वावधान में इस वर्ष धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव के शुभ अवसर पर स्वास्थ्य सप्ताह बड़ी धूमधाम से मनाया गया। सप्ताह भर स्वच्छता आन्दोलन, स्वास्थ्य प्रदर्शनी, व्यायाम-प्रदर्शन, आदि का रोचक कार्यक्रम आयोजित किया गया था। ग्रामीण नर-नारियों ने इन कार्यक्रमों में सोत्साह भाग लिया।

त्रयोदशी को जिला जन स्वास्थ्याधिकारी डा० एच० सी० वर्मा के सभापतित्व में सभा हुई। सभा का कार्यारंभ धन्वन्तरि-वन्दना से हुआ। तदुपरान्त चिकित्सालयाध्यक्ष वैद्य श्री परमेश्वर घिल्डियाल ने आगत सज्जनों का स्वागत करते हुए 'धन्वन्तरि जयन्ती' की महत्ता एवं आयुर्वेद के व्यापक सिद्धांतों पर सारगर्भित भाषण देते हुए वैद्य-हकीम बंधुओं से निःस्वार्थ सेवा द्वारा लोकमत जाग्रत करने का आग्रह किया। अन्त में अध्यक्षीय भाषण, धन्यवाद-ज्ञापन एवं प्रसाद-वितरण के बाद सभा विसर्जित हुई।

## होरावाला (देहरादून) में जयन्ती महोत्सव

राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय होरावाला (देहरादून) में धन्वन्तरि जयन्ती ससमारोह मनायी गयी। धन्वन्तरि-पूजन के बाद सभा हुई, जिसमें चिकित्साधिकारी तथा अन्य सज्जनों के भाषण हुए। भाषणों में आयुर्वेद शास्त्र की वैज्ञानिकता एवं श्रेष्ठता पर प्रकाश डाला गया। कतिपय प्रस्ताव भी स्वीकृत किए गए, जिनमें आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा घोषित करने तथा धन्वन्तरि दिवस को राजकीय अवकाश रखने की सरकार से जोरदार मांग की गयी। अन्त में संयोजक द्वारा आभार-प्रदर्शन किए जाने के उपरान्त सभा विसर्जित की गयी।

## शेखपुर (लखनऊ)

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय शेखपुर (लखनऊ) में आयुर्वेद के प्रवर्तक श्री भगवान धन्वन्तरि की जयन्ती पं० लालता प्रसादजी शुक्ल की अध्यक्षता में सोत्साह मनायी गयी। धन्वन्तरि-पूजन के पश्चात् विविध आयुर्वेदीय विद्वानों के भाषण हुए। वक्ताओं ने आयुर्वेद की महत्ता प्रदर्शित करते हुए एकस्वर से यह मांग की कि आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा के पद पर अविलम्ब प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए। अध्यक्षीय भाषण, प्रसाद-वितरण, एवं वैद्य इंचार्ज द्वारा धन्यवाद-ज्ञापन करने के बाद कार्यक्रम समाप्त हुआ।

## नेवरना (उन्नाव)

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय नेवरना (उन्नाव) में धन्वन्तरि-जयन्ती-समारोह बड़े उत्साह के साथ मण्डल कांग्रेस के अध्यक्ष डा० चन्द्रशेखर जी शुक्ल की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। प्रभातफेरी के उपरान्त मुहल्ले की सार्वजनिक तौर पर खूब सफाई की गयी। सायंकाल एक सुसज्जित भव्य पण्डाल में भगवान् धन्वन्तरि की प्रतिमा का षोड़शोपचार पूजन हुआ और सभा हुई। जनता तथा तथा वैद्यों द्वारा श्रद्धांजलि अर्पित किये जाने के बाद 'सदाचार का स्वास्थ्य पर प्रभाव'' विषय पर एक आयुर्वेदीय विद्वान का भाषण हुआ। अध्यक्षीय भाषण, प्रसाद-वितरण तथा धन्यवाद-ज्ञापन के बाद कार्यवाही समाप्त की गयी।

## मुण्डीकोटा

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, मुण्डीकोटा में वैद्य श्री लल्लन प्रसाद पाण्डेय, आयुर्वेदाचार्य की अध्यक्षता में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव समारोहपूर्वक मनाया गया। सर्वप्रथम धन्वन्तरि-पूजन किया गया। तदुपरान्त कतिपय आयुर्वेदिक विद्वानों ने धन्वन्तरि जयन्ती के महत्व तथा आयुर्वेद चिकित्सा-प्रणाली की अच्छाइयों पर प्रकाश डालते हुए जनता से आयुर्वेद को अधिकाधिक अपनाने की अपील की। तदुपरान्त अध्यक्षीय भाषण के बाद वैद्य इन्चार्ज द्वारा आभार-प्रदर्शन किया गया और समारोह समाप्त हुआ। आगत सज्जनों को बैद्यना का प्रचार-साहित्य भी भेंट किया गया।

## गौरी भगवन्तपुर (कानपुर)

धन्वन्तरि-जयन्ती के अवसर पर राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, गौरी भगवन्तपुर (कानपुर) में एक सार्वजनिक सभा आयोजित की गयी, जिसमें आस-पास के प्राय

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर शिकोहाबाद में आयोजित वैद्य सभा का एक भव्य दृश्य

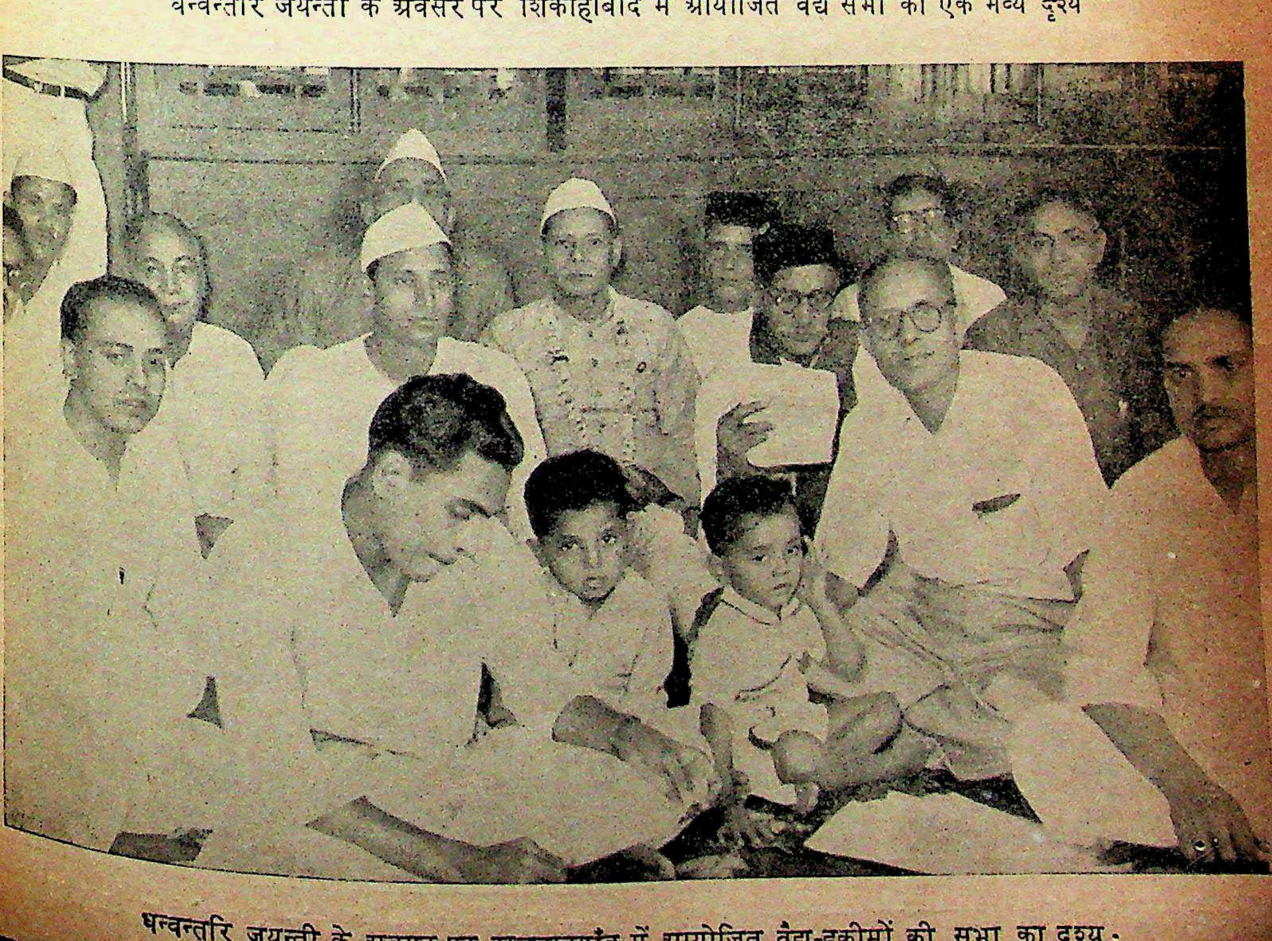

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर राजनादगाँव में आयोजित वैद्य-हकीमों की सभा का दृश्य

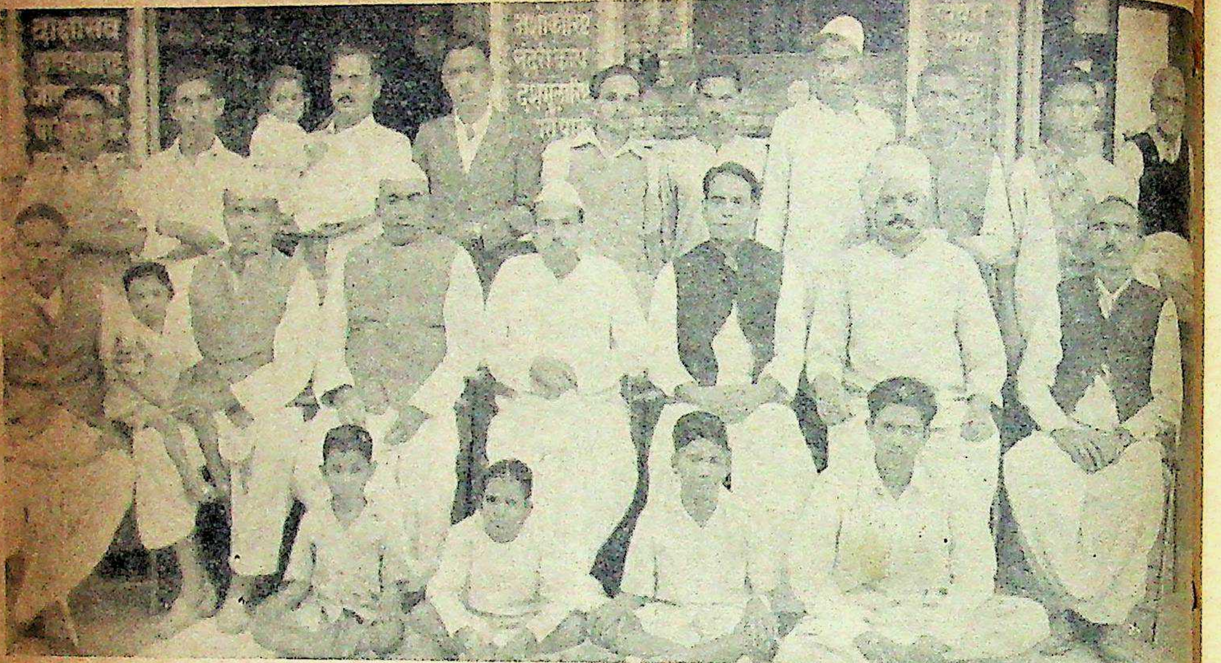

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर फ़तेहपुर में आयोजित वैद्य सभा का एक भव्य दृश्य

जालन्धर में आयोजित वैद्य सभा का एक दृश्य

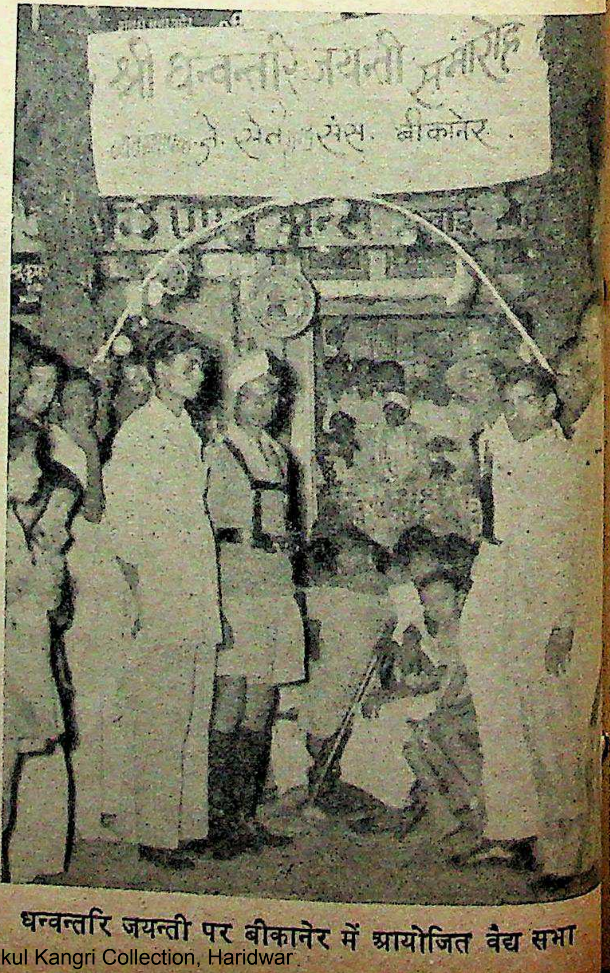
श्री धन्वन्तरि जयन्ती समारोह
संस. बीकानेर

उज्जैन में आयोजित वैद्य सभा का एक दृश्य

धन्वन्तरि जयन्ती पर बीकानेर में आयोजित वैद्य सभा

सभी आयुर्वेदप्रेमियों ने भाग लिया। धन्वन्तरि-पूजन-अर्चन के पश्चात् सभा की कार्यवाही प्रारंभ हुई। वैद्य इन्चार्ज महोदय ने आगत सज्जनों का स्वागत करते हुए कहा कि भगवान् धन्वन्तरि स्वास्थ्य और आयु के अधिनायक देवता हैं। अन्य वक्ताओं ने भी अपने मनोभाव प्रकट किए। अन्त में पंचामृत एवं प्रसाद-वितरण के साथ सभा विसर्जित हुई।

**पलरा (बांदा)**

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय पलरा (बाँदा) में पं० सुरेन्द्रनाथ द्विवेदी की अध्यक्षता में धन्वन्तरि जयन्ती धूमधाम के साथ मनायी गयी। इस अवसर पर प्रभातफेरी-ग्राम-सफाई तथा हवन-कीर्तन हुआ। दोपहर में सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें प्रायः सभी प्रमुख वैद्य सम्मिलित हुए थे। विद्वान वक्ताओं ने अपने सारगर्भित भाषण में आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली की खूबियों पर रोशनी डाली और आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली को अपनाने की जनता से अपील की। अध्यक्षीय भाषण एवं धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित हुई।

**सूपा (हमीरपुर)**

धन्वन्तरि-जयन्ती के उपलक्ष में बड़े समारोह के साथ स्वास्थ्य-सप्ताह ग्राम सूपा (हमीरपुर) स्थित राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय में मनाया गया। भगवान् धन्वन्तरि का विधिवत् पूजन, हवन, कीर्तन एवं प्रसाद-वितरण के पश्चात् नगर के प्रायः समस्त प्रतिष्ठित नागरिकों एवं वैद्यों की एक सभा हुई। समागत विद्वानों ने अपने विद्वत्तापूर्ण भाषणों द्वारा आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डाला। जड़ी-बूटियों की एक प्रदर्शनी भी की गयी। अन्त में वैद्य इंचार्ज द्वारा आभार-प्रदर्शन किए जाने के पश्चात् सभा विसर्जित हुई।

**महाराजगंज (आजमगढ़)**

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, महाराजगंज (आजमगढ़) में इस वर्ष भी धन्वन्तरि-जयन्ती-समारोह श्री रामप्यारे जी मिश्र की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर सामूहिक सफाई का कार्यक्रम बड़ा सफल रहा। सभा में स्थानीय सभी-प्रमुख वैद्य सम्मिलित हुए थे। समागत वैद्यों ने दिवस की महत्ता प्रदर्शित करते हुए जनोपयोगी वक्तृताएँ दीं। तदुपरान्त अध्यक्षीय भाषण एवं वैद्य इंचार्ज द्वारा धन्यवाद-ज्ञापन किए जाने के पश्चात् आयोजन समाप्त हुआ।

**पाली (मारवाड़)**

राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय, पाली (मारवाड़) में धन्वन्तरि पूजनोत्सव ससमारोह मनाया गया। पूजनोत्सव में वैद्य इंचार्ज के अतिरिक्त औषधालय के अन्य कर्मचारी भी सम्मिलित थे। इस अवसर पर सभा का भी आयोजन किया गया था, जिसमें आयुर्वेदीय दृष्टि से महत्वपूर्ण व्याख्यान हुए। अध्यक्षीय भाषण एवं धन्यवाद-ज्ञापन के के बाद आयोजन समाप्त हुआ।

**(वरुकी) बिजनौर**

सदा की भाँति इस वर्ष भी राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय बिजनौर में धन्वन्तरि-जयन्ती के अवसर पर ४ नवम्बर से ११ नवम्बर तक स्वास्थ्य-सप्ताह मनाने का आयोजन किया गया था। इस अवसर पर श्रमदान कार्य भी हुआ और जन-सहयोग तथा स्वेच्छा से किए गए श्रमदान के आधार पर चिकित्सालय भवन का जीर्णोद्धार, ग्राम-सफाई, कूप-शोधन, मार्ग-निर्माण आदि जनोपयोगी कार्य किए गए। धन्वन्तरि दिवस पर प्रभातफेरी, पूजन, हवन, जड़ी-बूटियों की प्रदर्शनी के अतिरिक्त स्थानीय वयोवृद्ध जनसेवी श्री देवी सहाय शुक्ल की अध्यक्षता में सभा हुई। सभा में विविध विद्वानों के भाषण हुए। वक्ताओं ने आयुर्वेद-चिकित्सा-प्रणाली की महत्ता एवं वैज्ञानिकता पर विशद प्रकाश डाला। अध्यक्षीय भाषण के बाद वैद्य इन्चार्ज श्री रामेश्वर दयालु शर्मा द्वारा धन्यवाद-ज्ञापन करने के बाद सभा विसर्जित की गयी।

**मडावरा**

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, मडावरा में धन्वन्तरि-जयन्ती-समारोह सोल्लास मनाया गया। सभामण्डप बड़े आकर्षक ढंग से सजाया गया था। विविध रंगों के बिजली के लट्टुओं से सभास्थल पूर्ण प्रकाशित हो रहा था। पूजन-अर्चन के पश्चात् जयन्ती महोत्सव की महत्ता, आयुर्वेद-शास्त्र की श्रेष्ठता तथा आयुर्वेदीय औषधियों की गुणवत्ता पर प्रकाश डालाते हुए कतिपय विद्वानों के भाषण हुए। अन्त में प्रसाद-वितरण एवं धन्यवाद-ज्ञापन के उपरान्त कार्यवाही समाप्त हुई।

### डूंगरपुर

राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय 'घांटा का गाँव' के तत्वावधान में आयोजित धन्वन्तरि जयन्ती वैद्य श्री यमुनावल्लभ जी भिषगाचार्य की अध्यक्षता में समारोहपूर्वक मनायी गयी। मंगलाचरण के साथ कार्यारंभ हुआ। तदुपरान्त विद्वान वैद्यों के सारगर्भित भाषण हुए। वैद्यों ने आयुर्वेदिक औषधियों को ही उपयोग में लाने की अपील जनता से करते हुए कहा कि आयुर्वेदिक औषधियाँ सस्ते दाम में रोग-निवारण करने में समर्थ हैं। मनोनीत अध्यक्ष ने धन्वन्तरि जयन्ती का महत्व बताते हुए कहा कि आयुर्वेद एक ऐसा विज्ञान है, जो धर्म की रक्षा करते हुए सभी व्याधियों को समूल नष्ट कर सकता है। आपने कहा कि आयुर्वेद का लक्ष्य व्याधिग्रस्त को व्याधि से मुक्त करना तथा स्वस्थ मनुष्यों के स्वास्थ्य का संरक्षण करना है। अन्त में संयोजक के आभार-प्रदर्शन करने के बाद सभा विसर्जित की गयी।

### मूसानगर (कानपुर)

राजकीय आयुर्व्वेद चिकित्सालय, मूसानगर में श्री शिवाधार जी वैद्य की अध्यक्षता में धन्वन्तरि जयन्ती ससमारोह मनायी गयी। इस अवसर पर ग्राम-सफाई का कार्यक्रम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। मंगलाचरण के साथ जयन्ती महोत्सव का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। तदनन्तर धन्वन्तरि दिवस के महत्त्व तथा आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए विविध आयुर्वेदीय विद्वानों ने भाषण दिए। अध्यक्ष द्वारा अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिए जाने के बाद कार्यवाही सधन्यवाद समाप्त की गयी।

### नन्दप्रयाग

राजकीय आयुर्वेदीय चिकित्सालय, नन्द प्रयाग में श्री धन्वन्तरि-जयन्ती-समारोह सोत्साह मनाया गया। उत्सव में भाग लेने के लिए पास-पड़ोस की जनता भारी संख्या में जुटकर आयी थी। सभा-स्थल वन्दनवारों से खूब सजाया गया था। मंगलाचरण के साथ कार्यवाही प्रारंभ हुई। कतिपय प्रतिष्ठित नागरिकों एवं विद्वान आचार्यों के भाषण आयुर्वेद की उपयोगिता पर हुए। अध्यक्ष द्वारा सामयिक और सारगर्भित भाषण दिए जाने के उपरांत सधन्यवाद सभा विसर्जित हुई।

### बिहटा (आरा)

राजकीय औषधालय बिहटा (आरा) के प्रांगण में राष्ट्रीय वैद्य मण्डल की ओर से आयोजित धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव वयोवृद्ध चिकित्सक महंथ श्री कृष्णाचार्य जी की अध्यक्षता में सोल्लास सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर भाषण करते हुए आयुर्वेदीय चिकित्सकों ने जनता से देशी चिकित्सा पर निर्भर रहने की अपील करते हुए हुए कहा कि आयुर्वेदीय औषधियों व्याधियाँ को दूर करने में रामबाण जैसी होती हैं। इसलिए इनके बल पर जन-जीवन को अधिकाधिक स्वस्थ बनाया जा सकता है। अध्यक्षीय भाषण एवं धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित की गयी।

### महाराजगंज (मध्यप्रदेश)

राजकीय जनपद आयुर्वेदीय औषधालय, महाराजगंज (सरगुजा) में अन्य वर्षों की तरह इस वर्ष भी श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव सोत्साह मनाया गया। पूजन-अर्चन के बाद प्रसाद-वितरण, आगत सज्जनों के भाषण आदि कार्यक्रम सफलतापूर्वक संपादित हुए। इस अवसर पर निर्धनों में निःशुल्क औषधि वितरित की गयी। धन्यवाद-ज्ञापन के बाद उत्सव की समाप्ति हुई।

### वासाटांड (गया)

श्री धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में सर्वोदय पुस्तकालय और नागार्जुन औषधालय के सम्मिलित प्रयास से श्री नागार्जुन औषधालय, बासाटाँड (गया) में श्री भुवनेश्वरी सिंह जी के सभापतित्व में एक सभा आयोजित की गयी। कतिपय आयुर्वेदीय विद्वानों के भाषण हुए और कुछ प्रस्ताव भी सर्वसम्मति से पारित किए गए। प्रस्तावों में आसव-अरिष्ट को मद्यकर से मुक्त करने, आयुर्वेद-यूनानी औषधियों पर एलोपैथिक औषधियों पर लागू होने वाला ड्रग एक्ट नहीं लागू करने एवं जड़ी-बूटियों के अतिरिक्त गंधक आदि आयुर्वेदीय औषधियों के लिए आवश्यक मूल द्रव्यों को अधिक रूप में सुलभ कराने की जोरदार मांग सरकार से की गयी। अध्यक्षीय भाषण और धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित की गयी।

### गुमला (राँची)

स्थानीय आयुर्वेदीय सेवाश्रम में, धन्वन्तरि जयन्ती का पुण्य पर्व मनाने के लिए आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री द्वारा एक जन सभा आयोजित की गयी। सभा में पार्श्व-

वर्त्ती क्षेत्रों के प्रमुख आयुर्वेदीय विद्वान, डाक्टर, शिक्षाविद् तथा चिकित्सक उपस्थित थे। विधिवत् धन्वन्तरि-पूजन के पश्चात् इस अवसर पर समवेत विविध विद्वानों द्वारा आयुर्वेद शास्त्र विषयक चर्चाएँ हुईं और घण्टों समागत विद्वानों के द्वारा विचारों का आदान-प्रदान किया गया। विश्लेषण में निष्कर्ष भी निकला कि आयुर्वेद की प्राचीनता और उसकी औषधियों की गुणवत्ता इतिहास से प्रमाणित है। प्रसाद एवं धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा की गयी।

**बिरनांव (रायबरेली)**

धन्वन्तरि-जयन्ती के उपलक्ष में आयुर्वेदाचार्य पं० शिवसेवक शुक्ल, की अध्यक्षता में एक जन-सभा आयोजित की गयी, जिसमें प्रतिष्ठित नागरिकों एवं प्रमुख आयुर्वेदज्ञों ने भाग लिया। आयुर्वेद की महत्ता प्रदर्शित करते हुए विद्वानों द्वारा भाषण दिए जाने के बाद मनोनीत अध्यक्ष ने जनोपयोगी भाषण दिया। अध्यक्षीय भाषण के बाद बच्चों को पुरस्कार दिए गए। अन्त में धन्यवाद देकर समारोह समाप्त किया गया।

**सतना**

श्री धन्वन्तरि-जयन्ती महोत्सव के उपलक्ष में सतना में आयुर्वेदज्ञों एवं आयुर्वेद प्रेमी महानुभावों की एक सभा आयोजित की गयी। इस सभा की विशेषता यह थी कि आयुर्वेदज्ञों के अतिरिक्त पास-पड़ोस के ग्रामीण भी बड़ी संख्या में जुटकर आए थे। आयुर्वेद विषयक कतिपय भाषण हुए, जिनमें विद्वानों ने एक स्वर से आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया। भाषणोपरांत सधन्यवाद सभा विसर्जित की गयी।

**सकरीखुर्द (गया)**

धन्वन्तरि-जयन्ती के उपलक्ष में श्री प्रयागदत्त पाण्डेय की अध्यक्षता में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। सभा में वैद्यों-डाक्टरों के अतिरिक्त आयुर्वेद प्रेमी जनता भी बड़ी संख्या में जुटकर आयी थी। विद्वानों के भाषण के बाद कतिपय महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत किये गये। अध्यक्षीय भाषण एवं धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित की गयी।

**परासी (गया)**

आयुर्वेदिक औषधालय, परासी, पो० सकरी (गया) में धन्वन्तरि-जयन्ती के उपलक्ष में श्री मोहनशरण मिश्र, साहित्य-व्याकरणायुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में एक जन-सभा आयोजित की गयी। आयुर्वेदीय विद्वानों के भाषणों के उपरान्त कतिपय महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत किये गए। प्रस्तावों में आसव-अरिष्टों पर से मद्यकर उठाने, आयुर्वेद-यूनानी औषधियों पर ड्रग एक्ट लागू नहीं करने एवं वैद्यों का वेतनस्तर एलोपैथ डाक्टरों के समकक्ष करने की मांग सरकार से की गयी। प्रस्तावों की स्वीकृति के बाद अध्यक्ष ने भाषण दिया। अन्त में धन्यवाद देकर सभा समाप्त की गयी।

**आजमगढ़**

श्री शंकर आरोग्य निकेतन पाँती, मधुवन, आजमगढ़ के तत्वावधान में भगवान धन्वन्तरि की जयन्ती ससमारोह सम्पन्न हुई। पं० रामप्रसाद मिश्र ने आयुर्वेद की मौलिकता तथा उसकी महत्ता पर प्रकाश डाला और पं० केदारनाथ पाण्डेय ने आयुर्वेदीय चिकित्सा-प्रणाली और उसकी सेवाओं का विशद विवेचन उपस्थित करते हुए प्रस्ताव उपस्थित किया कि सरकार आयुर्वेद-चिकित्सा को पूर्णतया प्रश्रय एवं सुविधा प्रदान करे, जो सर्वसम्मत से स्वीकृत हुआ।

**ढसूक (जौनपुर)**

राजकीय चिकित्सालय ढसूक तहसील अरांई, जिला जौनपुर में धन्वन्तरि जयन्ती मनायी गयी। सर्वप्रथम भगवान श्री धन्वन्तरि का पूजन, श्री गणेशीलाल लखोटिया द्वारा हुआ। तत्पश्चात् श्री रामचन्द्रजी शर्मा सरपंच ग्राम पंचायत ढसूक के सभापतित्व में सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। जिसमें विभिन्न वक्ताओं में श्री चम्पालाल अग्रवाल, अनन्तगोपाल शर्मा आदि के भाषण स्वास्थ्य विषय में हुए। तत्पश्चात् चिकित्सालय के वैद्य इन्चार्ज श्री गणेशदत्त शर्मा ने धन्वन्तरि जयन्ती व स्वास्थ्य विषय पर भाषण दिया। अन्त में सभापति महोदय के भाषण के पश्चात् सधन्यवाद सभा विसर्जित हुई।

**पाली**

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, पाली में धन्वन्तरि जयन्ती धूमधाम से मनायी गयी। सर्व श्री सुन्दरलाल जैन, चुन्नीलाल चौरासिया, सुखलाल जैन आदि वक्ताओं के भाषण के बाद सभापति जी ने अपने भाषण में आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति की उपयोगिता बतायी। अन्त में धन्यवाद देकर सभा समाप्त हुई।

**भीलवाड़ा**

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर जिला वैद्य सभा, भीलवाड़ा की ओर से एक वैद्य-सभा का आयोजन किया गया जिसमें स्थानीय वैद्य-हकीमों और स्थानीय गण्यमान्य नागरिकों ने पूर्ण उत्साह के साथ भाग लिया। श्री वैद्यराज काशीनाथ जी शर्मा ने सभापति का आसन ग्रहण किया। कई वक्ताओं के सामयिक भाषणोपरान्त सभापति जी ने अपने भाषण में सरकार से अनुरोध किया कि आयुर्वेद की उन्नति के लिए अधिक से अधिक सहायता दी जाय तथा वैद्यों को भी वे अधिकार और सुविधाएँ जी जायँ जो डाक्टरों को सुलभ हैं। अन्त में धन्यवाद देकर सभा विर्सजित हुई।

**बिलासपुर।**

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर जिला वैद्यसभा विलासपुर की ओर से पथरिया ग्राम में एक वैद्य सभा का आयोजन किया गया जिसमें स्थानीय वैद्य-हकीमों और स्थानीय गण्यमान्य नागरिकों ने पूर्ण उत्साह के साथ भाग लिया। श्री लोमशप्रसाद शास्त्री ने सभापति का आसन ग्रहण किया। कई वक्ताओं के सामयिक भाषणोपरान्त सभापति जी ने अपने भाषण में सरकार से अनुरोध किया कि आयुर्वेद की उन्नति के लिए अधिक से अधिक सहायता दी जाय। अन्त में धन्यवाद देकर सभा विर्सजित हुई।

**छिक्का (वांदा)**

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, छिक्का (वांदा) में एक वैद्य सभा का आयोजन किया गया जिसमें स्थानीय वैद्य-हकीमों और स्थानीय गण्यमान्य नागरिकों ने पूर्ण उत्साह के साथ भाग लिया। श्री वैद्य शिवदत्त शर्मा ने सभापति का आसन ग्रहण किया। कई वक्ताओं के सामयिक भाषणोपरान्त सभापति जी ने अपने भाषण में सरकार से अनुरोध किया कि आयुर्वेद को यथाशीघ्र राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति घोषित किया जाय। अन्त में धन्यवाद देकर सभा विर्सजित हुई।

**कानपुर**

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर रामानन्द औषधालय कानपुर में एक वैद्य-सभा का आयोजन किया गया जिसमें स्थानीय वैद्य-हकीमों और स्थानीय गण्यमान्य नागरिकों ने पूर्ण उत्साह के साथ भाग लिया। श्री पं० रामेश्वर मिश्र, वैद्य ने सभापति का आसन ग्रहण किया। कई वक्ताओं के सामयिक भाषणोपरान्त सभापति जी ने अपने भाषण में सरकार से अनुरोध किया कि आयुर्वेद की उन्नति के लिए अधिक से अधिक सहायता दी जाय तथा वैद्यों को भी वे अधिकार और सुविधाएँ दी जायँ जो डाक्टरों को सुलभ हैं। अन्त में धन्यवाद देकर सभा विर्सजित हुई।

**देवाल (गढ़वाल)**

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर देवाल राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय (गढ़वाल) में एक वैद्य सभा का आयोजन किया गया जिसमें स्थानीय वैद्य-हकीमों और स्थानीय गण्यमान्य नागरिकों ने पूर्ण उत्साह के साथ भाग लिया। श्री शिवप्रसाद जी जोशी ने सभापति का आसन ग्रहण किया। कई वक्ताओं के सामयिक भाषणोपरान्त सभापति जी के सारगर्भित भाषण हुए। अन्त में धन्यवाद देकर सभा विर्सजित हुई।

**औरंगाबाद**

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर औरंगाबाद (बम्बई राज्य) में वैद्यमण्डल की ओर से एक सभा का भव्य आयोजन किया गया, जिसमें स्थानीय सभी प्रमुख वैद्य, हकीम, डाक्टर तथा विशिष्ट नागरिक सम्मिलित हुए थे। भगवान धन्वन्तरि की विधिवत पूजा के बाद सभा की कार्यवाही प्रारंभ हुई। सर्व प्रथम श्री नटवरलाल शास्त्री ने स्वागत-भाषण किया। तदुपरांत विद्वान वैद्यों तथा हकीमों के सामयिक भाषण हुए, जिनमें आयुर्वेद की उन्नति के हेतु वैद्यों से संगठित होने की मार्मिक अपील की गयी। वैद्य-समाज से आग्रह किया गया कि वे आयुर्वेदोत्थान के कार्यों को सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दें। इसके बाद सर्व सम्मति से दो प्रस्ताव पारित हुए और उनकी प्रतिलिपियाँ सम्बन्धित अधिकारियों को भेजी गयीं। मनोनीत अध्यक्ष ने आयुर्वेद को युगानुरूप बनाने के लिए वैद्य-समाज से अनुरोध करते हुए अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया। अन्त में धन्यवाद देकर सभा समाप्त की गयी।

**वाराणसी**

अर्जुन आयुर्वेद महाविद्यालय वाराणसी में सेठ युगलकिशोर बिड़ला की अध्यक्षता में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव सम्पन्न हुआ। श्री अमरनाथ जेतली एवं श्री तारानाथ चोट्टले ने वैदिक मंगलाचरण किया। श्री अमरनाथ जी

शास्त्री प्रधान मंत्री द्वारा सभापति महोदय को माल्य प्रदान के पश्चात् श्री ताराशंकर वैद्य, श्री शिवविनायक मिश्र वैद्य, श्री ब्रजमोहन दीक्षित एवं राष्ट्रपति के चि० श्री श्रीधर जी वैद्य के भाषण हुए।

अध्यक्ष-पद से श्री बिड़ला ने कहा कि जिस प्रकार संस्कृत समस्त भाषाओं की जननी है उसी प्रकार आयुर्वेद समस्त चिकित्सा प्रणालियों का जनक है। आयुर्वेद आयु को बढ़ाने एवं रोगों को रोकने की व्यवस्था करता है परन्तु एलोपैथी में केवल संशमनीय चिकित्सा होती है। किन्तु इसमें नया प्रयोग न होने से हानि हो रही है, पुरानी चीजों को भी वैद्य छोड़ते जा रहे हैं। राज्याश्रय के अभाव में कठिनाइयाँ बढ़ रही हैं। एलोपैथी औषधियाँ जहाँ फेल होती हैं वहाँ आयुर्वेदिक औषधियाँ अपना चमत्कार दिखाती हैं। दूसरी चिकित्सा प्रणालियों की औषधियों का व्यवहार अपने सिद्धान्तानुसार और अपने रूप में व्यवहार करने से कोई हानि नहीं। सिनकोना दक्षिण भारत में होता है। उसका सत्व ही क्विनाइन है, इसलिये यह तो भारतीय वस्तु है। जिस तरह गुरुच के सत्व का व्यवहार होता है, उसी प्रकार इसका व्यवहार भीं होना चाहिये। इसके प्रयोग से होनेवाली हानियों को इसका क्वाथ नष्ट कर डालता है। इसकी छाल का क्वाथ भी पिलाया जा सकता है। वैद्यों को औषधियाँ अपने संरक्षण में बनवा कर व्यवहार करनी चाहिये। यद्यपि आयुर्वेदिक प्रतिष्ठानों की कुछ औषधियाँ भी काम करती हैं। डाक्टरों के प्रयोग से यह सिद्ध हो चुका है कि आयुर्वेदीय पद्धति से शुद्ध किया गया पारद वृक्क को दूषित नहीं करता, जबकि अन्यान्य पद्धतियों द्वारा अपनायी गयी रीति से व्यवहृत पारद हानिकारक होता है। डाक्टर विरेचन से घबड़ाते हैं। वे केवल संशमनीय चिकित्सा करते हैं। पर आयुर्वेद संशोधन को अधिक महत्त्व देता है क्योंकि गन्दगी को खुरच कर निकाल देने से अधिक लाभ होता है। आजकल इन्जेक्शनों का व्यवहार अधिक होता है। यह अनुचित है। अमेरिका आदि के डाक्टर अत्यन्त गम्भीर स्थिति में ही इसका व्यवहार करते हैं, अन्यथा इससे बचते हैं। अच्छी औषधियों पर ध्यान दें। बाजार में पीपर-मरिच आदि तक नकली आ रही है। इसलिये सभी नकली औषधियों से सतर्क रहें। निर्वाचन के समय आयुर्वेद-प्रेमियों को ही मत दें। अन्त में श्री अमरनाथ शास्त्री ने धन्यवाद दिया।

### एम० पी० क्लब दिल्ली

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० द्वारा संचालित संसदीय आयुर्वेदीय औषधालय, नयी दिल्ली में धन्वन्तरि-जयन्ती उत्सव बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। श्रीमती सावित्री निगम ने अपने भाषण में सरकार को आयुर्वेद-विज्ञान के प्रति उपेक्षा की नीति पर खेद प्रकट करते हुए देशी औषधियों की उपयोगिता बतलायी। डा० वारलिंगे और श्री रघुवर दयाल मिश्र के भी सामयिक भाषण हुए। राजवैद्य सुधन्वा ने स्वागत-भाषण पढ़कर सुनाया। अन्त में प्रसाद-वितरण कर सभा समाप्त हुई।

### जीन्द

श्री सनातन धर्म पी० जी० आयुर्वेद महाविद्यालय जीन्द में वैद्यमण्डल जीन्द, की ओर से संयुक्त रूप से धन्वन्तरि महोत्सव बड़े समारोह से मनाया गया। धन्वन्तरि-पूजन के पश्चात् शास्त्र-चर्चा हुई, जिसमें वैद्यों ने अपने निबन्धों एवं प्रवचनों द्वारा जन समुदाय को आयुर्वेद पद्धति की ओर आकृष्ट किया। महाविद्यालय के आचार्य श्री नरेन्द्रनाथ शास्त्री ने वैद्यों से सुव्यवस्थित होकर कार्य करने एवं अपने दैनिक चिकित्सा-कार्य में अनुसंधानतमक पद्धति को अवलम्बन करने पर बल दिया। अन्त में छात्रों को पारितोषिक वितरण एवं सहभोज के पश्चात् समारोह सानन्द सम्पन्न हुआ।

### इन्दौर

इन्दौर के गांधी भवन में आयोजित धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव में मध्यप्रदेश की स्वास्थ्य मंत्राणी रानी पद्मावती ने भाषण करते हुए कहा कि आज सरकार राष्ट्र की स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को हल करने में आयुर्वेद का अधिक उपयोग करना चाहिती है। मध्यप्रदेश में ही लगभग एक हजार आयुर्वेद औषधालय, दो आयुर्वेदिक महाविद्यालय तथा एक विशाल औषधनिर्माण-शाला है, जिनसे ज्ञात होता है कि शासन आयुर्वेद के विकास करने में वैद्यगणों के साथ है।

आवश्यकता इस बात की है कि हमारे इस नवगठित मध्यप्रदेश के आयुर्वेदाचार्य तथा विचारक संगठित होकर अपने अनुभवों तथा ज्ञान की ज्योति को प्रज्वलित करें। चरक जैसे आयुर्वेद के प्रतिपादकों ने स्वयं कहा है कि वैद्य को निरन्तर नयी औषधियों का अन्वेषण करना चाहिये।

आयुर्वेद का इतिहास ही प्राचीन वैद्यों के समयानुकूल अन्वेषण तथा आयुर्वेद-शास्त्र में नये सिद्धान्तों को चिकित्सा की नयी प्रणालियों से पूरा लिया गया है। एक समय था जब वैद्य काष्ठ औषधियों का ही उपयोग करते थे। बाद में नागार्जुन ने रस औषधियों का उपयोग प्रचलित किया। यह प्रयोग और नयी खोज का ही परिणाम था।

आधुनिक स्वास्थ्य समस्याओं की चर्चा करते हुए मन्त्राणीजी ने बताया कि 'हम आप सभी जानते हैं कि आज से सहस्रों वर्ष पूर्व ऐसी कई बीमारियों का नाम भी नहीं था, जिनसे आज के मनुष्य परेशान हैं। ऐसी स्थिति में उन व्यक्तियों को, जो आयुर्वेद में नवीन सिद्धान्तों के प्रवेश के खिलाफ हैं, आयुर्वेद का शुभचिन्तक नहीं माना जा सकता। उदाहरण के लिये शल्य चिकित्सा के प्रश्न को ही लीजिये। पूर्व में आयुर्वेद का एक अंग शल्य चिकित्सा भी था। परन्तु न जाने कब से आयुर्वेद में शल्य चिकित्सा का प्रयोग बन्द हो गया। परन्तु वर्तमान परिस्थितियों में यदि हम आयुर्वेद को सही अर्थों में लोकोपयोगी व बहुजन हिताय बनाना चाहते हैं तो यह बहुत जरूरी हैं कि शल्य चिकित्सा को आयुर्वेद शास्त्र में फ़िर से स्थान दिया जाय और उसे उसका एक आवश्यक अंग बनाया जाय और ऐसा करने के लिये हमें शल्य चिकित्सा के आधुनिक तरीकों को सीखना, उसमें आयुर्वेद की दृष्टि से अन्वेषण करना होगा।

यह आवश्यक है कि आयुर्वेद का आधुनिकीकरण किया जाय और आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान की सहायता से आयुर्वेद शास्त्र को विकसित किया जाय। अतीत की सिद्धियों का विश्लेषण आवश्यक है ताकि उनके आधार पर भविष्य के विकास की नींव डाली जा सके।

प्रारम्भ में इन्दौर नगर वैद्य परिषद् के स्वागताध्यक्ष, श्री रामनारायण शास्त्री ने अपने स्वागत-भाषण में आयुर्वेद के विगत दो हजार वर्षों के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए इच्छा प्रकट की कि देश की स्वतन्त्रता के पश्चात् अब आयुर्वेद को पुनर्जीवित करना राष्ट्र का परम कर्त्तव्य है।

### शिवपुरी

श्री धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में वैद्य सभा मण्डल, शिवपुरी की ओर से श्री रामगोपालाचार्य जी शास्त्री की अध्यक्षता में एक सभा आयोजित की गयी। सभा में आस-पास के प्रायः सभी प्रमुख आयुर्वेदज्ञ सम्मिलित हुए थे। विविध विषयों पर विद्वानों द्वारा भाषण दिए जाने के बाद मनोनीत अध्यक्ष ने अपना सारगर्भित भाषण दिया। आभार-प्रदर्शन के उपरान्त सभा विसर्जित की गयी।

### योगेन्द्रनगर (हिमाचल प्रदेश)

हिमाचल प्रदेश के सुप्रसिद्ध विद्युदुत्पादन केन्द्र—योगेन्द्र नगर में तहसील के सभी वैद्यों की ओर से श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव बड़े समारोह के साथ श्री सनातनधर्म मन्दिर, में मनाया गया। श्री उपमंडलाध्यक्ष (तहसीलदार) महोदय ने अध्यक्षता की। धन्वन्तरि-पूजन के बाद भाषण, कविता-पाठ, प्रसाद-वितरण आदि विविध कार्यक्रम संपादित किए गये। अन्त में मनोनीत अध्यक्ष महोदय ने सारे कार्यक्रम पर प्रकाश डालते हुए उपस्थित लोगों को आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति की श्रेष्ठता बतायी। अध्यक्षीय भाषण के पश्चात् सधन्यवाद सभा विसर्जित हुई।

### सरदारनगर

धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में आयोजित एक सभा सरदार नगर के औषधालय में श्रीमान् मथुरालाल जी जोशी की अध्यक्षता में हुई। अध्यक्ष महोदय ने आयुर्वेद के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए अत्यन्त सारगर्भित भाषण दिया। इस अवसर पर अन्य विद्वानों के भी भाषण हुए और कई महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव हुए। अन्त में सधन्यवाद सभा विसर्जित की गयी।

### टनकपुर (नैनीताल)

राष्ट्रीय दातव्य औषधालय, टनकपुर (नैनीताल) में कार्तिक वदी त्रयोदशी को धूमधाम के साथ धन्वन्तरि जयन्ती मनायी गयी। धन्वन्तरि-पूजन के उपरांत चिकित्सालय के प्रधान चिकित्सक आयुर्वेदाचार्य जगदीश प्रसाद शुक्ला ने आयुर्वेदोन्नति में सरकार द्वारा अपनायी जाने वाली उपेक्षा-नीति का उल्लेख करते हुए अपने विचार व्यक्त किए। अध्यक्षीय भाषण एवं धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित की गयी।

### सांगवेद विद्यालय, वाराणसी

श्री सांगवेद विद्यालय एवं दातव्य औषधालय रामघाट वाराणसी में वैद्यराज श्री दुर्गादत्त जी शास्त्री की अध्यक्षता में समारोहपूर्वक धन्वन्तरि जयन्ती मनाई गई। मंगलाचरण के पश्चात् सुधाकर पाण्डेय नामक छात्र ने "माधव निदान" का मूल पाठ किया, जिसे सुनकर श्री राजेश्वरदत्त

शास्त्री ने आशीर्वाद और पुरस्कार दिया। तदुपरान्त सर्व श्री वैद्य दुर्गादत्त जी, तथा ताराशंकर मिश्र ने आयुर्वेद की महत्ता प्रदर्शित करते हुए सारगर्भित भाषण दिए। कतिपय प्रस्ताव भी स्वीकृत किये गये। प्रस्तावों में सरकार से आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा घोषित करने एवं वैद्यों को डाक्टरों की समकक्षता प्रदान करने की मांग की गयी। एक प्रस्ताव द्वारा प्रयाग विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० रंजन द्वारा दिए गए आयुर्वेद-विरोधी वक्तव्य की कटु भर्त्सना की गयी, जिसमें डा० रंजन ने आयुर्वेद-चिकित्सा-पद्धति को सर्वथा अवैज्ञानिक घोषित करते हुए इसको अमान्य करने की मांग सरकार से की थी। अध्यक्षीय भाषण, प्रसाद-वितरण एवं धन्यवाद-ज्ञापन के पश्चात् समारोह सम्पन्न हुआ।

### नवादा (गया)

धन्वन्तरि महोत्सव के उपलक्ष में नवादा स. डि. वैद्य सम्मेलन की ओर से १२५ वैद्यों की एक सभा हुई। भगवान धन्वन्तरि की षोड़शोपचार पूजा की गयी। स्तवन-पाठ के बाद आगत आयुर्वेदीय विद्वानों के अत्यन्त सारगर्भित भाषण हुए। सबने एक स्वर से आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति को श्रेष्ठ बताया। अध्यक्षीय भाषण एवं धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित की गयी।

### मोतीहारी

आयुर्वेद कालेज मोतीहारी की ओर से धन्वन्तरि पूजा-समारोह देवी मन्दिर के हॉल में धूमधाम से मनाया गया। प्रभात कीर्त्तन, पूजन, वैद्यों द्वारा वेद एवं चरक-सुश्रुत के सस्वर पाठ के बाद तीन बजे से सभा हुई। वीरभगत सिंह के साथी, चम्पारण के नेता पं० कमलनाथ तिवारी, अध्यक्ष चम्पारण कांग्रेस कमेटी ने सभापतित्व किया। पं० विभूति मिश्र एम. पी. ने उद्घाटन भाषण दिया। आयुर्वेद के मानस रोगों पर श्री मदनविहारी प्रसाद, एडवोकेट का सारगर्भित भाषण हुआ। प्रसाद-वितरण के बाद रात में आठ बजे से आयुर्वेदीय शास्त्र-चर्चा-परिषद् की बैठक में विहार राज्य के आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सा के सुपरिटेण्डेण्ट और पटना आयुर्वेद कालेज के आचार्य पं० प्रियव्रत शर्मा, साहित्यायुर्वेदाचार्य एम. ए. ए. एम. एस. ने अपने उपदेशों के द्वारा वैद्यों को मनोमुग्ध कर दिया। अध्यक्षीय भाषण के बाद सधन्यवाद सभा समाप्त की गयी।

### खारची (मारवाड़ जंक्शन)

श्री धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में एक सार्वजनिक सभा राणावास स्टेशन पर वैद्य श्री पुखराज जी जैन की अध्यक्षता में हुई। उपस्थित जनसमुदाय को भगवान धन्वन्तरि के जीवन का महत्त्व बताते हुए वैद्य गंगादास जी वैष्णव ने कहा कि सदा आरोग्य-प्राप्ति हेतु भगवान धन्वन्तरि जी का स्मरण करना चाहिये। आयुर्वेद-पद्धति को सर्व-श्रेष्ठ बताते हुए सभा के मंत्री वैद्य बाबूलाल जी व्यास ने कहा कि देश की ज्यादातर जनता आयुर्वेद द्वारा ही लाभान्वित होती है। अन्य विद्वानों के भी भाषण हुए। अध्यक्षीय भाषण के बाद धन्यवाद देकर धन्वन्तरि जयघोष के साथ समारोह समाप्त हुआ।

### हृषीकेश

धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में गत ९ नवम्बर को वैद्य सभा हृषीकेश की ओर से समारोहपूर्वक श्री स्वामी-दयानिधि जी महाराज की अध्यक्षता में एक सभा का आयोजन किया गया। कविता पाठ के साथ कार्यारम्भ हुआ। तदुपरान्त आगत विद्वानों के भाषण हुए, जो कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण थे। अन्त में सभापति महोदय ने आयुर्वेद के विगत इतिहास पर दृष्टिपात करते हुए कहा कि आयुर्वेद के अन्यान्य आचार्यों ने मानव-चिकित्सा का ही आविष्कार किया है, किन्तु भगवान धन्वन्तरि ने देवताओं के भी कष्टों को दूर किया और उन्हें अजर-अमर बना दिया। उत्सव की समाप्ति प्रसाद-वितरण एवं धन्यवाद -ज्ञापन करने के बाद हुई।

### धार

धार नगर वैद्य मंडल के तत्वावधान में आयोजित धन्वन्तरि महोत्सव दिनांक ९ नवम्बर १९५८ को नगर के वैद्य महानुभावों एवं प्रतिष्ठित आयुर्वेद प्रेमी-सज्जनों की उपस्थिति में संसमारोह सम्पन्न हुआ।

प्रातःकाल भगवान धन्वन्तरि का षोड़शोपचार पूजन किया गया। सायंकाल ६-३० से विधान सभा के सदस्य श्री पं० प्रधान वकील की अध्यक्षता में उत्सव-कार्य प्रारम्भ हुआ। श्री देवेन्द्रकुमार श्रोत्रिय ने धन्वन्तरि-स्तवन किया, तदुपरान्त पं० बलदेवप्रसाद जी वैद्य ने धन्वन्तरि-जयन्ती के महत्त्व पर सारगर्भित भाषण दिया। बाद में आयुर्वेद के महत्त्व पर सर्व श्री शीतलचन्द्र जी, रामचन्द्रराव जी

वैद्य आयुर्वेदाचार्य, आदि के भाषण हुए। अध्यक्षीय भाषण के बाद धन्यवाद देकर समारोह समाप्त किया गया।

**मुकुन्दगढ़**

श्री धन्वन्तरि जयन्ती के उपलक्ष में श्री सार्वजनिक औषधालय मुकन्दगढ़ (राजस्थान) के प्रधान चिकित्सक श्री वैद्य हरिप्रसाद शर्मा, भिषगाचार्य के संयोजकत्व में श्री धन्वन्तरि स्वास्थ्य सप्ताह का आयोजन किया गया। इस आयोजन में आयुर्वेद में प्रतिपादित स्वास्थ्य के नियमों का जनता में अधिकाधिक प्रचार करके दिन चर्या, ऋतु चर्या एवं सद्वृत्त का जन-साधारण को ज्ञान कराया गया। स्थानीय नगर पालिका के सहयोग से ग्राम में सफाई भी की गई। संक्रामक रोगों जैसे मलेरिया, बड़ी खाँसी प्रवाहिका, आदि की रोकथाम के लिये नगर के गन्दे एवं दूषित स्थानों पर डी. डी. टी., फिनाइल आदि छिड़के गये।

रात्रि में मोहल्लों में जाकर संक्रामक रोगों से बचने के उपाय, सभाओं का आयोजन कर बतलाये गये। सभाओं में भजन-गायन आदि सांस्कृतिक कार्यक्रम भी सम्पादित हुए। इस अवसर पर एक शिशु-प्रदर्शनी का आयोजन भी किया गया। और उसमें भाग लेने वाले बच्चों में तीन सबसे स्वस्थ बच्चों को पुरष्कार दिया गया। जन-साधारण के स्वास्थ्य की परीक्षा भी आयुर्वेदिक सिद्धान्तानुसार प्रकृति, बल, सत्व, आदि को ध्यान में रखकर की गई। रात्रि में श्री भगवान धन्वन्तरि का सामूहिक रूप में पूजन किया गया। पूजनोत्सव के बाद श्री वैद्य हरिप्रसादजी ने आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति की उपयोगिता पर प्रकाश डाला। अध्यक्षीय भाषण तथा धन्यवाद-ज्ञापन के बाद समारोह समाप्त हुआ।

**बम्बई**

श्री केशवलाल खन्ना चेरिटेबुल ट्रस्ट की ओर से श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव 'रेशम भवन' के हॉल में मनाया गया। बम्बई धारा सभा के प्रधान स्पीकर श्री एस. एल, सीलम ने महोत्सव की अध्यक्षता की। धन्वन्तरि-पूजन एवं स्तवन के बाद लोकसभा के सदस्य श्री गजाधर जी सोमाणी, एम. पी. डॉ० श्री प्राणजीवन मेहता, वैद्य श्री कन्हैयालाल जी भेड़ा, श्री केशवलाल खन्ना चेरिटेबुल ट्रस्ट के नामाङ्कित उद्योगपति श्री लाला रामचन्द्र जी खन्ना, श्री लाला भाई शाह और श्री केशवलाल खन्ना चेरिटेबुल डिसपेन्सरी के प्रधान चिकित्सक वैद्य अमोलकचंद जी एवं अन्य वैद्यों के भाषण हुए, वक्ताओं ने आयुर्वेद-चिकित्सा-पद्धति की श्रेष्ठता प्रदर्शित करते हुए सारगर्भित भाषण दिए। करीब तीन सौ से अधिक आयुर्वेद प्रेमी महानुभाव एवं आयुर्वेदीय विद्वानों ने पधार कर इस समारोह में योगदान किया जिनमें स्वदेशी कॉटन मिल्स मालिक श्री दामोदरलाल जी जयपुरीया, प्रसिद्ध व्यवसायी श्री प्रह्लादलाल जी केड़िया आदि मुख्य थे। अध्यक्षीय भाषण एवं धन्यवाद-ज्ञापन के बाद सभा विसर्जित की गयी।

**फिरोजाबाद**

श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव के उपलक्ष में फीरोजाबाद में तहसील वैद्य सभा फीरोजाबाद, द्वारा आयोजित श्री धन्वन्तरि जयन्ती समारोह श्री ला० टुण्डामल जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ, जिसमें सर्वसम्मति से तीन प्रस्ताव स्वीकृत किए गए। प्रस्तावों में धन्वन्तरि जयन्ती को राष्ट्रीय दिवस के रूप में मनाए जाने, आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा घोषित करने तथा आयुर्वेदाचार्य की उपाधि को सरकारी तौर पर मान्यता प्रदान किए जाने की मांग की गयी। अध्यक्षीय भाषण तथा धन्यवाद-ज्ञापन के पश्चात् समारोह सम्पन्न हुआ।

**खैरगढ़ (मैनपुरी)**

श्री भगवान धन्वन्तरि का जन्म दिवस कार्त्तिक कृष्ण त्रयोदशी रविवार तदनुसार ९ नवम्बर १९५८ ई० को रात्रि ७।। बजे श्रीयुत् पं० श्रीपाल जी वैद्य के सभापतित्व में श्री राधाकृष्ण जी महाराज के मन्दिर में मनाया गया। सर्वप्रथम डॉ० प्रेमचन्द पालीवाल ने भगवान धन्वन्तरि जी का पूजन किया। तत्पश्चात् आधा घण्टा भगवान का संकीर्त्तन हुआ। बाद में पं० महानन्द जी उपाध्याय वैद्य, (आगरा), श्री जगन्नाथप्रसाद शर्मा वैद्य, पं० कन्हैयालाल जी वैद्य, श्री प्रेमचन्द पालीवाल, वैद्य-सर्जन व पं० शिवकुमार जी शास्त्री आदि के प्रभावशाली भाषण हुए। अध्यक्षीय भाषण एवं धन्यवाद-प्रदर्शन के बाद समारोह सम्पन्न हुआ।

**अवन्तिका आयुर्वेद विद्यालय उज्जैन**

श्री अवन्तिका आयुर्वेद विद्यालय में श्री धन्वन्तरि जयन्ती समारोह के साथ मनायी गयी। महोत्सव के

धन्वन्तरि जयन्ती पर गाजियाबाद में वैद्य सभा

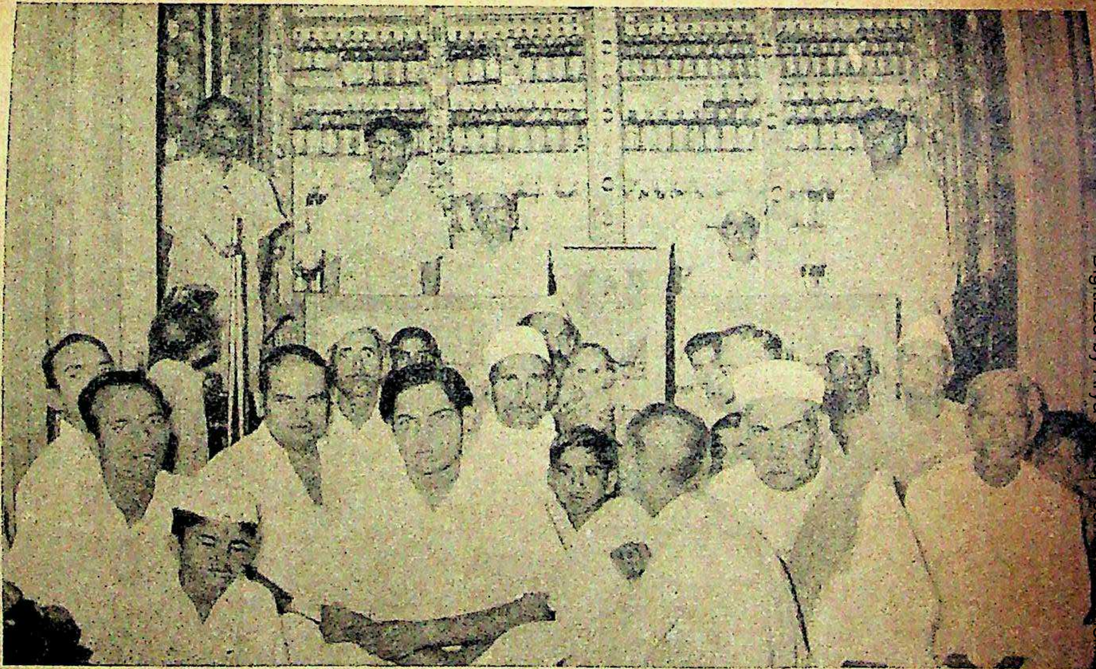

टाटानगर में धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर आयोजित वैद्य सभा का भव्य दृश्य

धन्वन्तरि जयन्ती पर [illegible] ([illegible]) में वैद्य सभा

धन्वन्तरि जयन्ती पर अम्बाला में वैद्य सभा

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि.

सहारनपुर में धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर आयोजित वैद्य सभा का भव्य दृश्य

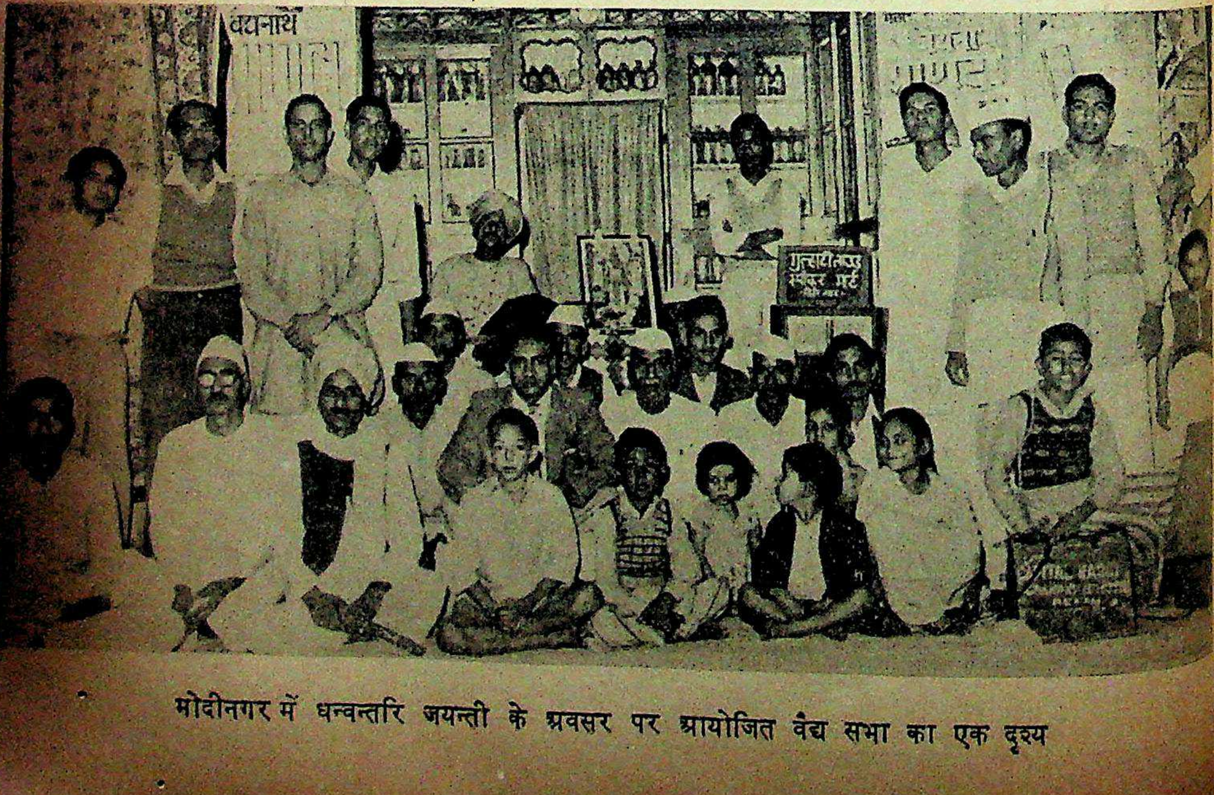

मोदीनगर में धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर आयोजित वैद्य सभा का एक दृश्य

अध्यक्ष श्रीमान् राधेलाल जी व्यास एम. पी. थे। सर्वप्रथम भगवान धन्वन्तरि का पूजन एवं स्तवन हुआ। पश्चात् श्रीमती ज्ञानेश्वरी देवी, विशारदा, वैद्य श्री गोपीकृष्ण जी शास्त्री, सत्य भक्त श्री बनवाली जी एवं श्री भूपेन्द्र सैलानी जी आदि द्वारा कविता पाठ एवं भाषण हुए। अन्त में श्री बासुदेव जी शास्त्री आचार्य ने आयुर्वेद के सम्बन्ध में प्रकाश डाला। मनोनीत अध्यक्ष ने आयुर्वेद की प्रगति एवं उत्थान के लिए अपने अध्यक्षीय भाषण में शुभ कामना प्रकट की। प्रसाद-वितरण के साथ कार्यक्रम समाप्त हुआ।

### काठमांडो (नेपाल)

काठमांडो में नेपाल सरकार के आयुर्वेदीय औषधालय सरकारी आयुर्वेदीय औषधालय (हस्पीटल) राजकीय आयुर्वेद विद्यालय तथा नेपाल आयुर्वेदीय संस्था के संयुक्त तत्वावधान में भगवान धन्वन्तरि की जयन्ती बड़ी धूमधाम से मनायी गयी। उक्त समारोह में स्वास्थ्य मन्त्री श्री रणधीर सुब्बा के सहित गण्यमान्य व्यक्ति तथा तीनों शहर के वैद्य एवं कविराज उपस्थित हुए थे। सर्वप्रथम असिस्टेण्ट डाइरेक्टर कविराज मुक्तिनाथ शर्मा, एल. ए. एम. एस. द्वारा सभी उपस्थित गण्यमान्य व्यक्तियों तथा चिकित्सकों का स्वागत किया। तत्पश्चात् आयुर्वेदीय औषधलय के सुपरिटेण्डेण्ट कविराज एकचन्द्र शर्मा, आयुर्वेद शास्त्राचार्य, कविराज किरण प्रसाद ढुंगाना जी, ए. एम. एस., संस्था के मन्त्री कविराज सिद्धिगोपाल वैद्य एवं योगी नरहरि नाथ द्वारा भगवान धन्वन्तरि के विषय में सामयिक भाषण किये गये। नेपाल आयुर्वेदीय संस्था के अध्यक्ष तथा भूतपूर्व डाइरेक्टर (आयुर्वेदीय विभाग) राज-कविराज सरदार शिवनाथ रिमाल ने कहा कि भगवान धन्वन्तरि ने सर्वलोक हितार्थाय आयुर्वेद का प्रादुर्भाव किया है। आज संसार में जितनी प्रचलित चिकित्सा-प्रणाली हैं, वे सब आयुर्वेद के ही अंग हैं। उन्होंने कहा कि सभी वैद्यों को मिलकर आयुर्वेद को आगे बढ़ाना चाहिए।

अन्त में सभापति-पद से स्वास्थ्य मन्त्री ने कहा कि यद्यपि मैं कोई वैद्य या डाक्टर नहीं हूँ, फिर भी आप लोगों के साथ भगवान धन्वन्तरि की जयन्ती मनाते हुए अत्यधिक प्रसन्न हो रहा हूँ। वैद्य-बन्धुवर्ग को चाहिए कि वे आयुर्वेद को आधुनिक बनाने में संलग्न होवें।

बैद्यनाथ बंग भस्म

असंयम से पैदा होनेवाले रोगों तथा दुर्बलता को दूर कर शरीर को ताकत देती है। विशेष जानकारी के लिए वैद्य से सलाह लें।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

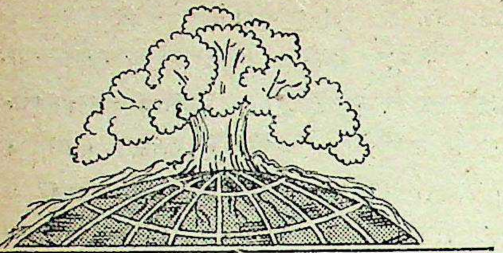

# आयुर्वेद-जगत्

## अ० भा० राज्य चिकित्सा-परिषद् सम्मेलन

अखिल भारतीय राज्य चिकित्सा-परिषद् का चतुर्थ अधिवेशन कलकत्ता में आशुतोष मेमोरियल हॉल और रायटर्स बिल्डिंग स्थित रोटण्डा हॉल में, आन्ध्र आयुर्वेदिक बोर्ड के अध्यक्ष डा० ए० लक्ष्मीपति की अध्यक्षता में गत २५-२६ और २७ दिसम्बर '५८ को बड़े उत्साहपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ। सम्मेलन में मनोनीत अध्यक्ष डा० ए० लक्ष्मीपति के अतिरिक्त आंध्र, असम, बिहार, बम्बई, उत्तरप्रदेश, दिल्ली, केरल, मैसूर, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, पंजाब, पटियाला, राजस्थान और कोलम्बो से आयुर्वेद-डायरेक्टर, आयुर्वेदिक एवं तिब्बी कालेज के प्रिंसिपल तथा अध्यापक एवं प्रमुख वैद्य-हकीम, प्रतिनिधि के रूप में भाग लेने के लिए पधारे थे। पश्चिम बंगाल के भी प्रायः सभी प्रमुख कविराजों एवं आयुर्वेदज्ञों ने सम्मेलन की कार्यवाही में भरपूर योगदान किया।

### प्रथम दिवस की कार्यवाही

अपराह्न काल में ३ बजे से वन्देमातरम् गायन के साथ प्रारंभ हुई। बंग भाषा प्रचार समिति की ओर से वैदिक मंत्रों का सस्वर पाठ भी किया गया। तदुपरान्त कविराज विमलानन्द तर्कतीर्थ, एम. एल. ए. ने राज्य चिकित्सा परिषद की गतिविधियों का परिचय देते हुए कहा कि मुझे इस बात में विश्वास नहीं है कि आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा-प्रणाली विज्ञान पर आधारित नहीं है। आज के आधुनिक उपकरण हमारी बातों का यद्यपि समर्थन नहीं करते; किन्तु वह समय दूर नहीं है जब कि हम विश्व के समक्ष यह सिद्ध कर सकेंगे कि आयुर्वेद-आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान का जनक—की मर्यादा आज भी है, जो कि वैज्ञानिक शोध-कार्यों के अभाव में पहले वैज्ञानिक तरीकों पर परीक्षित नहीं हो सकी थी।

सम्मेलन की सफलता के लिए प्राप्त संदेशों के पाठ के बाद राज्य चिकित्सा-परिषद के मंत्री कविराज आशुतोष मजूमदार ने स्वास्थ्य मंत्री तथा समागत प्रतिनिधियों का हार्दिक स्वागत करते हुए अपना प्रतिवेदन पेश किया। तदनन्तर सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष कविराज अनाथनाथ राय ने भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्री श्री डी. पी. करमरकर का स्वागत करते हुए आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सा-पद्धति के समन्वय पर जोर डाला।

### श्री करमरकर का भाषण

केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री श्री करमरकर ने सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए कहा कि चाहे आधुनिक चिकित्सा-पद्धति हो या प्राचीन चिकित्सा-पद्धति—हमें अनिवार्यतः उन तरीकों को प्रोत्साहित करना होगा, जिनसे अधिकाधिक लोग व्याधिमुक्त हो सकें। भारतीय चिकित्सा-पद्धति की महानता को प्रतिष्ठित करने के लिए उन्होंने सामूहिक प्रयास एवं वैज्ञानिक अन्वेषण पर अत्यधिक जोर दिया। आपने आगे कहा कि चिकित्सा के दो पहलू हैं—एक मानवीकृत एवं दूसरा प्राकृतिक। रोग का निदान केवल औषधि ही नहीं है। रोग होने का मतलब ही है कि शरीर के भीतर कहीं कोई असंतुलन है। हमें उसी असंतुलन को ठीक करना चाहिए।

**श्री करमरकरजी**

उन्होंने बताया कि सत्तर प्रतिशत व्यक्ति आज साधारण रोगों से पीड़ित रहते हैं। भारतीय आयुर्वेदीय पद्धति का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि दो हजार वर्ष पूर्व ऋषियों ने औषधि-विज्ञान का आविष्कार किया था, जिसके आधार आरोग्यता और स्वास्थ्य थे। अतएव, आधुनिक चिकित्सा-पद्धति को देखते हुए भी हम अपनी प्राचीन चिकित्सा-पद्धति की अवहेलना नहीं कर सकते। आपने देशी औषधियों के सस्तेपन का उल्लेख करते हुए कहा कि भारतीय औषधियाँ सस्ती पड़ती हैं, अतएव इनका अधिकाधिक विकास अत्यावश्यक है। श्री करमरकर ने आगे कहा कि रोग की चिकित्सा के साथ-साथ उसकी रोकथाम जरूरी है। आज लोग आहार की उपादेयता को भूलकर औषधियों पर ही अधिक निर्भर करते हैं। किन्तु नीरोग रहने के लिए केवल दवा ही पर्याप्त नहीं है। उन्होंने बताया कि भारत

सरकार चिकित्सा-सम्बन्धी क्षेत्र में प्रयास कर रही है। केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री ने प्रतिनिधियों से अनुरोध किया कि वे उपचार-पक्ष के स्थान पर व्याधियों की रोकथाम पर अधिक ध्यान दें।

पश्चिम बंगाल के स्वास्थ्य-मंत्री डा० अनाथबंधु राय ने, जो सम्मेलन के प्रधान अतिथि थे, अपने भाषण में कहा कि आयुर्वेद का विकास अपने तई हुआ और यदि उपयुक्त पृष्ठपोषकता के अभाव में विदेशी शासन के फलस्वरूप इसकी गति अवरुद्ध हुई है, तो हमें नए सिरे से इसके पुराने सिद्धान्तों को ढूँढ़ निकालना होगा। सरकार इस दिशा में आयुर्वेद सम्बन्धी योजना को नया रूप देने और नए तरीकों को ढूँढ़ निकालने की ओर सचेष्ट हैं।

आंध्र आयुर्वेदिक बोर्ड के अध्यक्ष डा० ए० लक्ष्मीपति ने अध्यक्ष-पद से भाषण करते हुए कहा कि अधिकाधिक मेडिकल कालेजों की स्थापना करने में लोग अपनी शान समझते हैं, चाहे उन कालेजों में आयुर्वेद के आधारभूत सिद्धान्तों का शिक्षण भले ही न हो। निम्नस्तरीय आयुर्वेदिक व यूनानी कालेज, जो विभिन्न राज्य सरकारों की मदद से चलाए जा रहे हैं, एक भी उच्चकोटि का अध्येता तैयार करने में सफल नहीं हो सके हैं—यह स्पष्ट है कि सरकार आधुनिक चिकित्सा-पद्धति को संरक्षण व सहायता दे रही है, जो अत्यन्त मँहगी है, और सरकार जो कुछ भी चिकित्सा पर व्यय कर सकती है वह उस पर खर्च हो जाता है। उन्होंने सलाह दी कि इस सम्मेलन को उन तरीकों पर विचार करना चाहिए, जिससे आयुर्वेदिक और यूनानी को आत्मनिर्भर बनाया जा सके।

डा० लक्ष्मीपति ने सुझाव दिया कि आयुर्वेदिक तथा यूनानी चिकित्सा-पद्धतियों के प्रति सरकार के वर्त्तमान रुख में आमूल परिवर्तन हो और फिलहाल जो उनके प्रति भेद-भाव किया जाता है उसे समाप्त किया जाय ताकि प्रत्येक चिकित्सा-पद्धति को केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के संरक्षण में फलने-फूलने का पूरा तथा समान अवसर प्राप्त हो। अध्यक्षीय भाषण के बाद कविराज शिवरंजन सेन द्वारा धन्यवाद-ज्ञापन करने के उपरांत राष्ट्र-वन्दना 'जन गण मन' के सुमधुर गायन के साथ कार्यवाही समाप्त की गयी।

संध्या समय साढ़े पाँच बजे से पुनः बैठक प्रारंभ हुई जिसमें विधान तैयार करने, पाठ्यक्रम निर्धारित करने, भेषज संहिता (फार्माकोपिया) बनाने तथा वैद्य-हकीमों के रजिस्ट्रेशन एवं प्रस्ताव सम्बन्धी कार्य को सम्पन्न करने के हेतु विभिन्न उपसमितियों का गठन किया गया।

आठ बजे रात्रि में स्थानीय ग्रेट ईस्टर्न होटल में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के डायरेक्टर श्री बनवारी लाल जी शर्मा की ओर से सम्मेलन में समवेत सभी प्रतिनिधियों को दावत दी गयी।

## दूसरे दिन की कार्यवाही

दूसरे दिन की कार्यवाही ९ बजे से राजस्थान के आयुर्वेद विभाग के डायरेक्टर श्री प्रेमशंकर जी की अध्यक्षता में प्रारंभ हुई। इस बैठक में मुख्यतया सम्पूर्णानन्द कमीटी की आलोचना-प्रत्यालोचना हुई। प्रतिनिधियों ने प्रथमतः इस बात पर अपनी आपत्ति प्रकट की कि उक्त समिति में प्राविधिज्ञों (टेक्नीकल मैन) को सम्मिलित नहीं किया गया। फिर भी अधिकांश प्रतिनिधियों को संपूर्णानन्द समिति के मौलिक आधारों पर कोई आपत्ति नहीं थी। प्रतिनिधियों ने इस बात पर अधिक बल दिया कि मिश्र-अमिश्र सम्बन्धी प्रश्न को पृथक् रखते हुए आयुर्वेदीय स्वरूप (ढाँचे) में ही अन्यान्य चिकित्सा-पद्धतियों को ग्रहण करना चाहिए। बहस प्रारंभ होने के पूर्व उत्तरप्रदेश के आयुर्वेद विभाग के डायरेक्टर श्री डी० ए० कुलकर्णी ने संक्षेप में संपूर्णानन्द समिति के सुझावों पर प्रकाश डाला। इस बैठक में पाठ्यक्रम के बारे में भी प्रतिनिधियों ने पर्याप्त विचार-विमर्श किया और सर्वसम्मति से एक ऐसा पाठ्यक्रम निर्धारित करने पर जोर डाला कि जिसमें अन्यान्य चिकित्सा-पद्धतियों का समन्वित रूप भी आ जाय और आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों की रक्षा भी हो सके। आयुर्वेद को प्रमुखता देते हुए अन्यान्य पद्धतियों के साररूप को पाठ्यक्रम में उदारतापूर्वक सम्मिलित करने की अपील करते हुए बैठक के अध्यक्ष श्री प्रेमशंकर जी ने अत्यन्त सारगर्भित और सन्तुलित भाषण दिया, जिसमें उन्होंने प्रतिनिधियों द्वारा उठाये गए अनेकानेक प्रश्नों तथा आपत्तियों का पूर्णतया समाहार उपस्थित किया। आपने कहा कि पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में एक विचारधारा यह है कि पाठ्यक्रम को आधुनिक विज्ञान की छाया से सर्वथा दूर रक्खा जाय और दूसरी यह है कि ग्रहण किया जाय। आपने प्रतिनिधियों को सावधान करते हुए कहा कि इस मनोवृत्ति से

आयुर्वेद की दशा कहीं वैसी न हो जाय, जैसी कि चीन, जापान आदि देशों में वहाँ की देशी चिकित्सा-पद्धतियों की हुई। उन देशों में देशी चिकित्सा-पद्धति लुप्त हो गयी और वहाँ पर एलोपैथी चल रही है। आपने जोर देकर कहा कि खुले दिमाग से अन्य विज्ञानों का समावेश हमें आयुर्वेद विज्ञान को व्यवस्थित करने के लिए करना चाहिए। किन्तु आयुर्वेदीय दृष्टि से ही हमें आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम को व्यवस्थित करना है। आपने कहा कि शारीर-शास्त्र-शरीर-रचना-शास्त्र (फीजियोलॉजी-एनाटॉमी) आदि शास्त्रों का जहाँ तक प्रश्न है, हमें निश्चय ही आज के ढंग का ज्ञान अपेक्षित है। जिस तरह नागार्जुन के समय रस-चिकित्सा को ग्रहण किया गया, उसी तरह हमें आज शल्य-शालाक्य को ग्रहण करना चाहिए। इसलिए शुद्ध-अशुद्ध सम्बन्धी विवाद का अन्त करके हमें एकमत से पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में निर्णय करना है—किन्तु आयुर्वेद के स्वरूप की रक्षा करते हुए ही यह करना है। वास्तविक वैद्यों को उत्पन्न करने की दृष्टि से ही आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम बनाए जायँ। भारतवर्षीय स्तर पर एक समान पाठ्यक्रम-निर्माण पर आपने जोर दिया। अध्यक्षीय भाषण के बाद कार्यवाही १२-३० पर सधन्यवाद समाप्त की गयी। तदनन्तर श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० की ओर से सम्मेलन में आए हुए सभी प्रतिनिधियों को स्थानीय ग्रेण्ड होटल में मध्याह्न-भोज दिया गया।

पुनः अपराह्न में ३ बजे से श्री प्रेमशंकर जी वैद्य के प्रधानत्व में कार्यवाही प्रारंभ हुई। कार्यवाही प्रारंभ करते हुए श्री प्रेमशंकर जी ने आधुनिक वैज्ञानिक साधनों तथा उपकरणों के उपयोग किए जाने पर जोर देते हुए कहा कि देशी-चिकित्सा पद्धतियों के अन्तर्गत उन उपकरणों का उपयोग करना कदापि अनुचित नहीं है। आपने कहा कि एक्स-रे केवल एलोपैथी का है—ऐसा कहना गलत है। शल्य-शालाक्य चिकित्सा को अपनाने पर अत्यधिक जोर देते हुए आपने कहा कि सर्जरी एक कला है और वह आयुर्वेद का नहीं है—ऐसा कहना अनुचित है। शारीर-शास्त्र को समझ कर सर्जरी का काम वैद्य भी कर सकता है।

इसके बाद प्रतिनिधियों ने पुनः आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम, प्रवेशार्थी छात्रों की प्रवेश योग्यता आदि विभिन्न विषयों पर विचार-विमर्श किया। अधिकांश प्रतिनिधियों ने इस आशय का मत व्यक्त किया कि वात-पित्त-कफ के सिद्धांत को आधार मानकर ही आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम निर्धारित होना चाहिए। यों आयुर्वेद के अष्टांग में चिकित्सा सम्बन्धी सारी बातें सम्मिलित हैं। फिर भी इस हद तक मिश्रण (इण्टेग्रेशन) हम जरूर चाहते हैं कि डिफ्थीरिया, हैजा प्रभृति व्याधियों में एलोपैथी की आशुप्रभावकारी औषधियाँ प्रयुक्त की जावें। वैद्यों के लिए रिफ्रेशर कोर्स की अनिवार्यता पर भी जोर दिया गया।

पाठ्यक्रम सम्बन्धी विचार-विमर्श के सिलसिले में उत्तर प्रदेश के आयुर्वेद विभाग के डायरेक्टर श्री डी० ए० कुलकर्णीजी ने अपने कतिपय महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए, जिनमें मुख्य इस प्रकार हैं—

**प्रवेश योग्यता**—संस्कृत (मध्यमा) के साथ इण्टर परीक्षोत्तीर्ण छात्र ही डिग्रीकोर्स के लिए जावें। आयुर्वेद-स्नातकों के लिए सारे भारत में आयुर्वेदाचार्य की डिग्री निर्धारित की जाय। कोर्स की अवधि ५ वर्ष की हो और सभी विषय आयुर्वेद के स्नातक ही पढ़ावें। आपने समस्त भारत में स्थान-स्थान पर जामनगर की तरह स्नातकोत्तर प्रशिक्षण केन्द्र खोले जाने की आवश्यकता पर जोर दिया, क्योंकि आयुर्वेद तभी अपने सही रूप में दुनिया के समक्ष आ सकेगा। पाठ्यक्रम सम्बन्धी रूप-रेखा तैयार करने के लिए सर्वसम्मति से एक उपसमिति गठित की गयी। आज की बैठक में सक्रिय रूप से भाग लेने वाले प्रतिनिधियों में सर्वश्री कुलकर्णी, शिवदत्त शुक्ल, एस० एन० वोस, एन० के० नम्बयार, वामन रावजी वैद्य, सत्यपालजी गुप्त, रामनारायणजी शास्त्री, एम० एन० केशव पिल्लई प्रभृति प्रमुख थे। कार्यवाही बड़े ही उत्साहपूर्ण वातावरण में शाम तक होती रही। रात्रि में प्रतिनिधियों के मनोरंजनार्थ आशुतोष मेमोरियल हाल में ही मणिपुरी तथा कत्थक नृत्य तथा विश्वकवि रवीन्द्रनाथ-कृत 'भानु सिंहेर पदावली' के आधार पर नृत्य-नाट्य का भव्य आयोजन किया गया था।

## तीसरे दिन की कार्यवाही

तीसरे दिन की कार्यवाही रायटर्स बिल्डिंग स्थित रोटण्डा हाल में डा० ए० लक्ष्मीपति की अध्यक्षता में ९ बजे से प्रारम्भ हुई। इस बैठक में गत अधिवेशन की रिपोर्ट स्वीकृत की गयी। विभागीय समितियों की रिपोर्टों पर विचार किया गया। विभिन्न प्रस्ताव स्वीकृत किये गए।

कतिपय संशोधनों के साथ अखिल भारतीय राज्य-चिकित्सा-परिषद का विधान सर्वसम्मति से स्वीकृत किया गया। सर्वसम्मति से साहित्य-अनुसन्धान समिति गठित की गयी, जिसके निम्नलिखित सदस्य चुने गए——

(१) श्री रामनारायण शास्त्री, (२) श्री शिवदत्त शुक्ल, ए० एम० एस, (३) कविराज अनाथनाथ राय, (४) कविराज प्रेमशंकर शर्मा, (५) श्री हरदयाल वैद्य।

विधान, पाठ्यक्रम तथा फार्माकोपिया सम्बन्धी निर्णयों को अन्तिम रूप देने के लिए निम्नलिखित व्यक्तियों की एक तदर्थ समिति (एडहाक कमिटी) गठित की गयी; जिसको आवश्यकतानुसार और भी सदस्य लेने का अधिकार दिया गया।

(१) कविराज शिवरंजन सेन, पश्चिम बंगाल

(२) क० श्रीनारायण शर्मा, बिहार

(३) हकीम अहमद उस्मानी, उत्तर प्रदेश

सर्वसम्मति से श्री आशुतोष मजूमदार पुनः अखिल भारतीय राज्य चिकित्सा-परिषद् के अवैतनिक मन्त्री निर्वाचित किए गए।

अखिल भारतीय राज्य चिकित्सा-परिषद् सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन में सर्वसम्मति से निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत किए गए——

(१) आयुर्वेद के अध्येताओं के लिए आयुर्वेदीय दृष्टि से पृष्ठभूमि तैयार करने के हेतु इस प्रस्ताव द्वारा समस्त विश्वविद्यालयों तथा राज्य परिषदों से यह अनुरोध किया जाता है कि अपने पाठ्यक्रम में माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर वे आयुर्वेदिक-यूनानी पाठ्यक्रम को सम्मिलित करें, जिसमें विज्ञान, प्राणीशास्त्र (वायोलॉजी), के साथ-साथ संस्कृत-उर्दू, दर्शन (फिलासफी) और अंग्रेजी-हिन्दी मुख्य विषय के रूप में सन्निविष्ट किए जायँ और जिससे कि इस देश में एक राष्ट्रीय चिकित्सा-प्रणाली विकसित हो सके।

(२) राष्ट्रीय चिकित्सा-प्रणाली को पुनरुज्जीवित करने तथा आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सा-प्रणाली के प्रति नवयुवकों को अधिकाधिक आकर्षित करने की दृष्टि से देशी-चिकित्सा-प्रणाली के केन्द्रीय निर्देशक तथा राज्य सरकारों के आयुर्वेद-विभाग के परामर्शदाताओं (डायरेक्टरों) के माध्यम से केन्द्र तथा राज्य की सरकारों से अनुरोध किया जावे कि आयुर्वेद-यूनानी स्नातकों का वेतन-स्तर एलोपैथी के डाक्टरों के बराबर निर्धारित किया जाना चाहिए तथा डाक्टरों को मिलनीवाली अन्यान्य सुविधाएँ आयुर्वेद-यूनानी स्नातकों को भी मिलनी चाहिएँ।

(३) भारत के विभिन्न पुस्तकालयों में प्राप्त आयुर्वेद-साहित्य सम्बन्धी पाण्डुलिपियों अथवा मूल ग्रन्थों की छानबीन करके एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार करने के हेतु निम्नलिखित व्यक्तियों की एक साहित्य-शोध उपसमिति गठित की जाय——

(१) श्री रामनारायण शास्त्री, उपाध्यक्ष, आयुर्वेदिक बोर्ड, इन्दौर।

(२) श्री शिवदत्त शुक्ल, ए०एम० एस०, सदस्य, आयुर्वेदिक बोर्ड, उत्तर प्रदेश।

(३) कविराज प्रेमशंकर शर्मा, डायरेक्टर, आयुर्वेद-विभाग, राजस्थान।

(४) श्री हरदयाल वैद्य, अध्यक्ष, आयुर्वेदिक बोर्ड, अमृतसर।

(४) आधुनिक नहीं प्रत्युत् आयुर्वेदीय आधारों पर नर्सों को प्रशिक्षित करने के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों पर इस आशय का जोर डाला जाय कि वह अधिकाधिक कालेजों की स्थापना करे।

(५) स्टेट बोर्ड तथा देशी-चिकित्सा-परिषदों से यह अनुरोध किया जाता है कि सामान्य तथा जिलावार तौर पर राजकीय, अर्द्धराजकीय किंवा गैरराजकीय औषधालयों तथा प्राइवेट चिकित्सकों के सम्बन्ध में आँकड़ा संग्रह करे, जिससे कि अखिल भारतीय स्तर पर एक प्रामाणिक विवरण तैयार किया जा सके।

(६) पश्चिम बंगाल राज्य सरकार से अनुरोध किया जाता है कि (१) देशी चिकित्सा-पद्धति के लिए एक पृथक् निर्देशालय (डायरेक्टरेट) की स्थापना करे; (२) अविलम्ब आयुर्वेद सम्बन्धी एक विधेयक (बिल) पारित करे; (३) सम्प्रति आयुर्वेद के जो तीन कालेज चल रहे हैं, उन सब को मिलाकर एक राज्य स्तर पर स्टेट आयुर्वेदिक कालेज की स्थापना करे, जिसके साथ अस्पताल भी अनिवार्य-तौर पर हो; (४) आयुर्वेदिक औषधियों के सम्बन्ध में अनुसन्धान-कार्य करने के लिए एक शोध-संस्थान की स्थापना करे; (५) राजकीय आयुर्वेदिक अस्पतालों की स्थापना करे; (६) समस्त राज्य में दातव्य आयुर्वेदिक औषधालयों तथा स्वास्थ्य-केन्द्रों की स्थापना करे; (७) प्रामाणिक तथा स्टैण्डर्ड आयुर्वेदिक औषधियों का ही निर्माण एवं बिक्रय हो सके, इसके लिए आयुर्वेदिक फार्मेसियों तथा

कारखानों की रजिस्ट्री करने तथा उन पर नियंत्रण रखने के लिए सरकार प्रभावकारी कदम उठावे।

(७) इस प्रस्ताव द्वारा उत्कल राज्य की सरकार से यह अनुरोध किया जाता है कि वह (१) आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली के लिए पृथक् निर्देशालय (डायरेक्टरेट) की की स्थापना करे; और (२) अन्य राज्यों की तरह ही अपने राज्य में चिकित्सा-कार्य करनेवाले कविराजों के नामों का पंजीकरण (रजिस्ट्रेशन) लागू करे।

(८) आसव-अरिष्टों के निर्माण तथा बिक्रय पर आबकारी विभाग की ओर से किसी भी प्रकार की रोक अथवा नियंत्रण न रहे।

(९) देशी औषधि-निर्माताओं के लिए यह अनिवार्य नहीं होना चाहिए कि बोतलों पर "आयुर्वेदिक औषधि" अथवा "यूनानी' औषधि" जैसा लेबुल चिपकाया जावे।

(१०) ड्रग एक्ट के अन्तर्गत गन्धक, पारा, कपूर और कुचला प्रभृति मूलद्रव्यों की पूर्ति में पूरी सुविधाएँ मिलनी चाहिएँ और आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सकों को, आयुर्वेद-यूनानी-पद्धति के आधारभूत सिद्धान्तों के अनुसार इन वस्तुओं का पूर्णतया उपयोग करने की छूट मिलनी चाहिए।

(११) जब तक कि देशी-चिकित्सा-प्रणाली की केन्द्रीय परिषद् के द्वारा विधान विधिवत् अन्तिम रूप से स्वीकृत नहीं होता, तब तक के लिए निम्नलिखित व्यक्तियों की एक तदर्थ समिति (एडहाक कमिटी) गठित की जाय जो विधान तथा फार्माकोपिया सम्बन्धी कार्य-संचालन के लिए आवश्यकतानुसार और भी सदस्यों को सम्मिलित कर सकेगी—

(१) कविराज शिवरंजन सेन, पश्चिम बंगाल
(२) हकीम अहमद उस्मानी, उत्तर प्रदेश

## बाढ़ में बैद्यनाथ-बिक्री-केन्द्र का उद्घाटन

बिहार के स्वास्थ्य मन्त्री श्री बीरचन्द पटेल ने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लिमिटेड के बिक्री-केन्द्र का बाढ़ में उद्घाटन करते हुए कहा कि सरकार, देश में प्रचलित देशी चिकित्सा-पद्धतियों के समुचित विकास की दिशा में आवश्यक कदम उठा रही है। आपने कहा कि सरकार की यह निश्चित नीति है कि आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सा-पद्धतियों को अधिकाधिक प्रोत्साहित करना चाहिए, क्योंकि विदेशी राजत्व काल में इन उभय पद्धतियों की घोर उपेक्षा की गयी थी और इस कारण आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सा-पद्धतियों का विकास लम्बे काल तक अवरुद्ध रहा। यह प्रसन्नता की बात है कि अब आयुर्वेद को पूर्णतया विकसित करने का सत्प्रयास होने लगा है। किन्तु इस आशय का सुझाव देना कि आयुर्वेदेतर अन्यान्य आधुनिक चिकित्सा प्रणालियों (एलोपैथी आदि) को प्रोत्साहन नहीं दिया जाना चाहिए—अनुचित है।

स्वास्थ्य मन्त्री ने आगे कहा कि आयुर्वेद को असली खतरा उन चिकित्सकों से है जो आयुर्वेद और एलोपैथी को मिश्रित करना चाहते हैं, आपने खेद प्रकट करते हुए कहा कि कुछ वैद्यों में ऐसी प्रवृत्ति देखी जाती है कि वे लोग आयुर्वेद के साथ एलोपैथी को मिश्रित कर चिकित्सा करते हैं। पटना आयुर्वेदिक कालेज के छात्रों का, जिन्होंने हाल ही में हड़ताल की थी—हवाला देते हुए स्वास्थ्य मन्त्री ने कहा कि छात्रों की एक माँग यह भी थी कि उन्हें एलोपैथी पद्धति से चिकित्सा करने की छूट दी जानी चाहिए। इसी आशय की माँग वाराणसी के छात्रों की भी थी। लखनऊ के छात्रों ने तो एक कदम और भी आगे बढ़ कर यह माँग प्रस्तुत की कि उन लोगों को मेडिकल कालेज में प्रविष्ट होने की सुविधाएँ मिलनी चाहिएँ। सब से अधिक हास्यास्पद बात यह है कि आयुर्वेद कालेज में अध्ययन करनेवाले छात्र वैद्य की अपेक्षा डाक्टर कहलाने में अधिक गौरव अनुभव करते हैं—यह निश्चय ही दुर्भाग्य की बात है।

मिश्र पद्धति के संभाव्य खतरों के प्रति सावधान करते हुए स्वास्थ्य मन्त्री ने आगे बताया कि आयुर्वेद, प्राचीन ऋषियों द्वारा संवर्द्धित एक पूर्ण चिकित्साशास्त्र है और कई शताब्दी पूर्व आयुर्वेद अत्यन्त गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित था। किन्तु देश के दुर्भाग्य के साथ-साथ आयुर्वेद का भी दुर्भाग्य शुरू हुआ और विदेशी शासन में इसकी प्रगति रुकी रही। किन्तु अब आयुर्वेदज्ञों का यह कर्त्तव्य होता है कि वे इस विज्ञान को पुनरुज्जीवित करें—और उसे गौरवपूर्ण पद पर पुनःस्थापित करें। केवल दूसरों की आलोचना या निन्दा तथा अतिरंजनपूर्ण मिथ्या दावा करने से कुछ फल नहीं निकलेगा।

आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति का उल्लेख करते हुए श्री पटेल ने कहा कि इसकी महान् उन्नति का कारण यह है कि कितने ही वैज्ञानिकों ने सत्य के अन्वेषण में अपने

प्राण तक की बाजी लगा दी—विज्ञान के प्रति वैज्ञानिकों की अनुपम त्यागमूलक निष्ठा के परिणामस्वरूप ही आधुनिक विज्ञान का उत्कर्ष हो सका है। आपने वैद्यों को सम्बोधित करते हुए कहा कि यदि आयुर्वेद-विज्ञान को जीवित रखना है तो सच्चाई, मानसिक साहस तथा खुले मस्तिष्क के साथ आयुर्वेद के उत्थान में जुट जावें।

### शोध अत्यावश्यक

शोध-कार्य की आवश्यकता पर जोर देते हुए श्री पटेल ने कहा कि आधुनिक प्रणाली से आयुर्वेद में शोध होना चाहिए और आयुर्वेदिक औषधियों की गुणवत्ता वैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा प्रमाणित की जानी चाहिए—इससे विश्व में आयुर्वेदिक औषधियों की प्रतिष्ठा बढ़ेगी और आयुर्वेद के प्रति संसार उत्सुकतापूण दृष्टि से देखेगा।

### आयुर्वेद-शिक्षण-पद्धति की त्रुटियाँ

स्वास्थ्य मन्त्री ने आगे कहा कि आयुर्वेद शिक्षण-पद्धति की सब से खटकनेवाली बात यह है कि अध्येताओं को केवल सैद्धान्तिक ज्ञान ही दिया जाता है—व्यावहारिक ज्ञान नहीं दिया जाता। फलस्वरूप व्याधियों के निदान करने का अवसर उन्हें नहीं मिल पाता। अधिकांश आयुर्वेदिक कालेजों में व्यवहारिक प्रशिक्षण की प्रायः व्यवस्था नहीं होती। इससे उनका ज्ञान अनिवार्यतया एकाङ्गी होता है। आयुर्वेदीय शिक्षण की इस बुनियादी कमी को दूर करने की अपील करते हुए आपने वैद्यों एवं आयुर्वेदिक औषधि-निर्माताओं से कहा कि औषधियों के निर्माण में मूल द्रव्यों की शुद्धता पर विशेष ध्यान देकर जनता का विश्वास अधिकाधिक प्राप्त करने की दिशा में वे लोग प्रयत्नशील हों। आपने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० का उल्लेख करते हुए कहा कि बैद्यनाथ-प्रतिष्ठान के संचालकों का जहाँ तक प्रश्न है, वे लोग औषध-निर्माण में मूलद्रव्यों की शुद्धता के सम्बन्ध में पर्याप्त ध्यान रखते हैं और इस बात की उन्हें सदैव चिन्ता बनी रहती है कि बैद्यनाथ-प्रतिष्ठान द्वारा निर्मित औषधियों का स्टैण्डर्ड नहीं गिरने पावे।

## पं० रामनारायण शर्मा का वक्तव्य

'सचित्र आयुर्वेद' के प्रबन्ध-सम्पादक और श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के मैनेजिंग डायरेक्टर पं० रामनारायण शर्मा वैद्य ने कलकत्ता के फरपो होटल में आयोजित एक प्रेस कान्फरेन्स में राज्य चिकित्सा-परिषद् के प्रतिनिधियों और स्थानीय पत्रकारों को सम्बोधित करते हुए एक वक्तव्य में कहा कि आयुर्वेद और यूनानी चिकित्साशास्त्रियों के प्रतिनिधि-पत्रके रूप में 'सचित्र आयुर्वेद' की ओर से आपके समक्ष यह स्मृति-पत्र प्रस्तुत करते हुए हमें परम हर्ष हो रहा है। देश की अपनी एक राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति हो, हमारे देशवासी स्वस्थ व प्रफुल्लित रहें तथा रोगों की चिकित्सा के अतिरिक्त उनकी रोकथाम में भी भारतवर्ष किसी अन्य देश से पीछे न रहे, इस उद्देश्य से आपके समक्ष कुछ निवेदन करना किसके लिये हर्ष का विषय नहीं होगा।

"सचित्र आयुर्वेद" वैद्य-हकीम समुदाय की गत् ११ वर्षों से उल्लेखनीय सेवा करता आ रहा है तथा इसके संचालक श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० की ओर से भारत की आयुर्वेदीय चिकित्सा के संवर्धन हेतु सदा ही उल्लेखनीय कार्य होते रहे हैं। समय-समय पर समस्त भारत के चुने हुए विद्वानों के सम्मेलन, अनेक उपादेय पुस्तकों का प्रकाशन, आयुर्वेद एवं यूनानी के उत्थान में अनुसन्धान आदि अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये गये हैं, जिनका उल्लेख कर हम आपका समय नष्ट नहीं करना चाहते। अपने जीवन के इन ११ वर्षों के अल्प समय में "सचित्र आयुर्वेद" ने समय-समय पर कई महत्त्वपूर्ण विशेषांक भी निकाले हैं, (जैसे स्वास्थ्य अंक, योजना अंक, यक्ष्मा अंक आदि) तथा इस विषय में अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं।

वैद्य रामनारायण शर्मा ने कहा कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद देशी चिकित्सा के उत्थान के लिये जनता, सरकार, वैद्य-हकीमों और चिकित्सकों द्वारा निरन्तर प्रयास होता रहा है। किन्तु इस दिशा में अभी तक कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हो सकी है। हमारी समझ में इसका एकमात्र कारण यह है कि हमारी सरकार को कोई निश्चित स्वास्थ्य-नीति अभी तक तय नहीं हो पाई है जिसके अभाव में देशी चिकित्सा-पद्धति के उत्थान के लिये कोई शृंखलाबद्ध कार्य-क्रम भी दिखाई नहीं देता। अतः हमारा यह विनम्र सुझाव है कि भारत सरकार शीघ्र ही राष्ट्रीय आधार पर एक निश्चित स्वास्थ्य-नीति का निर्धारण करे। आये दिन रोगों और महामारी का मुकाबला होता है। सरकारी तथा गैर सरकारी तौर पर सभी काम अखिल भारतीय

स्तर से लेकर गांवों के स्तर तक सुचारू रूप से संचालित भी होते हैं, किन्तु ये सब एक स्वास्थ्य-नीति के अभाव में बहुत ही कष्टसाध्य और खर्चीली कार्यवाइयाँ साबित हो रही हैं जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानों इन सबके पीछे कोई प्राण ही नहीं जो राष्ट्र की इन सभी शक्तियों और चेष्टाओं को एक दिशा में नियोजित कर सके।

स्वास्थ्य एवं चिकित्सा, चूंकि केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के अधीनस्थ विषय है, इसलिये भी यह नितान्त आवश्यक है कि विस्तार के साथ स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी विषयों पर एक निश्चित और सर्वांगीण योजना इस तरह की राष्ट्रीय स्वास्थ्य-नीति के अन्तर्गत तैयार की जाए ताकि केन्द्र और प्रान्तों के बीच जो एक पार्थक्य-सा प्रतीत होता है उसका भी निराकरण हो सके।

हमारी मान्यता है कि अब इस विषय में अधिक टालमटोल राष्ट्रीय हित में उचित नहीं होगी और जितनी जल्दी एक कमीशन, इस राष्ट्रीय-नीति के निरूपण के लिये नियुक्त हो, उतना ही यह समीचीन होगा।

भारत जैसे विशाल एवं संस्कृतिसम्पन्न स्वतंत्र देश में, एक राज्यमान्य राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति की प्रतिष्ठा नितान्त वांछनीय है। हमारी सम्मति में आयुर्वेद ही ऐसी चिकित्सा-पद्धति हो सकती है, जिसके यूनानी-मिश्रित रूप को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति स्वीकार किया जावे। आयुर्वेद-यूनानी से देश की ८५ प्रतिशत जनता को लाभ होता है। और यह चिकित्सा देशवासियों के अनुकूल है। इसके सारे मूलद्रव्य भारतवर्ष में ही पाये जाते हैं जिससे हम एक बहुत बड़ी राष्ट्रीय बचत भी कर सकते हैं। अतः जिस प्रकार हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया गया है, उसी प्रकार आयुर्वेद को भी राष्ट्रीय चिकित्सा के रूप में स्वीकृत कर गौरवान्वित किया जावे।

वैद्य जी ने आगे कहा कि जहाँ तक भारतीय चिकित्सा-पद्धतियों में अनुसन्धान और उन्हें युगानुकूल समर्थ बनाने का प्रश्न है हम उससे सहमत हैं। सरकार ने इस दिशा में जो प्रयत्न किये हैं, उनके लिये भारतीय चिकित्सक समाज की ओर से हम विनम्र आभार व्यक्त करते हैं। साथ ही यह निवेदन करते हैं कि भारतीय चिकित्सा-पद्धति के विकास एवं औषधियों के अनुसंधान के निमित्त सरकार को और अधिक प्रोत्साहन देना चाहिए तथा वास्तविक कार्य करना चाहिए।

१—भारत में समन्वयात्मक सिद्धान्त के आधार पर, एक ही चिकित्सा-प्रणाली के प्रचलन को अधिकाधिक बल दिया जाए। हमारी सम्मति में आधुनिक विज्ञान से उपकरणादि आवश्यक अंश एवं नवीन औषधियों को, त्रिदोष-सिद्धान्त के अनुसार परीक्षण करके, आयुर्वेद में उन्हें ग्रहण कर भारतीय चिकित्सा-पद्धति की कमी को पूरा कर लिया जाए।

२—आयुर्वेद और यूनानी कदापि एक दूसरे से भिन्न नहीं है। इन दोनों के मूल सिद्धान्त एक हैं, मूलद्रव्य एक हैं, चिकित्सा और उपचार-विधि बिल्कुल एक-सी है। अतः इन दोनों को भिन्न न समझकर, सम्मिलित करके एक ही बना दिया जावे।

३—हमारा अभिप्राय है कि देश में एक ही चिकित्सा-पद्धति के विकास में पूरी शक्ति लगाई जानी चाहिए। अनेकों को प्रोत्साहन देने में खण्डशः प्रयोग से शक्ति का अपव्यय ही होता है। भारतीय चिकित्सा-पद्धति के लिये जो भी सहायता अथवा कार्यक्रम, सरकार अपनी पंचवर्षीय योजना में निर्धारित करे उसको केवल ससन्वयात्मक भारतीय चिकित्सा-पद्धति-आयुर्वेद के विकास के हित ही केन्द्रित किया जावे।

४—आयुर्वेद के सम्यक् विकास के लिये यह आवश्यक है कि सरकार उसके पाठ्यक्रम में तत्काल सुधार करे। हमारी सम्मति में आयुर्वेद एवं यनानी, दोनों के समन्वय द्वारा बना हुआ पाठ्यक्रम निर्धारित किया जावे—उसमें युगानुकल जो कमी प्रतीत हो, उसकी पूर्ति नवीन विज्ञान से की जावे। ऐसे ठोस पाठ्यक्रम के आधार पर, राष्ट्रभाषा हिन्दी में पाठ्य-पुस्तकों का सरकार शीघ्र निर्माण करावे और ऐसा सम्मिलित पाठ्यक्रम ही प्रचलित किया जावे।

५—नवीन मिश्रित पाठ्यक्रम द्वारा सुयोग्य भारतीय चिकित्सकों के निर्माण हेतु, यह अत्यन्त आवश्यक है कि केन्द्रीय और राज्य सरकारों के सम्मिलित सहयोग से, प्रत्येक राज्य में कम-से-कम एक आयुर्वेद विद्यालय अवश्य ही स्थापित किया जावे और ऐसे प्रत्येक विद्यालय के साथ, शिक्षार्थियों को व्यावहारिक ज्ञान-सम्पन्न करने के निमित्त तथा जनता को व्यवस्थित चिकित्सा से लाभान्वित करने के लिये एक सर्वसामानयुक्त आतुरालय सम्बद्ध किया जावे।

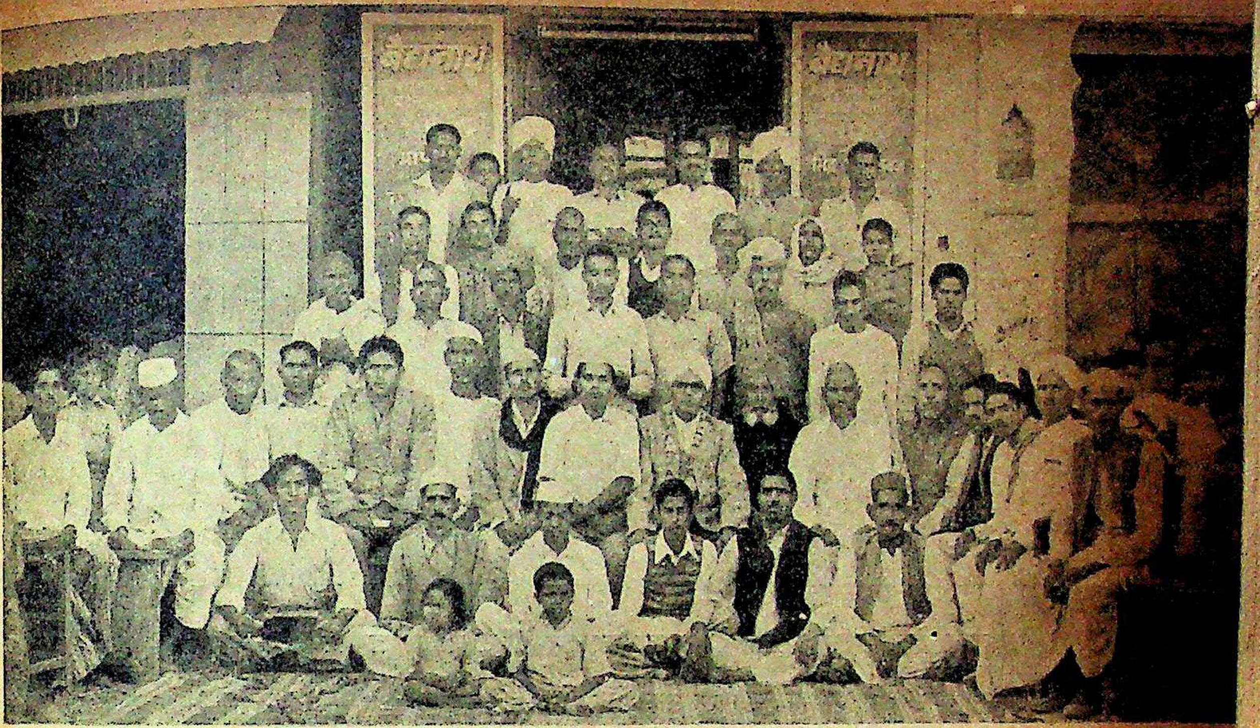

रेवाड़ी में धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर आयोजित वैद्य-सभा का भव्य दृश्य

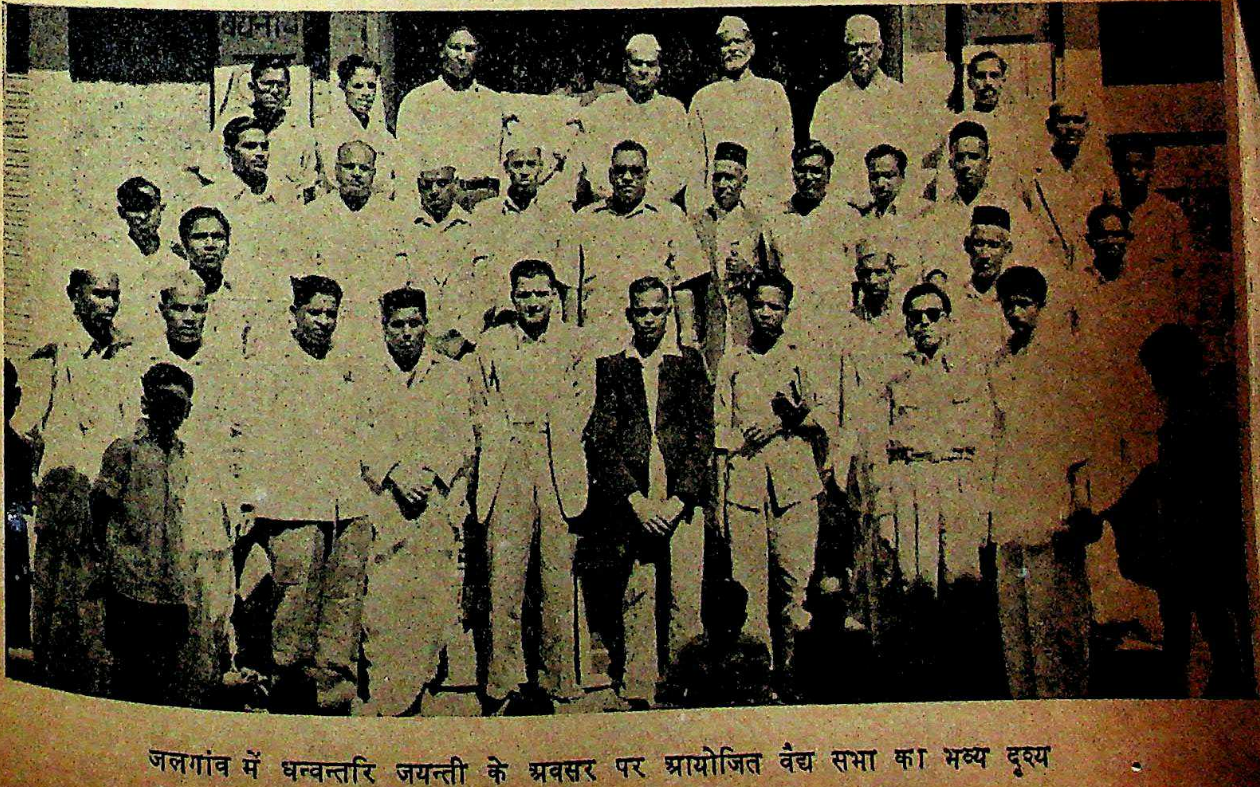

जलगांव में धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर आयोजित वैद्य सभा का भव्य दृश्य

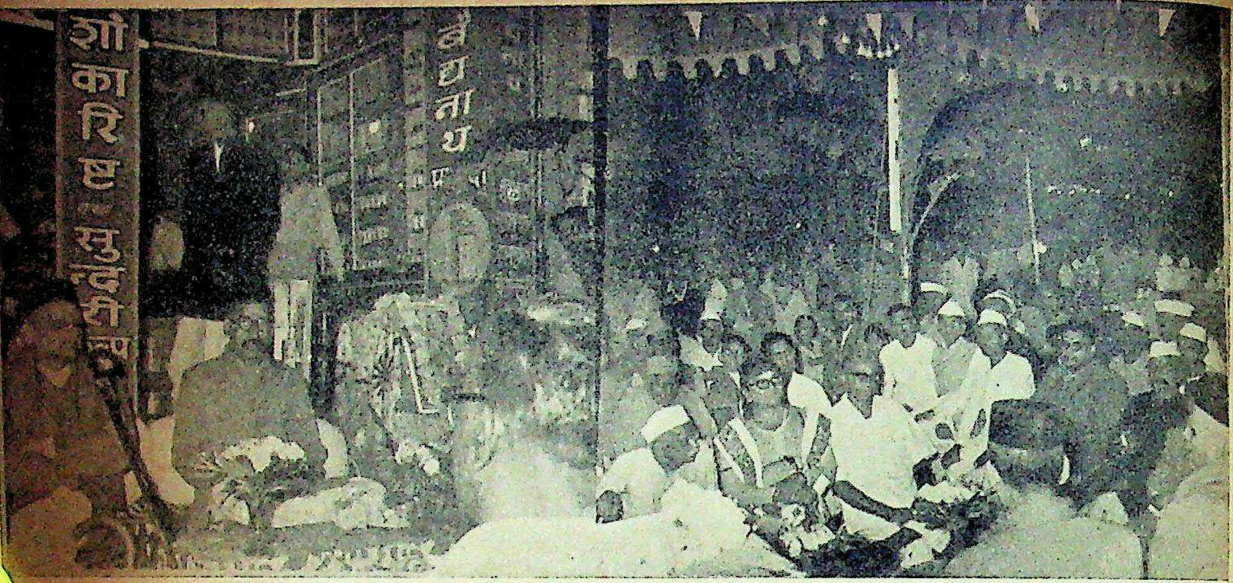

जवलपुर में धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर आयोजित वैद्य सभा का भव्य दृश्य

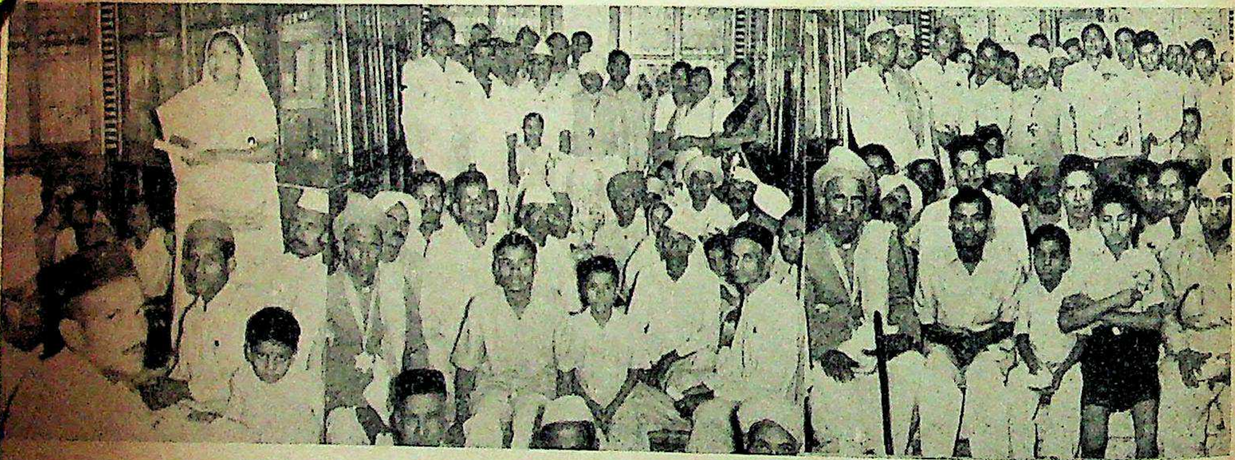

इन्दौर में धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर आयोजित वैद्य सभा का एक भव्य दृश्य

दौलतगंज (लश्कर) में धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर आयोजित वैद्य सभा का भव्य दृश्य

६—भारतीय चिकित्सा-पद्धति के विकास में, एक खटकनेवाला अवरोध यह भी है, कि औषधियाँ साधारणतः शुद्ध नहीं मिलतीं। इसके लिये सरकार सक्रिय प्रयत्न द्वारा ऐसी व्यवस्था करे कि मूलद्रव्य सर्वथा असली और प्रामाणिक सुलभ हो सकें।

७—एक बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय औषधियों का स्तर-निर्धारण किया जावे। इसके लिये एक सर्वांगपूर्ण प्रामाणिक औषधि-संहिता (फार्माकोपिया) यथाशीघ्र तैयार कराया जावे और उसमें आयुर्वेद एवं यूनानी तथा पाश्चात्य विज्ञान के प्रतिनिधि विद्वानों का सहयोग लिया जावे।

८—शासन की ओर से नियुक्त स्वास्थ्य विभागाधिकारी, देशी चिकित्सा पद्धतियों से अनभिज्ञ होने के कारण, उनमें रुचि नहीं रखते और जन-स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जो कुछ भी विचारते या करते हैं, उसका आधार पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव होता है। आज भी हमारे स्वास्थ्य विभाग विदेशी शासकों की परम्परा पर ही चल रहे हैं। राष्ट्रीय सरकार ने देश के अन्य निर्माण-कार्यों पर जितना अधिक मनोयोगपूर्वक ध्यान दिया है और विभिन्न क्षेत्रों में देश को आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया है, उतना स्वास्थ्य के विषय में रचनात्मक कार्य नहीं किया गया, यह कटु सत्य है और दुख की बात है। अन्य बातों में आत्मनिर्भर होकर भी, स्वास्थ्य और चिकित्सा के लिये, देश की जनता परमुखापेक्षी रहे, यह लज्जा की बात होगी। हमें खेद है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार के जन-स्वास्थ्य विभाग भारतीय जनता के स्वास्थ्य और आरोग्य के विषय में विदेशों की नकल करने की पहले चेष्टा करते हैं, परिणामतः इस दिशा में सरकार के जो प्रयत्न होते भी हैं वे बहुत अधिक व्यय-साध्य होते हैं और उनसे लाभ प्रायः अत्यल्प ही होता है। अतः हमारा विनम्र सुझाव है कि देश के जन-स्वास्थ्य के विषय में भारतीय परम्पराओं को आधार बनाकर, आयुर्वेद-यूनानी के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करने की नीति अपनाई जावे।

९—हमारी सम्मति में भारतीय चिकित्सा-पद्धति के समुचित विकास के लिये प्रत्येक राज्य में स्वतंत्र एवं पूर्ण साधनाधिकारसम्पन्न आयुर्वेद-विभाग स्थापित किये जाने चाहिए और उनमें आयुर्वेद और यूनानी के विश्वस्त तथा योग्यतम विद्वानों को ही उच्चाधिकारी-पद पर नियुक्त किया जाना चाहिए।

१०—हमारी सम्मति में भारतीय जनता के स्वास्थ्य की गिरती हुई अवस्था का एक प्रधान कारण समुचित मात्रा में संतुलित भोजन का अभाव है। अन्न की कमी न भी खटके, यदि पौष्टिक पदार्थ हर व्यक्ति को उचित मात्रा में सुलभ हो सकें। इस सम्बन्ध में देश की असीमित रूप से बढ़ती हुई जनसंख्या का यथोचित नियंत्रण होना चाहिए।

११—स्वास्थ्य के मूल सिद्धान्तों का जो प्रचार सरकार द्वारा पाश्चात्य प्रणाली के अनुसार या नकल पर किया जाता है, हमारी सम्मति में वह भारतीय जनता की भावना से मेल नहीं खाता और वह जनता के लिए सुबोध एवं सुगम्य भी नहीं है।

१२—हमारा यह प्रबल आग्रह है कि भारतीय देशी चिकित्सकों में व्याप्त निराशा एवं हीनता की भावना को अविलम्ब दूर करने के लिये तथा भारतीय चिकित्सा-विज्ञान को वास्तविक प्रोत्साहन देने के लिये सुयोग्य एवं प्रशिक्षित वैद्यों एवं हकीमों को डॉक्टरों के समान का दर्जा देकर सरकार अपनी सद्भावना का परिचय दे।

राज्य चिकित्सा परिषद् के मंत्री श्री आशुतोष मजुमदार, राजस्थान के आयुर्वेद विभाग के संचालक श्री प्रेमशंकर शर्मा, उत्तरप्रदेश के आयुर्वेद-संचालक श्री द० आ० कुलकर्णी, कविराज श्रीनारायण शर्मा तथा कविराज अनाथनाथ राय ने भी आयुर्वेद की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए सामयिक भाषण दिया। अन्त में धन्यवाद-ज्ञापन कर कार्यवाही समाप्त हुई।

## उत्तर प्रदेश में आयुर्वेद की प्रगति

### आयुर्वेदीय व्यवसाइयों को सूचना

उत्तर प्रदेशीय सरकार राज्य में आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियों एवं अन्य औषधियों पर नियंत्रण रखने तथा उनका माप-दण्ड-स्टैंडर्डाइजेशन करने के लिये कानून बनाना चाहती है। इस कानून के बनाने में सरकार उन सभी आयुर्वेदिक तथा यूनानी चिकित्सकों एवं व्यवसायियों का सहयोग प्राप्त करना चाहती है जो आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सा का कार्य करते हैं या उन औषधियों का व्यापार करते हैं।

अतः सभी सम्बन्धित व्यक्तियों से अनुरोध है कि देशी चिकित्सा-कार्य में व्यवहृत होने वाली समस्त जड़ी-

बूटियों तथा बनी हुई औषधियों के माप-दण्ड को किस प्रकार नियंत्रित किया जाय इसके बारे में अपने सुझाव प्रेषित करें जिससे उनका उचित स्टैंडर्डाइजेशन हो सके। १५ दिन के अन्दर विस्तारपूर्वक लोगों के सुझाव बोर्ड आफ इन्डियन मेडिसिन, उत्तर प्रदेश, लखनऊ के कार्यालय को प्राप्त हो जाना चाहिये।

### आ० यू० कम्पाउण्डर संघ का अधिवेशन

राजकीय आयुर्वेदिक व यूनानी कम्पाउण्डर संघ उत्तर-प्रदेश के तृतीय वार्षिक अधिवेशन में श्री द० अ० कुलकर्णी उपस्वास्थ्य-सेवा-संचालक (आयुर्वेद), उत्तर प्रदेश ने उद्घाटन भाषण करते हुए कहा कि यह हर्ष का विषय है कि आज इस लक्ष्मणपुरी (लखनऊ) नगरी में प्रान्त के राजकीय आयुर्वेदिक व यूनानी चिकित्सालयों के कम्पाउण्डरों का यह अधिवेशन हो रहा है। इस समय इस प्रान्त में राज्य की ओर से ५८९ आयुर्वेदिक व यूनानी चिकित्सालय जन-सेवा के कार्य कर रहे हैं; जिनमें ५९५ कम्पाउण्डर कार्य करते हैं। वैद्य, हकीम व कम्पाउण्डर इन चिकित्सालयों के महत्त्वपूर्ण अंग हैं तथा दोनों के सहयोग से ही जनता इन चिकित्सालयों से लाभ उठा सकती है। कम्पाउण्डर का कार्य केवल वैद्य के व्यवस्था-पत्र के अनुसार औषधि-वितरण करना ही नहीं है बल्कि रोगी की सेवा-सुश्रूषा के सम्बन्ध में उचित ध्यान रखना भी उनका कर्त्तव्य है।

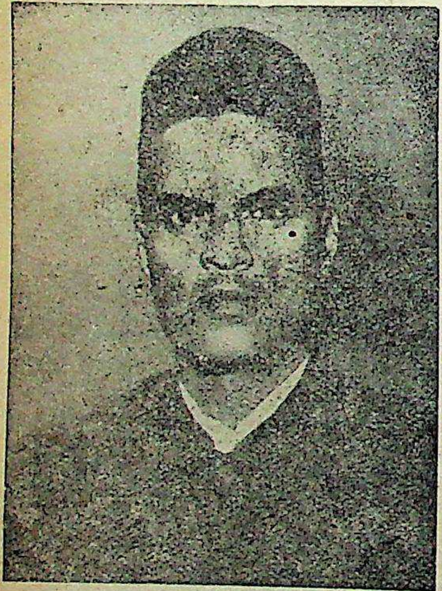

श्री द० अ० कुलकर्णी

आप सबको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि अब कम्पाउण्डर संघ को राजकीय मान्यता प्राप्त हो गई है। मान्यता प्राप्त होने के कारण इस संघ का उत्तरदायित्व प्रान्तीय सरकार को सहयोग देने के सम्बन्ध में अत्यधिक बढ़ गया है। संघ का लक्ष्य केवल अपने सदस्यों की मांगों को प्रस्तुत करना ही नहीं होना चाहिये बल्कि प्रान्तीय सरकार व विभाग को अपने सदस्यों द्वारा अधिक-से-अधिक सहयोग देना है। मुझे आशा ही नहीं बल्कि विश्वास है कि संघ इस ओर अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं होगा।

आयर्वेदिक एवं यूनानी कम्पाउण्डरों की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध बोर्ड द्वारा प्रमाणित संस्थाओं में हैं। आशा है कि ये संस्थायें समुचित शिक्षा की सुविधाओं को बढ़ाने की ओर अधिक ध्यान देंगी। इन चिकित्सालयों के बहुसंख्यक कम्पाउण्डरों ने बड़े उत्साह व परिश्रम के साथ वैद्य व हकीमों के आदेशानुसार अधिक-से-अधिक जन सेवा करने की चेष्टा की है जो प्रशंसनीय है।

इस समय जो सबसे मुख्य विषय हमारे सामने है वह आप लोगों के स्थाईकरण तथा शिक्षित (ट्रेण्ड) घोषित करने के सम्बन्ध में हैं जिसके हेतु मैं सतत प्रयत्न करता आ रहा हूँ। इस समय इस विषय पर राज्य सरकार से पत्र-व्यवहार चल रहा है और आदेश प्राप्त होते ही आपके कष्ट दूर हो जाने की मुझे आशा है।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण विषय आप लोगों के सामने और रखना है वह यह है अधिक-से-अधिक जनता की सेवा करना जिससे आयुर्वेद व यूनानी चिकित्सा पद्धति तथा यह विभाग अधिक-से-अधिक लोकप्रिय बन सकेगा। इसके लिये आप लोगों को प्राइवेट प्रैक्टिस का भाव बिल्कुल छोड़ देना चाहिये। इस समय विभाग की ओर से केवल वैद्य व हकीमों को ही चिकित्सालय के समय के अतिरिक्त समय में प्राइवेट प्रैक्टिस करने का अधिकार है तथा उन्हें ही निर्धारितफीस लेने का अधिकार है। चिकित्सा-शास्त्र में आपकी योग्यता ऐसी नहीं है कि आप रोग-निदान और चिकित्सा कर सकेंगे। यदि कम्पाउण्डर तथा वैद्य अथवा हकीम दोनों भी रोगी से फीस लेने के हकदार होंगे तो बड़े झगड़े होंगे जिससे विभाग की बड़ी बदनामी होगी। इसके अतिरिक्त यह भी देखने में आता है कि प्रायः आप लोगों के वैद्य-हकीमों से झगड़े इसी प्राइवेट प्रैक्टिस के कारण ही होते

हैं, जिससे आपको भी कष्ट उठाना पड़ता है और विभाग की भी बदनामी होती है।

इसके अतिरिक्त आप लोगों को इन बातों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए ताकि इस विभाग का कार्य सुचारू रूप से चल सके। (१) आपको कभी कोई अवैधानिक कार्य नहीं करना चाहिये तथा विभागीय आज्ञाओं का श्रद्धापूर्वक और अक्षरशः पालन करना चाहिये। (२) आप लोगों को ग्राम की जनता की पार्टीबन्दी से हमेशा अलग रहना चाहिये ताकि विभाग की बदनामी न हो क्योंकि आपका कार्य व ध्येय केवल रोगी की सेवा करना ही है।

(३) वैद्य-हकीमों तथा अन्य अधिकारियों के साथ उत्तम व्यवहार व सहयोग की सद्भावना रखना आवश्यक है। अपने विभाग व अधिकारी-वर्ग अथवा वैद्य-हकीम की निन्दा करना तथा उनके कार्य में बाधा डालना महान अपराध होता है। इससे विभाग की बदनामी होने के साथ ही साथ आपकी भी बदनामी होती है।

(४) प्रायः यह देखने में आता है कि कुछ कम्पाउण्डर आकस्मिक अवकाश पर जाकर घर से ही अवकाश-काल को छोटे टुकड़ों में बढ़ाते रहते हैं जो कि सर्वथा अनुचित है। इससे आप लोगों का अवकाश भी समय से स्वीकृत नहीं हो पाता तथा वेतन भी खटाई में पड़ जाती है। इसके साथ ही उन वैद्य-हकीमों को भी महान कष्ट उठाना पड़ता है क्योंकि आपके स्थान पर कोई अन्य वितरक थोड़े समय के लिये नहीं रखा जा सकता और इससे रोगियों को भी महान कष्ट उठाना पड़ता है।

इन शब्दों के साथ मैं इस मान्यताप्राप्त संघ के प्रथम वार्षिक अधिवेशन के समक्ष अपने भाषण को समाप्त करते हुए आश्वासन देता हूँ कि मेरी शुभकामनायें सदा आपके साथ रहेंगी।

## आ० यू० चिकित्सक संघ की कार्यवाही

राजकीय आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्सक संघ उत्तरप्रदेश की कार्यकारिणी की बैठक गत ५ नवम्बर '५८ को छेदीलाल धर्मशाला लखनऊ में हकीम श्री मुहम्मद शिफात अली खाँ रामपुर की अध्यक्षता में हुई। कार्यकारिणी के १४ सदस्यों ने इसमें भाग लिया। एक विशेष प्रस्ताव द्वारा कार्य-कारिणी ने सरकार से प्रबल आग्रह कर निवेदन किया कि आयुर्वेद एवं यूनानी की द्रुत गति से प्रगति करने एवं वैद्य-हकीमों की मान-प्रतिष्ठा के लिये सरकार शीघ्र आयुर्वेदिक संचालक (डाइरेक्टर) की नियुक्ति करने की कृपा करे। एक अन्य प्रस्ताव द्वारा संघ ने इस बात पर क्षोभ प्रगट किया कि संघ के वार्षिक अधिवेशन में पारित प्रस्तावों पर शासन द्वारा अब तक कोई कार्यवाही नहीं की गई। अतः सरकार से इस विषय में आवश्यक कार्यवाही करने की मांग की गई। तृतीय प्रस्ताव द्वारा कार्य कारिणी ने सरकार द्वारा आयुर्वेद विभागमें सहायक आयुर्वेद-संचालक की नियुक्ति करने सम्बन्धी निश्चय का स्वागत करते हुए सरकार से मांग की कि इस स्थान की पूर्ति क्षेत्रीय आयुर्वेद एवं यूनानी अधिकारियों, वैद्य और हकीमों में से ही पदोन्नति की जाय।

मध्याह्न में कार्य कारिणी के सभी सदस्य उपसंचालक महोदय से मिले और उन्हें सामूहिक कठिनाइयों से अवगत कराया। उन्होंने शासन द्वारा इन्हें दूर कराने हेतु प्रयत्न करने का आश्वासन दिया। सायंकाल कार्य कारिणी की पुनः बैठक हुई। आवश्यक मांगों के विषय में उसने संघ के संरक्षक श्री धर्मदत्त जी वैद्य एम० एल० ए० से प्रार्थना की कि वे शासन से वैद्य-हकीमों की कठिनाइयों के विषय में विचार-विमर्श कर उन्हें दूर कराने की कृपा करें। अन्त में वार्षिक अधिवेशन के लिये आवश्यक कार्यवाही करने के हेतु पांच सदस्यों की एक उप समिति बनाकर कार्य कारिणी की बैठक समाप्त हुई।

वैद्य एवं हकीम बन्धु अपना पद (डिजिगनेसन) चिकित्साधिकारी लिख सकते हैं—इसमें विभाग को कोई आपत्ति नहीं क्योंकि शासन द्वारा जो निरीक्षण-पत्र प्रकाशित हुए हैं उनमें भी इसी शब्द का उल्लेख है।

राजकीय चिकित्सक संघ के जिन सदस्यों ने अबतक अपना वार्षिक शुल्क जमा न किया हो वे प्रधान मन्त्री राजकीय आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्सक संघ (श्री वैद्य रामलक्ष्मण मिश्र, चिकित्साधिकारी राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, पोस्ट आफिस-अन्तू, जिला——प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश के पते पर शीघ्र भेजने की कृपा करेंगे।

राजकीय आयुर्वेदिक व यूनानी संघ उत्तर प्रदेश के ग्यारहवें अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुए——

(१) सरकार ने गत दो वर्षों से राजकीय आयुर्वेद व यूनानी चिकित्सा विभाग के अन्तर्गत १० चिकित्सालय भवन प्रति वर्ष बनाने की योजना बनायी है। यह सभा

सरकार की इस नीति पर सन्तोष प्रकट कर आभार प्रदर्शित करती है, किन्तु सभा को यह जान कर बड़ा दुःख हुआ कि इस योजना के अन्तर्गत अभी तक कोई चिकित्सालय प्रान्त भर में न बन सका। अतः यह सभा अपनी सरकार से सानुरोध प्रार्थना करती है कि प्रतिवर्ष १० चिकित्सालय भवन बनाने की योजना पूर्णरूप से क्रियान्वित की जाय। जबतक चिकित्सालय भवन न बन जायँ तब तक नये चिकित्सालय स्थापित न किए जायँ। जहाँ पर चिकित्सालय भवन बन चुके हैं वहाँ पर इन्डोर बार्ड व कर्मचारियों के क्वोटर्स बनाने की व्यवस्था की जाय।

(२) राष्ट्रीय प्रसार सेवा-खण्डों द्वारा प्रथम पंचवर्षीय योजना में सरकार का प्रचुर धन समस्त विभागों को समुन्नत बनाने में व्यय हुआ। किन्तु दुःख का विषय है कि हमारे देशी चिकित्सालय सर्वथा उपेक्षित किए गये। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भी इन चिकित्सालयों की जो उपेक्षा की गयी वह हमारे संघ को असहनीय है। सभी को विकसित होने का पूर्ण अवसर मिलना चाहिए। अतः हम प्रार्थना करते हैं कि विकास-खण्डों में पहले से चल रहे देशी चिकित्सालयों को भी विकसित करने की व्यवस्था की जाय। जहाँ खोले जाने वाले नवीन एलोपैथिक चिकित्सालयों को सरकार की निर्धारित नीति के अनुसार वर्तमान देशी चिकित्सालयों से ५ मील की परिधि से बाहर खोले जायँ।

(३) मेडिको लीगल वर्क के लिए इण्डियन मेडिसिन एक्ट की धारा ३९ के अनुसार जब पैरा ४ के अन्तर्गत रजिस्टर्ड चिकित्सालयों को अधिकार है तब इन क्वालीफाइड वैद्य व हकीमों पर इस प्रकार की रोक लगाने से यह सभा असंतुष्ट है। अतः सरकार से सानुरोध प्रार्थना है कि मेडिको लीगल वर्क के लिए आज्ञा प्रदान की जाय।

(४) सरकार ने दो वर्ष पूर्व हमारे विभाग में २६ पोष्ट गजटेड करने की योजना की थी; किन्तु दुःख है कि अब तक उनकी पूर्ति न हो सकी। अतः प्रार्थना की जाती है कि जनता में देशी चिकित्सा-पद्धतियों के प्रति सरकार की नीति को स्पष्ट करने के लिए इन पोष्टों को अविलम्ब घोषित किया जाय।

(५) सरकार के प्रत्येक विभाग में पदोन्नति उसी विभाग के वर्तमान कर्मचारियों में से की जाती है। यह नियम हमारे विभाग में बिलकुल नहीं वर्ता जाता। सरकार द्वारा संगठित आयुर्वेद व यूनानी पुनःसंगठन समिति ने एक मत से इसकी सिफारिश की है। हम लोग इन पदों के लिए अपेक्षित योग्यता रखते हैं तथा अपनी वर्तमान सर्विस के आधार पर इन पदों के लिए अधिक उपयुक्त हैं। अतः सरकार से प्रार्थना की जाती है कि भविष्य में क्षेत्रीय आयुर्वेद व यूनानी अधिकारियों के पदों की पूर्ति हम लोगों में से ही की जाय।

(६) देशी चिकित्सा-पद्धतियों के समुत्थान के लिए यह परमावश्यक है कि हमारे विभाग का संचालन केन्द्र में आयुर्वेदज्ञ डायरेक्टर तथा जिलास्तरीय शासन इन चिकित्सा-पद्धतियों के ज्ञाताओं द्वारा हो।

(७) हमारा वेतन स्तर निम्नस्तरीय है। अतएव हम सरकार से प्रार्थना करते हैं कि यह स्तर परिवर्तित करके २००–४०० कर दिया जावे।

(८) सरकार ने अभी तक हमारा कोई नामकरण नहीं किया है जब कि स्टेट आयुर्वेदिक कालेज चिकित्सालय में नियुक्त हमारे सहयोगी बन्धुओं का नामकरण सीनियर मेडिकल आफीसर एवं जूनियर मेडिकल आफीसर निश्चित किया गया है। अतः सरकार से प्रार्थना है कि हमारा नामकरण भी तत्सम निश्चित करने की कृपा की जावे।

(९) सरकार ने चिकित्सालय-कर्मचारियों के निवास की कोई व्यवस्था नहीं की है। जनता की वास्तविक सेवा चिकित्सालय के समीप ही रह कर कर्मचारी कर सकते हैं, अतः प्रार्थना है कि हाउस रेन्ट एलाउन्स देने की कृपा की जावे।

१०) हमारे चिकित्सालयों को औषधियों के मद में निर्धारित धनराशि आज से ५ वर्ष पूर्व निश्चित की गयी थी जब कि इस अवधि में मंहगाई के कारण दवाओं के मूल्य में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी है। फलतः औषधियाँ परिमाण में कम मिलती जा रही हैं। अतः प्रार्थना की जाती है कि इस मद में अविलम्ब वृद्धि की जाय।

(११) संघ ने अपनी प्रविधिक योग्यता-वृद्धि के निमित्त रेफ़रेसर कोर्स की व्यवस्था के लिए निरन्तर प्रार्थना की है, किन्तु खेद का विषय है कि विभाग की ओर से अभी तक कोई व्यवस्था नहीं की गयी है। अतः प्रार्थना है कि रेफ़रेसर कोर्स की तात्कालिक व्यवस्था की जाय।

## आयुर्वेदीय चिकित्सालय का शिलान्यास

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय बबुरी, वाराणसी के नव्य भवन का शिलान्यास माननीय पं० कमलापतिजी त्रिपाठी गृह, शिक्षा एवं सूचना मन्त्री उत्तर प्रदेश, के कर-

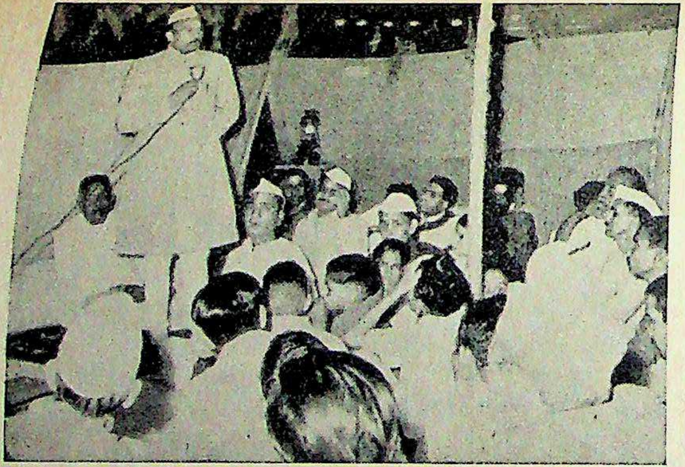

धन्वन्तरि जयन्ती भरतपुर में आयोजित सभा का दृश्य

श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि.
शिष्ट एजेन्ट पं. डूंगरमल विद्याधर शर्मा
धन्वन्तरि-जयन्ती-समारोह

धन्वन्तरि जयन्ती पर फैजाबाद में आयोजित वैद्य सभा का एक दृश्य

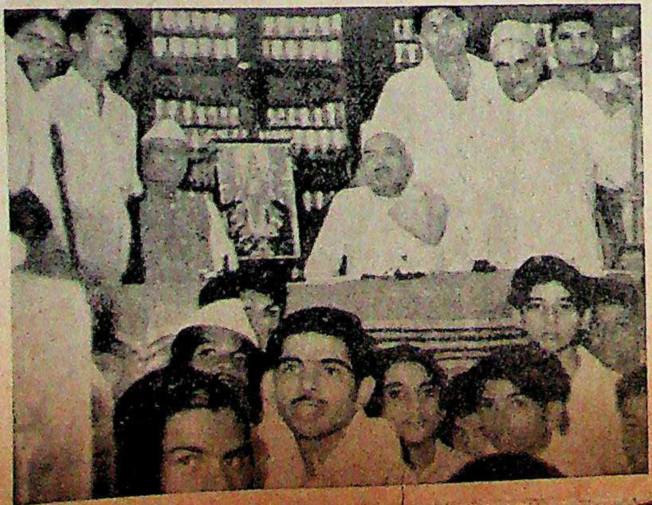

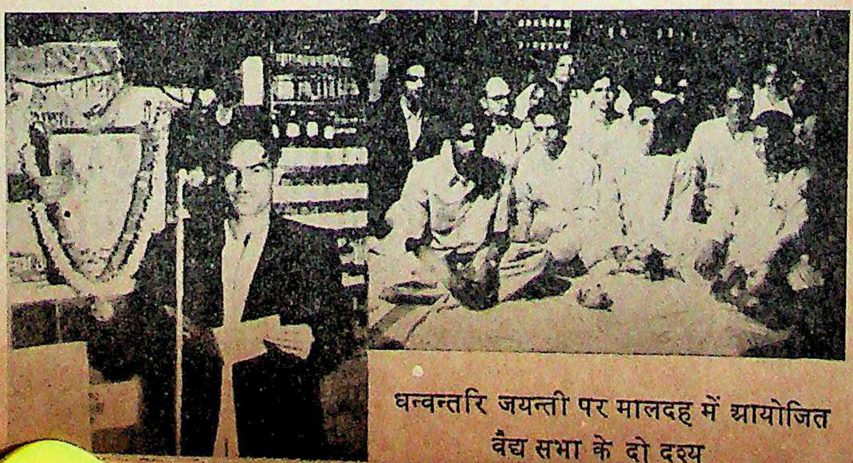

धन्वन्तरि जयन्ती पर मालदह में आयोजित
वैद्य सभा के दो दृश्य

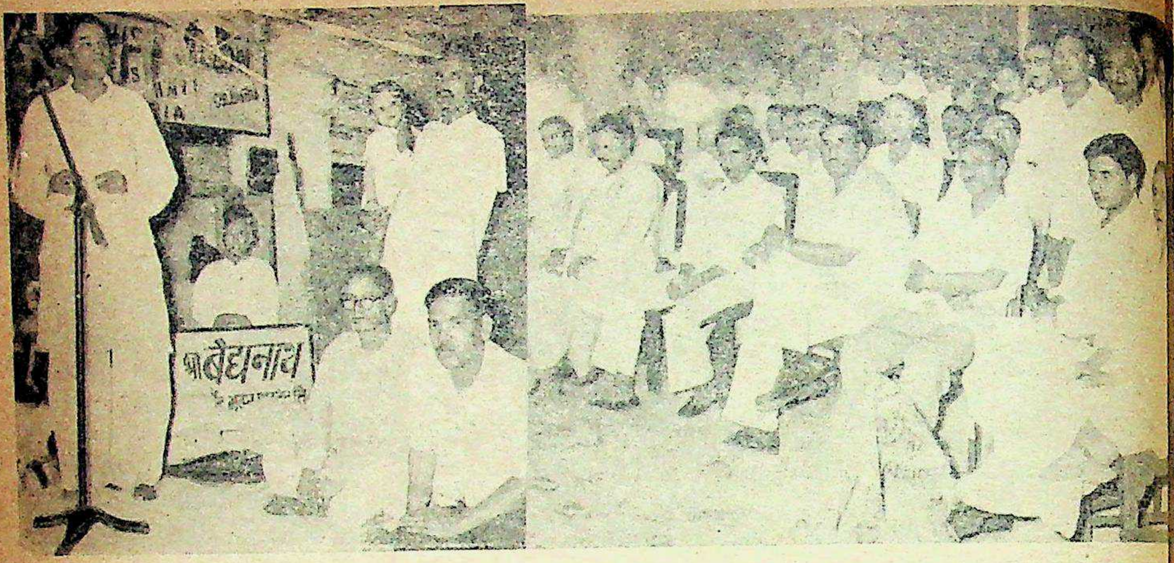

धन्वन्तरि जयन्ती पर झरिया में आयोजित वैद्य-हकीमों की सभा के दो भव्य दृश्य

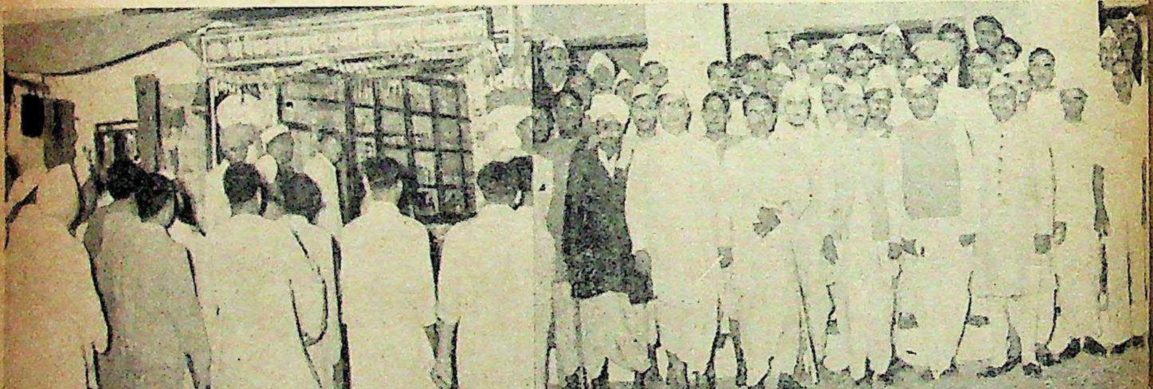

धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर बरेली में आयोजित वैद्य सभा के दो सुन्दर दृश्य

धन्वन्तरि जयन्ती पर मथुरा में वैद्य सभा का दृश्य

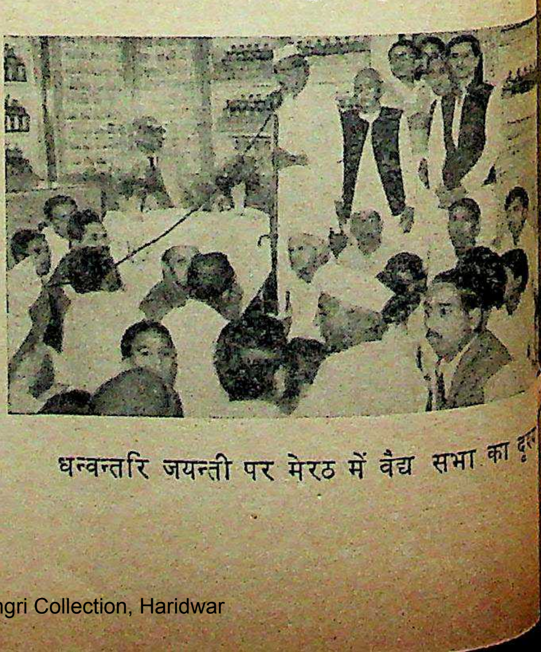

धन्वन्तरि जयन्ती पर मेरठ में वैद्य सभा का दृ

कमलों द्वारा गत ६-९-५८ को सम्पन्न हुआ। उक्त शिलान्यास बबुरी ग्राम सभा के ग्राम सभापति श्री लोकनाथ सिंह ने अपने स्वर्गीय चाचा श्री सत्यनारायण सिंहजी की पुण्यस्मृति में कराया। भवन-निर्माणार्थ उन्होंने दस हजार रुपये का दान दिया है। जिला नियोजन समिति वाराणसी ने भी दस हजार रुपये का अनुदान उक्त भवन के निर्माणार्थ स्वीकृत किया है। उक्त अवसर पर केन्द्रीय योजना आयोग के सदस्य श्री त्रिभुवन नारायण सिंह, शिक्षा विभाग के उप-संचालक, प्रधान अभियन्ता नहर विभाग, क्षेत्रीय विधायकगण, जिला स्वास्थ्य अधिकारी वाराणसी, क्षेत्रीय आयुर्वेदिक अधिकारी, वाराणसी क्षेत्र, अंतरिम जिला परिषद् के उपाध्यक्ष एवं सदस्यगण तथा समीपस्थ ग्राम-सभाओं के सभापति उपस्थित थे।

उक्त अवसर पर लगभग एक हजार जनता के समक्ष माननीय मन्त्री जी ने अपने भाषण में कहा कि भारतीय जल-वायु के लिये आयुर्वेद ही अनुकूल चिकित्सा-पद्धति है। इसके उन्नयन के लिये सरकार सचेष्ट है। प्रीति-भोज के उपरान्त उक्त समारोह समाप्त हुआ।

### आयुर्वेदिक स्वास्थ्य-प्रदर्शिनी

राष्ट्रीय प्रसार सेवा खण्ड प्रतापपुर, जिला इलाहाबाद द्वारा आयोजित किसान मेला एवं विकास प्रदर्शिनी में जिला स्वास्थ्य अधिकारी महोदय, इलाहाबाद के आदेश के अनुसार चिकित्साधिकारी राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय सरायममरेज इलाहाबाद ने आयुवदिक स्वास्थ्य विषयक चार्टस्, माडल्स, औषधियों एवं वनस्पतियों द्वारा आयुर्वेदिक स्वास्थ्य-प्रदर्शन-कक्ष का आयोजन कर विकास प्रदर्शिनी में सक्रिय भाग लेकर जनता को स्वास्थ्य विषयक आदर्शों से अवगत कराया। इस त्रिदिवसीय प्रदर्शन-कक्ष से लगभग ६००० जनता लाभान्वित हुई, यथासमय कृपापूर्वक पधारे हुए ए० डी० एम०, एस० डी० ओ०, एम० एल० ए०, वी० डी० ओ०, ए० डी० ओ०, एवं विभागीय निरीक्षक महानुभाव एवं अन्य नेतागण तथा सभापतियों ने पूर्ण मनोयोग से इस प्रदर्शन-कक्ष का अवलोकन करते हुए पूर्ण संतोष व्यक्त किया। श्रीमान् क्षेत्रीय विकास अधिकारी महोदय, प्रतापपुर इलाहाबाद ने प्रथम स्थान प्राप्त व्यक्ति को प्रमाण-पत्र दिया।

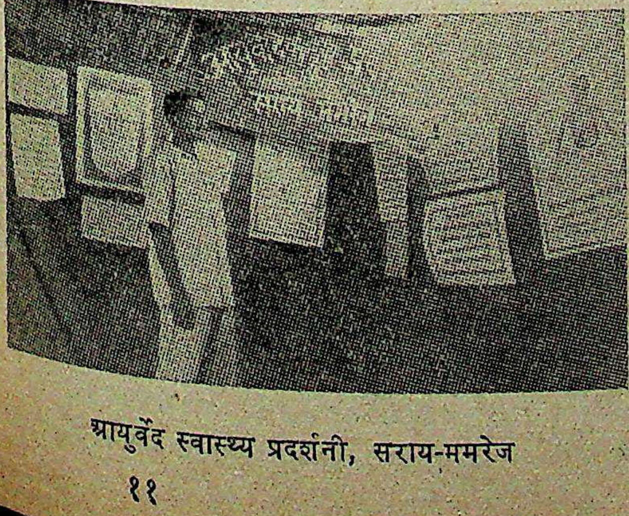

आयुर्वेद स्वास्थ्य प्रदर्शनी, सराय-ममरेज

## राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन

रतनगढ़ नगर में राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन का चौदहवाँ अधिवेशन गत ८, ९ नवम्बर को धूमधाम से सम्पन्न हुआ। माननीय भीखाभाई उप-स्वास्थ्य मन्त्री राजस्थान ने सम्मेलन का उद्घाटन करते समय बताया कि राजस्थान में आयुर्वेद का विकास अन्य प्रान्तों की अपेक्षा शीघ्रता से हो रहा है। वह समय दूर नहीं जब राजस्थान आयुर्वेद-क्षेत्र में सभी प्रान्तों से सर्वोपरि हो जावेगा। इस विकास का मूल कारण यह है कि राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन तथा राज्य दोनों ही मिल कर सामूहिक रूप से प्रयत्न कर रहे हैं। आपने बताया कि राजस्थान के निर्माण के समय १० लाख का बजट आयुर्वेद विभाग का था जो बढ़ते-बढ़ते ३४ लाख तक होने जा रहा है।

सम्मेलन के प्रथम दिन श्री रामनारायण जी शर्मा, मैनेजिंग डाइरेक्टर वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० ने आयुर्वेद-ध्वज का उत्तोलन धन्वन्तरि मन्दिर रतनगढ़ के विशाल प्रांगण में किया। इस अवसर पर आपका सार-गर्भित भाषण हुआ। आपने ध्वज का महत्व बतलाते हुए कामना प्रकट की कि प्राचीन काल की तरह भविष्य में भी हमारा आयुर्वेद-ध्वज विश्व भर में सेवाओं के बल पर फहरायेगा।

सम्मेलन के अवसर पर एक आयुर्वेद-प्रदर्शिनी भी आयोजित की गयी जिसका उद्घाटन स्वामी रामप्रकाशजी भिषगाचार्य, रजिस्ट्रार इण्डियन मेडिसन बोर्ड राजस्थान ने किया। प्रदर्शिनी की सजावट में हनुमान आयुर्वेदिक कालेज के प्रिंसिपल श्री चिमनलालजी आयुर्वेदाचार्य द्वारा बहुत श्रम किया गया था।

राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन की कार्यसमिति का अधिवेशन कविराज माधवप्रसाद शास्त्री की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ, जिसमें श्री परमानन्द शर्मा प्रधान मन्त्री राजस्थान ने वार्षिक विवरण प्रस्तुत किया।

खुले अधिवेशन में राजस्थान की ५ कमिश्नरी के सदस्यों द्वारा आचार्य श्री नित्यानन्दजी पिलानी के अध्यक्ष-पद हेतु प्रस्ताव व समर्थन के पश्चात् कविराज माधवप्रसादजी शास्त्री ने अपना कार्यभार आचार्य श्री को सम्भलाया। इसके पश्चात् आपका भाषण हुआ। श्री आचार्य महोदय ने बताया कि स्वास्थ्य के लिए २६७ करोड़ रुपये में से केवल ७ करोड़ रुपया आयुर्वेद पर व्यय किया गया है, शेष २६० करोड़ एलोपैथी पर। आपने सरकार से अनुरोध किया कि वजट का आधा रुपया आयुर्वेद पर व्यय करने से आयुर्वेद-चिकित्सा से सम्प्रति लाभ उठाने वाले बीमारों से चौगुनी संख्या अधिक बीमारों को लाभ पहुँचाया जा सकता है तथा विदेशी मुद्रा जो दवाइयों पर व्यय की जा रही है वह बचाई जा सकती है।

रात में आचार्य श्री नित्यानन्दजी की अध्यक्षता में विषय निर्वाचनी समिति की बैठक हुई, जिसमें अधिकांश प्रतिनिधियों ने भाग लिया और सम्मेलन में भेजनेवाले प्रस्तावों पर निर्णय किये गये।

दूसरे दिन माननीय बद्री प्रसादजी गुप्ता स्वास्थ्य मन्त्री राजस्थान द्वारा धन्वन्तरि मन्दिर का उद्घाटन किया गया। धन्वन्तरि मन्दिर श्री मणिरामजी महाराज की साधना का एक प्रतीक है। लगभग सवा लाख लागत का, विशाल भवन पंच-कर्म-क्रिया और आयुर्वेद-प्रतिसंस्कार के लिये श्री मणिरामजी महाराज ने अपने उद्योग से सहायता प्राप्त कर रतनगढ़ में बना कर आयुर्वेद को प्रदान किया है। इसके पश्चात् लक्ष्मीरामजी वाद-विवाद प्रतियोगिता हुई। जिसमें रतनगढ़, जयपुर, उदयपुर, सीकर एवं पिलानी आयुर्वेदिक कालेज के छात्र शामिल हुए। सम्मेलन से दिया जानेवाला स्वर्ण-पदक पुरुषोत्तम नामक छात्र रतनगढ़ कालेज ने जीता तथा शील्ड सीकर कालेज ने जीती। गताधिवेशन में जीते गये स्वर्ण-पदक को श्री स्वास्थ्य मन्त्री महोदय के द्वारा छात्र नटवरलाल शर्मा उदयपुर को दिलवाया गया। सायंकाल खुला अधिवेशन आचार्य श्री नित्यानन्दजी की अध्यक्षता में आरम्भ हुआ, जिसमें राजस्थान सरकार केन्द्रीय सरकार व सम्मेलन सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित हुए। अग्रिम वर्ष के लिये स्वामी मंगलदासजी महाराज प्रधान सम्पादक तथा बाबा जयरामदासजी झूंझनूवाले आय-व्यय निरीक्षक चुने गये।

श्री नित्यानन्द सारस्वत
अध्यक्ष—राजस्थान वैद्य सम्मेलन

सम्पादक मण्डल में श्री परमानन्द शर्मा, साहित्यायुर्वेदाचार्य साहित्यरत्न, श्री मिश्रीप्रसादजी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य उदयपुर, श्री कविराज नित्यानन्दजी शर्मा वैद्यवाचस्पति बून्दी, श्री अम्बालालजी जोशी साहित्यायुर्वेदरत्न, श्री सोहनलालजी आयुर्वेदाचार्य व श्री मन्नालालजी लिए गये। अन्त में श्री परमानन्द शर्मा प्रधान मन्त्री राजस्थान प्रदेश वैद्य-सम्मेलन ने श्री मणिरामजी महाराज को धन्यवाद दिया, जिन्होंने सम्मेलन बुलाया। वैद्य श्री रामनारायणजी शर्मा को भी धन्यवाद दिया गया जिन्होंने अखिल भारतवर्षीय शास्त्र-चर्चा-परिषद का आयोजन रतनगढ़ में इस अवसर पर कराया जिससे राजस्थान के लोगों को उद्भट-भारत-प्रसिद्ध विद्वानों से मिलने का सुअवसर मिला। साथ ही उन्होंने भी राजस्थान प्रदेश सम्मेलन को देखा। सब से महत्वपूर्ण बात यह थी कि श्री शर्माजी पूर्ण सहयोग देने स्वयं पधारे। श्री प्रेमशंकरजी भिषगाचार्य, संचालक आयुर्वेद विभाग को भी धन्यवाद प्रदान किया गया। इसके साथ ही समागत सभी सज्जनों को तथा स्वागताध्यक्ष जी व उनके सहयोगियों को भी प्रधान मन्त्री रा० प्र० वैद्य सम्मेलन द्वारा धन्यवाद प्रदान करने के पश्चात् सभापति महोदय ने सभी का आभार-प्रदर्शन किया। धन्वन्तरि जयघोष के साथ सम्मेलन समाप्त हुआ।

राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन के अधिवेशन में १८ प्रस्ताव पारित हुए और उन पर अविलम्ब ध्यान देने को सरकार से अनुरोध किया गया। प्रस्ताव निम्नलिखित हैं—

( १ ) आसवारिष्टों को मद्य की श्रेणी में मान कर उन पर लगे प्रतिबन्ध को यह सम्मेलन आयुर्वेद-चिकित्सा-

व्यवसाय में प्रतिबन्धक समझता हैं। अतः उक्त प्रतिबन्ध को अविलम्ब ही हटाया जाय। आसव-अरिष्ट मद्य की श्रेणी में किसी भी प्रकार नहीं आ सकते हैं।

(२) राजस्थान ड्रग एक्ट में संशोधन किया जाय, जिससे किसी भी चिकित्सा-पद्धति के रजिस्टर्ड चिकित्सक के व्यवसाय में बाधा उपस्थित न हो।

(३) राजस्थान सरकार आयुर्वेद विभाग के अधिकारियों एवं वैद्यों का वेतन मेडिकल विभाग के समानस्तर पर अवश्य निश्चित करे।

(४) आयुर्वेद शिक्षण को समुन्नत एवं सुव्यवस्थित करने के लिये राजस्थान विश्वविद्यालय में आयुर्वेद फैकल्टी की स्थापना करे।

(५) राजकीय वेतन भोगी कर्मचारियों को आयुर्वेदीय चिकित्सा का व्यय भी उसी प्रकार मिलना चाहिए जिस प्रकार एलोपैथी वालों के व्यय का दिया जाता है।

(६) आयुर्वेदीय अनुसन्धान योजना को मूर्तरूप प्रदान करने के लिये एक अनुसन्धान परिषद् की स्थापना की जाय।

(७) आयुर्वेदीय प्रवृत्तियों एवं वनौषधियों के निरीक्षण व परीक्षण के लिये राज्य सरकार प्रदेश सम्मेलन की सम्मति से एक समिति स्थापित करे और यात्रा का सम्पूर्ण व्यय राजस्थान सरकार वहन करे।

(८) प्रदेश सम्मेलन की मान्यता है कि राजस्थान सरकार भविष्य में प्रथम व द्वितीय श्रेणी के राजकीय औषधालय ही स्थापित करे एवं उन्हें आवश्यक साधनों से परिपूर्ण करे।

(९) आयुर्वेदीय संस्थाओं को दी जानेवाली सहायता (अनुदान) राज्य सरकार द्वारा ५० प्रतिशत के हिसाब से अवश्य दी जाय।

(१०) ग्रामों में आयुर्वेदीय चिकित्सा को सुलभ करने-हेतु चल चिकित्सालय चालू किये जायँ।

(११) राज्य के श्रमजीवी कर्मचारियों को आयुर्वेदिक चिकित्सा की सुविधा प्रदान की जाय।

(१२) आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्त के प्रसार-हेतु ग्राम-सेवकों को राज्य द्वारा ट्रेनिंग दिलवाई जाय ; जिससे बहुत-सी बीमारियों का प्रकोप मिटाया जा सके।

(१३) डिपुटी डाइरेक्टर आयुर्वेदिक विभाग राजस्थान का चुनाव जन-सेवा आयोग द्वारा पत्रों में विज्ञापन प्रसारित करवा कर कराया जाना चाहिए।

(१४) राजस्थान के बड़े-बड़े नगरों में सभी आयुर्वेदिक चिकित्सालयों की स्वतन्त्र स्थापना राज्य द्वारा की जानी चाहिए।

(१५) राजस्थान में भी अन्य प्रान्तों की तरह स्नातकोत्तर प्रशिक्षण की व्यवस्था की जावे।

(१६) विकास खण्ड एवं समाज कल्याण द्वारा वितरित की जानेवाली औषधियों में आयुर्वेदिक औषधियों को प्रमुखता दी जावे।

(१७) आयुर्वेदिक कालेजों को भी टेक्नीकल कालेजों के समकक्ष माना जाय।

(१८) राजस्थान सरकार को ऐसे प्रशिक्षण-व्यवस्था की ओर सक्रिय कदम उठाना चाहिए जिससे भिन्न-भिन्न रोगों के विशेषज्ञ आयुर्वेदीय चिकित्सक तैयार होकर अष्टांग की उपयोगिता को प्रकाश में ला सकें।

राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन के चौदहवें अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव पास कर भारत सरकार से अनुरोध किया गया कि इन सुझावों पर अविलम्ब ही ध्यान दिया जाय—

(क) राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन अखिल भारतीय मेडिकल कौंसिल के हाल ही में हुए अध्यक्षीय भाषण के प्रति घोर असन्तोष प्रकट करते हुए केन्द्र से माँग करता है कि वह आयुर्वेदीय चिकित्सा को अधिकाधिक प्रोत्साहन प्रदान करे। (ख) रेलवे कर्मचारियों को आयुर्वेदिक चिकित्सा का लाभ प्राप्त हो सके इस हेतु एलोपैथिक चिकित्सालयों की तरह आयुर्वेदिक चिकित्सालयों की स्थापना रेलवे विभाग द्वारा स्थापित किये जाने की दिशा में अविलम्ब ही कदम उठाया जाय। (ग) भारतवर्ष में आयुर्वेदिक परीक्षाओं में समानस्तर लाने-हेतु एक सर्वोच्च पाठ्यक्रम आरम्भ किया जाय। (घ) केन्द्रीय स्वास्थ्य-मंत्रालय अपने वजट का ५० प्रतिशत धन आयुर्वेद पर व्यय करे जिससे अधिकाधिक जनता को राहत मिल सके। (ङ) भारत सरकार द्वारा एक देशी चिकित्सा-परिषद् की स्थापना अविलम्ब ही की जाय जो आयुर्वेदीय शिक्षा तथा चिकित्सा के लिये अपने मन्तव्य समय-समय पर केन्द्र को दे सकें।

## महासम्मेलन का अधिवेशन

अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का ४३ वाँ वार्षिक अधिवेशन जो कि जनवरी के प्रथम सप्ताह में देहली में होने वाला था, अब वह फरवरी मास के अन्तिम सप्ताह में होगा। सम्मेलन का उद्घाटन भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी आगामी २३ फरवरी को करेंगे। जो वैद्य शीघ्र ही ५) भेजकर उक्त संस्था के सदस्य बन जावेंगे वे ४३वें आयुर्वेद महासम्मेलन में साधिकार सम्मिलित हो सकेंगे।

## बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन को पुरस्कार

भारत विख्यात हरिहरक्षेत्र के मेले में इस वर्ष श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के स्टाल को परमोपयोगी एवं सजावट की श्रेष्ठता के लिए सरकारी मेला कमेटी की ओर से बिहार के राज्यपाल के हाथों एक कप तथा प्रमाण-पत्र प्राप्त हुए हैं। मेले में भवन का सुसज्जित स्टाल दर्शनार्थियों के आकर्षण का श्रेष्ठ केन्द्र बना हुआ था। स्टाल के आगे स्वास्थ्य-प्रदर्शनी लगायी गयी थी, जिसमें आयुर्वेदीय वनस्पतियाँ, शारीरिक अंग-प्रत्यंगों की चित्रावलियाँ, स्वास्थ्य सूक्तियाँ रखी गई थी। प्रतिदिन सुवैद्यों के द्वारा संध्या समय स्वास्थ्य-प्रवचन भी होते रहते थे। स्वास्थ्य प्रदर्शनी के अवसर पर क्षेत्रीय तथा मेले में पधारे हुए आयुर्वेदीय विद्वानों की एक गोष्ठी भी हुई थी, जिसके अध्यक्ष भूतपूर्व सभापति वैद्य सम्मेलन पटना थे और श्रीरामलषण मिश्र वैद्य आयुर्वेदाचार्य, श्री आचार्य 'सारंग' शास्त्री के भाषण हुए थे। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० द्वारा आयुर्वेदीय सेवाओं पर विद्वानों ने धन्यवाद प्रकट किया था।'

## दमे की दवा का मुफ्त वितरण

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०, पटना की ओर से हर साल की भाँति इस साल भी शरद पूर्णिमा के अवसर पर दमे की प्रसिद्ध दवा चित्रकूट की जड़ी का मुफ्त वितरण किया गया। इस जड़ी का सेवन साल भर में सिर्फ एक बार शरद पूर्णिमा की रात्रि में ही किया जाता है और अधिकांश रोगियों को इसकी एक खुराक के सेवन से ही पुराना से पुराना दमा रोग जड़ से आराम हो जाता है। इस जड़ी का सेवन गाय के दूध में बनी खीर के साथ विशेष विधिपूर्वक किया जाता है; इसलिए कार्यालय में आकर औषधि सेवन करनेवाले रोगियों के लिये श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड की ओर से ही खीर आदि का भी प्रबन्ध किया गया था। इसके लिये भवन के स्थानीय बैद्यनाथ भवन रोड स्थित प्रधान कार्यालय में वृहत् आयोजन किया गया था। समस्त रात्रि भजन-कीर्तन होता रहा और प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्त में सभी रोगियों को औषधि-सेवन कराया गया। कार्यालय के प्रमुख कार्यकर्त्तागण आगत व्यक्तियों की सुविधा सत्कार में रातभर निरन्तर लगे रहे। औषधि सेवन करने के लिये प्रान्त भर में दूर-दूर जिलों के ही नहीं, अपितु, प्रान्त के बाहर से भी अनेक व्यक्ति आए थे। ८ बजे रात्रि में इस समारोह का निरीक्षण करने के लिये माननीय स्वास्थ्य मन्त्री महोदय भी पधारे थे। इस आयोजन को देख कर उन्होंने हार्दिक प्रसन्नता प्रकट की। तत्पश्चात् बेगूसराय आयुर्वेदिक कालेज के आचार्य श्री ब्रह्मदत्त शर्मा, पटना आयुर्वेदिक कालेज के प्रोफेसर कविराज सुखरामप्रसाद एवं श्री जगदीशप्रसाद श्रमिक के भाषण हुए। अपने संक्षिप्त भाषणों में वक्ताओं ने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के मैनेजिंग डायरेक्टर पं० रामदयाल जोशी के इस परोपकार के कार्य के लिये भूरि-भूरि प्रशंसा की एवं धन्यवाद दिया।

कार्यालय की रिपोर्ट के अनुसार इस साल कार्यालय में आकर औषधि सेवन करनेवालों की संख्या ६२८ थी। इसके अलावा अपने घर पर सेवन करने के लिये कार्यालय में आकर औषधि ले जानेवालों की संख्या १९५४ और डाक द्वारा मँगानेवालों की संख्या ४३९ थी। इस प्रकार श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० की केवल पटना-शाखा से इस वर्ष कुल ३०२१ रोगियों ने इस औषधि का सेवन किया।

## बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय झाँसी

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० द्वारा संचालित श्री धर्मार्थ औषधालय तथा स्वास्थ्य-रक्षा केन्द्र अक्टूबर १९५८ में २४४९ रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गई जिनमें ६७९ रोगी नये आये। प्रत्येक रोग के अनुसार रोगियों की संख्या निम्न प्रकार है।

ज्वर कास १२८, ज्वर (मलेरिया) १३०, रक्तप्रदर ४, नेत्र रोग ८, ज्वर प्रतिश्याय ७३, वातरोग २५, मूत्रावरोध ३, कास ४२, कुकुरदंश १, अण्डवृद्धि २, दुर्बलता २, प्रतिश्याय १९, कण्डू ५८, ज्वरातिसार ४०, श्वास १२, कर्णरोग २ मन्दाग्नि ७, उदर रोग १७, दद्रु २, वक्षशूल ५, शिरःशूल ८

गर्भस्राव ३, श्वेतप्रदर ६, प्रमेह ६, यकृतरोग १८, आमातिसार १३, अतिसार १०, विष्टम्भ ७, बहुमूत्र रोग ३, कृमिरोग १, मस्तिष्क दौर्बल्य १, रक्तार्श ८, रजःअवरोध ५, श्वास-कास २, उष्णवात १, अग्निदग्ध २, व्रण १, योषापस्मार १, मुखपाक १, अर्श २, सन्निपात १, ग्रहणी १, वृक्कशूल २।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड द्वारा संचालित, श्री धर्मार्थ औषधालय तथा स्वास्थ्य-रक्षा केन्द्र झाँसी में मास नवम्बर (१९५८) में १९८१ रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गई जिनमें ४९२ नये रोगी आये। प्रत्येक रोग के अनुसार रोगियों की संख्या निम्न प्रकार है।

ज्वरकास ७७, ज्वरप्रतिश्याय ४१, श्वास २७, वातरोग २०, मलेरिया ७५, वातरक्त २६, दन्तरोग ३, शिरशूल ११, अतिसार १९, उदररोग ४, प्रमेह ८, कास २२, अजीर्ण ४, ज्वरातिसार १६, व्रण ९, श्वेतप्रदर १३, कर्णस्राव ३, आमातिसार १७, प्रतिश्याय २१, यकृतवृद्धि १७, रक्तप्रदर ९, उदरशूल ८, उपदंश १, वक्षशूल १, आघात ४, प्रसूतिरोग २, मधुमेह १, कृमिरोग २, मुखपाक १, सन्निपात ३, विष्टम्भ २, नेत्ररोग ४, हृदयदौर्बल्य १, उष्णवात १, कष्ट-आर्त्तव २, क्षय रोग २, मन्दाग्नि ३, संग्रहणी ३, रजःअवरोध १, क्षुद्ररोग ८।

### ए० पी० क्लब आयुर्वेदिक औषधालय दिल्ली

गतवर्ष में श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० द्वारा संचालित एम० पी० आयुर्वेदीय औषधालय, नई दिल्ली में आये रोगियों की वार्षिक संख्या की तालिका निम्न प्रकार है—

१५ अगस्त १९५७ से ३१ अगस्त १९५७ तक ४८०, सितम्बर '५७ में ९६४, अक्टूबर '५७ में ११४०, नवम्बर '५७ में १२४४, दिसम्बर '५७ में १३२४, जनवरी '५८ में १४२२, फरवरी '५८ में १२४२, मार्च '५८ में १२७०, अप्रेल '५८ में १३७६, मई '५८ में १६३०, जून '५८ में १४२०, जुलाई '५८ में १५९२, १ अगस्त से १५ अगस्त ५८ तक ६९७।

वैद्यों की आवश्यकता

जनवरी '५९ से लागू होने वाली नवीन व्यवस्था के अनुसार 'बैद्यनाथ' की प्रत्येक एजेन्सी पर एक चिकित्सक वैद्य का होना अनिवार्य कर दिया गया है। अतः भारत भर में श्री बैद्यनाथ-एजेन्सियों के लिए बड़ी संख्या में ऐसे वैद्यों की आवश्यकता है जो चिकित्सक एवं स्वास्थ्य-परामर्शदाता के रूप में कार्य कर सकें और आयुर्वेदीय चिकित्सा-कार्य के अतिरिक्त औषध-व्यवसाय एवं हिसाब-किताब-लेखन की भी जानकारी रखते हों। विद्वान वैद्यों के शिष्यत्व में अनुभव प्राप्त, किसी प्राचीन विद्यालय अथवा आयुर्वेद विद्यापीठ से आयुर्वेदाचार्य परीक्षोत्तीर्ण आवेदकों को प्राथमिकता दी जायगी। वेतनक्रम : १००-१०-१५०-१५-२२५ रु०

पूर्ण विवरण सहित शीघ्र आवेदन करें :

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड

(एजेन्सी विभाग) झाँसी।

आयुर्वेदीय औषधों के निर्माण, गुण-धर्म, उपयोग आदि पर

विशद विवेचनपूर्ण महान् ग्रन्थ

आयुर्वेद सारसंग्रह

( तृतीय संस्करण )

सम्पूर्ण आयुर्वेद-शास्त्र का मंथन कर यह महान् ग्रन्थ--**आयुर्वेद सारसंग्रह**--अनेक वर्षों के घोर परिश्रम से तैयार किया गया है। इसमें रोगों के अवस्थानुसार औषधों का गुण-धर्म और प्रयोग तथा औषध-निर्माण, औषध-अनुपान, पथ्यापथ्य आदि का पूरा विवरण सरल भाषा में समझा कर लिखा गया है। आयुर्वेद के महर्षियों द्वारा अतिप्राचीन काल से जिन प्रसिद्ध योगों का प्रयोग होता आया है और जिन प्रयोगों का चिकित्सकों द्वारा सफल परीक्षण असंख्य बार कर लिया जा चुका है, ऐसे ही सफल प्रयोगों का संग्रह इस ग्रन्थ में किया गया है। इस ग्रन्थ में परिभाषा प्रकरण के अन्तर्गत औषध-निर्माण-परिभाषा, मान-परिभाषा, सांकेतिक परिभाषा, रासायनिक परिभाषा, यन्त्र-पुट-खरल-परिभाषा, औषध-प्रयोग-विधान, पथ्यापथ्य, पारद-गंधक-हिंगुल का विशद विवेचन; शोधन-मारण प्रकरण के अन्तर्गत धातुओं का शोधन, भस्म-निर्माण और उनका गुण-धर्म विवेचन ; कूपीपक्व रसायन, रस-रसायन, गुटिका-बटी, पर्पटी, लौह मण्डूर, गुग्गुलु, अवलेह-पाक, चूर्ण, आसवारिष्ट, तैल, कषाय (क्वाथ), मल्हम आदि प्रकरणों में विविध प्रकार की औषधियों की निर्माण-विधि, प्रयोग, गुण-धर्म, पथ्यापथ्य आदि सभी वैद्योपयोगी बातों का सविस्तर वर्णन किया गया है। इसके साथ ही रस-रसायन, अर्क आदि बनाने के यन्त्रों के चित्र भी दिए गये हैं, जिनसे औषधि-निर्माताओं को काफी सुविधा होगी। राष्ट्रभाषा हिन्दी में इस ढंग की यह एक ही पुस्तक है। इस पुस्तक की लोकप्रियता का सब से बड़ा प्रमाण यह है कि कुछ ही वर्षों में इसके तीन संस्करण निकल चुके हैं। सर्वसाधारण तथा चिकित्सकमात्र के लिए सर्वाधिक उपयोगी ११०० पृष्ठ के इस विशाल ग्रन्थ का मूल्य मात्र--७·०० रु० है

प्रकाशक

श्री **बैद्यनाथ** आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०

कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

# यूनानी चिकित्सा-सार

लेखक

**वैद्यराज हकीम ठाकुर दलजीत सिंह**

आयुर्वेद में जैसे माधवनिदान रोग-निदान के लिए और शारंगधर, चक्रदत्त आदि रोगों की चिकित्सा के लिए प्रसिद्ध हैं, वैसे ही यूनानी (हकीमी)-चिकित्सा में कराबादीन कादरी, शिफाउल् अमराज, इलाजुलगुर्बा आदि निदान और चिकित्सा के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक यूनानी और आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान हैं, अतएव उन्होंने आयुर्वेदीय चिकित्सकों को भी यनानी के रोग-निदान, लक्षण और चिकित्सा का ज्ञान कराने के उद्देश्य से इस पुस्तक में यूनानी रोगों के नाम हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी आदि भाषाओं में लिखकर उसके निदान, सम्प्राप्ति, लक्षण और चिकित्सा का वर्णन सरल हिन्दी भाषा में सविस्तार से लिखा है, जिससे यह पुस्तक वैद्यों और हकीमों के लिए अत्युपयोगी हो गई है। इस पुस्तक में यूनानी सिद्धान्तानुसार सिर से लेकर पाँव तक के रोगों के निदान-चिकित्सा वर्णित हैं, स्थल-स्थल पर यूनानी और आयुर्वेदीय निदान-चिकित्सा का तुलनात्मक विवेचन भी अपने वक्तव्य में देकर लेखक ने विषय को और स्पष्ट कर दिया है। यह पुस्तक स्वर्गीय आचार्य यादवजी के निर्देशानुसार छापी गई है, जिससे इस पुस्तक की उपयोगिता का अनुमान पाठक कर सकते हैं। डबल डिमाई १६ पेजी साइज के ४३२ पृष्ठ में यह पुस्तक छपी है, फिर भी मूल्य है **केवल लागत मात्र रु० ४.५०**

प्रकाशक

**श्री वैद्यनाथ** आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
१, गुप्ता लेन, कलकत्ता—६

देवताओं को तो अमृत प्राप्त हैं ..

.. किन्तु मनुष्य को रोग मुक्ति के लिये चाहिये

**औषध**

और इसी लक्ष की पूर्ति में *बैद्यनाथ* प्रतिष्ठान ३८ वर्षों से लगा हुआ है एवं सभी प्रकार की आयुर्वेदीय औषधि-रस-रसायन, आसव-अरिष्ट, अवलेह, चूर्ण आदि के निर्माण तथा सर्वाङ्ग-पूर्णता के लिए देश भर में सुप्रसिद्ध एवं सर्वमान्य है। *बैद्यनाथ* औषधियों के निर्माण में ४ निर्माण-शालाएँ निरन्तर कार्य-संलग्न हैं जिनका वितरण २२५ से अधिक विक्री-केन्द्रों तथा २० हजार से अधिक एजेंसियों द्वारा सर्वत्र एकही कीमत पर होता है।

श्री **बैद्यनाथ**
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

P20

# एक तन्दुरुस्ती हजार नियामत

यह कहावत बहुत पुरानी होकर भी हमेशा सच्ची है। संसार के सभी सुख-साधनों के बावजूद अगर आदमी के शरीर में रोगों का घर हो, तो उसके लिए दुनिया का आनन्द किस काम का? इसीलिए शास्त्रों में भी आरोग्य को ही धर्म, अर्थ और मोक्ष का मूल स्वीकार किया गया है।

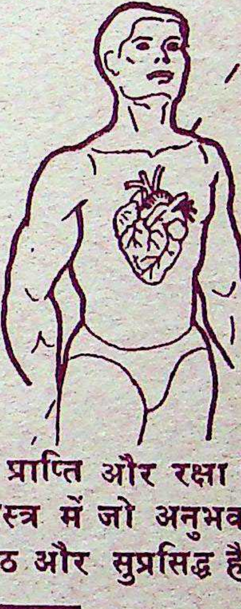

आरोग्य की प्राप्ति और रक्षा के लिए आरोग्य-शास्त्र में जो अनुभव-प्रसूत औषधियां हैं, उनमें सर्वश्रेष्ठ और सुप्रसिद्ध है :—

## बैद्यनाथ वसन्तकुसुमाकर रस

आजकल अक्सर लोगों में स्नायुदौर्बल्य, पेशाब के साथ गदले पदार्थों का निकलना, दुर्बलता एवं जबानी में बुढ़ापा के चिह्न आदि विभिन्न शिकायतें देखी जाती है। इन सभी शिकायतों के लिए इससे बढ़कर कोई दूसरी दवा नहीं है। कमजोर से कमजोर आदमी भी इसके सेवन से हृष्टपुष्ट और ताकतबर बन जाता है।

देशी दवाओं का सब से बड़ा और विश्वासी कारखाना

**श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०**

कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

सदा-सबके लिये गुणकारी

बैद्यनाथ दवाएँ

शुद्ध और सर्वांगपूर्ण

रस रसायन
भस्में

आसव
अरिष्ट

पुराना और पारदर्शी

अवलेह
मोदक
पाक

ताजा और तुरत फलदायक

पेटेन्ट
दवाएँ

हजारों--लाखों द्वारा परीक्षि

औषधि
तैल

पूर्ण शास्त्रीय विधि से प्रस्तुत

देशी दवाओं का सब से बड़ा
और विश्वासी कारखाना

श्री
बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि॰
कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

SHREE BAIDYANATH AYURVED BHAWAN PRIVATE LTD. CALCUTTA

[illegible] कलकत्ता के लिए, जनवाणी प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स प्राइवेट लि॰, कलकत्ता में मुद्रि

# सचित्र आयुर्वेद

वर्ष ११] कलकत्ता, फरवरी, १९५९ [अंक

## स्वास्थ्य-लाभ का श्रेष्ठ साधन

'यह एक अद्भुत बात है कि पाचन-क्रियाएँ इतनी संवेदनात्मक होती हैं इनके बिक्षुब्ध होने पर मनुष्य के स्वभाव और प्रकृति में बड़ा परिवर्तन हो ज है---वह छिद्रान्वेषी, निष्ठुर, चिड़चिड़ा और कठोर बन जाता है। पा क्रियाएँ जितना अधिक विक्षुब्ध होती हैं, उतना ही मनुष्य निष्ठुर, छिद्रान् होता जाता है तथा जीवन और जगत से भी वह ऊब-सा जाता है---और इ वह फिर त्राण नहीं पाता। इससे छुटकारा पाने का एक मात्र साधन यह है भोजन को नियमित एवं नियंत्रित कर पूर्णतया इन दुर्भावनाओं को तिरस्कृत दिया जाय। इसके लिए अपने खानपान पर सतत नियंत्रण रखते हुए संक पूर्वक दयालुता का भाव उत्पन्न करना परमावश्यक है। इस प्रकार प्रयत्न क पर स्वास्थ्य की दृष्टि से तुम अपेक्षाकृत कहीं अधिक स्वस्थ तथा प्रस चित्त दिखायी दोगे।

—श्रीश्री

प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट

१, गुप्ता लेन, कलकत्ता-६

जाड़े का मौसम...

शक्ति और स्फूर्ति के लिए

**बैद्यनाथ रस-रसायन**

सेवन करें और पूरे वर्ष तक
बलवीर्य से परिपूर्ण रहें।

**जाड़े में सेवन योग्य**

बैद्यनाथ बसन्त कुसुमाकर रस,
बैद्यनाथ मकरध्वज गुटिका
बैद्यनाथ पूर्ण चन्द्ररस वृहत्,
बैद्यनाथ च्यवनप्राश आदि आदि...

देशी दवाओं का सब से बड़ा
और विश्वासी कारखाना

**श्री बैद्यनाथ**
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

# महासम्मेलन का दिल्ली-अधिवेशन स्थगित

इस अंक के छपते-छपते यह समाचार पाकर हम अवाक् रह गये और वैद्य समाज को यह जानकर भारी धक्का लगेगा कि अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का आगामी २२ से २५ फरवरी तक राजधानी दिल्ली में सम्पन्न होने वाला ४३वां अधिवेशन अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गया।

कहा जाता है कि बम्बई के एक सदस्य श्री मोहनलाल पुरुषोत्तम दास ने बम्बई उच्च न्यायालय में तथा नागपुर के श्री गुलराज मिश्र एवं श्री ज्वालाप्रसाद शर्मा ने दिल्ली की एक अदालत में क्रमश: दिल्ली में आयोजित स्थायी समिति एवं महासम्मेलनाधिवेशन को रोकने के लिए एक-एक दावा करके निषेधाज्ञा का आवेदन पत्र दिया। बम्बई उच्च न्यायालय से स्थायीसमिति पर निषेधाज्ञा जारी हो जाने के कारण माननीय सम्मेलनाध्यक्ष जी के निर्देश पर स्वागत समिति ने २२ से २५ फरवरी तक होने वाला दिल्ली-अधिवेशन स्थगित कर दिया है।

इससे पूर्व मिले समाचारों के अनुसार इस अधिवेशन का उद्घाटन भारत के राष्ट्रपति महामहिम डा० राजेन्द्र प्रसाद जी तथा विद्यापीठ सम्मेलन का उद्घाटन केन्द्रीय सरकार के गृहमंत्री भारतरत्न माननीय श्री पं० गोविन्द वल्लभ जी पन्त सम्पन्न करने वाले थे। स्नातक सम्मेलन पर दीक्षान्त भाषण उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व राज्यपाल माननीय श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी जी करने वाले थे और मुख्य अतिथि के रूप में केन्द्रीय योजना मंत्री माननीय श्री गुलजारीलाल नन्दा पधारने वाले थे। अधिवेशन में विभिन्न विदेशी राजदूत, केन्द्रीय मंत्रिगण तथा सौ से ऊपर संसद सदस्यों का पधारना प्राय: निश्चित था। अधिवेशनावसर पर अनेक महत्वपूर्ण परिषदें भारत के उच्चकोटि के विद्वानों की अध्यक्षता में आयोजित थी। इसी समय दिल्ली में विद्यापीठ महाविद्यालय का विधिवत् उद्घाटन होना था। अष्टांग आयुर्वेद की एक अभूतपूर्व प्रदर्शनी भी होने जा रही थी जिसके लिए अनेक स्थानों से सामान दिल्ली में पहुँच चुका था। स्वागत समिति के पदाधिकारी एवं सदस्यगण अधिवेशन को अभूतपूर्व ऐतिहासिक सफलता देने के लिए दिन-रात परिश्रम कर रहे थे।

एक बार ऋषिकेश में महासम्मेलन के आयुर्वेद विश्वविद्यालय के शिलान्यास हेतु महामहिम राष्ट्रपति महोदय को बुलाकर आयोजन स्थगित कर दिया गया था और यह दूसरा अवसर है जब कि आयुर्वेद हितैषी राष्ट्रपति महोदय ने प्रमुख वैद्यों की विशेष प्रार्थना पर इस अधिवेशन का उद्घाटन करना स्वीकार कर लिया था जिसे यकायक स्थगित करना पड़ा। महासम्मेलन के इतिहास में यह पहला ही अवसर था जब कि उसका उद्घाटन राष्ट्र के सर्वोच्च राज्याधिकारी व्यक्ति द्वारा होने जा रहा था। प्राप्त समाचारों के आधार पर निश्चय ही केन्द्रीय राजधानी में आयोजित यह अधिवेशन वैद्य समाज एवं आयुर्वेद के उज्ज्वल भविष्य के लिए विशद प्रभाव डालनेवाला सिद्ध होता।

यकायक अधिवेशन स्थगित करने विषयक महासम्मेलनाध्यक्ष महोदय के विवशतापूर्ण आदेश से स्वागत समिति एवं दिल्ली के वैद्य समुदाय को अत्यन्त ही दुखी एवं अपमानित होना पड़ा है। स्वागत समिति को जिस दिन अधिवेशन स्थगित करने का आदेश दिया गया उस दिन महासम्मेलनाध्यक्ष महोदय के अतिरिक्त पण्डित शिवशर्मा जी भी दिल्ली में थे। इस प्रसंग में अभी कुछ अधिक नहीं लिखा जा सकता, क्योंकि श्री गुलराज मिश्र तथा श्री ज्वालाप्रसाद शर्मा, नागपुर एवं श्री मोहनलाल पुरुषोत्तम दास जी बम्बई के दावे अभी न्यायालयों में चल रहे हैं।

--सम्पादक

सम्पादक—कामेश्वर शर्मा 'कमल'

# विषय-सूची

| विषय | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|
| प्राचीन और आधुनिक ज्ञान का समन्वय वांछनीय .. | श्री जवाहरलाल नेहरू | (ग) |
| सम्पादकीय .. | | (घ) |
| महासम्मेलन-सदस्य विचार करें .. | श्री गुरुदत्तजी वैद्य, एम० एस-सी० .. | ६०९ |
| महासम्मेलनपत्रिका की उपयोगिता क्या है? .. | वैद्यराज पं० वंशीधर शास्त्री .. | ६१२ |
| आयुर्वेदमहासम्मेलनपत्रिका—तब और अब .. | कविराज आशुतोष मजूमदार .. | ६१५ |
| पार्श्वशूल—जातोदकावस्था .. | वैद्य रणजितराय .. | ६१७ |
| रक्तदोष नहीं—सुश्रुत का अभिमत .. | वैद्य देवदत्त शास्त्री, विद्यावाचस्पति .. | ६२६ |
| चीन की पुरानी चिकित्सा-प्रणाली का चमत्कार .. | श्री सत्यदेव विद्यालंकार .. | ६३१ |
| क्या वास्तव में ओज एक ही है? .. | कविराज नानकचन्द शर्मा, वैद्यशास्त्री .. | ६३४ |
| सत्कार्यवादः .. | वैद्य श्रीनिवास आयंगर .. | ६३६ |
| रुदन्ती .. | आचार्य श्री विश्वनाथ द्विवेदी, बी०ए०, आयुर्वेदशास्त्राचार्य | ६३९ |
| वह, जो आप को करना ही है! .. | श्री द्वारिकेश मिश्र .. | ६४३ |
| उत्तर प्रदेश का नया आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम .. | श्री कृष्णकुमार एम० ए०, आयुर्वेदालंकार .. | ६४७ |
| अ० भा० आयुर्वेदमहासम्मेलन की नियमावली .. | श्रीयुत मंगलदास स्वामी, आयुर्वेदाचार्य .. | ६५९ |
| कुछ विचारकों की दृष्टि में आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थिति .. | .. | ६६० |
| आयुर्वेद-जगत् .. | .. | ६६३ |
| शारीरः शब्दसंग्रहः .. | .. | १ |

---

वार्षिक मूल्य ५)  आयुर्वेद-यूनानी समन्वयांक २) रुपये  एक प्रति ५० नये पैसे

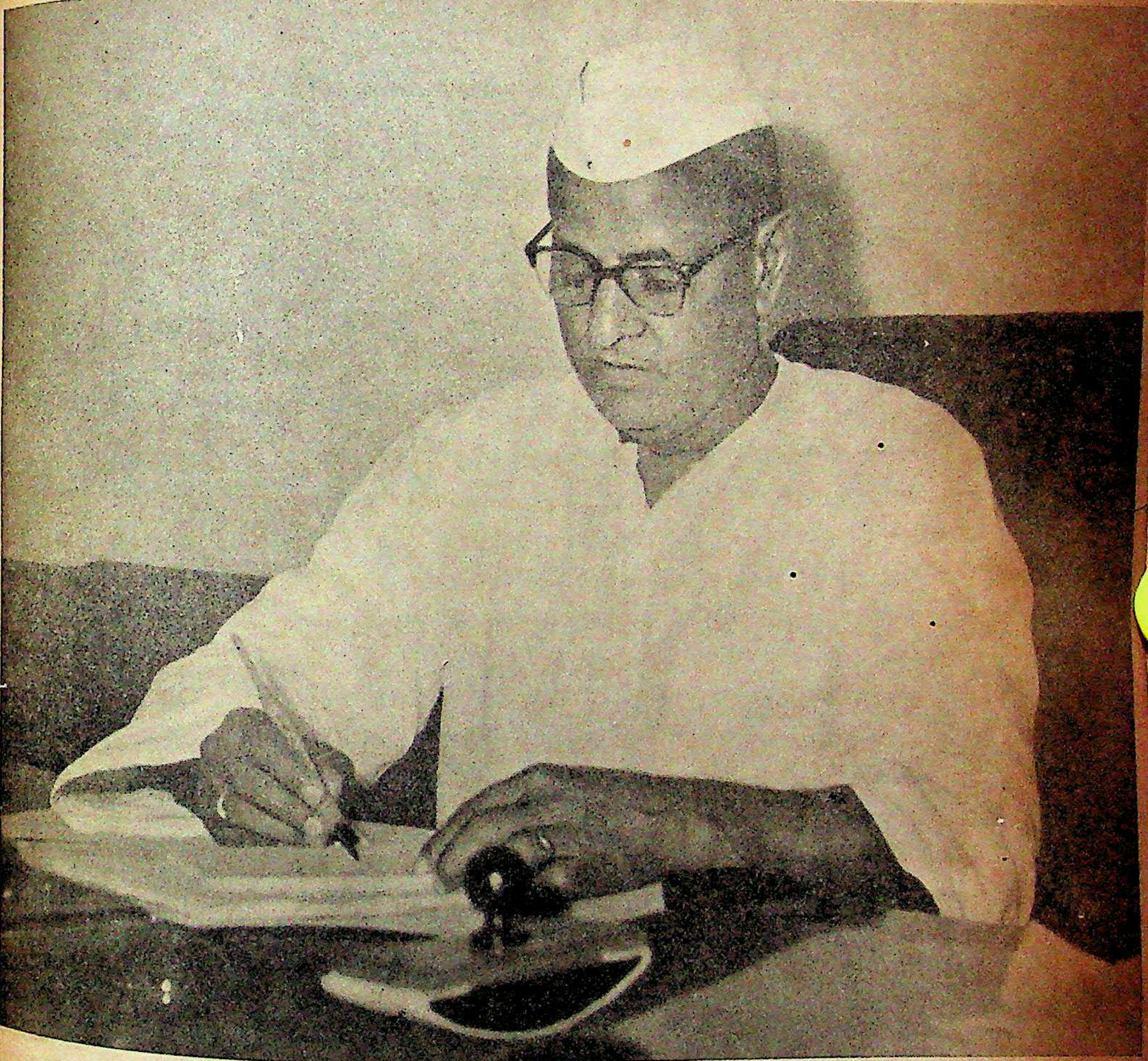

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के मैनेजिंग डायरेक्टर और बिहार स्टेट फैकल्टी ऑफ आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी मेडिसिन्स के नव-निर्वाचित अध्यक्ष श्री रामदयाल जोशी। इनका चुनाव सर्वसम्मति से गत १ फरवरी को स्टेट कौन्सिल कार्यालय पटना में अनुष्ठित स्टेट कौन्सिल ऑफ आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी मेडिसिन्स की सभा में हुआ, जिसका सभापतित्व जस्टिस वी० एन० राय ने किया। सभा के पश्चात् श्री जोशीजी को बहुसंख्यक मित्रों, वैद्यों, हकीमों और होमियोपैथों ने माल्य-प्रदान किया। बिहार प्रादेशिक आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी कान्फ्रेन्स के सदस्यों द्वारा श्री जोशी के सम्मान में एक चाय-पार्टी दी गई, जिसमें कौन्सिल और फेकल्टी के सदस्य, प्रमुख वैद्य और हकीम उपस्थित थे। 'सचित्र आयुर्वेद' परिवार की ओर से हम श्री रामदयाल जी जोशी का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

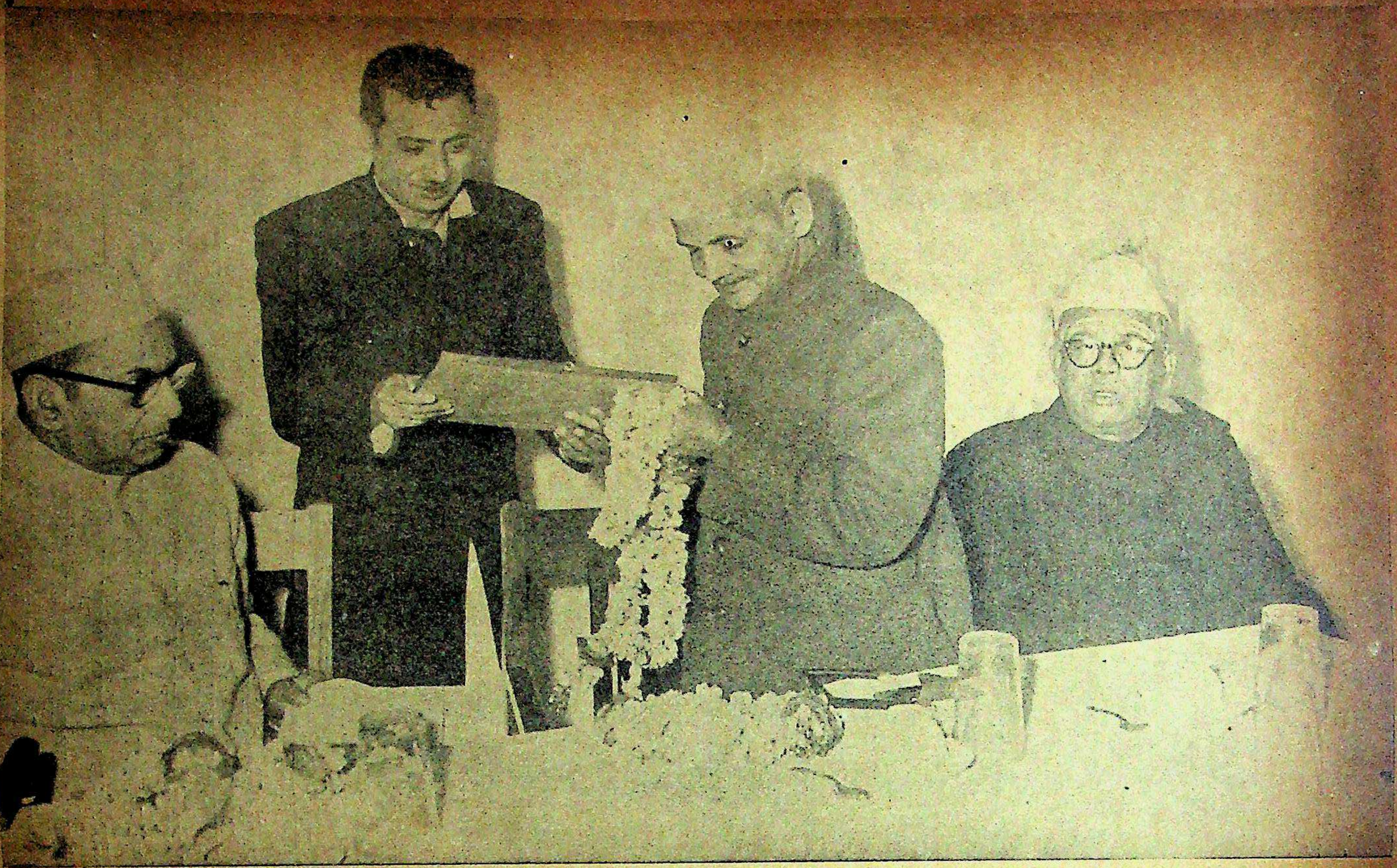

केन्द्रीय वाणिज्य मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री का श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के पटना-निर्माण केन्द्र में स्वागत का एक दृश्य। चित्र में 'भवन' के डायरेक्टर श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा मानपत्र समर्पित कर रहे हैं और बाएं पटना के मेयर श्री रजनधारी सिंह बैठे दिखायी दे रहे हैं।

आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन-समावृत और सर्वाधिक बिक्री होनेवाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख-मासिक पत्र

श्री धन्वन्तरये नमः

# सचित्र आयुर्वेद

आयुःकामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष ११ | कलकत्ता, फरवरी १९५९ | अंक ८

## प्राचीन और आधुनिक ज्ञान का समन्वय वांछनीय

"यह अत्यन्त वांछनीय है कि वर्तमान चिकित्सा विद्या की वैज्ञानिक अग्रगति के युग में आयुर्वेदीय और यूनानी चिकित्सकों को आधुनिक चिकित्सा-पद्धति की पूरी जानकारी रहे। आयुर्वेद और यूनानी पद्धति को महत्व देने के सम्बन्ध में आजकल काफी मतभेद दिखाई दे रहा है। लेकिन, इस बात में सन्देह का तनिक भी अवकाश नहीं है कि भारत की इन दोनों प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों का अत्यन्त सम्मानजनक इतिहास तथा विपुल सुख्याति रही है। भूतकाल के ज्ञान और अनुभवों के इस विशाल भण्डार की उपेक्षा एक भयंकर भूल होगी। किन्तु, चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में आधुनिक विज्ञान आश्चर्यजनक आविष्कार करने में समर्थ हुआ है और इस के परिणामस्वरूप उन्नत देशों में जनस्वास्थ्य का स्तर काफी समुन्नत हुआ है। विज्ञान और आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति का पूरा लाभ नहीं उठाने पर हम अपने देशवासियों के स्वास्थ्य को समुन्नत करने की आशा कदापि नहीं कर सकते। अतएव, यह अत्यन्त आवश्यक है कि भारत की प्राचीन चिकित्सा पद्धति के साथ आधुनिक विज्ञान के नवीन ज्ञान का पूरा समन्वय किया जाय। आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सकों के लिए यह वांछनीय है कि वे आधुनिक चिकित्सा-पद्धति के बारे में पूरी जानकारी रखें। यह आवश्यक है कि आयुर्वेदीय और यूनानी चिकित्सकों के साथ-साथ सभी के लिए वैज्ञानिक पद्धति विषयक बुनियादी शिक्षा की व्यवस्था की जाय। यह शिक्षा प्राप्त करने के बाद कोई भी व्यक्ति इन दोनों में से किसी पद्धति का अवलम्बन कर सफलतापूर्वक कार्य करने में समर्थ हो सकता है।

**श्री जवाहरलाल नेहरू**

['स्वतंत्र भारत में जनस्वास्थ्य' शीर्षक पुस्तक की भूमिका से उद्धृत]

## दिल्ली का आगामी महासम्मेलन

"सचित्र आयुर्वेद" का यह अंक जिस समय वैद्य-बन्धुओं के हाथों में पहुँचेगा; वे दिल्ली में २२ से २५ फरवरी तक सम्पन्न होनेवाले अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के ४३ वें अधिवेशन में पधारने की तैयारी में होंगे। अब तक जो समाचार मिले हैं, उनसे ऐसा विश्वास होता है कि आगामी दिल्ली-सम्मेलन अपने-आप में अद्वितीय और ऐतिहासिक होगा। इसी विचार से हम इस अंक में आयुर्वेद-जगत् के कुछ विशिष्ट विचारकों के ऐसे लेख दे रहे हैं जिनमें महासम्मेलन की वर्तमान कुछ समस्याओं की ओर संकेत किया गया है।

प्राय: प्रत्येक वैद्य आज की स्थिति से परिचित हैं और यह अनुभव कर रहे हैं कि वर्तमान सामय उसके भविष्य का निर्णायक है। इन पंक्तियों में हम संक्षेप में कुछ ऐसी बातों की ओर दृष्टिपात करना चाहते हैं जिन पर प्रत्येक वैद्य को और विशेषकर महासम्मेलन के सदस्यों को मनन करना चाहिए।

समय और परिस्थितियों की पुकार है कि अब वह अवसर उपस्थित है जब कि हम आयुर्वेद और अपने भविष्य-निर्माण के लिए सच्चाई के साथ वास्तविक कार्य कर लें, अन्यथा यह अनुकूल अवसर हाथ से खोकर हम निश्चित रूप से आत्मघाती भविष्य की भँवर में पड़ जावेंगे। आगामी दिल्ली-सम्मेलन का इसीलिए अधिक महत्त्व है। इस अवसर पर हमें एकत्र होकर एक निश्चित मार्ग का अवलम्बन करना ही है और ऐसी दिशा की ओर ही वढ़ना है जिससे हम अपने लक्ष्य की ओर और अधिक समीप पहुँच सकें।

अपने समाज और विज्ञान की यथार्थ सुरक्षा एवं उन्नति के लिए सर्वोपरि आवश्यकता यह है कि हम अपने संगठन को दृढ़तर, विस्तृत क्रियात्मक और सच्चे अर्थों में आयुर्वेद-प्रतिनिधि संगठन बनावें। अब तक के इतिहास में हमने अधिकांश प्रस्ताव स्वीकृत किए हैं, चुनाव किये हैं, वाद-विवाद किए हैं या आरोप-प्रत्यारोप किये हैं; सत्य धरातल पर खड़े होकर, पूरी ईमानदारी के साथ यदि वि किया जाय, तो अन्ततः हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे पिछले पन्द्रह-बीस वर्षों के लम्बे समय में हमारा महासम्मे एक भी ऐसा कार्य नहीं कर सका, जिसको आयुर्वेद-वि या वैद्य-समाज की प्रगति का सूचक कहा जा सके। तो वैद्य-समाज संगठन सूत्र में बाँधा जा सका और न आयु के लिए कोई प्रभावकर क्रियात्मक कदम ही उठाया जा स आलोचना की दृष्टि से नहीं, प्रत्युत् आत्म-समीक्षण दृष्टि से हमें विशाल हृदय होकर इस सत्य पर विचार मनन करना चाहिए। आयुर्वेद महासम्मेलन वैज्ञानि विद्वान् वैद्यों का संगठन है। उसको राजनैतिक री नीति की दिशा में चला कर और संस्था में उसी प्रकार दलगत राजनीति की परिपाटी अपना कर हमने नि रूप से भयंकर भूल की है और उसी भूल का यह परि हुआ है कि आज हमारे इस अखिल भारतीय संगठन का ही विचित्र हो गया है। आत्मप्रशंसा और थोथे गौरव एक ओर रख दें और ईमानदारी से विचार करें तो नि ही आज महासम्मेलन की वह प्रतिष्ठा नहीं रही, जो हों चाहिए थी। उसमें बल नहीं, जीवन नहीं, स्फूर्ति नहीं आज कहीं भी हमारे महासम्मेलन को आयुर्वेद के विषय निर्णायक शक्ति नहीं माना जाता।

आयुर्वेद पर विचार करनेवाली कमेटि पाठचक्रम समितियों, आयुर्वेद छात्रों की समस्या अथवा वैद्यों से सम्बन्ध रखनेवाली किसी भी पर कभी महासम्मेलन को कोई नहीं पूछता! ऐसा क्यों है? जब कि महासम्मेलन सुविशाल आयु सम्प्रदाय की एकमात्र संस्था है। स्पष्ट है कि हम मुँह अपनी प्रशंसा करके भले ही अपने को सर्वशक्तिमा प्रगतिशील और सजीव कह लें, परन्तु वास्तविकता है नहीं। इस ज्वलन्त सत्य से इन्कार करना स्वयं धोखा देना है। हम समझते हैं कि सचाई को सचाई कर अपने में सुधार करने से हमारी शान नहीं बिगड़ती इसलिए नितान्त वांछनीय है कि भरपूर साहस के साथ आत्म-परीक्षण करें। अपनी कमजोरियों को सम कोई यदि हमारी भूलों, हमारे दोषों, हमारी दुर्बलताओं ओर संकेत करता है, तो उसको अपना शत्रु न समझ क हृदय पर हाथ रख कर यह विचार करें कि आलोचक

कथन में सत्य कितना है। जब उसमें सत्य है, तो हमारा परम धर्म है कि हम आलोचकों को खानापूरी वाले भ्रमात्मक उत्तर देने में अपनी शक्ति का अपव्यय न करके, अपनी दुर्बलताओं को दूर करने के लिए जुट जावें। हमारा यह निवेदन स्पष्ट रूप से महासम्मेलन के उन कर्णधारों के प्रति है, जो अनावश्यक ही अपने झूठे पुरुषार्थ की विरुदावलियों में पत्रिकाओं के पृष्ठ रँगा करते हैं, और न केवल वैद्य-समाज या महासम्मेलन के सदस्यों को ही, भ्रम में डालते हैं, प्रत्युत् स्वयं को भी एक खूबसूरत धोखा देते हैं।

इस संकटकाल में यदि आयुर्वेद को बचाना है, यदि इस विज्ञान की वास्तविक उन्नति करनी है, यदि वैद्य-समाज के मौलिक अधिकारों की यथार्थ सुरक्षा करनी है और यदि देशभर में बिखरे हुए वैद्यों की सामाजिक, आर्थिक और नैतिक स्थिति को सचाई के साथ ऊपर उठाना है, तो हमें आत्म-प्रशंसा, व्यक्ति-पूजा और प्रवंचना की आत्मघाती नीति को त्यागना ही होगा। संगठन के लिए एवं वैज्ञानिक समृद्धि के लिए संस्था के माध्यम से रचनात्मक एवं क्रियात्मक कार्य करने ही होंगे। और, कुछ कर गुजरने के लिए वर्तमान से अधिक अनुकूल अवसर न तो पहले कभी हाथ में आया है और यह समय खो दिया तो, न आगे कभी उससे भेंट होना है! इस ज्वलन्त तथ्य को सोचिए, समझिए और आइए, विचारें कि हमें क्या करना है?

सब से पहली बात तो यह है कि देशभर के वैद्यगण अधिक-से-अधिक संख्या में आगामी महासम्मेलनावसर पर दिल्ली में एकत्र होवें। चाहे वे अभी महासम्मेलन के सदस्य हों अथवा न हों! यदि आयुर्वेद से जीविका पाते हैं, तो दिल्ली आवें। क्योंकि आयुर्वेदकी उन्नति का प्रश्न, वैद्यों के अधिकारों की रक्षा का प्रश्न, केवल महासम्मेलन के थोड़े-से सदस्यों या उँगलियों पर गिने जानेवाले आयुर्वेद नेताओं तक ही सीमित नहीं है। हर छोटे-बड़े वैद्य पर आज की स्थितिका प्रभाव पड़ता है। इसलिए अधिकाधिक शक्ति एवं उत्साह के साथ दिल्ली आवें, तथा तत्काल महासम्मेलन के सदस्य बन कर अपनी एकमात्र संस्था की शक्ति बढ़ावें और विस्तृत क्षेत्र में विशाल दृष्टिकोण लेकर अपनी समस्याओं पर विचार करके उनके यथार्थ समाधान की खोज करें! भले ही दिल्ली आने में कुछ व्यय-भार उठाना पड़े और चार दिन चिकित्सा-कार्य छोड़ कर कुछ आर्थिक हानि उठानी पड़े——परन्तु यह सोच कर कि अपने भविष्य निर्माण के लिए उन्हें इतना-सा त्याग करना ही है——आर्थिक हानि एवं यात्रा-कष्ट उठा कर भी महासम्मेलन में अवश्य सम्मिलित हों। विद्वान् वैद्यों की अधिकाधिक उपस्थिति और सतर्क विवेकशील विचार दृष्टि पर ही दिल्ली-सम्मेलन की सफलता आयुर्वेद-हित में यथार्थ दिशा की ओर पदार्पण, रचनात्मक योजनाओं का कार्यान्वियन और महासम्मेलन का सुधार निर्भर है।

महासम्मेलनावसर पर एकत्र होकर इस बार पहले की भाँति केवल भाषणबाजी और लम्बे-चौड़े प्रस्ताव स्वीकृत करने की अपेक्षा केवल क्रियात्मक कार्यों पर ही व्यावहारिक और गंभीर विचार-विनिमय करना हितकारी होगा। विशेषकर आगामी अधिवेशनावसर पर एक बात की ओर सदस्यगण को सब से अधिक सावधान रहना चाहिए। पिछले दो वर्षों से आयुर्वेद-जगत् में जो हलचल-पूर्ण वातावरण रहा है वह इतना श्रेयष्कर तो हुआ कि महासम्मेलन-क्षेत्र और साधारणतः सम्पूर्ण वैद्य-समाज में पहिले की अपेक्षा अधिक उत्साह एवं जागृति का वातावरण उत्पन्न हो गया है। दिल्ली-सम्मेलन पर यह सावधानी वांछनीय है कि इस जागृति का सदुपयोग ही हो और किसी भी दशा में उत्साह का उपयोग एक दूसरे को नीचा दिखाने की दुष्प्रवृत्ति में न हो सके। हमें खेद है कि महासम्मेलन के प्रधान मन्त्री ने पिछली पत्रिकाओं में अपने लम्बे-चौड़े वक्तव्य निकाल कर पुरानी सड़ी-गली बातों को अनावश्यक ही उखाड़ कर ऐसी स्थिति उत्पन्न करने का अनायास या आकस्मिक प्रयत्न किया है कि जिससे सद्वैद्यों में पारस्परिक विवाद फिर से उभर जावें। ऐसी योजना दुःखान्त और लज्जाजनक है। हमें यह सब देखकर यह आशंका होती है कि आगामी दिल्ली-सम्मेलन पर कुछ स्वभाव से कुचक्रीजन पूर्ववत् ऐसी दुर्योजना करने का प्रयत्न करें कि कुछ व्यक्तियों के पारस्परिक विवादोंको सहज ही महासम्मेलनके मंचपर खींच लावें, जिससे उपस्थित सद्वैद्यों का ध्यान यथार्थ कार्यों से उचट कर व्यर्थ के विवादों की समीक्षा में उलझ जावें। यदि ऐसा हुआ तो वह विनाशकारी परिणामों को निमन्त्रण देना होगा! ऐसी दशा में सदस्यों की सावधानी आवश्यक है। सम्मेलन पर किसी भी विवाद की चर्चा कदापि नहीं उठाई जानी चाहिए और यदि विवाद-प्रियजन ऐसा प्रयत्न भी करें, तो उसको दृढ़ता के साथ कुचल देना चाहिए। जो कुछ हुआ, हो चुका! अच्छा या बुरा जैसा भी हुआ——

उस पर विचार करने में शक्ति का अपव्यय हितकर नहीं। हमारा मत है कि किसने क्या किया, कैसा किया, क्यों किया—इन बातों की ओर आँख भी नहीं उठाई जानी चाहिए। केवल एक निश्चय लेकर चलिए कि अब क्या करना है? जो कुछ करना है उसमें कौन-कितना योग देता है, वह आगे आवे और काम करके दिखावे!

व्यक्ति-पूजा की परम्परा आज के युग में कायरता का प्रतीक है। हमें उसको त्यागना चाहिए। जो कुछ सोचें और करें वह समष्टि के लिए हो! प्रतिष्ठा, लाभ, विकास—यह सब किसी व्यक्ति को या दल को न मिले—प्रत्युत् सम्पूर्ण वैद्यों के लिए सुरक्षित हो—ऐसी नीति पर क़दम बढ़ाना चाहिए।

वर्तमान में सम्पूर्ण वैद्य-समाज की यह भावना है कि महासम्मेलन का पूर्वापर सुधार होना चाहिए। अनेक वर्षों से जिनके हाथों में महासम्मेलन की बागडोर रही है—उन्होंने क्या, कितना और कैसा किया है? इस पर विवेचना वांछनीय नहीं है! जो कुछ किया है अच्छा किया है! परन्तु अब निश्चित रूप से परिवर्तन की आवश्यकता है, इसलिए महासम्मेलन की बागडोर अब नये कार्यकर्त्ताओं के हाथों में आनी चाहिए। जिन्होंने वर्षों महासम्मेलन को अपनी रीति-नीति पर चलाया, उन पर यह नैतिक उत्तरदायित्व है कि वे अब दूसरों को कार्य करने का अवसर दें और स्वयं सहयोग की भावना के साथ आगे की क्रियात्मक योजनाओं के कार्यान्वियन में अपनी कार्यशक्ति का परिचय देवें।

संस्था के विधान और गठन में परिमार्जन नितान्त आवश्यक है। यह मुख्य दृष्टिकोण रखकर कि यह संस्था विद्वान् वैद्यों की वैज्ञानिक संस्था है; उसके नियम ऐसे होने चाहिए, जिनमें राजनैतिक-कूटनीति की गन्ध न हो। सीधे-साधे नियम हों और गठी हुई सरल-सहज व्यवस्थित कार्य-प्रणाली हो—तब ही महासम्मेलन वैद्य-समाज की सच्ची प्रतिनिधि संस्था बन सकता है। सदस्यता के नियमों में ऐसी सुविधा होनी चाहिए कि देशभर के वैद्य-अनिवार्यतः उसके साधारण सदस्य समझे जावें और संगठन समाज-हित तथा वैज्ञानिक प्रश्नों पर प्रत्येक वैद्य को बिना किसी प्रतिबन्ध के अपना मत देने का अधिकार हो। उचित तो यह होगा कि संगठन के दो विभाग किए जावें। विधिवत् शुल्क देकर बने हुए सदस्यों को महासमिति समझा जाय। वर्तमान स्थायीसमिति को कार्यकारिणी समिति समझा जाय। दैनिन्दिनि कार्यों के संचालन-व्यवस्था का भार कार्य-समिति पर हो। निर्वाचन, नीति निर्धारण और अन्य गम्भीर विषयों पर निर्णय एवं संचालन का उत्तरदायित्व महासमिति पर हो। वार्षिक अधिवेशन के विषय में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि उसमें प्रत्येक वैद्य बिना किसी बन्धन के सम्मिलित हो सके और उसको प्रतिनिधि माना जाय।

एक महत्त्वपूर्ण बात यह ध्यान देने की है कि हम लोग अपने अधिवेशनों में थोड़े-से महासम्मेलन के सदस्यों को एकत्र करके अपनी समस्याओं पर भाषण दे लेते हैं। इससे कुछ भी हित होने का नहीं। हम परस्पर बैठ कर आयुर्वेद की वैज्ञानिकता और श्रेष्ठता पर चर्चा कर लेते हैं, या सरकार की नीति की आलोचना कर लेते हैं, इससे क्या लाभ होता है? आपस में हम कुछ भी कह-सुन लते हैं, दूसरों पर, जनता या सरकार पर इसका क्या प्रभाव होता है! आज का युग जनतन्त्र का युग है। जब तक आयुर्वेद के पक्ष में प्रबल जनमत जाग्रत न किया जायगा तब तक सरकार से कुछ भी पाने की आशा मृग-मरीचिका के समान है। इसलिए यह नितान्त वांछनीय है कि हम महासम्मेलन के माध्यम से आयुर्वेद के संपर्क में अधिकाधिक जनता को लावें। आयुर्वेद की माँग और वैद्यों की समस्याओं को जनता तक पहुँचावें। जब जनता सरकार से आयुर्वेद के लिए कुछ माँग करेगी, तभी कुछ होना सम्भव है। अन्यथा हमारे अंग्रेजी-हिन्दी के प्रभावशाली भाषणों से रत्तीभर भी आयुर्वेद-हित होने का नहीं। आयुर्वेद के लिए केवल वैद्य-स्वर उठाते हैं तो उसको स्वार्थमय समझा जाता है। जब आयुर्वेद के लिए वैद्येतर लोग और सार्वजनिक जनता माँग करेगी तब सरकार उसकी अवहेलना का साहस नहीं कर सकती। इसलिए यह आवश्यक है कि हम आयुर्वेद के पक्ष में जन-सभाओं की परम्परा तो आरंभ करें ही—अपने महासम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन को भी सार्वजनिक आयुर्वेद-सम्मेलन के रूप में आयोजित करने की परिपाटी अपनावें। जिसमें अधिक-से-अधिक वैद्य एकत्र हुआ करें और बड़ी संख्या में सार्वजनिक जन आया करें। वैद्येतर लोग ही अधिकांश आयुर्वेद के विषय में अपने विचार व्यक्त किया करें। वार्षिक अधिवेशनों पर वैद्य-समाज की समस्याओं की अपेक्षा राष्ट्रीयस्तर पर स्वास्थ्य एवं आयुर्वेद

की समस्याओं पर ही विचार-विनिमय एवं प्रस्ताव स्वीकृत किये जाया करें। अपने विधान में महासम्मेलन सदस्यों को उपरोक्त दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर आवश्यक संशोधन करना चाहिए।

वैद्य-संगठन की दृष्टि से प्रादेशिक सम्मेलनों का पुनर्गठन करना नितान्त आवश्यक है। इस विषय में हमारा ऐसा मत है कि वर्तमान समस्त प्रादेशिक सम्मेलनों को भंग करके उनके पुनर्गठन के लिए प्रभावशाली विद्वानों की प्रादेशिक एडहाक कमेटियाँ बना दी जावें। एक ऐसी नियमावली बनायी जावे जो समान रूप से समस्त प्रादेशिक संगठनों पर लागू हो। इस प्रकार देशभर के वैद्य ग्राम, मण्डल, जिला और प्रदेश सम्मेलनों की कड़ियों में गुथकर महासम्मेलन के सदस्य बनाये जावें। तथा सीधे सदस्य बनाने की परम्परा बन्द कर दी जावे। ऐसा करने से हमारे संगठन की व्यपकता और दृढ़ता में वृद्धि होगी।

विद्यापीठ का प्रश्न सब से अधिक महत्त्वपूर्ण एवं विचारणीय है। सरकार की वर्तमान शिक्षा-नीति को देखते हुए और वैज्ञानिक विषयों के शिक्षण की वर्तमान समय की परिपाटी देखते हुए यह स्पष्ट है कि विद्यापीठ के द्वारा व्यक्तिगत परीक्षाओं का क्रम अधिक दिनों चलाया नहीं जा सकता। वैज्ञानिक विषयों में इस प्रकार की परीक्षाएँ कहीं भी मान्य नहीं होतीं, फिर आयुर्वेद-क्षेत्र में इनका चलाते रहना आयुर्वेद के स्तर को गिराने के समान है। ऐसी दशा में यह आवश्यक है कि विद्यापीठ को अविलम्ब आयुर्वेद विश्वविद्यालय या महाविद्यालय के रूप में परिवर्तित कर दिया जाय। दिल्ली में हाल ही में जो विद्यापीठ महाविद्यालय स्थापित किया गया है, वह एक बीजरूप है। यदि विद्यापीठ का सम्पूर्ण संचित कोष उसमें लगा दिया जाय, और प्रयत्न करके वैद्य-समाज से द्रव्य एकत्र किया जाय तो यह कदापि सम्भव नहीं कि थोड़े ही दिनों में हमारा अपना यही महाविद्यालय आयुर्वेद विश्वविद्यालय का स्वरूप पा ले। जरूरत इस बात की है कि आपस के सब मतभेद भूलाकर इस योजना पर तन-मन-धन से सच्चा कार्य किया जाय। बड़ी-बड़ी बातें करनेवालों के लिए तो यह एक प्रकार से परीक्षा का स्थल है! वे क्यों न अपनी कार्यशक्ति का परिचय विद्यालय-योजना पर अधिक-से-अधिक कार्य करके दे डालते।

अन्तिम और नितान्त आवश्यक बात हमारी दृष्टि में यह है कि महासम्मेलन के प्रधान कार्यालय की सुव्यवस्था का प्रबन्ध अत्यन्त शीघ्र होना चाहिए। कार्यालय का सम्पूर्ण कार्य एक साधारण वेतनभोगी कर्मचारी के अधिकार में मनमाने ढंग से चलता रहे, यह कदापि उचित नहीं! किसी भी अन्य अखिल भारतीय संस्था में ऐसा उदाहरण देखने को नहीं मिल सकता। हमारे महासम्मेलन का कार्यालय कई वर्षों से एक वेतनभोगी कर्मचारी के निर्द्वन्द्व अधिकार में चल रहा है। यदि बारीक दृष्टि से विचार करें तो इस तथ्य पर पहुँचने में देर नहीं लगेगी कि आयुर्वेद-जगत् में आज तक जो विनाशक विवाद उठे, चले और बढ़े उन सब का सूत्रपात कार्यालय की कलाओं के कारण हुआ। संस्था की प्रायः प्रत्येक महत्त्वपूर्ण गति-विधि का संचालन प्रधान कार्यालय से होता है और कार्यालय ही संस्था के अस्तित्व एवं प्रतिष्ठा का प्रतीक होता है। हमारा कार्यालय हमारी प्रतिष्ठा के अनुकूल हो, उसके कार्यकर्त्ता एवं उसकी प्रत्येक गति-विधि भी हमारी सार्वभौमिक नीति के अनुकूल होना चाहिए।

सम्माननीय अध्यक्ष महोदय कहीं रहते हैं; प्रधान मन्त्रीजी कहीं रहते हैं और कार्यालय कहीं रहता है। कार्यालय पर किसी वैधानिक पदाधिकारी का सीधा नियन्त्रण रहता ही नहीं। यह स्थिति महासम्मेलन के संगठन-पक्ष के लिए हानिकर है। हम समझते हैं इस विषय में विचार कर अविलम्ब उचित व्यवस्था की जानी चाहिए। पदाधिकारी निर्वाचन करते समय एक स्थानीय सुयोग्य व्यक्ति को साधिकार कार्यालय मन्त्री के रूप में निर्वाचित करना चाहिए, जो कार्यालय में दैनिक या सप्ताह में दो बार नियमित कार्यालय में जा कर व्यवस्था किया करें। ऐसा करने से वैद्य-समाज के उस विशालवर्ग को सन्तोष होगा जो वर्तमान कार्यालय की अव्यवस्था और मनमानी कार्य-नीति के कारण क्षुब्ध है। इसके अतिरिक्त कार्यालय के सुव्यवस्थित होने से भविष्य में महासम्मेलन के समस्त कार्य भी उचित रूप से सम्पादित हो सकेंगे।

इन शब्दों के साथ हम अन्त में साधारणतः सम्पूर्ण वैद्य-समाज और मुख्यतः महासम्मेलन से यह साग्रह अनुरोध करते हैं कि आगामी दिल्ली-सम्मेलन पर अधिक-से-अधिक संख्या में उपस्थित हों और सम्पूर्ण विवादों को दूर फेंक कर केवल क्रियात्मक योजनाओं के सम्पादन पर विचार-विनिमय

करें और महासम्मेलन को ऐसे कुशल, प्रभावशाली आयुर्वेदानुरागी, त्यागवृत्तिवाले और यथार्थ कार्य करनेवाले विद्वानों के हाथों में सौंपें, जो हमारी संस्था को हमारे इतने विशाल वैज्ञानिक सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा के अनुकूल बनाने में समर्थ हो सकें।

---

## टिप्पणी

### आयुर्वेद की उपेक्षा

जीवन के हरक्षेत्र में उन्नति करने के लिए अच्छे स्वास्थ्य की कितनी आवश्यकता है, यह बात किसी से छिपी नहीं है। सामूहिक रूप से किसी राष्ट्र का स्वास्थ्य अच्छा हुए वगैर राष्ट्रीय विकास सम्बन्धी अन्य सारी योजनाएँ कोई खास महत्त्व नहीं रखती, क्योंकि योजनाओं की कार्यान्विति के सहारे· चाहे हम जितनी भी आर्थिक समृद्धि करें, उसका भोक्ता मनुष्य यदि सुन्दर स्वास्थ्य से युक्त न होगा तो राष्ट्र का जीवन सदैव क्षयिष्णु ही बना रहेगा। इसलिए किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र की सरकार का यह प्रथम कर्त्तव्य है कि भौतिक समृद्धि सम्बन्धी अन्यान्य योजनाओं की रूप-रेखा तैयार करते समय राष्ट्र के स्वास्थ्य-सुधार सम्बन्धी योजनाओं को प्रमुखता दे।

प्रसन्नता की बात है कि स्वतंत्र भारत की सरकार देशवासियों के शोचनीय स्वास्थ्य के प्रति जागरूक एवं सचेष्ट है और नागरिकों की स्वास्थ्योन्नति की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठा रही है। पहली पंचवर्षीय योजना में राष्ट्र के स्वाथ्य-सुधार सम्बन्वी प्रश्न को प्राथमिकता दी गयी थी। दूसरी पंचवर्षीय योजना में स्वास्थ्य-सुधार सम्बन्धी प्रयासों का पूर्वापेक्षा और भी विस्तार हो रहा है और स्वास्थ्य-सेवाओं का इस दृष्टि से विकास किया जा रहा है कि प्रत्येक नागरिक इससे लाभान्वित हो सके। इसके अन्तर्गत देशव्यापी आधार पर अस्पतालों और अन्य स्वास्थ्य-केन्द्रों की स्थापना, डाक्टरों एवं परिचारिकाओं की शिक्षा का प्रबन्ध, संचारी या फैलनेवाले रोगों की रोकथाम, प्रभृति योजनाएँ सम्मिलित हैं। इतना ही नहीं, दूसरी पंचवर्षीय योजना में अस्पतालों की संख्या बढ़ाकर १२६०० और इनमें चिकित्सार्थ रोगियों के पलंगों की संख्या १५५००० करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है और इसके लिए ४३ करोड़ रुपए की रकम सरकार ने निश्चित की है। इसके अतिरिक्त भारत में जिन व्याधियों का आधिक्य है——जैसे, मलेरिया, फीलपाँवरोग (श्लीपद) कुष्ठ, तपेदिक, प्रभृति को केन्द्र तथा विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा बड़े पैमाने पर दूर करने के प्रयास हो रहे हैं——और निस्सन्देह यह स्वीकार किया जा सकता है कि जन-स्वास्थ्य की चिन्ता सरकार गंभीरतापूर्वक करने लगी है।

इसी प्रकार चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा का जहाँ तक प्रश्न है दूसरी आयोजना की अवधि में १५००० डाक्टर शिक्षा प्राप्त करके निकलेंगे। इस समय देश में ७०,००० डाक्टर हैं और देश को कुल ९०,००० की जरूरत है। दूसरी योजना में डाक्टरों की शिक्षा के लिए २० करोड़ रुपए रखे गए है। चिकित्सा सम्बन्धी अनुसंधान के लिए दूसरी योजना में ३ करोड़ १२ लाख निर्धारित किया गया है और भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद ने यह काम अपने हाथ में लिया है। इस तरह यह स्पष्ट है कि सरकार देश की शोचनीय स्वास्थ्यावस्था में सर्वाङ्गीण सुधार लाने की दिशा में दत्तचित्त तो है किन्तु वह अपनी स्वास्थ्य सम्बन्धी योजनाओं में पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति (एलोपैथी) को ही प्रमुखता दे रही है, जबकि आयुर्वेद-यूनानी प्रणालियाँ, जहाँतक जन-स्वास्थ्य में सुधार लाने का प्रश्न है——किसी माने में पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति से पीछे नहीं है।

इस बात से भला कौन इन्कार कर सकता है कि देश की ८० प्रतिशत जनता के स्वास्थ्य का संरक्षण आयुर्वेद-यूनानी-पद्धतियों के द्वारा आज भी होता है। ऐसी स्थिति में स्वास्थ्य-सम्बन्धी योजना में केन्द्र द्वारा १ करोड़ रुपए और राज्य सरकारों द्वारा ५।। करोड़ रुपए की अल्प-धनराशि आयुर्वेद यूनानी चिकित्सा के लिए निर्धारित किया जाना निश्चय ही देशी चिकित्सा पद्धतियों का अवमूल्यन करना हैं। सरकार का व्यामोह पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति के प्रति अब भी बना हुआ है, यह देखकर आश्चर्य होता है। आयुर्वेद-यूनानी इस देश की प्राचीन चिकित्सा-पद्धतियाँ हैं और विगत कई सदियों तक प्रशासन द्वारा उपेक्षित रहकर भी इन पद्धतियों ने जन-स्वास्थ्य के संरक्षण में सबल योगदान किया है। अतएव, आयुर्वेद-यूनानी को उसका उचित अंश मिलना चाहिए, ताकि ये उभय पद्धतियाँ अपना समुचित विकास कर सकें।

---

# महासम्मेलन-सदस्य विचार करें !

### श्री गुरुदत्तजी वैद्य एम० एस-सी०

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का तैंतालीसवाँ अधिवेशन दिल्ली में होने जा रहा है। इस अवसर पर महासम्मेलन के सदस्यों से कुछ निवेदन करने के प्रयोजन से निम्न पंक्तियां लिखने की धृष्टता कर रहा हूँ। महासम्मेलन के कार्य की प्रगति पर एक सिंहावलोकन की आवश्यकता है, जिससे आगे के कार्यक्रम के विषय में विचार किया जा सके।

आयुवद महासम्मेलन की स्थापना में दो मुख्य उद्देश्य थे। एक आयुर्वेद-विज्ञान में उन्नति की जा सके और दूसरे आयुर्वेद-व्यवसाय की सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त की जाये। इन दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिये महासम्मेलन के दो विभाग किये हुए हैं। एक शिक्षा विभाग, जिसके अन्तर्गत आयुर्वेद की परीक्षाएँ होती हैं और दूसरा महासम्मेलन, जिसमें प्रस्ताव इत्यादि पास कर सरकार तथा जनता से आयुर्वेद की मान्यता प्राप्त करने का यत्न किया जा रहा है।

महासम्मेलन की स्थापना हुए लगभग पचास वर्ष होने जा रहे हैं। इस अर्ध शताब्दी के कार्य और आयुर्वेद की प्रगति को देख कर निराशा ही होती है। हमने अभीष्ट उन्नति नहीं की। यदि यह कहा जाये कि हम बहुत पिछड़े हुए हैं तो सत्य ही होगा।

मुझको यह ज्ञात है कि १९१२ से आज आयुर्वेद विद्यालयों और महाविद्यालयों की संख्या अधिक है। मुझको यह भी ज्ञात है कि प्रति वर्ष केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारें आयुर्वेद के नाम से कुछ धन-राशि व्यय करती हैं। इस पर भी मेरा निवेदन है कि वास्तविक प्रगति नहीं हुई। हमारा मान भी कुछ ऊँचा नहीं हुआ और जो कुछ मान्यता प्राप्त हुई है, वह डाक्टरी व्यवसाय और विज्ञान को इसी काल में मिली मान्यता की तुलना में नगण्य है।

हमारी स्वराज्य सरकार ने आयुर्वेद के विषय में इस छोटे से काल में तीन बार जाँच समितियाँ बैठायीं और तीनों बार उन समितियों के प्रस्तावों को मान्यता नहीं दी। समय-समय पर सरकारी अधिकारी हमारी निन्दा करने में और स्थान-स्थान पर हमारा अपमान करने में संकोच नहीं करते रहे और सरकार के इस पृष्ठपोषण के कारण इण्डियन मैडिकल कौंसिल दिन-प्रतिदिन हमारी अधिकाधिक निन्दा करने लगी है। जनता में भी, जो प्रतिष्ठा आयुर्वेद की पहिले थी. वह नहीं रही। जितना दान, धनी-मानी लोग, आयुर्वेद चिकित्सालयों और विद्यालयों के लिये पहिले देते थे, उतना आज नहीं देते। हम को सरकार तथा जनता से मिलने वाले रुपयों की गिनती से भ्रम हो जाता है कि आयुर्वेद के लिये मान और प्रोत्साहन में वृद्धि हो रही है। यह तो केवल रुपये की कीमत कम हो जाने के कारण है।

आयुर्वेद की इस अवनति का मुख्य कारण तो देश की परिवर्तित अवस्था है। इस अवस्था के वर्तमान रूप में बहुत सीमा तक राजनीतिक परिस्थितियों का हाथ है, साथ ही देश में साधारण शिक्षा, जो हमारे स्कूल-कालिजों में अंग्रेजी काल से चली आती है, अपना प्रभाव उत्पन्न कर रही हैं।

मेरा निवेदन तो यह है कि महासम्मेलन ने इन परिस्थितियों का उचित ढंग से विरोध नहीं किया। कदाचित् महासम्मेलन के कर्णधारों को इन कारणों का पूर्ण ज्ञान भी नहीं था और वे जान नहीं सके कि इनका विरोध किस ढंग से किया जाये।

हमने जहां आयुर्वेद में परीक्षाओं की प्रथा, जो १९१२ में आरम्भ की थी—चलाई और आज तक उसमें किंचित् मात्र भी उन्नति नहीं की। हमने प्रस्ताव पास करने की विधि, जो इस शताब्दी के आरम्भ में स्वीकार की थी, अभी तक चलाई है और सिवा बड़े-बड़े सरकारी अधिकारियों को बुला कर उनको उच्च आसनों पर बैठा कर उनसे अपनी निन्दा सुनने के और कुछ नहीं सीखा। हमने वर्ष के पश्चात्, भारत जैसे विशाल देश में, एक बार कुछ सौ वैद्य एकत्रित होकर व्याख्यान देने की लालसा पूर्ण करने को ही आयुर्वेद में उन्नति मान रखा है।

मैं तो समझता हूँ कि जो कुछ महासम्मेलन में किया जा रहा है वह आयुर्वेद-विज्ञान की किसी प्रकार भी न तो

उन्नति में सहायक हो रहा है न ही यह आयुर्वेद के सम्मान की रंचमात्र भी वृद्धि करने में सशक्त है।

मैं तो आयुर्वेद महासम्मेलन में मूल-चूल परिवर्तन कर इसको नवीन परिस्थितियों में आयुर्वेद की सेवा करने के योग्य बना देने के पक्ष में हूँ। इसका वर्तमान कार्यक्रम और वर्तमान विधान, हमारे सम्मुख कार्य की विशालता और महानता के संचालन के सर्वथा अयोग्य है।

महासम्मेलन की सेवा करने का भार लगभग दो वर्ष तक मेरे कन्धोंपर रहा है और मैं अपने तत्कालीन सहयोगियों के साथ मिल कर दो कार्य करने में लगा रहा था। एक तो आयुर्वेद महासम्मेलन को और उसके द्वारा आयुर्वेद को जनता में सर्वप्रिय बनाने में महासम्मेलन की शक्ति को व्यय करने लगा था। इसके लिये सार्वजनिक विज्ञप्तियों द्वारा, जो किसी व्यक्ति के नाम से नहीं, प्रत्युत महासम्मेलन के नाम से होती थीं, सार्वजनिक समाचार-पत्रों में छपवाने में यत्नशील हुआ था। सरकार की आयुर्वेद सम्बन्धी नीति को जनता के सम्मुख रख कर जनता की सहानुभूति को आयुर्वेद के लिये निर्माण करना उस प्रयास का एक अंग था। विद्यापीठ की परीक्षाओं के फल पहिली बार सार्वजनिक समाचारपत्रों में तब ही छपने लगे थे। सरकारी हलचलों का ज्ञान रख उनमें आयुर्वेद को स्थान दिलवाने के लिये आयुर्वेद महासम्मेलन की मान्यता के लिये पूरे बल से काम किया गया था।

इसके अतिरिक्त महासम्मेलन की सदस्य-संख्या में वृद्धि के लिये, जो यत्न उस छोटे से काल में किया था, वह उल्लेखनीय है। हमारी योजना थी कि दो-तीन वर्ष में सदस्य-संख्या दस सहस्र से ऊपर पहुँचायी जाये और उसके लिये प्रयत्न किया जा रहा था। महासम्मेलन के अन्तर्गत आयुर्वेद औषध-निर्माता संघ बनाने की योजना थी और इसका श्रीगणेश हो चुका था। सब आयुर्वेद विद्यालयों का एक केन्द्रीय संगठन भी तैयार किया जा रहा था। इसके लिये भूमि तैयार की गयी थी।

जहां तक विद्यापीठ की परीक्षाओं का सम्बन्ध था, विद्यापीठ कार्यकारिणी ने यह निश्चय किया था कि विद्यापीठ से सब सम्बद्ध शिक्षा-संस्थाओं का शिक्षणस्तर तथा विद्यार्थियों को कार्य-कुशल बनाने के सम्बन्ध में उन्नति करने की योजना बनाई जाये और उसके लिये विद्यापीठ-महामंत्री उन संस्थाओं का निरीक्षण कर उनमें उन्नति और समानता उत्पन्न करने के लिये सम्मति दें।

मैं अपने विचार से आयुर्वेद के सम्मान को बढ़ाने लिये महासम्मेलन का जनता के साथ सम्पर्क अधिकाधि करने के लिये योजना बना चुका था। योजनान्तर्गत धन्वन्तरी-उत्सवों को सार्वजनिक सभाओं रूप दे कर जनता का ध्यान आयुर्वेद की ओर आकर्षि करने के लिये पग उठाया जा चुका था।

यह सब कुछ और इससे भी आगे चल कर जनता बल पर संसद के सदस्यों पर बल डालने की योजना सफलता की पूर्ण आशा थी।

इस सब के लिये एक वृहत् धन-राशि की आवश्यक थी। मेरी योजना थी कि इस कार्य के लिये विद्यापी के धन को न छुआ जाये और यह पूर्ण योजना महासम्मेल के दस सहस्र की संख्या में सदस्यों के शुल्क से तथा जन से दान द्वारा प्राप्त धन से संचालन की जाये। इस लिये यत्न आरम्भ कर दिया गया था, यह उस काल महासम्मेलन के सदस्यों की वृद्धि से पता चल सकता है उन दो वर्षों में महासम्मेलन के कार्य में चतुर्मुखी वृ पर भी विद्यापीठ के मूलधन में से एक पैसा भी नहीं निका गया था।

कार्य को द्रुतगति और सुचारुरूप में चलाने के लि महासम्मेलन के विधि-विधान में परिवर्तनों की आवश्यक थी। विधान में संशोधन की दिशा यह थी कि मह सम्मेलन के वार्षिक अधिवेषनों को, आयुर्वेद का जनता प्रभाव बढ़ाने और सरकार पर उचित ढंग से प्रभाव डाल आयुर्वेद का हित सम्पन्न करने के लिये किया जाये। इ न तो वैज्ञानिक विषयों पर विशेष बल हो, न ही महासम्मे के संगठन सम्बन्धी कार्यों की ओर ध्यान दिया जाये इन दो कार्यों के लिये स्थाई समिति, जिसको अधिकावि वैद्य-समाज का प्रतिनिधित्व प्राप्त हो, अपने हाथ में ले ले

विज्ञान सम्बन्धि चर्चाएँ महासम्मेलन के वार्षि अधिवेषन से पृथक् रखी जायें और उनमें एक समय एक ही विषय पर व्यापक निर्णय किये जायें, जो पीछे आयुर्वेद-जगत में प्रचारार्थ महासम्मेलन के हाथ में दे दि जायें।

दुर्भाग्य की बात है कि उस समय के महासम्मेलन कुछ महारथियों ने योजना की महत्ता और उसकी आ श्यकताओं की ओर ध्यान न देकर, तानाशाही चला अर्थात् दो-तीन दिन के भीतर घर बैठे पन्द्रह से ऊपर

दे कर सब कार्य अस्त-व्यस्त कर दिया। एक ही उदाहरण से उस समय की तानाशाही का अनुमान लगाया जा सकता है। महासम्मेलन की स्थायी समिति ने बहुमत से एक विधान स्वीकार किया था। विधान तैयार करने वालों की यह सम्मति थी कि पूर्ण योजना को चलाने के लिये वह विधान सहायक होगा।

उस स्वीकृत विधान को रद्द करने के लिये तत्कालीन प्रधान ने सन् १९४६ में स्वीकृत तथा छपा और तब से ले कर १९५२ तक चालू रहा, संविधान अपने रूलिंग से रद्द कर दिया। उनका रूलिंग था कि वे उस विधान को मान्यता देते हैं जो उनके पूर्व प्रधान-काल, १९४० में स्वीकार हुआ था। उस १९४० के विधान की केवल एक ही प्रतिलिपि थी और वह भी रूलिंग देने वाले प्रधान के पास थी और अन्य किसी के पास नहीं थी। महासम्मेलन कार्यालय में भी उसकी प्रतिलिपि नहीं थी।

इस प्रकार की तानाशाही चलाई गयी। १९५२ में स्थाई समिति द्वारा स्वीकृत विधान, स्वीकार किये जाने से पूर्व तीन बार सदस्यों में सम्मत्यर्थ बांटा गया और तीन बार स्थायी समिति की बैठकों में, जिनमें सदस्यों की उपस्थिति १५० के ऊपर ही रही, विचार किया गया और स्वीकार किया गया। इस स्वीकृत विधान को प्रधान के अनियमित तथा अयुक्तिसंगत और पक्षपातपूर्ण रूलिंग से रद्द कर दिया गया और उसके स्थान पर जितने भी संशोधन किये गये, वे दो-चार व्यक्तियों ने बंद कमरे में बैठ कर विचार किये और खुले अधिवेशन में, जिसमें उपस्थिति चालीस-पचास से कभी अधिक नहीं हुई और जब सदस्य अधिवेषन से थक कर घर लौटने से व्याकुल हो रहे थे, जल्दी-जल्दी पढ़ कर पास करा लिये गये। ये संशोधन कभी भी किसी भी मीटिंग के अजेण्डा में नहीं दिये गये और इन संशोधनों से प्रधान और मंत्री के अधिकारों को सुरक्षित, परिवर्धित और अनियंत्रित करने का प्रबन्ध किया गया।

मैं यह समझता हूँ कि महासम्मेलन के कार्य करने के ढंग में आमूल-चूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है। इसके कार्य को विस्तार देने और प्रभावोत्पादक बनाने की आवश्यकता है। इसके लिये गम्भीर विचार और दीर्घकालीन योजना बनाने की आवश्यकता है। इसके लिये बहुत सीमा तक महासम्मेलन के विधान में परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

इस प्रकार का कार्य वार्षिक अधिवेशनों में, जो बहुत सीमा तक मेले होते हैं, नहीं हो सकते। इसको करने के लिये ऐसे अनुभवी सदस्यों की उपसमिति बननी चाहिये, जो देश के केन्द्र में बैठ कर एक विचार की हुई योजना का निर्माण करें और उस योजना को चलाने के योग्य विधान में परिवर्तन उपस्थित करे। यह योजना और विधान में संशोधन पूरे प्रचार के पश्चात् स्थाई समिति को विचार कर स्वीकार करने का अधिकार दिया जाये। तत्पश्चात् इस पर कार्य हो।

आज समय आ गया है कि प्रभावशाली प्रचार, विचार-युक्त शास्त्र-चर्चा और दीर्घ दृष्टि से निर्माणकार्य किया जाये। इसके लिये ऐसे कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है, जो वर्ष भर इसमें संलग्न रह सकते हों। वार्षिक अधिवेशनों में, ऊँचे-ऊँचे मंचों पर खड़े हो कर व्याख्यान देने और फिर वर्ष भर घर पर बैठे रहने का समय अब नहीं रहा।

मेरा निवेदन है कि सदस्यगण विवेक से काम लेकर दृढ़ निष्ठा से आयुर्वेद की उन्नति में यत्न करें। कार्य बहुत बड़ा है और देश, जाति तथा संस्कृति के लिये परमावश्यक है। इस कार्य की महानता तथा विशालता के अनुरूप की उत्कट प्रयास की आवश्यकता है।

शास्त्रीय
और शुद्ध
बैद्यनाथ रस-रसायन
जाड़े में
सेवन करें
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता · पटना
झाँसी · नागपुर

# महासम्मेलन-पत्रिका की उपयोगिता क्या है ?

**वैद्यराज पं० वंशीधर शास**

यह परम सन्तोष की बात है कि इसी मास में अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का ४३वां अधिवेशन दिल्ली में सम्पन्न होने जा रहा है। उससे भी अधिक प्रसन्नता की बात यह है कि इधर कुछ दिनों से वैद्य-समाज में अपनी समस्याओं और अपने संगठन के प्रति अभूतपूर्व उत्साह एवं लगन दृष्टि-गोचर हो रहे हैं। स्वाभाविक है कि आगामी अधिवेशन के अवसर पर महासम्मेलन के सदस्यगण प्रत्येक विचारणीय विषय पर अधिक गंभीरता एवं सक्रियता की भावना लेकर विचार करेंगे और भविष्य के लिए संस्था की गतिविधि में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने का प्रयास करेंगे। इस अवसर पर अपने ही भाइयों से संकेत रूप में कुछ निवेदन कर देना मुझे उचित प्रतीत हुआ।

संस्था के संगठन पक्ष पर, उस विषय के दक्ष विचार-शील विद्वान अपनी सम्मतियां व्यक्त करेंगे ही। यहां मैं केवल 'आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका' की गतिविधि और उसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में माननीय सदस्यों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। बहुत वर्ष पूर्व मैं पत्रिका का सम्पादक रहा हूँ। उसके सम्बन्ध में मेरी रुचि रही है और उसके विभिन्न कालों का मैंने निकट से अध्ययन किया है।

महासम्मेलन-पत्रिका के अतीत और वर्तमान स्वरूप में, ऐसा लगता है, जैसे आकाश-पाताल का अन्तर आ गया हो। यही बात उसकी लोकप्रियता के विषय में है। "तद्विद्य संभाषा हि ज्ञानाभियोग संहर्षकरी भवति।"—वैद्यों की एकमात्र अखिल भारतीय प्रतिनिधि संस्था महासम्मेलन एवं उसकी पत्रिका के विषय में केवल सदस्यगण ही यत्किंचित् परिचित हैं। यद्यपि सिद्धान्ततः वह सम्पूर्ण वैद्य समाज की मुख पत्रिका है; परन्तु उसकी स्थिति यह है कि वह केवल सदस्यों के पास ही जाती है और कभी-कभी तो आजीवन सदस्यों तक भी नहीं पहुँच पाती। माह के तृतीय सप्ताह में अल्पकाय रूप में पहुँचकर, आयुर्वेद-जगत् के थोड़े-बहुत समाचारों को भी, एक-दो माह बाद हम तक पहुँचाती है। जब कि हम अन्य मासिक पत्रों में और दैनिक समाचार पत्रों से भी, ज्ञातव्य विषय और समाचार बहुत पूर्व पढ़ चुकते हैं। वैद्य जगत् को आयुर्वेद विषयक जो महत्वपूर्ण सूचनायें मिलनी चाहिए, वे पत्रिका के द्वारा कभी नहीं मिलतीं। न राजकीय क्षेत्र की गतिविधि की यथार्थ सूचना पत्रिका देती है और न ही आयुर्वेद-जगत् को प्रगति-प्रेरक नयी बातें उसमें कभी होती हैं। बहुत अच्छे स्तर के मौलिक लेख भी उसमें यदा-कदा ही देखने को मिलते हैं। महासम्मेलन एवं विद्यापीठ विषयक सूचनायें तक पत्रिका में तब पढ़ने को मिलती हैं, जब कि उससे पूर्व ही उनका ज्ञान अन्य सूत्रों से हो जाता है। पत्रिका में विभिन्न सभाओं के पदाधिकारियों के चुनाव और महासम्मेलनाधिकारियों की यशगाथा प्रकारान्तर से अवश्य अधिकाधिक देखने को मिलती है।

पूर्व काल में पत्रिका में विवेच्य शास्त्रीय विषयों पर महत्त्वपूर्ण लेख निकला करते थे। संदिग्ध विषयों पर विद्वानों की विवेचनायें पढ़ने को मिलती थीं। कहां आयुर्वेद का कौन-सा हस्तलिखित ग्रन्थ है, कहां किस विषय पर क्या अनुसन्धान हो रहा है—आदि महत्त्वपूर्ण सूचनाएं पत्रिका में खोज-खोज कर दी जाती थीं। मुझे याद है, जिनदिनों स्व० विद्वद्वर पण्डित किशोरीदास जी शास्त्री पत्रिका के सम्पादक थे, उन दिनों पत्रिका के प्रथम पृष्ठ पर"हमारी प्रगति" शीर्षक से एक स्तंभ रहा करता था, जिसमें सदस्यों को यह सूचना नियमित दी जाती थी कि महासम्मेलन के अमुक प्रस्ताव के सम्बन्ध में अमुक कार्यवाही हो रही है और अमुक कार्य, अमुक स्थिति में है। परन्तु अब ऐसा कहां देखने को मिलता है? पता ही नहीं पड़ता कि कब क्या निश्चय हुआ और फिर उस निश्चय पर कुछ कार्यवाही हुई भी या नहीं! पिछले वर्षों का इतिहास उठाकर देखा जाय तो पता चलेगा कि सैकड़ों ही प्रस्ताव स्वीकृत हुए, परन्तु वे कागजों में लिखे पड़े रहे। स्वीकृति के बाद किसी ने उनका नाम तक न लिया। यदि पत्रिका में पूर्व की भांति प्रगति स्तंभ में उनकी चर्चा करते रहने की परम्परा बनी रहती तो

सदस्यों और अधिकारियों को चेतना मिलती रहती। परन्तु जब पत्रिका का स्वरूप बदल गया, उसका उपयोग और लक्ष्य ही बदल गया, तो ऐसी आशा कैसे की जाय!

पत्रिका के लिए नीति सम्बन्धी कुछ नियम निर्धारित थे जो पहिले हर पत्रिका में नियमित छापे जाते थे। इधर कई साल से पत्रिका में नियमों का कहीं स्थान नहीं रहा। जब नियम-संयम ही नहीं तो इस बात से आश्चर्य करना वृथा ही है कि जिन वनस्पति घी का विरोध महासम्मेलन अपने प्रस्ताव में करे––उसी वनस्पति घी की महासम्मेलन पत्रिका प्रशस्ति प्रकाशित करे! पहिले महासम्मेलन-विद्यापीठ विषयक कोई भी सूचना या वक्तव्य पत्रिका में छपते थे तो यह परम्परा थी कि व्यक्ति का नाम न छापकर केवल पदाधिकार का उल्लेख रहता था। केवल प्रधान मंत्री, विद्यापीठ मंत्री या प्रधान सम्पादक लिखा जाता था। परन्तु अब दशा यह है कि यदि एक पृष्ठ पर दो-तीन सूचनायें एक ही विभाग की छपीं तो एक ही पृष्ठ पर दो-तीन बार व्यक्ति का नाम दिया जायगा। वह भी व्यक्ति का नाम मोटे और गहरे अक्षरों में और पदाधिकार का शीर्षक छोटे अक्षरों में। इतनी छोटी बातों में तक व्यक्तिगत नाम का प्रचार करने का साधन जब पत्रिका रह गई तो, स्वाभाविक ही उससे किसको रुचि रह जायगी। यही कारण है कि शायद एक भी व्यक्ति ऐसा न होगा जो केवल पत्रिका के नाम पर उसका ग्राहक हो। जो सदस्य हैं उन्हें नियमतः पत्रिका भेजी जाती रहे, यह बात अलग है। जबकि अनेक व्यक्तिगत आयुर्वेद मासिक, जैसे धन्वन्तरि, सचित्र आयुर्वेद, आरोग्य मंदिर, आयुर्वेद जगत्, आयुर्वेद पत्रिका, आदि हजारों वैद्यों द्वारा केवल ग्राहक रूप में लिये जाते हैं और ऐसे व्यक्तिगत पत्र आज सर्वत्र व्यापक होते जा रहे हैं। इसका कारण उनकी उपादेयता और ज्ञातव्य साहित्य का यथासमय पाठकों तक पहुँचा देना ही है। इससे ही वैद्यगण बड़े हर्ष से अधिक वार्षिक शुल्क देकर भी इन पत्रों के ग्राहक बनते हैं जबकि हमारी पत्रिका की यह दशा है कि महासम्मेलन के अधिकांश संरक्षक, आश्रयदाता और आजीवन सदस्य उसके लिए केवल दो रुपया वार्षिक भी देने को प्रस्तुत नहीं होते। हम देखते हैं कि पत्रिका-व्यय के लिए दो रुपया वार्षिक सहायता की अपीलें कई महीनों तक छपती रहीं––यह भी घोषित किया गया कि जो दो रुपया वार्षिक शुल्क नहीं भेजेंगे, उनको पत्रिका भेजना बन्द कर दिया जायगा, फिर भी सचाई यह है कि अधिकांश सदस्य मौन ही रहे और उन्होंने महासम्मेलन पत्रिका को दो रुपया वार्षिक तक देना उचित नहीं समझा? महासम्मेलन पत्रिका की उपयोगिता महासम्मेलन के आजीवन सदस्यों की दृष्टि में ही कितनी है? उक्त स्थिति इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है। क्या कारण है कि जो वैद्य सदस्य अन्य आयुर्वेद मासिक पत्रों के लिए पांच रुपया वार्षिक दे सकते हैं, वे अपनी पत्रिका के लिए दो रुपया तक देने को तैयार नहीं होते? "तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणा क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति।"––यह हमारी संस्था की पत्रिका है––केवल इतना ही मानकर चन्दा देते रहना आज के युग में कौन स्वीकार करेगा? कुछ भी उपयोगिता पत्रिका की यदि रही होती तो लोग आग्रहपूर्वक उसका चन्दा अवश्य देते।

जहां तक मुझे ध्यान है पत्रिका के प्रकाशन का एक मुख्य उद्देश्य यह भी था कि इसके द्वारा विद्यापीठ के स्नातकों को ज्ञानवर्द्धक सामग्री मिलती रहेगी; परन्तु स्थिति यह है कि विद्यापीठ की परीक्षा देने वाले स्नातक भी पत्रिका को नहीं लेते, इसीलिए कि उसमें उनके उपयोग की कोई सामग्री कभी रहती नहीं। पत्रिका के द्वारा वह मूल उद्देश्य भी सिद्ध नहीं हो रहा है।

महासम्मेलन की संगठन-वृद्धि में पत्रिका का कितना योग है, यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। यह प्रसंग ऐसा है कि बहुत विस्तार से लिखा जा सकता है, परन्तु अधिक स्पष्ट लिखना कुछ लोगों को क्लेशकर होगा और अकारण ही पक्ष-पोषण का दोष मुझ पर आयगा। मूल बात यह है कि संस्था के संगठन पक्ष को भी महासम्मेलन पत्रिका से रत्ती भर बल नहीं मिल रहा। यदि स्पष्टोक्ति के लिए क्षमा किया जाय तो इतना कहा जा सकता है कि पिछले कुछ वर्षों से महासम्मेलन पत्रिका को जिस साग्रह एकपक्षीय नीति पर चलाया जा रहा है, उससे महासम्मेलन के संगठन पक्ष पर भीषण धक्का लगा है। आज निश्चित रूप से उन व्यक्तियों के बीच, एक भयंकर दरार दिखाई दे रही है, जिनके सम्मिलित सहयोग से आयुर्वेद और महासम्मेलन का वास्तविक हित हो सकता था। इस विनाशकारी दरार को उत्पन्न करने का बहुत बड़ा श्रेय महासम्मेलन पत्रिका को है––ऐसा कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

पत्रिका से वैद्य समाज में कोई जागृति आती नहीं, आयुर्वेद-स्नातकों को उससे कोई लाभ नहीं, हमारे संगठन पक्ष को उससे बल नहीं मिलता, सदस्यों के लिए वह रुचिकर नहीं, लोकप्रियता वह खो चुकी है। फिर, आखिर महासम्मेलन पत्रिका की उपयोगिता क्या है? क्यों उस पर वैद्य समाज का बारह-तेरह हजार रुपया वार्षिक बहाया जा रहा है? यह प्रश्न महासम्मेलन सदस्यों के लिए गंभीरता के साथ विचार करने योग्य है।

मैं समझता हूँ अधिकांश सदस्यों की यह सम्मति हो सकती है कि वर्तमान परिस्थितियों में महासम्मेलन पत्रिका का प्रकाशन बन्द कर दिया जाय और इस पर अनावश्यक ही व्यय होने वाला द्रव्य बचाकर उसका उपयोग किसी रचनात्मक कार्य पर किया जाय, जिससे आयुर्वेद का यथार्थ हित हो सके। सर्वोपरि तो यह होगा कि पत्रिका पर व्यय होने वाला हजारों रुपया विद्यापीठ महाविद्यालय पर व्यय किया जाय और प्रयत्न करके उसको भविष्य में यथाशीघ्र आयुर्वेद विश्वविद्यालय के रूप में लाया जाय। यह महासम्मेलन के धन का सदुपयोग होगा और इससे निश्चित रूप से आयुर्वेद का भविष्य उज्ज्वल होगा।

अब प्रश्न यह रह जाता है कि महासम्मेलन-विद्यापीठ से सम्बन्धित सूचनायें और विज्ञप्तियाँ संस्था के सदस्यों तक यथासमय पहुँचाने का साधन क्या हो? इस विषय में मेरी पहली सम्मति तो यह है कि देश में निकलने वाले अन्य आयुर्वेद मासिक या साप्ताहिक पत्रों में से किसी एक को महासम्मेलन का मुखपत्र बना लिया जाय और उसमें प्रति अंक में ४-६ पृष्ठ महासम्मेलन तथा विद्यापीठ की सूचनाओं के लिए सुरक्षित रखे जावें। जो पत्र चुना जाय, वह महासम्मेलन सदस्यों को, साधारण ग्राहकों की अपेक्षा कुछ कम मूल्य पर दिया जा सके, ऐसी व्यवस्था की जाय। मैं समझता हूँ आयुर्वेद पर निकलने वाले बहुत से मासिकों में कम से कम एक तो ऐसा निकल ही आयगा जो वैद्य समाज के हित के लिए इतना त्याग करने को तैयार हो जाय। इससे दोहरा लाभ होगा। एक तो पत्रिका के नाम पर व्यय होने वाला हमारे कोष का हजारों रुपया बच जायगा——दूसरे हमारे संगठन की गतिविधि की सूचनायें जो अभी पत्रिका के माध्यम से केवल कुछ सैकड़ा सम्मेलन सदस्यों तक पहुँचती हैं, वह अधिकाधिक वैद्यों तक पहुँच सकेंगी और हमारे संगठन को बढ़ाने के प्रति अधिक वैद्य प्रेरित हो सकेंगे।

उपर्युक्त योजना को मैं असंभव या अनुचित नहीं समझता। उसके औचित्य और हितकारिता को ध्यान में रखकर ही मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ। यदि विद्वज्जनों को मेरी उक्त योजना न रुचे तो भी मैं इतना निवेदन तो अवश्य करूँगा कि किसी भी प्रकार से पत्रिका पर होने वाला अनावश्यक भारी व्यय भविष्य में बचाया जाना चाहिए। चाहें तो पत्रिका को पूर्ववत् त्रैमासिक रूप में निकालें।

मुझे विश्वास है महासम्मेलन सदस्यगण आगामी दिल्ली अधिवेशन के अवसर पर इस गंभीर प्रश्न पर दूरदर्शिता के साथ विचार करेंगे और उचित निर्णय अवश्य करेंगे।

सर्दी, जुकाम- हरारत, इन्फ्लुएंजा की सुप्रसिद्ध महौषधि, जिसे हर घर में हमेशा रहना चाहिए।

बैद्यनाथ
लक्ष्मीविलास रस
(नारदीय)

SHREE BAIDYANATH AYURVED BHAWAN LTD. CALCUTTA

# आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका–तब और अब

**कविराज आशुतोष मजुमदार**

आज से लगभग ४६ वर्ष पूर्व आयुर्वेद महासम्मेलन के तत्वावधान में "आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका" का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था। तत्कालीन सम्मेलनाधिकारियों की शुभ प्रेरणा का ही परिणाम था कि इस प्रकार की एक पत्रिका का प्रकाशन हो सका जो कि एक सामयिक एवं आवश्यक कार्य था। एक अखिल भारतीय संस्था तब तक अपूर्ण ही रह जाती है जब तक कि इसका कोई मुखपत्र न हो। वैद्य समाज उन अधिकारियों का इस विषय में परम आभारी है।

मैं इसके प्रकाशन के मूल एवं अन्यान्य विषयों में न पड़ कर केवल अपने सम्पादकत्व में आने से पूर्व की स्थिति से ही यहाँ पर विचार कर रहा हूँ।

प्रारम्भ में पत्रिका केवल संस्कृत भाषा में ही प्रकाशित होती थी, किन्तु समय की आवश्यकता को देखते हुए श्री पं० किशोरीदत्त जी शास्त्री के सम्पादकत्व में उदारता की नीति को अपना कर इसे हिन्दी तथा संस्कृत में प्रकाशित किया जाने लगा। इसके अतिरिक्त भी उनके सम्पादकत्व में पत्रिका का स्तर उठता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा था। उस काल में पत्रिका अच्छी समझी जाने लगी थी। संस्था के मुखपत्र के साथ-साथ वह मासिक पत्रिका की उपादेयता सिद्ध करने लगी थी। कारणवश उन्हें इसके सम्पादकत्व से त्यागपत्र देना पड़ा।

मेरे सम्पादकत्व में जब पत्रिका आई, उस समय महासम्मेलन की गतिविधि भी एक विचित्र दिशा की ओर चल रही थी। तथापि मैंने प्रयत्न किया कि इसका स्तर यदि मैं ऊँचा न कर सकूं तब भी इतना तो अवश्य हो कि वर्तमान स्तर कम से कम विद्यमान रहे और वैद्य समाज को इसकी उपयोगिता अनुभव होती रहे।

उस समय हम परतन्त्र थे। हम चाहते थे कि पत्रिका सर्वजनोपयोगी होने के साथ संस्था को भी सुदृढ़ करने में सहायक हो।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि किसी को यदि आप अपनी बात समझाना चाहते हैं तो इसका सर्वप्रथम एवं उपयुक्त माध्यम यह है कि आप उसकी भाषा में ही उससे बात करें जिससे कि आपकी बात वह सुविधापूर्वक समझ सके।

वैद्य समाज साधारणतया संस्कृत भाषा के अति निकट होता है। जनसाधारण की भाषा अधिकांश रूप में हिन्दी ही थी और यहाँ पर शासक थे अंग्रेज, जिनकी भाषा अंग्रेजी थी।

इन तीनों को अपना संदेश सुनाने के लिए यह आवश्यक समझा गया कि पत्रिका को संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी में प्रकाशित किया जाय। पत्रिका का स्तर इससे ऊँचा ही हुआ।

किन्तु मैंने अनुभव किया कि पत्रिका-सम्पादन में सम्पादक ही सब कुछ नहीं होता। उसे अन्य अधिकारियों की इच्छाओं तथा भावनाओं का भी ध्यान रखना परमावश्यक होता है। यही उस समय भी हुआ और पत्रिका में लेखों को स्थान मिलना कम हो गया तथा तत्कालीन महासम्मेलनाध्यक्षों के यात्रा-विवरणों तथा विवादों से इसके पृष्ठ चित्रित होने लगे।

मैं इस नीति के पक्ष में नहीं था। पत्रिका को एक मासिक पत्रिका बनाये रखना मैं उपयुक्त समझता था। इससे मेरा मतभेद बढ़ता गया और अन्त में ६ साल कार्य कर मैंने सम्पादकत्व से त्यागपत्र दे दिया।

किन्तु पत्रिका के लिए मेरे अन्तर में जो भावना थी वह लुप्त नहीं हुई और समय की मांग को ध्यान में रखते हुए मैंने स्वतन्त्र रूप में अंग्रेजी में "जनरल आफ आयुर्वेद" नामक पत्रिका प्रकाशित कर दी। वह आयुर्वेद के लिए संकट का काल था। ऐसे समय में उस पत्रिका द्वारा जितना सम्भव हो सका मैंने धन-व्यय कर आयुर्वेद एवं वैद्य समाज की सेवा की और अन्त में बिना किसी हानि-लाभ के उसे भी महासम्मेलन को सौंप दिया। तत्पश्चात् यह सभी को विदित है कि सन् ५० से लेकर सन् ५५ तक क्या हुआ और आज तक ६ व्यक्ति इस स्थान पर नियुक्त किए जा चुके हैं, किन्तु पत्रिका का स्तर ऊँचा नहीं हुआ।

अब मैं अनुभव करता हूँ कि पत्रिका में मौलिक लेखों का तो एक प्रकार से बिलकुल अभाव ही है। वाद-विवाद के लिए अधिक स्थान दिया जाता है। सबसे अधिक खेद का विषय तो यह है कि यह वैद्य समाज की पत्रिका न रह कर सम्मेलनाधिकारियों एवं कार्यालय कर्मचारियों की पत्रिका बनती जा रही है। इस प्रवृत्ति को दूर किए बिना पत्रिका का स्तर ऊँचा नहीं हो सकता।

इसके अतिरिक्त भी कुछ बातें हैं जो पत्रिका के सुधार के लिए अत्यावश्यक सिद्ध होंगी।

पत्रिका के लेखकों को जब तक उनका पारिश्रमिक नहीं मिलेगा तब तक मौलिकता इससे दूर ही रहेगी।

विज्ञापन प्राप्त करने के लिए कभी कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया गया। अपनी पत्रिका समझ कर किसी व्यक्ति विशेष अथवा फार्मेसी ने स्वयं ही विज्ञापन दे दिया तो ठीक है अन्यथा इसका अभाव ही रहता है। इसके लिए नियमित प्रयत्न होना परमावश्यक है जिससे कि महासम्मेलन पर यह व्यय-भार मात्र न बनकर स्वयं अपने पैरों पर खड़ी हो सके। किन्तु विज्ञापनों के स्तर पर अवश्य ध्यान दिया जाय।

पत्रिका को उपयोगी बनाने के लिए एक वैतनिक योग्य उपसम्पादक की स्थायी नियुक्ति परमावश्यक है। उपसम्पादक पत्रकारिता-कला में प्रवीण होना चाहिए। इस नियुक्ति में पक्षपात नहीं बरता जाना चाहिए।

प्रादेशिक संस्थाओं की गतिविधि के समाचार पत्रिका में नगण्य समान ही होते हैं। इस ओर ध्यान देना परमावश्यक है।

यदि यह सब परिवर्तन करने में कोई विशेष असुविधा होती हो और अब जब कि विद्यापीठ का महाविद्यालय दिल्ली में स्थापित हो गया है और उसका सारा धन उसे सुव्यवस्थित बनाने में लगेगा, ऐसी स्थिति में महासम्मेलन इतना धन-व्यय न कर सके, तो मैं समझता हूँ कि पत्रिका का वर्तमान अनुपयोगी कलेवर बदल कर इसे संस्था की मुखपत्रिका मात्र मान कर इसको एक बुलेटिन का रूप दे दिया जाय। इस स्थिति में हमें ध्यान रखना होगा कि पत्रिका वैद्य समाज की ही बनी रहे, न कि सत्तारूढ़ अधिकारियों की।

६०।८ कनाट सर्कस
देहली

आवश्यकता है

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के तत्वावधान में संचालित होने वाले "श्वासरोग पर आयुर्वेदानुसन्धान" कार्य में सहकारार्थ, एक ऐसे अनुभवी डाक्टर की आवश्यकता है जो आयुर्वेद में पूर्ण आस्था रखते हों और M. B. B. S. सहित पैथालाजी (विकृति विज्ञान) के निष्णात विशेषज्ञ हों और जो कि अनुसन्धान कार्य तथा रोगियों की मल-मूत्र, श्लेष्म, रक्तादि परीक्षाओं का यथावत विवरण प्रस्तुत कर सकें। आयुर्वेद पद्धति का ज्ञान रखने वालोंको प्राथमिकता दी जायगी। वेतन-क्रम ३५० : २०–४५० : ई-बी–१५ : ६०० रु०

पूर्ण विवरण सहित आवेदन करें

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड
(अनुसन्धान विभाग) झाँसी

# पार्श्वशूल — जातोदकावस्था

वैद्य रणजितराय

इस लेखमें प्रकरण की विशदता के लिए हम संक्षेप में नीचे लिखे विषयों का विचार करेंगे।

१--हृदय और फुफ्फुसों के चारों ओर जो कलाएँ रहती हैं वे आयुर्वेदोक्त श्लेष्मधरा कलाएँ ही हैं, तथा उनके अन्तराल में जो द्रव रहता है, वह आयुर्वेद का श्लेषक कफ ही है।

२--आमवात में अस्थिसंधियों के सदृश ही विकार हृदय में भी होते हैं, इस बात का आयुर्वेद के आधार पर विवेचन।

३--काश्यपसंहिता के वचन, जिनमें पार्श्वशूल के अनुबन्धरूप में उन लक्षणों का निर्देश है, जो आधुनिकों के तन्त्र में ड्राई प्लुरिसी के वेट प्लुरिसी में परिणत होने पर होते हैं।

४--आयुर्वेदोक्त श्लैष्मिक हृद्रोग नवीनों का 'पेरीकार्डाइटिस विद इफ्युजन' हो सकता है।

परस्पर असंबद्ध-सी प्रतीत होती इन बातों का आरम्भ में ही निर्देश कर देने से आगे विस्तृत विवेचन में इनको समझना सुगम हो जाएगा।

## हृदय तथा फुफ्फुस की धारक श्लेष्मधरा कलाएं

श्लेष्मधरा कला का लक्षण सुश्रुत ने अपने तन्त्र में यह दिया है--

**चतुर्थी श्लेष्मधरा सर्वसंधिषु प्राणभृतां भवति।**
**स्नेहाभ्यक्ते यथा ह्यक्षे चक्रं साधु प्रवर्तते।**
**सन्धयः साधु वर्तन्ते संश्लिष्टाः श्लेष्मणा तथा॥**

सु.शा. ४।१४-१५

संग्रहकार ने भी कहा है :--

**चतुर्थी श्लेष्मधरा नाम। तत्स्थन हि श्लेष्मणाऽश्लेषिताः सर्वसन्धयो दृढा भवन्ति सोपाङ्गा इवाक्षाः॥**

**श्लेष्मा तु परं सर्वसन्धिबन्धनमिति॥**

अ. हृ. शा. ५

तात्पर्य यह है कि--सात कलाओं में चतुर्थ का नाम श्लेष्मधरा है। इसे यह नाम इस निमित्त दिया है कि इसमें श्लेषक नामक कफ रहता है। जैसे रथ के अक्ष में तैल (उपाङ्ग) डालने से वह दृढ़ एवं सर्व आघात-प्रतिघातों को सहन करने में समर्थ होता है,[1] साथ ही उसके कारण चक्र की गति भी सम्यक् होती है उसी प्रकार शरीर की सर्व सन्धियों में स्थित इस श्लेषक कफ से परस्पर आश्लेषित (आलिङ्गित--घर्षण न हो ऐसी स्थिति में स्थित) सर्व सन्धियाँ भी दृढ़ रहती हैं तथा आकुञ्चन-प्रसारणादि व्यापार भी समीचीनतया होते हैं।

इस प्रकरण में सुश्रुत या वाग्भट किसी ने भी अस्थिसंधि के रूप में विशिष्ट संधि का ग्रहण नहीं किया है। किसी भी अवयव का अन्य अवयव से संयोग संधि शब्द से यहाँ अभिप्रेत है। ये अवयव आकुञ्चन-प्रसारणादि कर्म करनेवाले तथा ये कर्म करते हुए परस्पर संबन्ध में आनेवाले होने चाहिए, इतना ही। इस दृष्टि से हृदय तथा फुफ्फुस के मध्य में जो 'पेरीकार्डीअम' नाम की कला है वह श्लेष्मधरा कला का ही प्रकार कही जा सकती है। एवं फुफ्फुस तथा पार्श्वों के मध्य में स्थित 'प्लुरा' नाम की कला भी श्लेष्मधरा कला ही है। दोनों के अन्तराल में जो द्रव-विशेष रहा करता है, वह श्लेषक कफ ही कहा जाना चाहिए।

## सन्धि शब्द का व्यापक अर्थ

कोई यह शङ्का न करे कि संधि शब्द अस्थिसंधि अर्थ में ही रूढ है। अतः यहाँ श्लेष्मधरा कला के प्रसंग में भी अनुक्त होने पर भी अस्थिसंधि ही ग्राह्य है। संधि शब्द का व्यापक अर्थ ग्रहण करने में प्रमाण हैं।

संधि शब्द वर्तमान में भले अस्थिसंधि अर्थ में रूढ हो तथापि यह आयुर्वेद की परम्परा नहीं है। विशिष्ट अर्थ संधि शब्द का अस्थिसंधि भले हो, तथापि इसका सामान्य अर्थ किन्हीं भी अनेक अवयवों का संयोग है। सु० शा०

---

[1] १--चरकने अभ्यङ्ग की फलश्रुति में उपाङ्ग के इन गुणों का जो उल्लेख किया है, उसे इस प्रसंग में स्मरण किया है। मूल वचन यह है--**भवत्युपाङ्गादक्षश्च दृढ क्लेशसहो यथा**--च. सू. ५।८५।

५।२७ में अस्थि-सन्धियों के प्रकारों की गणना कर अगले वचन में सुश्रुताचार्य स्वयं कहते हैं—

**अस्थ्नां तु संधयो ह्येते केवलाः परिकीर्तिताः।**
**पेशीस्नायुसिराणां तु संधिसंख्या न विद्यते।।**
सु० शा० ५।२८

इसका सीधा अर्थ यह है कि संधियाँ पेशियों, स्नायुओं तथा सिराओं की भी होती हैं। परन्तु उनकी गणना ही हो नहीं सकती अतः उनका उदाहरणतया निर्देश नहीं किया गया है। केवल अस्थि-संधियों के प्रकार यहाँ बताए गए हैं।

यह वचन संधि शब्द के अर्थ की व्यापकता का पुष्ट प्रमाण है। इस शब्द के अर्थ की व्यापकता का अन्य प्रमाण भी सुश्रुत में ही देखा जा सकता है।

उत्तरतन्त्र के ३९ वें अध्याय में आचार्य ने **विषमज्वर की संप्राप्ति** दो प्रकार से बताई है—५१-५२ पद्यों में भोज, भालुकि, पुष्कलावत आदि शल्यतन्त्रविदों के मत से तथा आगे ६६ वें पद्य में अग्निवेश-प्रभृति कायचिकित्साविदों के मत से। प्रथम मत से विषमज्वरों की संप्राप्ति बताते हुए प्रलेपक ज्वर (यक्ष्मा का ज्वर) की संप्राप्ति का भी निर्देश किया है। इस प्रकरण में कहा है कि—दोष संधिस्थ होता है तो प्रलेपक ज्वर होता है—**संधिस्थः प्रलेपकम्** (डल्हन)। ५३ वें पद्य की टीका में डल्हन इस ज्वर की विशिष्टता बताते हुए कहता है—**संधिषु स्थितो नित्यमेव प्रलेपकं करोति। स च राजयक्ष्मणामेव।** अन्य विषम ज्वर विसर्गी होते हैं, पर प्रलेपक ज्वर क्यों विसर्गी नहीं, इस की समीक्षा ज्वरनिदान (३७-३८) में मधुकोषकार ने की है। वे कहते हैं—**संधिस्थितेन दोषेण प्रलेपकः क्रियते। सन्धयश्चामाशयेऽपि सन्तीति स सर्वदा भवति।** अर्थात् दोष संधि में स्थित होता है तो ज्वर प्रलेपक होता है, जो नित्य रहता है। यह नित्य इसलिए रहता है कि, ज्वर की संप्राप्ति का आरम्भ आमाशयगत दोष के प्रसर से होता है। प्रलेपक ज्वर की उत्पत्ति के लिए दोष संधियों में पहुँचना चाहिए। ये संधियाँ स्वयं आमाशय में भी होती है। आमाशय से आमाशय की संधियों में पहुँचने में समय का कोई प्रश्न ही नहीं होता। परिणामतया, दोष सदैव संधिस्थ रहता है। अतएव तदुत्पादित ज्वर भी नित्य रहा करता है।

इस प्रकरण में संधि शब्द आमाशयगत संधियों के लिए प्रयुक्त होता हुआ अपने अर्थ की व्यापकता के प्रति स्पष्ट संकेत कर रहा है।

किं बहुना—**संधि शब्द आयुर्वेद में सामान्य और विशेष उभय अर्थों में व्यवहृत** होता है। एवं, श्लेष्मधरा कला तथा श्लेषक कफ के प्रकरण में संधिशब्द का सामान्य अर्थ में ग्रहण करना संगत है। इसका कारण इस प्रकरण में अस्थि शब्द का विशेषण रूप में प्रयोग न किया जाना है। संधि शब्द का सामान्य या व्यापक अर्थ लेने पर उसके द्वारा हृदय तथा फुप्फुस और फुप्फुस या प्राणवह स्रोतों तथा पार्श्वों की सन्धि का ग्रहण करना योग्य प्रतीत होता है। कारण, ये सन्धियाँ अस्थिसन्धियों की अपेक्षया अगणित गुणा आकुञ्चन-प्रसारणात्मक कर्म करनेवाले अवयवों के संयोग से बनती हैं। साथ ही, इनके चारों ओर अपना कर्म करने में सहायक कला तथा उनके अन्दर इसी दृष्टि से उपयुक्त कफवर्गीय द्रव-विशेष रहा करता है।

रोगों को समझने में भी संधि, श्लेष्मधरा कला तथा श्लेषष्मक कफ की उक्त व्याप्ति अतीव उपयोगिनी हो सकती है। इस दृष्टि से हृदय तथा पार्श्वों से संबद्ध कतिपय रोगों का विचार किया जा सकता है।

## हृदयहार्ट विद वेसल्स

थोड़ा प्रसंगान्तर करके प्रथम हृदय शब्द के अर्थ के विषय में एक मत उपस्थित करना चाहता हूँ। यही मत सत्य है, ऐसा कोई आग्रह नहीं है, यह पहले ही कह दूं। सामान्यतया प्रसिद्ध हृदय शब्द का अर्थ अंग्रेजी में जिसे 'हार्ट' कहा जाता है वह माना जाता है। मेरी धारणा है कि, इसका अर्थ 'हार्ट विद वेसल्स' अर्थात् हृदय से निकलती तथा उसमें प्रवेश करती वाहिनियों सहित 'हार्ट' आयुर्वेद का हृदय है। केवल हार्ट को आयुर्वेद में कभी हृदय भी कहा जाता है, कभी उसे 'नाभि' भी कहते हैं। इस विषय में कुछ वचन प्रस्तुत करता हूँ।—

**नाभिस्थः प्राणपवनः स्पृष्ट्वा हृत्कमलान्तरम्।**
**कण्ठाद् बहिर्विनिर्याति पातुं विष्णुपदामृतम्।।**
**पीत्वा चाम्बरपीयूषं पुनरायाति वेगतः।**
**प्रीणयन् देहमखिलं जीवं च जठरानलम्।।**
शा० पू० ५।४४-४

शार्ङ्गधर-संहिता के इस प्रसिद्ध वचन में श्वसन क्रिया का यथास्थित वर्णन है। बाह्य वायु को यहाँ अन्तरिक्ष का अमृत कहा है। इस वचन में प्राणवायु को नाभिस्थ कहा है। ध्यान रहे, यह गर्भशारीर का प्रकरण नहीं है कि, नाभि का अर्थ प्रसिद्ध नाभि लिया जाए।

**शिरोधमन्यो नाभिस्थाः सर्वां व्याप्य स्थितास्तनुम्।**
**पुष्णन्ति चानिशं वायोः संयोगात् सर्वधातुभिः॥**
शा०पू०५।४३

इस वचनमें भी शार्ङ्गधर ने सर्वशरीर में व्याप्त शिराओं और धमनियों को नाभि में स्थित कहा है। इस वचन में वायु के द्वारा तथा इसके पूर्व के ३५ वें पद्य में रस के वहन द्वारा सर्वधातुओं का पोषण-कार्य शिराओं तथा धमनियों से होता बताया गया है।

**सप्त सिराशतानि भवन्ति, याभिरिदं शरीरमाराम इव जलहारिणीभिः केदार इव च कुल्याभिरुपस्निह्यतेऽनुगृह्यते चाकुञ्चनप्रसारणादिभिर्विशेषैः। द्रुमपत्रसेवनीनामिव तासां प्रतानाः। तासां नाभिर्मूलम्। ततश्च प्रसरन्त्यूर्ध्वमधस्तिर्यक् चाभवतश्चात्रश्लोकौ--**

**यावत्यस्तु सिराः काये संभवन्ति शरीरिणाम्।**
**नाभ्यां सर्वा निबद्धास्ताः प्रतन्वन्ति समन्ततः॥**
**नाभिस्थाः प्राणिनां प्राणाः प्राणान्नाभिर्व्युपाश्रिता।**
**सिराभिरावृता नाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः॥**
सु०शा० ७।३-५

शिराओं द्वारा प्राण तथा रस-रक्त के संवहन का प्रत्यक्षाश्रित वर्णन करते इन वचनों में बार-बार सिराओं का मूल नाभि को कहा है। अन्त में नाभि शब्द क्यों यहाँ प्रयुक्त हुआ है, इस बात का निर्देश भी उपमान के रूप में तन्त्रकार ने कर दिया है कि--जैसे चक्र की नाभि अरों से आवृत रहती है वैसे नाभि सिराओं से आवृत्त रहती है। संभव है, इसी साम्यवश हृदय को आयुर्वेद में नाभि कहा गया है। स्मरण रहे, यह प्रकरण भी गर्भशारीर का नहीं है, सामान्य प्रकरण है'।

एक स्थान पर चरक ने भी हृदय में दश धमनियों की स्थिति के लिए यही उपमा है। मूल वचन यह है--

**तत्र हृदये दश धमन्यः प्राणापानौ...नाभ्यामरा इव प्रतिष्ठितानि--**
च० सि० ९।४

**धमन्यो नाभिसंबद्धा विंशतिश्चतुरुत्तरा।**
**ताभिः परिवृता नाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः॥**
अ० हृ० शा० ३।३९

इस वचन में लघु वाग्भट ने तथा शा० ६ में वृद्ध वाग्भट ने चौबीस धमनियों का नाभि से संबन्ध बता कर वहाँ भी उक्त ही उपमा दी है।

परन्तु इन सब से भी पुष्ट प्रमाण, जिसमें कण्ठरव से नाभि और हृदय की अभिन्नार्थता बताई गई है, वह स्वयं सुश्रुत का वचन है।--

**स (रसः) हृदयाच्चतुर्विशतिर्धमनीरनुप्रविश्य ऊर्ध्वगा दश दशाधोगामिन्यश्चतस्रश्च तिर्यग्गाः कृत्स्नं शरीरमहरहस्तर्पयति वर्धयति धारयति जीवयति यापयति चादृष्टहेतुकेन कर्मणा॥**
सु० सू० १४।३

यहाँ रस धातु का वहन करनेवाली चौबीस धमनियाँ हृदय से निःसृत कही गयी हैं। आगे सुश्रुत ने कहा है--

**चतुर्विशतिर्धमन्यो नाभिप्रभवा अभिहिताः॥**
सु० शा० ९।३

अर्थात् पहले कहा जा चुका है कि नाभि से चौबीस धमनियाँ निकलती हैं। पहले किस स्थान पर यह कहा है, इस प्रश्न का उत्तर डल्हन देते हैं--**शोणित वर्णनीये इति शेषः।** शोणित वर्णनीय अध्याय के जिस वचन के

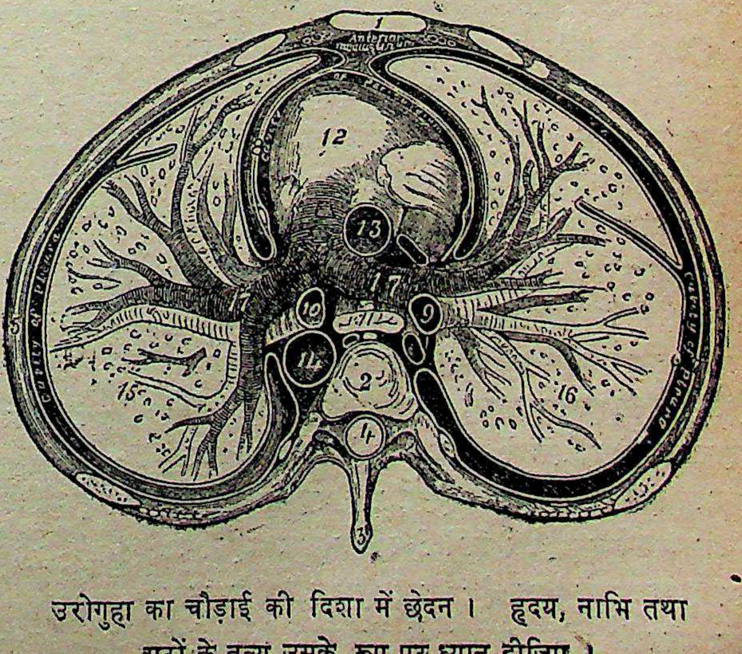

उरोगुहा का चौड़ाई की दिशा में छेदन। हृदय, नाभि तथा अरों के तुल्य उसके रूप पर ध्यान दीजिए।

प्रति यहाँ संकेत किया है वह ऊपर हमने उद्धृत किया ही है। इसमें तो हृदय से चौबीस धमनियों का निःसरण बताया गया है। इसका फलितार्थ यह है कि सिराओं और धमनियों के प्रकरण में नाभि शब्द हृदय का पर्याय समझा जा सकता है। और हाँ, ये दोनों वचन भी गर्भशरीर के नहीं हैं।

पिछले पृष्ठ का चित्र देखने से हृदय और उससे संबद्ध सिराओं और धमनियों का स्वरूप चक्र-नाभि और अरों जैसा ही है, यह सुस्पष्ट होगा।

तात्पर्य--नाभि शब्द का आयुर्वेद में प्रकरण-वश अर्थ 'हार्ट' तथा हृदय का अर्थ सिराओं और धमनियों-सहित हार्ट लेना कदाचित् योग्य है। इस प्रस्ताव का गर्भित हेतु यह है कि, यह मन्तव्य योग्य हो तो आयुर्वेद में हृदय-संबद्ध जो रोग कहे गए हैं वे 'हार्ट विद वेसल्स' के हो सकते हैं। अधिक निर्णय तो उपचरित चिकित्सा से किया जा सकता है।

विद्वज्जनों की विचारणा के लिए इतना निवेदन कर अब पुनः प्रकृत विषय पर आता हूँ।

## आम के दो अर्थ

रोगों के क्रम में प्रथम आमवात का विचार करना उपयुक्त समझा है। परन्तु शास्त्रीय दृष्टि से आरंभ में ही आम शब्द का प्रकरणोचित अर्थ जान लेना आवश्यक है। आम का जो लक्षण प्रसिद्ध है उसके अनुसार जठराग्नि के दौर्बल्य से अपक्व या अर्धपक्व रहे अन्न को आम कहा जाता है। परन्तु स्वभावतः शङ्का उठायी जा सकती है कि यह आम तो केवल आम-पच्यमान-पक्वाशय के रोग उत्पन्न कर सकता है। इससे सर्वाङ्ग रोग कैसे हो सकते हैं? अलबत्ता आगे उद्धृत चरक-वचन के अनुसार अपक्व अन्न शुक्त-रूप (अम्लीभूत) हो जब विषरूप में परिणत हो जाता है तो उसके द्वारा सार्वदेहिक लक्षणों की उत्पत्ति होना अवश्य संभव है। तात्पर्य, पक्व रस में जो सूक्ष्मता होती है, वैसी सूक्ष्मता अपक्व अन्न या आम में होती नहीं। वह रसवह सूक्ष्म छिद्रों में प्रविष्ट नहीं हो सकता। परन्तु शुक्तरूप होने पर वह विषरूप हो जाता है, यह जो कहा गया है उसका अर्थ यह है कि उसमें विष के सदृश प्राणहानि का स्वभाव उत्पन्न हो जाता है; साथ ही वह विष के समान सूक्ष्म, व्यवायी और विकाशी भी हो जाता है। ऐसी अवस्था में वह रसग्राही सूक्ष्म छिद्रों में प्रवेशक्षम होकर सार्वदेहिक लक्षण उत्पन्न कर सकता है। परन्तु आमवा आदि रोग, जिनमें महास्रोत में ऐसा शुक्तपाक विशेष न होता, न ही विषवत् लक्षण होते हैं, उनमें तो आम अन्न सार्वदेहिक लक्षणों की उत्पत्ति की घटना की व्याख्या नहीं जा सकती। स्थिति की कुछ और व्याख्या हो चाहिए। इसका समाधान यह है कि : **आम के दो अ हैं--जठराग्निदौर्बल्यवश अपक्व रहा अन्नपान त धात्व.ग्नदौर्बल्यवश अपक्व रहा रसधातु।**

आम के ये दो अर्थ लेने में प्रमाणभूत वचन है ग्रहणी की चिकित्सा बताते हुए दोष के आश्रय स तथा स्वरूप के भेद से चरकाचार्य ने पृथक्-पृथक् चिकि बताई है। इस दृष्टि से आचार्य ने ग्रहणी के आरम्भ दोष के दो प्राथमिक भेद किए हैं : आम तथा पक्व। इन दोनों भेदों के आश्रय-भेद से भेद किए हैं। आमाशय (आमपच्यमानाशयगत) आम दोष, पक्वाशयगत आम तथा शरीरगत आम दोष; एवं आमाशयगत पक्व दो पक्वाशयगत पक्व दोष तथा शरीरगत निरामयापक्व दो देखिए--च. चि. १५।७३-८१। इनमें प्रकरणोपयो वचन यह है--

**शरीरानुगते सामे रसे लङ्घनपाचनम्।**
च० चि० १५।

इसकी टीका में चक्रपाणि ने स्पष्ट कहा है कि साम रस शब्द से अपक्व रस धातु का ही ग्रहण करना चाहि कारण शरीर में व्यापकता उसी की होती है। आहार शरीर में व्याप्त नहीं होता। चक्रपाणि का मूल यह है : **शरीरानुगते इति शरीरव्यापके। सामे इति अपक्वे रसे। आमश्चात्रापक्वरसरूप एवेष्ट आहार रसस्य रससंबन्धेन शरीरव्यापकतया दुर्घटत्वात्**

सु० सू० १५।३२ पर डल्लन और चक्रपाणि जो टीकाएँ हैं उनमें भी आम के दोनों अर्थ बताए हैं--

**कथं रसश्चापक्वश्चेति विरोधनीय वचनम्? पक्वो रसव्यपदेशं लभते। सत्यम्। जाठरेणाग्नि रसः कङ्घावेन कृत एवं, किन्तु धात्वग्निभिरपाक इत्युच्यते॥**--डल्लन।

**आम एवेति इवार्थोऽयमेव शब्दः। रक्तादि परिणततया अपक्व इवेत्यर्थः। न तु 'आमाशयस्य ग्नदौर्बल्यादविपाचितः' इत्यादिनोक्तः। तस्य हेतुतया आमाशयस्थत्वेन च मेदोजनकत्वायोगात्॥** --चक्र

आचार्यों का इतना स्पष्ट वचन न हो तो भी आम का जो प्रसिद्ध लक्षण है उसकी व्याख्या के रूप में भी आम के अन्य अर्थ का ग्रहण किया जा सकता है। जठराग्नि के बल पर ही धात्वग्नियों का बल अवलम्बित रहता है, यह आयुर्वेद का सिद्धान्त है। इसका अर्थ यह है कि, जैसे जठराग्नि बलवान् हो तो वह शरीर के धातुओं, उपधातुओं, मलों और दोषों के पोषण के लिए आहार में विद्यमान सामग्री का सम्यक् पचन कर उन्हें धातु आदि के पोषणार्थ शरीर में भेज सकती है; इसके विपरीत जठराग्नि दुर्बल हो तो आहार में धातु आदि के पोषक द्रव्य रहने पर भी अग्नि द्वारा उनका पाक नहीं होता—वे रस के अङ्गरूप होकर शरीर में पहुँच नहीं पाते, इसी प्रकार धात्वग्नियों का पोषण और दीप्ति भी जठराग्नि बलवान् हो तभी होती है, अन्यथा नहीं। सो जठराग्नि दुर्बल हो, उसके कारण अन्नपान असम्यक् पक्व रहकर आम की उत्पत्ति हो तो धात्वग्नियाँ भी स्वभावतः क्षीण और दुर्बल रहती हैं, और उनसे पक्व होनेवाला रसधातु भी आम ही रहेगा, यह अर्थ अर्थापत्ति से गृहीत हो सकता है।

आमवात-अम्लपित्त आदि रोगों में जो सार्वदेहिक तथा महास्रोत से बाहर के अवयवों के लक्षण होते हैं उनका कारण जठराग्नि के दौर्बल्य से अपक्व रहा आमरस नहीं किन्तु धात्वग्नियों की दुर्बलता के कारण असंपूर्ण पक्व या आम रसधातु ही होता है, इसमें संशय नहीं।

माधव ने आमवात के जो लक्षण दिये हैं, उनमें हृदय का दौर्बल्य और गौरव इतने ही शब्दों का व्यवहार किया है। नव्य मत से इसका स्वरूप सविशेष स्पष्ट हुआ है। जब तक अन्य कोई मार्ग न हो तब तक आमवात में होने वाली हृदयविकृति को नव्य प्रत्यक्षानुसार समझना उपयुक्त कहा जा सकता है। तथापि, इतना निश्चित सत्य है कि, आमवात का निदान होते ही लङ्घनादि क्रम से आयुर्वेद में उसका जो उपचार कहा गया है, उसका अवलम्बन किया जाए तो आम का पचन हो जाने से हृदय पर प्रभाव होने नहीं पाता। प्रभाव हो चुका हो तो भी इस क्रम से उसमें आशातीत शान्ति होती है। अतः आरम्भ से ही आयुर्वेद का मार्ग अपनाया जाना सर्वथा हितावह है।

हृदय की रचनात्मक विकृति का स्वरूप भले आयुर्वेद में उतना स्पष्ट न हो तथापि आमवात में यह स्थिति क्यों और कैसे होती है—उसकी संप्राप्ति क्या है—आयुर्वेद-मत से यह समझने का प्रयत्न किया जाए तो उसमें सफलता प्राप्त हो सकती है। अगली पङ्क्तियों में मैं इसी विषय की व्याख्या अपनी नम्र मति से करने का प्रयत्न करता हूँ।

## अपक्व अन्नरस की शुक्तरूपता

ग्रहणी दोष चिकित्साध्याय (१५) में ग्रहणीकला की विकृति के कारणों की गणना कर उसकी दुष्टि के स्वरूप का निर्देश करने के अनन्तर आचार्य ने कहा है कि लघु भी अन्न ग्रहणी की दुष्टि के कारण पच नहीं सकता। आगे—

**अपच्यमानं शुक्तत्व यात्यन्तं विषरूपताम् ॥**

च. चि. १५।१४४

अपक्व हुआ यह अन्न शुक्तभाव को प्राप्त होकर, जैसा कि ऊपर कहा है, विषरूप में परिणत हो जाता है।

शुक्त का अर्थ सिरका होता है। इसमें शुक्ताम्ल (एसिटिक एसिड)—नामक एक सेन्द्रिय (ऑर्गेनिक) अम्ल होता है। आधुनिक प्रत्यक्षानुसार अन्न-पान ग्रहणी में अपक्व (अजीर्ण) रह जाए, और उसका इस प्रकार अम्लीभाव हो तो शुक्ताम्ल के रूप में केवल एक सेन्द्रिय अम्ल नहीं बनता, तक्राम्ल (लेक्टिक एसिड), नवनीताम्ल (ब्युटिरिक एसिड) आदि कतिपय अन्य सेन्द्रिय अम्ल भी उत्पन्न होते हैं। बाहर संधान होकर जैसे शुक्त (सिरका) बनता है वैसी ही क्रिया महास्रोतों में भी होती है। अंग्रेजी में इसे संधानवाचक तथा अम्लत्व का द्योतक 'एसिड फर्मेण्टेशन' यही नाम दिया गया है। प्राचीनों ने इस स्थिति को विदाह, विदग्धाजीर्ण, अम्लपाक आदि नाम दिये हैं। आधुनिक व्याख्याकार इसे शुक्तपाक भी कहते हैं। विदग्धाजीर्ण के सदृश इसका एसिड डिसेप्सिया यह अंग्रेजी नाम भी है।

## अपक्व रसधातु की अम्लरूपता

अब जो समझने की बात है वह यह है कि जैसे अपक्व रहा अन्नरस (आम) आमपच्यमानाशय में अम्लीभाव को प्राप्त होता है वैसे अपक्व रसधातु भी अम्लीभूत होता है। इस अम्लत्व आदि के कारण सार्वदेहिक लक्षण उत्पन्न होते देखे जाते हैं। यथा—ग्रहणी-अधिकार में ही उक्त वचन की अधिक विशदता करते चरकाचार्य ने जो नाना लक्षण लिखे हैं उनमें एक अम्लपित्त भी है। इस अम्लपित्त में एक क्लम भी है। इसका अर्थ श्रम किए विना भी थकाव या संपूर्णतया निश्चेष्ट पड़े रहने की वृत्ति (एग्जोशन)

होती है। यह लक्षण अम्ल रस के कारण होता है। नवीनों ने श्रमजन्य थकावट का कारण रस-रक्त तथा धातुओं में तक्राम्ल की उत्पत्ति एवं संचय बताया है। अम्लपित्त में श्रम के विना रोगस्वभाववश ही यह अम्ल धातुओं में संचित होता है।[1] आमवात में देखे जानेवाले सार्वदेहिक लक्षण--यथा प्रकरणागत यह हृदय-विकृति इस अम्लत्व के कारण होती है।

जैसे बाह्य अम्ल द्रव्यों के सेवन से शरीर में पित्त की वृद्धि होती है वैसे आम अन्नरस या आम रसधातु के अम्लीभाव से भी शरीर में पित्त वृद्धि को प्राप्त होता है। अम्ल द्रव्यों से कफ का भी प्रकोप होता है। परिणाम यह होता है कि, आमवात में जो भी विकृति होती है उसमें सेवित द्रव्य जिस दोष के विशेष प्रकोपक होते हैं उसके भेद से न्यून या अधिक प्रमाण में कफ तथा पित्त का कोप होता है। कुपित हुए इन दोषों से वायु आवृत होकर शूलादि तज्जन्य लक्षण भी होते हैं।

आमवात के लक्षण विशेषतया स्थूल संधियों में होना सुविदित है। आम कफस्वभावी है, तथा संधियाँ, विशेषतया स्थूल संधियाँ, कफ का आशय होती हैं; अतः आम का स्थानसंश्रय तथा तज्जन्य रोगोत्पत्ति स्थूलसंधियों में होती है। इन लक्षणों में पित्त के कारण संधिबन्धनों तथा श्लेष्मधरा कला में पाक (सूजन, इन्फ्लेमेशन) पित्त के कारण होता है, श्लेषक कफ (सायनोविअल फ्लुइड) कीवृद्धि तथा संधिशोथ का कारण कफ का प्रकोप होता है, एवं शूल वायु के कोप से होता है। पाक की वृद्धि होने से व्रणभाव होकर आगे संधियों में स्थायी विकृति करनेवाले सुविदित लक्षण होते हैं।

स्थूल संधियों में दृष्टिगोचर तथा ज्ञात संप्राप्ति वाले इन लक्षणों के आधार पर हृदय की विकृतियों को भी समझना सुगम है।

## आमवातज हृदय-विकृति

अस्थिसंधियों के समान हृदय भी सुपरिचित कफ स्थान है। ऊपर निर्दिष्ट रीति से श्लेष्मधरा कला तथा तदन्तर्गत लेषक कफ के सादृश्य को दृष्टि में रखें तो हृदय अस्थि-सन्धियों के और भी निकट आ जाता है। विकृति की दृष्टि से भी अस्थि-सन्धियों और हृदय में अपूर्व साम्य है।

जैसे आमवात में पित्त-प्रकोपवश सन्धिबन्धनों तथा श्लेष्मधरा कला में पाक होता है वैसे ही हृदय के अन्दर के आवरण तथा उसीकी अङ्गभूत कपाटिकाओं में, केवल हृदय की पेशी में, श्लेष्मधरा कला (पैरीकार्डिअम) में किंवा इनके सहित समग्र हृदय में पाक होता है। कपाटिकाओं सहित अन्तरावरण (एन्डोकार्डिअम) के पाक को अंग्रेजी में एन्डोकार्डाइटिस कहते हैं। हृदय के केवल मांसमय भाग अर्थात् वास्तविक हृदय में (मायोकार्डियम) में हुए पाक को मायोकार्डाइटिस कहा जाता है। हृदयधरा कला में हुए पाक का नाम पेरीकार्डाइटिस है। एवं, कपाटिकासहित हृदयान्तरावरण, हृदय की पेशी तथा हृदयधराकला इन सब में समकाल हुआ पाक पैनकार्डाइटिस कहाता है। पैरीकार्डाइटिस के साथ हृदयधरा कला के अवकाश में प्रकृत्या रहनेवाले द्रव (श्लेषक कफ) के प्रमाण में वृद्धि हो तो अंग्रेजी में 'पेरीकार्डाइटिस विद इफ्युझन' कहते हैं।

आयुर्वेद-मत से ये सभी विकृतियाँ आम रसधातु का शुक्तपाक होने से कुपित हुए पित्त के प्रभाव से होती है। पेरीकार्डाइटिस विद इफ्युझन को हृदयधरा के पाक की जातोदकावस्था नाम दिया जा सकता है। यह स्थिति, आयुर्वेद के सिद्धान्त-पक्ष का विचार करें तो, कफ प्रकोपक कारणों से कफ की वृद्धि होने के परिणामस्वरूप होती हैं। अन्य शब्दों में यह कफज हृद्रोग है। ऊपर कहा है कि नव्यमत से हृदय की आमवातज विकृति की अनुत्पत्ति (प्रिवेन्शन) एवं होने पर उसके उपचार के लिए लङ्घनादि उपचार कार्यसाधक होते हैं; व्रणवस्तु (स्कार) बन चुकी हो और नव्य मत से जिसके लिए शस्त्रचिकित्सा अब व्यवहार में आने लगी है वह स्थिति उत्पन्न हो गई हो तब भी लक्षण विशेष व्यथाजनक न हो जाएँ, इस प्रयोजन से दिए आयुर्वेदीय उपचार उत्तम काम कर जाते हैं। इसी प्रकार कफज हृद्रोग में भी उन कफ-प्रत्यनीक उपचारों को आजमाना चाहिए, जिनका उल्लेख कफज हृद्रोग शीर्षक के नीचे पूर्वाचार्यों ने किया है।

विद्वज्जनों के विचारार्थ यहाँ मैं कफज हृद्रोग के लक्षणों का ही निर्देश करूँगा। उभय मत से समन्वय जिन्हें सिद्ध है ऐसे विद्वान् स्वयं तुलना करें। चिकित्सा का मार्ग आगे की वस्तु है।

---

[1] १--व्यवसाय में दौर्बल्य की व्यथा लेकर आए रोगीमें भी शारीर धातुओं में अम्लत्व होना यह भी कारण होना भव है। इनमें बल्य औषध विशेष कार्य नहीं करते।

## कफज हृद्रोग

हृद्रोगों का वर्णन चरक ने दो स्थानों पर किया है--च० सू० १७।३०-३१ पर कारण-सहित पृथक्-पृथक् भेदों के लक्षण दिये हैं तथा च. चि. २६।७७-१०३ में हृद्रोगों के सामान्य कारणों का उल्लेख कर पृथक् लक्षण दिए हैं और आगे क्रमशः चिकित्सा दी है। सुश्रुत ने सु. उ. ४३ में हृद्रोगों का वर्णन किया है। लघु वाग्भट ने अ. हृ. नि. ५।३८-४५ में हृद्रोग का लक्षण-सहित निदान दिया है तथा आगे अ. हृ. चि. ६।२५।५५ में चिकित्सा का निर्देश किया है।

कफ के प्रकोप के कारण वैद्य-समाज में सुविदित हैं। कफज हृद्रोग के कारण भी वही हैं। अतः उनका उल्लेख न कर उक्त समग्र स्थलों से केवल लक्षण-सूचक वचन संगृहीत कर उनका अर्थ देता हूं--

हृदयं कफहृद्रोगे सुप्तं स्तिमितभारिकम्।[1]
तन्द्राऽरुचिपरीतस्य भवत्यश्मावृतं तथा॥

च. सू. १७।३५

वैवर्ण्यमूर्च्छाज्वर कास हिक्का
श्वासास्य वैरस्य तृषा प्रमोहाः।
छर्दिः कफोत्क्लेशरुजोऽरुचिश्च
हृद्रोगजाः स्युर्विविधास्तथाऽन्ये॥

× × ×

स्तब्धं गुरु स्यात् स्तिमितं च मर्म
कफात् प्रसेकज्वरकासतन्द्राः॥

च. चि. २६।७८ ; ८०

गौरवं कफसंस्रावोऽरुचिः स्तम्भोऽग्निमार्दवम्।[2]
माधुर्यमपि चास्यस्य बलासावतते हृदि॥

सु० उ० ४३।८

श्लेष्मणा हृदयं स्तब्धं भारिकं साश्मगर्भवत्।
कासाऽग्निसादनिष्ठीवनिद्रालस्यारुचिज्वराः॥

अ० हृ० नि० ५।४२

हृद्रोगों में 'हृदि बाधा' हृदय के कार्य में किसी प्रकार की विकृति यह विशिष्ट लक्षण होता है। इसके अतिरिक्त नीचे लिखे सामान्य लक्षण सर्व हृद्रोगों में होते हैं। विवर्णता (वर्णनाश या विकृत-वर्णता), मूर्च्छा, ज्वर, कास, हिक्का, श्वास, मुखवैरस्य, तृषा, मोह (कोमा), छर्दि, कफष्ठीवन, हृदय आदि अवयवों में रुजा, अरुचि . . . इत्यादि।

कफज हृद्रोग में नीचे लिखे सामान्य तथा विशिष्ट लक्षण होते हैं--हृदय जानो स्तब्ध (स्थिर) और सुप्त हो ऐसी प्रतीति, हृदय भार से दबा प्रतीत होना--उसपर या उसके अन्दर पत्थर रख दिया गया हो ऐसी आशङ्का होना; हृदय में स्तिमितता--मन्दता, तथा गौरव (भारीपन)--इन प्रादेशिक लक्षणों के अतिरिक्त तन्द्रा, निद्रा, आलस्य, मुख-माधुर्य, लालाप्रसेक, कफष्ठीवन, अरुचि, अग्निमान्द्य, कास और ज्वर ये सार्वदेहिक लक्षण।

मुझे लगता है, आयुर्वेद का कफज हृद्रोग नवीनों का 'पेरीकार्डाइटिस विद इफ्युझन' है। नव्य मत से यह निदान हुआ हो तो उस में आयुर्वेदोक्त लक्षण घटाकर आयुर्वेदोक्त उपचार का अवलम्बन करते हुए ठीक निश्चय पर पहुँचा जा सकता है। 'पेरीकार्डाइटिस विद इफ्युझन' कफज हृद्रोग न हो तो भी आयुर्वेदमत से इस में शोथ तथा जलोदर की चिकित्सा का आश्रय लिया जाए, विशेषतया समीर-पन्नग आदि-सदृश अपने औष्ण्य-तैक्ष्ण्य के कारण कफ का पचन और शोषण करनेवाले औषधों का उपयोग किया जाए तो उत्तम सिद्धि मिलती है। इन औषधों का उपयोग पहले न किया हो, अतएव इन पर श्रद्धा विशेष न हो तो एलोपेथिक ज्ञात औषधों के साथ आयुर्वेदोक्त कल्पों का व्यवहार कर उनके गुण-अवगुण का परिचय प्राप्त करना चाहिए। पश्चात् परिणाम देखकर शनैः-शनैः अन्य रोगियों में केवल आयुर्वेदिक उपचार अपनाने में भीति न रहेगी।

## पार्श्वशूल--जातोदकावस्था

हृदयधरा कला में द्रव-प्रचिति के समान ही फुफ्फुस धरा (पार्श्वधरा) कला में भी द्रव का संचय हो जाता है। इसे अंग्रेजी में 'प्लुरिसी विद इफ्युझन' या वेट प्लुरिसी कहा जाता है। पार्श्वशूल और जलोदर इन शब्दों का एकान्वय कर कई अध्यापकों ने इसे जलपार्श्व नाम दिया है। पार्श्वशूल की जातोदकावस्था संज्ञा भी आयुर्वेद की परम्परा के अनुसार ही है।

काश्यपसंहिता में हृदय और पार्श्वों में कफ संचित होने का उल्लेख है। रोग के विवरण में रोगी को 'पार्श्व-शूली' कहा गया है, जिससे स्पष्ट प्रतीति होती है कि पार्श्व-

---

[1] १--सुप्तमिव सुप्तं प्रबोधन रहितत्वेन, भाराक्रान्तमिव भारिकम्--कफज शिरोरोग के 'सुप्तं स्तिमितभारिकम्' (च. सू. १७।२५) में आए इन्हीं लक्षणों पर चक्रपाणि।

[2] २--स्तम्भो जडिमा--डल्हन।

शूल होने पर ही उस की अगली अवस्था पार्श्वों में द्रव के संचय की है। नव्य मतानुसार भी वेट प्लुरिसी होने के पूर्व ड्राई प्लुरिसी होती है। ड्राई प्लुरिसी में पार्श्व में कफ-संचय का जो उल्लेख काश्यप ने किया है, वह ड्राई तथा वेट प्लुरिसी के प्रति ही संकेत करता प्रतीत होता है। वाचकों के विचारार्थ समग्र प्रकरण अर्थ-सहित यहाँ उद्धृत किया जाता है। जैसा कि पहले कहा है, ये वचन पार्श्वशूली को लक्षित कर लिखे गए हैं, यह ध्यान में रखते हुए इन पर विचार करना उपयुक्त होगा।

**कफो हि वायुना क्षिप्तो विष्टब्धः पार्श्वयोर्हृदि ।**
**खरीकृतश्च पित्तेन शल्यवद् बाधते नरम् ।।**

काश्यपसंहिता पृ० १८२

पद्य का अक्षरार्थ यह है कि, कफ वायु द्वारा स्थान-भ्रष्ट (क्षिप्त) किया जाकर पार्श्वों तथा हृदय में स्थिर (विष्टब्ध) किया जाता है। पित्त इस कफ को खर (गाढा) कर देता है। यह कफ किसी शल्य के सदृश रोगी को कष्ट देता है।

आगे संहिताकार ने उपचार के परिणामस्वरूप तत्-तत् लक्षण शान्त होने का निर्देश किया है। इस प्रकार कफ के पार्श्वों तथा हृदय में संचित होने के लक्षण बता दिये हैं। उन्हें देखने के पूर्व संक्षेप में इस प्रथम पद्य का अर्थ समझ लें। पद्यका अर्थ समझने के लिए पहले कफ का स्वरूप समझना उचित प्रतीत होता है।

**कफ का अर्थ**--निरुक्त के दैवतकाण्ड के परिशिष्ट (१४ वाँ अध्याय) में एक वचन है, जो कफ के स्वरूप को स्पष्ट करने में अतीव उपयोगी है। उसमें कहा है कि पुरुष धर्म, ज्ञान और काम इन तीन लक्ष्यों में से किसी एक लक्ष्य के अभिमुख हो सकता है। तीनों लक्ष्यों में परिणाम भिन्न-भिन्न होता है। तृतीय लक्ष्य काम का अनुसरण पुरुष करता है तो वह शुक्र का गर्भाशय में विसर्ग करता है। इस शुक्र से श्लेष्मा (कफ) की उत्पत्ति होती है। उससे रस धातु बनता है। रस धातु से रक्तादि क्रम से तत्तत् धातु की उत्पत्ति होती है। इस वचन का तात्पर्य यह है कि शरीर के धातुओं की उत्पत्ति और पुष्टि जिस रसधातु से होती है उसका भी मूल कफ है। अन्य शब्दों में रसधातु के घटक द्रव्य जो उसके अङ्गभूत रहते हुए शरीर के धातुओं का पोषण, जीवन, यापन, तर्पण, धारण करते हैं वे कफ कहाते हैं। सामान्यतया ये पृथक् होकर श्लेष्मधरा कला, प्राणवह स्रोत आदि में स्रुत होकर अपना-अपना प्राकृत कर्म करते हैं तब इन्हें कफ कहने का आयुर्वेद में प्रचार है। इन में भी विशेषतया वृद्धि को प्राप्त कर अपने विशिष्ट निर्गमन-मार्ग--मुख और नासिका--से इनकी प्रवृत्ति न्यूनाधिक प्रमाणमें होती है तब इन्हें कफ यह संज्ञा विशेषतया दी जाती है, विशेष कर लोक में (प्रचलित भाषा में)।

रोगों की दृष्टि से विचार करें तो कफ-संज्ञक ये द्रव्य जब वृद्धि को प्राप्त होते हैं तो दो परिणाम प्रायः हो सकते हैं। या तो श्लेष्मधरा कला आदि शरीर के स्थानों में इन का संचय होकर संधिशोथ आदि विकार होते हैं या अपने निर्गम के स्थानों से इनकी अधिक प्रमाण में बहिःप्रवृत्ति होती है। जिस मार्ग से इन की प्रवृत्ति होती है, उसके भेद से लक्षण तथा नाम भिन्न-भिन्न होते हैं। यथा, मूत्रमार्ग से प्रवृत्त होते हुए ये द्रव्य प्रमेह नाम धारण करते हैं, मुख तथा नासिका के मार्ग से प्रवृत्त या प्रवृत्त्युन्मुख होते हुए ये कास, श्वास आदि विभिन्न नाम धारण करते हैं... इत्यादि। कफ का यह स्वरूप वाचक ध्यान में रखेंगे तो कफ-संबन्धी अनेक रोगों का निदान तथा चिकित्सा समझना सुगम हो जाएगा। परन्तु--

**कफ का स्थानापकर्ष**--कभी-कभी कफ की अति प्रवृत्ति का मूल कारण कफ का कोप नहीं होता, किन्तु कुपित हुआ वायु ही कफ को अपने आश्रयस्थान (रसधातु, श्लेष्मधरा कला, प्राणवह स्रोत आदि) में रहने न देकर वहाँ से उन्ह बलात् बाहर फेंकता है। यथा, कफप्रसेक के एक प्रकार की संप्राप्ति तथा उपचार बताते हृदयकार ने निम्न पद्य में कहा है।

**श्लेष्मणोऽति प्रसेकेन वायुः श्लेष्माणमस्यति ।**
**कफ प्रसेकं तं विद्वान् स्निग्धोष्णैरेव निर्जयेत् ।।**

अ० हृ० चि० ५।६३

इस प्रसंग में यह प्रकरण उद्धृत करने का प्रयोजन यह है कि जैसे कफप्रसेक के उल्लिखित प्रकार में कफ अपने स्थान से प्रकुपित वायु द्वारा बलात् अपकृष्ट होकर मुख-मार्ग से बाहर फेंका जाता है वैसे ही प्रकुपित वायु पार्श्वशूल की जातोदकावस्था में कफ को प्राणवह स्रोतों की कला में फेंकता है--वहाँ संचित करता है। कफ के संचय के पूर्व पार्श्व में शूल प्रमुख लक्षण होता है। उस समय तो स्पष्ट ही रोगका कारणभूत दोष वात होता है; परन्तु फुफ्फुसधरा या पार्श्वधरा कला (प्लुरा) में कफ का संचय भी प्रकुपित वायु की

क्रिया का ही परिणाम होने से इस अवस्था में भी रोगारम्भक दोष वायु को ही मानना चाहिए। चिकित्सा भी वायु को प्रधानतया लक्ष्य में रख कर करनी चाहिए, परन्तु संचित दोष कफ को भी लक्ष्य में रखना ही चाहिए। इतनी पूर्वभूमिका के पश्चात् अब काश्यप का वचन आगे देखें। संचित कफ पित्तके शोषणात्मक स्वभाव के कारण सान्द्र होकर क्लेश उत्पन्न करता है। इसके उपायका निर्देश करते काश्यप कहते हैं——

**तस्याशुष्कस्य लीनस्य विलग्नस्य कृशात्मनः।**
**दुःखनिर्हरणं कर्तुं तीक्ष्णादन्यन्न भेषजात्॥**

पार्श्वधरा कला में संपूर्णतया शुष्क न होकर लीन तथा संसक्त इस कफ को तीक्ष्ण औषध के विना समावस्था में लाया जाना संभव नहीं है।

**तस्य तीक्ष्णानि नस्यानि तीक्ष्णाश्च कवलग्रहाः।**
**स्वेदं दिवाजागरणं विदध्यात् पार्श्वशूलिनः॥**

पार्श्वशूल-पीडित इस रोगी को तीक्ष्ण नस्य तथा तीक्ष्ण कवल तथा स्वेद दें। उसे दिन में सोने न दें।

यह वह वचन है जिसमें रोगी को पार्श्वशूली कहा गया है। इसका अर्थ यह है कि मूलतः रोगी पार्श्वशूली होता है, और उसमें प्रधान दोष वायु की क्रिया से पार्श्वों में (पार्श्वधरा कला में) कफ का संचय होता है।

तीक्ष्ण नस्य का विधान कर उदाहरण रूप से एक पाठ देते आचार्य कहते हैं——

**मातुलुङ्गार्द्रक रसं कोष्णं त्रिलवणान्वितम्।**
**अन्यद्वा सिद्धिविहितं तीक्ष्णं नस्यं विधापयेत्॥**

मातुलुङ्ग (बिजौरे) का रस तथा आर्द्रकस्वरस में लवणत्रय का प्रक्षेप कर उसका सुखोष्ण नस्य दे। किंवा सिद्धिस्थान में निर्दिष्ट अन्य तीक्ष्ण नस्य दे।

**तेन प्रभिद्यते श्लेष्मा प्रस्विन्नश्च प्रसिच्यते।**
**शिरोहृदयमन्यास्यं दृष्टिश्चास्य प्रसीदति॥**
**प्रमीलकस्तालुशोषः श्वासः कासश्च शाम्यति॥**

तीक्ष्ण नस्य की क्रिया से श्लेष्मा छिन्न-विच्छिन्न होता है। स्वेदन से वह द्रवीभूत होकर पार्श्वधरा कला में विद्यमान अपने मुखों से गृहीत होकर बाहर निकल जाता है। परिणामतया रोगी का शिर, हृदय, कन्धा (ग्रीवा), मुख और दृष्टि निर्मल (दोषके प्रभाव से शून्य) हो जाती है। प्रमीलक (आँखें अर्ध मूर्च्छा में मिची रहना), तालुशोष, श्वास तथा कास शान्त होते हैं।

**पुनः पुनश्च निद्रायां कटु नस्याञ्जनं हितम्॥**

निद्रा के वेग जब-जब आएँ तब-तब रोगी के प्रबोधनार्थं तीक्ष्ण नस्यों के अतिरिक्त कटुरस अञ्जन भी दें।

ऊपर कवलों का उल्लेख किया है। उनका पाठ बताते आचार्य आगे कहतेहैं——

**तीक्ष्णैर्द्रव्यैः सलवणैर्मातुलुङ्ग रसद्रवैः।**
**द्रवाम्लयुक्तैरथवा कोष्णाः स्युः कवलग्रहाः॥**
**आर्द्रकस्वरसोपेतं सैन्धवं सकटुत्रिकम्।**
**आकर्ष धारयेदास्ये निष्ठीवेच्च पुनः पुनः॥**

मातुलुङ्ग के रस में लवण तथा तीक्ष्ण द्रव्य डालकर अथवा आर्दकस्वरस, सैन्धव तथा त्रिकटु मिलाकर मुख आकण्ठ उनसे पूर्ण कर रखें। कफ छुटता जाए वैसे-वैसे रोगी उसे थूकता जाए। इसके परिणामस्वरूप——

**तेनास्य हृदयश्लेष्मा मन्यापार्श्व शिरोगलात्।**
**लीनो व्याकृष्यते शुष्के लाघवं चास्य जायते॥**
**पर्वभेदो ज्वरो निद्राश्वासकासगलामयाः।**
**मुखाक्षिगौरवं जाड्यमुत्क्लेशश्चोपशाम्यति॥**
**सकृद् द्वित्रिचतुः कुर्याद् द्रष्ट्वा दोषबलाबलम्।**
**एतद्धि परमं प्राहुर्भेषजं संनिपातिनः।**
**श्लेष्मणा कृष्यमाणस्य सततं संनिपातिनः॥**

रोगी के, हृदय, पार्श्व, शिर, गल और मन्या में लीन हुआ कफ विलीन होकर बाहर निकल जाता है। उसके शरीर में लाघव आता है। पर्वभेद, ज्वर, निद्रा, श्वास, कास, गलरोग; मुख तथा नेत्र में गुरुता, जडता एवं कफोत्क्लेश शान्त होते हैं। दोष का बल देख कर यह कार्य दिन में एक, दो, तीन, या चार वार करें। श्लेष्मा से पीडित होते संनिपात रोगी के लिए यह श्रेष्ठ औषध है।

**उपसंहार**——ये वचन संनिपात रोग के प्रकरण में आए हैं। परन्तु इनसे किसी भी कारण हुए जातोदक पार्श्वशूल की सम्प्राप्ति का दिग्दर्शन हो सकता है। अधिक निर्णय तो चिकित्सा द्वारा ही संभव है। विद्वान वाचकों से इस विषय पर अधिक ऊहापोह करने की प्रार्थना है।

उपाचार्य, ओ० ना० आयुर्वेद
महाविद्यालय, सूरत। }

# रक्त दोष नहीं—सुश्रुत का अभिमत

**वैद्य देवदत्त शास्त्री, विद्यावाचस्पति**

(पूर्वतोऽनुवृतः)

अब व्यंगकारों के इस दूसरे प्रमुख आक्षेप पर जरा ध्यान दीजिये। सम्भवतः उन्होंने सुश्रुत के इस खण्ड वाक्य के चतुर्थैः शब्द से जो 'शोणित' का संख्या विशेषण है, 'चौथा' अर्थ लिया है और क्योंकि उसका प्रयोग 'एभिः' अर्थात् 'वातादिभिः' के साथ है; इसलिए प्रसंग को बिना समझे ही 'शोणित' को एक चौथा दोष उन्होंने समझ लिया है। किन्तु यह तो उनकी समझ का ही दोष है, सुश्रुत का इसमें क्या कसूर। यद्यपि प्रसंग को यदि छोड़ भी दें तो भी संहिताकार की शब्द योजनाओं से वातादि से 'शोणित' का पृथक्त्व स्पष्ट हो जाता है। "एभिः-वातपित्तश्लेष्मभिः शोणित चतुर्थै......" अर्थात् सम्भव-स्थिति तथा प्रलय में भी वात-पित्त-कफ तथा चौथे 'शोणित' से यह शरीर संयुक्त रहता है। एभिः सर्वनाम पद है यह वात-पित्त-कफ के लिए तथा 'चतुर्थैः' पृथक् से 'शोणित' के लिए प्रयुक्त हुआ है। यहाँ एभिः से 'शोणित' का पृथक्त्व स्वयं स्पष्ट है। तथापि प्रश्न यह है कि वातादि के साथ संहिताकार ने उसका निर्देश क्यों किया है, तो इस प्रश्न का उत्तर 'रक्त' के महत्त्व का स्पष्टीकरण करते हुए दिया जा चुका है। 'घट' के प्रसंग में जहाँ कुम्भकार का नाम आता हो, वहाँ मृत्तिका का विस्मरण कदापि सम्भव नहीं फिर शरीर-प्रसंग में वातादि के साथ 'शोणित' का विस्मरण कैसे सम्भव होता? सोमदत्त के समान ही यज्ञदत्त भी यदि किसी दृष्टिकोण में महत्त्वपूर्ण हो, तो प्रसंगवश सोमदत्त के साथ उसका भी नाम नहीं भुलाया जा सकता। लेकिन इसका अर्थ यह भी तो नहीं हो सकता कि यज्ञदत्त सर्वांश पूर्ण सोमदत्त ही कहलाने लगे और वैज्ञानिक यज्ञदत्त सैनिक सोमदत्त कहलाने लगे! वर्ग अथवा श्रेणि-भेद से उन दोनों में भेद तो रहेगा ही। यह भेद यदि स्वयं समझ में न आए, तो कम-से-कम उसका (अपनी अनभिज्ञता का) दोष संहिताकार को तो नहीं देना चाहिये!

ऊपर यह संकेत किया गया है कि प्रलय तक यह शरीर वातादि तथा रक्त से संयुक्त रहता है। किन्तु तब तक शरीर में इनके संयुक्त रहने का रूप? सम्भवतः यह प्रश्न उठता है।

वस्तुतः ये शरीर में आश्रय और आश्रित रूप से संयुक्त रहते हैं। 'रक्त' आश्रय है, जब कि वातादि आश्रित। वातादि रक्त पर आश्रित रहते हैं, 'रक्त' इनका आश्रय है। इस प्रकार ये दोनों प्रलय तक आश्रय और आश्रित रूप से शरीर में बने रहते हैं। सम्भवतः इस विश्लेषण से प्रस्तुत प्रसंग का स्पष्टीकरण प्रतीत न होता हो। आखिर किस प्रकार वातादि रक्त पर और वह भी प्रलय तक आश्रित रहते हैं।

इस प्रश्न के निराकरण के लिए मानव-शरीर के आदि स्वरूप पर ध्यान दीजिये तो स्पष्ट हो जायेगा। गर्भाशय में शुक्र और शोणित (रज) के एकात्मक होने पर या उससे पूर्व ही शुक्र और शोणित में वातादि अपना स्थान बना लेते हैं। शुक्र-शोणित का यह एकात्मक रूप ही मानव-शरीर का आदिस्वरूप है। निःसन्देह 'रक्त' का ही यह परिणाम है, जिसमें वातादि पहले से ही अपना स्थान बना चुके होते हैं। शुक्र-शोणित की एकात्मक भेद का ही नाम साकार शरीर है; अर्थात् एक निश्चित अवधि के पूर्ण होने पर इसका बाह्य संसार में आना-रहना और फिर...!

यद्यपि शरीर आदितः तन्मय एवं 'रक्त' की ही परिणति है; तथापि बाह्य संसार में उसकी संवृद्धि के लिए जो उसे आहार-विहार प्राप्त होते हैं; उनसे पुनः वातादि एवं रक्त की उत्पत्ति तथा उनकी क्षय-संवृद्धि होती रहती है, जिस पर शरीर के स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य की स्थिति निर्भर होती है। इस प्रकार शरीर अपनी उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय में भी आश्रय और आश्रित रूप से रहनेवाले रक्त तथा वातादि से संयुक्त रहता है।

प्रस्तुत प्रसंग में इस विश्लेषण का अभिप्राय सिर्फ इतना है कि शरीर में 'रक्त' तथा वात-पित्त-कफ आश्रय और आश्रित रूप से रहते हैं। किन्तु इसका अर्थ यह तो नहीं कि आश्रय-आश्रित बन गया? जरा गौर कीजिए, इतना

महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध जहाँ 'रक्त' और वातादि त्रिदोष का परस्पर सम्बन्ध हो, वहाँ किसी प्रसंग-विशेष में इन दोनों के नाम यदि साथ-साथ आ जाएँ तो क्या आपत्ति है? इसी कारण क्या आश्रय और आश्रित में अभेद हो जायगा? इस प्रकार वातादि के आश्रय 'रक्त' को आश्रित दोष मान लेना 'घर' को घरवाला मान लेना नहीं तो और क्या है? और फिर अपनी इस समझ के परिणाम को संहिताकार पर लाद देना, अफसोस तो यही है।

संहिताकार यदि 'रक्त' को भी दोष मान ले तो "वात-पित श्लेष्माण एव देह संभव हेतवः" नहीं कहते, बल्कि इसके साथ शोणित का भी समावेश करके "वात-पित्त-कफ शोणितान्येव देहसंभव हेतवः" कहते और उसकी उपमा के लिए एक चौथा स्थूण और कहीं से ढूँढ़ निकालते। इसी सूत्र के चौथे वाक्य में जो 'एभिः' संकेत है, यदि 'रक्त' आचार्य के मत में दोष होता तो उसमें समावेश तब स्वयं ही हो जाता और आगे "शोणित चतुर्थैः" का जो निर्देश है उसकी आवश्यकता भी तब नहीं पड़ती। इस प्रकार 'एभिर्दोष चतुर्भिः" कह कर संहिताकार शोणित का भी दोषत्व स्पष्ट कर सकते थे। लेकिन उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं किया। इस प्रकार 'शोणित' कम का पृथक्त्व स्पष्ट हो जाता है। "एभिः—वातः पित्त श्लेष्माभिः शोणित चतुर्थैः।" चतुर्थैः कह कर जहाँ 'रक्त' का दोषों से पृथक्त्व प्रमाणित किया है वहाँ शरीर-प्रसंग में वातादि दोषों के साथ रख कर उसके महत्व को भी उतना ही प्रमाणित किया है। व्यंगकार महोदय संहिताकार की शब्द-योजनाओं को पहले समझें, फिर उन पर व्यंग करने की हिमाकत करें।

प्रसंगवश दोषों के साथ 'रक्त' का निर्देश न करके आचार्य ने केवल उसके महत्व का प्रदर्शन किया है। 'रक्त' अपने असामान्य भौतिक गुण, जटिल रासायनिक संगठन, निरन्तर संचार-प्रसार, कार्य वैविध्य, विनाश वैचित्र्य, पुनर्जनन, वैशिष्ट्य इत्यादि अनेक अद्भुत, रम्य एवं अपनी असामान्य विशेषताओं के कारण शरीर का अद्वितीय धातु है। इसके बिना शरीर का अस्तित्व सम्भव नहीं। इसीलिए संहिताकार ने कहा है "देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेणैव धार्यते। तस्माद् यत्नेन संरक्ष्यं रक्तं जीव इति स्थिति॥" तब जहाँ वातादि को शरीर-सम्भव के हेतु संहिताकार ने बताया है, वहाँ 'रक्त' को कैसे भूल बैठते? किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि वात-पित्त-कफ के साथ इसका संकेत उसको दोष बना डालता है। शरीर के लिए जितना महत्व त्रिदोषों का है, उनसे कहीं अधिक महत्व इस अकेले 'रक्त' का है। इसीलिए संहिताकार ने प्रसंगवश उनके साथ संकेत इसका भी किया है।

प्रसंग पर आगे बढ़ने से पूर्व एक विश्लेषण यहाँ और भी आवश्यक है। "तदेभिरेव शोणित चतुर्थैः सम्भव-स्थितिप्रलयेष्वप्यवरहितं शरीरं भवति।" अर्थात् शरीर-सम्भव स्थिति और प्रलय में भी दोष तथा 'शोणित' से युक्त रहता है। यहाँ विचारणीय बात यह है कि क्या प्रलय में भी अर्थात् जीवमुक्त होने के बाद भी शरीर दोष और शोणित से संयुक्त रहता है अथवा विनाश की अवस्था में पहुँचने से पूर्व अर्थात् सजीव अवस्था तक ही केवल वह इनसे संयुक्त रहता है?

सांप्रतिक आचार्य तो इस दूसरे अर्थ का ही प्रतिपादन करते हैं। उनके विचार से जीव और शरीर जब तक संयुक्त रहते हैं अर्थात् जब तक शरीर सजीव रहता है, दोष और शोणित उसमें तभी तक वर्तमान रहते हैं। यदि ऐसा है, तो यह उनका मन्तव्य हो सकता है। परन्तु संहिताकार की शब्द-योजनाओं से उनके इस मन्तव्य की अभिव्यक्ति नहीं होती। "सम्भवस्थिति प्रलयेष्वपि" अर्थात् उत्पत्ति-स्थिति और प्रलय में भी शरीर, दोष और शोणित से संयुक्त रहता है।

शरीर-शास्त्र में यथास्थान निर्दिष्ट 'सम्भव' शब्द का अभिप्राय यद्यपि उत्पत्ति और स्थिति दोनों से है। लेकिन यहाँ 'स्थिति' शब्द का प्रयोग पृथक् से किया गया है। अतः 'सम्भव' शब्द का अर्थ यहाँ केवल शरीर की उत्पत्ति से है। फिर शरीरोत्पत्ति के बाद उसकी स्थिति की सीमा कहाँ तक है। यह प्रश्न स्वभावतः उठता है।

यद्यपि इस बात को कदाचित् ही कोई जानता हो कि कौन कब तक जीवित रहेगा। लेकिन जब तक जीव शरीर से संयुक्त रहता है, तब तक शरीर को सजीव कहा जाता है। इससे स्पष्ट है कि शरीर सम्भव अर्थात् शरीरोत्पत्ति के बाद जब तक वह सजीव रहता है तब तक उसकी स्थिति की सीमा है तथा जीव और शरीर के पृथक्-पृथक् अर्थात् निर्जीव शरीर का नाम ही प्रलय है।

गर्भ में शुक्र-शोणित का संयोग और उसका वहाँ पूर्ण होना तथा पूर्ण हो कर बाह्य संसार में आने तक का नाम 'उत्पत्ति' और उसके सजीव रहने तक का नाम उसकी

'स्थिति' तथा उसके निर्जीव हो जाने का नाम ही उसका प्रलय अर्थात् विनाश है। उत्पत्ति-स्थिति और प्रलय इन तीनों ही अवस्थाओं में शरीरदोष और शोणित से संयुक्त रहता है, यह संहिताकार की शब्द-योजना से स्पष्ट है।

जिन आचार्यों का यह कथन है कि शरीर तभी तक दोष और 'शोणित' से संपन्न रहता है, जब तक वह सजीव रहता है, तो उत्पत्ति के बाद शरीर की इसी अवस्था का नाम तो उसकी स्थिति है? जब तक शरीर सजीव है, तब तक वह स्थित है तथा उसके सजीव न होने का अर्थात् निर्जीव हो जाने का ही नाम तो प्रलय अर्थात् विनाश है। फिर दोष और शोणित शरीर की सजीव अवस्था में ही केवल वर्तमान रहते हैं, तो शरीर की सजीव अवस्था का बोध उसकी 'उत्पत्ति' के बाद स्थिति से ही हो जाता है, संहिताकार ने फिर स्थिति के बाद 'प्रलय' का प्रयोग क्यों किया? इससे स्पष्ट है कि शरीर न केवल सजीव-अवस्था में ही, बल्कि वह प्रलय में भी दोष और शोणित से अविरहित रहता है। अन्यथा उत्पत्ति और स्थिति के बाद प्रलय शब्द का प्रयोग संहिताकार कभी भी न करते।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो गया कि निर्जीव शरीर भी दोष और शोणित से संयुक्त रहता है। यदि यह विश्लेषण वस्तुतः तथ्यपूर्ण है तो दोष और शोणित किस प्रकार निर्जीव शरीर में भी वर्तमान रहते हैं, यह प्रश्न उठता है।

सजीव-शरीर के निर्जीव होने में अर्थात् शरीर से जीव को पृथक् होने में कितना समय लगता है। कदाचित् ही कोई इस प्रश्न का उत्तर दे सके–उस समय का ठीक निश्चय कर सके। तथापि गलत हो या सही, उस समय का अनुमान यदि एक क्षण भी हो तो आप अनुमान कीजिये इस 'क्षण' से पूर्व जब कि सारा शरीर शोणित संयुक्त था, क्षणभर बाद ही फिर उसका क्या हुआ? वाष्प बन कर कहीं वह उड़ तो नहीं गया? निःसंदेह शरीर के किसी द्वार से यदि उसका बहिर्गमन नहीं हुआ और यदि उसका किसी प्रकार वाष्प भी नहीं बना तो एक क्षण पूर्व सजीव शरीर में जिस प्रकार वह व्याप्त था, क्षणभर बाद निर्जीव शरीर में भी वह उसी प्रकार व्याप्त है। हाँ, यह कहा जा सकता है कि क्षणभर पूर्व सजीव शरीर में वह जिस रूप में था, क्षणभर बाद शरीर के निर्जीव हो जाने पर वह उसी रूप में नहीं है। लेकिन है, इसमें कोई विप्रतिपत्ति-संदेह नहीं हो सकता।

शरीर के निर्जीव होने पर 'रक्त' में परिवर्तन हो जा है। उस स्थिति में 'रक्त' के संघटक पृथक्-पृथक् जाते हैं। 'रक्त' समस्त शरीर में व्याप्त होता है। अ उसके संघटक पृथक्-पृथक् हो कर शरीर में जहाँ के त लीन हो जाते हैं। इनकी तल्लीनता में दोष सहाय होते हैं। शरीर के निर्जीव होने पर दोषों का अस्ति यदि न होता तो उसमें अन्य धातुओं के वर्तमान होते हु भी शरीर में किसी प्रकार का परिवर्तन सम्भव न पाता। लेकिन निर्जीव शरीर के अन्य धातुओं और म के परिवर्तन से समस्त स्थूल शरीर का परिवर्तन सा दृष्टिगोचर होता है। निःसंदेह इस परिवर्तन के मूल कार दोष ही हैं। दोष शरीर के भीतर और बाहर अप सक्रिय प्रभाव डाल कर उसको बदलते रहते हैं। अ यह निश्चित् है कि 'दोष' और 'रक्त' शरीर के निर्जीव जाने पर भी उसमें वर्तमान रहते हैं।

वैसे भी आयुर्वेद में वात-पित्त-कफ के साथ 'र को भी द्रव्य माना गया है। द्रव्य कभी नष्ट नहीं हो बल्कि उनका परिवर्तन होता है। अथवा वे अन्ततः अ कारणों में लीन हो जाते हैं। अतः द्रव्य होने के कार भी निर्जीव शरीर में उनकी वर्तमानता स्पष्ट है। 'रक्त' को द्रव्य न भी मानें, जैसा कि किन्हीं विद्वज्जनों मत है, तो भी वर्तमान शरीर से, चाहे वह सजीव हो निर्जीव, उसका सम्बन्ध स्पष्ट है—निर्जीव शरीर भी उसका परिवर्तित रूप वर्तमान है। अतः संहिता ने जो उत्पत्ति-स्थिति और प्रलय में अर्थात् निर्जीव श में भी शरीर को 'दोषों' और 'शोणित' से अविरहित क है, वह यथार्थ है।

यदि रक्त इतना महत्वपूर्ण है और इसीलिए दोष होते हुए भी उसको वातादि के साथ महत्वपूर्ण प्रसंगों स्थान दिया गया है, तो संहिताकार की दृष्टि में 'रस' भी उतना ही महत्वपूर्ण स्थान है—"यस्तेजो भूतः सा परम सूक्ष्मः स रसः एवं उसके महत्व को और स करते हुए उन्होंने "कृत्स्नं शरीरमहरहस्तर्पयति, वर्धयति, धारयति, यापयति च" भी कहा है और इसीलिए आगे उस रक्षा के लिए उन्होंने चेतावनी दे दी है—"रसजं पु विद्याद्रसं रक्षेत् प्रयत्नतः"। यही नहीं बल्कि, समस्त धातु

की वृद्धि करनेवाला भी यह रस ही है—"तत्रैतेषां धातूनामन्नपान रसः प्रीणयतिः" निःसंदेह 'रक्त' भी रस का ही परिणाम है। फिर वातादि दोषों के साथ शरीर का सर्वप्रमुख उपादान संहिताकार को यदि रखना ही था तो रस के प्रसाद भाग 'रस' को ही क्यों नहीं रखा? 'शोणितादपि' के स्थान पर 'रसादपि', 'शोणित चतुर्थैः के स्थान पर "रस चतुर्थैः" तथा वात-पित्त-कफ श्लेष्मा के साथ कहे गये 'शोणित' के स्थान पर 'रस' को ही क्यों नहीं रखा, 'रक्त' को ही वहाँ स्थान क्यों मिला?

सम्भवतः तत्तत् स्थानों पर "शोणित" के रखने में संहिताकार का कोई प्रयोजन विशेष हो और 'रक्त' को वहाँ रखना उन्हें यथोचित न जान पड़ा हो। गौर कीजिए, इन प्रश्नों का समाधान सम्भवतः संहिताकार का वह प्रयोजन विशेष ही हो!

यद्यपि 'रस' रक्त से कम महत्वपूर्ण नहीं और धातुओं में, जिनमें यह 'रक्त' भी आता है 'रस' का न केवल आदि और सर्वप्रमुख स्थान ही है, बल्कि उनका पोषण और संवर्धन भी इस 'रस' से ही होता है। तथापि वहाँ 'रक्त' को ही स्थान देने पर इन दोनों में कोई अन्तर विशेष प्रतीत नहीं होता। रक्त यद्यपि 'रस' का ही परिणाम है। किन्तु इसके बाद भी इनमें सिर्फ उतना ही भेद है, जितना तण्डुल और ओदन में। 'रक्त' और 'कण' ये दो 'रक्त' के संघटक हैं। विशेष कर रक्त इन्हीं दोनों का संगठन है। प्रत्यक्ष रूप से 'रस' रक्त में विद्यमान है। रक्त में जो तरलता है वह रस के ही कारण है। आखिर 'रक्त' रंजित रस ही तो है? "रंजितास्तेजसा त्वापः शरीरस्थेन देहिनाम्। अव्यपन्नाः प्रसन्नेन रक्तमित्यभिधीयते।।" इसीलिए जहाँ-तहाँ 'रक्त' को 'रक्त रस' भी कहा गया है। आयुर्वेद में रक्त परिभ्रमण के स्थान पर रस-परिभ्रमण भी कहा गया है। अतः वातादि दोषों के साथ 'रस' को स्थान न देकर रंजित रस अर्थात् 'रक्त' के निर्देशन में इन दोनों में कोई अन्तर्विशेष तो है नहीं। हाँ, इनकी क्रियाओं-प्रक्रियाओं एवं स्वरूप में अन्तर स्वाभाविक है और वह परस्पर दोषों एवं धातुओं में भी है। फिर भी उनके नाम दोष और धातु ही है। 'रस' और रंजित रस अर्थात् 'रक्तरस' में नाम-भेद है और उसी तरह रूप-भेद भी; फिर यह भेद पानीय और रंजित पानीय भेद के समान ही कहा जाएगा। रंग सम्मिश्रित पानीय में जो भेद है वही इस 'रस' और 'रक्तरस' में भी है। किन्तु स्वच्छ पानीय को रंगीले पानीय का नाम नहीं दे सकते, न इस रंगीले पानी को पानी ही कहा जा सकता है। इन दोनों के रूप-भेद के अनुसार इनकी रासायनिक क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं में भी भेद स्वाभाविक है। तथापि रंग संमिश्रित इस जल विशेष में पूरा का पूरा तरलांश जल ही है। इसी प्रकार 'रक्त रस' में जो तरलांश है वह सम्पूर्ण 'रस' ही है। उसका रूप-भेद तो स्थान-भेद और अवस्था-भेद के कारण केवल है। तथापि वहाँ 'रस' को स्थान न देकर 'रक्त' अथवा रंजितरस का निर्देशन संहिताकार का एक विशेष प्रयोजन ही नहीं; बल्कि एक औचित्य भी सिद्ध करता है।

आयुर्वेद विश्रुत, सुश्रुत-धन्वन्तरि का एक शल्य प्रधान शास्त्र है और 'रक्त' का शल्य-क्रिया के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध है, यह स्पष्ट है। यद्यपि 'रक्त' की भाँति ही 'रस' की भी क्षय-वृद्धि होती है। तज्जनित विकृतियों का भी प्रदर्शन किया गया है, किन्तु शल्य-क्रियाओं में 'रक्त' ही देखने में आता है। विस्रवण-चूषण में भी 'रक्त रस' का ही प्रत्यक्ष होता है। घात-प्रतिघात के कारण भी निःसृत होता है, तो रक्त ही होता है रस नहीं। विकृति-अविकृति की हर स्थिति में रक्त का ही प्रत्यक्षीकरण देखा जाता है रस का नहीं। अतः शरीर-शास्त्र में 'रक्त' का महत्व 'रस' से कहीं अधिक है। अन्त में इस कारण भी शल्यप्रधान इस शास्त्र में 'रक्त' का निर्देशन स्वाभाविक है। शुद्धि-संवृद्धि और अन्यान्य परीक्षण 'रक्त' का ही किया जाता है। किसी विकृति-विशेष में 'रस' के भी दर्शन किसी ने किए हों, तो ऐसा नहीं कहा जा सकता। लेकिन 'रस' से रंजित रस अथवा 'रक्त' का महत्व अधिक है यह स्पष्ट है। यही कारण है कि संहिताकार ने वहाँ वातादि के साथ 'शोणितादपि' और 'शोणित चतुर्थैः' आदि ही कहा, न कि 'रसादपि' और 'रस चतुर्थैः' आदि।

किन्तु जो लोग यह कहते हैं कि इस शास्त्र के शल्य प्रधान होने के कारण ही संहिताकार ने 'रक्त' को दोष माना है, निःसंदेह उनका यह कथन भ्रामक है। यह समझ में नहीं आता कि इस शास्त्र के शल्य प्रधान होने के कारण 'रक्त' को दोष मान लेने की आवश्यकता क्या पड़ जाती है? शल्यक्रियाओं से अतिरिक्त अर्श-प्रदर, कास, क्षय, मूत्र, पुरीष, वमन आदि में भी तो आखिर 'रक्त' का ही प्रत्यक्षी-

करण होता है। क्या सुश्रुत में इन विकृतियों का अभिकथन नहीं है ?

संहिताकार ने तो अपनी संहिता में 'रक्त' को दोष माना नहीं। लेकिन ये कहने वाले रक्त को दोष अवश्य मान बैठे हैं--न जाने क्यों ? सम्भवतः इनकी दृष्टि में इसके सिवा 'रक्त' को प्रधानता देने में संहिताकार का कोई प्रयोजन रहा ही न हो। लेकिन 'रक्त' को दोष मान लेने से उनका कौन-सा प्रयोजन सिद्ध हो रहा है। यह नहीं जान पड़ता। जहाँ तक संहिताकार के दृष्टिकोण का सम्बन्ध है, समस्त व्याधियों के मूल उन्होंने त्रिदोष ही बताए हैं—"सर्वेषां च व्याधीनां वात-पित्त-श्लेष्माण एव मूलम्।" एवं दोष से त्रिदोष वात-पित्त-कफ दोष-धातु-मल के वर्गीकरण में उन्होंने स्पष्ट कर ही दिया है। जो 'रक्तज' व्याधियाँ हैं वे भी त्रिदोषज ही हैं, इसमें अनेकानेक प्रमाण प्रस्तुत किये जा चुके हैं। अतः सुश्रुत ने 'रक्त' को दोष नहीं माना है, न इसके कारण वातादि के साथ उसका अभिकथन ही किया है, यह बिल्कुल स्पष्ट है।

तब संहिताकार ने वातादि कें साथ 'शोणित' का परिगणन क्यों किया है, जब कि उन्होंने रक्त को दोष माना ही नहीं। वस्तुतः यह समझ लेना ही गलत है कि संहिताकार ने यहाँ दोषों का परिगणन किया है और इसलिए इनकी गणना के साथ 'शोणित' का भी परिगणन करके उन्होंने उसको भी दोष मान लिया है।

संहिताकार यहाँ दोषों की गणना कर रहे हैं, यह समझना भूल है। दोषों की गणना तो वे "दोषधातुमल-मूलं हि शरीरम्" कह कर पहले ही कर चुके हैं। 'रक्त' का समावेश रसादि धातुओं में हो ही जाता है। फिर दोष से वात-पित्त श्लेष्मा ही तो रह जाते हैं ?

वस्तुतः संहिताकार यहाँ दोष-प्रसार के प्रकार बना रहे हैं। वहाँ यही प्रसंग है--"दोषाः कदाचिदेकशो द्विशः समस्ताः शोणित सहिता वाऽनेकधा प्रसरन्ति।" अर्थात् दोष कभी एक कभी दो और कभी तीनों ही एक साथ रह कर तथा 'रक्त' से मिल कर भी शरीर में फैलते हैं। दोषों की प्रसार-विधि को बतलाते हुए संहिताकार जब यह स्पष्ट करते हैं कि वे एक-दो अथवा समस्त मिलकर शोणित के साथ शरीर में फैलते हैं तो शोणित सहित होकर उनके फैलने में 'शोणित' निर्देशन भूल बैठना संहिताकार के लिए कहाँ तक उचित होता ? इसी कारण संहिताकार को वहाँ शोणित का भी निर्देश करना पड़ा। क्योंकि दोष शरीर में 'रक्त' के साथ भी फैलते हैं। वहाँ गणना का प्रसंग जब है ही नहीं तो वातादि के साथ 'शोणित' के परिगणन का प्रश्न रहा ही कहाँ ? अतः इस कारण भी 'रक्त' दोष प्रमाणित नहीं होता।

वातादि के साथ 'शोणित' के प्रयोग के सम्बन्ध में एक बात और जान लेने की है। आखिर वातादि के साथ 'शोणित' को वहाँ प्रश्रय क्यों मिला तथा 'शोणित' यदि दोष नहीं है, तो दोषों की पन्द्रह प्रसार विधियों में एक विधि 'शोणित' की भी क्यों बताई गई है ?

वस्तुतः संहिताकार ने वात-पित्त-श्लेष्मा-शोणित तथा आगे इनके संयोग से कुल मिला कर दोष-प्रसार की जो पन्द्रह विधियाँ बताई हैं वे सिर्फ इतनी ही नहीं हैं, बल्कि इनसे भी अधिक हैं। इनका पूर्ण प्रयोजन अन्यत्र कहे गए तिरसठ रसभेदों से है। जैसा कि संहिताकार ने स्वयं ही स्पष्ट कर दिया है—"दोषाणां पंचदशधा प्रसरोविहितस्तु यः। त्रिषष्टिधा रसभेदानां तत्प्रयोजनमुच्यते॥"

इसका निष्कर्ष यह निकला कि दोषों का प्रसरण केवल पन्द्रह नहीं बल्कि तिरसठ प्रकार से शरीर में होता है। दोषों की पन्द्रह विधियाँ जो यहाँ कही गई हैं, वे केवल संक्षेपमात्र हैं।

विशेष रूप से एक बात यहाँ सोच लेने की है और वह यह है कि संहिताकार ने 'शोणित' से मिल कर फैलने के कारण 'शोणित' को भी एक प्रसार प्रकार मान कर दोषों की संक्षिप्त प्रसार विधियाँ कुल पन्द्रह बताई हैं। किन्तु आगे दोषों की सम्पूर्ण प्रसार विधियों का उल्लेख करते हुए कुल दोष-भेद बासठ-तिरसठ बताए गए हैं।

सत्वादि त्रिगुण, वातादि त्रिदोष एवं मधुरादि षड्रस इन सब के आगे बासठ भेद माने गए हैं--ये इनके विदग्ध अर्थात् विषम-भेद हैं। इनके ये भेद व्याधि एवं अस्वास्थ्य उत्पादक हैं। इसी प्रकार इन सब के एक-एक अविदग्ध अर्थात् सम-भेद कहे गए हैं। ये भेद शरीर को व्याधिहीन एवं स्वस्थ बनाते हैं।

इस प्रकार अविदग्ध-विदग्ध या सम-विषमभेद मिल कर इन सब के तिरसठ-तिरसठ भेद हो जाते हैं। दोषों और रसों के इन्हीं भेदों के आधार पर चिकित्सा में अंशांश कल्पना की गई है।

एकैकानुगमनं भागरसे यदुदीरितम्।
दोषाणां तत्र मतिमान् त्रिषष्ठिं तु प्रयोजयेत्॥

विचारणीय बात यहाँ यह है कि दोषों की विस्तृत प्रसार-विधियों में 'शोणित' का नाम नहीं आया, ऐसा क्यों ?

(सावशेष)

'सचित्र आयुर्वेद' के लिए विशेष

# चीन की पुरानी चिकित्सा-प्रणाली का चमत्कार

**श्री सत्यदेव विद्यालंकार**

चीन में पुरानी चिकित्सा-प्रणाली के विकास में पिछले कुछ वर्षों से अद्भुत और विस्मयजनक चहुँमुखी प्रगति हुई है। चाइनीज कम्युनिस्ट पार्टी ने देश की पुरानी चिकित्सा प्रणाली को प्रोत्साहन देने के बारे में एक निश्चित नीति निर्धारित की है। उस नीति के अनुसार स्थान-स्थान पर सरकारी अधिकारियों ने जो काम किया है, उसी का यह शुभ परिणाम है। अनुभव से यह पता चला है कि यह प्रणाली अनेक बीमारियों को ठीक करने में जादू का-सा काम देती है। पिछले कुछ वर्षों में चीनी डाक्टरों और पश्चिमी चिकित्सा प्रणाली के विद्वान डाक्टरों ने मिलकर अस्पतालों में जो काम किया है, उससे यह सन्तोषजनक रूपमें सिद्ध हो गया है कि अनेक बीमारियों में चीनी प्रणाली पश्चिमी प्रणाली की अपेक्षा अधिक सुगम, कम खर्चीला और कहीं अधिक प्रभाव दिखाने वाली हैं। जिन बीमारियों का चीनी दवाइयों से प्रभावशाली ढंग से उपचार किया जा सकता है, वे हैं :—निमोनिया, शिस्टोसोमियेसिस, एनसेपेलिटिस, गेस्टिकअलसर, ड्यूडिनल अलसर, रिक्षरेन्ट परनिशियेस एनिमिया, पथरी, एपेंडीसाइटिस, एनीमिया (रक्त की कमी) क्षय, एनफ्लूएंजा और मोतीझरा। १९५६ से १९५७ की पहली छ माही तक चीनी डाक्टरों ने शिस्टोसोमियेसिस का जो उपचार किया उसके अधूरे व्यौरे के अनुसार भी १ करोड़ ३४ लाख बीमारों का बीमारी के भयानक रूप धारण करने पर सफलतापूर्वक इलाज किया गया। इस समय देश में चीनी चिकित्सा-प्रणाली के १३ कालेज, सैकड़ों अन्य संस्थाएँ कायम हैं। ३०० से अधिक अस्पताल हैं और इससे भी कहीं अधिक बड़ी संख्या में उपचारगृह हैं। तीन सौ पश्चिमी चिकित्सा-प्रणाली के विद्वान डाक्टरों ने चीनी चिकित्सा-प्रणाली का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने में अपना पूरा समय लगा दिया है। इनके लिए स्वास्थ्य मंत्रालय ने अध्ययन का कार्यक्रम निश्चित किया। अनेक स्थानों पर छोटे-बड़े अध्ययन-केन्द्र कायम किये। सारे देश में स्थान-स्थान पर पश्चिमी चिकित्सा-प्रणाली के डाक्टरों के लिए पुरानी चीनी चिकित्सा-प्रणाली का अध्ययन करने और अनुभव प्राप्त करने का अवसर उपस्थित किया गया। अनेक ऐसे विद्वान् और अनुभवी डाक्टरों को चीनी चिकित्सकों के साथ काम करने का अवसर दिया गया। इस प्रकार वयोवृद्ध, कुशल और विशेषज्ञ चीनी डाक्टरों से ६० हजार आधुनिक डाक्टर चीनी चिकित्सा प्रणाली का अध्ययन करते हुए व्यावहारिक ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त कर रहे हैं। पिकिंग में चाइनीज मेडिकल रिसर्च अकादमी और अन्य अनेक स्थानों पर भी ऐसी ही संस्थाएँ चीनी चिकित्सा-प्रणाली के सम्बन्ध में व्यावहारिक दृष्टि से खोज कर रही हैं। कुछ संस्थाएँ पुराने ग्रन्थों का अनुवाद कर रही हैं और वे जनता में अपनी चिकित्सा प्रणाली के लिए भावना-चेतना और उत्साह पैदा कर रही हैं। पुराने वैद्यों व डाक्टरों में अपने अपने बाप-दादाओं के समय से चले आ रहे नुस्खों, दवाओं तथा ऐसी ही अन्य चीजों को जनता के लिए सुलभ करने के लिए देशप्रेम तथा देशभक्ति की भावना पैदा की जा रही हैं और वे बड़े उत्साह से जहाँ-तहाँ बिना किसी संकोच के उनको प्रगट कर रहे हैं। इनमें एक दवाई ऐसी हैं जिससे केंसर का इलाज किया जाता है जोकि ८० प्रतिशत बीमारियों को बिल्कुल ठीक करने में सफल सिद्ध हुई है। जी तेहशेंग साँप का जहर उतारने में विशेषज्ञ हैं। चीनी जन-क्रान्ति से पहले वे एक भिखारी थे। उन्होंने अपनी सरकार को कुछ अत्यन्त अद्भुत और विस्मयजनक ऐसे नुस्खे दिये हैं जो उनके परिवार में न मालूम कब से वंश-परम्परा से चले आ रहे थे। चीनी डाक्टर अपनी चिकित्सा प्रणाली से बिना अपरेशन के एपेंडिसाइटिस का और बिना काटे हुए गेंगरीन का इलाज करते हैं। वे हड्डी टूटने का इलाज विल्लो नाम की झाड़ी की टहनियों से करते हैं। वे मुर्गी के बच्चे की चमड़ी आदमी की चमड़ी में बदल देते हैं। उन्होंने पश्चिम की इस धारणा को मिथ्या सिद्ध कर दिया है कि एक जीव की चमड़ी दूसरे जीव की चमड़ी में बदली नहीं जा सकती। इन सब क्षेत्रों में तथा शरीर विज्ञान और चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में चीनी प्रणाली के कारण

अनुसन्धान का बहुत-सा नया काम शुरू कर दिया गया है। होची प्रान्त में चीनी चिकित्सा प्रणाली के सम्बन्ध में विशेष काम किया गया है और वहाँ कुछ नयी बातें सामने आई हैं। चीनी चिकित्सा प्रणाली के अस्पताल और औषधालय जहाँ तहाँ कायम किये गये हैं और ३७ सौ चीनी प्रणाली पर काम करनेवाले डाक्टर अथवा वैद्य सरकारी चिकित्सा सेवा में नियुक्त हैं। चारों ओर निरन्तर खोज का काम किया जा रहा है। जहाँ तहाँ अनेक स्कूल उसकी शिक्षा के लिए कायम किये गये हैं। इन स्कूलों में पढ़ाने वाले अध्यापकों की संख्या १९५४ में ३० हजार थी और अब उनकी संख्या ४३ हजार पर पहुँच गई है। इनके अलावा २२ सौ अनुसंधान केन्द्रों में १० हजार कार्यकर्त्ता अनुसन्धान का काम कर रहे हैं।

इन सब का परिणाम यह हुआ है कि पश्चिमी चिकित्सा प्रणाली के जाननेवालों का ध्यान चीनी चिकित्सा प्रणाली की ओर विशेषरूप से आकर्षित हुआ। चीनी औषध-निर्माण पर भी विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। जड़ी-बूटियों की उपज को बढ़ाने के लिए बड़े पैमाने पर आन्दोलन किया जा रहा है। यह सब करने का निर्णय उस राष्ट्रीय परिषद् में किया गया जिसमें दोनों चिकित्सा प्रणालियों के विशेषज्ञ बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित थे। परन्तु यह सब कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा स्वीकार की गई नीति का परिणाम है, जिसने कि चीनी चिकित्सा प्रणाली को विशेष प्रोत्साहन देने और समाजवादी व्यवस्था के नवनिर्माण में चीनी चिकित्सा प्रणाली को अपनी पुरातन धरोहर के रूप में स्वीकार करने का निश्चय किया है। पिछले कुछ वर्षों में इस सम्बन्ध में विशेष सफलता मिली है। सबसे बड़ी आवश्यक और महत्वपूर्ण बात यह समझी गई कि पश्चिमी चिकित्सा प्रणाली के डाक्टरों का ध्यान पुरानी चीनी चिकित्सा प्रणाली की ओर सामूहिक रूप से खींचा जाय और उनके अध्ययन के लिए चीनी चिकित्सा प्रणाली के पाठ्यक्रम निश्चित किये जाएँ, जिससे कि उनको दो-तीन वर्ष में ही पुरानी चीनी चिकित्सा प्रणाली का भी पूरा ज्ञान व अनुभव प्राप्त हो जाए। बीमारी, उसके कारण और उसके उपचार आदि के सम्बन्ध में दोनों चिकित्सा प्रणालियों का ज्ञान कराना इसलिए आवश्यक समझा गया है कि इस प्रकार शिक्षित किये गये डाक्टर तुलनात्मक अध्ययन करने में सफल हो सके। परिषद् ने बहुत जोरदार अपील की है कि पुरानी चिकित्सा प्रणाली का सारा अनमोल खजाना खोलकर सबके सामने रख देना चाहिए जिसके कि बीमारियों का उपचार करने के साथ-साथ उनको समूल नष्ट किया जा सके। उनमें जनता को अधिक हानि पहुँचाने वाली निम्नलिखित बीमारियों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है, शिस्टोसोमियेसिस, मलेरिया, हुक वोरम, फिलेरियासिस, कैंसर, रक्तचाप, सिलीकोसिस और दाह। परिषद् ने उन पढ़े-लिखे मुठ्ठीभर लोगों की उस मनोवृत्ति की तीव्र भर्त्सना की जो अपनी चिकित्सा प्रणाली की उपेक्षा अथवा निन्दा करते हैं। ऊपर टूटी हुई हड्डी के जोड़ने के उपचार के सम्बन्ध में जिस झाड़ी की टहनियों का उल्लेख किया गया है उसके बारे में यह जानने योग्य है कि ल्यू-ता-फू नाम के पुरानी चीनी चिकित्सा प्रणाली के एक विशेषज्ञ ने बूआन के पुरानी चीनी चिकित्सा प्रणाली के अस्पताल में टांग की टूटी हुई हड्डियों को इस झाड़ी की टहनियों के उपचार से बिल्कुल ठीक कर दिया है। बीमार को कुछ ही महीने के उपचार और आराम के बाद अस्पताल से छुटी दे दी जाती है। छः अस्पतालों में इस उपचार से ४९ बीमारों का इलाज किया गया। इनमें नये, पुराने, आबाल-वृद्ध सभी प्रकार के बीमार शामिल है। न केवल बाँह अथवा टांग की टूटी हुई हड्डियाँ, अपितु अंगुलियों, अंगूठों, जोड़ों और पसलियों की टूटी हुई हड्डियाँ भी इस उपचार से जोड़ दी जाती है। पश्चिमी प्रणाली से इलाज करने वाले डाक्टर दो बार आपरेशन करके एक स्थान से निकालकर प्रायः दूसरे स्थान पर हड्डी बिठाने का काम करते हैं और वे प्लास्टिक अथवा स्टेनलेस स्टील आदि से काम लेते हैं। इस प्रक्रिया से शीघ्र और सफलतापूर्वक उपचार नहीं होता। बिल्लो नाम की झाड़ी की टहनियाँ इस प्रकार से काम में लाई जाती हैं कि उससे शीघ्र ही सफलतापूर्वक हड्डी जुड़ जाती है—ल्यू-ता-फू के इस उपचार का तरीका पुरानी चीनी चिकित्सा प्रणाली से लिया गया है। २० वर्षों से इससे काम नहीं लिया जा रहा था और उसकी उपेक्षा की जा रही थी। पिछले वर्ष कम्युनिस्ट पार्टी ने उसको उत्साहित किया और उसने कुत्तों पर अनेक सफल प्रयोग करके दिखाये। उसका तरीका यह है कि वह टूटी हुई हड्डियों के बीच में बिल्लो झाड़ी की टहनियाँ काट कर और छीलकर लगा देते हैं। वे टहनियाँ शीघ्र ही हड्डी में परिणत होकर उनके साथ जुड़ जाती हैं। बूआन में इसका पूरी तरह अध्ययन करने के लिए एक उप समिति नियुक्त की गई है।

कलकत्ता में अनुष्ठित अखिल भारतीय राज्य चिकित्सा-परिषद् के चतुर्थ अधिवेशन का केन्द्रीय स्वास्थ्यमंत्री श्री डी० पी० करमरकर (बाएँ) उद्घाटन करते दिखाई दे रहे हैं और (दाएँ) अधिवेशन के सभापति डॉ० ए० लक्ष्मीपति भाषण करते दिख रहे हैं।

राज्य चिकित्सा-परिषद् के अधिवेशन में प्रधान अतिथि पश्चिम बंगाल के स्वास्थ्य मंत्री डॉ० अनाथबन्धु राय (दाएँ) और पश्चिम बंगाल स्टेट बोर्ड और फेकल्टी के अध्यक्ष श्री अनाथनाथ राय (बाएँ) भाषण करते दिखाई दे रहे हैं।

केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री श्री करमरकर के स्वागतार्थ दमदम हवाई अड्डे पर एकत्र वैद्यों का समूह, जिसमें भवन के डायरेक्टर श्री बनवारीलाल शर्मा भी दिख रहे हैं।

चीन की पुरानी चिकित्सा-प्रणाली को इस प्रकार अपनी सरकार द्वारा प्रोत्साहित किये जाने के इस ब्योरे के प्रकाश में जब हम अपनी भारतीय आयुर्वेद चिकित्सा-प्रणाली के प्रति अपनी सरकार और अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों की मनोवृत्ति को देखते हैं तब दुःख और आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। देश को स्वतन्त्र हुए ११ वर्ष बीत जाने पर भी आयुर्वेद को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार की ओर से प्रायः कुछ भी किया नहीं गया और अंग्रेजी पढ़े-लिखे अंग्रेजों के मानसपुत्र आयुर्वेद को अवैज्ञानिक बताकर उसका पूर्ण बहिष्कार करने पर तुले हुए हैं। उनका यदि बस चले, तो वे आयुर्वेद का अन्त करने में कुछ भी उठा न रखें। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि चीन की पुरानी चिकित्सा-प्रणाली जो चमत्कार कर सकती है वे सब चमत्कार करने की सामर्थ्य आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली में भी निहित है। आवश्यकता वैसी ही खोज, अनुसन्धान अथवा अनुशीलन करने की है जैसी कि चीन की जनतन्त्रीय सरकार कर रही है। चीन में जिस प्रकार पुरानी चिकित्सा प्रणाली को समाजवादी व्यवस्था का अंग बना दिया गया है वैसे ही आयुर्वेद को भी हमारे देश की समाजवादी व्यवस्था का अंग बनाया जाना चाहिए। यदि राष्ट्र के नागरिकों को निरोग, स्वस्थ, हृष्टपुष्ट, बलवान् बनाना अभीष्ट है तो उसके लिए सरल, सुगम, सुलभ और प्रभावशाली चिकित्सा-प्रणाली को अपनाना ही होगा। हमारे गरीब देश के लिए पश्चिम की मँहगी चिकित्सा-प्रणाली कदापि उपयुक्त नहीं हो सकती। सेवाभावी वैद्य आयुर्वेद के सहारे इस दिशा में निश्चय ही चमत्कार करके दिखा सकते हैं। परन्तु उसके लिए सरकारी अधिकारियों और अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों की आयुर्वेद के प्रति मनोवृत्ति एकदम ही बदली जानी अत्यन्त आवश्यक है। उसके बदले बिना आयुर्वेद के लिए अनुकूल वातावरण पैदा होना कठिन ही नहीं असम्भव है।

दो शब्द हम कांग्रेसी नेताओं से भी कहना चाहते हैं। क्या वे चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का अनुकरण करते हुए आयुर्वेद को प्रोत्साहन देने की नीति नहीं अपना सकते? जब कि हर राष्ट्रीय क्षेत्र में स्वदेशी का नारा बुलन्द किया जाता है तब केवल चिकित्सा-प्रणाली के क्षेत्र में उसको भुला कर आयुर्वेद की उपेक्षा किया जाना कुछ समझ में आने वाली बात नहीं है। अब भी समय है कि कांग्रेस तथा कांग्रेसी सरकारें इस ओर समुचित ध्यान दें और जनता के प्रतिनिधि होने का दावा चिकित्सा-प्रणाली के क्षेत्र में भी पूरा करके दिखावें।

४० ए, हनुमान रोड,
नई दिल्ली।

---

**बैद्यनाथ बंग भस्म**

असंयम से पैदा होनेवाले रोगों तथा दुर्बलता को दूर कर शरीर को ताकत देती है। विशेष जानकारी के लिए वैद्य से सलाह लें।

श्री **बैद्यनाथ** आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि॰
कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

# क्या वास्तव में 'ओज' एक ही है ?

### कविराज नानकचन्द्र शर्मा, वैद्यशास्त्री

"सचित्र आयुर्वेद" में ओज के सम्बन्ध में वैद्यों ने चिरकाल से अपने-अपने विचार व्यक्त कर ओज को जीवनतत्त्व मानकर एक ही प्रकार का भेद सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

इस शास्त्रवाद पर विचार की दृष्टि से मनन किया जाए तो इस बाद का सिद्धान्त रूप समक्ष हो सकता है। वास्तव में शास्त्र के अन्दर यह स्पष्ट वर्णन है यथा—अ० ३० चरके—"तत्परस्यौजसः स्थानं तत्र चैतन्य संग्रहः"। इस उक्त पद्य में "पर" शब्द का निर्देश मूल में किया है जिसका अर्थ "परस्य—श्रेष्ठस्य" है। इससे दो ही भेदों को लक्ष करके यह कहा गया है। और धातुओं का मान वर्णन करते हुए शारीर स्थान के ७वें अ० में "तावदेव श्लेष्मलस्यौजस इति।" तो इससे ज्ञात होता है कि यह "अपर" ओज का मान है। "पर" जो श्रेष्ठ ओज हृदय में जन्म से ही गर्भ में आ जाता है वह "ओज" अष्टविन्द्वात्मक कहा है इससे दो भेद होना ही युक्त है।

श्लैष्मिक ओज के लक्षण सुश्रुत ने कहा है। यथा—

ओजः सोमात्सकं स्निग्धं शुक्लं शीतं स्थिरं सरम्।
विविक्तं मृदु मृत्स्नं च प्राणायतनमुत्तमम्॥
देहस्यावयवस्तेन व्याप्तो भवति देहिनाम्।
तदभावाच्च शीर्यन्ते शरीराणि शरीरिणाम्॥

ओज उक्त गुणों से युक्त होकर सर्वदेह का पोषण करता है परन्च यह श्लैष्मिक ओज मधुरादि द्रव्य तथा शीत द्रव्यादियों के सेवन से ही बनता है। परन्च जो—

"हृदितिष्ठति यच्छुद्धं रक्तमीषत् सपीतकम्।
ओजः शरीरे संख्यातं तन्नाशान्ना विनश्यति॥"

—यह ओज मनुष्यों के देह में पूर्व ही उत्पन्न होता है यथा—

"प्रथमे जायते ह्योजः शरीरेऽस्मिन् शरीरिणाम्।
सर्पिवर्णं मधुरसं लाक्षागन्धि प्रजायते।

आगे कहा है—

- यत्सारमादौगर्भस्य यत्तद्गर्भरसाद्रसः।
संवर्तमानं हृदयं समाविशति यत्पुरा।

इससे यह स्पष्ट है कि यहाँ पर ओज गर्भ का आरम्भक द्रव्य है। यह माता के रक्त (आर्तव) से ही गर्भ में आता है और पिता के वीय में होने वाले जीवाणु से इसका मिलाप हो जाने पर इसके वर्ण में "ईषत् रक्त तथा पीत वर्ण" होता है यह अष्ट विन्द्वात्मक ओज का ही वर्णन है। यही ओज अष्टम मास में होनेवाले गर्भ के समय कभी माता में तथा कभी पुत्र (गर्भ) में संचार करता है। यदि ओज माता में ही रह जाय तो मृत गर्भ होता है। कहा भी है यथा—

"अष्टमे ओजः सञ्चरति मातापुत्रौ मुहुः क्रमात्।
तत्र जातो न जीवेत जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः॥ अ० हृ०

इससे ज्ञात होता है कि ओज आरम्भिक द्रव्य है। सुश्रुत ने भी कहा है—यथा—"अष्टमेऽस्थिरी भवत्योजः। तत्रजातश्चेन्न जीवेन्निरोजस्त्वान्नैऋतभागत्वाच्चेति"। सुश्रुत अ० ३। इसी ओज को गर्भ का सार कहा है। इसके अवयवनाश हो जाने पर देह का नाश हो जाता है। परन्च अर्धाञ्जलि परिमित ओज का मधुमेह आदि रोगों में क्षय हो जाने पर भी मनुष्य मरता नहीं इससे यह सिद्ध होता है कि ओज सोमात्मक तथा अग्न्यात्मक दो प्रकार का माना गया है। कई इस विवाद के लेखकों ने 'विन्दु' शब्द को भ्रमयुक्त कह कर उसके स्थान पर "तिन्दवः" ऐसा होना चाहिए कहा है और मुद्रण की त्रुटि माना है और 'तिन्दवः' का अर्थ कर्ष कहा है। यह ठीक है कि कर्ष का पर्यायवाचक तिन्दुक है परन्च यहाँ "विन्दु" शब्द स्पष्ट रूपेण वर्णित है। यह विचारणीय है कि यदि आठ कर्ष ओज को हृदयाश्रित मान लिया जाय तो उसमें स्थानाभाव के कारण इतनी मात्रा में ओज का होना असंगत प्रतीत होता है। सर्वदेह व्यापि अर्धाञ्जलि मान की ओज श्लैष्मिक ओज है इस से अष्टविन्द्वात्मक जो वास्तव विन्दु स्वरूप ही है वही परओज है। अष्टाङ्ग हृदय में "शुद्ध लोहित पीतकम्। यन्नाशे नियतं नाशो यस्मिंस्तिष्ठति तिष्ठति॥" कहा है।

तन्त्रान्तर में भी कहा है—

"प्राणाश्रयस्यौजसोऽष्टौ विन्दवो हृदयाश्रयाः।

अष्ट विन्दु प्रमाणं तदीषद्रक्तं सपीतकम् ।
अग्नि सोमात्मकत्वेन द्विरूपं वर्णितं च तत् ''।।

इससे दो प्रकार के ओज को दर्शाया अर्थात् पर, अपर वहाँ "अञ्जलि परिमाणमपरम्, अल्प प्रमाणं तु परम्" है। पर तथा अपर विशेषण तभी सार्थक होता है जब दो भेद स्वीकार किये जायँ। एक रूप होने पर यह परादि विशेषण संगत नहीं हो सकते।

अर्धाञ्जलि परिमित ओज का आधार हृदयाश्रित धमनियाँ हैं और इसी ओज का प्रमेह में क्षय होता है आठ बिन्दु परिमित ओज का क्षय नहीं होता। क्योंकि इसके अवयव नाश से भी मृत्यु हो जाती है। प्रमेह में ओज-क्षीण व्यक्ति जीवित ही दृष्टिगोचर होते हैं। जो ओज रस में कहा है यथा--"रसश्चौजः संख्यातः" इति, उसे भी सर्वधातुसार ओज ही कहेंगे। कोई इसे उपधातु कहते हैं। धातु धारण तथा पोषण योग से होता है परञ्च ओज देहधारक होने पर भी पोषक नहीं है अतः इसे धातु नहीं माना। कोई वैद्य शुक्र-विशेष को ओज मानते हैं परञ्च शुक्र मन को प्रसन्न करता है किन्तु ओज नहीं करता। जो सर्वधातुसार ओज को मानते हैं वे रसादि सार रूप होने से रसादि से भिन्न ही ओज को मानते हैं। यथा चोक्तम्—"भ्रमरः फलपुष्पेभ्यो यथा संचीयते मधु। तद्वदोजः शरीरेभ्यो गुणैः संह्रीयते नृणाम्।" यहाँ शरीर शब्द से धातुओं का और गुण शब्द से सारभाग का ग्रहण किया गया है।

जो शुक्र जन्य ओज मानते हैं उनके मत में अष्टम धातु ओज होना माना है इस उक्ति के अतिदेशार्थ निम्न वाक्य निर्देश किया गया है—"रसदीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेज स्तत् खल्वोजः" । इति

अष्टांग संग्रह की टीकाकार लिखते हैं—

दोषाणां प्राकृतं वैकृतं च स्वरूपमुक्तम्।
ते च दोषाः समा अप्योजसाविहीनं देहं समाहयितुमशक्तः"
इति।।

उक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि आयुर्वेद के सभी ग्रन्थों और टीकाकारों की दृष्टि में ओज देह में अत्यन्त महत्त्व का पदार्थ है।

इसकी उत्पत्ति आहार-रस से ही होती है और ओज सप्तधातुसार रूप है। यह शीतवीर्य, कुछ रक्त तथा पीत, स्निग्ध, पिच्छिल और तरल द्रव्य है। इसका प्रधान स्थान हृदय है। यह देह का धारक है, यथा प्रमाण और यथायु देह की वृद्धि करता है। देह में स्फूर्ति का हेतु है। तथा देह को रोगक्षम बनाता है। इसकी न्यूनता से शारीरिक कार्यों में क्षति होती है। इसका क्षय होने से मरण हो जाता है। ओज दो प्रकार का--पर, अपर होता है। पर ओज हृदय में अष्टविन्दुमात्र है। इसकी किञ्चित् न्यूनता से मृत्यु होती है। अपर ओज धमन्याश्रयी है और अर्धाञ्जलि मात्र है। इसकी क्षय (कमी) मधुमेह में मूत्र द्वारा ही होती है।

पाश्चात्य मतानुसार ओज का स्वरूप और कार्य विज्ञान की दृष्टि से आधुनिक डाक्टरों ने ओज के निम्न अर्थ दर्शाये हैं। यथा—पोषणिक ग्रन्थिसार (Pituitrin), जीवतिक्ति (Vitamin), शुक्लि (Albumin), मधुजन (Glycogen), वृषणसार (Internal secretion of the testicles), वीजकोषसार स्त्रियों में (Internal secretion of the ovary), अष्ठीलासार (Prostatic secretion), भास्वर (Phosphorus) इत्यादि। इससे भिन्न ओज से कई बार जीव-शक्ति (Vitality) का भी ज्ञान करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उक्त कल्पनाओं से साधारण सत्यांश अवश्य है। परन्तु ओज की सर्व कल्पना किसी एक शब्द से दिखाई नहीं देती। पाश्चात्य-शास्त्र के अनुसार ओज के लिये एक प्रतिशव्द, जो उसके सब कार्यों का निर्देशक हों, उसके दिखाने में न्यून से न्यून ओज की स्थिति में अशक्य है।

**उपसंहार**--मैंने अपने उक्त लेख में जो कुछ वर्णन किया है वह आयुर्वेद के सिद्धान्तों के अनुसार है। वास्तव में विचार की दृष्टि से देखा जाय तो यह प्रत्यक्ष अनुभव में आ जायगा कि ओज का क्षय अभिघात क्रोध, शोक, ध्यान, श्रम तथा क्षुधा से होता है। हृदय से प्रेरित होकर ओज धातुवाही स्रोतों से निकलता है तब वह व्यक्ति अपने वास्तविक कार्यों से वंचित हो जाता है। जैसे कई बार समाचार पत्रों में पढ़ने में आया कि अमुक व्यक्ति अर्थात् वकील की मृत्यु अदालत में हो गई, डाक्टर ने इस रोग को "हार्ट फेलियर" माना है। युगपत् काल में अकस्मात् हृदय की गति का अवरोध किस कारण से हुआ इस बात का ज्ञान बिना अनुभव के होना अत्यन्त कठिन है। वह बिना "पर-ओज" के नहीं होता।

# सत्कार्यवादः

वैद्य श्रीनिवास आयंगर

(पूर्वानुवृत्तिः)

इतःपरमायुर्वेदे कः पक्षः समाश्रीयत इति निरूपयामः। चरकसंहितायां सूत्र स्थाने '"विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते" इति ; तथा काश्यपसंहितायां सूत्रस्थाने "धुतुस्थूणात्मवैषम्यं तद्दुःखं व्याधि संज्ञितम्। धातुस्थूणात्मसाम्यन्तु तत्सुखं प्रकृतिश्च सा ॥" इति च वाक्यमुपलभ्यते। विषमावस्थाः त्रिधातव एव व्याधि शब्देनाभिलप्यन्ते। तद्वदेव साम्यावस्था स्त एवारोग्यम् इति व्यपदिश्यन्ते। तथा च त्रिधातूनामेव वैषम्य--साम्याख्यावस्थाभेदाबलंबनोऽयं व्याधिः–आरोग्यमिति च व्यवहार इति फलितम्। एकस्यैव त्रिधातु द्रव्यस्य अवस्थाभेदावलंबनः, विविधव्यवहारः सत्कार्यवादमेवादृतं व्यनक्ति तराम्। तत्रापि न सांख्योक्तं, अपितु श्रीभगवद्रामानुजाचार्य शिक्षितं अवस्थाभेदपक्षमेवेति नेदं तिरोहितम्।

ज्वरस्तावदष्टविधः। अष्टधा विभिन्ना ज्वरास्सर्वेऽपि मिथस्सजातीया एव। प्रमेहो विंशति प्रभेदः। विंशतिविधा अपि प्रमेहाः परस्परं सजातीया एव। परन्तु ज्वरः प्रमेहश्च मिथो विजातीयौ। अतः एकस्मादेव त्रिदोष द्रव्यात् नानाविधास्सजातीया विजातीयाश्च व्याधयस्संभवन्ति। त्रिदोषेभ्यः नानाविधा व्याधय एव समुत्पद्यन्ते। घटः शरावो वा--वस्त्रादिकं वा नोत्पद्येरन्--मृत्तन्तु प्रभृतिभ्यस्तु ते जायेरन्। सजातीयानां विजातीयानाञ्च विविधरोगाणां उचिताश्चिकित्सा प्रभेदाः आयुर्वेदिकैर्महर्षिभिः सम्यङ्ङनिरूप्यन्ते।

आयुर्वेदे सत्कार्यवाद एवांगी क्रियत इति पक्षोऽयम्,

"नांकुरोत्पत्तिरबीजात्"

"नान्यस्माद्बीजादन्यस्योत्पत्तिः" इति चरकसंहितायां सूत्रस्थाने ११ अध्यायस्थं वाक्यद्वयं स्पष्टयति। बीजादन्यतः अंकुरस्योत्पत्ति नं। माषबीजात् आढकस्योत्पत्ति नं संभवेत्। माषबीजात् माषस्यैवांकुरमुत्पद्यते। ततः मूलम्-पत्राणि-शाखाः–पुष्पाणि-फलानि च क्रमेणोत्पद्यन्ते। अन्येष्वप्योषधिविशेषेष्वेवमूह्यम्। ओषधीनां शाखाः-नैकविधाः, तास्सर्वाः सजातीया एव। पुष्पाणि बहूनि समुपलभ्यन्ते, तानि सर्वाण्यपि सजातीयान्येव। परन्तु शाखानां पुष्पाणाञ्च मिथो वैजात्यमेव। एकस्मादेव बीजात् यथा सजातीया विजातीयाश्च शाखा-पुष्प-फल प्रभृतयो जायन्ते, तथैव एकस्मादेव त्रिधातु द्रव्यात्, संजातीया विजातीयाश्च विविध व्याधयो जायन्ते। द्रव्यैक्यं-अवस्थाभेदञ्च-आश्रित्य व्यवहारोऽयं सुप्रतिष्ठितो भवति।

इत्थं उपादनद्रव्यस्यैव उपादेयवस्तुरूपेण परिणामे अवश्यं केनचिन्निमित्तेन भवितव्यम्। आयुर्वैदिकग्रंथेषु तादृशानि निमित्तानि तत्तद्व्याधिविशेष निरूपणावसरे विस्तरशः प्रतिपादितानि सन्ति। चरकसंहितायाम्--"अधिशेते यथा भूमिं बीजं काले च रोहति।" अधिशेते तथा धातु दोषः काले च कुप्यति ॥" इति वचनं दृश्यते। अत्र "काले" इति पदं निमित्तकारणकलापस्योपलक्षणं सत् त्रिधातूनां समुचित निमित्तकारण समवधान एव व्याध्याख्यावस्थान्तरप्राप्ति द्रढयति तराम्।

सुश्रुतसंहितायामपि बहुत्र विषयोऽयं सुष्ठु निरूप्यते। सुश्रुते सूत्रस्थाने "सर्वेषाञ्च व्याधीनां वातपित्तश्लेष्माण एव मूलम्, तल्लिङ्गत्वात्-दृष्टफलत्वात्–आगमाच्च। यथा हि कृत्स्नं विकारजातं विश्वरूपेणावस्थितं सत्त्वरजस्तमांसि न व्यतिरिच्यते--एवमेव कृत्स्नं विकारजातं विश्वरूपेणावस्थितमव्यतिरिच्य वातपित्तश्लेष्माणो वर्तन्ते"इत्यादि वाक्य जातमात्रावधानमर्हति। अत्र "मूलं" इति पदं "उपादानकारणं" इत्यस्मिन्नेवार्थे वर्तते। तल्लिङ्गत्वादित्यादि हेतुत्रयमवश्यावधेयम्। सत्कार्यवादाङ्गीकार एवेदमुपपद्यते। "तल्लिङ्गत्वात्" इत्यस्य "वातादिलिङ्गत्वात्" इति व्याख्यानम्। वात धातुःयादृशस्वभावविशिष्टः, तादृशस्वभावविशिष्टा एव वातजरोगा दृश्यन्त इति तदर्थः। "कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते" अतो वातजरोगाणां वातधातुरेवोपादानकारणमिति सिद्धम्--एवमेवान्यत्रापि। "दृष्टफलत्वात्" इत्ययं द्वितीयो हेतुः। भेषजप्रयोगाणां फलस्य प्रत्यक्षमुपलभ्यमानत्वादिति तदर्थः। नहि

दृष्टेऽनुपपन्नं नाम" वातजरोगेषु वातहराणां औषधानां उपयोगे न व्याधि शान्तिः प्रत्यक्षानुभवसिद्धा हि सर्वेषाम्। अतो वातादि धातव एव तत्तज्जन्य रोगाणामुपादानमितिनिराबाधं व्यवस्थाप्यते। "आगमाच्च" इति तृतीयं कारणम्। व्याधीनां तत्कारणानाञ्च निरूपणे प्रवृत्ता आगमा अपि इममेवार्थं व्यवस्थापयन्तीत्यस्यार्थः।

समावस्थानां त्रिदोषाणां व्याधिशब्देन व्यवहारो न क्रियते। तेषामेव विषमावस्थानां व्याधिपदेन व्यवहारो भवति। अत इदं सिद्धम्——आरोग्यं-व्याधिः-इतीदमुभयमपि——सम-विषमावस्थाः त्रिदोषा एवेति। त्रिदोषेभ्योऽन्यः व्याधिर्नाम पदार्थो नास्तीति सुश्रुते स्पष्टमभिधीयते। "यथा हि कृत्स्नं विकारजातं . . ." इति पूर्वोक्त वाक्ये दृष्टान्तपूर्वकमिदं निपुणतरं निरूप्यते। अत्र "कृत्स्नं विकारजातम् व्यतिरिच्य वातपित्तश्लेष्माणो वर्तन्ते" इत्युच्यते। अत्र "अव्यतिरिच्य" इति पदं नितरामर्थपुष्टिमत्। वातपित्तश्लेष्मणामेव अवस्थाभेदनिबंधनः व्याध्यादिपदेन व्यवहार इति इदं तत्त्वं तेन पदेन विशदी क्रियते। "व्यतिरिच्य" इत्यस्य पदस्य "पृथग्भूय" इत्यर्थः। "अव्यतिरिच्य" इत्यस्य "अपृथग्भूय" इत्यर्थः। "न व्यतिरिच्यन्ते" इति——न पृथग्भवन्तीत्यर्थः" इति डल्हण व्याख्याग्रंथोऽत्रानुसन्धानमर्हति। अतः त्रिदोषा एव व्याधय इतीदं कण्ठोक्तं भवति। अस्यैवार्थस्य सुष्ठु अवधारणार्थं सत्त्वरजस्तमो विकारस्य (तदीयावस्थान्तरात्मकस्य) विश्वस्य सत्त्वरजस्तमोरूपगुणत्रयाव्यतिरिक्तत्वं (अपृथग्भूतत्वं) सिद्धमेव दृष्टान्ती क्रियते। सत्त्वरजस्तमोभ्योऽतिरिक्तं न किञ्चिदपि प्रपञ्चेऽस्मिन्नस्ति तथापि प्रपञ्चोऽयं न त्र्यात्मकत्वेनैव दृश्यते। अनन्तकोटि प्रभेदाः पदार्थाः मिथो विलक्षणा उपलभ्यन्ते। तद्वदेव त्रिदोषाणां व्याधीनाञ्च स्वरूपशोधनं कर्तव्यमिति यावत्। अत्र व्याधीनां "विकार" पदेन, त्रिदोषाणां "प्रकृति" पदेन च व्यवहारः अवस्थाभेदवादं दृढी करोति तराम्।

अत्रैव "दोषधातुमलसंसर्गादायतन विशेषान्निमित्ततस्त्वेषां विकल्पः" इत्यनन्तर वाक्यमस्ति। दोषाणां त्रयाणामेव सतां अवस्थान्तररूपा व्याधयः परं कथं असंख्याता दरीदृश्यन्ते? इति शंकायाः समाधानं अनेन वाक्येन प्रतिपाद्यते। प्रणिनां शरीरेषु हि दोषाः-धातवः-मलानि-इत्येवं रूपाणां वस्तूनां मिथः संसर्गात् विभिन्ना व्याधयो जायन्ते। स्थानविशेषाधीनः निमित्तविशेषाधीनश्च व्याधीनां भेदः समुपजायते इति उक्त वाक्यस्यार्थः। अत्र "निमित्ततः" इति पदं विशेषेणावधातव्यम् "वातपित्तष्श्लेष्मभिरेव" इति तदर्थः।

पूर्वं "वातपित्तश्लेष्माण एव मूलम्" इति व्याधीनामुपादानत्वेन निर्दिष्टानां त्रिदोषाणामेव अत्र निमित्तत्वेनापि निर्देशः क्रियते। नानेन अन्यथा भ्रमितव्यम्। त्रिदोषाणां निमित्तत्व कथनेन उपादानत्व निषेधो न क्रियते। पूर्वोत्तर वाक्यसंदर्भपरामर्शेन्न इदं स्ववगमम्। एवं चेत् किमर्थं त्रिदोषाणां निमित्तत्वमुच्यत इति निरूपणीयम्। तत्रेदं तत्त्वम् :——त्रिदोषाणां व्याध्याख्यावस्थान्तर प्राप्तौ अवश्यमेव निमित्तं किञ्चिदपेक्षितम्। तदनपेक्षयैव तेषां व्याध्यात्मना परिणामे व्याधीनां सार्वकालिकत्वावश्यंभावः नैसर्गिकत्वं च प्रसज्येत। नतु तथास्ति। अतो नैमित्तिकत्वं तावद्व्याधीनां सर्वसंप्रतिपन्नम्। दोषधातुमल संसर्गः-आयतन विशेषः इति निमित्त द्वयं पूर्वमुक्तम्। तद्वदेव त्रिदोषाणां परस्पर संबंध विशेषाधीनेषु व्याधिविशेषेषु त्रिदोष एव निमित्तमुपादानञ्च भवन्ति। इममेवांशं स्पष्टीकर्तुं "निमित्ततश्च" इत्युक्तम्।

इत्थं त्रिदोषा एव "व्याधिः" इति निर्णीयमाने (व्याध्याख्यस्योपादेयस्य त्रिदोषा एव उपादानमिति सिद्धान्ति ते) सप्तधातुभिः व्याधीनामभिलापः कथं युज्यते इति शंकायाः समन्तरवाक्यं प्रत्युत्तरं ददाति :——

"दोषदूषितेष्वत्यर्थं धातुषु संज्ञा क्रियते" इति। न धातुषु व्याधयः प्रजायन्ते। सप्तधातवो व्याधीनां नोपादानमिति यावत्। त्रिदोषा एव तु तथा। एतैः त्रिदोषैः सप्तधातुष्वन्यतमस्य व्याघाते क्रियमाणे, तदधीनान् व्याधीन् तद्धातुनाम्ना व्यवहरामः इत्येतावत्। तद्यथा—— दहनशक्तिस्तेजस एव स्वाभाविकी। तथापि तत्संसर्गवशात् अभि तप्तस्य अयसः——ताम्रस्य अन्येषाञ्चैवम् विधानां लोहानां, आज्यतैलादीनां द्रवद्रव्याणाञ्च दहनशक्तिः समुपजायते। तत्तद्वस्त्वन्तः प्रविश्य तेजः पदार्थ एव दहतीति यावत्। तथापि तथाविधे दहने——नान्तरीयक द्रव्याणां अयस्ताम्र तैलाज्यादीनां साधनत्वेन व्यवहारस्सर्वसंप्रतिपन्नो लोके वर्तत एव। तद्वदत्रापि द्रष्टव्यम्।

इमं विषयं सम्यङ्गनिरुपयति एकादशं सूत्रम्। त्रिदोषा एव व्याधयश्चेत्, त्रिदोषमय गात्रवतां सर्वेषां प्राणिनां नित्यरोगिता प्रसज्यते; त्रिदोषाद्विलक्षणा एव व्याधयश्चेत्—— "तल्लिगत्वाद्दृष्टफलत्वादागमाच्च" इति प्रदर्शितं कारण

त्रितयं न संगच्छेत ; इति शंका द्वयं समुत्थापदेवैतत्सूत्रं प्रवर्तते :--

"भूयोऽत्रजिज्ञास्यं--किं वातादीनां ज्वरादीनाञ्च नित्यस्संश्लेषः परिच्छेदो वा ? इति । यदि नित्यःसंश्लेषस्स्यात् तर्हि नित्यातुराः सर्व एव प्राणिनस्युः ; अथाप्यन्यथा वातादीनां ज्वरादीनाञ्चान्यत्र वर्तमानानामन्यत्र लिंगं न भवतीति कृत्वा यदुच्यते वातादयो ज्वरादीनां मूलानीतितन्न---अत्रोच्यते ; दोषान् प्रत्याख्याय ज्वरादयो न भवन्ति अथ च न नित्यस्संबंधः । यथाहि विद्युद्वाताशनिवर्षाण्याकाशं प्रत्याख्याय न भवन्ति, सत्यप्याकाशे कदाचिन्न भवन्ति, अथ च निमित्ततस्तत एवोत्पत्तिरिति । तरंगबुद्बुदादयश्चोदकविशेषा एव । वातादीनां ज्वरादीनां च नाप्येवं संश्लेषो न परिच्छेदः शाश्वतिकः, अथ च निमित्तत एवोत्पत्तिरिति" इत्यत्रस्थ सूत्राक्षराणि । "दोषान् प्रत्याख्याय व्याधयो न भवन्ति ; अथ च न नित्यस्संबन्धः" इतीदं समाधानवाक्यम् । त्रिदोषा एव व्याधयः, न ततो भिन्नाः । तथापिसर्वेषां नित्यरोगिता न प्रसज्यते इत्यस्य वाक्यस्यार्थः । इमं विषयं द्वाभ्यां दृष्टान्ताभ्यां विशदयति महर्षिः । गगने मेघोऽस्ति । तस्मिन् कदाचित् विद्युत्--स्फूर्जथुः--इत्येते प्रजायन्ते वर्षश्च भवति । वर्षमन्तरेणापि विस्फूर्जथु विद्युद्भ्यां विनापि च मेघमात्रस्योपलब्धिरनुभवसिद्धा सर्वेषां । मेघाभावे तु वृष्टिः स्फूर्जथुः विद्युत् इतीमानि न कथं च नोपलभ्येरन् । अतोऽन्वयव्यतिरेकाभ्यां इदं निर्णीयते मेघस्यैवावस्थान्तरभूताः वर्ष-विद्युत्स्फूर्जथु प्रभृतय इति । तावता मेघसत्त्वकाले सर्वदा विद्युदादीनां सद्भावो न नियतः । इत्थमेव त्रिदोषाणां व्याधीनाञ्च इति । ननु,प्रकृत्या शीतानामपां (तद्रूपस्य मेघस्य) प्रकृत्या दाहात्मक वैद्युताग्निं प्रति कथमुपादानत्वं महर्षिणा दृष्टान्ती क्रियते ? न खलु अत्यन्त विजातीययोः उपादानोपादेयभावो युज्यत इति चेत्-उच्यते । वेद प्रतिपाद्यं अप्रत्याख्येयं वस्तुतत्त्वमेव महर्षिणा प्रतिपाद्यते । नह्यन्यथा कदाचिदपि किमपि क्वापि वदेयुरेते वेदैकशरणास्तत्त्वज्ञानिनः । वेदे हि वैद्युतोग्निः "अपां न पातृ" (जलस्य पौत्रः) इत्युच्यते । "समन्यायन्त्युपयन्त्यन्यास्समानमूर्वं नद्यः-पृणन्ति । तमूशुचिꣳशुचयोदीदिवाꣳसमयां तपातं परितस्युरापः" (तै-सं २-५।।)

इत्येवं विधासु बह्वीषुऋक्षु अपां एकान्तरितकार्यत्वेन (उपादेयत्वेन) वैद्युतोग्निर्निर्दिश्यते । पञ्चीकरणेन भिन्नस्संसृष्टेषु पञ्चभूतेषु सर्वत्र सर्वमस्ति सामग्रीपौष्कलयवशात्तु क्वचित्कस्यचिदाविर्भावोऽन्यत्र तु न,इत्येतावत्तत्त्वम् । अतो वैद्युताग्नेर्मेघाख्य जलोपादेयत्वं महर्षिप्रोक्तं वेदसंप्रदाय सिद्धं सूपपन्नमेव । द्वितीयो दृष्टान्तः--जले (तटाकादिस्थे) तरङ्गबुद्बुदफेनादय उपलभ्यन्ते । सर्वेप्येते जलरूपा एव । नान्ये । जलादन्यत्र नैतेषां संभवश्शक्यशंकः । अथापि एतैर्विनाजलमात्रं पृथक्तयाप्युपलभ्यते । जले सति तरंगबुद्बुदादिभिरवश्यमेव भाव्यमिति न निर्बंधः इति यावत् । इत्थमेव त्रिदोषाणां व्याधीनाञ्च मिथः संबन्ध इति ।

अत्र---स्फूर्जथु विद्युद्वर्षाणां मेघोनिमित्तमिति, तरंगबुद्बुदफेनादिनां जलं निमित्तमिति तथा व्याधीनां त्रिदोषतिमित्त-मिति च सिद्धान्तितम् । यथा जले केनचिदभिघातविशेषेण तरंगबुद्बुदानामुत्पत्तिः, एवमेव त्रिदोषेष्वपि केनचिदभिघातविशेषेण व्याधयः प्रादुर्भवन्तीति तात्पर्यम् । तस्मात् त्रिदोषा एव व्याधीनामुपादानकारणमितीदं निपुणतरं प्रतिष्ठापितम् ।

अयमेव वेदसंप्रदायागतः महर्षिभिरनुसृतः सत्कार्यवादः अर्वाचीनैरपि आयुर्वेदग्रंथकारैः अविकल्पानुश्रियते । अष्टांगसंग्रहे सूत्रस्थाने :--

"दोषा एव हि सर्वरोगैककारणम् । यथैव शकुनिः सर्वतः परिपतन् दिवसं स्वांछायां नाति वर्तते ; यथा वा कृत्स्नं विकारजातं वैश्वरूप्येण व्यवस्थितं गुणत्रयमव्यतिरिच्य वर्तते । तथैवेदमपि कृत्स्नं विकारजातं दोषत्रयमिति । यथा च विद्युद्वर्षादयो नभसि भवन्ति नत्ववश्यं, निमित्ततस्त्ववश्यमपि---तरंगबुद्बुदादयश्चांभसि-तथा दोषेषु रोगाः"

इति वाक्यजातं इममेवार्थं विशदी करोति । शब्दतोऽर्थतश्च अष्टांगसंग्रह-सुश्रुतसंहितयोस्तद्रूप्यमिह निरूपकैरनुभाव्यम् ।

काश्यपसंहितायामपि शारीरस्थाने जातिसूत्रीयशारीराध्याये चतुर्थं सूत्रम् :---यथा च पुष्पमध्ये फलमनिवृत्तं सूसूक्ष्ममस्ति---न चोपलभ्यते,यथाचाग्निर्दारुषु सर्वशनः प्रयत्नाभावान्नोपलभ्यते, तथा स्त्रीपुंसयोः शोणितशुक्रे कालावेक्षे स्वकर्मा वेक्षे च भवतः, षोडशवर्षयोर्हि शोणितशुक्रयोर्मध्ये प्रभवतः, अर्वागपि यदाहारविशेषादारोग्याच्च पूर्णे भवत इति परिषत्" इति ।

अत्र पुष्पफलयोः, अग्निदार्वोः, स्त्रीपुंसशोणितशुक्रयोश्चोदाहरणं प्रदर्शितमस्ति । कालविशेषस्य निमित्तत्वप्रतिपादन परमिदं वाक्यविषयविशेषे स्वकर्म विशेषस्य निमित्तत्व प्रतिपादनपरञ्च । उपादानोपादेययोः स्वरूपैक्यं अवस्थास्वेव भेद इति सत्कार्यवादसारस्तु सुस्पष्टमंगीक्रियतेऽत्रापि ।

अतो रामानुचार्यैः प्रतिष्ठापितः सत्कार्यवाद एव सकल श्रुतिस्मृत्यभिमतः---आयुर्वेदकारैरन्यैश्च प्रमाणशरणैरभ्युपगतः वास्तविकश्चेति --- शिलालिखितमेतत् ।

फण्ड ऑफिस, अग्राहरम्
तन्जौर ।

# रुदन्ती

## Capparis Moonii

**आचार्य श्री विश्वनाथ द्विवेदी बी० ए० आयुर्वेदशास्त्राचार्य**

इन दिनों 'रूद्रवन्ती' नामक औषधि के सम्बन्ध में विभिन्न स्थानों में पर्याप्त चर्चा सुनाई दे रही है और ऐसा कहा जाता है कि रुदन्ती क्षय रोग की महौषधि है। इसके सेवन से फेफड़ों के भीतर के व्रण भर जाते हैं और एक्स-रे लेने पर उन व्रणों के चिह्न भी नहीं दिखायी देते। अतएव, इसका परिचय प्रस्तुत करना अत्यावश्यक प्रतीत होता है। पिछले कुछ दिनों से अंग्रेजी पत्रों में इसके सम्बन्ध में पर्याप्त चर्चा हुई है और लोगों का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुआ है। विशेष तौर पर बम्बई के डा० कृष्णमूर्ति ने जब से रुदन्ती विषयक अपने अनुभव पत्रों में प्रकाशित किए हैं तब से अन्वेषकों की रुचि इस दिशा में और भी बढ़ती गयी है और इस सम्बन्ध में विगत पाँच वर्षों से अन्वेषण जारी है।

**नामकरण**--यह औषधि शास्त्रीय रुदन्ती नहीं है। इसका नाम भी कल्पित है और केवल आकर्षण के लिए ही दिया गया है। इसका प्रचार पश्चिमी घाट, कोंकण और दक्षिण कनारा में चिरकाल से है। केरल तथा कनारा के वैद्य इसे 'रूद्रवन्ती' नहीं कहते। कनाडी भाषा में इसे 'लूथी-काई' (Luthi-kai) कहते हैं। इसका दूसरा नाम छोटी-काई या 'छूटी-काई' भी है। कोंकण में इसे 'मरगादुधट' (MarjaDudhaut) कहते हैं। यह वहाँ के बाजारों में बिका करती है। इसका शास्त्रीय नाम ज्ञात नहीं है। निघण्टुओं में इसको 'तुवरक' भेद मात्र कहा है। पूरा विवरण प्राप्त नहीं होता। आधुनिक वनस्पति-विज्ञान की पुस्तकों जैसे 'इण्डियन मेडिसिनल प्लांटस आफ इण्डिया' में भी इसका उल्लेख नहीं है। डाइमक, नादकरनी आदि के निघण्टुओं में भी इसका नामोल्लेख तक नहीं मिलता। हाँ, टैलेट्स फ्लोरा आफ बम्बई (Tallet's flora of Bombay) में इसका चित्र मिलता है। किन्तु शास्त्रीयद्रव्यों के परिचय में रुदन्ती का जो परिचय है, वह इससे नहीं मिलता। यह नाम डा० कृष्णमूर्ति ने, ज्ञात होता है स्वयं दिया है। क्यों दिया है, इसका उन्होंने पत्र-व्यवहार करने पर उत्तर देने का कष्ट उठाना भी उचित नहीं समझा। अतएव इसकी जानकारी के लिए विभिन्न स्थानों से साहित्य-संग्रह करना पड़ा। ऐसा ज्ञात होता है कि क्षय में रूद्रवन्ती का अधिकाधिक प्रयोग होने से ही वे इसकी ओर अधिक आकर्षित हुए होंगे और कल्पित नाम रख लिया होगा।

पाकिस्तान के डा० एस० मेंहदीहसन पी० एच० डी०, सदस्य, कौंसिल आफ रिसर्च आफ वायोकेमिष्ट्री, कराँची ने बड़े प्रयत्न से डा० कृष्णमूर्ति से इस औषधि के सम्बन्ध में सम्पर्क स्थापित किया। पुनः दक्षिण में जाकर उन्होंने केरल-कोंकण पश्चिमी घाट में इसके वृक्ष को स्वयं देखा और देखने के बाद पत्र-पुष्प-फलादि का विवरण उन्होंने दिया है, जो अध्ययनात्मक दृष्टिकोण से उचित तथा संतोषजनक है। नाम का पता न लगने पर पहचान के लिए एलफिंस्टन कालेज, बम्बई के वनस्पति-शास्त्र के अध्यापक श्री कूपर से सहायता ली गयी। पुनः इसकी पुष्टी, सेंट जेवियर कालेज, बम्बई के वोटेंनिकल म्युजियम के प्रधान डा० फादर सन्तापू के पास जाकर की गयी। पुनः इसकी प्रामाणिकता के बारे में सर एडवर्ड सेलिसबरी, डायरेक्टर न्यू गार्डन, लन्दन को भेजकर पूछा गया और यह उनके नमूने Capparis moonii से ठीक मिला। इतना प्रयत्न इसलिए करना पड़ा कि किसी भी मान्य आधुनिक पुस्तक में इसका नाम न था। रूद्रवन्ती नाम कल्पित है और शास्त्रीय रूद्रवन्ती का रूप वास्तव में भूसर्पणशील एक सामान्य क्षुप मात्र है--अतः इसमें कोई समता नहीं है। यथा--

चणपत्र समं पत्रं क्षुपं चैव तथाम्लकम्।
शिशिरे जलविन्दूनां स्रवति इति रुदन्तिका॥

—शोढल

स्याद्रुदन्ती स्रवत्तोया संजीवन्यमृतस्रवा।
रोमांचिका महामांसी चणपत्री सुधास्रवा॥

—राजनिघण्टु

**गुण—**

रुदन्ती कटुतिक्तोष्णा क्षयक्रिमि विनाशिनी।
रक्तपित्त कफश्वासे मेहहारि रसायनी।।
पर्पटादि वर्ग——**राजनिघण्टु**

अर्थात्——चने के पत्र के समान इस क्षुप के पत्र होते हैं। यह क्षुपजातीय है और समग्र क्षुप भू पर प्रसरित होता है। स्वाद में यह क्षुप अम्ल रस का होता है। शिशिर काल में इसमें से जल के बून्द स्रवित होते हैं। इस प्रकार रुदन करके जल-बिन्दुओं के आंसू के रूप में स्रवित होने के कारण इसे रुदन्ती——रुदन्तिका कहते हैं। इसके स्रवतोया, चणपत्री, सुधास्रवा, संजीवनी, अमृतस्रवा, रोमांचिका, महामांसी आदि पर्याय हैं। राजनिघण्टुकार ने इसे पर्पटादि वर्ग में सम्मिलित किया है।

**गुण—**रुदन्ती स्वाद में कटु-तिक्त तथा उष्णवीर्य होती है। क्षय रोग-कृमिरोग, रक्तपित्त, कफ के रोग, श्वास तथा प्रमेह को दूर करने वाली है।

**इतिहास——**भारतीय चिकित्सक औषधि के रूप में इसका व्यवहार चिरकाल से करते आ रहे हैं। समुद्र के किनारे की भूमि में यह औषध पायी जाती है। कोंकण व केरल के वैद्य इसका उपयोग चिरकाल से कुष्ठ-चिकित्सा में करते आ रहे हैं। कोंकण के बाजारों में यह औषधि प्राय: ही बिकने के लिए आती है और इसके पक्के फलों की अपेक्षा कच्चे फलों का उपयोग चिकित्सार्थ अधिक होता है। औषधि तथा शाक के रूप में उस स्थान के लोग इसका प्रयोग करते हैं। व्रण, विद्रधि एवं ग्रंथि पर इसका उपयोग लाभप्रद है। दक्षिण के वैद्यों के अतिरिक्त शेष भारत के वैद्य इसका उपयोग नहीं जानते। कलकत्ता तथा पुरी के चिकित्सक तुबरक भेद से इसे कुष्ठ के लिए प्रयोग करते हैं। केरल के वैद्य भी इसे रुद्रवन्ती नहीं मानते। अन्य देशों में इसका प्रयोग होता है कि नहीं——यह अज्ञात है। प्रकाशित साहित्य में इसका वर्णन नहीं मिलता ; न कोई प्रयोग ही पाया जाता है। सौराष्ट्र के भूतपूर्व मंत्री तथा अखिल भारतीय रिसर्च इन्स्टीटयूट, जामनगर की गवर्निंग कौंसिल के सदस्य श्री दयाशंकर दवे, इसके प्रति आकर्षित होकर इसके साहित्य की खोज में संलग्न ह और रिसर्च इन्स्टीटयूट को इस सम्बन्ध के विवरण भेजते रहते हैं। अभी हाल ही में, स्नातकोत्तर शिक्षा-केन्द्र के छात्रों का एक दल, जूनागढ की गिरनार पर्वत-मालाओं की जड़ी-बूटियों के अध्ययनार्थ वानस्पतिक यात्रा पर गया था और इस दल को वनस्पतियों के बारे में अन्वेषण करने की आज्ञा भी श्री दवे महोदय ने प्रदान की थी। यद्यपि यह औषधि नहीं मिली। किन्तु इसकी ही जाति की एक औषधि का पता हमें और लगा है। इसका अध्ययन जारी है और ठीक ज्ञात होने पर वैद्य-समाज के सामने उपस्थित किया जायगा। अभी गिर के घने जंगलों के द्रव्यों का अध्ययन शेष है——संभव है, इस तरफ भी यह द्रव्य प्राप्त हो जाय। किन्तु यह सत्य

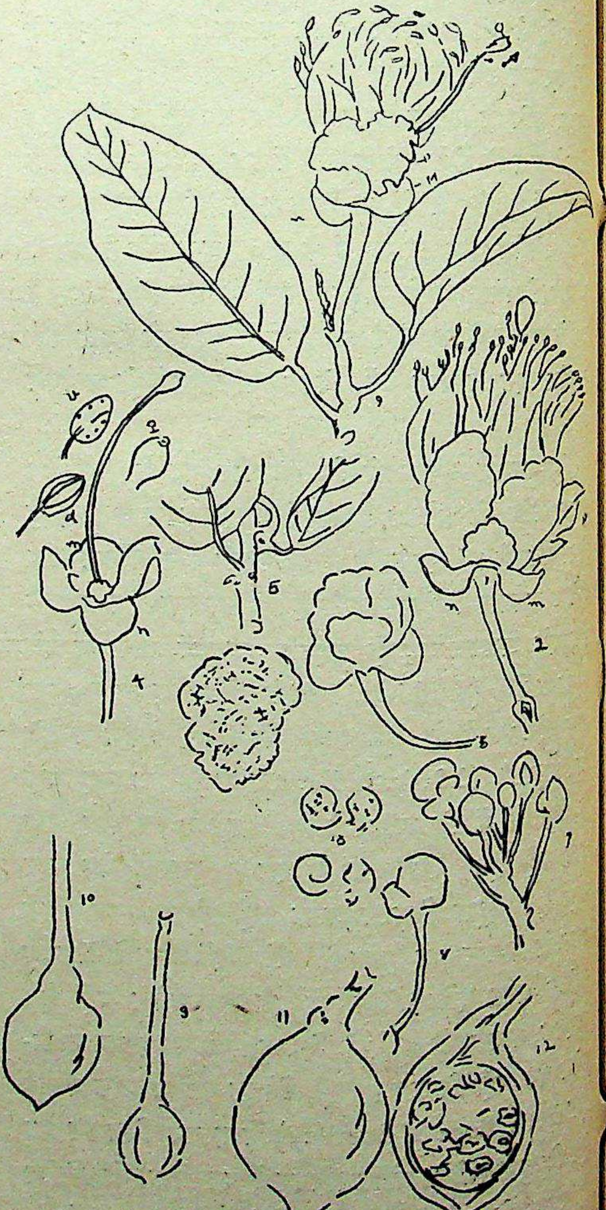

रुदन्ती (वर्तमान काल में प्रचलित)

है कि चिकित्सा में इधर के वैद्य इसका उपयोग नहीं करते हैं।

**परिचय**--यह एक मध्यम जातीय वृक्ष श्रेणी की वनौषधि है, जिसकी अधिकतम ऊँचाई १५-१८ फीट तक होती है। इसकी पत्तियाँ एक विशेष प्रकार की लम्बी और शिराओं से युक्त होती हैं। जब यह नयी होती है तो इनका वर्ण ताम्र वर्ण का और पूर्ण होने पर हरित वर्ण का रहता है। इनका पत्रवृन्त आधी से १ इंच तक लम्बा होता है। पत्र ३-४ इंच लम्बे, १॥ से २ इंच चौड़े होते हैं। प्राकृतिक रूप में इनका आकार **चित्र नं० १** में दिए हुए पत्र की तरह होता है। पत्र वृन्त के पास छोटे-छोटे कांटों का एक जोड़ा होता है, जैसा **नं० ५** में दिखाई पड़ता है। नए पल्लव ताम्रवर्णवत् रक्तिमा से युक्त होते हैं और परिपक्व पत्रों में चमकदार हरितवर्ण होता है। इसमें १०-१२ जोड़े शिराओं के मध्य की शिरा से निकलते हैं। पत्तियों के वर्ण उनकी आयु के अनुसार क्रमशः भिन्न-भिन्न होते हैं। इसके फलों में भी पत्रवत् ही नये फल लालिमा लिये और परिपक्व हरितवर्ण के होते हैं--और इनका रंग भी क्रमशः नए से पुराने में बदलता रहता है। नए पत्र व नए फल में रक्तवर्णता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

**पुष्प**--अविकसित पुष्प का स्वरूप **चित्र नं० ७** की तरह होता है। इस समय के बड़े व छोटे पुष्प-पत्र छोटे-बड़े विषम आकार के होते हैं। प्राकृतिक रूप में पुष्प का आकार जैसा होता है, यह चित्र नं० ५ में दिखाया गया है। जब पुष्प विकसित होने लगता है तो उसके दो पुष्प-पत्र स्पष्ट दिखाई पड़ने लगते हैं, जैसा **चित्र नं० ३** में है। **इसके चित्रों में बड़े को एम व छोटे को एन अक्षर के निर्देश से समझा जा सकता है, जो कि १-२-४ चित्रों में अंकित है।** चारों पुष्प-पत्र इसमें **चित्र नं० ४ में** स्पष्ट दिखाए गए हैं। जब पुष्प पूर्ण विकसित हो जाता है तो यह चित्र नं० १ की तरह दिखायी पड़ता है। पुंकेशर व स्त्रीकेशर स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। पुंकेशर छोटे होते हैं, योनि छत्र बड़ा और गर्भाशय परिपुष्ट होता है। योनि सूत्र (pestile) लम्बा, सूत्राकार और बड़ा होता है, जैसा चित्र नं० ४ में दिखाया गया है। इसके ऊपर के भाग को **ओ अक्षर से चिह्नित किया गया है। परिपार्श्विक भागों को डी व बी अक्षरों से चिह्नित करके व्यक्त किया गया है।**

**फल**--फलों में सबसे **छोटा फल चि० नं० ७-९-१० पर** दिखाया गया है, जो इसकी नैसर्गिकता को व्यक्त करता है। परिपुष्ट **फल नं० ११** की तरहके आकार तथा लम्बाई, चौड़ाई व मोटाई लिए होता है। **नम्बर १२** में अपक्व फल को छेदन करके दर्शाया गया है, जिसमें बीच-बीच में कटे-कच्चे बीज दिखायी पड़ते हैं। अपक्व बीजों की आकृति **चित्र १३ में** प्रदर्शित की गयी है।

इस प्रकार इसके विभिन्न चित्रों द्वारा आकार व प्राकृतिक स्वरूप को दिखाने की चेष्टा डा० मेंहदी हसन के ही शब्दों में की गयी है।

कुछ दिन पूर्व पातञ्जलि सेठी ने इसका विवरण 'टाइम्स आफ इण्डिया' के २७ जुलाई के अंकमें प्रकाशित कराया था। उसमें भी उसी प्रकार का किन्तु संक्षिप्त विवरण है। उक्त लेख में यह प्रदर्शित करने की चेष्टा की गयी है कि इसके आविष्कारक--ज्ञाता तथा प्रयोगकर्त्ता डा० जी० कृष्णमूर्ति हैं। लेख की भाषा आकर्षक है। उसका भावानुवाद नीचे दिया जाता है:--

"यह पौधा दक्षिण भारत में मैसूर के सरस्वती नदी के तट पर स्थित घने जंगलों में पाया जाता है। इसका संग्रह सरल नहीं है, क्योंकि यह दूर-दूर पर मिलता है। इसका कोई निश्चित नाम नहीं है। वहाँ के निवासियों द्वारा यह अप्रैल मास में एकत्र किया जाता है और वे लोग एकत्र करके इसे डा० जी०कृष्णमूर्ति को भेजते हैं,जो क्षय रोग विषयक अनुसंधान करते हैं। डा० मूर्ति ने पहले इसका परिचय प्राप्त करने की चेष्टा की। उन्होंने लन्दन के न्यू गार्डेन के विशेषज्ञ के पास इसे भेजा और यह कैपेरिस मुनाई (Capparis Moonii) है--यह जानकारी प्राप्त की। यह १०-१५ फीट की ऊँचाई का वृक्षाश्रयी पौधा होता है और इसकी शाखाएँ ६ इंच तक लम्बी, डेढ़ से अढ़ाई इंचतक चौड़ी होती है। यह देखने में ऊपर से चमकदार और नीचे हलके वर्ण का होता है। शाखाएँ हरे-भरे पल्लवों से युक्त तथा झुके हुए कांटों से पूर्ण होती हैं। इसके पत्ते गोलाई लिए हुए लम्बे (oblong), कभी तीक्ष्णाग्र तथा कड़े होते हैं। इनकी मंजरी में ६ से १२ पुष्प तक होते हैं। पुष्प श्वेत वर्ण के ४-५ इंच व्यास के पुष्प-पत्र आमने-सामने घने और पुष्प की गर्म नली मोटी मसृण होती है। पुष्प-मंजरी कभी-कभी पत्र रहित भी होती है। कभी-कभी इसके पुष्प एकाकी भी लगते हैं। फल दो इंच व्यास का गोलाकार होता है। इसमें कई बीज़ होते हैं जिनका आकार सेम के बीजों के बराबर होता है।

इसमें से सक्रिय तत्त्व को निकालने की चेष्टा की गई किन्तु सफलता न मिलने पर फल के ही चूर्ण का प्रयोग किया गया।"

उपर्युक्त विवरण "हिन्दुस्तान टाइम्स" में श्री सेठी द्वारा प्रकाशित किया गया विवरण है।

**प्रयोग और क्रिया**--रुदन्ती के प्रयोगों का विवरण देते हुए श्री सेठी एक उपन्यास की तरह प्रारंभ कर सारा श्रेय डा० कृष्णमूर्ति को ही देने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु दक्षिण में ये फल बिकते हैं और व्रण-विद्रधि व कुष्ठ पर विशेष प्रयुक्त होते हैं, यह मैं बतला चुका हूँ। श्री सेठी का कथन निम्न है--

"पाँच वर्ष पूर्व एक डाक्टर मुँह के मुहाँसों से मुक्ति पाने के लिए ओषधि की खोज में थे। एक पड़ोसी ने एक जंगली फल रुदन्ती का प्रयोग बतलाया। इसके प्रयोग से डाक्टर को आश्चर्यजनक लाभ हुआ और मुहाँसे को उसने समूल नष्ट कर दिया। कुछ समय बाद १९५३ में एक बालक जिसकी उम्र ढाई वर्ष की थी, उनके पास लाया गया जो बहुत बुरी दशा में था। यह बालक क्षय के अस्पताल में १० मास रहकर आया था। अस्पताल में इसकी चिकित्सा में स्ट्रेप्टोमाइसिन का प्रयोग किया गया था। किन्तु कोई समुचित लाभ दृष्टिगोचर न हुआ। जब उसे अस्पताल से मुक्त किया गया था, यह कहा गया कि वह मात्र एक पखवारे तक ही जीवित रह सकेगा। कहते हैं, डाक्टर ने जीवन से पूर्णतया निराश उस रोगी पर रुदन्ती का प्रयोग किया और ४ ग्रेन की मात्रा में तीन मात्रा दी। उनके मुहाँसे के व्रण में लाभ हो चुका था--अतः उन्हें विश्वास था कि इसके व्रण में भी लाभ करेगा। ५ दिन में कफ से पूय आना बन्द हो गया और लक्षण कम हुए। बच्चे को भूख लगने लगी। व्रण ठीक हो गए। १५ दिन के प्रयोग के फलस्वरूप व्रण छोटे हो गए। व्रण-रोपण होने लगा और उसकी शारीरिक स्थिति में परिवर्त्तन दृष्टिगोचर हुआ। कुछ मास प्रयोग करने के बाद बच्चा रोग-मुक्त हो गया।

इस प्रयोग ने डा० मूर्ति का ध्यान क्षय के रोगियों पर रुदन्ती के प्रयोग के सम्बन्ध में आकर्षित किया। डा० मूर्ति देशी दवाइयों के क्लीनीकल रिसर्च विभाग के प्रधान थे। जहाँ वह कार्य करते थे, वह स्थान डा० वालाभाई नानावती हास्पिटल वाइल पारले बम्बई में था। वहाँ के प्रबन्धक से कहने पर इन्हें प्रयोग की सुविधा खण्डीय फुफ्फुस क्षय वाले (Pulmonary Tuberculosis) रोगियों में की गयी। १९५७ में पूर्ण सुविधा दी गयी और ११०० रोगियों की चिकित्सा हुई और इसके अच्छे परिणाम निकले। ९७ केस विशेष रूप में रखे गये। ११ रोगी को छोड़कर शेष २० वर्ष से ऊपर की आयु के थे। सबसे छोटी आयु का रोगी ९ वर्ष का और अधिकतम आयु का रोगी ६५ वर्ष का था। १८ सप्ताह तक रुदन्ती दी गयी। कम-से-कम ४ और अधिक-से-अधिक १८ सप्ताह तक इस औषधि का प्रयोग हुआ। ६ रोगियों पर कोई प्रभाव न हुआ। शेष रोगियों पर इसका प्रभाव अच्छा रहा। एक रोगी का २३ पौंड वजन बढ़ा। इसी प्रकार एक दूसरे रोगी का ३५ पौंड वजन बढ़ा। चार वर्ष के बाद दूसरों की पुनः जाँच हुई तो वह स्वस्थ था।

प्रयोग सम्बन्धी जो विवरण दिया गया है उससे ज्ञात होता है कि रुदन्ती ज्वर को कम कर देती है और क्षुधा की वृद्धि होने लगती है। रोगी का वजन बढ़ने लगता है और कभी-कभी वजन ३५ पौंड तक बढ़ता है, जो अबतक की किसी दवा से नहीं बढ़ता। पूय आना बन्द होकर लाभ होता है।

सरकारी रिपोर्ट के अनुसार भारतवर्ष में ७ लाख रोगी प्रतिवर्ष क्षय से मरते हैं--अतः रुदन्ती यदि क्षय में लाभ करती है तो करोड़ों रोगियों को लाभ पहुँचेगा।

इस प्रकार विवरण देकर पुनः सेठी ने द्वितीयवार लिखा है कि--"मुँहासों की यह निश्चित दवा नहीं है। हाँ, उन्हें दूर करने में सहायता करती है। क्षय रोगियों के अतिरिक्त यह अन्य रोगियों में न तो भूख की वृद्धि करती और न वजन ही बढ़ाती है। रुदन्ती क्षय के कीटाणु विष को नष्ट करती है और वैसिलस टुबरकुलोसिस या क्षय के कीटाणु का नाशक है। यह (रुदन्ती) क्षय कीटाणुओं की क्रिया को कम करती है और उनकी वृद्धि में बाधा पहुँचाती है। इस प्रकार क्षय रोगियों के लिए लाभप्रद एवं भारवर्द्धक होती है। इसका प्रभाव अन्य संक्रामक रोगों पर क्या होता है, वह ज्ञात नहीं।

इस प्रकार डा० कृष्णमूर्ति ने रुदन्ती का प्रयोग करके यह विचारधारा उपस्थित की है कि रुदन्ती क्षय में लाभ पहुँचाती है। इसी प्रकार कई स्थानों पर रुदन्ती के

(शेषांश ६५८ पृष्ठ पर)

# वह, जो आपको करना ही है!

**श्री द्वारिकेश मिश्र**

आयुर्वेद महासम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन निकट है। महासम्मेलन की वर्तमान स्थिति क्या है, यह आप सभी जानते हैं। विचार इस प्रकार करना चाहिए कि आगे करना क्या है? सबसे पहली आवश्यकता तो यह है कि महासम्मेलन के सदस्यगण मतभेद भुला दें। आगे की कार्यनीति ऐसी अपनावें जो तर्कसंगत हो और स्थिति के अनुकूल हो। बदला हुआ जमाना है, इसलिए पिछली मान्यताओं का परिमार्जन करना चाहिए। विदेशी शासन नहीं, अपनी जनता का जनतांत्रिक राज्य है। आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति के रूप में मान्यता प्राप्त करने के लिए, वास्तव में क्या करना अपेक्षित है, इस पर सोच कर आगे बढ़ना चाहिए। अब यह बात निरा भ्रम है कि आयुर्वेद की उन्नति अंग्रेजी या हिन्दी में प्रभावशाली भाषण देने से हो जायगी। डाक्टरों और सरकार की भर्त्सना भरे भाषणों से आयुर्वेद का प्रश्न उलझा ही है, सुलझने की भूमिका भी नहीं बनी। इसलिए ग़लत धारणाओं के मोह को त्याग कर, केवल वही सोचिए और वही कीजिए जिससे लक्ष्य-सिद्धि सुगम हो। आइए, कुछ काम की बातें करें!

## आयुर्वेदपरक जनमत का निर्माण——

आज जनतान्त्रिक युग है। समूह की और सर्वसाधारण जनता की आवाज़ का मूल्य है। सरकार को देर-सबेर वह काम करना ही होता है, जिसके लिए जनता अपना स्वर उठाती है। कांग्रेस के कुछ हजार सदस्य ही यदि आज़ादी की पुकार करते रहते तो कुछ न होता। स्वाधीनता मिली, इसलिए कि उसको पाने के लिए देश की कोटि-कोटि जनता उठ खड़ी हुई। आज की सरकार आयुर्वेद के लिए बहुत-कुछ इसलिए नहीं करती कि वह देखती है कि कुछ वैद्य हैं, जो आयुर्वेद के लिए कहते रहते हैं। वे भी भाषणों में आयुर्वेद की शक्ति को सिद्ध नहीं करते, उसके पूर्व गौरव और अपनी प्रशंसा की कहानी अधिक सुनाते हैं। डाक्टरों की बुराई करके एक प्रवल प्रतिद्वन्दी अकारण खड़ा कर लेते हैं, और सरकार की भर्त्संना करके, उसका दृष्टिकोण भी, सहानुभूतिपूर्ण नहीं, प्रत्युत विरोधी अधिक बना लेते हैं। ऐसे भाषणों से आज का समय और सरकार प्रभावित नहीं होने की! आयुर्वेद के लिए कुछ कराना है तो अब एक ही अन्तिम मार्ग है और वह यह कि देश भर में आयुर्वेद के लिए जनमत जगाइए! यह सिद्ध कर दीजिए कि देश की ८० प्रतिशत जनता की आप चिकित्सा करते हैं, और वह आपके साथ है। आयुर्वेद के लिए जनता का आन्दोलन उठाइए! भाषा के लिए, प्रान्त के लिए, स्मारकों के लिए, अन्न-वस्त्र के लिए, मँहगाई और बेकारी के लिए, यदि जनता आन्दोलन कर सकती है, तो कोई कारण नहीं कि वही जनता आयुर्वेद के लिए भी आन्दोलन न करे। यदि जनता की ओर से आयुर्वेद की मांग उठेगी तो सरकार को एक बार नहीं सौ बार झुकना पड़ेगा। ऐसा आन्दोलन चलाने के लिए आयुर्वेद के प्रति जनमत जगाना आवश्यक है। केन्द्र और प्रदेशों का स्वास्थ्य-मन्त्रालय कहता है कि जनता आयुर्वेद को नहीं चाहती——आप सामूहिक रूप से प्रयत्न करके——जनता से ही इस बात का जवाब दिलाइए! हस्ताक्षर आन्दोलन चलाइए! हर वैद्य अपने क्षेत्र की जनता से आयुर्वेद की मान्यता और प्रश्रय की मांग पर, जन-जन के हस्ताक्षर कराके राष्ट्रपति की सेवा में भिजवाये। स्थान-स्थान पर आयुर्वेद के लिए जनसभाओं का आयोजन कराया जाय। जिन दलों ने भाषा, प्रान्त, मँहगाई आदि के लिए आन्दोलन किया है, उनसे कहा जाय कि वे आयुर्वेद के प्रश्न को अपने हाथ में लें——क्योंकि आयुर्वेद का प्रश्न, कोई साधारण नहीं है। लाखों वैद्यों की जीविका का साधन है और करोड़ों नागरिकों के स्वास्थ्य का प्रश्न है! आवश्यकता आ जाय तो नैतिक आन्दोलन की भूमिका बनाइए! हाल ही में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० ने ऐसा ही एक प्रयत्न किया है। पिछले नवम्बर मास में देश भर में लगभग पाँच सौ स्थानों पर जनता की सभाओं का आयोजन हुआ और उनमें आयुर्वेद को मान्यता देने के प्रस्ताव स्वीकार कराके सरकार को भेजे गए। परन्तु इस प्रकार का आन्दोलन कोई एक व्यक्ति का काम नहीं है। यह

काम सुगठित ढंग से वैद्यों की प्रतिनिधि संस्था द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए महासम्मेलन को व्यापक और सक्रिय बनाना आवश्यक है। उसकी बागडोर ऐसे व्यक्तियों के हाथ में होनी चाहिए, जो निःस्वार्थ हों, लगन वाले हों, निरभिमानी हों, आयुर्वेद के सच्चे अनुगामी हों और व्यक्तिगत हितों की अपेक्षा, सामूहिक हितों पर अधिक ध्यान देते हों।

### कुछ मौलिक समस्याएँ—

केवल जनमत जगाने से काम नहीं चलेगा। उसके साथ-साथ आयुर्वेद की कुछ ऐसी मौलिक समस्याएँ हैं, जिनका निर्णय हमें सर्वसम्मत, अधिक से अधिक शीघ्र कर देना चाहिए। निर्णय काग़ज़ी प्रस्तावों का न हो, दृढ़ हो, अन्तिम हो, अनिवार्य हो! पहली समस्या है, आयुर्वेद का स्वरूप क्या हो? सरकार के मंत्रिगण कहते हैं कि, वैद्यों में, आयुर्वेद के स्वरूप के विषय में ही, एकमत नहीं है। इस कलंक को मिटाइए! महासम्मेलन से निर्णय कराके घोषणा कीजिए कि आयुर्वेद का स्वरूप यह होना चाहिए। शुद्ध और मिश्र का झगड़ा मिटाइए। आयुर्वेद, केवल आयुर्वेद है! उसमें शुद्ध या मिश्र की संज्ञा की आवश्यकता नहीं। ऐसी संज्ञाएं लगाकर आयुर्वेद-सम्प्रदाय में जो फूट उत्पन्न कर दी गई, वह हमारा सर्वनाश कर देगी। शुद्ध और मिश्र की काल्पनिक भिन्नता बनाकर अकारण ही वैद्यों में दो परस्परविरोधी दल बना दिये गये हैं, जो आपस में ही एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी बनकर इस व्यवसाय को ख़तरे में डाल देंगे। दोनों में सहानुभूति का वातावरण उत्पन्न किया जाना चाहिए। अखिल भारतीय मान्यता के संगठन के नाते महासम्मेलन यह निश्चित कर दे कि अमुक-अमुक विषयों से युक्त भारतीय चिकित्सा प्रणाली का नाम आयुर्वेद है। उसका नाम केवल आयुर्वेद है। पहले से ही वह अशुद्ध नहीं है, इसलिए अब उसको शुद्ध कहने की आवश्यकता नहीं; और संसार की कोई चिकित्सा-प्रणाली ऐसी नहीं है, जिसका मूलरूप आयुर्वेद में न हो—इसलिए अब उसको मिश्र कहने की आवश्यकता नहीं है। उसका नाम आयुर्वेद है, केवल आयुर्वेद!

### एक समान पाठ्यक्रम—

आयुर्वेद के स्थिर भविष्य-निर्माण के लिए, यह भी एक समस्या है कि सर्वत्र उसका एक समान पाठ्यक्रम निर्धारित हो। जिन डाक्टरों की हमारे स्वयंभू नेतागण आलोचना करते हैं, उनके पाठ्यक्रम में कहीं भिन्नता है? संसार में कहीं भी देखिए एलोपैथी का पाठ्यक्रम एक-सा मिलेगा। परन्तु आयुर्वेद का पाठ्यक्रम भारत के सोलह प्रदेशों में सोलह तरह का है? यह असमानता आयुर्वेद की ऐसी भावी पीढ़ी तैयार करेगी कि कहा नहीं जा सकता, आयुर्वेद कितने खण्डों में बँट जाय। महासम्मेलन का यह काम है कि वह एक सार्वभौम पाठ्यक्रम का निर्माण करे, और उसको सर्वत्र प्रचलित कराने के लिए सरकार को बाध्य करे। इस काम को उदार और व्यापक दृष्टिकोण रखने वाले विद्वानों से कराया जाय जो मौलिक रूप से आयुर्वेद के मर्मज्ञ हों और समय की गति को भी पहचानते हों। इतना निश्चित है कि समय के साथ कदम मिलाकर हम नहीं चलेंगे तो एक जगह पड़े-पड़े मिट्टी के ढेर हो जायेंगे। आयुर्वेद का ऐसा पाठ्यक्रम अन्तिम रूप से निश्चित कर देना चाहिए जो आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्तों पर आधारित हो और आधुनिक हो! ऐसे पाठ्यक्रम को निश्चित और प्रचलित कराने के लिए उद्दंड वक्तृत्वकला काम नहीं दे सकती। शक्ति संगठित होनी चाहिए, विद्वानों का प्रभाव होना चाहिए और इतनी दृढ़ता होनी चाहिए कि देश के एक छोर से दूसरे छोर तक आयुर्वेद व्यवसाय के लोग महासम्मेलन के निश्चित पाठ्यक्रम को ही अंगीकार करने के लिए कटिबद्ध हो जावें। जिन विद्यालयों में वैद्यों का वह निर्णीत पाठ्यक्रम न चलाया जाय, वहाँ के आयुर्वेदाध्यापक पढ़ाना छोड़ दें और आयुर्वेद विद्यार्थी पढ़ना छोड़ दें। आन्दोलन करें और अपने पाठ्यक्रम को ही प्रचलित कराके शान्त हों। यदि ऐसी दृढ़ता हम संस्था में और समुदाय में उत्पन्न कर सकते हैं तो कोई कारण नहीं कि देश भर में हमारा एक-सा पाठ्यक्रम प्रचलित न हो, और एक-से आयुर्वेद स्नातक न निकलें। भिन्न पाठ्यक्रम से जो भिन्न स्नातक निकलते हैं, उनमें एक दूसरे के प्रति ऊँच-नीच की भावना अनायास ही रहती है, उसका परिणाम यह हो रहा है कि आयुर्वेद की नयी पीढ़ी में एकता स्थापित करना कठिन है। इसलिए एक समान पाठ्यक्रम का निर्धारण अत्यन्त सामयिक समस्या है।

### विद्यापीठ का क्या करें?—

सर्वसम्मत पाठ्यक्रम का निर्धारण करके उसको क्रियात्मक रूप में सफल करके दिखाने का उत्तरदायित्व भी महासम्मेलन का है। यह वांछनीय है कि हमारा निज का

एक आदर्श विद्यालय हो, जिसमें निज के पाठ्यक्रम की विशेषता हम सिद्ध कर सकें। विद्यापीठ को वर्तमान रूप में चलाते रहना, आयुर्वेद के भविष्य के लिए बहुत घातक है! संसार में कहीं भी वैज्ञानिक विषयों का ऐसा परीक्षाक्रम चलाने की परम्परा नहीं है। एक ओर तो हम कहते हैं कि आयुर्वेद पूर्ण वैज्ञानिक है, दूसरी ओर विद्यापीठ के द्वारा उसकी प्राइवेट परीक्षाएं प्रचलित करके हम अपनी वैज्ञानिकता का अपमान करते हैं। विज्ञान विषय में, हाई स्कूल जैसी साधारण परीक्षा में भी, प्राइवेट छात्र नहीं बैठ सकता। वही छात्र बैठ सकता है जिसने विषय का क्रियात्मक ज्ञान विद्यालय में नियमित प्राप्त किया हो। फिर आयुर्वेद जैसे चिकित्सा विज्ञान की परीक्षाओं की ऐसी परम्परा चलाना क्या आयुर्वेद की वैज्ञानिकता का अपमान करना नहीं है? इसमें कोई सन्देह नहीं कि अतीत में विद्यापीठ ने बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया। बड़े-बड़े अच्छे वैद्य तैयार किये और वैद्य समुदाय की जनशक्ति में वृद्धि की। आयुर्वेद के अध्ययन के प्रति रुचि उत्पन्न की। विद्यापीठ की यह उत्कृष्ट सेवाएं भुलाई नहीं जा सकतीं। परन्तु वर्तमान के बदले हुए समय में अब ऐसी परम्परा को चलाना उचित नहीं है। इसके पूर्व ही कि सरकार नियन्त्रण करके हमारे इस प्रयास को समाप्त कर दे, हमें स्वयं ही उचित कदम उठाना चाहिए। सरकार निरन्तर यह नीति अपना रही है कि वैज्ञानिक और क्रियात्मक विषयों का इस प्रकार का परीक्षाक्रम बन्द कर दिया जाय। एक न एक दिन हमारा यह क्रम भी सरकार की दृष्टि में आ सकता है। क्यों न पहले ही से हम अपनी व्यवस्था कर लें? साहित्यिक या भाषा के अन्य विषयों की परीक्षाओं का ऐसा क्रम चल सकता है, जिसमें केवल पढ़ने और लिखने का काम हो। परन्तु चिकित्सा विज्ञान जैसे क्रियात्मक विषय की शिक्षा को इस प्रकार नहीं चलाया जा सकता। विद्यापीठ की स्थापना का मूल उद्देश्य भी यह नहीं था। उसकी स्थापना का लक्ष्य आयुर्वेद विश्वविद्यालय था और विश्वविद्यालय की आयोजना न होने तक अध्ययन-अध्यापन में सुरुचि जाग्रत करने एवं एक क्रम आरम्भ करने के लिए विद्यापीठ को चलाया गया था। अब समय की यह मांग है कि हमें शीघ्र ही विद्यापीठ को आदर्श आयुर्वेद महाविद्यालय के रूप में परिवर्तित कर देना चाहिए। विद्यापीठ का सम्पूर्ण संचित कोष महाविद्यालय में लगाया जाना चाहिए, क्योंकि वह तदर्थ ही एकत्र हुआ है। कार्य करने वाले चाहिए, द्रव्य की कमी नहीं है। इस प्रकार विद्यापीठको ही महाविद्यालय में परिवर्तित करके, उसकी परीक्षायें केवल विद्यालयों में, जहाँ शिक्षार्थी क्रियात्मक अभ्यास भी कर सकें--चलाना चाहिए। जबतक ऐसा नहीं किया जाता आयुर्वेद के अध्ययन-अध्यापन और पाठ्यक्रम की भिन्नता की स्थिति में सुधार नहीं हो सकता।

### अनुसन्धान की दिशा--

आज सर्वत्र ही आयुर्वेद के अनुसन्धान की पुकार होती है। परन्तु अनुसन्धान की दिशा, प्रकार और स्वरूप क्या होना चाहिए? इसकी ओर किसी ने उचित ध्यान नहीं दिया। यह काम महासम्मेलन का है। वह निश्चित करे कि अमुक विधि से, अमुक आधार पर आयुर्वेद का अनुसन्धान होना चाहिए। सरकार और जो संस्थान आयुर्वेदानुसन्धान में रुचि रखते हैं, उन्हें महासम्मेलन को एक सुगठित योजना बनाकर देनी चाहिए। विभिन्न प्रयत्नों में सामञ्जस्य और सहयोग स्थापित करना चाहिए। महासम्मेलन को स्वयं ही अनुसन्धान का कोई पक्ष सम्हालना चाहिए, तब तो अनुसन्धान उचित दिशा में हो सकता है। अभी तो व्यक्तिगतरूप से जिसकी जो समझ में आता है, वह कह बैठता है और कर बैठता है। महासम्मेलन को इतनी भी रुचि नहीं कि वह यह देखे कि आयुर्वेदानुसन्धान के लिए कहाँ क्या प्रयास हो रहे हैं? वे कैसे चल रहे हैं? उनका क्या फल निकलने जा रहा है? जबतक आयुर्वेद के लिए द्विविध काम न किया जायगा, तबतक न आयुर्वेद बढ़ सकता है, न वैद्य-समाज की दशा सुधर सकती है। एक ओर आयुर्वेद-हित में जनमत जाग्रत करना और दूसरी ओर आयुर्वेद की वैज्ञानिक स्थिति को दृढ़ करना--दोनों काम साथ-साथ नहीं किये जावेंगे तो दोनों निरर्थक हो जावेंगे। जनमत जगाया, उससे सरकार उन्मुख हुई, और हम आयुर्वेद की उक्त मौलिक समस्याओं का समाधान न कर पाये, तो सरकार को देंगे क्या?

### म्याऊं का ठौर--

ऊपर, कुछ उन बातों का जिक्र किया गया है, जिनसे यथार्थ में आयुर्वेद और वैद्य-समाज का भला हो सकता है, बशर्ते कि वे कार्य और योजनाएं महासम्मेलन द्वारा संचालित की जावें! परन्तु वर्तमान में क्या महासम्मेलन ऐसी स्थिति

में है कि उपर्युक्त किसी भी कार्य को कर सके? और क्या वे कार्य ऐसे हैं, जिन्हें सामूहिक शक्ति से किये बिना सफलता मिल सके? उत्तर नकारात्मक ही मिलेगा! हर दशा में वैद्यों की इस प्रतिनिधि संस्था में ताक़त होनी चाहिए, प्रभाव होना चाहिए, निर्णायक प्रतिनिधित्व होना चाहिए। जबतक यह सब नहीं होगा, तबतक महासम्मेलन द्वारा निर्णीत आयुर्वेद के रूप को कौन मानेगा? सरकार तो अलग रही, वैद्य भी न मानेंगे! इसके द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम को कौन स्वीकार करेगा? इसकी योजनाओं पर कौन अभी ध्यान देता है, और कौन आगे ध्यान देगा? इसलिए आवश्यक है कि सबसे पहले संस्था का संस्कार करके उसमें जीवन लाया जाय और वही म्याऊं का ठौर है! महासम्मेलन के सदस्य उदासीनतावश या व्यक्तिगत दबाव-वश, संकोच में पड़े हैं। ग़लत धारणाओं में ग्रस्त हैं। इसलिए जो कुछ चाहते हैं, उसको खुलकर कहने और करने का साहस नहीं दिखते। परन्तु ऐसी स्थिति बनाये रहना नितान्त घातक है। सदस्यों को साहस और निर्भीकता के साथ अपने भविष्य-निर्माण का काम अपने हाथ में लेना चाहिए। जिस नीति पर चलकर पिछले बीस वर्षों में कार्य हुआ है, उसका फल प्रत्यक्ष देख लिया। वैसी नीति को तिलांजलि दिये बिना प्रगति नहीं हो सकती। इसलिए इस बात की चिन्ता न करके कि अमुक व्यक्ति के ग़लत कामों का विरोध कैसे करें, दृढ़ता के साथ नीर-क्षीर विवेक कीजिए। आगामी दिल्ली अधिवेशन पर ही महा-सम्मेलन की रीति-नीति में आमूलचूल परिवर्तन कर डालिए। जो लोग वर्षों से गद्दियों पर जमे हैं, उनको नमस्कार करके आयुर्वेदानुरागी नहीं, विद्वानों को कार्यक्षेत्र में लाइए। जिनमें वाक्चातुर्य के ज्ञान का बल हो। जिसके स्वर में प्रभाव हो! जिनकी आवाज पर देश का वैद्य-वर्ग संगठित होकर महासम्मेलन के झण्डे के नीचे आ जाय!

**विधान में संशोधन—**

महासम्मेलन और विद्यापीठ दोनों को सुयोग्य और विद्वान अध्यक्ष प्राप्त हैं। यह शुभलक्षण हैं। अन्य पदों पर नये और उत्साही आयुर्वेद के सामूहिक हितों में विश्वास रखने वाले त्यागशील लोगों को लाइए। और ऐसा प्रबन्ध कीजिए कि आपके चुने अधिकारी आपके द्वारा निर्धारित नीतिपर संस्था की प्रतिष्ठाको बढ़ाते हुए कार्य करें और अपने कार्य का विवरण प्रतिमास समाज को देते रहें। क्रियाशील व्यक्तियों के हाथ में संस्था की बागडोर दी जायगी तो संस्था सक्रिय होगी। इसके साथ ही इसी अधिवेशन में विधान के झगड़े बढ़ाने वाले नियमों को निकाल फेंकिए और विधान को जनतान्त्रिक बनाइए। ऐसे समस्त नियम विधान से निकाल देना चाहिए, जिनके द्वारा लोगों को संस्था का सदस्य बनने में हिचक हो या कोई प्रतिबन्ध हो, जैसे विधान की धारा ४. ख की प्रतिज्ञा। यह समय संगठन को व्यापक बनाने का है, विघटन करने का नहीं। इसी प्रकार धारा ५ के ख, ग, घ, ङ, के अंश निकाल दिये जाने चाहिए। अनुशासन के लिए 'क' भाग पर्याप्त है। सदस्यों का विचार-स्वातंत्र्य ही यदि छीन लिया जाता है तो, वे संस्था में क्या करने आयेंगे? जितने सदस्य इस धारा के अन्तर्गत महासम्मेलन त्याग चुके हैं उनके मामलों पर विचार करके उन्हें फिर से संस्था में लेना चाहिए। महा-सम्मेलन के सीधे सदस्य बनने की परम्परा समाप्त कर देनी चाहिए और धारा ४ में तदनुसार सुधार किया जाना चाहिए। धारा ८ और ९ का कड़ाई के साथ पालन किया जाना चाहिए और देश भर में प्रयत्न करके हर वैद्य को महासम्मेलन का सदस्य बनाना चाहिए। नगर, जिला, और प्रदेशों में धारा ८-९ के अनुसार ही महासम्मेलन की शाखा-सभाओं का संगठन करना चाहिए और वर्तमान में इन धाराओं के विपरीत चलने वाले समस्त प्रादेशिक सम्मेलनों को समाप्त करके, जहाँ दो-दो चार-चार सभाएं हैं उनका एकीकरण करके प्रादेशिक सम्मेलनों का पुनर्गठन किया जाना नितांत वांछनीय है। यह पुनर्गठन पूर्णतः संगठनात्मक नियमों के आधार पर किया जाय और उस विषय में विधान में से विकल्पात्मक परिशिष्ट १ हटा दिया जाना चाहिए। सभापति-निर्वाचन के नियमों में संशोधन करके पुरानी परिपाटी का ही प्रचलन करना चाहिए। ऐसे ही विधान की अनेक धाराओं में सुधार की अपेक्षा है। सुधरा हुआ व्यापक विधान हो और सक्रिय त्यागशील कार्यकर्ता हों, फिर कोई कारण नहीं कि महासम्मेलन एक जीवित संस्था न बन जाय। आगामी दिल्ली अधिवेशन में चार बातों की गांठ बांधकर जाइए। पहली तो यह कि यदि कोई सक्रिय कार्यों में अड़ंगा डालने के लिए व्यक्तिगत विवादों को ऊपर लायगा तो उसकी एक नहीं सुनेंगे। दूसरी यह कि संस्था के विधान में संशोधन करके नये सिरे से नये उत्साह से पूरे ढाँचे को पुनर्गठन करने का दृढ़ निश्चय करेंगे। तीसरी यह कि आयुर्वेद की मौलिक समस्याओं का निर्णय करने की भूमिका बनाकर उठेंगे। और चौथी यह कि केवल अधिवेशन में तीन दिन रुचि दिखाकर शान्त नहीं हो जायँगे, बल्कि आगे भी, सदस्य बढ़ाने, जनमत बनाने और संस्था को सशक्त बनाने में सक्रिय रहेंगे। यदि इतना आप कर सके तो दिल्ली अधिवेशन ऐतिहासिक होगा और उसे होना ही चाहिए।

# उत्तर प्रदेश का नया आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम

### श्री कृष्णकुमार एम० ए० आयुर्वेदालंकार

उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री डा० सम्पूर्णानन्द ने २४ जून १९५८ को उत्तर प्रदेश की ग्रीष्मकालीन राजधानी नैनीताल में एक आयुर्वेद सम्मेलन का आयोजन किया था। इस सम्मेलन में आयुर्वेद के अनेक प्रसिद्ध विद्वान श्री शिवशर्मा, श्री राजेश्वर दत्त शास्त्री, श्री हरिहर जोशी श्री द० अ० कुलकरणी आदि सम्मिम्मिलित हुए थे। इस सम्मेलन में यह मत व्यक्त किया गया था कि "अब तक उत्तर प्रदेश में चलनेवाला आयुर्वेद का मिश्रित प्रणाली (Integrated systems) का पाठ्यक्रम असफल रहा है। इस पाठ्यक्रम का अध्ययन करके उत्तीर्ण अधिकांश आयुर्वेद-स्नातक आयुर्वेद में श्रद्धा नहीं रखते उनको आयुर्वेद का उचित ज्ञान नहीं होता तथा व्यावहारिक रूप में वे वैद्य न होकर ऐलोपैथी की ही सेवा करते हैं। इन स्नातकों द्वारा आयुर्वेद की उन्नति न होकर अवनति ही हो रही है। तथ्य यह है कि अधिकांश आयुर्वेद-स्नातक अपने औषधालयों में आयुर्वेदीय औषधियों का प्रयोग बहुत कम करते हैं परन्तु ऐलोपैथिक औषधियों का प्रयोग वाहुल्य से करते हैं। इस मिश्रित प्रणाली के पाठ्यक्रम का अध्ययन कर उत्तीर्ण हुए अनेक ऐसे भी आयुर्वेद चिकित्सक हैं जिनके औषधालयों में एक भी आयुर्वेदीय औषधि दिखाई नहीं देती। ये चिकित्सक अपने को वैद्य कहलाने में अपमानित अनुभव करते हैं तथा डाक्टर कहलाने में अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं। इन परिस्थितियों में आयुर्वेद की उन्नति न होकर अवनति ही हो रही है। आयुर्वेद के जिन स्नातकों में आयुर्वेद के प्रति श्रद्धा ही नहीं है। जो अपने अध्ययन काल में आयुर्वेद के प्रति श्रद्धा और विश्वास न रखते हुए आयुर्वेद की उपेक्षा ही करते रहे हैं उनको आयुर्वेद का सम्यक् ज्ञान ही किस प्रकार हो सकता है और वे चिकित्सा में आयुर्वेदीय औषधियों से किस प्रकार सफलता प्राप्त कर सकते हैं।"

इन परिस्थितियों में यह आवश्यक है कि वर्तमान मिश्रित प्रणाली के पाठ्यक्रम को समाप्त करके एक ऐसे पाठ्यक्रम का निर्धारण किया जावे जो आयुर्वेद के प्रति श्रद्धावान श्रेष्ठ विद्वान उत्पन्न करे तथा जिस पाठ्यक्रम के अध्ययन से उत्तीर्ण आयुर्वेदीय स्नातक आयुर्वेदीय औषधियों का सफलता से प्रयोग कर सकें। इन तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए उत्तर प्रदेशीय सरकार ने २४ जून १९५८ को एक उच्चस्तरीय आयुर्वेदीय शिक्षा समुत्थान समिति का संगठन किया। इस समिति ने २७ जून १९५८ को आयुर्वेद महाविद्याययों में अध्ययन के लिए एक पंचवर्षीय आयुर्वेदाचार्य उपाधि पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया।

भारतवर्ष में आयुर्वेद के पाठ्यक्रम के विषय में दो पक्ष रहे हैं। **प्रथम पक्ष** यह है कि आयुर्वेद महाविद्यालयों में अध्ययन करने वाले छात्रों को आयुर्वेद के साथ-साथ नवीन पश्चात्य-चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन कराना आवश्यक है। चिकित्सा-जगत् में हुए नवीन आविष्कारों का ज्ञान प्राप्त किये बिना हम उन्नति नहीं कर सकते। आयुर्वेद में लगभग १००० वर्षों से नवीन अनुसंधान नहीं हुए हैं अतः आयुर्वेद किन्हीं अंशों में बहुत पिछड़ गया है। आयुर्वेद-विज्ञान में पूर्णता लाने के लिए यह आवश्यक है कि इसके अपूर्ण अंशों की पूर्ति नवीन पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान से की जावे। पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान के अध्ययन के बिना विद्यार्थी श्रेष्ठ तथा सफल चिकित्सक नहीं बन सकता।

**दूसरा पक्ष यह** है कि आयुर्वेद महाविद्यालयों में विशुद्ध आयुर्वेद का ही अध्ययन कराना आवश्यक तथा वांछनीय है। आयुर्वेद के साथ-साथ पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान का अध्ययन करने से विद्यार्थियों में आयुर्वेद के प्रति रुचि नहीं रहती तथा विद्यार्थी आयुर्वेद में श्रद्धा नहीं रखते। इन महाविद्यालयों में पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान आयुर्वेद के विषयों पर हावी हो जाता है। विद्यार्थियों का अधिक समय तथा परिश्रम पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान के अध्ययन में ही व्यतीत हो जाता है। इस कारण विद्यार्थी पूरे वैद्य नहीं वन पाते, साथ ही पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान का पूर्ण अध्ययन न कर सकने के कारण उसमें भी पूरे नहीं होते। प्रारंभ से ही आयुर्वेद के साथ पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान का अध्ययन करने से विद्यार्थी मौलिकतावादी हो जाता है।

इस अपरिपक्व अवस्था में पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान के अध्ययन का उसके मस्तिष्क पर यह प्रभाव होता है कि वह प्रत्यक्ष आँखों से दिखाई पड़ने वाली वस्तु की ही सत्ता स्वीकार करता है। अन्य वस्तुओं को असत्य मानता है। दोनों ही पक्षों की अपनी-अपनी युक्तियाँ ठीक हैं। इस संबन्ध में कुछ विवेचना करना असंगत तथा अनावश्यक है। इस संबन्ध में एक ऐसा मध्यम मार्ग निकाला जा सकता है जो दोनों ही पक्षों की आपत्तियों का निवारण कर सके। प्रस्तुतपाठ्यक्रम इसी मध्यम मार्ग का निर्देश करता है।

किसी भी युग में आविष्कृत विज्ञान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। विज्ञान के इस वर्तमान युग में हम पाश्चात्य-चिकित्सा-विज्ञान तथा उसके नवीनतम अनुसंधान की उपेक्षा नहीं कर सकते। विद्यार्थियों को आयुर्वेद के साथ-साथ आधुनिक-विज्ञान की शिक्षा भी देनी ही चाहिए। परन्तु आधुनिक विज्ञान की यह शिक्षा आयुर्वेद-विज्ञान के पूरक रूप में ही दी जानी चाहिए। ऐसा न हो कि कहीं यह आधुनिक पाश्चात्य-विज्ञान हमारे अपने आयुर्वेद-विज्ञान को ही निगीरण कर जावे। प्रत्येक विज्ञान के अपने सिद्धान्त होते हैं। आयुर्वेद के भी अपने सिद्धान्त हैं। जो शताब्दियों से क्रियात्मिकता की कसौटी पर खरे उतर रहे हैं। आयुर्वेद के पाठ्यक्रम में भी नवीन पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान का समावेश करते हुए उन सिद्धान्तोंकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। अतः यह आवश्यक है कि नवीन पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान का आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम में समावेश इस प्रकार किया जाना चाहिए कि यह पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान स्वतन्त्र रूप में व्यक्त न हो कर आयुर्वेद का ही एक अंग बन जावे।

आयुर्वेद के किसी भी पाठ्यक्रम में दो विशेषताएँ होनी आवश्यक हैं। प्रथम यह कि पाठ्यक्रम अपनी मातृभाषा में होना चाहिए तथा शिक्षा का माध्यम भी मातृभाषामें होना चाहिए। दूसरा यह कि इसमें अपने सिद्धान्तों की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। आयुर्वेद के विषयों के अध्ययन की प्रमुखता तथा आयुर्वेद के सिद्धान्तों को सुरक्षित रखते हुए पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान का समावेश इसमें किया जा सकता है।

ऊपर लिखे गए तथ्यों को ध्यान में रखते हुए आयुर्वेद समुत्थान समिति द्वारा प्रस्तुतत पंचवर्षीय आयुर्वेदाचार्य उपाधि-पाठ्यक्रम पर विचार किया जाता है।

आयुर्वेदाचार्य उपाधि के इस नवीन पाठ्यक्रम के प्रस्तुत होने के पश्चात् अनेक विवाद उत्पन्न हो गये हैं। पक्ष व विपक्ष में अनेक लेख तथा भाषण प्रकाशित हुए हैं। प्रायः ये सब वादविवाद पाठ्यक्रम का पूर्ण विवेचनात्मक अध्ययन न करने के कारण उत्पन्न हुए हैं। इस नवीन पाठ्यक्रम पर अनेक आक्षेप किये जाते हैं। मुख्य आक्षेप यह किया जा रहा है कि "यह विशुद्ध आयुर्वेद का पाठ्यक्रम है। वर्तमान वैज्ञानिक युग में नवीन विज्ञान से शून्य इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के लिए कोई विद्यार्थी तैयार न होगा। यही कारण है कि इस वर्ष आयुर्वेद महाविद्यालयों में प्रवेश-संख्या नगण्य है। इस वर्ष गुरुकुल कांगड़ी, पीली भीत, झांसी तथा मेरठ के आयुर्वेद महाविद्यालयों में एक भी विद्यार्थी प्रथम वर्ष में प्रविष्ट नहीं हुआ है। भारतीय चिकित्सा-परिषद् से सम्बद्ध संपूर्ण आयुर्वेद महाविद्यालयों में इस वर्ष प्रविष्ट विद्यार्थियों की कुल संख्या केवल १० है। इन परिस्थितियों में कुछ ही वर्षों में इन महाविद्यालयों के बंद होने की स्थिति उत्पन्न हो जायगी। दूसरी बात यह भी है कि इस विशुद्ध आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम का अध्ययन करके उत्तीर्ण स्नातक आधुनिक विषयों के ज्ञान से शून्य होंगे। वे चिकित्सा-जगत् के नवीन अनुसंधानों का लाभ नहीं उठा सकेंगे तथा पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान के डाक्टरों की प्रतियोगिता में टिक नहीं सकेंगे।"

नवीन पाठ्यक्रम पर ऊपर लिखे गये जो आक्षेप किये जाते हैं वे वस्तुतः परिचय अभाव के कारण तथा पाठ्यक्रम का विचार पूर्वक अध्ययन न करने के कारण किये जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस पर उक्त प्रकार से विचार करने वाले व्यक्तियों ने पाठ्यक्रम का ठीक प्रकार से मनन न करके केवल विशुद्ध आयुर्वेद के शब्द को लक्ष्य में रख कर इस प्रकार के आक्षेप किये हैं। आयुर्वेद महाविद्यालयों में इस वर्ष विद्यार्थियों के प्रविष्ट न होने के कुछ अन्य कारण भी प्रतीत होते हैं। प्रथम यह है कि यह नवीन पाठ्यक्रम बहुत देर से प्रस्तुत हुआ है। इस समय तक इन्टर पास विद्यार्थी अन्य स्थानों पर प्रवेश ले चुके थे। यदि इस पाठ्यक्रम को इस वर्ष प्रारंभ न करके अगले वर्ष प्रारंभ किया जाता तो यह अवस्था उत्पन्न न होती। दूसरा कारण यह है कि इस समय इन्टर कालेजों में Pre-medical course के समान कोई पूर्व आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम नहीं

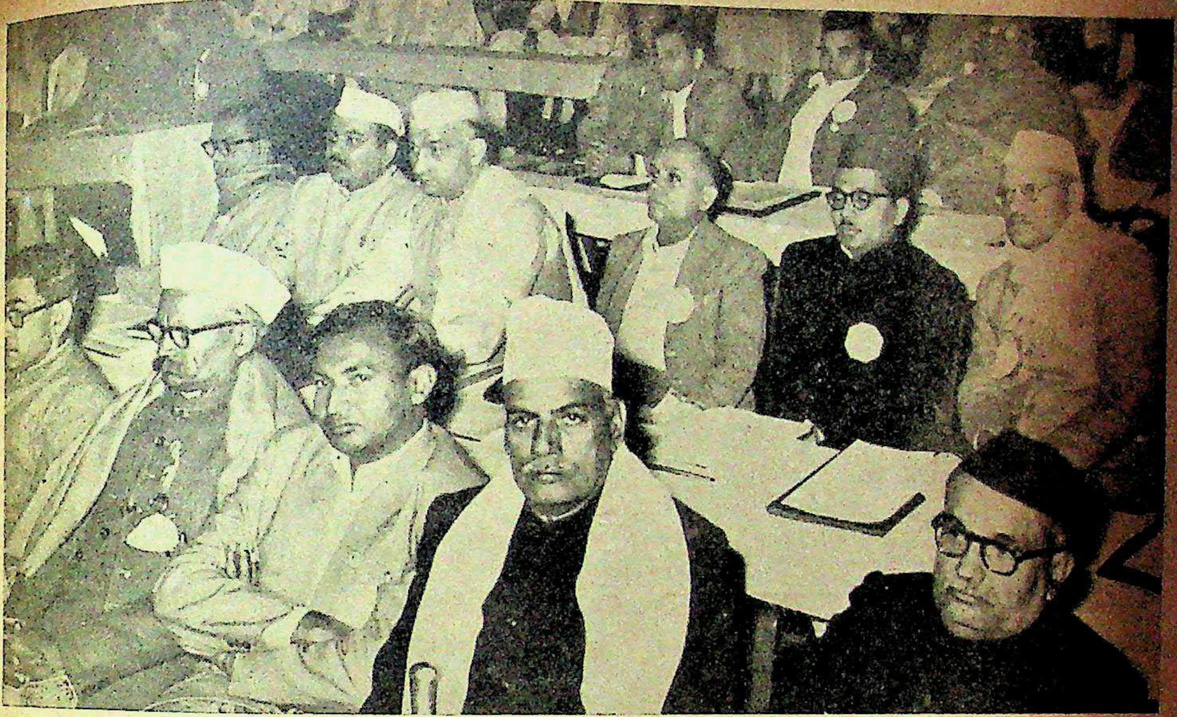

अखिल भारतीय राज्य चिकित्सा परिषद् के कलकत्ता अधिवेशन में समवेत प्रतिनिधियों का एक दृश्य।

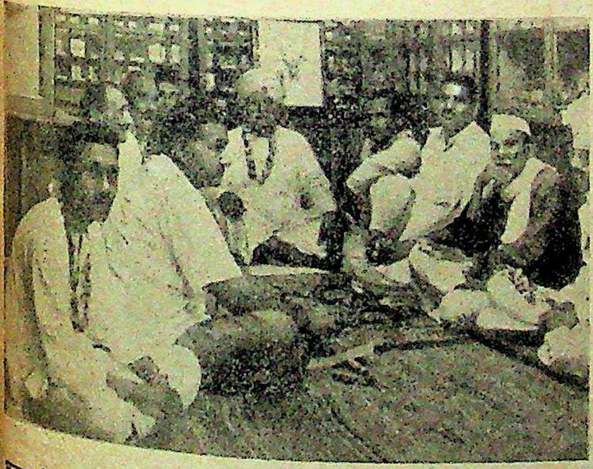

न्वन्तरि जयन्ती पर दतिया में आयोजित सभा का एक दृश्य

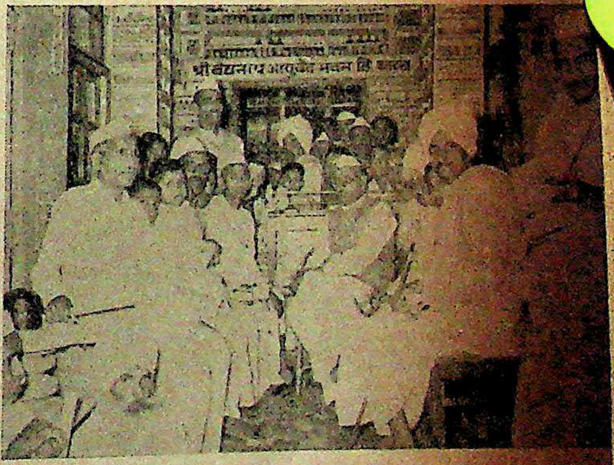

धन्वन्तरि जयन्ती पर हाथरस में आयोजित सभा का दृश्य

धन्वन्तरि जयन्ती पर सिलीगुड़ी (दार्जिलिंग) में आयोजित सभा का एक दृश्य

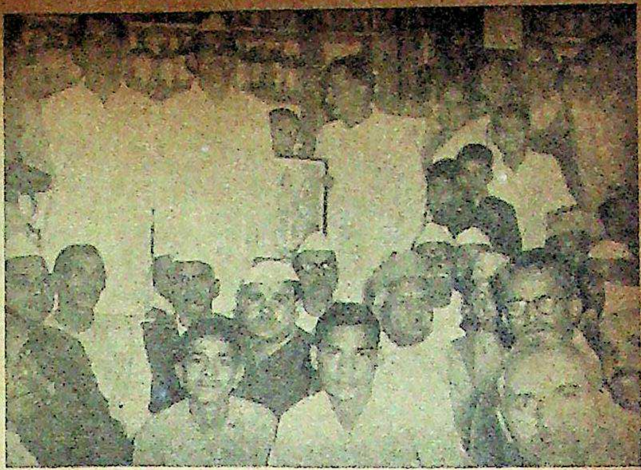

धन्वन्तरि जयन्ती पर अलीगढ में आयोजित सभा का एक दृश्य

श्री वैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि.
श्री लक्ष्मी औषधालय

धन्वन्तरि जयन्ती पर विलासपुर में आयोजित सभा का एक दृश्य

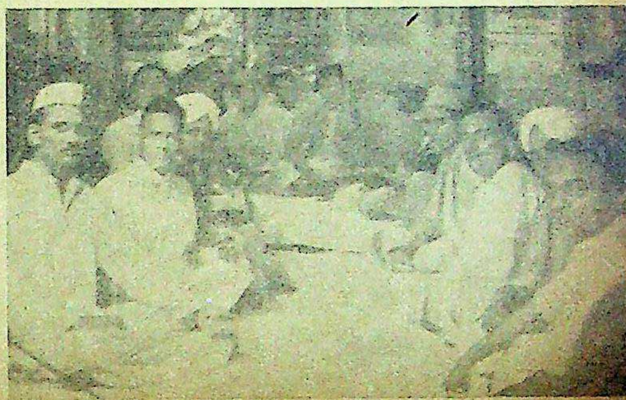

धन्वन्तरि जयन्ती पर अमृतसर में आयोजित सभा का एक दृश्य

है। यदि इन कालेजों में संस्कृत, दर्शन आदि विषयों के साथ एक पूर्ण आयुर्वेदिक पाठचक्रम का समावेश कर दिया जावे तभी आयुर्वेद महाविद्यालयों की यह समस्या सुलझ सकती है। आशा है उत्तर प्रदेशीय सरकार इस सम्बन्ध में शीघ्र ही कार्य करेगी। तीसरा कारण यह है कि आयुर्वेदीय स्नातकों को सरकारी नौकरियों तथा समाज में वह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती जो पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान के स्नातकों को होती है। यदि आयुर्वेदीय स्नातकों को आयुर्वेद-शिक्षा समुत्थान समिति द्वारा प्रस्तुत आर्थिक, सामाजिक तथा व्यावहारिक सुविधायें सरकार द्वारा प्रदान की जावें तथा सरकारी नौकरियों में उचित प्रतिष्ठा प्राप्त हो तो आयुर्वेद महाविद्यालयों में अध्ययन करने के लिए छात्र उसी प्रकार से उत्सुक होंगे जिस प्रकार से पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान के महाविद्यालयों में पढने के लिए रहते हैं। आयुर्वेद महाविद्यालयों में प्रवेश संख्या में किसी भी प्रकार की कमी अनुभव न होगी।

यह आक्षेप कि नवीन पाठचक्रम अर्वाचीन-विज्ञान से शून्य है वस्तुतः परिचय अभाव के कारण है। पहिले भी लिखा जा चुका है कि यह आक्षेप पाठचक्रम का विना अध्ययन किये किया जाता है। नवीन पाठचक्रम का अच्छी प्रकार से अध्ययन करने पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि इसमें अर्वाचीन-विज्ञान का आवश्यक रूप से समावेश है। नवीन पाठचक्रम में अर्वाचीन-विज्ञान को पृथक रूप में नहीं रखा गया परन्तु उसे आयुर्वेद का ही एक अंग बना कर आयुर्वेदीय विषयों के साथ उसका एकीकरण कर दिया गया है। भारतीय चिकित्सा परिषद् (इण्डियन मेडिसन बोर्ड) के द्वारा संचालित बी. आई.एम. एस. अथवा ए.एम.बी.एस. उपाधि पाठचक्रम में पढाये जाने वाले संपूर्ण आयुर्वेदीय व ऐलोपथिक विषयों का समावेश इस नवीन पाठचक्रम में कर दिया गया है। यह संभव है कि नवीन पाठचक्रम के बनाने में शीघ्रता के कारण कुछ त्रुटियाँ रह गई हों। इन त्रुटियों को पूरा किया जा सकता है। इन त्रुटियों के कारण नवीन पाठचक्रम तथा उसमें निहित सिद्धान्त को अवैज्ञानिक तथा अनुपयुक्त कहना ठीक नहीं है। यह तथ्य दोनों ही पाठचक्रमों का तुलनात्मक रीतिसे विवेचन करने पर स्पष्ट हो जाती है।

बी. आई. एम. एस अथवा ए. एम. बी. एस. के पाठचक्रम में निम्नलिखित विषयों का अध्ययन कराया जाता है।

**प्रथम वर्ष** (Preliminary Examination)

१. आयुर्वेद के आधारभूत सिद्धान्त (Basic sciences of Ayurveda)।

२. आधुनिक आधारभूत सिद्धान्त (Modern Basic sciences)।

(क) भौतिक विज्ञान (Physics)
(ख) रसायन शास्त्र (Chemistry)
(ग) जीव विज्ञान (Biology)

**द्वितीय वर्ष** (First professional Examination)

३. त्रिदोष सिद्धान्त

४. आयुर्वेद के आधारभूत सिद्धान्त (Basic sciences ef Ayurveda)

५. शारीर
(क) प्राचीन शारीर
(ख) Modern Anatomy
(ग) Modern physiology

**तृतीय वर्ष** (Second Professional examination)

६. द्रव्य-गुण-शास्त्र
७. रस-शास्त्र तथा भैषज्य-कल्पना
८. स्वस्थवृत्त
९. अगदतन्त्र तथा व्यवहार आयुर्वेद
१०. निदान

**पंचम वर्ष** (Final professional examination)

११. Pathology and Bacteriology
१२. प्रसूतितन्त्र—स्त्री रोग तथा कौमारभृत्य
१३. चिकित्सा—रोग-विज्ञान सहित
१४. शल्यतन्त्र
१५. शालाक्यतन्त्र

नवीन पाठचक्रम में निम्नलिखित विषयों के अध्ययन की व्यवस्था है :—

**प्रथम वार्षिक या प्रारम्भिक परीक्षा**

१. (अ) पदार्थ-विज्ञान
(ब) आयुर्वेद का इतिहास
२. (अ) भौतिक विज्ञान (Physics) फिजिक्स
(ब) रसायन शास्त्र (Chemistry) कैमिस्ट्री

३. प्राणि-विज्ञान उदभिज्ज विज्ञान व प्राणि-शास्त्र

**द्वितीय वार्षिक परीक्षा--प्रथम परीक्षा**

**४. शारीर**

(अ) शरीर रचना-विज्ञान
(ब) शरीर क्रिया-विज्ञान

**तृतीय वार्षिक परीक्षा--द्वितीय परीक्षा**

५. द्रव्य गुण
६. रस शास्त्र व भैषज्य कल्पना
७. अगदतन्त्र तथा व्यवहार आयुर्वेद
८. निदान
९. प्रसूतितन्त्र, कौमार भृत्य, स्त्री रोग-विज्ञान
१०. स्वस्थवृत्त
११. चरक पूर्वार्द्ध

**उपाधि परीक्षा—द्वितीय खण्ड**

१२. काय चिकित्सा
१३. शल्य तन्त्र
१५. चरक उत्तरार्ध

इस प्रकार से नये-पुराने दोनों ही पाठचक्रमों में विषयों का भेद नहीं है। पुराने पाठचक्रम के सभी विषयों का समावेश नये पाठचक्रम में कर लिया गया है। प्रत्येक विषय की विस्तार से विवेचना करना आवश्यक है।

### प्रथम वार्षिक परीक्षा--पदार्थ-विज्ञान

ए० एम० बी० एस० पाठचक्रम में 'आयुर्वेद के आधारभूत-विज्ञान' (Basic sciences of Ayurveda) विषय प्रथम तथा द्वितीय वर्ष में पृथक्-पृथक् पढाया जाता है तथा दोनों वर्षों में इस की पृथक-पृथक् परीक्षा होती है। इस संपूर्ण विषय को पदार्थ-विज्ञान के अन्दर समाविष्ट कर दिया गया है। प्रथम वर्ष में ही पदार्थ-विज्ञान का अध्ययन नवीन पाठचक्रम में करा दिया गया है। इससे विद्यार्थियों को आयुर्वेद के विषयों को पढ़ने में सहायता मिलेगी और वे आयुर्वेद को अच्छी प्रकार से समझ सकेंगे। नवीन विज्ञान में पदार्थ-विज्ञान का कोर्स अधिक सुगठित तथा वैज्ञानिकरूप से रखा गया है। इसमें आयुर्वेद की दृष्टि से अल्प महत्ववाले कुछ भाग छोड़ दिये गये हैं। जैसे संभाषा परिषद् के अन्तर्गत वाद, जल्प, आदि विषय छोड़ दिये गए हैं। आत्मतत्त्व निरूपण को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। इस प्रकार से ए० एम० बी० एस० पाठचक्रम की अपेक्षा नवीन पाठचक्रम में इस विषय को अधिक उपयोगी बना दिया गया है।

### आयुर्वेद का इतिहास

ए० एम० बी० एस० पाठचक्रम में 'आयुर्वेद का इतिहास' नाम से कोई विषय नहीं था। नवीन पाठचक्रम में इस विषय को स्थान देकर पाठचक्रम की उपयोगिता बढ़ा दी गई है। आधुनिक विचारधारा के अनुसार किसी भी विज्ञान के अध्ययन के लिए उस विज्ञान के इतिहास का ज्ञान करना आवश्यक है। इस प्रकार से 'आयुर्वेद का इतिहास' विषय नवीन प्राठचक्रम की उपादेयता को वढ़ा देता है।

### भौतिक विज्ञान

ए० एम० बी० एस० पाठचक्रम को भौतिक विज्ञान का संपूर्ण पाठचक्रम नवीन पाठचक्रम में अविकल रूप से ले लिया गया है। साधारण भौतिक, ताप, प्रकाश, शब्द, चुम्बक तथा विद्युत के अध्याय जो ए० एम० बी० एस० पाठचक्रम में हैं वे सभी नवीन पाठचक्रम में समाविष्ट हैं।

### रसायन-शास्त्र

ए० एम० बी० एस० पाठचक्रम के रसायन-विज्ञान विषय को पाठचक्रम थोड़े से परिवर्तनों के साथ नवीन पाठचक्रम में समाविष्ट कर लिया गया है। यह परिवर्तन नवीन पाठचक्रम की उपयोगिता में वृद्धि करता है। यथा चिकित्सा में अधिकता से प्रयुक्त होनेवाले द्रव्य यवक्षार, स्वर्जिकाक्षार, टंकणक्षार, ब्रोमीन, आयोडीन आदि का समावेश नवीन पाठचक्रम में कर लिया गया है। नवीन पाठचक्रम में धातुओं का वर्णन छोड़ दिया गया है। संभवतः इसका कारण यह रहा होगा कि तृतीय वर्ष में रसशास्त्र में धातुओं का पूरा अध्ययन विद्यार्थियों को कराया ही जाता है। तथापि संक्षेप में धातुओं का अध्ययन कराने में हानि भी नहीं होती।

पूर्व पाठचक्रम में भौतिक-शास्त्र तथा रसायन-शास्त्र पृथक्-पृथक् विषय के रूप में रखे गये हैं परन्तु नवीन पाठचक्रम में दोनों को एक विषय में सम्मिलित कर दिया गया है परन्तु दोनों के प्रश्न पत्र पृथक्-पृथक् ही रखे गये हैं संभवतः यह परिवर्तन 'प्राणि-विज्ञान' विषय अधिक महत्त्वपूर्ण होने के कारण किया गया है।

## प्राणि-विज्ञान

चिकित्सा की दृष्टि से प्राणि-विज्ञान विषय अधिक महत्त्वपूर्ण है। ए० एम० बी० एस० पाठ्यक्रम में प्राणि-विज्ञान विषय का एक प्रश्न पत्र है परन्तु नवीन पाठ्यक्रम में इस विषय के दो प्रश्नपत्र १. उद्भिज्ज विज्ञान तथा २. प्राणि-विज्ञान कर दिये गये हैं।

ए० एम० बी० एस० पाठ्यक्रम में प्राणि-विज्ञान का पाठ्यक्रम विशुद्ध पाश्चात्य विज्ञान के अनुसार निर्धारित किया गया है। उसमें आयुर्वेद के दृष्टिकोण को कोई-स्थान नहीं दिया गया। इसके अतिरिक्त उद्भिज्ज-विज्ञान के अध्ययन को बहुत कम स्थान दिया गया है। आयुर्वेद में उद्भिज्ज (वनस्पति) द्रव्यों का अत्यधिक महत्त्व है। वनस्पतियाँ आयुर्वेदीय चिकित्सा का आधार हैं। नवीन पाठ्यक्रम में उद्भिज्ज-विज्ञान का अध्ययन अधिक विस्तार से कराया गया है। पाश्चात्य-विज्ञान के साथ-साथ आयुर्वेद का दृष्टिकोण भी इस पाठ्यक्रम के अनुसार विद्यार्थियों को मिल सकेगा। उद्भिज्ज-विज्ञान के पाठ्यक्रम में वनस्पतियों के वर्गीकरण के साथ-साथ अतिविषा वर्ग, जम्बीर वर्ग, सर्जक वर्ग आदि वर्गों की चिकित्सोपयोगी वनस्पतियों का ज्ञान विद्यार्थियों को कराये जाने से उनकी चिकित्सा की योग्यता निश्चय रूप से बढ़ेगी तथा आनेवाले वर्षों में वनस्पतियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह ज्ञान सहायक होगा। इस प्रकार से नवीन पाठ्यक्रम में प्राणि-विज्ञान विषय को अधिक उपयोगी और उपादेय बना दिया गया है।

ए० एम० बी० एस० पाठ्यक्रम में संस्कृत अंग्रेजी पढ़ कर न आनेवाले विद्यार्थियों के लिए संस्कृत तथा अंग्रेजी के विशेष अध्ययन की व्यवस्था की गई है। परन्तु नवीन पाठ्यक्रम में प्रविष्ट होने वाले विद्यार्थियों की प्रवेश योग्यता संस्कृत तथा अंग्रेजी में भी होने के कारण इन विषयों के अध्ययन की आवश्यकता नहीं रहती।

## द्वितीय वार्षिक परीक्षा—द्वितीय परीक्षा

नवीन पाठ्यक्रम में शारीर विषय दो खडों में विभक्त हैं।

(१) शरीर रचना विज्ञान तथा (२) शरीर क्रिया विज्ञान

प्रत्येक खंड के दो-दो प्रश्न पत्र हैं। शरीर-रचना-विज्ञान के दो प्रश्न पत्र हैं। प्रथम प्रश्नपत्र में प्रकृति-विज्ञान तथा शारीर-वर्णन है। द्वितीय प्रश्न पत्र में मनोविज्ञान तथा इन्द्रिय विज्ञान है।

शरीर-क्रिया-विज्ञान के भी दो प्रश्न पत्र हैं प्रथम प्रश्न पत्र में दोषादीनां स्वरूपादि विज्ञानम्, शरीरवाद्योः विशिष्टकर्माणि तथा शरीर पोषणम् हैं। द्वितीय प्रश्नपत्र में धातुमल-विज्ञान हैं।

ए० एम० बी० एस० पाठ्यक्रम में द्वितीय वर्ष में तीन विषय हैं। आयुर्वेद के आधारभूत विज्ञान, त्रिदोष तथा शारीर। इन विषयों में से 'आयुर्वेद के आधारभूत विज्ञान' विषय को प्रथम वर्ष के 'पदार्थ-विज्ञान' विषय में समाविष्ट कर लिया गया है। इसका उल्लेख 'पदार्थ विज्ञान' विषय के साथ हो चुका है। 'त्रिदोष' विषय को शारीर विषय के द्वितीय खंड के प्रथम प्रश्नपत्र में सम्मिलित कर लिया गया है। 'शारीर' विषय के तीन प्रश्न पत्र ए० एम० बी० एस० पाठ्यक्रम में हैं। प्राचीन शारीर, अर्वाचीन शारीर (Anatomy), अर्वाचीन शारीर क्रिया विज्ञान (Physiology)। इनमें से प्रथम दो प्रश्नपत्र प्रथम खंडके प्रथम प्रश्नपत्र में तथा तृतीय प्रश्न पत्र द्वितीय खंड के प्रथम तथा द्वितीय प्रश्नपत्र में समाविष्ट होता है। इस प्रकार से प्रथम परीक्षा के 'शारीर' नाम से एक विस्तृत विषय पाठ्यक्रम के लिए निर्धारित है।

'शारीर' विषय में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया गया है। इस विषय का पाठ्यक्रम इस प्रकार से बनाया गया है जिससे विद्यार्थियों में आयुर्वेद के प्रति प्रेम, श्रद्धा, तथा विश्वास उत्पन्न हो सके। ए० एम० बी० एस० पाठ्यक्रम में शरीर विषय में यह दोष है कि विद्यार्थियों को शारीर विषय में प्राचीन शारीर तथा अर्वाचीन शारीर पृथक्-पृथक् रूप से पढ़ाये जाते हैं। आयुर्वेद महाविद्यालयों में अर्वाचीन शारीर पर ही विशेष ध्यान दिये जाने के कारण, तथा अर्वाचीन शारीर के विशेष रूप से प्रत्यक्षमूलक होने के कारण विद्यार्थी प्राचीन शारीर को अवैज्ञानिक तथा हेय समझने लगते हैं। नवीन पाठ्यक्रम में मूल आधार प्राचीन शारीर रखा गया है तथा उसके साथ ही अर्वाचीन शारीर को सम्बद्ध कर दिया गया है। इससे प्राचीन शारीर के साथ अर्वाचीन शारीर को पढ़ कर भी विद्यार्थी का दृष्टिकोण आयुर्वेद-प्रधान होगा।

शारीर विषय की अध्ययन की वर्तमान पद्धति संस्थान प्रधान है। भिन्न-भिन्न संस्थाओं का पृथक् रूप में निवद्ध करके अध्ययन कराया जाता है। नवीन पाठचक्रम में इन संस्थानों का समावेश आयुर्वेद-पद्धति के अनुसार स्रोतस्, मर्म, इन्द्रिय, मनस्, अवयव, दोष, धातु आदि में कर लिया गया है। शारीर विषय के पाठचक्रम में प्रारंभ में ही स्पष्ट रूप से निर्देश कर दिया गया है कि इसकी शिक्षा प्रत्यक्षमूलक आयुर्वेदीय एवं आधुनिक मतानुसार होगी। आधुनिक शारीर क्रिया-विज्ञान (फिजिओलोजी) को संक्षिप्त रूप से उपर्युक्त विषयों के साथ समन्वयात्सक रूप से पढ़ाया जायगा।

नवीन पाठचक्रम में शारीर विषय का अनावश्यक विस्तार नहीं किया गया। ए० एम० बी० एस० पाठचक्रम में शारीर विषय का अत्यधिक विस्तृत अध्ययन कराया गया है। इतना विस्तृत अध्ययन विद्यार्थियों के क्रियात्मक जीवन में निरुपयोगी होता है। इस कारण इस विषय को उचित विस्तार के साथ पढ़ाना चाहिए। नवीन पाठचक्रम में इन सब तथ्यों का ध्यान रखा गया है।

शारीर विषय के लिए निर्दिष्ट पाठचग्रन्थ **प्रत्यक्ष शारीर**-गणनाथ सेन, **अभिनव शवच्छेद विज्ञान**-हरिस्वरूप कुलश्रेष्ठ, **शरीर क्रिया विज्ञान**-रणजीत राय, **अभिनव शारीर क्रिया विज्ञान**--प्रियव्रत शर्मा, **फिजिओलोजी**-केनेथ वाकर--उचित रूप से अर्वाचीन शारीर का ज्ञान विद्यार्थियों को करा देते हैं।

शारीर विषयक पाठचक्रम में कुछ त्रुटियाँ भी रह गई हैं। इन त्रुटियों का उल्लेख करना भी आवश्यक है। संभवत: ये त्रुटियाँ पाठचक्रम बनाने में अत्यन्त शीघ्रता होने के कारण रह गयी हैं। यथा पाठचक्रम में अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का विशेष अध्ययन नहीं कराया गया। प्राणी की शारीरिक प्रक्रियाओं में इन ग्रन्थियों का महत्त्वपूर्ण योग है। यदि इस प्रकार के कुछ स्थल पाठचक्रम में और जोड़ दिये जाते तो पाठचक्रम की उपादेयता और भी अधिक बढ़ जाती।

## तृतीय वार्षिक परीक्षा—द्वितीय परीक्षा

**द्रव्यगुण**—ए० एम०बी० एस० पाठचक्रम में द्रव्यगुण विषय का एक पत्र है। इस पत्र में द्रव्यगुण का सिद्धान्त भाग, परिभाषाएं द्रव्यों का वर्गीकरण, गुणआदि का विवेचन, पाश्चात्य द्रव्य आदि सभी का समावेश कर दिया है। इस प्रकार अधिक विस्तृत विषय को एक पत्र में सीमित करने से इस विषय के साथ उचित न्याय नहीं हो पाता।

नवीन पाठचक्रम में द्रव्यगुण के दो पत्र हैं। प्रथम पत्र में द्रव्यगुण का सिद्धान्त भाग, पारिभाषिक शब्दों, गुणों तथा वर्गों का परिचय है। द्वितीय पत्र में द्रव्यों का वर्गीकरण, अंग, रस, गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाव तथा आमयिक प्रयोग, कुछ औषधियों का सामान्य परिचय तथा सामान्य गुण, कुछ आधुनिक औषधियाँ आदि दिये गये हैं। ए० एम० बी० एस० पाठचक्रम की अपेक्षा नवीन पाठचक्रम में कुछ अध्याय बढ़ा दिये गये हैं।

यथा——चरक-सुश्रुत में वर्णित गणों की औषधियों का स्थूल परिचय। पार्थिव द्रव्यों में रस, महारस, साधारण रस, लौह, रत्न और उपरत्न आदि, फेनाश्म (संखिया), अभ्र, शिलाजतु, सौवीरादि अंजनों का सामान्य गुण।

इसके अतिरिक्त २१ वनस्पतिज औषधियों तथा ७ जान्तव द्रव्य बढ़ा दिये गये हैं। द्रव्यगुण के पाठचक्रम में ए० एम० बी० एस० पाठ्यक्रम में वर्णित सभी आधुनिक औषधियाँ सम्मिलित कर ली गई हैं। साथ ही नवीनतम आधुनिक औषधियों—— पेनिसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसीन-क्लोरोमाइसिटीन, आरोमाइसीन आदि के अध्ययन पर विशेष बल दिया गया है। ये सब तथ्य नवीन पाठचक्रम की उपयोगिता को बढ़ाते हैं।

नवीन पाठचक्रम में रसशास्त्र में प्रयुक्त होनेवाले अनेक द्रव्यों (मृगशृंग, अग्निजार, मुक्ता, प्रवाल, शंख, शुक्ति, समुद्रफेन, वराटिका आदि) को द्रव्यगुण के पाठचक्रम में रखा गया है। इन सब द्रव्यों को रसशास्त्र के पाठचक्रम में विस्तार के साथ पढ़ाया जाता है। अत: इन द्रव्यों को द्रव्यगुण को पाठचक्रम न रखा जाता तो अधिक उपयुक्त होता तथा इस विषय का अनावश्यक विस्तार न होता।

## रसशास्त्र

ए० एम० बी० एस० पाठचक्रम में रसशास्त्र का एक प्रश्नपत्र तथा दो क्रियात्मक हैं। प्रश्नपत्र में रसशास्त्र का सिद्धान्त भाग, रसशास्त्र ये प्रयुक्त होनेवाले यन्त्र, परिभाषायें आदि, रस-द्रव्यों का वर्गीकरण, शोधन, मारण आदि दिये गए हैं। दोनों क्रियात्मक में भैषज्य कल्पना दी गई हैं।

नवीन पाठचक्रम में रसशास्त्र का पुराना पाठचक्रम सम्पूर्ण रूप से उतार दिया गया है। यह रस-शास्त्र के

प्रथम प्रश्नपत्र में है। किन्तु कुछ अंश जो भैषज्य कल्पना से अधिक सम्बन्धित है। जैसे मान परिभाषा, औषधियों के ग्रहणीय अंग, औषधियों का सेवन काल, पथ्यनिर्माण आदि रसशास्त्र के द्वितीय पत्र में समाविष्ट कर दिये गए हैं। दूसरे पत्र में भैषज्य कल्पना, रस, रसायन, मिश्रयोग आदि दिए गए हैं। रस शास्त्र के पाठ्यक्रम का इस प्रकार का संगठन औषधिनिर्माण की दृष्टि से छात्रों के लिए अधिक उपयोगी है।

ए० एम० बी० एस० पाठ्यक्रम में रस शास्त्र के पाठ्यक्रम के साथ आधुनिक द्रव्यगुण (Materia Medica) का फार्मेसी तथा डिस्पेंसिंग का भाग भी है। नवीन पाठ्यक्रम में इस अंश का समावेश न तो द्रव्यगुण के पाठ्यक्रम के साथ तथा न ही रसशास्त्रके पाठ्यक्रम के साथ दिया गया है। इनमें से अनेक अंश विद्यार्थियों के क्रियात्मक ज्ञान के लिए आवश्यक है। संभवत: यह अंश शीघ्रता के कारण उपेक्षित हो गया है। आशा है कि नवीन पाठ्यक्रम पर विचार करके इसका समावेश भैषज्य-कल्पना के अन्तर्गत कर लिया जायेगा।

रस-शास्त्र में गंधक एक महत्त्वपूर्ण पदार्थ है। इसे पाठ्यक्रम में सम्मिलित न करना एक गंभीर भूल है। आशा है कि इस भूल को सुधार लिया जायगा।

## अगदतन्त्र तथा व्यवहार-आयुर्वेद

ए० एम० बी० एस० पाठ्यक्रम में अगदतन्त्र तथा व्यवहार-आयुर्वेद का एक प्रश्नपत्र है जो दो खंडों में विभाजित है। पहले खंड में अगदतन्त्र विषविज्ञान (Toxicology) सहित हैं। तथा दूसरे खंड में व्यवहार आयुर्वेद (Medical jurisprudence) है। नवीन पाठ्य में भी इस विषय का एक पत्र है जो दो भागों में विभक्त प्रतीत होता है। प्रथम भाग में अगदतन्त्र (विषविज्ञान) का आयुर्वेदीय भाग रखा गया है तथा दूसरे भाग में व्यवहार आयुर्वेद तथा विष विज्ञान (पाश्चात्य) रखा गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि शीघ्रता के कारण उस विषय के पाठ्यक्रम पर उचित ध्यान नहीं दिया गया जिस में कुछ त्रुटियां भी आ गई है। यथा खनिज विष शीर्षक के अन्तर्गत अफीम, धतूर, कुचला, भांग, जयपाल, भल्लातक, तथा वत्सनाभ दिए गए हैं। ये विष निश्चित रूप से वनस्पतिजन्य हैं, खनिज नहीं है। इन के लिए पृथक् शीर्षक देना चाहिए। इसी प्रकार पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान में प्रचलित सल्फा ड्रग आदि को द्वितीय भाग में सम्मिलित किया जाता तो अधिक उपयुक्त रहता।

नवीन पाठ्यक्रम में व्यवहार आयुर्वेद के कोर्स को अत्यन्त संक्षिप्त कर दिया है तथा उस के कई उपयोगी अंश छोड़ दिए गए हैं। इस विषय पर अधिक उदार दृष्टिकोण से विचार किया जाना उचित है। भविष्य में आयुर्वेद के स्नातक अवश्य ही उच्च पदों पर अधिष्ठित होंगे। जिस प्रकार सिविल सर्जन, असिसटेन्ट सिविल सर्जन आदि को न्यायालय में अनेक प्रकार की साक्षी देनी होती है, उसी प्रकार आयुर्वेद के स्नातकों को भी न्यायालय के समक्ष साक्षी के लिए उपस्थित होना होगा। इस अवस्था में इन स्नातकों का व्यवहार-आयुर्वेद का अल्प ज्ञान लज्जा का कारण होगा। अतः आयुर्वेद के स्नातकों को व्यवहार-आयुर्वेद का विस्तृत ज्ञान कराना अत्यन्त आवश्यक है। नवीन पाठ्यक्रम में मृत्यूत्तर शवच्छेद (Post Mortem) आदि आवश्यक विषयों का उचित मात्रा में समावेश अवश्य ही होना चाहिए। आशा है कि पाठ्यक्रम पर विचार करते समय इसे अवश्य ठीक कर दिया जायेगा।

ए० एम० बी० एस० पाठ्यक्रम में तृतीय वर्ष में पांच विषयों द्रव्यगुण- रस शास्त्र-स्वस्थवृत्त-अगदतन्त्र व व्यवहार आयुर्वेद तथा निदान की परीक्षा ली जाया करती है, परन्तु नवीन पाठ्यक्रम में तृतीय तथा अगदतन्त्र व व्यवहार आयुर्वेद रखे गए हैं। तृतीय वर्ष में विषय कम रखने का मुख्य कारण सम्भवत: यह हो सकता है कि द्रव्यगुण विषयों पर अधिक बल दिया जा सके।

## उपाधि परीक्षा

नवीन पाठ्यक्रम में उपाधि परीक्षा दो खण्डों में विभक्त की गई है। प्रथम खण्ड तथा द्वितीय खण्ड।

## उपाधि परीक्षा—प्रथम खंड

**निदान**—ए० एम० बी० एस० पाठ्यक्रम में निदान विषय तृतीय वर्षमें पढ़ाया जाता है परन्तु नवीन पाठ्यक्रम में इसे चतुर्थ वर्ष (उपाधि परीक्षा-प्रथम खण्ड) में रखा गया है। निदान विषय में ही ए० एम० बी० एस० पाठ्यक्रम का Pathology & Bacteriology (विकृति विज्ञान व

जीवाणु विज्ञान) विषय समाविष्ट कर दिया गया है। अर्वाचीन चिकित्सा विज्ञान में विकृति विज्ञान व जीवाणु विज्ञान रोगोंके निदान के निमित्त ही प्रयुक्त होता है। अतः इस विषय का निदान में अन्तर्भाव कर देना समुचित ही है। इस से विद्यार्थी इस विषय का आयुर्वेद विषयक उपयोग ठीक प्रकार से कर सकेंगे।

नवीन पाठचक्रम में विकृति विज्ञान को बहुत कम स्थान दिया गया है। यथा शोष आदि की विकृति (Pathology) का सामान्य ज्ञान होना आवश्यक है। इस के अतिरिक्त कुछ जीवाणु यथा B. Tantani, B. Typhosus, b. Pestis, B. Influenza, spirocheta of syphilis, B.Gonococcus, आदि तथा कुछ मुख्य पराश्रयी (parasites) नहीं दिए गए हैं। विचार करके उन को भी समाविष्ट कर लेना चाहिए।

नवीन पाठचक्रम में एक अन्य भयंकर भूल है। पाठचक्रम में निदान विषय के १००-१०० अंक के दो प्रश्न-पत्रों का उल्लेख है। परन्तु पाठचक्रमों में एक ही प्रश्न-पत्र का विवरण उपलब्ध होता है। यह भूल अत्यन्त शीघ्रता के कारण ही हो गई प्रतीत होती है। आशा है कि इस भूल का भी तुरन्त ही शोधन किया जायेगा।

## प्रसूतितन्त्र, रजोरोग एवं कौमारभृत्य

ए० एम० बी० एस० परीक्षा में इस विषय का एक पत्र हैं तथा उसी में प्राचीन व अर्वाचीन प्रसूति तन्त्र, स्त्री रोग व कौमार भृत्य सम्मिलित है। नवीन पाठचक्रम में इस विषय को दो प्रश्नपत्रों में विभक्त किया गया है। प्रथम पत्र में प्रसूति तन्त्र तथा द्वितीय पत्र में स्त्री रोग व कौमारभृत्य हैं। इस पत्र के साथ भी शीघ्रता के कारण न्याय नहीं हो सका है। ए० एम० बी० एस० पाठचक्रम में इस विषय में निर्दिष्ट आयुर्वेद भाग को नवीन पाठचक्रम में जैसा का तैसा उतार दिया गया है। अर्वाचीन भाग को बिल्कुल छोड़ दिया गया है। अर्वाचीन भाग का भी कुछ अध्ययन विद्यार्थियों के लिए आवश्यक हो सकता है। वर्तमान युग में गर्भ-निरोध की विधियों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। प्रमुख पाठचक्रम में उस विषय को बिलकुल छोड़ दिया गया है। आशा है इसे भी इस पाठचक्रम में स्थान दिया जायेगा।

## स्वस्थ वृत्त

ए० एम० बी० एस० पाठक्रम में स्वस्थवृत्त विषय तृतीय वर्ष में पढ़ाया जाता है तथा इस विषय का एक प्रश्न-पत्र रखा गया है। इस पत्र के दो भाग किए गए हैं—वैयक्तिक स्वस्थवृत्त तथा सार्वजनिक स्वस्थवृत्त। नवीन पाठचक्रम में स्वस्थ वृत्त विषय को चतुर्थ वर्ष में स्थान दिया गया है तथा इस विषय के दो प्रश्नपत्र रखे गए हैं। प्रथम वैयक्तिक स्वस्थवृत्त का तथा दूसरा सार्वजनिक स्वस्थ वृत्त का। इस प्रकार से स्वस्थ वृत्त विषय का महत्व पहिले से अधिक बढ़ा दिया गया है।

ए० एम० बी० इस० पाठचक्रम में निर्दिष्ट अनेक स्थल यथा रोग-आरोग्य का लक्षण, रोगों के प्रकार, भेद, प्रज्ञापराध, शरीर-शोधन, अहितकर कार्य, आहार विधि, विरोधायतन पथ्य-अपथ्य विचार, व्रत उपवास आदि नवीन पाठचक्रम में समाविष्ट नहीं है। आयुर्वेद की दृष्टि से इन विषयों का पर्याप्त महत्त्व है। इस के अतिरिक्त प्रश्न पत्रों का विभाजन भी ठीक प्रकार से नहीं किया गया है। मल-मूत्र-कूडा आदि के दूर करने के उपाय, वायु-संचार, जल-शोधन विधि, जनपदोध्वंस आदि स्थल सार्वजनिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित है। इन को व्यक्तिगत स्वास्थ्य के पत्र में रखा गया है। भोजन का विषय व्यक्तिगत स्वास्थ्य से सम्बन्धित है। इसे सार्वजनिक स्वास्थ्य के पत्र में रखा गया है। कुछ इधर-उधर बिखरे से पड़े हैं। मल-मूत्र-कूड़ा आदि को दूर करने के प्राचीन तथा अर्वाचीन उपाय स्थल को प्रथम प्रश्न पत्र में तथा गन्दी नालियों के पानी के निकास की व्यवस्था-स्थल को द्वितीय पत्र में स्थान दिया गया है। इस प्रकार के स्थलों को एक ही स्थान पर रखना उचित है। इन सब त्रुटियों का कारण मुख्यतः पाठचक्रम बनाने की अत्यन्त शीघ्रता ही प्रतीत होता है। आशा है इन सब त्रुटियों को शीघ्रातिशीघ्र दूर किया जायेगा।

## चरक-संहिता पूर्वार्द्ध

नवीन पाठचक्रम में चरक-संहिता यह नवीन विषय सम्मिलित किया गया है। यद्यपि चरक संहिता का अधिकांश भाग विभिन्न विषयों के साथ विद्यार्थियों को पढ़ा दिया जाता है, तथापि साहित्य रूप में इस विषय का सम्पूर्ण अध्ययन आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त

आवश्यक है। चरक संहिता के सम्पूर्ण अध्ययन से ही विद्यार्थी आयुर्वेद को अच्छी प्रकार समझ सकता है। चरक संहिता को पूर्वार्द्ध (सूत्रस्थान-विमान स्थान-निदानस्थान-तथा शारीरस्थान) तथा उत्तरार्द्ध (इन्द्रिय स्थान, निदान स्थान, कल्पस्थान तथा तथा सिद्धिस्थान) दो खण्डों में विभक्त करके पूर्वार्द्ध की परीक्षा चतुर्थ वर्ण तथा उत्तरार्द्ध की परीक्षा पंचम वर्ष में ली गई है। इस विषय का समावेश निःसन्देह ही विद्यार्थियों में आयुर्वेद के ज्ञान को तथा आयुर्वेद के प्रति प्रेम को बढ़ायेगा।

## उपाधि परीक्षा–द्वितीय खंड

**काय-चिकित्सा**

ए० एम० बी० एस० पाठ्यक्रम में चिकित्सा के दो प्रश्नपत्र हैं। नवीन पाठ्यक्रम में भी काय चिकित्सा के दो प्रश्नपत्र दिए गए हैं। पहिले पाठ्य-क्रम का प्रायः सारा विषय नवीन पाठ्यक्रम में समाविष्ट कर लिया गया है। इस के अतिरिक्त कुछ अंश बढ़ाए भी गए हैं। यथा—क्रिया—दैवव्यपाश्रय आदि, षड् धातुज, दोषविकृति व चिकित्सा, मानस रोग, मानस रोग हेतु आदि स्थल बढ़ाए गए हैं। कुछ अर्वाचीन रोग भी बढ़ाएं गए हैं। इस पत्र में रोगों का निदान आदि या विवेचन प्राच्य तथा पाश्चात्य मतानुसार करने का निर्णय किया गया है। पाठ्यक्रम में स्पष्ट ही लिखा है। उपर्युक्त रोगों के उपद्रव आदि का विवेचन प्राच्य तथा पाश्चात्य मत से अपेक्षित है, किन्तु चिकित्सा आयुर्वेद के आधार पर होनी चाहिए।

उपर्युक्त रोगों के अतिरिक्त प्रथम पत्र में समाविष्ट रोगों का भी अर्वाचीन दृष्टि से कारण, लक्षण, साक्षेप निदान तथा उपद्रव का विवेचन करना अभीष्ट हैं।

निम्नलिखित रोगों के निदान का विवेचन प्राच्य तथा पाश्चात्य मतानुसार होगा और चिकित्सा का विवेचेन आयुर्वेद मतानुसार होगा।

इन वाक्यों से स्पष्ट है कि सभी रोगों के निदान का विवेचन विद्यार्थियों को प्राच्य तथा पाश्चात्य मतों से समन्वयात्मक रूप में कराया जाएगा। यह होना भी चाहिए। चिकित्सा में आयुर्वेद प्रणाली को ही बल दिया जाना चाहिए तथापि नवीन अनुसन्धानों का चिकित्सा प्रयोग आदि आयुर्वेदिक दृष्टि से कराया जा सके तो उत्तम ही है।

**शल्य**

ए० एम० बी० एस० पाठ्यक्रम में शल्य के दो प्रश्न पत्र हैं। नवीन पाठ्यक्रम में भी शल्य के दो प्रश्न पत्र हैं। ए० एम० बी० एस० पाठ्यक्रम में पत्रों का विभाजन इस प्रकार किया गया है। प्रथम प्रश्न पत्र में आयुर्वेदीय प्राच्य शल्यतन्त्र है तथा द्वितीय पत्र में पाश्चात्य शल्यतन्त्र है। इस प्रकार का विभाजन विद्यार्थियों में मतिभ्रम उत्पन्न करता है तथा आयुर्वेद तथा पाश्चात्य चिकित्सा में पृथक रूप से भेद स्थापित करता है। नवीन पाठ्यक्रम में पत्रों का विभाजन आयुर्वेद का पाश्चात्य चिकित्सा के पृथकत्व के दृष्टिकोण से नहीं प्रत्युत विषय की दृष्टि से किया गया है। शल्यतन्त्र का समग्र पाठ्यक्रम उचित विस्तार के साथ नवीन पाठ्यक्रम में दे दिया गया है। इस प्रकार से शल्य की प्रक्रियाएँ-शस्त्र यन्त्र आदि का परिचय विद्यार्थियों को दोनों मतों के अनुसार समन्वयात्मक रूप से प्राप्त हो जाता है। नवीन पाठ्यक्रम के अनुसार इस विषय का अध्ययन करने से विद्यार्थी एक ऐसे ज्ञान से भरपूर हो जाता है जो आयुर्वेदिक तथा पाश्चात्य दोनों ही प्रकार के शल्य ज्ञान से भरपूर है। यथा अर्श-भगन्दर-अश्मरी आदि की आयुर्वेदीय शस्त्र चिकित्सा के ज्ञान, साथ ही पाश्चात्य शस्त्र चिकित्सा का भी ज्ञान कराया जाता है।

**शालाक्य**

ए० एम० बी० एस० पाठ्यक्रम में शालाक्य विषय का एक पत्र है। नवीन पाठ्यक्रम में भी शालाक्य विषय का एक प्रश्न पत्र है। शालाक्य के अध्याय इस प्रकार हैं—

१. नेत्ररोग, कर्णरोग, नासारोग, शिरोरोग, मुखरोग।

नवीन पाठ्यक्रम में पहिले ए० एम० बी० एस० पाठ्यक्रम के सभी रोगों आयुर्वेदिक भाग को ले लिया गया गया है। पहिले इन रोगों के भेद-निदान-लक्षण-चिकित्सा आदि का विस्तार से ज्ञान कराया गया है। इस के बाद विशिष्ट महत्त्वपूर्ण रोग जो आयुर्वेद में नहीं है या अपूर्ण हैं उन का ज्ञान प्राप्त कराया गया है। यथा—

मुख, गल एवं अन्य मार्ग के रोग–जिह्वाव्रण-अन्न-मार्ग की व्याधियाँ एवं संकोच।

कर्णरोग—वाधिर्य-कारण और चिकित्सा, फरकुलोसिस-कर्ण शल्य। नासा रोग-गल एवं नासा की व्याधियाँ-लुपडी-केरी एवं कण्ठशालूक, गले की व्याधियाँ एवम् अर्बुद, स्वर-

यन्त्र की व्याधियाँ एवं अर्बुद। नेत्र रोग-नेत्र परीक्षा, दृष्टि परीक्षा-वर्त्म रोग-अश्रु ग्रन्थि एवम् उस के रोग, अक्षि गह्वर (अक्षि अधिष्ठान) के रोग, शुक्ल कृष्ण पटल एवम् वाल के रोग, अधिशून्य।

इस प्रकार से सम्पूर्ण शालाक्य तन्त्र का प्राचीन व अर्वाचीन दृष्टि से ज्ञान प्राप्त कराया गया है। आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिए इसी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना अधिक उपादेय है।

**चरक संहिता (उत्तरार्ध)**

इस पत्र में चरक संहिता के अवशिष्ट स्थान–इन्द्रिय स्थान, चिकित्सा स्थान, कल्पस्थान और सिद्धि स्थान।

इस प्रकार के नवीन पाठ्यक्रम का पूरा अध्ययन व मनन करने के पश्चात् उस का ए० एम० बी० एस० पाठ्यक्रम के साथ तुलनात्मक विवेचन करके उस के गुण व दोषों को दिखाने का प्रयत्न किया गया है।

नवीन पाठ्यक्रम पर तीन प्रकार के आक्षेप किए जाते हैं।

१. प्रवेश योग्यता सम्बन्धी।

२. पाठ्यक्रम सम्बन्धी।

३. उपाधि सम्बन्धी।

१. प्रवेश योग्यता सम्बन्धी आक्षेप का उत्तर पहिले दिया जा चुका है। फिर भी संक्रान्ति काल में इस सम्बन्ध में शिथिलता करना उचित ही है। जब तक आयुर्वेद ग्रुप इन्टरमीजीयेट में चालू नहीं होता तथा उसके विद्यार्थी नहीं आते तब तक प्रवेश के लिए संस्कृत की अनिवार्य योग्यता हटा देनी चाहिए तथा प्रथम वर्ष में संस्कृत का विशेष अध्ययन कर देना चाहिए।

२. पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में आक्षेप यही है कि नवीन पाठ्यक्रम में आधुनिक विज्ञान की उपेक्षा की गई है। यह आक्षेप नवीन पाठ्यक्रम का विचारपूर्वक अध्ययन न करने के कारण हैं। यह तथ्य सम्पूर्ण कोर्स की विवेचना में स्पष्ट किया जा चुका है।

३. तृतीय आक्षेप उपाधि पर है। उपाधि का 'आयुर्वेदीय' नाम होना इस आक्षेप का कारण है। इस आक्षेप के दो हेतु हैं —

क. उपाधि अंग्रेजी में होनी चाहिए। आयुर्वेदाचार्य उपाधि संस्कृत में।

ख. आयुर्वेदाचार्य उपाधि प्राइवेट परीक्षा द्वारा भी सरलता से प्राप्त की जा सकती है। पुनः इन्टरमीजियेट पास करके पांच वर्ष तक आयुर्वेद कालेज में नियमित अध्ययन करके आयुर्वेदाचार्य उपाधि प्राप्त करने का किसी को क्या प्रलोभन हो सकता है।

किन्तु यह तर्क असंगत है। आयुर्वेद की उपाधि संस्कृत में ही होनी चाहिए। पुनः किसी कालेज में नियमित रूप से अध्ययन करके सरकार द्वारा प्रदत्त उपाधि तथा प्राइवेट परीक्षा द्वारा प्राप्त उपाधि के महत्व में सदा ही अन्तर रहेगा तथा सरकार नियमित अध्ययन द्वारा प्राप्त उपाधि को सदैव अधिक महत्व देगी। फिर भी यह अधिक उत्तम होगा कि आयुर्वेदाचार्य उपाधिके स्थानपर अन्य कोई उपाधि यथा——आर्युविज्ञानाचार्य, भिषगाचार्य अथवा आयुर्वेदालंकार आदि या अन्य इसी प्रकार की कोई उपाधि प्रदान की जावे जो प्राइवेट परीक्षा से प्राप्त उपाधियों से भिन्न हो तो अधिक उपयुक्त रहेगा।

वस्तुतः आयुर्वेद के स्नातकों के सामने अनेक समस्यायें हैं। पांच वर्ष तक चिकित्सा शास्त्र के अध्ययन के उपरान्त भी जब आयुर्वेद का स्नातक चिकित्सा क्षेत्र में प्रवेश करता है तब उसके समुख विचित्र परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। सरकारी तथा व्यक्तिगत किसी भी क्षेत्र में वह अपनी प्रतिष्ठा नहीं पाता। किसी भी क्षेत्र में सामान्यतः वैद्यों का आदर न होने से वह अपने आपको डाक्टर कहलाने का प्रयत्न करता है तथा ऐलोपैथिक औषधियों के सहारे चिकित्सा में तात्कालिक सफलता प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। परन्तु इन अवस्थाओं में वह ऐलोपैथ चिकित्सकों के साथ संघर्ष में आता है और साथ ही उसे उन सरकारी बंधनों का भी मुकावला करना पड़ता है जो बन्धन ऐलोपैथ चिकित्सकों को नहीं बांधते। इसी कारण से कुछ सीमित व्यक्तियों को छोड़कर सर्वसाधारण स्नातक चिकित्सा क्षेत्र में प्रतिष्ठित नहीं हो पा सके हैं।

सरकारी क्षेत्र में उनकी और भी अधिक दुर्दशा है। आयुर्वेद के स्नातक ग्रामों में स्थित परिमित आयुर्वेदिक चिकित्सालयों में ही नियुक्ति पा सकते हैं। इन चिकित्सालयों की संख्या प्रतिबर्ष उत्तीर्ण होने वाले स्नातकों की तुलना में बहुत कम है। इन ग्राम चिकित्सालयों के अतिरिक्त अन्य सभी सरकारी क्षेत्र, पुलिस, सेना, बीमा करवाने, रेलवे आदि इन स्नातकों के लिए बंद हैं। मुख्य कस्बों तथा नगरों में आयुर्वेद चिकित्सालयों की संख्या न के बराबर है। आयुर्वेद के जो भी चिकित्सालय हैं

उनमें नियुक्त वैद्यों के पद तथा वेतन स्तर ऐलोपैथिक चिकित्सालयों में नियुक्त डाक्टरों की तुलना में अत्यन्त हीन हैं। इन चिकित्सालयों का व्यय ऐलोपैथिक चिकित्सालयों की अपेक्षा बहुत कम है। आयुर्वेद के स्नातकों को न्यायालय सम्बन्धी अधिकार भी प्राप्त नहीं हैं। आयुर्वेद की शिक्षा तथा चिकित्सा पर सरकार कितना कम रूपया व्यय करती है यह प्रतिवर्ष के सरकारी वजट से ज्ञात हो सकता है। उत्तर प्रदेश में स्थित तीन मेडिकल कालेजों पर तथा उत्तर प्रदेशीय ऐलोपैथिक चिकित्सालयों पर सरकार करोड़ों रुपया का व्यय करती है। यदि इस व्यय का दसवाँ हिस्सा भी सरकार आयुर्वेदिक कालेजों तथा आयुर्वेदीय चिकित्सालयों पर व्यय करे तो आयुर्वेद की बहुत अधिक उन्नति हो जावे तथा आयुर्वेद के स्नातकों के सब कष्ट दूर हो जावें। यह कितनी विडम्बना की बात है कि पांच वर्ष तक चिकित्सा-शास्त्र का अध्ययन करने के बाद आयुर्वेद के स्नातक के सामने यह समस्या हो कि वह क्या करे तथा उसे किसी प्रकार का सहारा न दिखाई दे। वह यह विचार करने के लिए वाध्य हो कि उस का पांच बर्ष का समय और शिक्षा पर व्यय किया गया धन व्यर्थ ही गया।

उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा उच्चस्तरीय आयुर्वेद शिक्षा समिति का निर्माण किया जाना तथा समिति द्वारा वर्तमान पाठ्यक्रम का प्रस्तुत किया जाना आयुर्वेद की उन्नति कि दिशा में एक सही कदम है। इसके द्वारा आयुर्वेद की अवश्य ही उन्नति होगी। इस प्रयत्न के लिए हमें उत्तर प्रदेशीय सरकार तथा मुख्य मन्त्री डा० सम्पूर्णानन्द की सराहना करनी चाहिए तथा उनको धन्यवाद देना चाहिए।

नवीन पाठ्यक्रम के निर्माण में अत्यन्त शीघ्रता करने के कारण अनेक त्रुटियाँ रह गई हैं जैसे कि पहिले दिखाया जा चुका है। इन त्रुटियों को दूर करने के लिए उत्तर प्रदेशीय सरकार को आयुर्वेद कालेजों के उपाध्यायों का एक सम्मेलन बुलाना चाहिए। संभवतः यह सम्मेलन बुलाया भी जा रहा है। इस सम्मेलन में पाठ्यक्रम पर गंभीरता से पूर्ण रूप से विचार करके कमियों को पूरा किया जाना चाहिए। इस प्रकार से पाठ्यक्रम सर्वांगपूर्ण बनाया जा सकेगा तथा आयुर्वेद उन्नति की दिशा में अग्रसर हो सकेगा।

उपर्युक्त विवेचन के साथ ही उत्तर प्रदेशीय सरकार तथा मुख्यमन्त्री डा० संपूर्णानन्द का ध्यान कुछ अन्य तथ्यों की ओर भी आकर्षित करना आवश्यक है।

उच्चस्तरीय आयुर्वेदीय शिक्षा समिति ने उत्तर प्रदेश के लिए आयुर्वेद का एक नवीन पाठ्यक्रम प्रस्तुत करने के साथ ही कुछ अन्य सुझाव भी आयुर्वेद की उन्नति के लिए पेश किये हैं। समिति ने आयुर्वेदिक चिकित्सकों तथा डाक्टरों के पद व वेतनस्तर की विषमता को दूर करके वैद्यों को समान वेतनस्तर व अधिकार प्रदान करने, आयुर्वेद कालेज में शिक्षकों के वेतनस्तरों को ऊँचा करने तथा आयुर्वेद कालेजों में अध्ययन के स्तर को ऊँचा करने की सिफारिश की है। उत्तर प्रदेशीय सरकार ने नवीन पाठ्यक्रम को तो इन्डियन मेडिसन बोर्ड से सम्बन्धित आयुर्वेद कालेजों में प्रचलित करा दिया है। परन्तु दूसरी सिफारिशों पर अभी तक कोई कार्यवाही नहीं की है। यदि उत्तर प्रदेशीय सरकार इन सिफारिशों को भी लागू कर देती तो संभवतः इस नवीन पाठ्यक्रम का इस प्रकार से विरोध न होता। यदि उत्तर प्रदेशीय सरकार दूसरी सिफारिशों को क्रियान्वित नहीं करती और इसमें असमर्थ रहती है तो नवीन पाठ्यक्रम आयुर्वेद के लिए अत्यन्त उपयोगी होता हुआ भी छात्रों को आकर्षित नहीं कर सकेगा। प्रदेशीय सरकार द्वारा समिति की सिफारिशों के अनुसार वैद्यों तथा डाक्टरों के वेतन की विषमता, आयुर्वेदीय चिकित्सालयों की दुरवस्था, आयुर्वेद चिकित्सकों की अधिकारहीनता आदि शीघ्र से शीघ्र दूर करने पर ही आयुर्वेद की विशेष उन्नति हो सकती है। इन सब कार्यों से नवीन पाठ्यक्रम का विरोध स्वयमेव शान्त हो जायगा।

इसके साथ ही उत्तर प्रदेशीय सरकार को इस तथ्य पर भी गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए कि आयुर्वेद शिक्षा समिति ने नवीन पाठ्यक्रम उत्तर प्रदेश के सभी आयुर्वेद महाविद्यालयों के लिए प्रस्तुत किया है। इस समिति में श्री राजेश्वर दत्त शास्त्री तथा द. अ. कुलकर्णी जैसे आयुर्वेद के प्रतिष्ठित विद्वान भी सम्मिलित थे। ये दोनों विद्वान क्रमशः हिन्दू विश्वविद्यालय काशी तथा लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ द्वारा संचालित आयुर्वेद महाविद्यालयों के प्रिंसिपल भी हैं। अत्यन्त दुःख की बात यह है कि इन्हीं दोनों आयुर्वेद कालेजों में उनके प्रिंसिपलों द्वारा सिफारिश किया हुआ कोर्स ठुकरा दिया है। आशा है कि उक्त

दोनों महानुभाव, उत्तर प्रदेशीय सरकार तथा इन्डियन मेडिसन बोर्ड दोनों विश्वविद्यालयों की कार्यकारिणी समिति को उक्त पाठ्यक्रम को क्रियान्वित कराने के लिए वाध्य करेंगे। यदि उक्त दोनों विश्वविद्यालय अपने आयुर्वेद कालेजों में इस पाठ्यक्रम को क्रियान्वित नहीं करते तो उत्तर प्रदेशीय सरकार तथा इंडियन मेडिसन बोर्ड को इनकी आर्थिक सहायता बंद करके उनकी डिग्री का रजिस्ट्रेशन बंद कर देना चाहिए। इससे आयुर्वेद का पाठ्यक्रम एक सही दिशा में चलाया जा सकेगा। इन विश्वविद्यालयों में नवीन पाठ्यक्रम का समावेश न होने की अवस्था में पाठ्यक्रम का निर्माण करनेवाले श्री राजेश्वर दत्त शास्त्री आदि तथा सरकार की नीयत में वैद्यों को संदेह बना रहेगा।

उत्तर प्रदेश के विभिन्न आयुर्वेद कालेजों में भिन्न-भि पाठ्यक्रमों के चलते रहने पर आयुर्वेद की शिक्षा के संबन् सदैव मतभेद बना रहेगा। आवश्यक यह है कि सं भारतवर्ष में आयुर्वेद का एक ही पाठ्यक्रम हो, तथापि उ प्रदेश में तो एक पाठ्यक्रम क्रियान्वित कराया ही जा सक है। उत्तर प्रदेशीय सरकार तथा इन्डियन मेडिसन बो का यह कर्त्तव्य है कि सभी आयुर्वेद कालेजों में एक ही प्र का पाठ्यक्रम चलाने की व्यवस्था करे।

आशा है कि आयुर्वेद के सभी प्रेमी डा० संपूर्णानन्द दृष्टिकोण के औचित्य को समझने की चेष्टा करेंगे। आ है कि यह छोटा-सा प्रयत्न नवीन पाठ्यक्रम को अच्छी प्र से मनन न करने से उत्पन्न उसके पक्ष व विपक्ष की आलोच को शान्त करने में सहायता करेगा।

उपाध्याय
गुरुकुलकांगड़ी आ० विश्वविद्यालय
हरद्वार

---

शेषांश ]

## रुदन्ती

[ ६४२ पृष्ठ

प्रयोग चल रहे हैं। इसके परिणाम शीघ्र ही ज्ञात होंगे तब रुदन्ती के गुण-धर्मों के बारे में और भी बहुत-सी जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

केरल-कोंकण व मैसूर में इसका प्रयोग विद्रधि-व्रण-ग्रंथि व कुष्ठ में होता है और सामान्य लोग भी इसको खरीद कर प्रयोग करते हैं। डा० मूर्ति को, जो उधर के ही रहने वाले हैं, वहाँ से ही प्रेरणा मिली होगी। इस औषधि के विजय में और जानकारी की जा रही है। इसे संग्रह कर हिन्दू विश्वविद्यालय की आयुर्वेदिक फार्मेसी में वैद्य त जनता के लाभार्थ रखा गया है, जो सज्जन लेना चाहें व से मँगा सकते हैं। इस औषधि के बारे में अधिक अधिक जानकारी प्राप्त हो सके और एक ही व्यक्ति इस अधिकारी न बने और जन-सुविधा में बाधा न हो—एत यह प्रबंध किया गया है। इन पंक्तियों के लेखक के यहाँ भी इसको मँगाया जा सकता है—किन्तु अधिक मात्रामें आ वेंदिक फार्मेसी, हिन्दूविश्वविद्यालयसे ही मँगाना उचित हो

प्राध्यापक—द्रव्यगुणरस-शास्त्र
आयुर्वेदीय स्नातकोत्तर शिक्षण-केन्द्र
जामनगर

# अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की नियमावली

**श्रीयुत मंगलदास स्वामी, आयुर्वेदाचार्य**

पिछले बीस वर्ष से अ० भा० आ० महासम्मेलन की नियमावली का संशोधन होता चला आ रहा है। फिर भी अभी तक नियमावली निरापद नहीं हो पायी है। पहले जो नियमावली थी वह संस्कृत भाषा में थी और उसमें सामान्य तथा आवश्यक मात्र नियम थे। जोधपुर सम्मेलन के बाद इसमें परिवर्तन हुआ और नियमावली हिन्दी तथा अंग्रेजी में निकाली गयी।

लाहौर सम्मेलन में सम्मिलित होने वाले वैद्यबन्धुओं को स्मरण होगा कि वहाँ अंग्रेजी की नियमावली ने हिन्दी नियमावली को कैसे परास्त किया। राजकोट सम्मेलन में नियमावली ने सम्मेलन को ही निरर्थक सिद्ध कर दिया। उस व्यर्थ हुए सम्मेलन की पूर्ति फिर लाहौर में स्थायी समिति ने की। पिछले देहली सम्मेलन में तैयार की गयी नियमावली प्रकाश में आए बिना ही विलीन हो गयी। फिर इन्दौर सम्मेलन में इसका संशोधन हुआ। कोट्टकल तथा बंगलौर के संशोधित रूप की नियमावली अब सामने है। इसका पुनः संशोधन हो रहा है। इस संशोधित रूप के सामने आने पर संभव है इसमें भी कई संशोधन अपेक्षित हों।

देश-काल की परिवर्तन परिस्थिति तथा कार्य-व्यवहार में समागत कठिनाइयों के कारण नियमावली में संशोधन की आवश्यकता होती है। पर यह आवश्यकता चलती ही रहे यह आवश्यक नहीं। नियमावली संस्था की कार्य-पद्धति का विधान है। मेरी समझ से वह सीधा, साफ तथा संक्षिप्त होना चाहिए। विधान जितना ही लम्बा होता है उसमें उलझनें बढ़ सकती हैं। भाषा की अस्पष्टता भी समय पर कठिनाई उत्पन्न कर देती है। दोहरी विधि भी विवाद का हेतु है। हमारी वर्तमान नियमावली में अंशांशतः तीनों ही तरह की कठिनाइयों का समावेश है। नियमावली अत्यन्त लम्बी है, भाषा भी कहीं-कहीं अस्पष्ट है और अनावश्यक नियम भी है। इन दोषों का अबकी बार के संशोधन में निराकरण कर दिया जाय तो ठीक है, अन्यथा पुनः संशोधन की आवश्यकता होगी।

वर्तमान नियमावली का ढाँचा कांग्रेस की नियमावली के अनुसार बनाया गया है। संगठन को व्यापक तथा विस्तृत बनाने में यह तरीका अवश्य ही उपादेय है यदि इसीको आधार बना लिया जाय। पर उक्त नियम नियमावली की केवल शोभा बढ़ाने का ही काम करता है, व्यवहार में उसका सर्वथा अभाव है। भारत के किसी प्रादेशिक क्षत्र में इस तरह के संगठन का अभी आरम्भ ही नहीं हुआ है। ऐसी स्थिति में नियम होते हुए भी न हुए जैसे ही हैं। यदि संगठन इसी रूप से करना है तो इस नियम को काम में लाया जाय। अन्यथा संगठन का सामान्य तरीका ही रखना हो तो तदनुरूप नियम बनाया जाय।

मेरा जहाँ तक ध्यान है, नियमावली के कई नियमों के अनुसार कार्य नहीं किया जाता जबकि नियम बने हुए हैं। जैसे धारा ४ (ख) भाग की संख्या ७ में निर्देश है कि कार्यकारिणी की स्वीकृति से ही सदस्यता स्वीकृत होगी। मेरी समझ से न तो इस नियम की आवश्यकता ही है और न यह व्यवहार में ही आता है।

इसी तरह धारा १५ सम्मेलन की कार्यकारिणी का संगठन तथा धारा २२ विद्यापीठ की प्रबन्ध समिति का निर्माण सम्बन्धित धाराओं में निरूपित तरीके से नहीं होता। ये उदाहरण हमें बताते हैं कि इनसे सम्बन्धित नियम क्या नियमावली की शोभा बढ़ाने के लिए ही नहीं रखे गये हैं?

नियमावली में प्रदेश सम्मेलनों सम्बन्धी कोई स्पष्ट नियम नहीं है कि प्रदेश सम्मेलन की अ० भा० वैद्य सम्मेलन से सम्बन्धित होने पर क्या स्थिति रहेगी। धारा ७ में जो उल्लेख है वह धारा ४ के अनुसार संगठन का रूप बनने से सम्बन्धित है। वर्तमान में २५) पचीस रुपये सम्बन्ध शुल्क ले कर चाहे जैसी संस्था को सम्बन्धित कर लिया जाता है। सम्बन्धित होने के नाते सामान्य-सी संस्था तथा प्रदेश सम्मेलन दोनों ही की एक-सी स्थिति है। जैसे राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन तथा केकड़ी की आयुर्वेद कांग्रेस कमेटी। आयुर्वेद कांग्रेस कमेटी एक स्थानीय संस्था है। राजस्थान प्रदेश सम्मेलन पूरे प्रदेश का प्रति-

निधित्व करता है। क्या दोनों की समानता है? परन्तु अ० भा० वैद्य सम्मेलन के सामने ये दोनों एक ही स्तर पर है। संगठन में इस तरह की सदोषता रहने के कारण ही अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का संगठन सम्यक् स्थिति पर नहीं बन सका है। एक-एक प्रदेश से दो-दो, तीन-तीन संस्थाओं को सम्बन्धित कर लेना प्रदेश सम्मेलनों के महत्त्व को समाप्त करना है।

अपूर्ण तथा अव्यवहार्य की तरह अनावश्यक नियम भी नियमावली में नहीं रहने चाहिये। जैसे वर्तमान नियमावली की धारा ५ के (ख) और (ग) भाग। प्रत्येक नियम का सम्बन्ध उस उद्देश्य से रहता है जिसकी उसे पूर्ति करनी होती है। यदि कोई नियम अपने उद्देश्य की ठीक से पूर्ति नहीं करता तो वह नियम भी निरर्थक हो जाता है।

नियमावली में विद्यापीठ के सम्पूर्ण कार्य संचालन के लिए एक प्रबन्धक समिति के संगठन की व्यवस्था है। इस प्रबन्धक समिति में ९४ सम्मेलन के संरक्षक-आश्रयदाता सदस्य, पचास स्थायी समिति द्वारा निर्वाचित सदस्य, सात पदाधिकारी, दश छात्र प्रतिनिधि, विद्यापीठ से सम्बन्धित प्रत्येक विद्यालय के आचार्य तथा विशिष्ट सदस्य माने गए हैं। करीब दो सौ सदस्यों की संख्यावाली इस प्रबन्धक समिति की आवश्यक उपस्थिति पाँच सदस्यों की रक्खी गयी है जबकि सात तो विद्यापीठ के विशुद्ध पदाधिकारी ही हैं। क्या यह पाँच सदस्यों की उपस्थिति, उपर्युक्त प्रबन्धक समिति का संगठन जिस उद्देश्य से किया गया है, उसकी पूर्ति कर सकती है? कोई भी विचारशील व्यक्ति ऐसा स्वीकार नहीं कर सकता। प्रथम तो उसका संगठन ही उक्त रूप में नहीं होता, पश्चात् उपस्थिति सम्बन्धी यह छूट उसको और भी महत्त्वहीन बना देती है।

इसी तरह अ० भा० आ० महासम्मेलन की कार्यकारिणी की स्थिति है। उसकी आवश्यक उपस्थिति आठ सदस्यों की है जबकि सम्मेलन के पदाधिकारियों की संख्या ही बारह है। महासम्मेलन की स्थायी समिति का भी कुछ-कुछ इसी तरह का ढंग है। करीब एक सहस्र सदस्यों वाली स्थायी समिति की आवश्यक उपस्थिति इक्कीस है। स्थायी समिति ही आजकल सम्मेलन के सम्पूर्ण कार्यों का संचालन करती है जबकि करना चाहिये कार्यकारिणी को। कार्यकारिणी का संगठन भी नियमानुसार शायद ही होता हो।

प्रधान संपादक, राजस्थान प्रदेश वैद्य
सम्मेलन पत्रिका, मोतीडूंगरी, जयपुर
(राजस्थान)

जब संस्था के कार्य संचालन के पुर्जे ही इस तरह ढीले-ढ हों तब उस द्वारा संचालित कार्य में तत्परता, दृढ़ता त वास्तविकता का शैथिल्य रहना अनिवार्य है।

नियमों की अपूर्णता तथा अव्यावहारिकता जिस त संस्था के कार्य में बाधक है उसी तरह नियमों का पर विरोध भी उलझन पैदा करता है। धारा १७ में के प्रतिनिधि हो सकते हैं इसका स्पष्टी करण हैं। उ (क) भाग में जिनको प्रतिनिधित्व दिया गया है उसके ( भाग से उनका प्रतिनिधित्व समाप्त हो जाता है। पारस्परिक विरोध के कारण समय पर सम्मेलन में का विवादास्पद परिस्थिति पैदा हो सकती है। पिछ सम्मेलन के तीसरे दिन पदाधिकारियों का चुनाव इसीलि नहीं हो सका क्योंकि खुले अधिवेशन में उपस्थित सदस्य में कौन प्रतिनिधि है, कौन नहीं इसका निर्णय उस सम संभव नहीं था।

जैसा कि मैंने आरम्भ में निवेदन किया है कि नियमा वली स्पष्ट, व्यावहारिक तथा संक्षिप्त रहनी चाहिये, अ जो समिति नियमावली का संशोधन कर रही है वह य इन दोषों का परिमार्जन कर देगी तो कार्य संचालन में पर्या सुविधा हो जायगी।

हमें ध्यान रखना चाहिये कि नियमावली स्वयं व्यवह होने वाली नहीं होती। नियमावली को तत्परता से व्यवहार में लाने का प्रयास करना होता है। यह का कार्यालय तथा पदाधिकारियों पर निर्भर है। मानन पड़ेगा कि जो नियम स्पष्ट है फिर भी वे चरितार्थ नहीं होते इसका एकमात्र उत्तरदायी कार्यालय है। कार्यालय का सम्बन्ध अपने सब सदस्यों तथा प्रदेश सम्मेलनों से बराबर बना रहना चाहिए। केन्द्रीय कार्यालय ही संगठन को व्यापक बनाने में बहुत कुछ प्रेरणा प्रदेश सम्मेलनों को दे सकता है। पिछले कुछ समय से कार्यालय का सम्बन्ध प्रदेश सम्मेलनों से नहीं के बराबर है। सम्बन्ध शुल्क भी समय पर मांगा जाता है या नहीं, पता नहीं। इस तरह की निर्लिप्त स्थिति यदि रहे तो संगठन का विस्तार कैसे हो? संगठन व्यापक और सुदृढ़ करना है तो कार्या लय को इस ओर पूरा ध्यान देना होगा।

आशा है, सम्बन्धित व्यक्ति इस निवेदन को इसी अर्थ में ग्रहण करेंगे।

---

कुछ विचारकों की दृष्टि में--

# आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थिति

**स्वामी श्री मंगलदासजी आयुर्वेदाचार्य, प्रधान सम्पादक राजस्थान प्रदेश वैद्य-सम्मेलन पत्रिका, जयपुर।**

"अ० भा० वैद्य सम्मेलन की स्थिति सभी समझदार व्यक्तियों के ध्यान में आ जायगी। स्थिति अब सहन करने योग्य नहीं है। अवश्य ही इस स्थिति में परिवर्तन लाने का प्रयास हम सभी को करना चाहिए।"

**श्री दयानिधिजी स्वामी, आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद सेवा समिति बाबा काली कमलीवाले, हृषीकेश (हरिद्वार)।**

"मेरे विचार में अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन की परिस्थिति संतोषजनक नहीं है, यदि यही स्थिति महासम्मेलन की बनी रही तो उससे वैद्य समाज का हित होने की आशा नहीं। वर्तमान स्थिति में सुधार होने की अत्यन्त आवश्यकता है। ऐसा अनुकूल वातावरण बनाया जाये, जिससे आयुर्वेद के सभी प्रतिष्ठित विद्वान् आगामी सम्मेलन में अवश्य भाग लेवें। और क्रियात्मक रूप से सुधार का प्रयत्न करें। तभी सम्मेलन का सुधार हो सकता है।"

**कविराज श्री हरिवक्षजी जोशी, काव्य-सांख्य स्मृति-तीर्थ, कलकत्ता।**

"आयुर्वेद महासम्मेलन पर एकाधिपत्य कायम रखने के लिए जो कूटतापूर्ण कार्यवाहियाँ इन पन्द्रह वर्षों में हुईं उनसे वैद्य-जगत् एवं सम्मेलन के मान्य और संरक्षक सदस्य भली प्रकार परिचित थे, किन्तु अपनी अनपेक्षता और असामर्थ्य के कारण कुछ कर नहीं पा रहे थे, लेकिन आखिर में सत्य स्वयं प्रकाशित होने के लिए अपना रास्ता निकाल लेता है। भगवान ने उस सत्य को उद्घाटित करने का सौभाग्य प्रदान किया यह उसकी कृपा है।"

"मैं महासम्मेलन की वर्तमान परिस्थिति से बिल्कुल सन्तुष्ट नहीं हूँ, क्योंकि वर्तमान परिस्थिति में प्रायः सब प्रसिद्ध आयुर्वेद सेवी एवं विद्वान् आयुर्वेदज्ञ उससे विरक्त हो गए हैं और इस परिस्थिति में वह व्यक्तिविशेष के प्रचार मात्र का साधन रह गया है। इस प्राचीन संस्था को वर्तमान दल-दल से निकालना अनिवार्य हो गया है।"

**प्रसिद्ध पारद संस्कारकर्ता श्री नारायण स्वामी देव प्रयाग।**

"वास्तव में अब व्यक्तिगत रागद्वेष के प्रचार से दूर रहते हुए आयुर्वेद महासम्मेलन की शुद्धि करने का समय आ गया है। इधर निरन्तर प्रयत्न से वातावरण अनुकूल हुआ है। इसका फायदा लेकर कोई ठोस कार्य हो, ऐसी मेरी नम्र प्रार्थना है।"

**महासम्मेलन के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री वैद्य श्री गुरुदत्तजी एम० एस-सी०, वैद्य भास्कर, दिल्ली।**

"वर्तमान महासम्मेलन के अधिकारियों से मैं यह आशा करता हूँ कि वे करबद्ध, विवाद और प्रपंच करनेवालों से निवेदन कर दें कि वे अब महासम्मेलन से पृथक् हो जावें और आयुर्वेद-जगत् की नौका अन्य उत्साही वैद्य महानुभावों को खेने दें। जितनी सेवा उन्होंने महासम्मेलन की की है उसको ही पर्याप्त समझें।

यदि वर्तमान पदाधिकारी इतना करने का साहस न रखते हों, तो आयुर्वेद-जगत् अर्थात् महासम्मेलन के सदस्यों से मेरा यह सुझाव है कि वे अपनी संस्था की प्रगति को अवरुद्ध करने के लिए, अथवा कम-से-कम इसकी मान-प्रतिष्ठा के पुनःस्थापन के लिए वर्तमान युग का अन्त करें, और महासम्मेलन को नयी करवट लेने का अवसर दिलवायें।

आयुर्वेद की प्रगति के लिए यदि महासम्मेलन से कुछ कार्य लेना है तो वास्तविक कार्य के लिए यत्नशील होना पड़ेगा। संस्था का दुरुपयोग करने वालों को यदि अब भी बलपूर्वक अथवा किसी चतुराई से महासम्मेलन पर सवार रक्खा गया तो महासम्मेलन का काल समाप्त हो जायगा।"

**महामहोपाध्याय कविराज रामचन्द्र मल्लिक, कलकत्ता।**

"आयुर्वेद कांग्रेस की शुद्धि के लिए कुछ बुद्धिमानों ने इस बीच आयुर्वेद-जगत् में एक आलोडन की सृष्टि की है। प्रत्येक आयुर्वेद सेवी का क्या कर्त्तव्य है और वे लोग किस कारण अपना कर्त्तव्य पालन नहीं कर पाते, इस पर भी विशद रूप से विचार करना अपेक्षित है। आयुर्वेद कांग्रेस में कैसी धाँधली चल रही है, इसका परिचय आयुर्वेद-सेवियों को भली प्रकार मिल गया है, अब यह आवश्यक

है कि आयुर्वेद सेवीगण इस पंक से आयुर्वेद कांग्रेस का उद्धार करें। काने लड़के का नाम पद्मलोचन रखने के समान ही अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की कोई सार्थकता नहीं है। उसका संस्कार करके सक्रिय और यथार्थ प्रतिनिधि संस्था चाहिए। महासम्मेलन के सदस्य आगामी अधिवेशन में अपनी तेजस्विता का परिचय दें।"

**आयुर्वेदाचार्य श्री धर्मदत्तजी एम० एल० ए०, बरेली।**

"आल इण्डिया वैद्य-सम्मेलन के पुनः संगठन की आवश्यकता है। सभी लोगों को इस ओर ध्यान देकर सम्मेलन को जीवित रखना चाहिए। मेरी सेवायें इसके लिए प्रस्तुत हैं।"

**वैद्यराज श्री गंगाधरजी शर्मा, कनखल (हरिद्वार)।**

"अब वैद्य-समाज का मार्ग प्रशस्त हुआ है एतदर्थ आयुर्वेद तथा उसकी शास्त्रीय परम्परा की रक्षा के लिए वैद्य-समुदाय का कर्त्तव्य है कि इसके समुत्थान में कर्त्तव्यनिष्ठ हो, परन्तु कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों को एकत्र कर कर्त्तव्य में लगा देना और उनका मार्ग प्रशस्त कर देना, सद्भावनापूर्ण महानुभावों का ही कार्य है।"

**वैद्य रामप्रकाश स्वामी भिषगाचार्य, जयपुर।**

"वर्तमान परिस्थितियों में क्रियात्मक कार्यों में तत्परता दिखाने को ही मैं आयुर्वेद एवं वैद्य-समाज के हित के अनुकूल मानता हूँ। साथ ही नम्र निवेदन करना चाहता हूँ कि अब लोगों को महासम्मेलन की स्थिति सम्हालना चाहिए, वरना, इस संगठन का अस्तित्व ही खतरे में हैं। महासम्मेलन की बागडोर ऐसे त्यागशील व्यक्तियों को सौंपी जाय, जो वास्तव में अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊँचे उठे हुए हों और वैद्य-समाज के हित को सर्वोपरि समझते हों।"

**आयुर्वेदाचार्य डा० मदनमोहन चोपड़ा, चण्डीगढ़।**

"अब समय है कि अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन को पुनः सच्चे मायने में प्रतिनिधि संस्था बनाया जाय, और इसकी बागडोर कर्मयोगी महारथियों के हाथ में सौंपी जाय। एतदर्थ, मेरी सेवायें सदैव सहयोग के लिए प्रस्तुत हैं।"

**कविराज श्री प्रताप सिंहजी, आयुर्वेद-बृहस्पति, दिल्ली**

"यह सत्य है कि इस समय आयुर्वेद का कोई सच्चा नेतृत्व करनेवाला नहीं है। पर यह नेतृत्व कौन करे, यह भी तो सोच लेना चाहिए। जब तक आपकी सदस्य संख्या प्रभावशाली नहीं होगी, तब तक आप सुधार करने में समर्थ नहीं हो सकते। सुधार का मार्ग निर्धारित करके उस पर चलने से सिद्धि मिल सकती है।"

**राजवैद्य कविराज पं० रामगोपालजी मिश्र, आयुर्वेदाचार्य संस्कृत साहित्यरत्न, गोंदिया।**

"समय रहते वैद्यों की स्थिति में सुधार के गम्भीर उपाय किये बिना, थोथे गौरव प्रचार के आधार पर आयुर्वेद की प्रगति और उन्नति नहीं हो सकेगी, इस तथ्य को अधिवेशन में उपस्थित प्रतिभाशाली सभी मेरे सहयोगी बन्धु एवं महासम्मेलन की स्थायी समिति समझ लें। और व्यक्तियों के महत्त्व को छोड़कर आयुर्वेद और वैद्यों के जीवन-मरण की स्थिति में सामूहिक हितों की रक्षा के लिए गम्भीरता के साथ विचार-बुद्धि से एकात्मभाव के साथ शुद्ध अन्तःकरण से यथार्थ प्रयास में जुट जायँ। तभी आयुर्वेद की गौरव-रक्षा और वैद्यों की उन्नति पथ प्रशस्त होगा। आज सब प्रकार से अनुकूल स्थिति और अच्छा अनुकूल अवसर है, इसे हाथ की अंजलि में अमृत के समान समझें। गुमाने का प्रसंग न आने दें। वरना, पछताने के सिवाय और कुछ न रहेगा।"

**राजवैद्य पण्डित सत्यनारायणजी मिश्र, आयुर्वेदाचार्य, कानपुर।**

"लगभग १५-२० वर्षों से देख रहा हूँ कि महासम्मेलन में एक ऐसा दल है, जिसका काम, सिर्फ लड़ाई लड़ना और आयुर्वेद के वृद्ध सेवकों की निन्दा करना ही रह गया है। वे कुछ भी क्रियात्मक कार्य नहीं होने देते। महासम्मेलन की ऐसी स्थिति के कारण, आने तक की इच्छा नहीं होती।"

**राजवैद्य पं० रामगोपालजी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, सभापति जिला वैद्यसभा, मथुरा।**

"इस समय महासम्मेलन एक दलीय व्यक्तियों की संस्था बना हुआ है। सभी प्रमुख भारतीय वैद्य संगठित रूप से संस्था में सुधार कर आयुर्वेद की सेवा करें, ताकि महासम्मेलन उपयोगी हो।"

**वैद्यराज श्री हीरालालजी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, फर्रुखाबाद (उ०प्र०)।**

"मैं सन् '३७ में आजीवन सदस्य इसीलिए हुआ था कि तन, मन, धन सभी प्रकार से महासम्मेलन की सेवा करूँगा। परन्तु, आभ्यन्तर्गत परिस्थितियों से दूर रहना ही श्रेयष्कर समझ कर बाद में तटस्थ रहना ही ठीक समझा।"

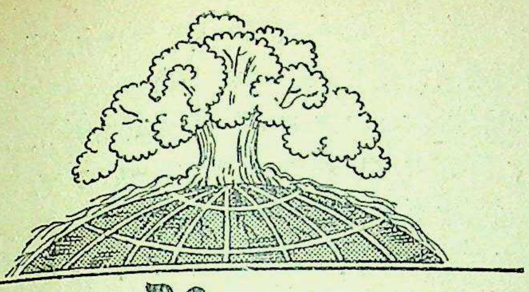

# आयुर्वेद-जगत्

## नागपुर-कांग्रेस पर आयुर्वेद की गूँज

नागपुर में सम्पन्न अ० भा० राष्ट्रीय कांग्रेस का पिछला अधिवेशन जहाँ अन्य अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ, वहाँ, आयुर्वेद की दृष्टि से भी उल्लेखनीय रहा। नागपुर, कांग्रेस और आयुर्वेद—इन तीनों का कुछ अद्भुत संयोग है। नागपुर में ही जब लोकमान्य तिलक ने 'स्वदेशी आन्दोलन' का कार्यक्रम निर्धारित किया, तब उस कार्यक्रम में आयुर्वेद एवं अन्य भारतीय चिकित्सा-प्रणालियों को प्रमुख स्थान दिया था। १९२० में कांग्रेस का अधिवेशन जब नागपुर में हुआ तो उसमें प्रस्तावांक ११ द्वारा यह सर्वसम्मत निश्चय किया गया था कि आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सा-पद्धतियाँ देश के लिए सर्वोपरि हैं और भारतीय जनता का अत्यधिक हित करती हैं। अतः इन पद्धतियों के विकास के लिए अधिकाधिक प्रयत्न किया जाना चाहिए। कांग्रेस के इस नागपुर अधिवेशन पर भी आयुर्वेद के स्वर को ऊँचा उठाने के गम्भीर प्रयास किये गये। इस अवसर पर वैद्यनाथ प्रतिष्ठान ने बहुविधि यह बात अधिवेशन में पधारने वाले प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाई कि **'जन-स्वास्थ्य की वास्तविक सुरक्षा के लिए आयुर्वेद ही भारत की राजमान्य राष्ट्रीय चिकित्सा घोषित की जाय।'** इस माँग के साथ इसके औचित्य को सिद्ध करने का विशद आयोजन भी **श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० ने** बड़ी खूबी के साथ किया।

### व्यापक आन्दोलन

इस अवसर पर नागपुर नगरभर में और विशेषकर कांग्रेस अधिवेशन क्षेत्र में स्थान-स्थान पर सैकड़ों पोस्टर बोर्ड लगाये गए जिनमें आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा घोषित करने की माँग की गई थी। कांग्रेस अध्यक्ष के जुलूस-मार्ग में दुकानों पर भी ऐसे ही बोर्ड लगाये गए थे। पाँच जनवरी से लेकर १२ जनवरी तक नागपुर से प्रकाशित होनेवाले समस्त अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी समाचार-पत्रों में आकर्षक रूप में प्रथम पृष्ठों पर आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति घोषित करने का नारा प्रकाशित कराके यह प्रयास किया गया कि नागपुर-कांग्रेस पर आये प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि में आयुर्वेद की यह माँग आ जाय, तथा कांग्रेस के कर्णधारों को आयुर्वेद के प्रश्न पर विचार करने की प्रेरणा मिले।

### आयुर्वेदीय स्वास्थ्य-प्रदर्शनी

**'आयुर्वेद ही राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति घोषित की जाय'**—इस माँग के औचित्य को सिद्ध करने के लिए और यह दिखाने के लिए कि जन-स्वास्थ्य के लिए आयुर्वेद कितना आवश्यक एवं हितकर है तथा आयुर्वेद के सिद्धान्त मनुष्य को स्वाभाविक रूप में स्वस्थ एवं नीरोग रखने में कितने समर्थ, कितने सहज और कितने सार्थक हैं—**श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के नागपुर-कार्यालय की** ओर से एक वृहत् आयुर्वेदीय-स्वास्थ्य प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया जो ४ से १५ जनवरी तक अधिवेशन क्षेत्र में उमड़ते हुए विशाल जन-समूह के लिए एक प्रमुखतम आकर्षण-केन्द्र बनी रही। इस प्रदर्शनी के द्वारा जहाँ कांग्रेस नेताओं, कार्यकर्त्ताओं तथा राज्याधिकारियों को आयुर्वेद-पक्ष में प्रेरित करने का प्रयत्न किया गया, वहाँ सर्वसाधारण जनता में आयुर्वेदीय स्वास्थ्य नियमों का प्रचार करना इसका एक मुख्य उद्देश्य था।

### स्वास्थ्य-मन्त्री प्रभावित

बम्बई प्रदेश के सुख्यात स्वास्थ्य-मन्त्री माननीय श्री म० सां० कन्नमवार जब ४ जनवरी को अभ्यंकर नगर में बैद्यनाथ भवन द्वारा आयोजित स्वास्थ्य-प्रदर्शनी का उद्घाटन करने पधारे तो प्रदर्शनी को देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए। अपने उद्घाटन भाषण में उन्होंने कहा—"आयुर्वेद का भविष्य निश्चित रूप से उज्ज्वल है। इस विज्ञान की उन्नति के लिए बैद्यनाथ-प्रतिष्ठान इधर जो कुछ प्रयत्न कर रहा है; वैसा ही प्रयत्न वैद्य-हकीम-समाज सामूहिक रूप से सर्वत्र करे, तो निश्चय ही आयुर्वेद की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ेगी। मैं देख रहा हूँ कि धीरे-धीरे लोगों का ध्यान और रुचि आयुर्वेद की ओर खिंच रहे हैं। आयुर्वेद-चिकित्सा से

प्रभावित होकर हमारे प्रदेश के एक श्री मनुभाई शाह एक करोड़ रुपये की लागत से आयुर्वेद का अनुसन्धानिक अस्पताल खोलने का विचार कर रहे हैं। बहुधा लोग अन्य पैथियों से निराश होकर आयुर्वेद का आश्रय लेते हैं। सरकार आयुर्वेद के लिए यथार्थ कार्य करना चाहती है। परन्तु यह आवश्यक है कि वैद्यगण आयुर्वेद-यूनानी के सम्मिलित स्वरूप को स्पष्ट रूप में सरकार के सामने रक्खें, स्वयं अपने विज्ञान की उन्नति के लिए क्रियात्मक कार्य करें, और सरकार के पास ऐसी व्यावहारिक योजना बना कर भेजें, जिनको निःसंकोच क्रियान्वित किया जा सके और जिनसे आयुर्वेद की ऐसी वैज्ञानिक उन्नति हो सके कि वह जन-स्वास्थ्य के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हो। स्वास्थ्य प्रदर्शनी का उल्लेख करते हुए आपने कहा—"मुझे आयुर्वेदीय स्वास्थ्य सिद्धान्तों पर आधारित ऐसी बढ़िया प्रदर्शनी देखने का अवसर पहली ही बार मिला है। मैं समझता हूँ यह आयोजन आयुर्वेद के उत्तम स्वस्थवृत्त को तो प्रकाशित करता ही है ; जनता के लिए भी बहुत हितकारी है। लोग स्वाभाविक रूप से स्वस्थ रहने के लिए आयुर्वेद के इन सरल नियमों को अपने जीवन में उतारें, इसके लिए ऐसी उत्तम प्रदर्शनियों का अधिक-से-अधिक आयोजन और व्यापक प्रचार यथार्थ जनसेवा का कार्य है।"

उद्घाटन समारोह पर उपस्थित जन-समूह को सम्बोधित करते हुए नागपुर के ख्यातनामा वैद्य श्री शिवकरणजी शर्मा छांगाणी ने आयुर्वेद विषय पर विद्वत्तापूर्ण प्रकाश डाला। मध्यप्रदेश के सहायक आयुर्वेद संचालक श्री जायसवालजी ने उद्घाटनावसर पर भाषण देते हुए इस बात पर बहुत बल दिया कि आयुर्वेदज्ञों को अपने विज्ञान की श्रीवृद्धि के लिए संकुचित दृष्टिकोण का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए और समस्त पैथियों में से आवश्यक एवं ग्रहणीय अंश ग्रहण करके आयुर्वेद को सर्वांगपूर्ण बना लेना चाहिए, तभी आयुर्वेद की वास्तविक उन्नति इस युग में हो सकती है। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के नागपुर कार्यालय के निर्माण विभागाध्यक्ष वैद्यराज श्री मोहनलालजी शर्मा ने प्रदर्शनी का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया और वैद्यराज श्री दीनदयालुजी तिवारी ने भवन की ओर से आभार प्रदर्शन किया। इसके उपरान्त माननीय कन्नमवार महोदय के कर-कमलों से उद्घाटित होकर प्रदर्शनी सार्वजनिक जनता के लिए खोल दी गयी।

ज्यों-ज्यों अधिवेशन की हलचल बढ़ी, त्यों-त्यों इस प्रदर्शनी पर दर्शकों की भीड़ बढ़ती और उमड़ती रही। यद्यपि कांग्रेस स्वागत समिति ने खादी प्रदर्शनी की भाँति इस दिशा में भी प्रवेश पर टिकट लगाया था, फिर भी अपने क्षेत्र में यह प्रदर्शनी ही एकमात्र ऐसा आकर्षण रही जिस पर प्रातः ११ बजे से रात्रि के १ बजे तक निरन्तर दर्शकों की लम्बी पंक्ति लगी रहती थी। प्रदर्शनी के मुख्य द्वार पर कलापूर्ण शो-केश में कलासिद्ध कुशल चित्रकार श्री कालीचरण वर्मा द्वारा प्रस्तुत 'अशोक वाटिका में सीताजी' का अत्यन्त ही भव्य, भावपूर्ण और विशाल चित्र लगा हुआ था, जो अभ्यंकर नगर में महात्मा फुले द्वार से ही दीखता था। प्रदर्शनी में माडलों द्वारा समदोषः समाग्निश्च, समधातु मलक्रियः.....। त्रय उपस्तम्भाः इत्याहारो निद्रा ब्रह्मचर्यमिति, आदि का प्रभावपूर्ण प्रदर्शन किया गया था। सन्तुलित भोजन, सुखी निद्रा और ब्रह्मचर्य के प्रभाव तथा हीन भोजन, निद्राभाव एवं असंयम के दुष्प्रभाव, संतति नियोजन, नशा एवं धूम्रपान की हानियाँ, गर्भ की विभिन्न स्थितियाँ, शरीर रचना और क्रिया आदि विषयों का बहुत सुबोध एवं हृदयग्राही प्रदर्शन माडलों की सहायता से किया गया था। शरीर के समस्त संस्थानों, रक्त-संचार, त्रिदोष आदि का प्रदर्शन चार्टों द्वारा किया गया था। प्रदर्शनी के दूसरे भाग में आयुर्वेद के क्रमिक विकास का दिग्दर्शन विभिन्न माडलों द्वारा किया गया था। आयुर्वेद के विषय में प्रमुख जनों के विचार और आयुर्वेद की विशेषताओं की वाक्य-पट्टिकाएँ प्रदर्शनी कक्ष में स्थान-स्थान पर लगायी गई थीं। संक्षेप में सम्पूर्ण आयोजन द्वारा यह विशिष्ट प्रयत्न किया गया था कि दर्शक के हृदय पर आयुर्वेद की छाप हो और उसे प्रेरणा मिले कि वह आयुर्वेदीय स्वास्थ्य नियमों को अमल में लाकर स्वाभाविक रूप से स्वस्थ रहने का प्रयास करे। प्रदर्शनी में आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको **शीत-ऋतु और स्वास्थ्य, भोजन और स्वास्थ्य, स्वास्थ्य-सन्देश** आदि पुस्तिकाओं के अतिरिक्त **'सच्चा-स्वास्थ्य'** नामक एक पुस्तिका विशेष रूप से वितरित की गई जिसमें वर्तमान स्थिति में देश के लिए आयुर्वेद की सर्वोपरि उपयोगिता, स्वास्थ्य के लिए आयुर्वेद की महत्ता, आयुर्वेद-मतानुसार सच्चे स्वास्थ्य का विवेचन तथा त्रय उपस्तम्भाः और त्रीणि आयतनानि इत्यादि आयुर्वेदीय स्वास्थ्य सिद्धान्तों का चित्रों सहित परिचय एवं सुबोध

बैद्यनाथ
श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
स्वास्थ्य-प्रदर्शनी
बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
आयुर्वेद

नागपुर में कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड द्वारा आयोजित आयुर्वेद स्वास्थ्य-प्रदर्शिनी पर उमड़ते हुए दर्शकों का एक दृश्य।

बैद्यनाथ
स्वास्थ्य प्रदर्शनी

ग्वालियर मेले में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड द्वारा आयोजित स्वास्थ्य-प्रदर्शिनी का एक भव्य दृश्य

नागपुर में कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर आयोजित बैद्यनाथ स्वास्थ्य-प्रदर्शिनी के भीतरी कक्ष का दृश्य।

भाषा में उनका विस्तृत तथा प्रेरणापूर्ण विवेचन दिया गया था। पुस्तिका के अन्तिम कवर पर तीन रंगों में 'आयुर्वेद ही भारत की राष्ट्रीय चिकित्सा घोषित की जाय !' का उद्घोष मुद्रित था। इस पुस्तिका द्वारा कई लाख व्यक्तियों तक आयुर्वेद की यह माँग पहुँचाई जा सकी।

नागपुर अधिवेशन पर इस स्वास्थ्य-प्रदर्शनी को ४ से १५ जनवरी तक लगभग आठ लाख व्यक्तियों ने देखा। बाहर से पधारे हुए कांग्रेस प्रतिनिधियों और नेताओं ने भी इस प्रदर्शनी को बड़ी रुचि से देखा। देशभर के समाचार पत्रों के प्रतिनिधियों ने अपने विवरणों में प्रदर्शनी का उल्लेख किया और अनेक पत्र-प्रतिनिधियों ने प्रदर्शनी के चित्र भी प्रकाशित किए। बैद्यनाथ कार्यकर्त्ताओं द्वारा समस्त कांग्रेस प्रतिनिधियों के निवास-स्थान पर बुद्ध और गान्धी का कलैण्डर तथा स्वास्थ्य पुस्तिका की प्रतियाँ भेंट कीं गईं। इस प्रकार कांग्रेस अधिवेशन पर बैद्यनाथ प्रतिष्ठान का यह आयोजन आयुर्वेद-प्रचार की दृष्टि से बहुत ही प्रभावपूर्ण रहा।

इसी अवसर पर नागपुर के उत्साही वैद्य श्री दीनदयालुजी तिवारी, वैद्य शिवकरण शर्मा छांगाणी, वैद्य केदारनाथजी आदि के उद्योग से कांग्रेस प्रतिनिधियों के निवास क्षेत्र में एक रात-दिन का आयुर्वेद चिकित्सालय भी संचालित किया गया। इस चिकित्सालय के कार्य में वैद्य श्री मधुकर त्र्यंवक गोरे का अहर्निश परिश्रम और लगन निश्चय ही श्लाघ्य था। औषधालय पर औषध-हेतु आनेवालों की बड़ी संख्या इस बात का प्रमाण था कि देश की बहुसंख्यक जनता आयुर्वेद को चाहती है। इस औषधालय के लिए निःशुल्क औषधियाँ श्री बैद्यनाथ आ० भवन ने प्रदान की थी और समग्र व्यवस्था-भार नागपुर के आयुर्वेद महाविद्यालय के उत्साही सहयोगियों ने वहन किया। औषधालय की ओर से एक इन्डोर विभाग भी था। इस औषधालय की सेवाओं से भी कांग्रेस प्रतिनिधिगण पर्याप्त प्रभावित हुए।

वैद्यराज श्री गुलराज मिश्र ने कांग्रेस अधिवेशन पर प्रकाशित एक दैनिक के विशेषांक में आयुर्वेद पक्ष पर एक उद्बोधक लेख प्रकाशित करके कांग्रेस महारथियों का ध्यान, उनके ही द्वारा १९२० में स्वीकृत आयुर्वेद विषयक प्रस्ताव की ओर आकर्षित करके कांग्रेस से यह आग्रह किया कि उसका कर्त्तव्य है कि स्वयं के प्रस्ताव पर अमल कराने के लिए सरकार पर प्रभावपूर्ण जोर डाले। आयुर्वेद-हित में मिश्र जी का यह लेख सामयिक और उपयोगी रहा।

इस प्रकार कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन पर आयुर्वेद की गूंज हुई, जो कांग्रेस नेताओं, राज्याधिकारियों एवं जनता को आयुर्वेद-पक्ष में प्रभावित करने का सफल आयोजन कहा जा सकता है और जिसका फल भविष्य में आयुर्वेद-हित में प्रकट होगा।

## ग्वालियर में भी स्वास्थ्य-प्रदर्शनी

ग्वालियर में अनेक वर्षों से इन दिनों एक ऐतिहासिक विशाल मेला लगता है जिसमें देशभर से दूर-दूर के लाखों लोग एकत्र होते हैं। इस वर्ष यह मेला २६ दिसम्बर से १६ जनवरी तक रहा। प्रेक्षकों का कहना है कि इस वर्ष का मेला भीड़-भाड़ और आकर्षण की दृष्टि से पिछले वर्षों से बहुत विशाल रहा। इस मेले पर भी श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० की ओर से नागपुर की ही भाँति आकर्षक आयुर्वेदीय स्वास्थ्य-प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था। यह हर्ष की बात है कि जनता में आयुर्वेद के स्वास्थ्य नियमों को समझने की इतनी अधिक रुचि दिखाई देती है कि बैद्यनाथ स्वास्थ्य प्रदर्शनी पर जनता की अपार भीड़ लगी रहती है। ग्वालियर मेला में आयोजित प्रदर्शनी के लिए भी अन्तिम दिन तक जनता का समूह उमड़ता रहा।

### प्रथम श्रेणी का स्वर्ण पदक

ग्वालियर मेला पर आयोजित इस स्वास्थ्य-प्रदर्शनी की सजावट, आकर्षण, दर्शकों की भीड़ और उपयोगिता से प्रभावित होकर मेला कमेटी ने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० को स्वर्ण-पदक एवं प्रथम श्रेणी का प्रमाण-पत्र भेंट करके सम्मानित किया।

## आयुर्वेद महासम्मेलन का दिल्ली अधिवेशन

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के ४३ वें अधिवेशन का उद्घाटन भारत गणराज्य के राष्ट्रपति महामहिम डा० राजेन्द्रप्रसादजी ने २३ फरवरी, १९५९ को करना स्वीकार किया है। तदनुसार स्वागत समिति ने अधिवेशन की तिथियाँ २२ से २५ फरवरी १९५९ की निश्चित की हैं। इस अधिवेशन को अधिकाधिक उपयोगी एवं आकर्षक बनाने के लिए स्वागत समिति ने विद्यापीठ

स्नातक सम्मेलन, आयुर्वेदीय पत्रकार सम्मेलन, छात्र-प्रतियोगिता, चिकित्सा सम्भाषा परिषद् तथा शल्यशालाक्य सम्भाषा परिषद् आदि विभिन्न परिषदों के साथ-साथ एक विशाल आयुर्वेदीय प्रदर्शिनी का आयोजन भी किया है, जिसमें आयुर्वेद के आठों अंगों के सम्यक् और समीचीन प्रदर्शन का प्रयत्न किया जा रहा है।

इससे नौ वर्ष पूर्व महासम्मेलन का ३७ वाँ वार्षिक अधिवेशन भी इस महान् नगरी में ही सम्पन्न हुआ था। यह ४३ वाँ अधिवेशन उससे भी कई गुणा अधिक सफलता के साथ सम्पन्न हो, ऐसा प्रयत्न हो रहा है।

महासम्मेलन के इतिहास में यह प्रथम ही अवसर है जब कि इसके वार्षिक अधिवेशन का उद्घाटन महामहिम राष्ट्रपतिजी द्वारा किया जा रहा है। महासम्मेलन, वैद्य-समाज तथा आयुर्वेद-विज्ञान के लिए यह परम सौभाग्य का विषय है। अतएव, प्रत्येक वैद्य का यह कर्त्तव्य है कि इस ऐतिहासिक अधिवेशन में अवश्य सम्मिलित होकर अपने संगठन की दृढ़ता का परिचय दें।

देश में अपनी राष्ट्रीय सरकार होते हुए भी आज आयुर्वेदीय विज्ञान की जो दुर्दशा है उससे वैद्य-समाज अपरिचित नहीं है। अनेक प्रकार के बाधक विधि-विधानों द्वारा आयुर्वेद के विनाश के प्रयत्न किए जा रहे हैं। इस समय आयुर्वेद के पुनरुज्जीवन तथा आयुर्वेदोपजीवियों के जीवन-मरण का विकट प्रश्न उपस्थित है। इस स्थिति का परिहार वैद्य-समाज के अपने हाथ ही में है। हम अपनी महानाशी निद्रा का परित्याग करें, जिस विज्ञान के आश्रय में हमारा पालन हो रहा है उसके प्रति अपने उत्तरदायित्व और कर्त्तव्य को पहिचानें, सचेष्ट और क्रियाशील होकर अपनी इस प्राचीन महान् संस्था "अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन" की ध्वजा के नीचे एकत्रित होकर आयुर्वेद-विधायक कार्यों में जुट जायें। अधिवेशन में सम्मिलित होकर हमें ऐसी क्रान्तिकारी योजनाओं का निर्माण करना है और उनकी पूर्ति में संलग्न होना है। तदर्थ, स्वागत समिति सभी लोगों का सानुरोध, सादर और सप्रेम आह्वान करती है।

इस महासम्मेलन के **अध्यक्ष** उड़ीसा के सुज्ञात **कविराज श्री पं० अनन्त त्रिपाठीजी शर्मा, एम० ए० पी० ओ० एल०, आयुर्वेदाचार्य,** होंगे तथा विद्यापीठ के **अध्यक्ष** दिल्ली के सुविख्यात विद्वान् **कविराज श्री उपेन्द्रनाथजी दास, काव्य-सांख्य-स्मृतितीर्थ, भिषगाचार्य, प्रिंसिपल, आयुर्वेदिक-यूनानी तिब्बिया कालेज होंगे।** इन दोनों विद्वानों की आयुर्वेद-सेवाओं के लिए वैद्य-समाज परम आभारी है। ऐसी आशा है कि इनके तत्त्वावधान में यह अधिवेशन बड़े-बड़े निश्चयों तथा महत्वपूर्ण परिणामों पर पहुँचेगा।

## प्रतिनिधियों तथा दर्शकों को सूचनाएँ

दिल्ली में निवास-स्थान की समस्या कुछ विकट होते हुए भी प्रतिनिधियों के ठहरने की व्यवस्था स्वागत समिति की ओर से की जावेगी। दर्शक रूप में उपस्थित होनेवाले महानुभावों से प्रार्थना है कि वे अपना ठहरने का प्रबन्ध स्वयं करें। स्वयंपाकी सज्जन अपने साथ अपने बर्तन अवश्य लावें। दर्शकों तथा प्रतिनिधियों को भोजन के लिए २) रु० प्रतिदिन देना होगा। सरकारी प्रतिबन्ध के कारण स्वागत समिति निःशुल्क भोजन देने में असमर्थ है। अधिवेशन में उपस्थित होनेवाले महानुभाव अपने साथ अपने विस्तर अवश्य लावें। दिल्ली में उन दिनों ठंड अधिक रहेगी, अतः गरम वस्त्र भी साथ लावें।

दिल्ली तथा नई दिल्ली स्टेशनों पर स्वागत समिति की ओर से स्वयंसेवकों तथा अस्थायी कार्यालय का प्रबन्ध रहेगा, जो कि समागत अतिथियों को सर्वप्रकार की सूचनाएं एवं सहयोग देने में सहायक होगा। इस अधिवेशन में वे ही महानुभाव प्रतिनिधि हो सकते हैं जो कि महासम्मेलन के सदस्य हों। अतएव, जो महानुभाव अधिवेशन में प्रतिनिधित्व स्वरूप एवं साधिकार उपस्थित होना चाहें, उन्हें शीघ्र ही ५) रु० सदस्यता शुल्क महासम्मेलन कार्यालय को भेजकर तथा सदस्यता आवेदन-पत्र भर कर सदस्य बन जाना चाहिए। सदस्येतर महानुभाव अधिवेशन में केवल दर्शक रूप में ही सम्मिलित हो सकते हैं। महासम्मेलन कार्यालय से आधे किराये के रेलवे कन्सेशन के प्रमाण-पत्र केवल महासम्मेलन सदस्यों को ही भेजे जायेंगे। प्रतिनिधि शुल्क ३) रु० प्रति सदस्य है, जो सम्मेलनावसर पर देना होगा। प्रतिनिधि कम-से-कम एक सप्ताह पूर्व अपने आने की तिथि तथा समय की सूचना स्वागत समिति के कार्यालय को देने की कृपा करें। वैद्य महानुभावों से निवेदन है कि अपने आस-पास तथा अपने प्रदेश की आयुर्वेद सम्बन्धी जो भी वस्तुएँ प्रदर्शन-योग्य प्राप्त हो सकें जैसे, यन्त्र, शस्त्र, उपधातु, प्राणिज, खनिज द्रव्य तथा हस्त-

लिखित प्राचीन पुस्तकों एवं आयुर्वेद सम्बन्धी ज्ञानवर्द्धन के लिए अन्य वस्तुओं को कार्यालय के पते पर भेज दें। उपयुक्त समझे जाने पर प्रदर्शित वस्तुओं का मार्गव्यय व मूल्य भी प्रदर्शनी की ओर से दिया जा सकेगा। उत्तम प्रमाणित होने पर पारितोषिक भी दिया जावेगा।

## आयुर्वेद महासम्मेलन का कार्यक्रम

### रविवार ता० २२ फरवरी १९५९

**प्रातःकाल**—८-३० से १०-३० तक धन्वन्तरि यज्ञ, स्वागताध्यक्ष—श्री पं० मनोहरलालजी आयुर्वेदाचार्य। यजमान—वैद्य श्री बनवारीलालजी दुआ, पुरोहित—गोसाईं गिरधारीलालजी, द्रष्टा—पं० प्रभुदत्त जी शास्त्री। यज्ञ की महिमा—भाषण श्री जागेरामजी गुप्त। ध्वजोत्तोलन—आयुर्वेद मार्तण्ड श्री पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल, प्रयाग द्वारा।

**प्रातःकाल**—१०-३० से प्रदर्शनी का उद्घाटन—वैद्य श्री पं० रामनारायणजी शर्मा, अध्यक्ष श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० द्वारा। धन्यवाद प्रदर्शन—वैद्य श्री गोविन्दसहायजी दत्त, मन्त्री प्रदर्शनी समिति।

**मध्याह्न**—११-३० से १-३० तक—भोजनादि २ से ४ बजे तक—विद्यापीठ स्नातक सम्मेलन। स्वागताध्यक्ष—श्री पं० शिवनाथजी शर्मा, आयुर्वेदाचार्य। उद्घाटक—श्री प्रेमशंकरजी शर्मा, भिषगाचार्य, डायरेक्टर आफ आयुर्वेद, राज० अजमेर, द्वारा। अध्यक्ष—श्री कविराज एस० के० भेड़ा, एम० बी० बी० एस०, आयुर्वेदाचार्य, बम्बई।

**अपराह्न**—४-३० से ६ बजे तक—आयुर्वेदीय पत्रकार सम्मेलन। स्वागताध्यक्ष—वैद्य श्री पं० गुरुदत्तजी, एम० एस-सी०, आयुर्वेद भास्कर। उद्घाटक—श्री स्वामी मंगलदासजी भिषगाचार्य, अध्यक्ष, बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसन, राजस्थान, जयपुर। अध्यक्ष—वैद्य श्री बापालाल भाई, प्रिंसिपल, नाझर आयुर्वेद महाविद्यालय, सूरत।

**सायंकाल**—६ से ८ बजे तक—भोजनादि। ८ बजे से महासम्मेलन स्थायी समिति तथा विद्यापीठ केन्द्रीय प्रबन्धक समिति का अधिवेशन एवं विषय निर्धारिणी समिति का निर्वाचन।

### सोमवार २३-२-५९

**प्रातःकाल**—९ से ११ बजे तक—छात्र प्रतियोगिता। स्वागताध्यक्ष—श्री शंकरदेवजी शर्मा, आ० आ०, उद्घाटक—श्रीमती अरुणा आसफअली, महापौर, नगर निगम, दिल्ली। अध्यक्ष—श्री कान्तिनारायणजी मिश्र, आयुर्वेदाचार्य, आ० वृहस्पति, डायरेक्टर आफ आयुर्वेद, पंजाब, पटियाला। ११ से ३ बजे तक—भोजनादि।

**मध्याह्नोत्तर**—४ बजे—सम्माननीय श्री राष्ट्रपतिजी का स्वागत। ४-५—मंगलाचरण। ४-१० से ४-२५ स्वागताध्यक्ष कविराज श्री वैद्यनाथजी सरकार महोदय का स्वागत भाषण। ४-२५ से ४-४५ तक—सम्माननीय राष्ट्रपति महोदय का उद्घाटन भाषण। ४-४५ से ५ बजे तक—महासम्मेलनाध्यक्ष कविराज श्री अनन्त त्रिपाठी शर्मा महोदय का अध्यक्षीय भाषण। ५-५—धन्यवाद प्रदर्शन—कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दासजी द्वारा। ५-१०—राष्ट्र गान।

**सायंकाल**—५-३० से ६-३० तक—प्रादेशिक सम्मेलनाध्यक्षों का महासम्मेलनाध्यक्ष के साथ संगठन सम्बन्धी वार्तालाप।

**रात**—८ बजे से—विषय निर्धारिणी समिति का अधिवेशन।

### मंगलवार २४-२-५९

**प्रातःकाल**—९ से ११ बजे तक—चिकित्सा सम्भाषा परिषद् का अधिवेशन। स्वागताध्यक्ष—श्री पं० दुर्गादत्तजी दिल्ली। उद्घाटक—कविराज श्री रामचन्द्रजी मल्लिक, कलकत्ता। अध्यक्ष—श्री एम० विश्वेश्वर शास्त्री, स्पेशल आफिसर, इण्डियन मेडिसिन, बोर्ड आन्ध्र, हैदराबाद।

**मध्याह्न**—२ बजे—विद्यापीठ उद्घाटक महोदय का स्वागत। २-५—मंगलाचरण। २-१० से २-२५—विद्यापीठ स्वागताध्यक्ष श्री पं० मनोहरलालजी शर्मा, आयुर्वेदाचार्य का स्वागत भाषण। २-२५ से २-५०—उद्घाटन भाषण। २-५० से ३-५०—विद्यापीठाध्यक्ष कविराज श्री उपेन्द्रनाथजी दास का अध्यक्षीय भाषण। ३-५० से ३-५५—धन्यवाद प्रदर्शन—वैद्यरत्न कविराज श्री प्रताप सिंहजी द्वारा। ४-००—राष्ट्र गान।

**सायंकाल**—४ बजे से—महासम्मेलन विद्यापीठ का खुला अधिवेशन। रात्रि—भोजनादि।

## बुधवार २५-२-५९

**प्रातःकाल**—८-३० से १०-३० तक—शल्य शालाक्य सम्भाषा परिषद्। स्वागताध्यक्ष—श्री दुर्गादत्तजी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, दिल्ली। उद्घाटक—श्री पी० एन० अवस्थी, डी० ए० एस० एफ०, एम० ए० पोद्दार हास्पिटल, बम्बई द्वारा अध्यक्ष—श्री पी० जे० देशपाण्डे, आयुर्वेदाचार्य, ए० एम० एम० एस०, ज़ैड०, ए० टी० एच० एस०, सी० एस० आर०। सर्जन, सर सुन्दरलाल चिकित्सालय तथा लेक्चरर सर्जरी, आयुर्वेदिक कालेज, काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी।

१०-३० से ११-३० तक—नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ का दीक्षान्त समारोह। दीक्षान्त भाषण—श्री वी० के० आर० वी० राव, वाइस चांसलर, दिल्ली यूनिवर्सिटी।

११-३० से २ बजे तक—भोजनादि।

**मध्याह्नोत्तर**—२ से ४ बजे तक—विद्यापीठ महाविद्यालय का उद्घाटन। ५ से ८ बजे तक—भोजनादि।। ८ बजे से—महासम्मेलन-विद्यापीठ का खुला अधिवेशन।

## पंजाब प्रान्तीय आयुर्वेद सम्मेलन

पंजाब प्रान्तीय आयुर्वेद सम्मेलन का अधिवेशन गत २१-२२ दिसम्बर को अमृतसर में सम्पन्न हुआ। इसके साथ आयुर्वेदिक प्रदर्शिनी का भी आयोजन किया गया। प्रदर्शिनी का उद्घाटन राजा प्रफुल्लचन्द भञ्जदेव एम० पी० ने किया। राजा साहब ने संस्कृत और हिन्दी में भाषण देते हुए आयुर्वेद के अन्वेषण पर विशेष रूप से जोर दिया।

सम्मेलन की अध्यक्षता पं० देवकीनन्दनजी वैद्य एम० एल० ए० ने की। उन्होंने अपने भाषण में वैद्यों से अनुरोध किया कि आयुर्वेद-विज्ञान के विकास के लिए सभी सम्भव प्रयास किए जायँ।

पं० वेणीप्रसाद शास्त्री की अध्यक्षता में अनुभूत योग परिषद् की बैठक हुई, जिसमें वैद्यों ने अपने-अपने अनुभवों का वर्णन किया। कविराज सतीन्द्रनाथ वसु की अध्यक्षता में शास्त्रचर्चा-परिषद् हुई, जिसमें दीर्घकाल तक शास्त्रीय विवेचन होता रहा। सम्मेलन में कई प्रस्ताव स्वीकृत हुए, जिनमें सरकार से माँग की गयी कि आयुर्वेद के विकास और प्रचार के लिए वह ठोस कदम उठाए। आयुर्वेदीय औषधों पर लगे प्रतिबन्धों की सम्मेलन में निन्दा की गयी और उनको अविलम्ब वापस लेने की सरकार से माँग की गयी।

आगामी वर्ष के लिए निम्नलिखित पदाधिकारी चुने गये—

सभापति—पं० देवकीनन्दन वैद्य एम० एल० ए०,

उप-सभापति—श्री ज्ञानचन्द जोगी वैद्यवाचस्पति और वैद्यराज पं० रामस्वरूप शर्मा,

प्रधान-मन्त्री—पं० मदनमोहन पाठक, आयुर्वेदाचार्य,

प्रचार-मन्त्री—श्री ओम्प्रकाशदत्त वैद्यवाचस्पति,

मन्त्री—श्री देशराज शर्मा और वैद्य देवकीनन्दनजी,

संगठन-मन्त्री—सर्वश्री मिहारामजी, शिवदत्तजी और मनोहरलालजी,

आय-व्यय निरीक्षक—श्री वेणीप्रसाद शर्मा,

कोषाध्यक्ष—श्री कृष्णगोपाल पुष्करणा।

## फैजाबाद जिला वैद्य सम्मेलन

फैजाबाद जिले के वैद्यों का ११ वाँ वार्षिक अधिवेशन गत २८ दिसम्बर को आयुर्वेद वृस्पति आचार्य बाबूराम मिश्र अध्यक्ष उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ। दिन में विषय निर्धारिणी समिति की बैठक हुई जिसमें लगभग १५० वैद्यों ने भाग लिया और जिन-जिन वैद्यों ने अपना वार्षिक शुल्क अदा कर दिया उन्हें निर्वाचन में भाग लेने का सुअवसर दिया गया। अतः वैधानिक सदस्यों द्वारा आगामी वर्ष के लिये निम्नांकित निर्वाचन किया गया। सभापति श्री रामभद्र उपाध्याय, उप-सभापति—श्री जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, श्री रामसहाय शास्त्री, श्री रामहौंसिला पाण्डेय, श्री जगन्नाथप्रसाद त्रिपाठी, प्रधान मन्त्री—श्री देवीप्रसाद मिश्र, कोषाध्यक्ष—श्री विद्याधर शर्मा। इनके अतिरिक्त ७ सदस्य कार्यकारिणी समिति के चुने गये।

सभा में कई उपयोगी प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुए, जिनमें निश्चय किया गया कि आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति घोषित कराने के लिये भारत-व्यापी जन-आन्दोलन प्रारम्भ किया जाय। इस कार्य के लिये आयुर्वेदोद्धारक समिति की स्थापना की गई। निश्चय हुआ कि प्रत्येक ग्राम पंचायतों द्वारा यह माँग कराई जाय कि भारत में भारतीय चिकित्सा-पद्धति आयुर्वेद ही राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति होनी चाहिये। एक प्रस्ताव द्वारा केन्द्रीय सरकार से माँग की गई कि आयुर्वेद-हित के लिये केन्द्रीय देशी चिकित्सा बोर्ड, केन्द्रीय इण्डियन मेडिसन ऐक्ट तथा केन्द्रीय

ायरेक्टरेट की स्थापना की जाय। उत्तर प्रदेशीय रकार से माँग की गई कि प्रदेश में शीघ्र ही स्वतन्त्र आयुर्वेदिक डायरेक्टर की नियुक्ति की जावे तथा इण्डियन मेडिसन ऐक्ट का संशोधन कर वैद्यों के अधिकार बढ़ाये जायें तथा सरकार के राज्य आ० चि० में नियुक्त वैद्य-हकीम व कम्पाउण्डररों का वेतन, अधिकार व अन्य सुविधायें एलोपैथ चिकित्सकों की भाँति देने में विलम्ब न किया जावे। एक अन्य प्रस्ताव में उ० प्र० के मुख्य मन्त्री डा० सम्पूर्णानन्दजी को बधाई दी गई और उनकी अध्यक्षता में बनाये गये आयुर्वेदीय पाठयक्रम तथा आयुर्वेदाचार्य उपाधि का समर्थन किया गया।

## कम्पाउण्डर संघ के मन्त्री का तबादला

राजकीय आयुर्वेद और यूनानी कम्पाउण्डर संघ, उत्तर प्रदेश के प्रधान मन्त्री श्री राजबली सिंह का तबादला अब राजकीय आयुर्वेदीय चिकित्सालय, जगजीवनपुर, पो०–रावलकलाँ, जिला–उन्नाव में हो गया है। अतएव, इनसे अब इसी पते पर पत्र-व्यवहार करना चाहिए।

## टोहाना आयुर्वेद मण्डल का चुनाव

टोहाना (पंजाब) आयुर्वेद मण्डल के वार्षिक चुनाव में वैद्य जगदीशचन्द्र शर्मा को अध्यक्ष, हकीम रामचन्द्र भाटिया को उपाध्यक्ष, वैद्य रामनारायण ढिंगड़ा को महामन्त्री, वैद्य रामजीदास को मन्त्री तथा हकीम ठाकुरदास जैन को कोषाध्यक्ष चुना गया।

## बड़ौदा जिला वैद्य मण्डल

बड़ौदा जिला वैद्य मण्डल का वार्षिक चुनाव हाल में ही सम्पन्न हुआ। सर्वसम्मति से वैद्य श्री मोहनलाल न० चौकसी को अध्यक्ष, वैद्य श्री धीरजलाल मा० शाह और वैद्य श्री अम्बालाल महीजी भाई को उपाध्यक्ष, वैद्य श्री रविशंकर छ० पुरोहित, वैद्य श्री विष्णुप्रसाद नन्दलाल और वैद्य श्री शिवप्रसाद करुणाशंकर को मन्त्री, वैद्य श्री जगदीशचन्द्र मू० पण्ड्या को कोषाध्यक्ष तथा वैद्य श्री तोलाशंकर जे० भट्ट को हिसाब-परीक्षक चुना गया।

## आयुर्वेद-समिति का प्रतिवेदन

आयुर्वेदिक औषध-प्रणाली की वर्तमान अवस्था का मूल्यांकन करने के लिए केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा नियुक्त समिति ने अपना प्रतिवेदन स्वास्थ्य मन्त्री श्री डी० पी० करमरकर को समर्पित कर दिया है।

ऐसा समझा जाता है कि समिति ने अपने प्रतिवेदन में भारतीय औषध की एक केन्द्रीय परिषद् और आयुर्वेदिक गवेषणा की एक केन्द्रीय परिषद् बैठाने की सिफारिश की है। आयुर्वेदिक प्रशिक्षण, गवेषणा, औषध निर्माता प्रतिष्ठान और आयुर्वेदिक वैद्यों की अवस्था सुधारने के लिए भी समिति ने सुझाव दिये हैं। समिति ने आयुर्वेद के सम्बन्ध में पूरी छानबीन की है और महत्वपूर्ण आँकड़े इकट्ठा किये हैं। समिति में निम्नलिखित व्यक्ति थे—डा० के० एन० उडुपा, शल्य चिकित्सा-विशेषज्ञ, हिमाचल प्रदेश (अध्यक्ष), श्री क० के परमेश्वरम् पिल्लई, आयुर्वेद गवेषणा प्राध्यापक, राजकीय आयुर्वेदिक महाविद्यालय, त्रिवेन्द्रम (सदस्य) तथा श्री आर० नरसिंहम्, अण्डर सेक्रेटरी, केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय, (सदस्य-सचिव)।

## बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय, झाँसी

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० द्वारा संचालित श्री धर्मार्थ औषधालय तथा स्वास्थ्य रक्षा केन्द्र झाँसी में गत दिसम्बर १९५८ में १८६७ रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गई, जिनमें ५०८ रोगी नये आये और प्रत्येक रोगानुसार रोगियों की संख्या निम्न प्रकार है।

कास ३६, ज्वरकास ५६, ज्वर ६८, प्रमेह ११, उदररोग ५, शिरःशूल ११, ज्वरप्रतिश्याय ४२, रक्तप्रदर ८, श्वास २०, संग्रहणी १, अतिसार ३३, व्रण २, दन्तरोग ४, मधुमेह २, वातरक्त ४५, मन्दाग्नि ३, दुर्बलता ३, प्रतिश्याय कास २८, श्वेतप्रदर ९, ज्वरातिसार २७, वातरोग १३, उदरशूल ७, अजीर्ण ६, आमातिसार २२, रजावरोध ६, कर्णरोग ७, विष्टम्भ ४, मूत्रावरोध १, बहुमूत्र २, अम्लपित्त १, नेत्राभिष्यन्द १, कष्टार्तव २, शिरोरोग ४, उष्णवात २, यकृतरोग ११, वक्षशूल ४, कृमिरोग ४, आघात १, कण्ठरोग १, त्रिदोषज ज्वर ७, मस्तिष्कदौर्बल्य १।

## डा० उडूपा को नया पद

काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय के आयुर्वेद कालेज के प्रिन्सिपल पद पर डा० के० एन० उडूपा की नियुक्ति हाल में हुई है। डा० उडूपा इन दिनों भारत सरकार द्वारा नियुक्त आयुर्वेद आयोग के कार्य में व्यस्त हैं। इस आयोग का कार्य समाप्त होते ही वे आयुर्वेद कालेज के प्रिन्सिपल का कार्यभार सम्भाल लेंगे। 'सचित्र आयुर्वेद' की ओर से

डा० उडूपा को हम बधाई देते हैं और उनकी सफलताकी कामना करते हैं।

## बलांगीर जिला वैद्य सम्मेलन

बलांगीर (उड़ीसा) जिला वैद्य सम्मेलन का अधिवेशन गत २७ नवम्बर को उल्लासपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर एक प्रदर्शनी का भी आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन उड़ीसा विधान सभा के विरोधी-दल-नेता महाराजा श्री राजेन्द्रनारायण सिंह ने किया। आपने अपने भाषण में कहा कि आयुर्वेद-चिकित्सा ही भारत के लिए उपयुक्त है। सरकार का यह कर्त्तव्य है कि इस चिकित्सा-पद्धति के विकास के लिए अधिकाधिक प्रयत्न करे। वैद्यों का भी कर्त्तव्य है कि वे आयुर्वेद को समुन्नत बनाने के साथ-साथ जनता की सेवा की ओर अधिक ध्यान दें।

प्रधान अतिथि डा० अभिन्नचन्द्र राव ने आयुर्वेद की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए वैद्यों से उत्साहपूर्वक काम करने का अनुरोध किया। दूसरे दिन कविराज गोपबन्धु मिश्र की अध्यक्षता में अधिवेशन हुआ, जिसमें अनेक वक्ताओं के सामयिक भाषण हुए। सभा में १४ प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए। कविराज मथुराप्रसाद राजगुरु को सभापति तथा कविराज श्री रघुनाथ मिश्र को प्रधान मन्त्री चुना गया।

## राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन

राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन की नवनिर्वाचित कार्यसमिति का प्रथमाधिवेशन श्रीमाधव आयुर्वेदिक चिकित्सालय जोधपुर में गत २५ जनवरी को आचार्य नित्यात्सालय जोधपुर में गत २५ जनवरी को आचार्य नित्यानन्दजी के सभापतित्व में हुआ। राज्य के विभिन्न जिलों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। उदयपुर के महंत श्री गंगादासजी के स्वर्गवास पर शोक प्रस्ताव के बाद निम्न महत्त्वपूर्ण निर्णय हुए—

(१) सम्मेलन के स्थायी कार्यालय के लिए भूमि ग्रहण करने के लिए वैद्यराज श्री मोहनलाल जी आयुर्वेदाचार्य संयुक्त मंत्री के संयोजकत्व में तथा अर्थ संग्रह के लिए वैद्यराज सीतारामजी मिश्र, उपाध्यक्ष के संयोजकत्व में उप समितियाँ बनी।

(२) आयुर्वेदोन्नति के लिए सरकार के पास भेजे जाने वाले प्रस्तावों को क्रियान्वित करने के लिए वैद्यराज श्री बहादुर सिंहजी एम० एल० ए० के संयोजकत्व में उप समिति बनी।

(३) सम्मेलन की जिला सभाओं का संगठन और भी दृढ़ करने का निश्चय हुआ।

(४) भारत विख्यात वैद्यराज श्रीमणिरामजी महाराज की हीरक जयन्ती मनाने के सम्बन्ध में एक समिति का निर्माण हुआ।

(५) राजस्थानी वनौषधियों का निघण्टु शास्त्र ग्रन्थ बनाया जाए।

(६) स्त्रियों में आयुर्वेद शिक्षा को प्रोत्साहन देने के उपायों पर विचार हुआ।

(७) राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन पत्रिका को आत्म निर्भर बनाने के लिए कविराज परमानन्दजी शर्मा आयुर्वेदाचार्य के संयोजकत्व में एक समिति बनाई गई तथा सम्पादक मंडल के परामर्श से पत्रिका को उन्नत करने का निश्चय हुआ।

(८) आयुर्वेदीय वातावरण के लिए श्री अध्यक्ष महोदय प्रदेश के विभिन्न भागों का दौरा करेंगे।

(९) कार्य समिति का द्वितीयाधिवेशन दिल्ली में तथा तृतीयाधिवेशन बाली में होगा।

(१०) निर्णय हुआ कि नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन को आगामी अधिवेशन उदयपुर में करने का निमन्त्र भेजा जाए।

## कमिश्नरी वैद्य सभा, उदयपुर

उदयपुर कमिश्नरी वैद्य सभा, उदयपुर की ओर से निम्बार्क सभा के भूतपूर्व अध्यक्ष, महन्त श्री गंगादास जी महाराज, (मेवाड़ मण्डलेश्वर) स्थलाधीश श्री प्रयागदासजी का स्थल, उदयपुर के स्वर्गवास होने पर एक शोक सभा का आयोजन किया गया। राजस्थान आयुर्वेद विभाग के संचालक राजवैद्य श्री प्रेमशंकरजी भिषगाचार्य ने पूज्य महन्तजी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए बताया कि स्वामीजी ने अन्य कई धार्मिक कार्यों के साथ-साथ संस्कृत एवं आयुर्वेद के विकास के कार्य किये हैं। महन्तजी के निधन से एक आयुर्वेदपोषक की भारी कमी हुई है। भविष्य पर सन्तोष प्रकट करते हुए आपने कहा कि महन्तजी के शिष्य श्री मुरली मनोहरजी शास्त्री (वैद्य मिश्रीप्रसाद शास्त्री, प्रधान मन्त्री, कमिश्नरी वैद्य सभा), जिनको कि महन्तजी ने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया है, सब प्रकार से योग्य हैं, एवं

स्थल ठीकाने एवं महन्तजी महाराज की प्रतिष्ठा-वृद्धि में शास्त्रीजी कभी पीछे नहीं रहेंगे, इसका हमें विश्वास है। वैद्य सभा के अध्यक्ष श्री भवानीशंकरजी वैद्य द्वारा प्रस्तुत शोक प्रस्ताव को स्वीकृत करने के पश्चात् दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिये दो मिनट का मौन रखा गया।

## कविराज अमरभूषण राय का निधन

कलकत्ता के यामिनीभूषण अष्टांग आयुर्वेद महाविद्यालय तथा आरोग्यशाला के संस्थापक स्वर्गीय यामिनीभूषण राय के द्वितीय पुत्र कविराज अमरभूषण राय का देहावसान गत १५ जनवरी १९५९ को संन्यास रोग से हो गया। मृत्युकाल में कविराज अमरभूषण राय की उम्र करीब ४६ साल थी। बचपन से ही अमरभूषण राय की आयुर्वेद के प्रति विशेष रुचि थी। इनके पिता की भी यह हार्दिक आकांक्षा थी कि अमरभूषण को आयुर्वेद-विद्या की उच्चतम शिक्षा प्राप्त हो, लेकिन अमरभूषण राय के प्रवेशिका परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पूर्व ही कविराज यामिनीभूषण राय का देहावसान हो गया। अमरभूषण बड़े ही मेधावी छात्र थे। कलकत्ता के स्काटिश चर्च कालेज में जब वे बी० ए० कक्षा में पढ़ रहे थे तभी अपने पिता द्वारा स्थापित 'वैद्यराज फार्मेसी' के संचालन का भार इनके कन्धों पर आ पड़ा और इसके परिणामस्वरूप इनका अध्ययन असमाप्त ही रह गया। इसके बाद अमरभूषण ने आयुर्वेद और संस्कृत का अध्ययन आरम्भ किया।

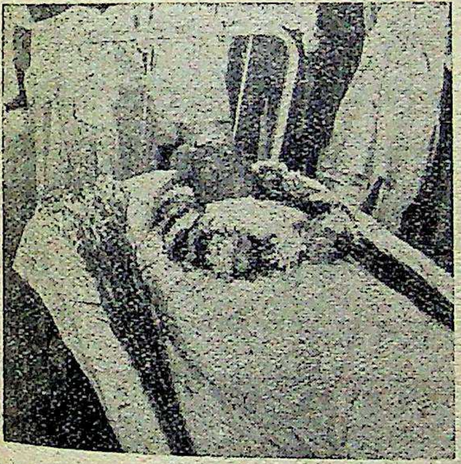

**कविराज अमरभूषण राय चिरनिद्रा में**

कुछ समय के बाद यामिनीभूषण अष्टांग आयुर्वेद कालेज और अस्पताल के कार्य-संचालन का भार भी आंशिक रूप से इन्होंने ग्रहण किया। अत्यन्त कम उम्र में ही इन्होंने अपने चिकित्सालय, अस्पताल और कालेज के संचालन का कार्य पूरी सफलता के साथ सम्पन्न कर अपनी योग्यता का परिचय दिया। कुछ वर्षों के बाद अस्पताल की कार्यकारिणी का इनको सदस्य चुना गया। इसके कुछ समय बाद ही इनको कोषाध्यक्ष बनाया गया। कई वर्षों तक इस पद पर रह कर सुष्ठभाव से कार्य सम्पादन करने के बाद पातीपुकुर स्थित यामिनीभूषण यक्ष्मा अस्पताल के अध्यक्ष पद को भी इन्होंने सम्भाल लिया। कुछ वर्षों तक इस पद पर कार्य करने के बाद इन्होंने अस्वस्थता के कारण पद-त्याग कर दिया। लेकिन, अस्वस्थ रहते हुए भी अस्पताल के ट्रस्टी तथा सेक्रेटरी पद पर इनको कायम रहना पड़ा।

इनका प्रत्येक कार्य सरलता, बुद्धिमत्ता और विचक्षणता से परिपूर्ण होता था। इन सभी कार्यों को अकेला ही सम्पन्न करते रहने के कारण इनका स्वास्थ्य क्रमशः गिरता गया और अन्त में मित्रों तथा शुभचिन्तकों के परामर्शानुसार हृदय-रोग की चिकित्सा कराने के लिए इनको सुखलाल करनानी अस्पताल में भर्त्ती होना पड़ा। यहाँ इनके हृदय-यन्त्र की शल्य-चिकित्सा हुई। काफी दिनों तक अस्पताल में रह कर इनको कुछ स्वास्थ्य-लाभ हुआ और इन्होंने पुनः अपने कार्य-भार को ग्रहण किया। लेकिन इनका शरीर क्लान्त हो गया था कि कुछ समय के बाद ही पुनः इनको अस्पताल में दाखिल होना पड़ा। अस्पताल में ही गत गुरुवार १५ जनवरी १९५९ की रात के ११॥ बजे अचानक इनका देहावसान हो गया।

स्वर्गीय अमरभूषण राय अपने पीछे अपनी एकमात्र कन्या तथा बन्धु-बान्धवों का विशाल समुदाय छोड़ गये हैं। हम लोग दिवंगत आत्मा की चिरशान्ति की कामना करते हैं।

स्वास्थ्य और सुख की प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन

आरोग्य-प्रकाश

—प्रत्येक परिवार में रहना अत्यन्त आवश्यक है !

◆

भारत-प्रसिद्ध श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड के मैनेजिंग डायरेक्टर वैद्यराज पण्डित रामनारायण शर्मा ने अनेक वर्षों के परिश्रम से इस महान ग्रन्थ—**आरोग्य-प्रकाश**—को स्वयं लिखा है। इस ग्रन्थ का एक-एक वाक्य हजारों रुपयों का काम देता है। इसके पूर्वार्द्ध के व्यायाम, ब्रह्मचर्य, भोजन, दिन-रात्रि-ऋतुचर्या, सदाचार, उत्तम विचार आदि विषयों को पढ़कर और तदनुकूल आचरण कर सदा बीमार रहनेवाला व्यक्ति भी विना दवा के ही नीरोग और तन्दुरुस्त हो जाता है।

इस ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में शरीर में पैदा होनेवाले सभी रोगों के कारण, निदान, रोग-लक्षण, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदि पर बड़ी ही सरल भाषा में सुन्दर ढंग से विवेचन किया गया है, जिनको पढ़कर विद्वान से लेकर साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति तक समान भाव से लाभ उठा सकते हैं। इसमें दवाओं के जो नुस्खे लिखे हैं, वे बहुत वर्षों के परीक्षित, कभी विफल नहीं होनेवाले और शास्त्रानुमोदित हैं। शहर हो या देहात, सब जगह इस पुस्तक के घर में रहने से रोगी को तत्काल लाभ पहुँचाया जा सकता है। औषध तैयार करने का विधान तो इस पुस्तक में बहुत ही श्रेष्ठ है, क्योंकि लेखक इस विषय के निर्णयात्मक ज्ञाता हैं। इसके ११ संस्करणों में १,०८,००० प्रतियाँ छपकर बिक चुकी हैं और बारहवें संस्करण में २० हजार प्रतियाँ फिर छापी गयी हैं। इसी से इस ग्रन्थ की लोकप्रियता और उपयोगिता का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। हिन्दी में ऐसी पुस्तक दूसरी नहीं है, यदि यह कहा जाय तो अनुचित न होगा। प्रचार की दृष्टि से इस पुस्तक का मूल्य भी बहुत कम रखा गया है। ४६० पृष्ठों की विशाल पुस्तक का मूल्य मात्र रु० २·२५, डाक खर्च ०·८८।

**नोट :**—हमारे ४ निर्माण-केन्द्रों, २५० बिक्री-केन्द्रों तथा २५ हजार एजेन्सियों में से कहीं भी यह पुस्तक खरीदी जा सकती है। इससे डाक खर्च की बचत होगी।

प्रकाशक

श्री **बैद्यनाथ** आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०

१, गुप्ता लेन, कलकत्ता—६

# शारीरः शब्दसंग्रहः

प्राचां रचनाशारीरम धकृत्य संहिताग्रन्थेभ्यः शताधिकसहस्रप्रायान् शब्दविशेषान् वर्णक्रमेण सङ्कलय्य सन्दर्भसङ्केता ग्ल पर्यायैश्च संयोज्य, आयुर्वेदोन्नतिकरेषु विविध कार्यकलापेषु मुक्तहस्तं व्ययं कुवर्ता 'श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन' संज्ञक महाप्रतिष्ठानेन सुनियोजितायास्तृतीय शास्त्रचर्चा परिषद उपसमितौ महाधिवेशने च, मया यदिदं शब्दशारीरं विदुषां पुरस्ताद् विचारार्थमुपस्थापितम्, तदेव सम्प्रति हिन्दीपर्यायविवरणदानेन साधु सम्पाद्य प्रकाश्यते।

कार्येऽस्मिन् पण्डितप्रवरैः श्री चन्द्रभानुशास्त्रिमहोदयैः श्री गोपालशास्त्रिगोडबोले महाशयैश्च महत्साहाय्यमनुष्ठितमिति ते शतशोऽभिनन्दनीयाः, अन्यथा कालेऽस्य प्रकाशनं दुःशकमेव स्यात्। त्रिदोषमहाभूत सम्बन्धिनः शब्दविशेषा भूतपूर्वशास्त्रपरिषद्विषयत्वात् क्रियाशारीरशब्दाश्च भाविपरिषदो विषयत्वान्नात्र सङ्कलिताः। शिष्यते च साम्प्रतमपि बह्वत्र कर्त्तव्यं,तद्यथा——

दृष्टिपथमनागतानां संहिताशब्दानां सन्निवेशः, इतरवैद्यक ग्रन्थेभ्यः संस्कृतसाहित्यतश्च शब्दान्तराणां चयनं, पदानां निर्दिष्टार्थविशेषैः सर्वेषां (अधिकतमानां वा) शास्त्रसन्दर्भाणां सङ्गतिर्भवति नवेति विचारः, भविष्यति व्यवहाराय शब्दार्थनियमनं, निरुक्ति परिभाषाकोशोक्तपर्यायाणां निर्देशश्चेति। तदिदं महत्कार्यं समयमपेक्षते विशिष्ट विदुषां सहयोगं च, अतो विद्वन्मूर्धन्यैर्निपुणमत्र परीक्ष्य स्वाभिप्रायदानेन मार्ग निर्देशः कर्त्तव्य इति सम्प्रार्थयन् विरमति।

—सम्पादकः

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १. | अंसः | सु. शा. ६-२६। सु. सू. १८-१८। का. पृ. ३४, ३६। च. वि. ८ (प्रमाणम्) | Acromial region, Shoulder. | बाहु का शिरोभाग, अंसकूटप्रदेश, कन्धा |
| २. | अंसकूटः | सु. शा. ६-२५। वा. शा. ४-१६। | Acromion. | अंसफलक अस्थि का अंसकूट नामक प्रवर्धन |
| ३. | अंसदेशः | सु. नि. १-८२। | Shoulder. | कन्धा |
| ४. | अंसपिण्डः | सु. शा. ५-११। | Deltoid Prominence. | अंसच्छदा पेशी से बना बाहुशिर का उभार |
| ५. | अंसपिण्डिका | सु. चि. १५-१८। | Deltoid Prominence. | ″ |
| ६. | अंसपीठः | सु. सू. ३५-१२। सु. शा. ५-२७। | Acromial region, top of the shoulder (Glenoid Cavity गणनाथः) | अंस का ऊपरी भाग, अंसकूट प्रदेश। |
| ७. | अंसफलकः | सु. शा. ५-२०। का. पृ. ५०। | Scapula. | पंखा नाम से प्रसिद्ध कन्धे की हड्डी |
| ८. | अंसबन्धनम् | सु. नि. १-८२। | Muscles and ligaments of the shoulder. | स्कन्ध (सन्धि) की पेशियां तथा स्नायु |
| ९. | अंसमूलम् | वा. नि. १५-४३। | Apex of the axilla. | कक्षादरी का शिखर भाग |
| १०. | अंससन्धिः | सु. चि. ३-३१। | Shoulder joint. | स्कन्ध सन्धि, कन्धे का जोड़। |
| ११. | अक्षः | सु. सू. ३५-७ | Clavicle. | अक्षकास्थि, हँसली। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १२. अक्षकः | च. शा. ७-६ । का. पृ. ५० । सु. चि. ३-३६, ५० । | Clavicle. | अक्षकास्थि, हंसली । |
| १३. अक्षकसन्धिः | सु. नि. ११-१० | Sterno-clavicular joint. | अक्षकोरः सन्धि । हँसली और छाती का जोड़ । |
| १४. अक्षाणि | वा. शा. ३-५ । | Special senses. Perceptive faculties, Receptors | ज्ञानेन्द्रियां |
| १५. अक्षि | च. वि. ८-प्रमाणे । | Eye. | नेत्र (आँख) |
| १६. अक्षिकनीनिका | च. शा. ७-११ । | Inner Canthus, Medial angle of the eye. | नेत्र का भीतरी कोया । |
| १७. अक्षिकूटः | च. शा. ७-११ । सु. चि. १५-१२ । का. २३, २८७ । डल्हणः सू. १२-६ | (1) Orbital or Ocular Margin.<br>(2) Eye-ball or oculus.<br>(3) Superciliary ridge. | (१) नेत्र कोटर के उभरे किनारे (डोले),<br>(२) नेत्रगोलक, (३) नेत्रकोटर का ऊपरी उभरा किनारा । |
| १८. (अक्षि)कोटरम् | मधुकोश (नि. ६-२३) | Orbital Cavity. | नेत्रकोटर या नेत्रगुहा, आंख का गढा । |
| १९. अक्षिकोषः | सु. शा. ५-२० । | Eye-lid. | पलक । |
| २०. अक्षिगोलकम् (कः) | चक्रपाणिः (शा. ७-११) मधुकोशः (नि. ६-२३) डल्हणः उ. १-१० | Eye-ball. | नेत्रगोलक, नेत्रपिण्ड, आंख का गोला । |
| २१. अक्षिगोलकत्वक् | डल्हणः (सु. उ. १८-५२) | Conjunctiva. | नेत्रगोलक की झिल्ली । |
| २२. अक्षितारका | का. पृ. ५० | Iris. | आंख का काला परदा (पुतली) |
| २३. अक्षिपक्ष्माणि | सु. शा. ३-१४ । सु. सू. ३१-१० । | Eye-lashes. | पलक के बाल, बरौनी । |
| २४. अक्षिपञ्चकम् | राजनिघण्टु | Special Senses. | पांच ज्ञानेन्द्रियां । |
| २५. अक्षिपुटः | सु. सू. ५-१३ | Eye-lid. | पलक । |
| २६. अक्षिबन्धानि | का. पृ. ५०, ५६ । | Eye-lids. | ,, |
| २७. अक्षिराज्यः | माधव ५६-२० । | Conjunctival Vessels. | आंख के डोरे । |
| २८. अक्षिवर्त्म | च. शा. ७-११ । | Eye-lid. | पलक । |
| २९. अक्षिवर्त्मकोषः | | Eye-lid. | ,, |
| ३०. अग्निस्थानम् | सु. चि. २-१२ । | Place of Complete digestion, Small intestine. | पाचकाग्नि के स्थान, विशेषकर छोटी आँत । |
| ३१. अग्न्याधिष्ठानम | च. वि. ६-१३ । च. चि. १५-५६ । | Gastro-intestinal place of digestion. | पाचकाग्नि के स्थान, आमाशय व आँत |
| ३२. अग्न्याशयः | शार्ङ्गधर संहिता | (1) Small intestine. (2) Pancreas. सेनवारियरी | (१) छोटी आँत (२) कुछ के मत में पेंक्रियाज नामक ग्रन्थि |
| ३३. अग्रनासिका | वा. सू. ३०-३० । | Tip of the nose. | नाक की नोक |
| ३४. अग्रपर्व प्रदेशः | सु. सू. ८-७ । | Distal part of the finger. | उंगली का अगला पोर |
| ३५. अग्रमांसम् | | Liver. | यकृत् या जिगर |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३६. अङ्गम् | सु. सू. ३५-१२। सु. नि. १-६४। वृ. वा०। सु. शा. ५-३। | (1) Body. (2) Part of the Body (3) Organ. | शरीर, शरीर का कोई भाग या अवयव |
| ३७. अङ्गजम् | माधव २१-५। | Hair. | बाल, रोएँ, केश |
| ३८. अङ्ग प्रदेशः | सु. नि. ५-४। | Different spots or areas of the body. | शरीर के स्थल विशेष |
| ३९. अंगुलयः | च. शा. ८-५०। | Fingers. Toes (Digits) | उंगलियां |
| ४०. अंगुलास्थि | का. पृ. ४९ | Phalanx. | उंगलियों की हड्डी |
| ४१. अंगुलिग्रन्थयः | डल्हणः (सु. सू. ३५-४) | Digital nodes or joints. Knuckles. | उंगलियों की गांठें या जोड़। ठोले। |
| ४२. अंगुलिपर्वाणि | सु. सू. ३५-४। सु. सू. १८-१८। | (1) Digital nodes, (2) Internodal Lengths of the digits. | उंगलियों के जोड़ या पोर। |
| ४३. अंगुल्यग्रम् | सु. सू. १८-१८। | Tip of the finger. | उंगली का सिरा या नोक। |
| ४४. अंगुल्यन्तरम् | सु. नि. १३-३२। | Interdigital cleft. Web. | उंगलियों के बीच की घाई। |
| ४५. अंगुष्ठः | सु. सू. ३५-१२ | Thumb. First Toe. | अंगूठा। |
| ४६. अंगुष्ठमूलम् | कणाद नाड़ीविज्ञान श्लोक ११, १४। सु. सू. ३५-१२। | Root of the thumb. Outer end of the wrist in front. | अँगूठे की जड़, जहां नाड़ी देखते हैं। |
| ४७. अंगुष्ठोदरम् | सु. शा. ४-४। | Length of the Thumb, above the distal crease. | अँगूठे के अगले पोर की लम्बाई |
| ४८. अङ्घ्रिः | | Foot. | पाँव |
| ४९. अण्डकोषः (शः) | डल्हणः (सु. सू. २३-५) | Scrotum. | फ़ोता। |
| ५०. अण्वस्थीनि | सु. शा. ४-१२। | Short bones. | छोटे-छोटे अस्थिखण्ड |
| ५१. अधःकायः | वा. सू. २-१६। सु. नि. १-३८। | (1) Part of body below the waist. (2) Part of body below the head. | शरीर का शिर या कमर से नीचे का भाग |
| ५२. अधः स्रोतः | सु. उ. ५८-१४। | Anal or urethral passage. | मलमार्ग व मूत्रमार्ग |
| ५३. अधरः | वा. शा. ५-६। | (1) Lower lip. (2) Lower or Inferior in Position. | निचला ओठ या नीचा |
| ५४. अधरकायः | का. पृ. १००। | See. अधःकायः | शरीर का निचला भाग |
| ५५. अधरगुदम् | च. शा. ७-१०। | (1) Lower part of the rectum. (2) Anus–इत्येके | गुदनलिका का निचला भाग |
| ५६. अधरमार्गः | च. वि. २-७। | See. अधःस्रोतः | मलमार्ग व मूत्रमार्ग |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ५७. | अधिजिह्विका | का. पृ. २१। च. चि. १२-७४ | (1) Pharyngeal tonsil (Adenoids) (2) Epiglottis | (१) बालकों के गले की छत में पाई जाने वाली एक ग्रन्थिविशेष। (२) स्वर-यन्त्र को ढँकनेवाला जिह्वा सदृश अवयव। |
| ५८. | अधोभागः | का. ५६, ५८। | Lower abdomen. | पेट का निचला भाग (अधरोदर) |
| ५९. | अधोमार्गः | वा. नि. ७-२१। | See. अवःस्रोतः | मलमार्ग व मूत्रमार्ग |
| ६०. | अनामिका | सु. सू. ३५-१२ | 4th or Ring finger. Annularis. | चौथी उंगली, जिसमें अंगूठी या पवित्री पहिनी जाती है। |
| ६१. | अनिलायनानि | सु. नि. १६-६१। | Air passages. | श्वासमार्ग और उसकी प्रणालिकाएँ |
| ६२. | अन्तःकुक्षिः | च. शा. ६-२२। | Abdominal or Uterine cavity. | उदरगुहा या गर्भाशयगुहा, कोख |
| ६३. | अन्तःकोष्ठः | सु. शा. ४-१६। | Abdomen. | उदरगुहा या पेट |
| ६४. | अन्तःपुष्पम् | कश्यपः | Ovum. | भीतरी आर्त्तव या स्त्रीबीज |
| ६५. | अन्तर्गलः | सु. नि. १६-६३। च. सू. १८-२८।<br>वा. शा. ४-३०। | Throat. | गला (भीतर का) |
| ६६. | अन्तर्गतं फलम् | सु. शा. ५-५१ | Ovary. | स्त्रियों की बीजग्रन्थि |
| ६७. | अन्तर्मुखस्रोतांसि | डल्हणः (सु. शा. ५-१०) | Internal tracts, Channels, Tubes, ducts. | शरीर के भीतर की विविध प्रणालियां |
| ६७क. | अन्तर्बहिर्विभागः | च. इ. १-१०। | Medial (Internal) lateral (Inward or external) | शरीर का भीतर और वाहर की दृष्टि से विभाग |
| ६८. | अन्तराग्निः | सु. सू. १०-५। | Internal (Abdominal) fire, in the form of digestive secretions. | भीतर की पाचकाग्नि |
| ६९. | अन्तराधिः | सु. सू. ३५-१२। वा. शा. ३-१। | Trunk. | धड़ (हाथ, पैर, शिर और गर्दन को छोड़कर, शरीर का अवशिष्ट बीच का भाग) |
| ७०. | अन्ताः | सु. उ. ४४-३९। | Endings, as hands, feet, face. | धड़ से अतिरिक्त अङ्गों के आखिरी हिस्से, यथा हाथ-पांव और मुखमण्डल। |
| ७१. | अन्तौ | सु. उ. १८-६६। | Canthi, outer and inner angles of the eye. | आंख के दोनों कोये |
| ७२. | अन्त्राणि | का. पृ. ४८। सु. शा. ५-९। | Intestine. Bowel. | आँत |
| ७३. | अन्त्राशयः | सु. चि. २-१९। | Lumen of Intestine. | आँत के भीतर की खाली जगह या पोल |
| ७४. | अन्नमार्गः | वा. नि. ४-२६। च. चि. १७-२२। | Gullet, Oesophagus. | अन्नप्रणाली |
| ७५. | अन्नवहस्रोतः | च. वि. ५-११। सु. शा. ९-१२। | Oesophagus & small intestine, Connected with the stomach. | अन्न-प्रणाली और क्षुद्रान्त्र, जो आमाशय से सम्बद्ध है। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ७५. अन्नवहस्रोतः | च. वि. ५-११। सु. शा. ६-१२। | Oesophagus & small intestine, Connected with the stomach. | अन्न-प्रणाली और क्षुद्रान्त्र, जो आमाशय से सम्बद्ध है। |
| ७६. अन्नसम्पुट: | भेल. पृ. २०३। | Stomach. | आमाशय, पेट की थैली, मेदा। |
| ७७. अन्नाशय: | च. क. १२-५०। | Gastro-intestinal tract. | आमाशय तथा छोटी आँत। |
| ७८. अपत्यपथ: | सु. शा. ५-३६। सु. नि. ८-३। च. सि. ९-६६। | Vagina. Genital passage. | योनि या जननमार्ग |
| ७९. अपत्यमार्ग: | सु. चि. ३७-१०४। वा. सू. १६-७६ | See. अपत्यपथ | ,, |
| ८०. अपरा | सु. चि. १५-१७। सु. चि. ३७-१२५। च. शा. ८-४१। | Placenta or Placenta with membrane. | खेडी, जेर, आंवल। |
| ८१. अमरा | गङ्गाधरः। | See. अपरा | ,, |
| ८२. अपरामुखम् | का. पृ. ५७ | External os. | गर्भाशय का मुंह |
| ८३. अपाङ्गः | सु. सू. २३-६। सु. सू. १८-१८। सु. उ. १-१६। | Outer Canthus. | नेत्र का बाहरी कोया या कोना, कनखी |
| ८४. अपाङ्गदेशः | सु. सू. १६-२३। | Outer canthal region. | कनखी के पास का भाग |
| ८५. अपाङ्गपुत्रिका | डल्हणः (सु. सू. १६-२३) | Tragus. | कान का कोकरू |
| ८६. अपाङ्गसन्धिः | सु. उ. १-१६। | Outer junction of the eye lids. | नेत्र के बाहरी कोर पर पलकों का मिलना |
| ८७. अपाङ्ग्या सिरा | सु. शा. ८-१७। | Superficial Temporal Vein. | अ्रुशंखा उत्ताना सिरा |
| ८८. अपानम् | | Anus. Rectum. | गुदा |
| ८९. अब्धातुः | च. चि. २२-९। सु. शा. २-३५। | Body-fluid. | शरीर का जलांश या तरल धातु |
| ९०. अम्बु | | See. अब्धातु | ,, |
| ९१. अम्बुमार्गाः | वा. नि. १२-३७। | Paths of circulating fluid. | तरलधातु के वहनमार्ग |
| ९२. अम्बुवाहीनि स्रोतांसि | सु. उ. ४८-५। | Tubes for fluid circulation. | ,, |
| ९३. अरत्निः | च. शा. ७-६। | Fore-arm, Anti-brachium. | प्रकोष्ठ (कोहनी से कलाई तक का भाग) |
| ९४. अरुणाः सिराः (श्यावारुणाः) | सु. शा. ७-१८। वृ. वा.। वा. शा. ३-३६। | (Small) arterial branches. | वातयुक्त रक्त को वहन करने वाली धमनी-प्रशाखाएँ। |
| ९५. अर्धकायः | वा. नि. १५-३६। | Longitudinal half of the body | शरीर का वाम या दक्षिण अर्ध |
| ९६. अर्धाङ्गम् | मधुकोशः (नि. २२-४०) | ,, ,, ,, ,, | ,, |
| ९७. अर्थः | च. सू. ३०-६ | (1) Heart (2) Brain. | इस प्रकरण की दृष्टि से हृदय या मस्तिष्क |
| ९८. अलिकं | डल्हणः (सु. शा. ५-३७) | Fore-head. | ललाट, माथा |
| ९९. अवटुः | सु. चि. ३-३७। सु. उ. ६-२७। | Nape of the neck. | गरदन का पिछला भाग, गुद्दी |
| १००. अवयवः | सु. सू. १४-३। सु. सू. ३५-१२। | Part or organ of the body. | शरीर का कोई भाग या अङ्ग-प्रत्यङ्ग |
| १०१. अवरोधः | सु. सू. २९-१०। | Shoulder. | कन्धा |
| १०२. अश्रु | | Lacrimal fluid (Tears) | आंसू |
| १०३. अश्रुमार्गः | सु. उ. २-५। सु. उ. १-१२। | Lacrimal apparatus. | अश्रुवहन के विविध मार्ग |

|  |  |  |  |  |
|---|---|---|---|---|
| १०४. | अश्रुवाहिण्यौ | सु. शा. ६-५ । | Lacrimal Canaliculi. | अश्रुप्रपिकाएँ (पलकों के अन्तःकोणों में छिपी और अश्रु कोष को जानेवाली दो सूक्ष्म नलिकाएँ) |
| १०५. | असृग्वहाः | सु. शा. ५-१६ । | Blood Vessels. | रक्त को वहन करनेवाली नलिकाएँ। |
| १०६. | अस्थि | सु. शा. ५-१८ च. शा. ७ | Bone. | हड्डी |
| १०७. | अस्थिजालम् | सु. शा. ५-१२ । | Group of bones (Carpal, Tarsal) Bony Retiform | मणिबन्ध और गुल्फदेश में अनेक अस्थि-खण्डों के मेल से बना जाल। |
| १०८. | अस्थिपञ्जरः | का. पृ. १०० । | Bony skeleton. | कंकाल या ठठरी, हड्डियों का बना ढांचा। |
| १०६. | अस्थिपर्वाणि | च. चि. १५-५१ । च. चि. २८-३० ।<br>सु. नि. १-३६ । | Bony Nodes, joints. | हड्डियों की गांठें या जोड़। |
| ११०. | अस्थिविवरम् | सु. सू. २६-१० । | Medullary canal. | हड्डियों के भीतर की पोली नली, जिसमें मज्जा रहती है। |
| १११. | अस्थिसङ्घाताः | सु. शा. ५-१६ । वा. शा. ३-१५ । | Clumps of the bones. | हड्डियों का जमघट। |
| ११२. | अस्थिसन्धयः | सु. शा. ५-२८ । | Articulations, joints. | हड्डियों के जोड़। |
| ११२क. | अस्थिस्नेहः | माधव नि. ६१-४ | Bone Marrow | मज्जा |
| ११३. | अस्थिसारम् | राजनिघण्टु | Bone-Marrow. | मज्जा |
| ११४. | आधाराः | वा. शा. ३-१० । | Some particular organs, or group of organs which are containers of something | शरीर के कुछ खास भीतरी अंग या अंग-समूह, जिनमें दोष, धातु या मल रहते हों। |
| ११५. | आननम् | सु. उ. ४१-२१ । च. वि. ८-(१४-७-१४) | (1) Oral Cavity. (2) Face. | (१) मुंह, (२) चेहरा |
| ११६. | आभ्यन्तर कण्डराः | डल्हणः (सु. नि. १-७५) | Flexor tendons or nerves of the hand. | हाथ की संकोचक कण्डराएँ या नाडियां |
| ११७. | आमपक्वाशयः | च. सू. ११-४८ | Alimentary canal, Gastro-intestinal Tract. | महास्रोत, पाचन-प्रणाली |
| ११८. | आमाशयः | च. वि. २-२३, २४ । सु. नि. १-८६ ।<br>सु. सू. २१-११ | (1) Stomach, (2) Stomach and Jejunum. | (१) अन्न की थैली, (२) थैली व क्षुद्रान्त्र का ऊपरी भाग |
| ११६. | आर्त्तवम् | सु. सू. १४-१४ । सु. शा. २-१७ ।<br>अरुणः वा. सू. १-६ । | (1) Menstrual discharge. (2) Ovum (Periodic discharge) | (१) बाह्य ऋतुस्राव या मासिक स्राव (२) आभ्यन्तर ऋतुस्राव या स्त्रीबीजक्षरण |
| १२०. | आर्त्तवह स्रोतसी | सु. शा. ६-१२ । | Fallopian or Uterine tubes. Oviducts. | स्त्री-बीज को गर्भाशय में पहुँचानेवाली नलियां। |
| १२१. | आर्त्तववहानि स्रोतांसि | सु. शा. ४-२४ । | Uterine Vessels. | अनुगर्भाशया धमनियों की शाखाएँ |
| १२१क. | आर्त्तववहं स्रोतः | डल्हणः (सु. शा. ५-१०) | See रक्तवहंस्रोतः(Vaginal orifice) | योनिद्वार |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १२१क. आर्त्तववहं स्रोतः | डल्हणः (सु. शा. ५-१०) | See रक्तवहंस्रोत:(Vaginal orifice) | योनिद्वार |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १२२. आर्त्तववाहिन्यो धमन्यः | सु. शा. ९-१२ | Ovarian & Uterine Arteries. | अनुबीज कोषिका व अनुगर्भाशया धमनियां (बीजग्रन्थि और गर्भाशय की धमनियां) |
| १२३. आर्त्तवशोणितम् | सु. सू. १४-७ । | Menstrual blood or Ovum. | देखें, आर्त्तवम् |
| १२४. आशयाः | सु. शा. ४-५ । का. पू. ४९ । का. पू. ५० । | See. आधाराः | देखें, आधाराः |
| १२५. आस्यम् | च. वि. ८-(१४-७-१४) वा. उ. २१-४२ । | (1) Mouth (2) Face. (3) Interlobial aperture. | (१) मुंह, (२) चेहरा, (३) मुखद्वार |
| १२६. इन्द्रियप्राणवहानि स्रोतांसि | च. सि. ९-४ । | (1) Cranial Nerves. (2) Cerebro-spinal Nerves. | शीर्षण्य तथा मस्तिष्क सौषुम्निक नाड़ियां |
| १२७. इन्द्रियसारथिः | अरुणः (वा. शा. ३-५) | Mind or psyche. | मन |
| १२८. इन्द्रियाणि | च. सू. ८-३ । | See. अक्षाणि | ज्ञानेन्द्रियां |
| १२९. इन्द्रियम् | सु. उ. ५५-४ । | Here means, Semen. (क्वचिल्लिङ्गार्थेऽपि) | यहां शुक्रवाचक है (कहीं-कहीं लिङ्गवाचक भी होता है) |
| १३०. इन्द्रियाधिष्ठानानि | च. सू. ८-३ । | Special sensory organs. | इन्द्रियों के निवासगृह, जो प्रायः उन्हीं नामों से प्रसिद्ध हैं तथा दृश्य हैं। |
| १३१. इन्द्रियायतनानि | च. नि. ८-४ । | ,, ,, ,, ,, | ,, |
| १३२. इन्द्रियार्थाः | च. नि. ८-४ । | Objects of the special senses. | इन्द्रियों के ग्राह्य विषय। |
| १३३. उरवा | च. शा. ७-११ । | (1) Infra-clavicular Fossa. (2) Hollow on the side of the hip. | (१) ऊर्ध्वशाखा की दृष्टि से अक्षकाधरखात (२) अधःशाखा की दृष्टि से नितम्बपार्श्वखात |
| १३४. उच्छ्वासमार्गः | च. चि. २६-११० । च. चि. १७-२७ | Respiratory Tract. | श्वासपथ |
| १३५. उण्डुकः | सु. शा. ४-१७, २५ । | Colon (Caecum, सेन: Sigmoid colon. इति बनर्जी) | गुदव्यतिरिक्त स्थूलान्त्र या बृहदन्त्र । (कुछ के मत में बृहदन्त्र का आरम्भिक पोटलीनुमा भाग या कुण्डलिकानुमा चरम भाग) । |
| १३६. उत्तमाङ्गम् | सु. उ. १-९ । च. सू. १७-१२ । | Head or Head & Neck. | शिर या शिरोग्रीव । |
| १३७. उत्तरगुदम् | च. शा. ७-१० । | (1) Upper part of the rectum (२) Rectum. इत्येके | गुदनलिका का ऊपरी भाग । |
| १३८. उत्तरदन्तः | सु. चि. २२-२९, ३१ । का. पृ. ६ । | Tooth of the upper Jaw. | ऊपर का दांत । |
| १३९. उत्तरपादः | का. ३२ । | Dorsum of the foot. | पादपृष्ठ (पादतल से विपरीत भाग) । |
| १३९क. उत्तराधर विभागः | च. इ. १-१० । | Superior ( Proximal ) and Inferior (Distal) | शरीर का ऊपर और नीचे की दृष्टि से विभाजन |
| १४०. उदकवह स्रोतांसि (स्रोतसी वा) | च. वि. ५-१० । सु. शा. ९-१२ । | See. अम्बुवाहीनि स्रोतांसि | तरल धातु के वहनमार्ग |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १४१. उदरपार्श्वम् | सु. सू. १५-१६ | Side of Abdomen Flank . | उदर का पार्श्वभाग |
| १४२. उदरफलकम् | डल्हणः (सु. शा. ५-३७) | Abdominal Wall. (Antero-lateral Part) | उदर की पूर्वभित्ति, जो केवल मांसमय है। |
| १४३. उदरम् | सु. शा. ५-४। सु. शा. ६-६। च. शा. ७-११। | Abdomen. Belly. | पेट। |
| १४४. उदरोरः सन्धानम् | डल्हणः (सु. शा. ५-१७) | Abdominothoracic arch or Boundary in front. (Costal arch) | पेट और छाती की पूर्व सीमारेखा, जो पर्शुकातोरण से लक्षित होती है। |
| १४५. उन्मेषण्यः सिराः | मधुकोशतः (नि. ५९-६२) | Nerves to the Livator Palpebrae superioris (From oculomotor) | नेत्रोन्मीलनी पेशी की प्रचेष्टनी नाड़ी-शाखाएं, जो नेत्रचेष्टनी नाड़ी की प्रशाखाएं हैं। |
| १४६. उपजिह्विके | च. शा. ७-११। | Palatine Tonsils. | टॉन्सिल नामक गले की ग्रन्थियां (रोडियां) |
| १४७. उपधातवः | च. चि. १५-१५। (स्तन्यार्त्तव कण्डराशिरावसात्वक्स्नायवः) | Some counted structures and secretions, secondary in origin. | सप्त धातुओं से उत्पन्न शरीर की सात गौण धातु—यथा दुग्ध, रज, कण्डरा, शिरा, वसा, त्वचा व स्नायु। |
| १४८. उपनखम् | सु. सू. २३-६। | Nail fold. | नखमूल को ढंके रखने वाली त्वचा। |
| १४९. उपनासिका सिरा | सु. शा. ८-१७। | Anterior facial Vein, near the nose. (Angular Vein) | नासामूलिका नामक नासापार्श्व की सिरा। |
| १५०. उपस्थः | सु. सू. १५-१६। | Male or Femal External genital organs. | पुरुष या स्त्री की बाह्य जननेन्द्रियां (गुह्य प्रदेश) |
| १५१. उपाङ्गम् | सु. सू. १-६। | Subdivision. Secondary or smaller division. | प्रत्यङ्ग, शरीर के उपविभाग। |
| १५२. उरः | सु. शा. ५-१९। वा. सू. १२-३। च. वि. ८ (१४।७।१४) सु. सू. १८-१८। | (1) Chest, Thorax, (2) Breast. | उरोगुहा, छाती या सीना |
| १५३. उरःकोष्ठः | वा. शा. ४-१३। | Thoracic Cavity. | उरोगुहा, छाती के भीतर का गह्वर |
| १५४. उरोग्रीवम् | सु. सू. ४६-१३३ | Thorax and neck. | छाती और गरदन |
| १५५. उलूखलः | सु. शा. ५-२७ | Socket (Ball and Socket joint. Peg and Socket Joint) | ओखली जैसे हड्डियों के गढ़े, तथा उनके मेल से बनने वाली सन्धियों का एक विशेष प्रकार। |
| १५६. उल्वः | सु. शा. १०-२१। डल्हणः (सु. चि. ३७ १२५) | (1) Placenta (2) Foetal membrane (3) Vernix Caseosa including placenta. | (१) आँवल या खेडी (२) जेट (३) गर्भ-त्वचा पर की मलाई। |
| १५७. ऊरुः | सु. सू. ३५-१२। | Thigh (Femur) | ऊर्ध्वजङ्घा, रान, सांथल |
| १५८. ऊरुनलकः | च. शा. ७-६। का. पृ. ४९ | Femur. | ऊर्ध्वजंघा या रान का अस्थिदण्ड |

|  |  |  |  |
|---|---|---|---|
|  | च. शा. ७-८ । का. पृ. ४६ | Femur. | ऊर्ध्वजंघा या रान का अस्थिदण्ड |

|  |  |  |  |
|---|---|---|---|
| १५९. ऊरुपिण्डिका | च. शा. ७-११ । का. पृ. ५० । | Quadricipital Prominence of the Thigh. | चतुः शिरस्कापेशी से बना ऊर्ध्वजंघा का सामनेवाला उभार । |
| १६०. ऊरुमूलम् | भेल. पृ. २३ । सु. शा. ८-१७ । | Groin, Inguinal region. Inguen. | सामने की ओर ऊर्ध्वजंघा तथा उदर की सन्धि-सीमा या कमर का पूर्व भाग । |
| १६१. ऊरुसन्धिः | कामसूत्र पृ. ६२ । डल्हणः (सू. ३५-१२) | ,, ,, ,, ,, | ,, |
| १६२. ऊर्ध्वकफाशयः | का. पृ. ६२ । | Head. | शिर, जो कफाशयों में ऊंचा कफाशय है । |
| १६३. ऊर्ध्वकायः | सु. चि. ३-५४ । | Upper part of the body or head. | (१) शरीर का ऊपरी भाग, (२) प्रकरण विशेष की दृष्टि से शिर । |
| १६४. ऊर्ध्वकोष्ठः | तन्त्रान्तरवचसि (च. चि. १५-९) | Part of the alimentary canal upto the stomach. | महास्रोत का ऊर्ध्वभाग जो मुंह से आमाशय तक फैला है । |
| १६५. ऊर्ध्वजत्रु | सु. सू. १-८ (२) । | Head & Neck. Part above the sternum. | शिरोग्रीव, ग्रीवामूल से ऊपर का भाग |
| १६६. ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तः | डल्हणः (सु. चि. २२-२७) | Upper row of the teeth. | ऊर्ध्वहनु की दन्तश्रेणी |
| १६७. ऊर्ध्वदेहः | मधुकोशतः (मा. नि. ३६-१५) | Upper half of the body. | शरीर का उत्तरार्ध (ऊपर का आधा भाग) |
| १६८. ऊर्ध्वनाभि | वा. चि. १४-४ । च. चि. ५-२ । | Epigastric region or Epigastrium. | नाभिदेश से ऊपर, उदर का हृदयाधारिक प्रदेश । |
| १६९. ऊर्ध्वभागः | सु. चि. ३४-६ । | Upper abdomen. | पेट का ऊपरी भाग (उत्तरोदर) । |
| १७०. ऊर्ध्वहृदयम् | भेल पृ. ३३ । | Brain. (केषाञ्चिन्मते तु Heart एव) | (१) मस्तिष्क, (२) कुछ के मत में हृदय ही |
| १७१. ऊर्ध्वाङ्गम् | वा. सू. १-५ । | Head and neck. | शिरोग्रीव भाग । |
| १७२. ऊर्व्वस्थि | सु. चि. ३-२७ | Femur. | ध्वजंघा या रान की हड्डी । |
| १७३. उर्व्वीसंज्ञे सिरे | सु. शा. ७-२२ | Profunda femoris. Femoral Vessels. | गम्भीरोरुका तथा और्वी नामक रक्तवाहिनियां |
| १७४. एकाङ्गम् | माधव नि. २२-४१ | One half of the body. | शरीर का वाम या दक्षिण पक्ष (अर्धभाग) । |
| १७५. ओष्ठौ | सु. नि. १६-३ । | Lips, or labia. | ओठ |
| १७५क. अधरोष्ठः | सु. सू. ३१-५ । सु. सू. ३२-४ । | Lower lip or labium. | नीचे का ओठ |
| १७५ख. उत्तरोष्ठ | ,, ,, | Upper lip or labium | ऊपर का ओठ |
| १७६. ओष्ठप्रान्तौ | डल्हणः (सु. उ. ६०-१३) | Angles of the mouth. | मुख के कोण, जहां दोनों ओठ परस्पर मिलते हैं |
| १७७. ओजः | सु. सू. १५-२१ । च. सू. १७-७४,७५ का.पृ. २८ । | Stamen (pl. Stamina), Vigor. | बल, तेज, अन्दरूनी ताकत, सर्वधातुसार । |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १७८. | ओज: स्थानानि | भेल. पृ. ८५ | 12 things on which stamen depends—Blood, Muscles, Fat, Bones, Marrow, Internal secretions, Pitta, Kapha, Sweat, Urine, Faeces. | वे शास्त्रपरिगणितभाव, जिन पर बल निर्भर करता है या जिनमें रहता है। |
| १७९. | औपनासिक्य: सिरा: | सु. शा. ७-२२। | Anterior facial Vein with their nasal tributaries. | नासामूलिका सिरा और उसकी पूरक शाखाएँ |
| १८०. | औपनासिका सिरा | डल्हण: (सु. उ. १२-३८ | See: उपनासिका सिरा | नासामूलिका सिरा |
| १८०क. | औदर्याग्नि: | वा: शा. ३-५६ | See अन्तराग्नि | पट के भीतर की पाचकाग्नि |
| १८१. | कक्ष: कक्षा वा | च. वि. ८ (१४-७-१४) सु.सू.५-१३ का.३४ | Axilla, Armpit. | काँख या बगल |
| १८२. | कक्षा भागा: | सु. नि. १३-१९। | (1) Different areas of the axilla. (2) Axillae and Groins. | (१) कांख के प्रदेश विशेष, (२) कांख तथा कांख जैसे सन्धिभाग, यथा ऊरुमूल |
| १८३. | कङ्काल: | | Bony skeleton. | शरीर का अस्थिपञ्जर या ठठरी |
| १८४. | कचा: | वा. शा. ३-१०७। | Hairs. | शिर के बाल |
| १८५. | कचान्त: | वा. शा. ३-३१ | See. केशान्त | बालों की सीमा या हद, जिससे आगे वे नहीं उगा करते। |
| १८६. | कटि: कटी वा | सु. सू. ३५-१२। च. वि. ८। | (1) Loin, Lumbus. (2) Pelvis. (3) Waist. | कड़, कमर या श्रोणि |
| १८७. | कटी कपाल: | सु. नि. ४-४। सु. शा. ५-२७ | Hip bone. | श्रोणिफलक। |
| १८७क. | कटिप्रदेश: | डल्हण: (सु. चि. ३८-३) | Pelvic Region | श्रोणिप्रदेश। |
| १८८. | कटि प्रोथ: | डल्हण: (सु. सू. १५-११) | Natis. Buttock. Gluteal prominence. Haunche. | नितम्बपिण्ड, चूतड़ |
| १८८क. | कटीवृषणौ | वा. नि. ९-१ (सू. नि. ३-१८) | Seminal Vesicles. | दोनों शुक्राशय, शुक्र की थैलियां |
| १८९. | कटिसन्धि: | डल्हण: (सु. सू. ३५-१२) | Hip joint. | कूल्हे का जोड़ |
| १९०. | कटयन्त्रम् | डल्हण: (सु. नि. २-५) | Large intestine. | बड़ी आँत या बृहदन्त्र |
| १९१. | कण्ठ: कण्ठं वा | च. इ. ९-११ | (1) Larynx. (2) Front of the neck. (3) Throt (4) Tharyuss. | (१) गला, ग्रसनिका, स्वरयन्त्र, (२) ग्रीवा का सामने का भाग। |
| १९२. | कण्ठनाडी | सु. शा. ५-१९। सु. शा. ६-२७। अरुण: (वा. शा. ३-५१) | (1) Wind pipe. Trachea (Cervical) (2) Oesophagus. | (१) श्वासनलिका, (२) अन्ननलिका |
| १९३. | कण्ठशालूकं | सु. नि. १६-५१ | Tonsil. (रोगप्रसंगे Enlarged Tonsil) | टॉंसिल नामक ग्रन्थि (रोग-दशा में बढ़ी हुई टॉंसिल) |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १९४. [illegible] | | Uvula. | गले का कौआ |
| १९५. कण्ठसिरा: | सु. शा. ६-९ । | See. मातृकाख्य मर्म | कण्ठपार्श्व की प्रमुख सिरा धमनियां । |
| १९६. कण्ठस्रोत: | वा. सू. २८-३५ । वा. सू. १०-६ | Throat, Pharygeal or laryngeal Passage. | गला, अन्ननलिका या श्वासनलिका का मार्ग । |
| १९८. कण्डरा | सु. शा. ५-११ । सु. नि. १-७४ | (1) Tendon (2) Nerve (Cord like) | स्नायु रूप की नस, यथा (१) पेशियों के दृढ़ शुभ्र प्रान्त भाग व (२) बड़ी-बड़ी नाड़ियां । |
| १९८. कनिष्ठा कनिष्ठिका वा | सु. सू. ३५-१२ । | Little finger or toe. | कानी या छोटी उंगली |
| १९९. कनीन: कनीनको वा | सु. उ. २-५ । सु. उ. १५-८, ९ । | Inner canthus. Medial angle of the eye. | नेत्र का भीतरी कोण या कोया |
| २००. कनीन सन्धि: | सु. उ. १-१६ । वा. उ. १०-७ । | ,, ,, ,, ,, | ,, |
| २०१. कनीनिका कनीनी वा | डल्हण: (सु. उ. १८-६४) | ,, ,, ,, ,, | ,, |
| २०२. कन्धरा | | Neck. | ग्रीवा, गरदन |
| २०३. कपाल: कपालं वा | सु. सू. २९-१२ । सु. शा. ५-२० । | (1) Cranial bone. (2) Flat bone. | (१) खोपड़ी की हड्डियां, (२) खपड़ा या खप्पर जैसी चौड़ी, चपटी या गहरी हड्डियां । |
| २०४. कपोल: | वा. सू. १०-४ । | Cheek. | गाल । |
| २०५. कफवाहिन्य: सिरा: | सु. शा. ७-६ । (सु. शा: ९-५) | Vessels and Nerves related to the. कणस्थानानि | कफस्थानों से सम्बद्ध सिरा, धमनी या नाड़ियां । |
| २०६. कफस्थानानि | सु. उ. ३९-५५ । सु. सू. २१-७, १२, १३, १४ । वा. सू. १२-३ । | Seats of the कफ as discribed in the text. | शास्त्र में परिगणित कफ के स्थान । |
| २०७. कफाशय: | का. पू. । वा. शा. ३-११ । | See श्लेष्माशय: | कफस्थान । |
| २०८. कफोणि: | डल्हण: (सु. शा. ६-२४) | Elbow. | कुहनी या कोहनी |
| २०९. कर: | | Hand or Manus. | हाथ । |
| २१०. करजा: | च. शा. ८-५१ । | Nails. | नख या नाखून । |
| २११. करणानि | च. शा. १-५४ । | Intellectual, sensory and some functioning organs or Faculties. | ज्ञान और चेष्टा के साधन—यथा मन, बुद्धि, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय । |
| २१२. करणायतनानि | सु. उ. ४६-४ । | See Text. | उक्त करणों के अधिष्ठान । |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २१३. करणायतनानि आभ्यन्तराणि | सु. उ. ४६-४ | Different centres or areas of the brain. | करणों के भीतरी (मस्तिष्कगत) केन्द्र-प्रदेश या अधिष्ठान। |
| २१४. " बाह्यानि | " | Organs of Perception and action. | करणविशेषों के अधिष्ठानभूत बाह्य अवयव। |
| २१५. करमूलम् | च. चि. २८-५७। | Wrist. | मणिबन्ध या कलाई। |
| २१६. कराग्रम् | वा. चि. १-१०३। | Anterior part of the hand. (Fore-hand) | हाथ का अग्र भाग, पंजा। |
| २१७. करांगुलयः | | Fingers. | हाथ की उंगलियां। |
| २१७क. करांगुष्ठः | | Thumb, Pollex. | हाथ का अंगूठा। |
| २१८. करोटिः करोटी वा | | Cranium. | खोपड़ी, शिरःसम्पुट |
| २१९. कर्णः | सु. उ. २०-१। | Ear. | कान |
| २२०. कर्णनाडी | सु. सू. ७-१२ | External auditory canal. | कर्णकुहर या कान की नली |
| २२१. कर्णपथः | | " " " | " |
| २२२. कर्णपालिः (कर्णपाली वा) | सु. सू. १६-१४। सु. चि. २५-४। वा. उ. १-३१। | Lobule of the ear. | कान की लोर या ललरी। |
| २२३. कर्णपीठम् | सु. सू. १६-११। वा. उ. १-३१। | (1) Bottom of the conche. (2) Lobule of the ear. | (१) कान कीलोर (विशेष कर उसका ऊपरी मूल भाग) (२) कर्णखात का तलदेश। |
| २२४. कर्णपुत्रकः | च. शा. ७-११। का. पृ. ५०। च. शा. ८-५०। | Tragus. | कर्णकूट या कान का कोकरू (बड़ा) |
| २२५. कर्णपुत्रिका | डल्हणः (सु. सू. १६-१०) | Antitragus (Tragus इतिसेनः) | " " (छोटा) |
| २२५क. कर्णपृष्ठम् | सु. शा. ६-२७। | Mastoid region | कान के पीछे का अस्थिमय प्रदेश |
| २२६. कर्णमूलम् | सु. सू. ३५-१२। वा. सू. २२-३१। | Parotid region (Parotid mould or bed.) | कान की जड़ के पास का करीब दो अंगुल प्रदेश, जिसमें कर्णमूल लालाग्रन्थि का भाग रहता है। |
| २२७. कर्णलतिका | डल्हणः (सु. सू. १६-१०) | Lobule of the ear. | कान की लोर। |
| २२८. कर्णशष्कुलिका | च. शा. ७-११। (सु. सू. १६-१०) | Pinna. Auricle. | बाह्यकर्ण, कान का दोना, डोबला। |
| २२९. कर्णस्रोतः | सु. उ. २०-११। | External auditory meatus. | कर्णरन्ध्र या कान की नली |
| २३०. कर्णावटुः | सु. सू. ३५-१२। | Cavum, Conche of the ear. | कर्णखात। |
| २३१. कर्णास्थि | सु. शा. ५-१९। | Temporal bone, excluding squama. | शङ्खास्थि, फलक भाग को छोड़कर। |
| २३२. कर्पराणि | डल्हणः (सु. नि. १५-१६) | Cranial bones. | खोपड़ी की (खपरे जैसी) हड्डियां। |

squama.

| | | | |
|---|---|---|---|
| २३२. कर्पराणि | डल्हणः (सु. नि. १५-१६) | Cranial bones. | खोपड़ी की (खपरे जैसी) हड्डियां। |
| २३३. कला | (१) सु. शा. ४-५, ७। वा. शा. ३-६।<br>(२) सु. उ. ६६-७। (३) च. सू १२-१। | 1. Membrane Fibrous, serous, Mucous M.<br>2. Constituents or parts of the body.<br>3. Qualities. | (१) झिल्ली, (२) शरीर के विविध घटक (३) गुण |
| २३३क. कलाविका | डल्हणः (सु. सू. ३५-१२) | Distal Third of the forearm, | |
| २३४. कलेवरम् | | Body. | शरीर |
| २३५. कशेरुका | अमरकोषतः | Vertebra. | त्रिक और अनुत्रिक को छोड़कर, पृष्ठवंश की शेष वलयाकार अस्थियां। |
| २३६. काकलं काकलकं वा | च. सू. १८-२६। सु. शा. ५-२६। | Uvula. | गले का कौआ। |
| २३७. काण्डं काण्डो वा | माधवः नि. ४४-१। (काण्डमस्थिकाण्डः-मधुकोशे) | Bone, especially shaft of the bone. | हड्डी, विशेष कर नलकास्थि |
| २३८. कामसिराः | डल्हणः (सु. शा. ५-१०) | Nerves & Vessels of erection (Dorsal nerves and vessels of Penis or clitoris) (From pudendal) | जननेन्द्रियों की हर्षदा नाड़ियां |
| २३८क. कामातपत्रम् | रतिरहस्यम् | See मदनातपत्रम् | देखें मदनातपत्रम् |
| २३९. कायच्छिद्राणि | च. नि. ४-४६। | Apertures of the body. | शरीर के विभिन्न छिद्र |
| २४०. कायद्वारम् | वृ. वा. पृ. १५६। इन्दु। | Entrance of the alimentary canal. | महास्रोत का प्रवेशद्वार (मुख) |
| २४१. कायः | सु. सू. १-८ (३)। डल्हणः सु. उ. ३९-१। इन्दुः पृ. १५६ | 1. Body. 2. In restricted sense, digestive system or digestive tube. | (१) शरीर, (२) पाचकाग्नि। |
| २४२. कायाग्निः | अरुणः (वा. शा. १-५६) | See. अन्तराग्नि | शरीर की पाचकाग्नि। |
| २४३. कालकः | सु. उ. १-१६। | 1. Iris. 2. Fibrocartilaginous pulley of the superior oblique. | (१) नेत्र की काली पुतली (कृष्णमण्डल), (२) वक्रोर्ध्वदर्शनी की तरुणास्थिमय आकर्षिका। |
| २४४. कालखण्डम् | डल्हणः (सु. शा. ४-२५) | Liver. | यकृत् या जिगर। |
| २४५. कालिका | सु. सू. १६-७३। | Vein. | शिरा (जो प्रायः अशुद्ध रक्त का वहन करती है, और काली या नीली दिखाई देती है) |
| २४६. कालीयकं कालेयकं वा | डल्हणः (सु. शा. ४-२५) वृ. वा.। सु. सू. ४६-१३०। | Pancreas. | पेंक्रियाज नामक ग्रन्थि, जो अग्न्याशय नाम से प्रसिद्ध है। |
| २४७. किट्टम् | च. सू. २८-३। | Waste. | मल, शरीर के बहिष्करणीय त्याज्य भाव |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २४७क. कीलकौ | चक्रपाणिः (च. शा. ७-६) | Clavicles. | दोनों अक्षकास्थियां, (हंसली) |
| २४८. कुकुन्दरौ | च. शा. ७-११। का. पृ. ३०, ५०। | 1. Highest curve of the iliac crest, on both sides.<br>2. Ischial tuberosities. (See मर्म also) | (१) जघन धारा का उच्चतम उन्नत भाग।<br>(२) कुकुन्दरपिण्ड नामक श्रोणिफलक के अस्थि भाग। |
| २४९. कुक्षिः | सु. सू. ५-१३। च. चि. १३-३५। | 1. Abdomen. 2. Flank. | (१) उदर (२) कोख। |
| २५०. कुक्षिगोलकौ | डल्हणः (सु. शा. ४-३१) | Kidneys. Renes. | वृक्क या गुर्दे। |
| २५१. कुचौ | वृ. वा. १६५ | Breasts, Mammary glands. | स्तन (विशेष कर स्त्रियों के)। |
| २५२. कुटकास्थि | सु. सू. २६-६। | Coccyx or Sacrum Coccyx. | अनुत्रिकास्थि, त्रिकास्थि, या दोनों। |
| २५३. कुटिला सिरा | डल्हणः (सु. नि. १-२७) | Varicose Vein. | टेढ़ी-मेढ़ी और गांठदार सिरा। |
| २५३क. कुण्डलानि | का. पृ. ४९। | Coils or loops of the intestine. | आंतों की रोंडलियां। |
| २५४. कुम्भः | मधुकोश (माधवनि. ८-१९) | See. कोष्ठ | देखें कोष्ठ |
| २५५. कुहणिका | डल्हणः (सु. सू. ३५-१२) | Elbow. | कोहनी |
| २५६. कूयकं | का. पृ. ५१। | See रोमकूपानि | त्वचा के रोमच्छिद्र |
| २५७. कूर्च्चाः | (१) सु. शा. ५-१३। (२) का. पृ. ४९। (३) सु. शा. ५-१९। | (1) Brush like fibrous or membranous structures. Palmer and Planter aponeuroses. Liganemtum nuchae, Fundiform or suspensory ligament of penis.<br>(2) Navicular & Talus bones.<br>(3) Three cunciforms, cuboid & Navicular. See मर्म also. | (१) सौत्रिक धातु की बनी कूंची जैसी रचनाएं, यथा—करतलिका स्नायु, पादतलिका स्नायु, ग्रीवाधरास्नायु, शिश्न की प्रतोलिका या उत्तोलिका स्नायु।<br>(२) नौनिभ और कूर्चशिर नामक अस्थि<br>(३) (तीनों) कोणक, धन और नौनिभ नाम की अस्थियां। (४) मर्म विशेष |
| २५८. कूर्परः | सु. सू. ३५-१२। | Elbow. | कोहनी |
| २५९. कूर्परास्थि | सु. शा. ५ | Olecranon Process. | अन्तः प्रकोष्ठास्थि का कूर्परकूट प्रवर्धन |
| २६०. कृकाटिका | सु. चि. २-३२। च. वि. ८-१०५ (मांससारलक्षणे) | Laryngeal prominence (Adam's apple) | घेंटी, टेंटुआ। |
| २६१. कृष्णतारका | डह्लणः (सु. उ. १७-५८) | Iris. | आँख की काली पुतली। |
| २६२. कृष्णदृष्टिगतः सन्धिः | सु. उ. १-१६। | (1) Pupillary border. (2) Contact of the iris with the lens. | (१) पुतली और दृष्टिविवर की सीमासन्धि।<br>(२) पुतली और दृष्टिमणि का सम्पर्क। |
| २६३. कृष्णमण्डलम् | सु. उ. १-११, १३, १५। | Iris. | मण्डलाकार काली पुतली। |
| २६४. केशाः | सु. सू. २९-१०। | Hairs on the head. | शिर के बाल। |

Hairs on the head. शिर के बाल।

| | | | |
|---|---|---|---|
| २६५. केशाग्राणि | का. | Ends of the hairs. | बालों के अग्रभाग, सिरे या नोक। |
| २६६. केशान्तः | सु. सू. ३५-१२। सु. शा. ६-२७। | Boundary, where the hairs end. | बालों की क्षेत्रमर्यादा, जिसके आगे वे नहीं उगते। |
| २६७. केशभूमिः | च. सू. २०-२१। सु. नि. १३-३५। का. पृ. २८, ३५। | Field of the hairs. | बालों का उत्पत्ति क्षेत्र। |
| २६८. कोटरः (रं) | मधुकोशतः (मा. नि. ६-२३)। | Orbit or orbital cavity. | गहरा खोखला स्थान, यथा नेत्रकोटर। |
| २६९. कोरसन्धयः | सु. शा. ५-२७। | Condyloid & Hinge joints. | खल्लकोर तथा सन्दंशकोर नामक सन्धि प्रकार |
| २७०. कोषः (शः) | सु. चि. १९-२२। माधव नि. ४७-७ सु. नि. १३-४८। | (1) Sac. (2) Scrotum. (3) Perpuce. | (१) थैली या थैलीनुमा आवरण (२) अण्डकोष, (३) शिश्न का अग्रचर्म। |
| २७१. कोष्ठः | (१) च. सू. ११-४८। (२) सु. चि. २-१२ (३) सु. सू. २९-६९। सु. शा. ४-१७ | (1) Thoraco-abdominal cavity. Alimentary canal. (2) Visceras hollow organs (3) Abdomen. | (१) महास्रोत, वक्ष व उदर की गुहा (२) खोखले कोष्ठाङ्ग या आशय (३) उदर या कोठा। |
| २७२. कोष्ठकं कोष्ठकास्थिवा | डल्हणः (सु. नि. ११-१०, सू. ३५-७)। | Clavicle. | अक्षकास्थि या हँसली। |
| २७३. कोष्ठाङ्गानि | च. शा. ७-१०। का. पृ. ४८, ५०। वा. शा. ३-१२। | Viscera. Splanchna. Inward parts. | कोष्ठ के भीतर रहनेवाले अवयव। |
| २७४. कौर्परसन्धिः कूर्परसन्धिर्वा | सु. चि. ३-३३, डल्हणश्च। | Elbow joint. | कोहनी का जोड़। |
| २७५. क्रोडः | सु. सू. ४६-१३०। | Cardiac region or cardia. | छाती या हार्दिक प्रदेश। |
| २७६. क्लोम | (१) सु. शा. ९-१२। वा. नि. ११-१४। च. वि. ५-१०। च. शा. ७-१०। (२) सु. शा. ४-३१। वा. शा. ३-१२ | (1) Laryngopharynx. (2) Larynx, Trachea and Bronchi. | (१) गले का वह भाग जहाँ स्वरयन्त्र और ग्रसनिका दोनों खुलते हैं। (२) स्वरयन्त्र, श्वासनाल और श्वासनलिकाएँ। |
| २७७. क्लोमनाड़ी | सु. शा. ५-२६, २७। | (1) Trachea. (2) Larynx, Trachia and Bronchi. | (१) श्वासनाल, (२) स्वरयन्त्र, श्वासनाल तथा श्वासनलिकाएँ। |
| २७८. क्षुद्रान्त्रम् | च. शा. ३-१२। च. शा. ७-१०। | Small intestine. | क्षुद्रान्त्र, छोटी आँत। |
| २७८क. क्षुद्रान्त्रावयवः | वा. नि. ११-२६। | Loop of the small intestine. | छोटी आँत का भाग या हिस्सा। |
| २७९. खुडकः खुलको वा | सु. चि. १८-२६ (डल्हणश्चापि)। सु. नि. १-७९। | (1) Ankle joint, (2) Heel. | (१) गुल्फसन्धि, (२) एड़ी। |
| २८०. खुडुका | मधुकोशतः (मा. नि. २२-६१)। | Ankle joint. | गुल्फसन्धि, टखने का जोड़। |
| २८१. गण्डः | सु. चि. १५-१२। सु. शा. ५-४। सु. सू. ५-१३। | Zygoma. Cheek. | गाल का अस्थिमय उभार या गाल। |
| २८२. गन्धवहे धमन्यौ | सु. शा. ९-५। | Olfactory nerves. | दो घ्राण-नाड़ियाँ। |
| २८३. गर्भकोषः | सु. सू. ३३-१३। | (1) Uterus (2) Bag of foetal membrane. | (१) गर्भाशय, (२) जरायुपुटक, गर्भ की थैली। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २८४. गर्भकोष्ठः | च. नि. ३-१९। | Uterus or uterine cavity. | गर्भाशय। |
| २८५. गर्भच्छिद्रं | सु. शा. ५-३९। | (1) Os uteri. (2)Uterus घाणेकरः | गर्भाशय-मुख। |
| २८६. गर्भनाभिनाड़ी | सु. शा. ३-३१। | Umbilical cord. Funis. | गर्भ का नाभिनाल। |
| २८७. गर्भमार्गः | च. सि. ६-६६। | Vagina. Genital passage. | योनि या जनन-मार्ग। |
| २८८. गर्भशय्या | सु. शा. ५-४४, ३९। | Uterus. Womb. | गर्भाशय, बच्चेदानी। |
| २८९. गर्भाशयः | सु. शा. ५-८। का. ४९। | Uterus. Womb. | बच्चेदानी। |
| २९०. गर्भाशयमुखम् | | (1) Cervix Uteri, (2) Os Uteri. | गर्भाशय का मुँह। |
| २९१. गलः | च. इ. ११-१५। | (1) Oropharynx. Throat. (2) Front of the neck. | (१) गला या गले का मुखकुहर सम्बद्ध भाग विशेष, (२) ग्रीवा का सामने का भाग। |
| २९२. गलनलकम् | डल्हणः (सु. शा. ५-२६)। | Larynx & Trachia. | स्वरयन्त्र और श्वासनाल। |
| २९३. गलनलकास्थि | डल्हणः (सु. शा. ५-२६)। | Hyoid bone, Thyroid & Cricoid Cartilages. | कण्ठकास्थि, चुल्लिका और कृकाटिका नामक तरुणास्थियाँ। |
| २९४. गलबाह्यम् | च. सू. १८-२१। | Front of the neck. | ग्रीवा के सामने का भाग। |
| २९५. गलमणिः | डल्हणः (सु. शा. ५-२६)। | Uvula. | गले का कौआ। |
| २९६. गलमार्गः | वा. उ. २१-४८। | Throat-passage. | गलविवर। |
| २९७. गलसन्धिः | च. चि. १२-७३। | Fauces. | गलमार्ग और मुखकुहर की द्वारसन्धि। |
| २९८. गलशुण्डिका | च. शा. ७-११। सु. नि. १६-४०। | Uvula. | गले का कौआ। |
| २९८क. गल्लः | डल्हणः (सू. १८-१८)। | See. गण्ड | गाल। |
| २९९. गवीनी | अथर्ववेदतः। | Ureter. | दो मूत्रनाड़ियाँ, जो वृक्क से वस्ति तक जाती हैं। |
| ३००. गात्रम् | | (1) Body (2) Part of the body, (3) Hairs. (गात्रहर्षः) | (१) शरीर, (२) शरीर का कोई भाग (३) कहीं-कहीं रोम अर्थ भी, यथा गात्रहर्ष में। |
| ३०१. गात्रपञ्चकम् | वा. शा. १-५४। | Four extremities & Head-neck. | हाथ-पैर और शिरोग्रीव। |
| ३०२. गात्रावयवाः | च. सि. ३-२८। | Parts of the body. | शरीर के भिन्न-भिन्न भाग। |
| ३०३. गुण्डकः | डल्हणः (सु. नि. १३-२४)। | Groin. Inguen, | देखो ऊरुमूल। |
| ३०४. गुदं गुदो वा | सु. शा. ६-२५। सु. नि. २-५। | Rectum. | गुदा, गुदनलिका। |
| ३०५. गुदपार्श्वक्षेत्रम् | माधव नि. ४६-१। | Ischiorectal fossa. | गुदकौकुन्दर खात (गुदा के अगल-बगल स्थान) |
| ३०६. गुदमण्डलम् | सु. चि. ८-२४। | Circular area of the anus. | गुदचक्र (मण्डलाकार गुदक्षेत्र)। |
| ३०७. गुदमार्गः | वा. नि. ७-१। | Rectal canal. | गुदनलिका। |
| ३०८. गुदमुखम् | च. वि. ७-१३। | Anal orifice. | गुदद्वार। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३०८. गुदमुखम् | च. वि. ७-१३ । | Anal orifice. | गुदद्वार । |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३०९. गुदवलयः | सु. नि. २-५ । च. चि. १४-६ । | Horizontal Mucous folds of the rectum. (Houston's Valves.) | गुदनलिका के कपाट विशेष, या झोल । |
| ३१०. गुदान्त्रम् | डल्हणः (सु. नि. २-५) । | See. कट्यन्त्रम् | स्थूलान्त्र या बड़ी आँत । |
| ३११. गुदास्थिविवरम् | वा. नि. ६-१ । सु. नि. ३-१६ । | Outlet of the pelvis. | श्रोणि का निर्गमद्वार । |
| ३१२. गुदोपस्थ (देशः) | माधव नि. २२-६७ । | Perineum. | मूलाधार । |
| ३१३. गुदौष्ठः | सु. नि. २-६, ७ । | Anus. | गुदमुख के स्थूल किनारे । |
| ३१४. गुल्फः | सु. नि. १-५४ । सु. शा. ५-१६ । | (1) Ankle. (2) द्विवचनप्रयोगे Malleoli. | (१) टखने का जोड़, (२) टखना । |
| ३१५. गुल्फकर्णौ (गुल्फौ वा) | सु. चि. १८-२६ । | Malleoli. (External & Internal malleolus) | टखने (सन्धि के दोनों ओर के अस्थिमय उभार) |
| ३१६. गुल्फसन्धिः | सु. चि. ३-३३ । | Ankle joint. | टखने का जोड़ । |
| ३१७. गुल्फास्थि | (१) सु. शा. ५-१६ । (२) च. शा. ७-६ | (1) Talus. (2) Talus & Navicular bones. | कूर्चशिर या कूर्चशिर और नौनिभ नामक अस्थि |
| ३१८. गुह्यदेशः, गुह्यप्रदेशो वा | कामसूत्रं, वात्स्यायन भाष्यञ्च । डल्हणः (सु. सू. २३-५) । | Private parts as axilla, groin, Genitals, pubes, Anus. | गुप्त अङ्ग यथा—जननेन्द्रियाँ, कक्षा, वंक्षण पेड़ू और गुदा आदि । |
| ३१९. गुह्यम् | माधव निदानं ३६-१६ । | See. गुह्यदेश | गुप्त अङ्ग यथा—जननेन्द्रियाँ, कक्षा, वंक्षण पेड़ू और गुदा आदि । |
| ३२०. गृध्रसी | सु. नि. १-७४ । | (1) Sciatic Nerve. (2) Sciatica. | गृध्रसी नामक नाड़ी या रोग । |
| ३२१. गोजिह्विका, गोजिह्वा वा | च. शा. ७-११ । का. पृ. ५० । | (1) Tongue. (2) Epiglottis. | (१) जीभ, (२) स्वरयन्त्रच्छद । |
| ३२२. गौर्यः सिराः | सु. शा. ७-१८ । वा. शा. ३-३७ । | Lymphatic Vessels. | रसायनी या लसीकावाहिनियाँ । |
| ३२३. ग्रहणी | वा. शा. ३-५० । च. चि. १५-५३, ५४ । (सु. शा. ४-१८) । सु. उ. ४०-१६६ | (1) Intestinal mucosa. Small intestine. (2) Pyloric valve & Ileocecal Valve (भुक्तमार्गर्गला) | (१) क्षुद्रान्त्र या उसकी अन्तःकला, (२) मुद्राकपाटिका और सन्दंश कपाटिका । |
| ३२४. ग्रहणी नाड़ी | मधुकोशतः (मा. नि. ४-३) । | Intestinal Tube. | छोटी आँत, जो नाली जैसी है । |
| ३२५. ग्रीवा | सु. शा. ५-४, १६ । | Cervix or Neck. | गरदन या नाड़ । |
| ३२६. ग्रीवाधः (अ) सन्धिः | डल्हणः (सु. नि. ११-१०) । | Sternoclavicular joint. | अक्षकोरःसन्धि (वक्ष और हँसली का जोड़) । |
| ३२७. ग्रीवामूलम् | डल्हणः (सु. सू. १-८(२)) । | Suprasternal Notch. | कण्ठकूप, ग्रीवा और वक्षोस्थितट की सन्धि । |
| ३२८. ग्रीवावंशः | सु. शा. ५-२७ । "ग्रीवापृष्ठवंशयोः" इत्यनेन | Cervical spine | पृष्ठवंश का ग्रीवागत भाग । |
| ३२९. घण्टिका | डल्हणः (सु. शा. ५-२६) । | Uvula. | गले का कौआ, घंटी । |
| ३३०. घाटा | सु. उ. २५-१३ । | See. अवटुः (Nape of the Neck) | देखें, अवटु । |

3

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३३१. घुटिका घुण्टिका वा | भावप्रकाश । अमरश्च । | Malleolus. | गुल्फसन्धि के दोनों ओर के शुण्डी जैसे अस्थिमय उभार या टखने । |
| ३३२. घृतिका | मधुकोशतः (नि. ३-१६) । डल्हणः (सु. ३५-४) । | Brain matter. | मस्तिष्क वस्तु । |
| ३३३. घोणास्थीनि | च. शा. ७-६ (गंगाधर पाठे) । | Nasal bones. | नासास्थियाँ । |
| ३३४. घ्राणम् | वा. शा. ३-४ । अरुणश्च । | (1) Olfactory area of the nose. (2) Nose, organ of smell. | (१) नासा का गन्धग्राही भाग । (२) नासिका । |
| ३३५. घ्राणमार्गः | सु. शा. ६-२७ । | Nasal cavity. | नासागुहा । |
| ३३६. घ्राणमूलम् | च. चि. ८-४६ । | (1) Upper part of the nasal cavity. (2) Root of the nose. | (१) नासागुहा का ऊर्ध्व भाग । (२) नासा की जड़ । |
| ३३७. चक्षुः | च. सू. ८-७ । | Eye, organ of vision. | चक्षु इन्द्रियाँ या आँख । |
| ३३८. चरणः | का. | Foot. | पाँव । |
| ३३९. चर्म | | Skin, cutis. | चमड़ी, त्वचा, खाल । |
| ३४०. चर्मचेली | डल्हणः (सु. सू. २३-१९) । | Scale of the skin. | त्वचा के झीने छिलके, पपड़ी । |
| ३४१. चित्तम् | वा. शा. ३-५ । | See. इन्द्रियसारथि | मन । |
| ३४२. चिपिटिका | सु. सू. २३-१९ । | See. चर्मचेली | त्वचा की पपड़ी या छिलके । |
| ३४३. चिबुकम् | च. शा. ७-११ । सु. सू. १८-१८ । सु. सू. ३५-१२ । | Chin, Mentum. | ठुड्डी |
| ३४४. चूचुकम् | सु. चि. १७-४७ । | Nipple. Papilla. | स्तन का अग्रभाग, चूची, विटकणी । |
| ३४४क. चूड़ास्थानम् | मधुकोशतः (नि. ४४-१०) । | See. मूर्धा | मस्तक (शिर का बालदार भाग) |
| ३४५. चेतः | | See. इन्द्रियसारथि | मन |
| ३४६. चेतःस्थानम् | च. सू. २४-२८ । | Brain. | शिरोहृदय या मस्तिष्क |
| ३४७. चेतोवहमार्गः | भेल. पृ. ६४ । | Association fibres & Projection fibres. | मस्तिष्क के स्वांशयोजक और परांशयोजक नाड़ीसूत्र |
| ३४८. चेष्टावन्तः सन्धयः | सु. शा. ५-२५ । | Diarthrodial joints. | सचेष्ट या चल सन्धियाँ । |
| ३४९. चेष्टावह स्रोतांसि | च. सू. २४-२५ । | Motor nerves. | प्रचेष्टनी नाड़ियाँ । |
| ३५०. जघनकपालिनि | सु. चि. १५-१२ । | Hip bones. Innominate bones. | श्रोणिफलक, या उसका कपालकार भाग । |
| ३५१. जघनबहिर्भागः | सु. शा. ६-२६ । | Dorsal surface of the Pelvis. | श्रोणि का पश्चिम भाग या नितम्ब |
| ३५२. जघनम् | सु. उ. ४७-६३ । सु. शा. ६-२६ । | (1) Pudendum (Female) Pubes. (2) Pelvis. | (१) गुह्यदेश, पेड़ू (२) श्रोणि |
| ३५३. जङ्घा, जङ्घाकाण्डं वा | सु. चि. ३-२६ । सु. सू. ३५-१२ । सु. शा. ५-१९ । अरुणः वा. सू. ४-४ । | Leg, Crus. | जांघ या नली |
| ३५४. जङ्घापिण्डिका | च. शा. ७-११ । का. पृ. ५० । | Calf, Sura. | पिण्डी, पिण्डली |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३५५. जङ्घास्थिनी | सु. शा. ५-१९ । सु. सू. २३-६ । | Tibia & Fibula. | अन्तर्जङ्घास्थि और बहिर्जङ्घास्थि |
| ३५६. जठरम् | सु. सू. २३-६ । | Abdomen. | उदर या पेट |
| ३५७. जत्रु | च. शा. ७-६ । सु. शा. ६-६ । का. पृ. ५० | (1) Sternum. (2) Manubrium | उरःफलक या उसका ग्रैवेयक भाग |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३५४. जङ्घापिण्डिका | च. शा. ७-११। का. पृ. ५०। | Calf, Sura. | पिण्डी, पिण्डली |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३५५. जङ्घास्थिनी | सु. शा. ५-१६। सु. सू. २३-६। | Tibia & Fibula. | अन्तर्जङ्घास्थि और वहिर्जङ्घास्थि |
| ३५६. जठरम् | सु. सू. २३-६। | Abdomen. | उदर या पेट |
| ३५७. जत्रु | च. शा. ७-६। सु. शा. ६-६। का. पृ. ५० | (1) Sternum. (2) Manubrium sterni. | उर:फलक या उसका ग्रैवेयक भाग |
| ३५८. जत्रुमूलम् | सु. उ. ५०-१२। | (1) Suprasternal Notch. (2) Xiphisternal region. | (१) कण्ठकूप (२) आमाशय कूप |
| ३५९. जत्रुसन्धिः | चक्रपाणिः (च. शा. ७-६)। | Sternoclavicular joints. | अक्षकोरः सन्धि (हँसली का भीतरी जोड़) |
| ३६०. जरायुः | (१) सु. शा. ४-७। (२) का. पृ. ४६। (३) वा. शा. १-८४। | (1) Foetal membrane or Membrane, just like the foetal membrane. (2) Peritoneum. (3) Placenta with foetal membrane. | (१) गर्भावरण या गर्भावरण जैसी झिल्ली) (२) उदर्याकला (३) जेर (अपरा और गर्भावरण) |
| ३६१. जलवाहिन्यः सिराः | वा. उ. १०-१। | Lacrimal ducts. | अश्रुग्रन्थि से निकले अश्रुवह स्रोत |
| ३६२. जाठराग्निः | | See. अन्तराग्निः | पेट की पाचक अग्नि |
| ३६३. जानु | सु. शा. ५ | Knee, Genw. | घुटना |
| ३६४. जानुकपालिका | च. शा. ७-६। का. पृ. ४६। | Patella. Knee-cap or Knee-pan. | घुटने की चपनी या ढकनी नामक हड्डी |
| ३६५. जानुमण्डलम् | वा. सू. २२-३२। | See. जानु | घुटना |
| ३६६. जानुसन्धिः | सु. चि. ३-३३। | Knee joint. | घुटने का जोड़ |
| ३६७. जान्वधः सन्धिः | डल्हणः (सु. सू. ३५-१२)। | Proximal tibiofibular joint. | उत्तर जङ्घानुजङ्घिक सन्धि |
| ३६८. जान्वस्थि | च. शा. ७-६। का. पृ. ४६। | Tibial Tuberosity. | अन्तर्जङ्घास्थि का जङ्घिककूट |
| ३६९. जालधरा सिरा (जालन्धरा वा) | सु. शा. ७-२२। वा. शा. ३-२१। | (1) Great saphenous (2) Cephalic or Basalic Vein. | (१) दीर्घोत्ताना सिरा (२) बहिर्बाहुका या अन्तर्बाहुका सिरा |
| ३७०. जालानि | सु. शा. ५-१२। वा. शा. ३-१४। | Rete, Plexus, network, interlacing, or Decussation. | जालक |
| ३७१. जिह्वा | सु. शा. ५-३७। वा. शा. ३-४। | Tongue, organ of taste. | जीभ या रसनेन्द्रिय |
| ३७२. जिह्वाग्रम् | सु. नि. १६-३६, ५२। सु. शा. ८-८। | Tip of the tongue. | जीभ का अग्रभाग या नोक |
| ३७३ जह्वातलम् | सु. नि. १६-३८। | Under surface or under the tongue. | जिह्वा का अधरतल या उसकी तलेटी |
| ३७४. जिह्वाप्रबन्धः | सु. नि. १६-५२। | Root of the tongue. | जिह्वा का मूल भाग, जो बँधा रहता है |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३७५. जिह्वाबन्धनम् | वृ. वा. पृ. ३२१। (महामर्मसप्तकान्मतम्) | Root of the tongue | जिह्वा का मूल भाग, जो महामर्मों में गिना गया है। |
| ३७६. जिह्वामूलम् | सु. नि. १६-३८। सु. सू. २१-१४।<br>च. सू. १८-४०, २५। | (1) Root of the tongue. (2) Pharyngeal part of dorsum of the tongue. Base of the tongue. | (१) जिह्वा की जड़ जो गले में अनेक अवयवों से जुड़ी रहती है। (२) जिह्वा के उर्ध्वतल का पश्चिम भाग। |
| ३७७. जिह्वासेवनी | सु. शा. ५-१५। | (1) Frenulum Linguae. (2) Raphe of the tongue. | (१) जिह्वा की कला प्रबन्धनी। (२) जिह्वा की सीवन। |
| ३७८. जीवरक्तम् | सु. सू. १४-८, ४४। | Normal blood, most essential to life. | शुद्ध रक्त, जो जीवन रूप है। |
| ३७९. जीवरक्ताशयः | शार्ङ्गधर संहिता। | Thorax, Heart. Lungs. | उरोगुहा (हृदय और फुफ्फुस)। |
| ३८०. जीवस्थानम् | राजनिघण्टुः (मर्म)। | Vital organs. | मर्मस्थान या मर्म। |
| ३८०क. जीवित धामानि | वा. शा. ३-१३, वृ. वा. पृ. ३३१। | ,, ,, or Vitals. | ,, ,, ,, |
| ३८१. जीवितायतनानि | ,, ,, ,, | ,, ,, ,, | ,, ,, ,, |
| ३८२. ज्योतिःस्थानं | सु. शा. ४-५८। | Liver of the foetus. | गर्भस्थ शिशु का यकृत्। |
| ३८३. डिम्बः | वा. शा. ३-१२। (अरुणश्च) | Sigmoid colon. | बृहदन्त्र कुण्डलिका। |
| ३८४. तनूसहाः | भेल. | Hairs (especially on the body) | शरीर पर के बाल, रोएँ। |
| ३८५. तन्त्रम् | च. सू. १२-८। | (1) Body as a whole (2) Different systems of the body. | (१) समग्र शरीर (२) शरीर के भिन्न-भिन्न संस्थान। |
| ३८६. तरुणास्थि | सु. शा. ५ | Cartilage. | कार्टिलेज नामक कोमल व लचकीला अस्थि धातु विशेष। |
| ३८७. तरुणास्थिमर्म | सु. उ. २२-१३। | Common Sensory area of the nasal cavity. | नासागुहा का सामान्य सांवेदनिक क्षेत्र, जो तरुणास्थि भूयिष्ठ होता है। |
| ३८८. तर्जनी | वा. सू. २६-३१। | Index finger. Forefinger. | दूसरी या अंगूठे के पास की उँगली। |
| ३८९. तलम् | (१) सु. शा. ५-१९। (२) मधुकोशः (नि. २२-५७)। | (1) Palm or sole (2) Surface. | (१) हथेली, पगथली। (२) सतह या तलवा। |
| ३९०. तालु | सु. शा. ५-१९। | (1) Palate. (Hard Palate) (2) Anterior Fontanelle. | (१) मुखकुहर की छत, तलवा (२) शिरस्तालु |
| ३९१. तालुके तालुषके वा | च. शा. ७-६। का. पृ. ५०। | Two halves of the hard palate. | अस्थिमय कठिन तालु के वाम और दक्षिण खण्ड |
| ३९२. तालुदेशः | सु. नि. १६-४२। | (1) Palate, Palatine region. (2) Anterior Fontanelle. | (१) मुखतालु (२) शिरस्तालु |

(2) Anterior Fontanelle.

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३९३. तालुप्रदेश: (मूर्धगः) | वा. उ. २-६४ । | Anterior Fontanel | (यहाँ) शिरस्तालु (बच्चों के शिर पर पाया जाने वाला कोमल गढ़ा) । |
| ३९४. तालुमांसं | वा. उ. १-६३ । | Soft palate. | मांसमय कोमल तालु । |
| ३९५. तालुमूलम् | सु. नि. १६-४१ । | Uvular region of the palate. | कौए के पास का तालुस्थान । |
| ३९६. ताल्वस्थि | सु. शा. १०-४२ । | Bones, surrounding the ant. fontanelle | शिरस्तालु के पास का अस्थितट |
| ३९७. तारका | सु. सू. ३५-१२ । | Iris, & Cornia. | आँख का तारा (कृष्ण पटल और स्वच्छ बाह्य पटल) |
| ३९८. तिलम् | शार्ङ्गधर संहिता (आढमल्लश्च) | Gall bladder. | पित्तकोष |
| ३९९. तिलकम् | डल्हणः | (1) Gall Bladder. (2) Thymus gland. | (१) पित्तकोष (२) बालग्रन्थि-वारियर। |
| ४००. तुन्नसेवनी | सु. सू. २५-२२ सु. शा. ५-२७ । | (1) Plain continuous stitch. (2) Sutural joint. | (१) सीधी सिलाई या सीवन (२) सीवनवाली स्थिर सन्धि । |
| ४०१. तेजः पथः | सु. सू. ४६-५१२ । | Organs or ducts conveying the digestive secretions. | पाचक स्रावरूपी अग्नि के वहनमार्ग |
| ४०२. तेजःस्थानानि | भेल. पृ. ८५ । | See ओजः स्थानानि | देखें ओजःस्थानानि |
| ४०३. तेजोजलम् | सु. उ. १-१८ । | Aqueous humor. | नेत्र के भीतर का स्वच्छ जल, जो काली पुतली के आगे और पीछे के कोष्ठ में भरा रहता है । |
| ४०४. तेजोजलाश्रितं बाह्यं पटलं | सु. उ. १-१८ । | Cornia. | कोर्निया नामक नेत्र का पारदर्शी अक्ष पटल, जिसके पीछे तेजोजल भरा रहता है । |
| ४०५. तैलवर्त्तिका | चक्रपाणिः (च. शा. ७-१०) । | Great omentum. | उदर के भीतर का मेदोधर कला स्तर, जो झालर की तरह आँतों को ढके रहता है और कभी कभी सिमट कर वत्ती जैसा बन जाता है । |
| ४०६. तोयवहे द्वे (धमन्यौ) | सु. शा. ९-७ । | Renal arteries. | अनुवृक्का धमनियाँ । |
| ४०७. त्रिकम् | सु. शा. ५-१६, १६ । वा. सू. १२-१५ ।<br>सु. चि. ४-१८ । | Sacral region or sacrum. | त्रिक प्रदेश या त्रिकास्थि (यहाँ त्रिकास्थि और दो श्रोणिफलकों के मिलने से त्रिक बन भी जाता है) । |
| अधरत्रिकम् | डल्हणः सु. शा. ५-१६ । सु. चि. ४-१८ । | ,, ,, | इसे ही अधरत्रिक कहते हैं । ऊर्ध्वत्रिक वह स्थल है, जहाँ दोनों अंसफलक सप्तम ग्रीवा कशेरुका के पास सन्निहित होते हैं, और एक त्रिक सा बना देते हैं । |
| ऊर्ध्वत्रिकम् | डल्हणः सु. शा. ५-१६ । सु. चि. ४-१८ । | Intrascapular region, at the level of the 7th C.V. | |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ४०८. | त्वक् | च. शा. ७-४। का. पृ. ४५। सु. शा. ४-४ वा. शा. ३ | (1) Skin, Integument, cutis. (2) organ of sensation. | (१) त्वचा, चर्म (२) स्पर्शनेन्द्रिय |
| | (१) अवभासिनी, उदकधरा वा<br>(२) लोहिता, असृग्धरा वा<br>(३) श्वेता<br>(४) ताम्रा | | Stratum Corneum<br>,, Lucidum<br>,, Granulosum.<br>Malpighian layer. } Epidermis, Scarfskin. | |
| | (५) वेदिनी<br>(६) रोहिणी | | Stratum papillare.<br>Stratum Reticulare. } True skin, Derma. Coreum. | |
| | (७) मांसधरा | | Superficial Deep fascia. | |
| ४०९. | दन्ताः | का. पृ. ६। सु. शा. ५-१६। | Teeth. Dentes. | दांत |
| | (१) राजदन्तः | | Medial incisor. | भीतरी कर्त्तनक या छेदक |
| | (२) वस्तौ | | Lateral incisor & Canine. | बाहरी कर्त्तनक या छेदक, व भेदक या रदनक |
| | (३) दंष्ट्रे | | Premolars. | अग्रचर्वणक |
| | (४) हानव्याः | | Molars. | चर्वणक |
| ४१०. | दन्तत्वक् | डल्हणः (सु. नि. १६-३३)। | Enamel. | दाँतों के ऊपर का कड़ा छिलका |
| ४११. | दन्तपङ्कः | कामसूत्र २०३। | Tartar. | दाँतों का मैल। दन्तशर्करा |
| ४१२. | दन्तपिण्डिका | अरुणदत्तः (वा. सू. २६-२२)। | (1) Gum. (2) Alveolar Arch. (3) Denture-set of teeth. | (१) मसूढ़ा (ड़ा) (२) दन्तोदूखलपंक्ति। (३) दन्तपंक्ति |
| ४१३. | दन्तबन्धनं | सु. चि. २२-२६। का. पृ. १०। | (1) Gum. (2) Gingiva. | (१) मसूढ़ा (२) मसूढ़ों का दाँतों से सटा किनारा। |
| ४१४. | दन्तमलः | कामसूत्र भाष्य २०३। | Tartar. | दाँतों का मैल, दन्तशर्करा। |
| ४१५. | दन्तमांसम् | सु. नि. १६-१५, १६, २०। | Gum. | मसूढ़ा |
| ४१६. | दन्तमूलम् | सु. चि. २२-२६। सु. चि. २२-२२। सु. शा. ५-२६। सु. नि. १६-३ | (1) Root of the teeth. (2) Gum (3) Gingiva. | (१) दाँत की जड़ (२) मसूढ़ा (३) मसूढ़े का किनारा। |
| ४१७. | दन्तवल्कं | सु. नि. १६-३३। | Enamel. | देखें दन्तत्वक् |
| ४१८. | दन्तवेष्टकः | च. शा. ७-११। का. पृ. ५०। सु. चि. २२-१४। | (1) Alveolar arch. (2) Gum. | (१) दन्तोदूखलपंक्ति (२) मसूढ़ा या मसूढ़े |
| ४१९. | दन्ताग्रम् | सु. सू. २-३ | Cutting margin of the tooth. | दाँत की नोक, किनारा या धार। |
| ४२०. | दन्ताधारः | अरुणदत्तः (वा. सू. २६-२२) | (1) Gum. (2) Alveolar arch. | (१) मसूढ़ा (२) दन्तोदूखलपंक्ति। |
| ४२१. | दन्तोलूखलानि | च. शा. ७-६। | Bony sockets of the teeth. | हन्वस्थियों के गढ़े, जिनमें दाँतों की जड़ें धसी रहती है। |
| ४२२. | दशनच्छदौ | वा. उ. २१-१०। | Labia or Lips. | दोनों ओठ। |

|  |  |  |  |
|---|---|---|---|
| ४२२. दशनच्छदौ | वा. उ. २१-१० । | Labia or Lips. | दोनों ओठ । |

|  |  |  |  |
|---|---|---|---|
| ४२३. दशनाः | सु. शा. ५-२० । वा. उ. २१-१४ । | Teeth. Dentes. | दाँत । |
| ४२४. दंष्ट्रा | (१) का. पृ. ६ । (२) सु. क. ३-४ ।<br>वा. नि. १३-४० | (1) Premolar (2) Canine. | (१) अग्रचर्वणक (अगली दाढ़) (२) भेदक या रदनक (नुकीला दाँत या दाढ़) । |
| ४२५. दहनाशयः | भावप्रकाशः | See. अग्न्याशयः | देखें अग्न्याशय । |
| ४२६. दुग्धहरिण्यो नड्यः | सु. चि. १७-४७ । | Lactiferous Ducts. | दुग्धवह स्रोत |
| ४२७. दृष्टिः | सु. उ. ७-४ । सु. सू. ३५-१२ । सु. सू. २१-७ । सु. उ. १-१३ । वा. सू. २३-२५ । | (1) Pupil, (2) lens. (3) Eye-ball. | (१) दृष्टिच्छिद्र या पुतली (२) दृष्टिमणि (३) दृष्टिगोलक |
| ४२८. दृष्टिगोलकम् | अरुणदत्तः (वा. सू. २३-२५) | Eye ball. | नेत्रगोलक |
| ४२९. दृष्टिमण्डलम् | सु. उ. १-१३, १५ । | (1) Lens. (2) Pupil. | (१) दृष्टिमणि (२) दृष्टिविवर या पुतली |
| ४३०. देहः |  | Body as a whole. | शरीर । |
| ४३१. देहवल्कलं | राजनिघण्टुः | Superficial fascia. | उत्तान प्रावरणी (मेदोधराकला) |
| ४३२. देहावयवाः | का. पृ. ५२ | Different parts, organs or structures of the body. | शरीर के विभिन्न भाग, अङ्ग या रचनाएँ |
| ४३३. देहावयवसूत्रम् | का. पृ. ५२ | Minute or histological structure of the body or organs. | शरीर या शरीरावयवों की सूक्ष्म रचना |
| ४३४. देहोष्मा | वा. सू. २८-४३ । | Body temperature. | शरीर की गर्मी |
| ४३५. दैवकृतं छिद्रम् | सु. सू. १६-३ । सु. उ. १७-५६ । वा. उ. १-३३ । | Nonvascular, thin and Translucent point. | शरीर के रक्तहीन, पतले और पारभासक स्थल-विशेष । |
| ४३६. द्वारम् | च. चि. ४-१५ । | Aperture, opening. | छिद्र । |
| ४३७. द्विजाः | वा. उ. २१-१२ । का. पृ. १० । सु. शा. ३-७ । | (1) Teeth. (2) Especially succedaneous teeth. | दाँत, विशेष कर दो बार निकलने वाले |
| ४३८. धमनी (निः) | सु. शा. ९-१ । च. शा. ७-१३ । च. सू. ३०-११ । | (1) Artery. (2) Nerve, (3) Vein. (4) Any channel, tube or canal. | (१) हृदय से बहिर्मुख तथा प्रायः शुद्धरक्त को वहन करने वाली प्रणाली । (२) नाड़ी (३) शिरा (४) सामान्य रूप से कोई भी नलिका । |
| ४३९. धरा | शार्ङ्गधर संहिता । | Uterus. | गर्भाशय, जो गर्भबीजवपन की दृष्टि से जमीनतुल्य है । |
| ४४०. धातवः | सु. सू. १४-२० । | Main constituents of the body. | शरीर के मुख्य घटक रस रक्तादि धातु |
| ४४१. धातुव्यूहः | च. सू. १२ | Defferent systems of the body. | शरीर का सांस्थानिक गठन |
| ४४१क. धात्वग्निः |  | Metabolic agents, Tissue enzymes. | धातुओं में उपस्थित किण्व रूप की अग्नि, जो पोषक रस का पाक कर नवीन धातुओं की उत्पत्ति और शक्ति प्रदान करती है । |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ४४२. | ध्वजम् | सु. शा. २-४५ । | Penis. | लिंग |
| ४४३. | नखाः नखानि वा | का. पृ. ३२ । | Nails. | नाखून |
| ४४४. | नखमांसम् | सु. नि. १३-२१ । | (1) Nail bed or Nail Matrix (2) Digital pulp. | (१) नख भूमि या नख शय्या (२) अंगुल्यग्र का गुदगुदा भाग |
| ४४५. | नखसन्धिः | सु. चि. ३-२३ । | (1) Nail root & Nail fold. (2) Nail groove. | (१) नखमूल और उसकी आच्छादक त्वचा का संयोग (२) या उस संयोगस्थल का परिखांकित किनारा । |
| ४४६. | नयन बुद्बुदः | सु. उ. १-१० । | Bulb of the eye. Eye ball. | नेत्र-गोलक |
| ४४७. | नलकानि | सु. शा. ५-२० । सु. नि. १५-१६ । | Long bones. | दण्डाकार दीर्घ अस्थियां |
| ४४८. | नाड़ी | च. वि. ५-७ । च. शा. ६-२३ । सु. सू. ७-१८ । वा. शा. ४-१५ । | Vessels, cord, meatus, canal, tube, Nerve. | शरीर की कोई भी सरन्ध्र प्रणाली या नीरन्ध्र वात तन्त्री । |
| ४४९. | नाड़ीचक्राणि | शिवसंहितादयः । राजनिघण्टुः । | Plexuses of the autonomic nerves with different, segments of the spinal cord and Brain stern. | स्वतन्त्र वात नाड़ियों के सूत्रों से बने दृश्य जाल, जो सुषुम्ना और मस्तिष्क के खण्ड विशेषों से सम्बन्ध रखते हैं । |
| ४५०. | नाभिः (पु० स्त्री०) | (१) सु. शा. ५-४ । (२) च. शा. ७-१० (३) सु. शा. ७-३, ८-३ । (४) सु. नि. ९-२०, शा. ५-३७ । | (1) Navel, Umbilicus. (2) Deodenum. (3) Heart. (4) Diaphragm. | (१) ढोंढ़ी, सुंडी (२) छोटी आँत का आरम्भिक नाभि जैसा मोड़दार स्थिर भाग (डियोडिनम) (३) हृदय (४) महाप्राचीरा पेशी |
| ४५१. | नाभिनाड़ी | सु. शा. १०-१२ । | Umbilical cord. | गर्भस्थ शिशु का नाल, नाड़ा । |
| ४५२. | नाभिप्रदेशः | च. चि. २८-९४ । सु. चि. ७-३० । | (1) Umbilical region. (2) Hypogastric region. | (१) नाभि के आसपास का स्थान (२) अधिवस्तिक प्रदेश |
| ४५३. | नाभि बन्धनम् | च. शा. ८-४४ । | Umbilical end of the cord. | गर्भनाल का वह सिरा, जो नाभि से लगा रहता है । |
| ४५४. | नाभिमण्डलम् | सु. सू. ५-२६ । | Round area of the umbilicus. | नाभि का घेरा |
| ४५५. | नाभिमूलम् | कामसूत्र पृ. ९२, १२० । | (1) Pubic or supra-pubic region. | वस्ति शीर्ष या अधिवस्तिक प्रदेश |
| ४५६. | नालम् | सु. चि. ३७-११० । डह्लणः उ.५८-१५ । वा. नि. ९-२९ । | (1) Penis or phalus. (2) Male urethra. | (१) लिंग (२) पुरुष का मूत्रपथ |
| ४५७. | नासा नासिका वा | सु. शा. ५-४ ।च. सू. ८-९ । | Nose, Organ of smell. | नाक, गन्धग्राहक अवयव या इन्द्रिय |
| ४५८. | नासातरुणास्थीनि | डह्लणः (सु. सू. ३५-१२) | Nasal meatus. | नासा मार्ग |
| ४५९. | नासानाड़ी | सु. सू. ७-१२ । | Nostril Anterior naris. | नासारन्ध्र, नाक का छेद, नथुना |
| ४६०. | नासापुटः (टम्) | वा.सू. २०-१९ । सु. सू. ३५-१२ । | ,, ,, ,, | ,, ,, |

बैद्यनाथ च्यवनप्राश कफ-खाँसी-नाशक एक औषधि-मात्र नहीं है। यह परम पुष्टिकारक रसायन भी है। इसका सेवन बालक, वृद्ध और युवा—सभी उम्र के लोग—सब समय कर अपने शरीर को स्वस्थ बनाये रखने में सक्षम होते हैं। आप भी इसका सेवन करें और जीवन के आनन्द से सदैव भरे-पूरे रहें।

**सब समय, सबके लिये सेवनीय**

**बैद्यनाथ च्यवनप्राश**

अष्टवर्गयुक्त

SHREE BAIDYANATH AYURVED BHAWAN PRIVATE LTD. CALCUTTA

श्री **बैद्यनाथ**
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि॰

देशी दवाओं का सब से बड़ा और विश्वासी कारखाना

कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

B 51

ओज·बलदायक

आयुर्वेदी
ओषधियाँ

बैद्यनाथ
अभ्रक भस्म सहस्रपुटी

बैद्यनाथ
लौह भस्म सहस्रपुटी

बैद्यनाथ
मुक्ता (मोती) भस्म

बैद्यनाथ
स्वर्ण भस्म

बैद्यनाथ
वैक्रान्त भस्म

बैद्यनाथ
प्रवाल भस्म

REGISTERED TRADE MARK

SHREE BAIDYANATH AYURVED BHAWAN LTD.
CALCUTTA

आयुर्वेदीय एवं पेटेण्ट
औषधियों के सबसे
बड़े निर्माता

श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०

कलकत्ता
पटना·झाँसी
नागपुर

# सचित्र आयुर्वेद

वर्ष ११]		कलकत्ता, मार्च, १९५९		[अंक ९

## आयुर्वेद-पद्धति को प्रोत्साहन आवश्यक

'आयुर्वेद में अनेक ऐसे महत्वपूर्ण गुण हैं, जिनको सुरक्षित रखना वांछनीय है। आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति अनेक अंशों में एलोपैथिक पद्धति से भी अधिक वैज्ञानिक है, लेकिन इसके समुचित विकास के लिए पर्याप्त कार्य नहीं किया गया है। आयुर्वेद को सर्वाङ्गपूर्ण बनाने के लिए अधिकाधिक शोध और परिश्रम की नितान्त आवश्यकता है। आयुर्वेद को ब्रिटिश शासनकाल में विकसित होने का अवसर नहीं मिला और स्वाधीन भारत में भी इसको अपेक्षित प्रोत्साहन अबतक प्राप्त नहीं हो सका है। अतएव, यह अत्यधिक वांछनीय है कि इस पद्धति को विकसित करने के लिए पूरा प्रयत्न किया जाय।'

**—श्री लालबहादुर शास्त्री**
केन्द्रीय वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री

प्रकाशक

श्री **बैद्यनाथ** आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि

१, गुप्ता लेन, कलकत्ता-६

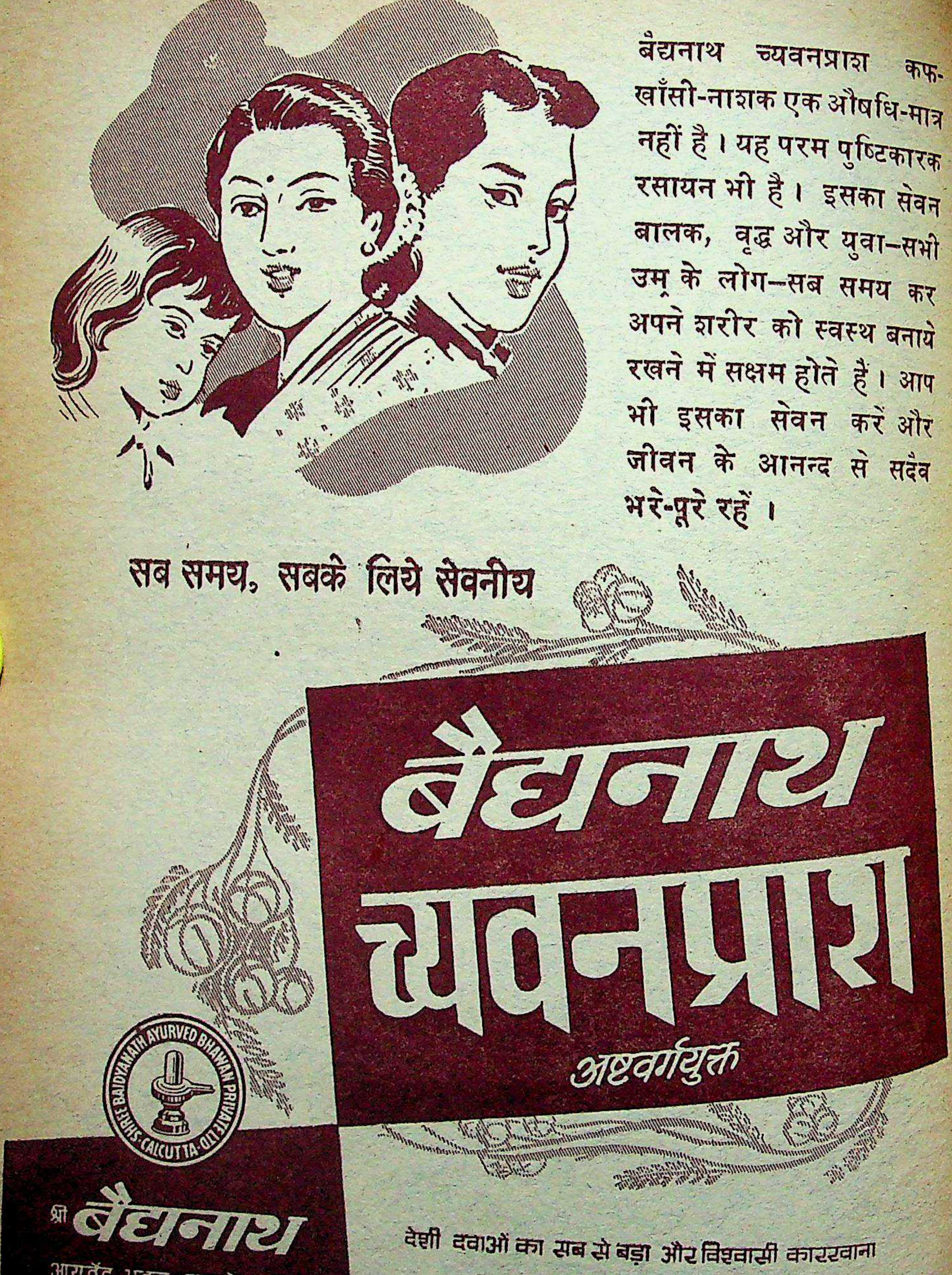

बैद्यनाथ च्यवनप्राश कफ-खाँसी-नाशक एक औषधि-मात्र नहीं है। यह परम पुष्टिकारक रसायन भी है। इसका सेवन बालक, वृद्ध और युवा—सभी उम्र के लोग—सब समय कर अपने शरीर को स्वस्थ बनाये रखने में सक्षम होते हैं। आप भी इसका सेवन करें और जीवन के आनन्द से सदैव भरे-पूरे रहें।

सब समय, सबके लिये सेवनीय

बैद्यनाथ
च्यवनप्राश
अष्टवर्गयुक्त

SHREE BAIDYANATH AYURVED BHAVAN PRIVATE LTD. CALCUTTA

श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०

देशी दवाओं का सब से बड़ा और विश्वासी कारखाना

कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

B 51

रजिस्ट्रेशन आफ न्यूजपेपर्स (सेण्ट्रल) रूल्स, १९५६ के ८ वें नियम के अन्तर्गत **'सचित्र आयुर्वेद'** नामक मासिक पत्रिका के स्वामित्व एवं अन्य विषयों के सम्बन्ध में विवरण।

## फार्म ४

| | |
|---|---|
| १. प्रकाशन का स्थान | कलकत्ता |
| २. प्रकाशन का अवधिक्रम | प्रति मास |
| ३. मुद्रक का नाम | पं० सभाकान्त झा शास्त्री निमित्त स्वत्वाधिकारी श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड |
| राष्ट्रीयता | भारतीय |
| पता | ३६, बाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता–७ |
| ४. प्रकाशक का नाम | पं० सभाकान्त झा शास्त्री निमित्त स्वत्वाधिकारी श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड |
| राष्ट्रीयता | भारतीय |
| पता | ३६, बाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता–७ |
| ५. सम्पादक का नाम | श्री कामेश्वर शर्मा 'कमल' |
| राष्ट्रीयता | भारतीय |
| पता | १, गुप्ता लेन, कलकत्ता–६ |
| ६. उन शेयर होल्डरों के नाम और पते, जिनके पास कुल पूंजी के १ प्रतिशत से अधिक के शेयर हैं– | पं० रामदयाल जोशी, ग्राम कांसली, पो० कोटपुतली, जयपुर।<br>पं० रामनारायण शर्मा वैद्य, १, गुप्ता लेन, कलकत्ता–६।<br>श्रीमती भूरी देवी, ग्राम-श्यामपुरा, पो० बानसुर, अलवर।<br>श्री बनवारी लाल शर्मा, १५६-सी हरीसन रोड, कलकत्ता–७।<br>पं० शिवनारायण ऐंग्लो-संस्कृत विद्यालय, ग्राम कांसली, जयपुर।<br>श्रीमती विमला देवी, ४ कृष्णाश्रम, मुरादाबाद।<br>श्रीमती सुशीला देवी, पुरानीमण्डी, नारनौल।<br>श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना–१<br>श्री रामावतार शर्मा, ३६, बाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता–७<br>श्री रमाकान्त शर्मा, कदमकुआँ, पटना।<br>श्रीमती कमला देवी, ३६ बाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता।<br>श्री हजारीलाल शर्मा, चन्द्रगुप्त पथ, पटना।<br>श्री विश्वनाथ शर्मा, बस्ती, उत्तरप्रदेश।<br>श्री बृजेन्द्र कुमार शर्मा, गुसाईंपुरा, झाँसी।<br>श्री शिवनाथ शर्मा, महाल, नागपुर।<br>श्री रामकृष्ण शर्मा, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना–१<br>श्री सुरेश कुमार शर्मा, गुसाईंपुरा, झाँसी।<br>श्री रमेश कुमार शर्मा, गुसाईंपुरा, झाँसी।<br>श्रीमती स्नेहलता देवी, गुसाईंपुरा, झाँसी।<br>श्री राजेश्वर प्रसाद शर्मा, चन्द्रगुप्त पथ, पटना। |

मैं, **सभाकान्त झा शास्त्री**, यह घोषित करता हूँ कि ऊपर दिए गये सभी विवरण, जहाँ तक मैं जानता हूँ तथा मेरा विश्वास है, सत्य हैं।

१ मार्च, १९५९

**प्रकाशक का हस्ताक्षर—सभाकान्त झा शास्त्री**

# वैद्यनाथ कूपीपक्व रसायनों की गुणवत्ता

गुण-वृद्धि के लिए हमारे यहाँ नियम है कि संस्कारित पारद से ही समस्त औषधें बनाई जायँ। इसी नियमानुसार नीचे लिखे कूपीपक्व रसायन और पर्पटी संस्कारित पारद से ही बनाई गई हैं। इस पर भी जहाँ द्विगुण और षड्गुण शब्द आए हैं, वहाँ उनकी विशेष उपयोगिता समझनी चाहिए। इस क्रिया से औषधि की रोगनाशिनी शक्ति निश्चय ही बढ़ जाती है। इनका उपयोग वैद्य की सलाह से करना उचित है।

**चन्द्रोदय (अन्तर्धूम)**––यह अत्यन्त प्रसिद्ध रसायन है। इसी के मृदु पाक को मकरध्वज कहते हैं। अनुपान भेद से इसका व्यवहार अनेक शारीरिक रोगों में किया जाता है। इससे दिल और दिमाग को ताकत मिलती है। नाड़ी की गति क्षीण होने पर इसका उपयोग तत्काल लाभदायक होता है। कीमत––१ तोला ७५·००, दो आना भर ९·४४, एक आना भर ४·७५, आध आना भर २·४१

**चन्द्रोदय (बहिर्धूम)**––उपर्युक्त गुणों से कुछ ही कम गुण इसमें हैं। कीमत––१ तोला १६·००, चार आना भर ४·०६, दो आना भर २·०६, एक आना भर १·०६

**ताम्र सिन्दूर**––इसके सेवन से कफ, खाँसी और फेफड़े के विकारों में फायदा होता है। कीमत––१ तोला ८·००, चार आना भर २·०६, दो आना भर १·०६, एक आना भर ०·५६

**ताल सिन्दूर**––यह रक्तशोधक और कीटाणुनाशक है तथा कफ को दूर करता है। कीमत––१ तोला ८·००, चार आना भर २·०६, दो आना भर १·०६, एक आना भर ०·५६

**पूर्ण चन्द्रोदय**––चन्द्रोदय (बहिर्धूम) से किंचित् विशेष गुणयुक्त है। कीमत––१ तोला २०·००, चार आना भर ५·०६, दो आना भर २·५६, एक आना भर १·३१

**मकरध्वज**––यह आयुर्वेद की सुप्रसिद्ध दवा है। यह पारदघटित रसायनों में सर्वप्रमुख है। एक ही मकरध्वज से अनेक रोग अच्छे किए जाते हैं। यह बल, कान्ति और पौरुष की वृद्धि करता है। इससे शरीर में ताकत बहुत जल्द आती है। सन्निपात ज्वर में नाड़ी कमजोर हो जाने पर, कस्तूरी के साथ, इसका प्रयोग किया जाता है। यह ज्वर, न्यूमोनिया, सर्दी, जुकाम, कफ, खाँसी, श्वास, मन्दाग्निमूलक रोगों में परमोपयोगी है। कीमत–१तोला १४·००, चार आना भर ३·५६, दो आना भर १·८१, एक आना भर ०·९४, सात खुराक १·२५, तीन खुराक ०·६९

**मकरध्वज षड्गुणबलिजारित**––गन्धक छः गुना ज्यादा पड़ने के कारण उपर्युक्त गुणों से इसमें और विशेष गुण हैं। कीमत––१ तोला ४०·००, चार आना भर १०·०६, दो आना भर ५·०६, एक आना भर २·५६, सात खुराक ३·५०, दो खुराक १·१९

**मकरध्वज (सिद्ध)**––यह मकरध्वज विशेष संस्कृत पारद से बनाया जाता है, जिसके कारण यह उपर्युक्त मकरध्वज से विशेष गुणप्रद है। कीमत––१ तोला ६०·००, दो आना भर ७·५६, एक आना भर ३·८१, आध आना भर १·९४

**मल्ल सिन्दूर**––आमवात, पुराना श्वास रोग, फेफड़े में कफ जमा हो जाना, रक्ताल्पता आदि में इससे अच्छा लाभ होता है। यह दमे में बहुत गुणकारी है। कीमत–१ तोला ८·००, चार आना भर २·०६, दो आना भर १·०६, एक आना भर ०·५६

**रजत सिन्दूर**—यह रस, रक्त आदि सप्तधातुओं का पोषण करता है। दिल और दिमाग को स्वस्थ रखता है। पेट में वायु नहीं होने देता। कीमत—१ तोला ८·००, चार आना भर २·०६, दो आना भर १·०६, एक आना भर ०·५६

**रस सिन्दूर**—कफ-प्रधान रोगों में उपयोगी है। उरस्तोय, निमोनिया, सन्निपात, संग्रहणी, कास, दमा आदि रोगों को नष्ट कर बल-कान्ति की वृद्धि करता है। अनुपान-भेद से यह अनेक रोगों में काम आता है। कीमत—१ तोला ५·५०, चार आना भर १·४४, दो आना भर ०·७५, एक आना भर ०·४१

**व्याधिहरण रसायन**—यह संधिवात, नासा एवं मुखव्रण, चकत्ते पड़ जाना आदि रक्त-विकार के उपद्रवों को शमन करनेवाली उत्तम औषधि है। कीमत—१ तोला ८·००, चार आना भर २·०६, दो आना भर १·०६, एक आना भर ०·५६

**शिला सिन्दूर**—इसके सेवन से रक्त-विकार और फोड़े-फुन्सी आदि चर्म-रोग अच्छे होते हैं। ठण्ड लगकर आनेवाले बुखार और शीतांग सन्निपात में भी इससे बहुत लाभ होता है। कीमत—१ तोला ८·००, चार आना भर २·०६, दो आना भर १·०६, एक आना भर ०·५६

**समीरपन्नग रस**—सन्धिक एवं शीताङ्ग सन्निपात में नाड़ी क्षीण हो जाने पर इसकी २-३ मात्रा से ही आशानुकूल लाभ होता है। कीमत—१ तोला १०·००, चार आना भर २·५६, दो आना भर १·३१, एक आना भर ०·६९

**स्वर्ण सिन्दूर**—इसके सेवन से बल, पौरुष, स्मरण-शक्ति और कान्ति की वृद्धि होती है। यह साधारण ज्वर, सन्निपात ज्वर, खाँसी और मन्दाग्नि में बहुत लाभदायक हैं। कीमत—१ तोला १२·००, चार आना भर ३·०६, दो आना भर १·५६, एक आना भर ०·८१

**सुवर्ण समीरपन्नग रस**—वात रोगों में इसका उपयोग किया जाता है। कीमत—१ तोला २८·००, चार आना भर ७·०६, दो आना भर ३·५६, एक आना भर १·८१

**सुवर्णराज बंगेश्वर (स्वर्णबंग)**—यह शरीर की कमजोरी को दूर करता है, पेशाब खुलासा लाता है एवं असंयमजनित बीमारियों को दूर करता है। कीमत—१ तोला ६·५०, चार आना भर १·६९, दो आना भर ०·८८, एक आना भर ०·४७

आयुर्वेदीय एवं पेटेण्ट
औषधियों के सबसे
बड़े निर्माता

**श्री बैद्यनाथ**
**आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०**

कलकत्ता
पटना झाँसी
नागपुर

सम्पादक—कामेश्वर शर्मा 'कमल'

# विषय-सूची

| विषय | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|
| आयुर्वेद और आधुनिक विज्ञान का समन्वय | आचार्य विनोबा भावे | ७०५ |
| सम्पादकीय | | ७०६ |
| दृष्टिकोण का अन्तर | पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल | ७१० |
| सूतिका का स्वास्थ्य | वैद्य रणजितराय | ७१३ |
| परमौषधम् | वैद्य बिन्दुमाधव पंडित | ७१६ |
| आतुर-परीक्षानुष्ठान | आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी | ७२६ |
| मेदोरोग में चरबीयुक्त आहार का सेवन | वैद्य मणिभाई ब्रह्मभट्ट | ७३७ |
| रक्तदोष नहीं—सुश्रुत का अभिमत | वैद्य देवदत्त शास्त्री | ७४१ |
| भगन्दर | कविराज गौरीशंकर श्रीवास्तव | ७४६ |
| रस शास्त्रीय संशोधन—एक सामान्य विवेचन | श्री र० द० जायसवाल | ७४८ |
| वातरक्तम् | आयुर्वेदाचार्य एम० बेंकट शास्त्री | ७५७ |
| ओजविषयक प्रश्नों के उत्तर | वैद्य शंकरलाल शर्मा | ७६० |
| आयुर्वेद-जगत् | | ७६२ |

वार्षिक मूल्य ५)     आयुर्वेद-यूनानी समन्वयांक २) रुपये     एक प्रति ५० नये पैसे

दवाओं का
बड़ा और विश्वासी श्री बैद्यनाथ
कारखाना
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
विशिष्ट एजेण्ट श्री सत्यनारायण औषधालय, बड़ाबाजार बरेली

बरेली में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० के नये बिक्री केन्द्र के उद्घाटन के दो भव्य दृश्य। दायीं ओर श्री धर्मदत्त वैद्य एम० एल० ए० नये बिक्री केन्द्र का उद्घाटन करते दिखायी दे रहे हैं।

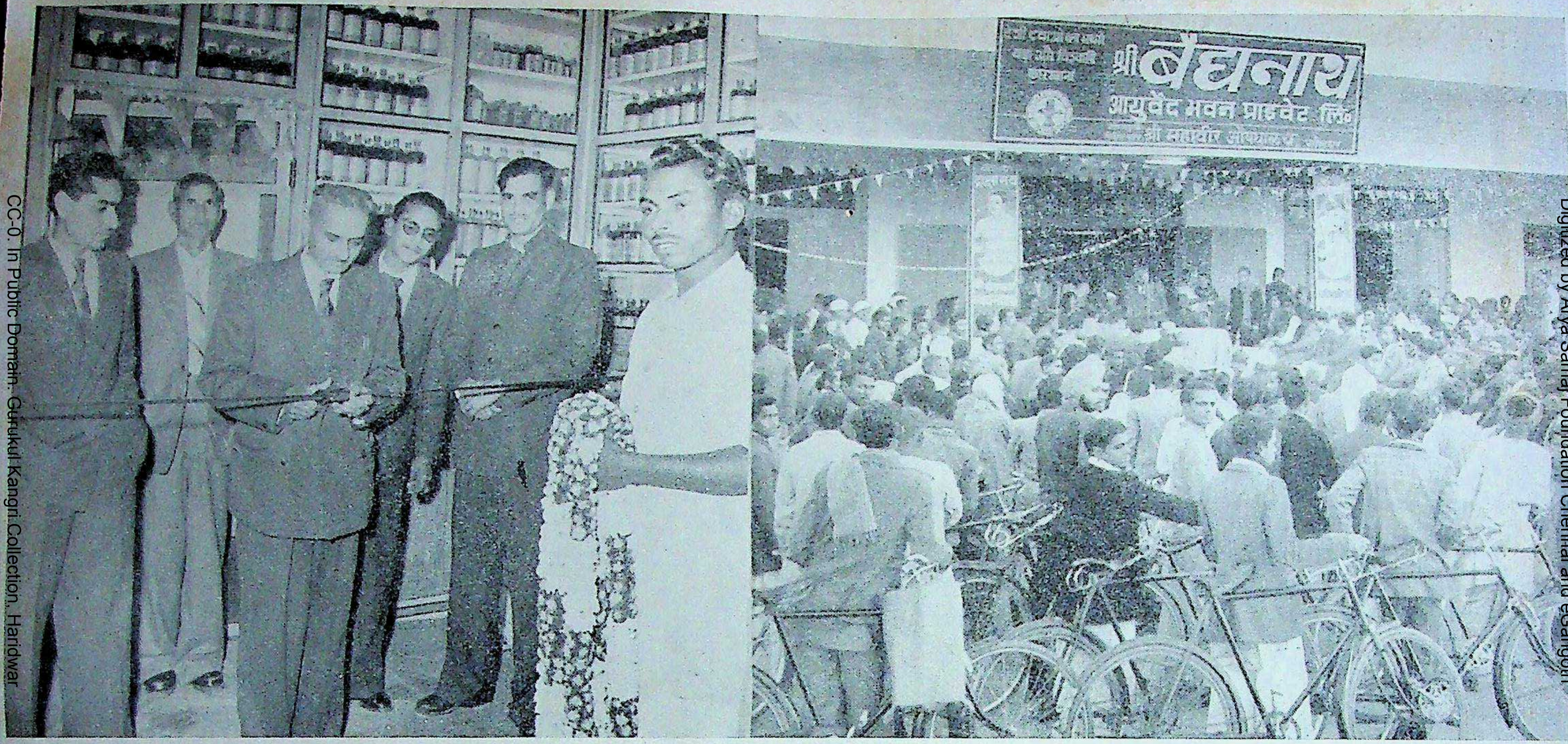
श्री बैद्यनाथ
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की गोरखपुर स्थित तृतीय शाखा का उद्‌घाटन करते हुए श्री भैरवनाथ झा उपकुलपति गोरखपुर विश्वविद्यालय। दायीं ओर उद्‌घाटनावसर पर समवेत विशाल जन समूह दिखायी दे रहा है।

आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन-समावृत और सर्वाधिक बिक्री होनेवाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख-मासिक पत्र

श्री धन्वन्तरये नमः

# सचित्र आयुर्वेद

आयुःकामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष ११ | कलकत्ता, मार्च, १९५९ | अंक ९

## आयुर्वेदज्ञ आधुनिक विज्ञान का आश्रय लें

"ग्राम-स्वराज्य की स्थापना के प्रसंग में आयुर्वेद का सम्बन्ध अनिवार्यतः आता है। ग्रामों में जब रोग बढ़ता है तो उन्हें दूर करने के लिए जड़ी-बूटियों का ताजा रस वैद्य देते हैं। हर गाँव में जड़ी-बूटियाँ प्राप्त हों और उनका ताजा रस दिया जा सके तो बहुत अच्छा है। गाँव की औषधि-व्यवस्था प्रत्येक गाँव की ओर से ही होनी चाहिए। सारे देश में यह योजना प्रचलित हो सकती है, क्योंकि आयुर्वेद की रचना इसी देश की हवा में हुई है और आयुर्वेद में जड़ी-बूटियों का प्रचुर उपयोग हुआ है।

आयुर्वेदज्ञों को चाहिए कि वे आरोग्य-शास्त्र, आहार-शास्त्र तथा बिहार-शास्त्र पर अधिकाधिक जोर देते हुए आधुनिक विज्ञान का भी आश्रय लें। प्राचीन समय में जो विज्ञान था, आयुर्वेद में उसका उपयोग किया गया था। अतः योग का लाभ मिला तथा उस जमाने के विज्ञान का लाभ भी आयुर्वेद को मिला। आयुर्वेद को जो योग-शास्त्र का लाभ मिला वह बड़ा लाभ है, वह पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान को भी नहीं मिला। परन्तु दूसरा आधार उस जमाने के विज्ञान का था। आज विज्ञान बहुत आगे होने से आधुनिक विज्ञान आयुर्वेदज्ञों को लेना चाहिए। इससे भूतदया में मदद होगी। यह बहुत जरूरी बात है कि आयुर्वेद के साथ विज्ञान जोड़ा जावे। विज्ञान यानी एलोपैथी, ऐसा मेरा आशय नहीं। विज्ञान का साथ होम्योपैथी का हो सकता है। आयुर्वेद का हो सकता है। प्राकृतिक उपचार के साथ तो बहुत ही हो सकता है। मैं जो विज्ञान कहता हूँ उसका मतलब एलोपैथी नहीं है। एलोपैथी ने भी अपने कलेवर की वृद्धि विज्ञान से की है। उस विज्ञान को आयुर्वेद भी ले सकता है। योग-शास्त्र का प्रयोग आयुर्वेद के साथ हमारे पूर्वज करते आये हैं, उसे भी अपनाना होगा।"

—संत विनोबा

## पाखण्ड दम तोड़ रहा है !

राजधानी दिल्ली में आयोजित अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का ४३ वाँ अधिवेशन जिस नाटकीय ढंग से अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गया, उससे वैद्य जगत् में क्षोभ तो उत्पन्न हुआ ही है, आयुर्वेद के भविष्य पर उसका गंभीर और अहितकर प्रभाव पड़ा है। साथ ही सम्पूर्ण आयुर्वेद सम्प्रदाय इस घटना से अभूतपूर्व रूप में लाञ्छित हो गया है, ऐसा प्रत्येक विचारशील वैद्य का मत है।

निश्चित ही दिल्ली के इस अधिवेशन के लिए देश भर के वैद्यों में अपूर्व उत्साह दृष्टिगोचर हो रहा था। प्राप्त समाचारों के आधार पर प्रान्त-प्रान्त से विशाल संख्या में वैद्यगण इस आशा से दिल्ली-यात्रा का कार्यक्रम बना चुके थे कि केन्द्रीय सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों के समक्ष अपनी वस्तुस्थिति को प्रदर्शित करने का समयानुकूल अवसर उन्हें मिलेगा। इस प्रसंग में वैद्य-समाज की यह आशा और वांछा स्वाभाविक ही थी। स्पष्ट है कि स्वाधीनता के विगत ग्यारह वर्षों में, जब कि देश के छोटे से छोटे उपक्रम पर राज्य का ध्यान गया ; लेखक, कवि, नर्तक, गायक, सिने-तारिकाएं और यहाँ तक कि वेश्याओं के सुधार एवं विकास के लिए भी राज्य ने उल्लेखनीय कार्य किए, परन्तु वैद्य समाज या आयुर्वेद के लिए कोई भी वास्तविक और ठोस कार्य नहीं हो पाया। विचित्रता यह है कि केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों के वरिष्ठ अधिकारीगण हृदय से चाहते हैं कि आयुर्वेद का विकास हो और करोड़ों जनों की स्वास्थ्य-सेवा करने वाले वैद्यों का जीवन-स्तर ऊँचा उठे, परन्तु चाहते हुए भी वे उचित दिशा-निर्देशन के अभाव में कुछ भी यथार्थ कार्य नहीं कर पाते। यह आयुर्वेद का दुर्भाग्य ही है कि एक स्वयंभू व्यक्ति ने पाखण्डी वृत्तियों से अपने को आयुर्वेद सम्प्रदाय का अग्रणी बना लिया और राजकीय क्षेत्र को आयुर्वेद के संबंध में सार्वभौमिक हित के कार्य न सुझा कर अपने निहित स्वार्थ-वाले कार्य आगे रखे ! और एक ऐसी उलझन की स्थिति उत्पन्न कर दी जिसके कारण सरकार आयुर्वेद के लिए कुछ भी वास्तविक एवं क्रियात्मक कार्य करने में असमर्थ हो गयी।

मूलतः आयुर्वेद-हित की क्रियात्मक आयोजनाओं को प्रस्तुत करना और उनको कार्यान्वित कराने के लिए हर संभव उपायों को अमल में लाना हमारी अखिल भारतीय प्रतिनिधि संस्था का कर्त्तव्य था। यदि महासम्मेलन के मंच से सरकार को सर्वथा निर्भ्रान्त एवं व्यावहारिक सुझाव दिये जाते तो निश्चय ही उसका प्रभाव पड़ता और आयुर्वेद के हित में कुछ उपयोगी काम हो जाता। आज भारत के राष्ट्रपति से लेकर साधारण जनता तक आयुर्वेद के प्रति सहानुभूति की भावना से परिपूर्ण है। सुयोग्य वैद्य एवं आयुर्वेद विज्ञान को आज भी समाज में सर्वत्र आदर की दृष्टि से देखा जाता है। आयुर्वेदपद्धति से चिकित्सा कराने का आग्रह लोगों में है। बड़े से बड़े बुद्धिमान भी आयुर्वेद के महत्त्व और उसकी शालीनता से प्रभावित हैं, परन्तु हमारी प्रतिनिधि संस्था की निर्जीवता और उसके कुछ व्यक्तियों के स्वार्थ-साधन का अंग बन जाने के कारण—हमारे स्वर में वजन नहीं रहा। आज प्रजातंत्र का युग है। व्यक्ति की आवाज का महत्त्व नहीं, संगठित समष्टि के दृष्टि-निक्षेप में भी बल होता है। संगठन-हीनता के ही परिणाम-स्वरूप आयुर्वेद जैसा पूर्ण विज्ञान, आज पिछड़ी हुई, अवैज्ञानिक और मूर्खों की चिकित्सा-पद्धति समझा जाने लगा है और वैद्यों की स्थिति हर दिशा में निरन्तर शोचनीय रूप से गिरती जा रही है। वैद्यों का सामाजिक सम्मान और जीविका, दोनों ही, देखते देखते क्षीण हो गए हैं। इस स्थिति को यदि इसी प्रकार चलने दिया गया, तो हमारा सर्वनाश निश्चित है। इस गंभीर चेतावनी की ओर प्रत्येक विचारशील वैद्य को ध्यान देना चाहिए।

यह अकाट्य तथ्य है कि कभी किसी व्यक्ति विशेष के प्रयत्नों से यथार्थ कार्य पूर्णता नहीं पा सकते। कोई सर्वथा निःस्वार्थ, त्यागी और सच्चा कर्मठ सपूत मिल जाय और वह एक व्रत लेकर निरन्तर वास्तविक कार्य करे तो यह संभव भी है। परन्तु आयुर्वेद सम्प्रदाय को पिछले बीस वर्षों से जैसे भूलभुलैयाँ दिखाने वालों से वास्ता पड़ा है उनको देखते हुए यह कठिन ही है कि एकाध व्यक्ति अपने

प्रयासों से इस बिगड़ी हुई परिस्थिति को सम्हाल सकें। अन्ततः संगठित उद्योग की आवश्यकता है। सबके मिले-जुले प्रयत्न के बिना आयुर्वेद का विकास तो दूर रहा, उसकी रक्षा भी नहीं हो सकेगी।

अब प्रश्न यह है कि वैसा संगठन, जिससे कुछ यथार्थ हित हो सके, प्रस्तुत किस प्रकार हो और उसका सदुपयोग किस विधि से हो। अबतक का अनुभव यह सिद्ध करता है कि कोई भी संगठन, तबतक सार्थक नहीं हो सकता, जबतक कि उसका नेतृत्व, उसके संचालन की बागडोर ऐसे तत्त्वों के हाथ में न हो जो अपने समाज को अपनी प्रकाण्ड विद्वता, अपनी त्यागशीलता, अपनी लगन एवं कर्मठता से प्रभावित कर सके और जो समाज के विखरे हुए, मतभिन्न वर्गों को अपने व्यक्तित्व से एक सूत्र में बाँध सके और इस कठिन समय में आयुर्वेद की भँवर में पड़ी हुई नैया को पार लगा सके। ऐसा नेतृत्व ही आज आयुर्वेद जगत् को नितान्त अपेक्षित है।

यह बात जताने की नहीं है कि आयुर्वेद वैज्ञानिक विषय है और उसका संगठन भी सर्वथा वैज्ञानिक रीति-नीति के आधार पर सफल हो सकता है। विज्ञान और अध्यात्म का तो समन्वय हो सकता है, परन्तु विज्ञान और राजनीति का समन्वय नहीं हो सकता। विज्ञान और राजनीति ने जब-जब गठबन्धन किया है, तब-तब वह संसार के विनाश का कारण बना है, इतिहास इसका साक्षी है। आयुर्वेद के वैज्ञानिक संगठन को राजनीति पर आधारित रीति-नीति से चलाने का ध्वंसात्मक परिणाम आज हमारे सामने है। इसलिए हमें अब भी सचेत होकर यह निश्चित मान लेना चाहिए कि हमें अपने संगठन से राजनैतिक वृत्तियों का उन्मूलन करना ही है। आयुर्वेद-संगठन के अग्रणी नेता वे ही हो सकते हैं, जो आयुर्वेद के शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक पक्ष के पूर्ण ज्ञाता विद्वान् हों और आयुर्वेदीय-पद्धति के सुयोग्य सुख्यात चिकित्सक हों। जिनका स्वाभाविक प्रभाव वैद्यों पर, जनता पर, राजनीतिज्ञों और राज्याधिकारियों पर समान रूप से पड़ता हो। ऐसे ही लोग आयुर्वेद के लिए रचनात्मक कार्य कर सकते हैं और वैद्यों को संगठित करके बलवान बना सकते हैं। यद्यपि यह तथ्य है कि आयुर्वेद-सम्प्रदाय की वर्तमान स्थिति क्षीण है, तथापि सौभाग्य से आज भी वैद्य-समाज में कुछ ऐसे व्यक्तित्व विद्यमान हैं, जिन पर सम्पूर्ण समाज के भविष्य का भार विश्वासपूर्वक डाला जा सकता है। हमारे बीच ऐसे भी वैद्य हैं, जो केवल शास्त्रीय-चिकित्सा करते हैं और जिनके द्वार पर रोगियों की भीड़ लगी रहती है। क्षेत्रीय जनता के अतिरिक्त उनके ज्ञान का आदर वैद्य-समाज भी करता है। खेद इतना ही है कि ऐसे वैद्य, जिनका जनता, राज्य एवं वैद्य-समाज पर समान प्रभाव है और जो यथार्थ विद्वान् हैं, उनकी संख्या अत्यल्प ही है। जो थोड़े से हैं भी, वे अत्यधिक कार्य-व्यस्त हैं। जीविका का प्रश्न और आतुर-सेवा की जिम्मेवारी उन्हें बाधित किए रहती है। ऐसे कर्मनिष्ठ विद्वान् सभा-सोसाइटियों में प्रायः नहीं जा पाते। बहुत आग्रह करने पर गये भी तो शास्त्रीय अथवा वैज्ञानिक चर्चा के अतिरिक्त अन्य प्रसंगों में उनकी रुचि नहीं होती और स्वभावतः वे कम बोलते हैं। हमारी संस्था यदि विशुद्ध रूप में वैज्ञानिक संगठन हो और यथार्थ कार्य करे, तब तो ऐसे विद्वान् वैद्यवरों का उपयोग सर्वोपरि हो सकता है। इसके विपरीत यदि संगठन राजनीतिक तौर-तरीकों का क्षेत्र बन जाय तो विद्याव्यसनी विद्वान् उसमें उपयोगी तो रह ही नहीं सकते, वाचाल न होने के कारण देखनेवालों को बुद्धू सरीखे दिखाई देते हैं। चूँकि चमत्कारपूर्ण और भावना से खिलवाड़ करनेवाली भाषण-कला उनमें नहीं होती, इसलिए सहज ही राजनीतिक क्षेत्र से उनका कदम उखड़ने लगता है। गोलोकवासी स्वामी लक्ष्मीराम जी, आचार्य यादवजी, वैद्य-मार्तण्ड छाँगाणी जी इत्यादि महामना विद्वान् इसी कोटि के थे। उनकी विद्वत्ता और शास्त्रपारंगत ज्ञान-गरिमा की उपेक्षा कोई नहीं कर सका; परन्तु महासम्मेलन में कूटनीतिक वातावरण सृजन करनेवाले कुचक्री अखाड़ेबाजों ने आयुर्वेद के सार्वभौमिक हित में उनका सदुपयोग नहीं होने दिया। आयुर्वेद के दुर्भाग्य से कहिए अथवा कलिकाल के प्रभाव से—वर्तमान समय में नेतागिरी एक धन्धा बन गया है और यह धन्धेबाजी आयुर्वेद-सम्प्रदाय में भी जड़ जमा बैठी है। नेतागिरी के धन्धेबाज भीतर से अत्यन्त काले, क्रूर, और कृतघ्नी होते हैं, परन्तु ऊपर से मिष्टभाषी नम्र एवं व्यवहारकुशल दिखाई देते हैं। सदा ही मनुष्य का भावना-पक्ष कोमल और सहजमोही होता आया है। नेतागिरी के कुशल धन्धेबाज़ इसी भावना-पक्ष को कुरेदनेवाले व्याख्यानों से सामनेवाले लोगों को प्रभावित करते

हैं और अपने आपको ऊँचा उठाते हैं। ऐसे धन्धेबाजों के अपने कोश में नीचता नाम की कोई चीज नहीं होती। अपने स्वार्थ के लिए कठोर से कठोर दंभ करना, निर्लज्ज झूठ बोलना, निर्भयता के साथ समाज को भ्रम में डाल देना, दलगत लाभ के लिए सार्वभौमिक हितों को कुचल देना और वैधानिकता का नाम लेकर बेशर्म कुचक्र करना—इन सारी बातों को धन्धेबाज नेता पॉलिटिक्स का सुन्दर-सा नाम देते हैं और बड़े अभिमान के साथ यह घोषणा करते हैं कि पॉलिटिक्स के बिना जागृति ही नहीं। निश्चय ही यह पॉलिटिक्स की गाड़ी दलबन्दी के बिना नहीं चलती। दुर्भाग्यवश वह आयुर्वेद जैसे विशुद्ध वैज्ञानिक विषय की संस्था में भी जड़ जमा बैठी है और आज वैद्य-समाज में जो दलबन्दी का स्वर दिखाई देता है, वह इसी पॉलिटिक्स की देन है। यद्यपि यह निर्भ्रान्त सत्य है कि वैद्य-जगत् में यथार्थ दलबन्दी नहीं है। दलबन्दी उसे कहते हैं, जहाँ समान शक्ति और समान जन-बल दो भागों में बँटा हो। परन्तु ऐसी स्थिति आयुर्वेद-जगत् में कहाँ है? कुछ थोड़े से निहित स्वार्थवाले लोगों का गुट काल्पनिक दलबन्दी का प्रचार कर रहा है और वैद्य-समाज को भ्रम में डाल रहा है। वस्तुस्थिति यह है कि आज वैद्य-समाज का विशाल बहुमत संस्था को राजनैतिक पैंतरेबाजी से बचाने के पक्ष में है, जब कि थोड़े से लोग—जो कुर्सी पर चिपके रहना चाहते ह या जो पर्दे के पीछे रहकर अपने नेतृत्व की गद्दी सुरक्षित रखना चाहते हैं—यह भरसक प्रयत्न कर रहे हैं कि समाज में दलबन्दी की स्थिति दिखाई देती रहे। इसी कारण वे निरन्तर असत्य और बेसिर-पैर का प्रचार करते हैं और अपने चेले-चपाटों से संस्था को नष्ट करनेवाले कार्य कराते हैं। एक तरफ थोड़े से गद्दीधारी हों, और दूसरी तरफ सम्पूर्ण समाज का जन-बल हो, तो उसको दलबन्दी नहीं कहा जा सकता और नहीं ऐसी काल्पनिक दलबन्दी की आड़ में रचनात्मक प्रवृत्तियों को अधिक काल तक दबाया ही जा सकता है। दुःखद प्रसंग तो यह है कि जिन थोड़े से व्यक्तियों के स्वार्थ संस्था के माध्यम से चल रहे हैं, वे संस्था के सभी साधनों का खुला दुरुपयोग अपने लिए, अपने तरीकों से कर रहे हैं। इस कारण दलबन्दी का रूप दिखाई देता है और इस दलबन्दी के नाम पर निर्द्वन्द्व रूप से आयुर्वेद की जड़ काटी जा रही है। महासम्मेलन के अधिवेशन को स्थगित कराकर आयुर्वेदोन्नति के संभावित सद्प्रयासों में रोड़े अटकाना क्या वांछनीय और उचित कार्य है? फिर भी आश्चर्य है कि ऐसे लोग अपने को दूध का धुला सिद्ध करने का असफल प्रयत्न करते हैं और अपने को आयुर्वेदोन्नति का ठेकेदार कहते हैं।

हम सदा से ही ऐसे प्रपंची लोगों के प्रति क्षमा और उपेक्षा का भाव ही बनाये रहे हैं। हम समझते हैं कि वाद-विवाद बढ़ाने से मुँहजोर विरोधियों को सहारा मिलता है। राज्य के प्रधान अधिकारी और विशेषतः स्वास्थ्य विभाग वैसे भी हमारे अधिक अनुकूल नहीं हैं। इस प्रकार के विरोध-प्रदर्शन और लड़ाई-झगड़ा के वातावरण से उनको अच्छा खासा बहाना मिलता है। इसलिए जहाँ तक संभव हो, संयम से काम लेकर विरोध का शमन किया जाय। यही कारण है कि पिछले कुछ महीनों से पत्रिका में निरन्तर आक्षेपपूर्ण लेख प्रकाशित होने पर भी हम मौन रहे। हमने यही निर्धारित किया कि जहाँ तक हो इस बहुत कम संख्या वाले कूटनीतिक दल को क्षम्य ही समझा जाय; परन्तु हम देख रहे हैं कि यह लोग साधारण प्राणी नहीं हैं। वैद्यों के अखिल भारतीय संगठन पर यह लोग उस समय तक दृढ़ता के साथ पंजा जमाये रखना चाहते हैं; जब तक कि उनकी निम्नतर चालों का वश चले और यदि छोड़ा भी जाय तो संस्था को नष्ट-भ्रष्ट करके। इस दल की वर्तमान प्रवृत्तियों से तो यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि वे आयर्वेद, वैद्य-समाज, और संस्था—सब के हितों को लात मार कर संगठन की प्रगति में अधिक से अधिक अवरोध उत्पन्न करने पर आमादा हैं। ऐसी विकट स्थिति में क्या किया जाय, यह एक शोचनीय समस्या है। हम किसी भी दशा में संस्था का विघटन सहन नहीं करना चाहते। परन्तु कुछ लोग, जान पड़ता है, इसी पर तुल गये हैं। उनका ऐसा तुल जाना अधिक स्वाभाविक है क्योंकि संस्था उनके लिए एक जागीर के सदृश बन गयी है। विद्यापीठ से ३०-४० हजार रुपया प्रतिवर्ष विद्यार्थियों के शुल्क के रूप में जो आता है, उसका अपने कहे जानेवाले व्यक्तियों में बँटवारा होता है। उसको पारिश्रमिक की सुन्दर संज्ञा दी जाती है। संस्था का हिसाब-किताब उठा कर देख लीजिए। अब से दो वर्ष पूर्व तक जो परीक्षा-व्यय दो हजार रुपया वार्षिक से भी कम था वह अब लगभग आठ गुना है! विद्यापीठ में वेतन के नाम पर १४-१५ हजार रुपया व्यय किया जाने लगा है। यह सब रुपया कहाँ किस

को किस सेवा के लिए दिया जाता है, यह तो कार्यालय ही जाने। परन्तु पिछले दो वर्षों में ही यह कला दिखाई गयी है, क्योंकि अखाड़ेबाजों ने जब अपना सिंहासन डोलता देखा, तो संस्था के धन का उपयोग करके स्थान-स्थान पर अपना पक्ष-निर्माण करने का प्रयत्न किया। किसी को परीक्षक बनाया, किसी को निरीक्षक, किसी को केन्द्राध्यक्ष ! फिर भी यह तथ्य है कि यह सम्पूर्ण प्रयास भी उस रूप में सफल नहीं हुआ, जिस रूप में नेतागण चाहते थे। वैद्य-समाज में बहुमत निर्माण करने के लिए कुछ पृष्ठपोषकों को धन देकर या दिखावटी सम्मान देकर कोई यह चाहे कि उसके साथ जन-बल आ जाय तो ऐसा कदापि संभव नहीं। वैद्यों में विवेक है। अच्छाई-बुराई, सत्यासत्य और नैतिक-अनैतिक तत्त्वों को तोलने की मेधा वैद्यों में अभी विद्यमान है। सच्चे वैद्य सच्चे विद्वान् का आदर कर सकते हैं, विद्या के सामने झुक सकते हैं। पैसों के लालच पर बिकनेवाले प्रचारकों के प्रभाव में वे नहीं आ सकते ! स्थिति स्पष्ट है। परीक्षक-वेतन और पारिश्रमिक आदि के रूप में स्थान-स्थान पर अपने मुँहलगे लोगों को आर्थिक लाभ पहुँचा कर यह प्रयत्न किया गया कि उनके प्रभाव में आकर साधारण वैद्य नेतागिरीवालों के पक्ष में आ जावें, परन्तु संस्था का द्रव्य बहा कर भी वैसा न हो सका। किसी भी अण्ट-सण्ट व्यक्ति को पदाधिकार दे देने से वह प्रभावशाली नहीं बन जाया करता। उसमें कुछ स्वयं का तत्त्व होना चाहिए, विद्वत्ता का प्रभाव होना चाहिए, तभी वैद्य-जगत् के सर्वसाधारण में वह आदर का पात्र बन सकता है और उसके प्रभाव से जनमत का निर्माण हो सकता है। यदि केवल पदाधिकार से, विद्याज्ञान की समृद्धि के बिना पूर्ण ही, विद्वानों के संगठन में स्थायी प्रभाव उत्पन्न करना सहज होता तो आज पण्डित शिवशर्मा जैसे ओजस्वी वक्ता और कूटनीति-चतुर व्यक्ति का प्रभाव खण्ड-खण्ड न हुआ होता ! विज्ञापन-कला के आधार पर, क्षणिक प्रभाव तो जम जाता है, परन्तु वह ऐसा नहीं होता जिसका विद्वान्-वैद्य आँख मूँद कर अनुगमन करने लगें। कभी बम्बई के बाजारों में तकाजा वसूल करनेवाले और कभी सेवा-समिति के प्रमुख रहनेवाले व्यक्ति सुयोग और संयोग पा कर वैज्ञानिक समुदाय के प्रधान मंत्री भले ही बन जायँ, परन्तु लघुत्रयी का भावार्थ तक न समझनेवाला व्यक्ति क्या शास्त्रज्ञ विद्वानों को अपने प्रभाव में रखने की सामर्थ्य जुटा सकता है ? सरासर झूठी उपाधि का उपयोग करने का साहस करनेवाले और एक साधारण पत्र तक शुद्ध लिखने में असमर्थ व्यक्ति प्रपंचीदल की हाँ-में-हाँ मिला कर भले ही किसी पत्रिका का सम्पादक हो जाय, लेखक बन जाय, महात्मा या स्वामी बन जाय, परन्तु क्या विद्वानों के समाज को मार्ग-दर्शन देने का गुरुतर उत्तरदायित्व वहन कर सकता है ? काठ की हाँड़ी, आग पर कब तक चढ़ी रह सकती है ?

इतना ही नहीं, मुख्य प्रश्न तो यह है कि इस विशिष्ट परिस्थिति के संकुल काल में जब कि आयुर्वेद के पक्ष में अविलम्ब प्रभावपूर्ण प्रयास करना नितान्त वाञ्छनीय है, क्या उपर्युक्त प्रकार के अधकचरे लोगों के हाथों में आयुर्वेद का प्रतिनिधित्व सुरक्षित है, और क्या उनसे सम्बन्धित राज्याधिकारी आयुर्वेदहित में किंचित् भी प्रभावित हो सकते हैं ? यही प्रश्न हमें वस्तुस्थिति पर प्रकाश डालने के लिए विवश करता है। साधारणतः हमें किसी व्यक्ति विशेष से परहेज नहीं है ; परन्तु हम स्पष्ट देख रहे हैं कि वर्तमान समय में राज्य को आयुर्वेद विषयक तथ्य समझाने के लिए और आयुर्वेद पक्ष को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने के लिए, साथ ही आयुर्वेदहित में अनुसन्धान, अध्ययन-अध्यापन, पाठ्यक्रम इत्यादि कार्यों के हेतु उचित दिशा-निर्देश देने के लिए, निश्चय ही ऐसे सुयोग्य प्रभावशाली एवं आयुर्वेदानुरागी विद्वानों को आगे लाने की आवश्यकता है, जो वास्तव में शास्त्रज्ञ एवं पठित वैद्य हो और जिनका जनता में, राज्य में तथा वैद्य-समाज में वास्तविक प्रभाव हो। यथार्थ विद्वान् तब तक आगे आ नहीं सकता, जब तक कागजी विद्वान् अपना प्रपंच-पंथ न छोड़ें ! आयुर्वेद का प्रतिनिधित्व सही माने में आयुर्वेदज्ञ ही कर सकते हैं, इस तथ्य से कोई इनकार नहीं कर सकता। इसी नाते हम कागजी आयुर्वेद-मठाधीशों का स्पष्ट विरोध करते हैं। आयुर्वेदहित में वह विरोध वांछनीय है। यही नहीं, जिन्होंने आयुर्वेद के नाम पर झूठ-मूठ ही प्रतिष्ठा बना कर धन और यश कमा लिया है, यदि उनमें किंचित् भी नैतिकता है, तो इस उचित समय पर उनका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे स्वयं मार्ग के काँटे न बने रहें और आयुर्वेद के सही हित के लिए खुद ही प्रयत्न करके ऐसा वातावरण उत्पन्न करें, जिससे यथार्थ विद्वान् कार्यक्षेत्र में आकर मंझधार में पड़ी आयुर्वेद की नैया को पार लगावें।

( शेषांश ७५९ पृष्ठ पर )

# दृष्टिकोण का अन्तर

**आयुर्वेद पंचानन पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल**

आयुर्वेद की उन्नति सभी चाहते हैं। राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद भी चाहते हैं, केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री श्री करमरकर भी चाहते हैं और प्रधान मन्त्री नेहरू भी चाहते हैं। हम चाहते ही हैं, शुद्ध आयुर्वेदवाले भी चाहते हैं और मिश्र आयुर्वेदवाले भी चाहते हैं। किन्तु फिर भी आयुर्वेद की असली उन्नति हो नहीं रही है, यह आश्चर्य की बात है। इसकी तह पर जाने से मालूम पड़ेगा कि इसका कारण आपस में सभी के दृष्टिकोण में अन्तर है। जब तक यह अन्तर मिट न जाय तब तक आयुर्वेद की उन्नति का काम क्रमशः अग्रसर होता हुआ उद्देश्य की सिद्धि तक नहीं पहुँच सकता। यदि गवर्नमेंट में तत्परता हो तो एक गोलमेज कानफरेंस करके इसका निपटारा किया जा सकता है। किन्तु उधर कोई आग्रह या कोई उत्सुकता नहीं है। कुछ करना है इसलिए कुछ कर देते हैं! इस तरह राष्ट्रीय चिकित्सा का मसला कभी हल नहीं होगा। इस विषय में सब से अधिक तत्परता, सब से अधिक मार्मिक पीड़ा, हार्दिक लगन चिकित्सक वर्ग में, आयुर्वैदिक समाज में होनी चाहिए और है भी। ऐसी दशा में हमें अपने दृष्टिकोण में सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिए। सब से पहले हमें अपने विचारों में एकता लानी होगी।

आयुर्वैदिक क्षेत्र में सामान्यतः तीन दृष्टिकोणों के तीन दल दिखाई पड़ते हैं। पहला तो आयुर्वेद दल है, जो चाहता है कि हमारे आयुर्वेद की यत्परोनास्ति उन्नति हो। स्वास्थ्यनीति आयुर्वेद की हो, चिकित्सा-नीति आयुर्वेद की हो, स्वास्थ्य विभाग के हेल्थ अफसर आदि अधिकारी आयुर्वेद के हों, सिविल सर्जन और फौजी चिकित्सक एवं सर्जन आयुर्वेद के हों। भारत में स्वास्थ्य और चिकित्सा-विभाग का सञ्चालन आयुर्वेद के नाम से हो। मेडिकल कौंसिल आयुर्वेद की हो, डाइरेक्टर और मिनिस्टर आदि नीति सञ्चालक, कार्यनिर्वाहक सब आयुर्वेद के हों। देश में एकमात्र आयुर्वेद की पताका फहरावे, एशिया में आयुर्वेद का प्रभाव विस्तार हो और विश्व में आयुर्वेद की प्रतिष्ठा हुए बिना स्वास्थ्य और चिकित्सा का सर्वोत्तम हल सिद्ध न समझा जाय। यह तभी होगा जब आयुर्वेद में भिन्न-भिन्न देशों की आवश्यकता की पूर्ति की सामग्री हो, भिन्न-भिन्न विचारों के समाधान का खजाना हो। मानव जीवन की रक्षा और उन्नति का सारा ज्ञान-विज्ञान, प्रयोग और साधन-सामग्री का स्वागत और प्रचार हो। आयुर्वेद परमात्मा के विराट स्वरूप के समान व्यापक हो। ऐसी दशा में शुद्ध और मिश्र का झमेला व्यर्थ है! शुद्ध आयुर्वेद वाले यही तो चाहते हैं कि आयुर्वेद का ज्ञान-विज्ञान हमारा मूलाधार हो, इसके बाद हम अन्य प्रचलित ज्ञान-विज्ञान की धाराओं को समझ कर विश्व के लिए प्रभावशाली चिकित्सा वैज्ञानिक बनें। इसी तरह मिश्र चिकित्सा वाले सम्भवतः यही चाहते हैं कि आयुर्वैदिक ग्रन्थों में समय की गति के कारण जो संक्षिप्त विवरण है उसे नये प्रकाश में हम अच्छी तरह विवादित रूप में देख समझ कर अपना लें और अपने को इस योग्य बना लें कि अन्य किसी वर्ग के चिकित्सक यह मिथ्याभिमान न प्रकट कर सकें कि हम श्रेष्ठ हैं, या एकमात्र देश में हमारा ही मान हो। मिश्र ज्ञान के बलपर हम देश के मेडिकल विभाग की लगाम अपने हाथ में रख सकें। इस प्रकार आयुर्वैदिक समाज विचार समन्वय के द्वारा एक हो कर आयुर्वेद की उन्नति के लिये एक आवाज उठावे तो उसमें बल होगा, प्रभाव होगा, सौन्दर्य होगा और आकर्षण होगा।

देश में प्रचलित यूनानी, होमियोपैथी, नेचरोपैथी, क्रोमोपैथी की कुछ चिकित्सा और स्वास्थ्य-रक्षक धाराएँ प्रचलित हैं। उनके माननेवाले भी अपना अस्तित्व बनाये रख कर उन्नति करते हुए जनसेवा की तृप्ति करना चाहते हैं। सबों के अलग-अलग प्रयत्न हैं; अलग-अलग माँगें हैं, अलग-अलग विभाग स्थापन द्वारा प्रयत्नों की पूर्ति का उद्योग है। सब की अलग-अलग आवाज है, जिससे सरकार निश्चय नहीं कर पाती कि क्या करे। अतएव, हल्लागुल्ला बन्द करने के लिये कभी इसे, कभी उसे कुछ टुकड़े फेंक कर सरकार उलझाये रखना चाहती है। किन्तु

इससे हमारी चिकित्सा की माँग में बल नहीं आने पाता। आवश्यकता है कि हम इन्हें समझा कर समाधान का वातावरण तैयार करें। उन्हें यह समझावें कि इस तरह तो हम बहके हुए चलते ही रहेंगे, कभी सिद्धि और सफलता की ओर बढ़ कर देश की राष्ट्रीय चिकित्सा की घोषणा न करा सकेंगे। हमारा सब का सम्मिलित प्रयत्न होना चाहिए। हमारे साथ आपके स्वार्थ सुरक्षित रहेंगे। यूनानी और आयुर्वेद में आधारभूत सिद्धान्तों और पद्धति प्रकरण में एक समानता है। कहीं-कहीं कुछ अन्तर दिखता है, उसका समाधान होना कठिन नहीं है। आयुर्वेदवाले यूनानी को समझने की प्रवृत्ति बढ़ावें और यूनानीवाले आयुर्वेद को समझने की अभिरुचि बढ़ावें। ज्ञान के आदान-प्रदान से सहज समन्वय होगा और मतभेद नाम की वाधक वस्तु नहीं रह पावेगी। एक आयुर्वेद की आवाज में एक माँग हो और आयुर्वेद के अन्तर्गत उनकी भावनाओं का आदर हो, और अधिकारों की रक्षा हो। होमियोपैथी का विज्ञान अभी व्यापक नहीं है, तथापि लक्षणों द्वारा व्याधि का स्वरूप समझ विपर्यस्तार्थकारी सिद्धान्त के द्वारा उसका रोग प्रशमन का ढङ्ग पूर्ण आयुर्वेदीय है। अतएव, वे भी यदि हमारे साथ मिल कर आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-विज्ञान बनाने का समर्थन करें तो आयुर्वेद के स्वार्थ के साथ उनके स्वार्थ की भी रक्षा होगी। नेचरोपैथी अर्थात् प्राकृतिक चिकित्सा पूर्ण रूप से आयुर्वेद के सूत्रस्थानान्तर्गत स्वास्थ्य-संरक्षण सिद्धान्त के अन्तर्गत है। अतएव, उन्हें आयुर्वेद के साथ चलने में कोई बाधा नहीं है। क्रोमोपैथी का सिद्धान्त वेदनिहित है, अतएव आयुर्वेद के साथ मिल कर उसका विकास सर्वथा सम्भव है। इस प्रकार देश में जितने स्वास्थ्य और चिकित्सा के विधान प्रचलित हैं, सब एक में मिल कर आयुर्वेद के नाम पर राष्ट्रीय चिकित्सा की माँग करें तो हमारी ठोस माँग की अवहेलना करना किसी के लिये सम्भव नहीं होगा। इसके बाद हम व्यक्तिगत दृष्टिकोणका समाधान करने में समर्थ होंगे।

जब समस्त भारत के चिकित्सकों की एक आवाज आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा-विज्ञान स्वीकार कराने की होगी तब अधिकारी वर्ग पर उसका असर हुए बिना नहीं रहेगा। ऐसे समय में हमारा प्रयत्न और कर्त्तव्य होगा कि हम अधिकारियों के दृष्टिकोण में समानता लाने का यत्न करें। महामान्य राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी के विचार आयुर्वेद के सम्बन्ध में सुलझे हुए हैं, वे अन्तःकरण पूर्वक आयुर्वेद की सर्वथा अभिवृद्धि चाहते हैं। केन्द्रीय मन्त्रिगण भी नवीन विचारों का ग्रहण चाहते हैं और हम भी चाहते हैं। यदि हमें सुविधाएँ मिलती जायँ तो उनका सदुपयोग करते हुए हम सिद्धि की ओर बढ़ते जा सकते हैं।

श्री सम्पूर्णानन्दजी को जहाँ तक हमें समझने का अवसर मिला है, वे विद्वान् हैं, वैज्ञानिक हैं, आयुर्वेद का स्वयं प्रयोग करते हैं और आयुर्वेद के पूर्ण समर्थक हैं। परन्तु मालूम पड़ता है कि वे उलझन में उस समय पड़ जाते हैं जब आयुर्वेद कालेज का पढ़ा हुआ कोई स्नातक अपने नाम के आगे आयुर्वेदाचार्य से घृणा कर डाक्टर बनना चाहता है, अपने प्रयोग में ८० फीसदी दवा एलोपैथी की बरतना चाहता है। तब उनका दिल भड़क उठता है; क्योंकि आपको लागलपेट पसन्द नहीं। यदि आयुर्वेद के साथ एलोपैथी की भी शिक्षा देने से वैद्य-विद्यार्थी की आँखों में आयुर्वेद के नाम पर पर्दा पड़ जाता है और एलोपैथी के चश्मे से ही दिखता है तब इन्हें पाश्चात्य विषय पढ़ाना कहाँ तक और किस समय समुचित होगा? वे वैद्यों को पूर्ण समर्थ, सभी ज्ञान-विज्ञान के जानकार किन्तु वैद्य के रूप में ही देखना चाहते हैं। अतएव, जब हमारे मिश्रप्रेमी बन्धुओं का दृष्टिकोण आयुर्वेदमय किन्तु सभी व्यापक ज्ञान से पूर्ण हो जायगा, तब भ्रम की गुन्जाइश न रहेगी और डाक्टर सम्पूर्णानन्दजी को अपना विचार बदलने में विलम्ब नहीं लगेगा।

प्रान्तीय समस्याएँ सुलझाना उतना कठिन नहीं होगा। किन्तु असली उलझन केन्द्रीय दृष्टिकोण को लेकर है, क्योंकि सभी प्रान्तों का सूत्र-सञ्चालन केन्द्र के द्वारा होता है। केन्द्र की नीति के अनुसार प्रान्तों को अपनी नीति सँभालनी और चलानी पड़ती है। केन्द्र के इशारे के विरुद्ध प्रान्तवाले अधिक करने में समर्थ नहीं हो सकते। तथापि केन्द्रवालों का यह बहाना रहता ही है कि प्रान्तवाले जिस कार्य के लिये सिफारिश करेंगे, उनके आग्रह पर उसके लिये केन्द्र से सहायता दी जायगी। किन्तु जब केरल ने आयुर्वेद के व्यापक अधिकार बढ़ाने चाहे तब केन्द्र की आँखें पथरा गयीं और केरल की योजना ठप्प हो गयी! इसलिये हमें दोनों ओर की नाड़ी टटोलते रहने का प्रयत्न करना पड़ेगा। केन्द्र के स्वास्थ्य मन्त्री माननीय दत्तात्रेय परशुराम करमरकर को एक आँकी हुई सीधी सड़क पर चलते रहना ही अभीष्ट

है। वे समय-समय पर जामनगर के कार्यों का उल्लेख कर अपने सन्तोष के साथ संसद के सदस्यों को भी सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न करते हैं। जामनगर में एक निष्णात १२०० वनस्पतियों को एकत्र कर नकली जड़ी-बूटी छाँट रहे हैं। एक दूसरे संस्कृतज्ञ शास्त्रीय ग्रन्थ एकत्र कर शारीरिक भागों के नाम, औषधि द्रव्यों के नाम, ऋग्वेद और अथर्ववेद से लेकर इस समय तक की जानकारी के साथ एकत्र कर रहे हैं। इससे ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन वैद्यक का इतिहास तैयार हो सकता है। पाण्डु सम्बन्धी अनुसन्धान की आप चर्चा करते ही हैं। साथ ही आप न्यूमोनिया में एण्टी-बायोटिक्स आधुनिक दवाइयों की प्रशंसा करने में भी नहीं चूकते। आयुर्वैदिक औषधालय में एण्टी-बायोटिक्स औषधियाँ रखने की आप सिफारिश कर रहे हैं; किन्तु आधुनिक अस्पतालों में कुछ अच्छी आयुर्वैदिक औषधियाँ वैद्य के सहित रखने के लिये तैयार नहीं हैं। आयुर्वेद और अन्य शास्त्र ज्ञान के उद्भव स्थान हों तो भी अर्वाचीन संशोधनों को आप भूल नहीं सकते। वैद्यक क्षेत्र में जो श्रेष्ठ हो वह-चाहे विलायती हो चाहे अमेरिकन हो आप उसे ग्रहण करेंगे। आपको आयुर्वेद के लिये कोई खास आग्रह नहीं है। इस ढुलमुल नीति का मूल टटोलने के लिये हमें प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू का दृष्टिकोण देखना पड़ेगा।

हमारे भाई पण्डित जवाहरलाल नेहरू को आयुर्वेद की उन्नति के लिये कोई आग्रह नहीं है। उनकी धारणा के अनुसार वैद्यक एकमेव विषय है। विभिन्न आगम होने पर भी वैज्ञानिक कसौटी से परीक्षा करने पर आयुर्वेद की भी जो बात जँचेगी उसे आप ग्रहण करेंगे। सम्भवतः इस प्रकार ग्रहण किये हुए रत्न एलोपैथी के मुकुट में ही जड़े जावेंगे। भारत का कोहनूर ब्रिटिश ताज में जड़ दिया गया उससे ब्रिटेन का तेज तो बढ़ा; परन्तु उससे भारत का क्या गौरव हुआ? वात-पित्त-कफ टेस्टट्यूब की शीशी में आ कर परीक्षित नहीं हो सकते तो उनके लिये अस्पताल में रोगियों द्वारा परीक्षण करने कराने की परवाह नहीं भी हो सकती और सम्भवतः इस प्रकार वे त्याज्य भी हो सकते हैं। चिकित्सक को एनाटमी, फिजियालोजी, वायोलोजी जानना आवश्यक है। वह शरीरशास्त्र, शरीर क्रियाविज्ञान और शरीर विकृतिविज्ञान के नाम से अपने यहाँ इन विषयों को पढ़ता हो तो भी आधुनिक नाम से ही उनका महत्व माना जायगा। प्राचीन विज्ञान के साथ आधुनिक विकसित अंशों को भी ग्रहण करने में कभी वैद्यों ने आनाकानी नहीं की। परन्तु उन्हें सिखाने का प्रबन्ध न करके यही माना जायगा कि ये प्रमाणित चिकित्सक नहीं हैं। आयुर्वेद से नोच-खसोट कर एलोपैथी के भण्डार में जमा करना इसे हम न तो आयुर्वेद की उन्नति मानते हैं और न ऐसे काम में खर्च की हुई रकम को आयुर्वेद के विकास में लगी हुई मानते हैं। हम स्पष्ट चाहते हैं कि आयुर्वेद की उन्नति स्वतन्त्र रूप से इस दृष्टिकोण से हो कि जो नयी आवश्यक बातें हों वे आयुर्वेद में बढ़ायी जायँ। आयुर्वेद पूर्ण हो कर देश की आवश्यकता की पूर्ति करे। अनुसन्धान का फल आयुर्वेद की उन्नति का कारण बनना चाहिए। यदि एलोपैथी एकमेव पद्धति बन सकती है, तो आयुर्वेद सब से पहले बन सकता है। आयुर्वेद के व्यावहारिक सिद्धान्त देशवासियों की प्रकृति और रहन-सहन के अनुकूल हैं। हमारा उद्योग होना चाहिए कि इस मार्ग के दृष्टिकोणों में साम्य लाने का प्रयत्न हो। रगड़ चलती रहने से उसका निशान बनेगा ही। जब औरों के दृष्टिकोण सम हो जायेंगे तब पण्डित जवाहरलाल को समझाने या सुलझाने में विलम्ब नहीं लगेगा। प्रयत्न और उद्योग से सफलता निश्चित है। दृष्टिकोण का अन्तर मिट कर साम्य आना ही चाहिए। आयुर्वैदिक स्वराज्य या राष्ट्रीय चिकित्सा विज्ञान की समस्या तभी हल होगी। अतएव दृष्टिकोण के अन्तर की बाधा हल होनी ही चाहिए।

# सूतिका का स्वास्थ्य

### वैद्य रणजितराय

**माता का स्थान** और महत्त्व समस्त विश्व में अप्रतिम है। **ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या** मन्त्र द्वारा लोक को माया के बन्धन से मुक्त करानेवाले भगवान् आद्य शंकराचार्य भी माता के बन्धन से तो स्वयं भी मुक्त नहीं रह सके। इसका कारण भी इन महान् आचार्य ने श्रीमुख से ही कहा है। संन्यासी को अपन स्वजन को अग्निदान न करना चाहिए इस शास्त्रादेश और रुढ़ि की अवगणना कर, लोकों का सहकार न मिलने पर अकेले हाथों आचार्य ने अपनी माता का अन्त्येष्टि-संस्कार किया, यह सुविदित सत्य है। प्रज्वलित चिता के संमुख आचार्य ने गद्‌गद हृदय से श्मशान में ही एक पद्यमाला द्वारा माता को निवापाञ्जलि दी। पद्यमाला का प्रथम पद्य यह है :

**आस्तां तावदियं प्रसूतिसमये दुर्वारशूलव्यथा**
**नैरुच्ये तनुशोषणं मलमयी शय्या च सांवत्सरी।**
**एकस्यापि न गर्भभारभरणक्लेशस्य यस्याः क्षमे।**
**दातुं निष्कृतिमुन्नतोऽपि तनयस्तस्यै जनन्यै नमः॥**

तात्पर्य: प्रसव-काल में हुई असह्य वेदना की बात जाने दो। गर्भस्थिति के समय और उसके पश्चात् भी अरुचि के कारण शरीर का शोषण होने से हुई शारीरिक-मानसिक यातना एवं लगभग एक वर्ष मेरे मल-मूत्र से लिप्त शय्या में सो रहकर भोगे कष्ट की बात भी छोड़ दो!! मेरी माता ने मुझे नव मास गर्भ में धारण कर जो क्लेश सहन किया उसका भी प्रतिदान करने में, इतना बड़ा होने पर भी, मैं समर्थ नहीं!!! उस माता को मेरा प्रणाम हो!!

वस्तुत: जगत् की प्रत्येक माता को गर्भधारण इत्यादि कार्यों में जो यन्त्रणा सहन करनी पड़ती है, अपने तन और मन को जिस त्रास में से गुजारना पड़ता है उसका यथार्थ निरूपण महान् आचार्य ने इस पद्य में किया है। अपने बालक के लिए माता जो क्लेश सहन करती है उसका निर्यातन किसी प्रकार हो नहीं सकता। तथापि संबन्ध रखने वाली प्रत्येक व्यक्ति शारीरिक-मानसिक दृष्टि से इस परिस्थिति के कार्यकारणभाव को समझ कर इस क्लेश को न्यून करने के प्रयत्न में भाग ले सकती है। आयुर्वेद के आचार्यों ने इस काल में अदा करने योग्य जवाबदेही का आलेखन एक सुन्दर उपमा द्वारा किया है। वे कहते हैं: **पूर्णमिव तैलपात्रम्**...।

तेल से ऊपर तक लबालब भरा पात्र हो और उससे एक भी बिन्दु गिरे नहीं इस रीति से एक स्थान से अन्य स्थान पर ले जाना हो—चित्त की कितनी एकाग्रता—शरीर की कितनी स्थिरता की आवश्यकता इस क्रिया में होती है? आयुर्वेद के आचार्य कहते हैं कि ठीक इसी प्रकार की सावधानी सगर्भा स्त्री की परिचर्या करने वाले चिकित्सक तथा उसके स्वजन-परिजनों को रखनी होती है। कारण स्पष्ट है। गर्भिणी का तन और मन इस काल एक विशिष्ट परिस्थिति में से गुजर रहा होता है। उसे लक्ष्य में रखकर अमुक प्रकार की चर्या उसके आरोग्य के संरक्षण के लिए आवश्यक हुआ करती है, यह सत्य है। परन्तु उसके लिए आचरणीय विशिष्ट चर्या तथा स्वजन-परिजनों के लिए करने योग्य विशिष्ट परिचर्या का मुख्य प्रयोजन तो उसकी कुक्षि में अवतीर्ण बाल होता है, जिसके जीवन की नींव इस काल रखी जा रही होती है। सगर्भा का स्वास्थ्य ही उसके भावी स्वास्थ्य का आधार होता है। सगर्भा स्त्री तथा उसके गर्भ में अवतीर्ण बालक के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी आयुर्वेद की जिस शाखा की है, उस **कौमारभृत्य** को इसी कारण आयुर्वेद के आठ अङ्गों अथवा शाखाओं में सर्वोपरि महत्त्व दिया गया है।

कौमारभृत्य के कार्य क्षेत्र को लक्ष्य में रखें तो पूर्वाचार्यों द्वारा अङ्कित इस शास्त्र के महत्त्व की कल्पना सरलता से हो सकती है। विवाह-योग्य वर-वधू रूप, यौवन, गुण, शील इत्यादि की दृष्टि से परस्पर अनुरूप हैं या नहीं, कामशास्त्र में स्त्री-पुरुष की जो प्रकृतियाँ निर्दिष्ट हैं उन्हें देखते उनका मेल बैठता है या नहीं—अर्थात् रति (कामेच्छा), उसको पूर्ण करने का सामर्थ्य इत्यादि की दृष्टि से वर-वधू एक-दूसरे के लिए उपयुक्त हैं या नहीं, उनके शुक्र और शोणित (रज) में प्रजोत्पादन-शक्ति है या नहीं—यह तथा इसी प्रकार की साङ्गोपाङ्ग परीक्षा करके अग्नि

के साक्ष्य में वर-वधू का संयोजन और समागम कराना, वे दीर्घकाल पर्यन्त काम-सुख का अनुभव कर सकें इस दृष्टि से उनके लिए आहार-विहार तथा औषध की योजना करना और अन्त में उनके संतान विवाह-योग्य अवस्था में पहुँचे कि इसी क्रम से उनके विषय में भी जवाबदेही अदा करना, इसके अतिरिक्त उनकी अभिरुचि तथा अभिरति देखकर उनके लिए कौन-सी विद्या और कला उपयुक्त है इसका विनिश्चय कर उसका शिक्षण दिलाना—**संक्षेप में यह कौमारभृत्य का कर्त्तव्य कर्म है।** इससे आयुर्वेद के इस अङ्ग की महत्ता सरलता से समझी जा सकती है। सगर्भा स्त्री के स्वास्थ्य का संरक्षण भी कौमारभृत्य के ही कर्मों में एक है। इस लेख का विषय 'सूतिका का स्वास्थ्य' होने पर भी सूतिका के स्वास्थ्य का आधार गर्भस्थिति के दिनों में रहे उसके स्वास्थ्य पर अवलम्बित है, अतः इस विषय में संक्षेप में प्रास्ताविक विवेचन करना उचित प्रतीत होता है।

## शरीर के तीन स्तम्भ : वात, पित्त और कफ

गर्भस्थिति, प्रसव, बालक को स्तनपान कराना, उसकी शुश्रूषा करना और साथ ही गृहस्थाश्रम का भार वहन करना इन सबके परिणामस्वरूप **माता के शरीर में वायु का प्रकोप** होता है। कुपित हुआ यह वायु माता तथा बालक के तन और मन के लिए किसी प्रकार हानिकर्ता न हो, एवं उनके भावी जीवन को शारीरिक किंवा मानसिक रोगों से कलुषित न कर दे इस दृष्टि से **गर्भस्थिति के प्रथम मास से** ही गर्भिणी के लिए ऐसे आहारौषध द्रव्यों की योजना होनी चाहिए एवं उसे ऐसा विहार (चेष्टा) अपनाना चाहिए जो उसके शरीर में वायु का कोप न होने दें। अपने अनुभव तथा आप्त वैद्यों और जानकारों के मन्तव्यानुसार जो आहार-विहार वायु को प्रकुपित करने वाला हो अथवा अपने शरीर और मन के स्वास्थ्य के लिए किसी भी रूप में हानिकर हो उसका सर्वथा त्याग करना चाहिए।

गर्भस्थिति एवं उपर्युक्त अन्य परिस्थितियों में वायु के प्रकोप का क्या अर्थ है, और वह किस प्रकार प्रकुपित होता है इसका शास्त्रीय स्वरूप समझ लिया जाय तो सगर्भा और सूतिका के पालने और त्यागने योग्य आहार-विहार को समझने का मार्ग स्वच्छ हो सकता है। अतः संक्षेप में प्रथम इसी विषय का निरूपण किया जाता है।

**वात-पित्त-कफ** आयुर्वेद-मत से शरीर और मन की सर्व क्रियाओं के मूल हैं। ज्ञानेन्द्रियों एवं मन द्वारा हमें जो ज्ञान होता है तथा कर्मेन्द्रियों द्वारा हम जो चेष्टा करते हैं उन सबका प्रेरक और नियामक **वायु** है। शरीर में जो निर्माणात्मक क्रिया होती है उसका कारण पित्त है। अर्थात्—अन्नपान की अन्नरस के रूप में परिणति और उसमें भी परिवर्तन होकर रस, रक्त, मांस आदि सर्व धातुओं की पुष्टि होना और उसके परिणामस्वरूप इन धातुओं से बने शरीरावयवों की पुष्टि होना—इस क्रिया में जो रासायनिक परिवर्तन (केमिकल रीएक्शन्स) होते हैं वे **पित्त** के कारण होते हैं। शरीर में स्निग्धता संपादन करने का कार्य (लुब्रीकेशन) **कफ** का है। शरीर के सूक्ष्मतम घटक शरीर परमाणुओं (सेल्स, कोषों) के मध्य में एवं अस्थि, स्नायु, हृदय, फुफ्फुस, अन्त्र आदि स्थूल अवयवों के सन्धिस्थलों में भी एक प्रकार का स्निग्ध द्रव्य रहता है, जिसके कारण इनकी क्रिया सरलता से होती है।

वात-पित्त-कफ अपने उपर्युक्त तथा अन्य कर्म करते रहें एतदर्थ शरीर में प्रत्येक का अमुक प्रमाण में रहना आवश्यक है। वात-पित्त-कफ इस प्रमाण में शरीर में हों तो वे **सम प्रमाण** में हैं, ऐसा कहा जाता है। इनके इस योग्य प्रमाण में वृद्धि अथवा ह्रास हो जाए किंवा वात-पित्त-कफ में किसी के भी स्वाभाविक स्वरूप में कुछ रूपान्तर हो जाए तो वे **विषम** हुए कहे जाते हैं। रोग सामान्यतया वात-पित्त-कफ के स्वाभाविक प्रमाण में वृद्धि होने से हुआ करते हैं। इस वृद्धि को इनका **कोप** कहा जाता है। जो वात-पित्त-कफ शरीर में होनेवाली जीवनोपयो समग्र क्रियाओं के कारणभूत हैं वे ही विषम या विकृत होने पर सर्व रोगों को उत्पन्न करते हैं, यह आयुर्वेद के आचार्यों का मत है।

चिकित्सक का लक्ष्य वात-पित्त-कफ के रोगजनक स्वभाव के प्रति अहर्निश रहे इस प्रयोजन से आयुर्वेद के आचार्यों ने वात-पित्त-कफ को **दोष** नाम दिया है। इसी निमित्त इन्हें **मल** भी कहा जाता है।

**नवीन विज्ञान के साथ प्राचीन मत का समन्वय** जिन्हें प्रिय है उनके मार्गदर्शन के लिए इतना जता देना पर्याप्त है कि आयुर्वेद के वात-पित्त-कप प्रत्येक एक-एक पदार्थ नहीं हैं। परन्तु, इनमें प्रत्येक तीनों द्वारा प्रतिपादित अनेक-अनेक द्रव्यों के वर्ग हैं। एक पित्त का उदाहरण

तें। जैसा कि ऊपर कहा, शरीर में रासायनिक रूपान्तर के लिए जवाबदार जो और जितने द्रव्य हैं उन सबका अन्तर्भाव पित्त-वर्ग में हो सकता है। इस दृष्टि से देखते हुए विभिन्न एन्ज़ाइम, विभिन्न अन्तः-स्राव (हॉर्मोन्स) और इन दो कक्षाओं में जिनका समावेश नहीं हो सकता वह लवणाम्ल (हाइड्रोक्लोरिक एसिड) और यकृत् से स्रुत होने वाला बाइल—ये सब पित्त शब्द से गृहीत होते हैं।

जैसे जर्मन, फ्रेंच, इटालियन, अंग्रेज, रशियन इत्यादि परदेशी प्रजाजन अथवा अपने भारत के ही गुजराती, मारवाड़ी, महाराष्ट्री, मद्रासी, बंगाली या पंजाबी के स्वभाव तथा शरीर के संघटन का विचार करें तो इनमें कोई साम्य दिखाई देगा नहीं, इसके विपरीत वैषम्य दर्शानेवाले तत्त्व ही अधिक प्रमाण में दिखाई देंगे, तथापि ऊपर सिर और नीचे दो पैर इस साम्य को दृष्टि में रखकर ही इन सबको 'मानव' इस एक कक्षा में रखा गया है, अथवा भिन्न-भिन्न प्रदेशों में उगने वाले गेहूँ, चावल या चना को पृथक् ही अन्न मानना स्वाभाविक प्रतीत होगा तथापि उनकी आकृति से उन सबको गेहूँ आदि एक ही नाम दिया जाता है। यही समदर्शिता आयुर्वेद के आचार्यों ने वात-पित्त-कफ प्रत्येक को एक-एक वर्ग में समाविष्ट करने में दिखाई है।

नव्य मतानुसार वातवर्ग, पित्तवर्ग अथवा कफवर्ग के अन्तर्गत द्रव्य भले भिन्न-भिन्न हों तथापि प्रत्येक की क्रिया में स्थित अमुक सादृश्य (जैसे पित्तवर्गीय द्रव्यों में विद्यमान पचन, उष्णताजनन आदि कर्मों का सादृश्य), प्रत्येक के प्रकोप या क्षीणता से अमुक ही प्रकार के रोगों की उत्पत्ति एवं प्रत्येक की समता, वृद्धि और ह्रास के लिए अमुक ही आहार, विहार, औषध, देश या काल कारणभूत होना—इस साम्य को लक्ष्य में रखकर पूर्वाचार्यों ने इन्हें एक-एक वर्ग में विभक्त किया है और प्रत्येक के विषय में एकवचन में ही विचारणा की है।

जैसा कि ऊपर कहा—गर्भस्थिति, प्रसव, स्तनपान आदि अवस्थाओं में स्त्री-शरीर में वायु का प्रकोप होता है। मन पर भी कुपित वायु का प्रभाव होता ही है। प्राचीनों ने कहा है कि : शरीर का स्वामी मन है तो इस मन का भी स्वामी वायु है—**मनोनाथस्तु मारुतः।** अतएव परंपरागत वृद्ध वैद्य आज के न्यूरोसिस, सायकोसिस, हिस्टेरिकल, सायको-सोमेटिक आदि विशेषणों से निर्दिष्ट किये जाने वाले रोगों में भी वायु के ही शोधन-शमन को दृष्टि के समक्ष रखते हैं और यश भी उपार्जित करते हैं। योगशास्त्र में भी मन पर प्रभुत्व प्राप्त करने की भूमिका के रूप में विशेषतया वायु की और सामान्यता सर्व दोषों की शुद्धि को लक्ष्य में रखकर बस्ति, नेती, धोती, आसन, प्राणायाम आदि की उपासना पर ही भार दिया गया है।

गर्भस्थिति आदि अवस्थाओं में वायु के प्रकोप की संप्राप्ति (प्रक्रिया) क्या है यह समझने के लिए वायु के प्रकोप के सामान्य कारण जानना आवश्यक है।

## वायु के प्रकोप के सामान्य कारण

वातवर्गीय द्रव्यों की उत्पत्ति और प्राप्ति यद्यपि शरीर के अन्य अवयवों में भी होती है (यथा श्वास-क्रिया द्वारा) तथापि रोगों की उत्पत्ति और उनके उपचार के प्रकरण में जिस वायु को स्मृति में रखना चाहिए वह है—पक्वाशय अथवा स्थूलान्त्रों में स्वभावतः उत्पन्न होने वाला वायु—वातवर्गीय सूक्ष्म द्रव्य। अन्नपान पक्व होने के अनन्तर उसका निःसारभाग पक्वाशय में आता है तो यत्किंचित् प्रमाण में वायु की उत्पत्ति होती ही है। जो आहार-द्रव्य वायु की वृद्धि अथवा कोप करनेवाले कहे जाते हैं, वे इस वायु की उत्पत्ति सविशेष प्रमाण में करते हैं। जो उपचार वायु को समावस्था में लाने वाले माने जाते हैं वे या तो इस मार्ग से वायु अथवा उसके अवरोधक कारण की शुद्धि करते हैं किंवा उसका शमन करते हैं। **शमन का अर्थ** यह है कि वायु में जो गुण हैं उनसे विपरीत गुण इन द्रव्यों में होते हैं। परिणामतया, एसिड जैसे सोडा से शान्त हो जाता है वैसे ये द्रव्य भी वायु को दबा देते हैं—उसकी उत्पत्ति अधिक मात्रा में होने देते नहीं अथवा वह हुई हो तो उससे कोई विकृति नहीं होने देते।

पक्वाशय अथवा स्थूलान्त्रों में उत्पन्न होने वाला यह वायु सूक्ष्म छिद्रों द्वारा गृहीत होकर सर्व शरीर में संचार करता है और सर्व अवयवों से उनका प्राकृत (स्वाभाविक, प्रकृतिदत्त) कर्म कराता है। शरीरावयवों में संचरणशील यह वायु पुनः पक्वाशय या स्थूलान्त्रों में आता है और वहाँ से बाहर निकल जाता है। यहाँ कोई अवरोधक कारण उपस्थित हो तो यह वायु पक्वाशय में ही रह जाता है और उदर तथा छाती में वातजनित नाना रोगों को उत्पन्न करता है। अथवा अधिक प्रमाण में शरीर में शोषित होकर शरीरावयवों में विविध वातज रोगों को जन्म देता है।

वायु के सदृश ही आयुर्वेद में पित्त, कफ, रस, रक्त, शुक्र (वीर्य), स्तन्य आदि की उत्पत्ति तथा शरीर में उनकी यात्रा के आरम्भ और अन्त के लिए भी एक-एक अवयव स्वीकारा गया है। इस एक-एक अवयव या 'स्थान' की महत्ता इस दृष्टि से भी है कि प्रकोप होने पर बस्ति (एनीमा) आदि उपायों से इस एक-एक स्थान से दोष आदि की शुद्धि कर उन्हें समावस्था में लाया जाता है।

## शरीरावयवों में वायु का स्थानसंश्रय

पक्वाशय अथवा स्थूलान्त्रों में उत्पन्न होते वायु के अतिरिक्त स्वयं शरीरावयव भी वायु के प्रकोप और समता में कारणभूत हैं। माना जाता है कि शरीर के रस-रक्त-मांस आदि धातु अथवा उनसे बने शरीरावयव चाहिए वैसे पुष्ट न हों तो पक्वाशय से अपनी यात्रा आरम्भ करके शरीर में संचार करने वायु को इन अवयवों में स्थिर हो जाने के लिए अनुकूल परिस्थिति निर्मित हो गई होती है। यह अनुकूल परिस्थिति प्राप्त कर वायु पक्वाशय की दिशा में अपनी यात्रा चालू न रखता हुआ इन अवयवों में ही डेरा डालकर बैठ जाता है। इस स्थिति को **स्थानसंश्रय** यह विशेष नाम दिया गया है। वायु संचरणशील हो तो अवयवों में इसकी वृद्धि या प्रकोप होने पाता नहीं। प्रकोप न होने से शरीरावयवों में वातज रोग भी होने पाते नहीं। परन्तु अनुकूल परिस्थितिवश किसी अवयव में वायु स्थान-संश्रय करे—अड्डा जमाए तो वहाँ वायु के प्रमाण में वृद्धि होती जाती है—उसका प्रकोप होता है और परिणाम में वात प्रकोपज रोगों की उत्पत्ति होती है।

## धातुक्षय का स्वरूप

इस प्रकार धातुक्षय वायु के प्रकोप का एक कारण है। धातुक्षय का अर्थ है किसी शरीरावयव को घटक द्रव्य पर्याप्त प्रमाण में न मिल सकने के कारण उसकी क्षीणता। अवयवों के पोषक द्रव्य (नव्य मत से प्रोटीन आदि) उन्हें मिलते रहें तो उनका भार अथवा **गुरुत्व** यथास्थित रहता है! ये द्रव्य न मिलें तो वे लघु या हलके हो जाते हैं। शरीरावयवों को अपनी पुष्टि एवं अपने प्रकृति-नियत कर्म करने के लिए अमुक प्रमाण में **स्निग्धता** की (नव्य मत से घी, तेल आदि के रूप में फैट की) आवश्यकता होती है। वह न मिले तो वे रूक्ष अथवा स्नेहरहित होने लगते हैं। अवयवों की पुष्टि यथावत् हो तो उनके संघटन में अमुक घनत्व रहता है। अवयवों की पुष्टि न्यूनाधिक अटक जाए तो उनका घनत्व न्यून हो जाता है। इस अवस्था को **शुषिरता** (छिद्रमयता) कहते हैं। अवयव जिन शरीराणुओं अथवा सेलों से बने होते हैं उनमें स्वभावतः छोटे-बड़े अवकाश (वेक्युओल) होते हैं। घनत्व न्यून होने पर ये अवकाश भी बड़े हो जाते हैं। परिणाम में ये शरीराणु अपना कार्य उत्तम प्रकार से कर नहीं सकते। इस कारण विभिन्न रोग होते हैं। यथा, जो ग्रन्थि इन्सुलीन उत्पन्न करती हैं उसमें यह स्थिति उत्पन्न होने पर उसमें जो इन्सुलीन उत्पन्न होता है उसका स्वरूप तथा प्रमाण योग्य प्रकार का न होने से मधुमेह-नामक रोग होता है। आयुर्वेद में इसी कारण मधुमेह को वातज रोग कहा है। राजयक्ष्मा आदि रोगों में धातुओं की क्षीणता के कारण फुफ्फुस तथा अस्थियों में इसी प्रकार छिद्रमयता हो जाती है।

शरीरावयवों को योग्य पुष्टि मिलती रहे तो उनमें उचित मात्रा में **उष्णता** रहती है। उसके अभाव में अवयवों की प्राकृतिक उष्णता में ह्रास होने पर वे शीत हो जाते हैं। इसी प्रकार शरीरावयवों को उचित प्रकार का पोषण न मिलने से उनकी स्वाभाविक **मृदुता** अथवा स्थिति-स्थापकता के स्थान में कठिनता, **मसृणता** के स्थान पर खरता (खुरदरापन) और **पिच्छिलता** (चिकनापन) के स्थान पर विशदता (परमाणु दूर-दूर होना) आ जाती है। पक्षाघात में मस्तिष्क की शिराओं में इस प्रकार की विशदता हुई होने से ही वे टूट पड़ने की स्थिति में होती हैं और स्वल्पमात्र मानसिक आवेश आदि कारण की विद्यमानता में वे टूट जाती हैं तथा मस्तिष्क में रक्तस्राव होता है। इस रक्तस्राव का दबाव मस्तिष्क के केन्द्रों पर पड़ने से लकवा अथवा पक्षाघात होता है।

इस प्रकार किसी भी कारण से शरीरावयवों को पोषण न मिलने पर वे क्षीण हो जाते हैं। ऐसे शरीरावयवों में स्थानसंश्रय करके रोगोत्पत्ति करने का उत्तम अवसर वायु को मिल जाता है। अतएव—**किसी भी कारण से शरीर क्षीण, कृश और दुर्बल होकर उनमें वायु के प्रकोप से होने वाले रोग उत्पन्न होने की संभावना हो, एवं मानसिक रोग होने की शक्यता हो तो उनके निवारण के लिए आहार तथा औषध के रूप में ऐसे द्रव्य योग्य प्रमाण में लेने चाहिए जो शरीर का पोषण करें, अन्दर और बाहरी स्निग्धता लाएं, एवं अपने उष्ण स्वभाव के कारण प्रत्यवयव में स्वाभाविक**

**उष्णता को स्थिर रखें। जैसा कि हम आगे देखेंगे गर्भस्थिति, प्रसूति, स्तनपान और बालक की शुश्रूषा—इन परिस्थितियों में शरीरावयवों में विशेषतया क्षति उत्पन्न होती है। इनमें हुई इस क्षीणता की पूर्ति के लिए पोषक, स्निग्ध, उष्ण आहारौषध द्रव्यों की आवश्यकता सविशेष होती है। तदुपरान्त शरीर की क्षति में वृद्धि न हो इस दृष्टि से माता के लिए इन सर्वस्थितियों में उचित शारीरिक-मानसिक विश्राम की आवश्यकता भी इतनी ही है।**

## आवरण : वायु के प्रकोप का द्वितीय कारण

अब तक हमने वायु के प्रकोप के दो कारण देखे—१. अन्नपान में लघु, रूक्ष, शीत, कषाय (कसैले) आदि गुण वाले—शरीर में पुष्टि इत्यादि न करें ऐसे पदार्थों के सेवन के कारण वायु की उत्पत्ति अधिक प्रमाण में होना ; २—शरीरावयव क्षीण, कृश और दुर्बल होने के कारण अनुकूल अवसर प्राप्त हो जाने से वायु का उनमें स्थानसंश्रय होना। इसके अतिरिक्त वायु के प्रकोप का तीसरा भी कारण है—किसी भी दोष, धातु अथवा मल की वृद्धि होकर वायु के संचरण में अथवा उसकी क्रिया में अवरोध होना। इस अवरोध को **आवरण** यह विशेष नाम दिया गया है। गर्भस्थिति स्वयं इस आवरण का उत्तम उदाहरण है, अतः स्पष्टीकरण के लिए उसी को दृष्टान्त रूप में प्रस्तुत करता हूँ।

## गर्भस्थिति में वायु के प्रकोप का स्वरूप

वायु के प्रकोप के कारण के विषय में इतना प्रास्ताविक विवेचन विषय की विशदता के लिए आवश्यक होने से किया गया। अब इसके आधार पर स्त्री-जीवन के गर्भस्थिति आदि विशिष्ट अध्यायों को समझने का प्रयास करें।

गर्भस्थिति अनेक प्रकार से वायु के प्रकोप में कारणभूत है। वायु के पाँच भेदों में एक **अपान** नामक वायु गर्भ के धारण और स्थिरता का हेतु है। यह वायु पुरीष (टट्टी), अधोवायु, मूत्र, आर्तव (मासिक), शुक्र और गर्भ को रोक रखने और काल उपस्थित होने पर उनकी प्रवृत्ति में—उन्हें बाहर निकालने में हेतु होता है। गर्भाशय में गर्भ स्थिर होने का अर्थ ही यह है कि सर्व द्वारों से पुरीष आदि को बाहर निकालने की अपान वायु की जो स्वाभाविक क्रिया होती है वह अंशतः कुण्ठित होकर उसकी धारणात्मक क्रिया में वृद्धि होती है। परिणामतया **अधोवायु का अवरोध** होता है। इसी कारण मल-मूत्र भी यथावत् प्रवृत्त नहीं होते। अधोवायु का अवरोध होने पर पक्वाशय में उसका संचय और वृद्धि होती है। वृद्धि (प्रकोप) को प्राप्त हुआ यह अधोवायु अधिक प्रमाण में शरीर में संचार भी करता है। गर्भस्थितिवश क्षीण हुए शरीरावयवों में इस वायु को स्थानसंश्रय कर रोग उत्पन्न करने का अनुकूल अवसर भी सुलभ होता है। इस प्रकार प्रकुपित हुआ वायु उदर, छाती तथा शरीर के अन्य अङ्ग-प्रत्यङ्गों में भी भिन्न-भिन्न रोग उत्पन्न करने की स्थिति में आ जाता है।

यह सुविदित है कि गर्भस्थिति, प्रसूति, स्तनपान और बालक की शुश्रूषा—इन सर्व परिस्थितियों में स्त्री के शरीर पर अधिकतर भार आ पड़ा होता है। गर्भस्थिति के समय स्त्री को अपने शरीर के अतिरिक्त गर्भस्थ शिशु के शरीर का भी पोषण करना होता है। प्रसूति के समय बहुत-सा रक्त बाहर निकल जाता है। उसकी पूर्ति करनी होती है। स्तनपान-काल में उसके शरीरावयवों के अतिरिक्त बालक के दिन-प्रतिदिन वृद्धि प्राप्त करते शरीर की पुष्टि का कार्य भी माता के शरीर पर आया होता है। बालक की शुश्रूषा में जागरण आदि के रूप में जो भार माता के शरीर पर पड़ता है उसके परिणामस्वरूप भी उसके शरीर की क्षति होती है। गर्भस्थिति के समय छर्दि (उलटी) के कारण धातुओं की पुष्टि न्यूनाधिक प्रमाण में अटक जाने से शरीरावयव अधिक क्षीण, कृश, दुर्बल एवं वायु के प्रकोप से होने वाले रोगों अथवा **क्षीणता के परिणाम-स्वरूप होने वाले राजयक्ष्मा (क्षय) आदि रोगों का ग्रास होने की स्थिति में** आ गए होते हैं। वस्तुतः, निर्धनता आदि कारणों से स्त्री का शरीर चाहिए वैसा पुष्ट और बलवान् न हो और उस पर अधिक संख्या में एक पर एक गर्भधारण की जबाबदेही आ पड़ी हो तो स्त्री राजयक्ष्मा के आक्रमण का विषय हो जाती है। इसके उदाहरण ढूँढ़ने के लिए वाचकों को दूर जाने की आवश्यकता कदाचित् ही पड़ेगी। आवश्यक विश्राम का अभाव भी राजयक्ष्मा आदि रोगों के प्रवेश के द्वार खोल देता है।

अधोवायु और पुरीष (टट्टी) का अवरोध शरीर में वायु के प्रकोप का मार्ग सरल कर देता है यह हम ऊपर देख आए हैं। शरीर की रचना का यत्किंचित् भी ज्ञान जिन्हें है वे जानते होंगे कि गर्भाशय मूत्राशय और पक्वाशय

के मध्य में स्थित है। गर्भ जैसे-जैसे वृद्धि प्राप्त करता जाता है वैसे-वैसे उसका दबाव पक्वाशय किंवा स्थूल अन्त्रों पर आ पड़ने से अधोवायु और पुरीष की स्वाभाविक गति में विक्षेप आता है। इस अवरोध के कारण भी सगर्भा स्त्री के शरीर में वायु का प्रकोप होता है। परिणामतया, धातुओं की क्षीणता, कृशता और रोगों की पात्रता में अधिकतर वृद्धि होती है।

## सगर्भा की सुश्रूषा

इस लेख का विषय सूतिका का स्वास्थ्य है। तथापि जैसे रोगमात्र की अनुत्पत्ति (प्रीवेन्शन, अटकाव) उसकी चिकित्सा अथवा उपचार का प्रथम सोपान होता है वैसे उपरिनिर्दिष्ट रोग सूतिका (प्रसूता) को पीड़ित न करें इस निमित्त गर्भस्थिति के आरम्भ से अन्त तक ऐसे उपायों की योजना करनी चाहिए जो इन तथा अन्य रोगों के मूल को पनपने न दे, इसके अतिरिक्त उसके कुक्षिस्थ बालक के अङ्ग-प्रत्यङ्ग की सम्यक् पुष्टि करें, जिससे वह चिरायु हो, अथच आजीवन स्वस्थ और सबल रह कर अपने पुरुषार्थों को सिद्ध कर सके।

समग्र परिस्थिति को लक्ष्य में रखकर आयुर्वेद के आचार्यों न प्रथम तो **गर्भाधान के पूर्व** पति-पत्नी दोनों के लिए ऐसे आहार-विहार और औषधोपचार की व्यवस्था की है जो उनके शुक्र और रज को—अर्थात् उनमें रहे पुरुष-बीज और स्त्री-बीज को सर्व प्रकार से पुष्ट कर उनके संयोग से उत्पन्न होने वाले गर्भ-बीज को ऐसा स्वरूप प्रदान करें कि भविष्य में होनेवाला बालक चिरायु, पुष्ट अङ्ग-प्रत्यङ्ग वाला और स्वस्थ रहे। एवं पति-पत्नी का समागम भी उन्हें दीर्घ आयु पर्यन्त सर्व प्रकार से संतोषप्रद और उन्हें किसी प्रकार की क्षति न पहुँचानवाला सिद्ध हो।

**गर्भस्थिति के समय** भी माता के लिए पूर्वाचार्यों ने ऐसे ही आहार-विहार और औषधोपचार का विधान किया है जो माता तथा गर्भस्थबालक के आरोग्य और बल-संरक्षण की दृष्टि से उपयोगी हो। यह आहार-विहार और औषधोपचार प्रत्येक मास के लिए पृथक्-पृथक् सूचित करने की खास सावधानी आचार्यों ने रखी है। इस व्यवस्था को **मासानुमासिक चिकित्सा** नाम दिया गया है। इसके अतिरिक्त **भिन्न-भिन्न विकृतियाँ अथवा उनकी संभावना** उपस्थित होने पर भिन्न-भिन्न आहार-विहार एवं औषधोपचार का उपदेश संहिताकारों ने किया है। इसके सिवाय **प्रसव के पश्चात्** भी आचार्यों ने ऐसी चर्या, ऐसे अन्नपान तथा ऐसे औषधों के सेवन की योजना की है जो गर्भधारण-काल में माता के शरीर में हुई क्षति की पूर्ति करे, क्षीणता आदि कारणवश उसके शरीर में हुए वायु के प्रकोप के कारण शारीरिक और मानसिक वातज रोग उसे तथा उसके बालक को पीड़ित न करें और परिणाम में माता अपना सर्व प्रकार का कार्य भार वहन करने के लिए पुनः सुसज्ज हो जाए।

**वातशामक इन उपचारों का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम** यह होता है कि—वायु का अनुलोमन होने से प्रसव लगभग वेदनारहित और त्वरित होता है। इसके अतिरिक्त प्रसूति इस प्रकार निर्विघ्न होने के कारण प्रसव-काल में बालक के शरीर और मस्तिष्क को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचने से उसके अवयवों में रचनात्मक या क्रियात्मक कोई विकृति होने की संभावना नहीं रहती। **विलियम शार्प** नामक 'ब्रेन-सर्जन' ने अमेरिका के अनेक सुसज्ज सूतिकागारों (प्रसूतिगृहों) में सैकड़ों नवजात शिशुओं की परीक्षा करके यह निष्कर्ष निकाला है कि नव प्रतिशत शिशुओं में मस्तिष्क में प्रसूति के समय रक्तस्राव होता है। यह रक्तस्राव 'सेरीब्रल पाल्सी' नामक बच्चों में होनेवाले पक्षाघात (लकवा) का कारण होता है। प्रसूति के समय मस्तिष्क पर दबाव आने से उसके विकास में क्षति होने तथा उसके परिणामस्वरूप अपस्मार (मिरगी) तथा अन्य मानस रोग होने की संभावना होती है। इस बात की संपूर्ण शक्यता है कि **गर्भावस्था के अन्तिम दो मासों** में वायु के अनुलोमन के जो उपचार प्राचीनों ने कहे हैं, इसके अतिरिक्त प्रसववेदना के आरम्भ में गर्भाशय के संकोचन के कारणभूत वायु को सम अवस्था में रखने के जिन प्रादेशिक और सार्वदेहिक उपचारों का निर्देश आचार्यों ने किया है उनका अवलम्बन किया जाए तो प्रसवकाल में गर्भाशय के आकुञ्चन-प्रसारण की जो क्रिया होती है वह **लयबद्ध** होती है। अकस्मात् एवं बलात् संकोचन आदि के कारण गर्भस्थ शिशु के मस्तिष्क इत्यादि अङ्ग दब जाने की संभावना इस प्रकार टाली जा सकती है। पुनश्च, जैसा कि ऊपर कहा, प्रसव को भी वेदनारहित और स्वाभाविक बनाया जा सकता है।

(शेषांश पृष्ठ ७२५ पर)

# परमौषधम्

**वैद्य बिन्दुमाधव पंडित**

शरीरजानां दोषाणां क्रमेण परमौषधम् ।
वस्तिर्विरेको वमनं तथा तैलं घृतं मधु ।।

—अष्टांग हृदय

आयुर्वेद-शास्त्र की उत्पत्ति कैसे हुई यह कथा चरक-संहिता के प्रारम्भ में दी है। भरद्वाज ऋषि सुरेश्वर इन्द्र के पास गये और बोले—सर्वप्राणि भयंकर व्याधिग्रस्त हुए हैं। उनके शमन के उपाय बतलाइए। भगवान इन्द्र ने श्रेष्ठ ऋषि की विमल विपुल बुद्धि ध्यान में रख कर अति अल्प शब्दों में आयुर्वेद-शास्त्र के सिद्धान्त कह दिए। सब स्वस्थ और आतुर अवस्था के हेतु, लक्षण और औषध इन तीन विभागों में (त्रिसूत्रं, त्रिस्कंधं) संपूर्ण आयुर्वेद का विवेचन कर दिया। उसका परिणाम यह हुआ कि भरद्वाज ऋषि स्वयं सुखी और दीर्घायुषी बने। भरद्वाज ऋषि से, अन्य ऋषियों को, आयुर्वेद-शास्त्र का ज्ञान मिला। वे भी दीर्घायुषी और सुखी हुए।

## आयुर्वेद-शास्त्र की जड़

आम जनता के हितार्थ उन ऋषि-मुनियों ने आयुर्वेद-शास्त्र के विस्तृत ग्रन्थ बनाए। उन ग्रन्थों का अध्ययन करके भारतवर्ष की जनता सहस्रों वर्ष से आरोग्य-लाभ कर रही है। क्रम से वे ग्रन्थ इतने विस्तृत बनते गये कि उसका सार भाग कौन-सा है, यह भी हम लोग आज भूल गए हैं। आयुर्वेद-शास्त्र एक विशाल वृक्ष की भाँति हमारे सामने उपस्थित है। उसके पत्र कौन से हैं, उसकी शाखाएँ कौन-सी हैं और उसकी जड़ कौन-सी है, यह समझना आज कष्टतम हो गया है।

## स्वस्थोपचार का प्रारम्भ

आयुर्वेदीय स्वस्थोपचार का प्रारम्भ कहाँ से होता है, और उसकी समाप्ति कैसे करनी चाहिए, यह समझना आज अत्यन्त जरूरी बात है। प्राणी स्वस्थ हो या आतुर, उसकी सर्वप्रथम (सर्वश्रेष्ठ) औषधि कौन-सी है, कौन-सी हो सकती है, यह सवाल अनेक विचारवान् चिकित्सकों के मन में उत्पन्न होता-होगा। मैं भी कितने वर्ष से सोचता था। किन्तु इसका जवाब एक रोज मुझे सहज मिल गया। इसी खोज का विवेचन इस लेख में किया है।

## एक घटना

घटना ऐसी हुई। मेरे एक परम मित्र के दो जुड़वें (Twin) बालकों की प्रथम वर्ष-गाँठ थी। कुछ चीज उपहार के रूप में भेजने की मुझे इच्छा हुई। बालक थे—एक कन्या और एक पुत्र। वे बहुत दुबले थे। एक वर्ष आयु के दुर्बल बालक सेवन कर सकें, ऐसी कौन-सी वस्तु मैं भेजूँ। बिस्कुट या चाकलेट का पैकेट (डब्बा) देने का रिवाज सब जगह है। लेकिन मैं यह मानता हूँ कि चिकित्सक-वैद्य को तो ऐसी वस्तु उपहार में भेजनी चाहिए, जो दुर्बल बालकों को भी सदैव जीवनदायी सिद्ध हो।

## त्रिदोषशामक पौष्टिक मिश्रण

चिन्तन शुरू हुआ। बालकों को मधु-घृत मिश्रण खिलाना चाहिए, ऐसा कौमारभृत्य तन्त्र में पढ़ा हुआ स्मरण आया। जब तक माता के स्तन में दूध नहीं होता है, तब तक त्रिकाल मधु-सर्पि मिश्रण का प्रयोग बतलाया है। घृत-मधु का मिश्रण पित्त-कफ दोषशामक है। उस मिश्रण को त्रिदोषशामक बनाने के लिए उसके साथ तैल का भी मिश्रण करना आवश्यक है। च्यवनप्राश, अगस्तिप्राश (अगस्ति हरीतकी लेह), वसिष्ठप्राश आदि रसायन प्रयोगों में घृत और मधु के साथ-साथ तैल का भी उपयोग होता है, उसका स्मरण हुआ। (भर्जयेत् तैल घृतात् द्वादशभिः पलैः। अष्टांग हृदय उत्तर. ४०–३६)।

इन आधारों पर मैंने तैल, घृत और मधु का एक मिश्रण बना कर भेजने का निर्णय किया। योग मधुर (मधुप्रधान) होना आवश्यक समझा, इसलिए २ भाग मधु, १ भाग घृत और १ भाग तिल तैल ऐसा मिश्रण बनाया। तीनों द्रव्यों को खूब एकत्र रगड़ा (संमूर्च्छित किया)। उनका अच्छा सफेद-गुलाबी अवलेह बना। भरणी (काँच के बर्तन) पर माम लिखा **'परमौषधम्'**।

## बालकों में सर्वांगीण प्रगति

बालकों के पिताश्री का मुझ पर नितान्त विश्वास था। उन्होंने वह अवलेह बालकों को रोज आधा-आधा तोला प्रमाण में खिलाया। बालक भी रुचि से उसका सेवन करते थे। 'परमौषध' के सेवन से बालकों की पाचन-शक्ति सुधर गयी। टट्टी, पेशाब, भूख, निद्रा आदि सब व्यवहार ठीक रहे। फिर, वही दवा भेजिए, ऐसी माँग आ गयी। बालकों का अस्थि-मांस पोषण अच्छा हुआ। सिर पर काले बाल भी बढ़े। विशेष बात यह देखने में आयी कि दन्तोद्भव व्याधि कुछ भी नहीं हुई। दाँत आसानी से निकले। बालकों में सर्वांगीण प्रगति देखने में आई।

## आरोग्यशाला के अनुभव

इस विशिष्ट अनुभव के बाद, 'आयुर्वेद सेवा संघ, नासिक' इस संस्था के आयुर्वेदीय आरोग्यशाला में और प्रसूति विभाग में, इस परमौषध मिश्रण का उपयोग किया गया। 'परमौषध' यह बृंहण-कल्प है और जब-जब सौम्य बृंहण-कल्प की आवश्यकता होती है, तब-तब इस मिश्रण का प्रयोग किया जाता है। नवजात बालक को दस दिन तक 'परमौषध' प्रथम दिन से दिया जाता है और सूतिका माँ भी इसको स्नेहन के लिए सेवन करती है। ओज स्थिर करने के लिए गर्भिणी को यह दिया जाता है। गर्भ-गर्भिणी की समवृद्धि हो (विषमवृद्धि न हो) इस हेतु भी परमौषध का उपयोग होता है।

## जीर्णज्वरावस्था में बल्य

संतत ज्वर (त्रिसप्ताह ज्वर Typhoid) कम होने के बाद जो दुर्बलावस्था (Convulsant stage) प्राप्त होती है उस अवस्था में रोगी को परमौषध देने से अवश्य लाभ होता है। बालक की माता यदि रोगी या दुर्बल होती है तो बालकों को शक्तिवर्धक आहार के रूप में परमौषध देने से बालक तन्दुरुस्त होते हैं। आयुर्वेद में तैल, घृत और मधु के निम्नलिखित गुण-कर्म दिये हैं, और उन गुण-कर्मों की अनुभूति के लिए 'परमौषव'म्' दिया गया है।

## तैल के सामान्य गुण-कर्म

प्रवृद्धश्लेष्ममेदस्काश्चल स्थूल गलोदरा:।
वातव्याधिभिराविष्टा: वातप्रकृतयश्च ये॥
बलं तनुत्वं लघुतां दृढ़तां स्थिरगात्रताम्।
स्निग्धश्लक्ष्णतनुत्वक्तां ये च कांक्षंति देहिन:॥
कृमिकोष्ठा: क्रूरकोष्ठास्तथा नाड़ीभिर्दिता:।
पिबेयु: शीतले काले तैलं तैलोचिताश्च ये॥

——चरक-संहिता सूत्रस्थान स्नेहनविधि

× × ×

सर्वेषां तैल जातानां तिल तैलं विशिष्यते।
बलार्थे स्नेहने चाग्र्यं ऐरंडं तु विरेचने॥

× × ×

## घृत के सामान्य गुण-कर्म

वातपित्त प्रकृतय: वातपित्त विकारिण:।
चक्षु:कामा: क्षता: क्षीणा: वृद्धा बालास्तथाऽबला:॥
आयु: प्रकर्ष कामाश्च बलवर्ण स्वरार्थिन:।
पुष्टिकामा: प्रजाकामा: सौकुमार्यार्थिनश्च ये॥
दीप्तौज: स्मृति मेधाग्नि बुद्धींद्रियबलार्थिन:।
पिबेयु: सर्पिरार्ताश्च दाहशस्त्र विषाग्निभि:॥

——चरक सं० सूत्र स्नेहनविधि

× × ×

स्नेहानां उत्तमं शीतं वयस: स्थापनं परम्।
सहस्रवीर्यं विधिभिर्घंतं कर्मसहस्रकृत्॥

——अष्टांग हृदय सू० ५

× × ×

## मधु के सामान्य गुण-कर्म

चक्षुष्यं छेदि तृट्श्लेष्मविष हिध्मास्त्र पित्तनुत्।
मेह कुष्ठ कृमिच्छर्दि श्वास कासातिसारनुत्॥
व्रण शोधन-संधान-रोपणं वातलं मधु।
रूक्षं कषाय-मधुरम्॥

——अष्टांग हृदय सू० ५

× × ×

नाना द्रव्यात्मकत्वाच्च योगवाहि परं मधु।

——चरक सूत्र ५०

## अग्नि सम रखनेवाला कल्प

तैल, घृत और मधु के उपरिनिर्दिष्ट गुण-कर्म पढ़ने से परमौषध-मिश्रण कौन-कौन से दोष-दूष्य-संमूर्च्छना पर कार्यक्षम है, इसकी कल्पना आसानी से हो सकती है। विशेषत: बालक, तरुण, स्त्री-पुरुष और वृद्ध इन सब अवस्थाओं में परमौषध उपयुक्त हो सकता है। अग्नि को सम और

स्थ्य रख कर दीर्घायु प्राप्ति का यह परमौषध एक उत्तम साधन है, ऐसा कहा जाय तो इसमें अतिशयोक्ति नहीं है।

## परमौषध नाम क्यों रखा ?

तैल-घृत और मधु, इनके मिश्रण का नाम 'परमौषध' क्यों रखा, यह भी लिखना अप्रासंगिक नहीं होगा। अष्टांग-हृदय के प्रथमाध्याय में "शरीरजानां दोषाणां क्रमेण परमौषधम्। बस्तिर्विरेको वमनं तथा तैलं घृतं मधु"—यह श्लोक आया है। शरीरस्थ वात, पित्त और कफ इन त्रिदोषों का शोधन-औषध क्रम से वस्ति, विरेक और वमन हैं और शमन औषध है तैल, घृत और मधु। जब ग्रन्थकार ने स्वयं इन द्रव्यों का निर्देश "परमौषधम्" नाम से किया है, तब उसे बदलने का हमें क्या अधिकार है।

## आयुर्वेद का सार-सर्वस्व श्लोक

मेरे लघुमति से तो यह श्लोक आयुर्वेद का सार-सर्वस्व है। इसमें स्वस्थ और आतुर अवस्था के सब उपचार प्रकार में अन्तर्भूत हैं। भरद्वाज ऋषि ने भगवान् इन्द्र से जो ज्ञान प्राप्त किया उसका सम्पूर्ण निचोड़ इस श्लोक में है। आयुर्वेदीय उपचार तैल, घृत और मधु से शुरू हो वमन-विरेचन और बस्ति इन शोधन कर्मों तक समाप्त होता है।

## उपक्रम-उपसंहार-परीक्षण

अष्टांग हृदय में इस 'परमौषध' का विधान अनेक स्थानों में आया है। जिस सिद्धान्त का उच्चारण ग्रन्थ के प्रास्ताविक निरूपण में (प्रथम अध्याय में) होता है, और ग्रन्थ के उपसंहारात्मक विवेचन में (अन्त्य अध्याय में) जब उसी को दोहराया जाता है, तब उस निवेदन को ग्रन्थ का सार समझना चाहिए। अष्टांग हृदय उत्तर स्थान अध्याय चालीस में लिखा है—

> वस्तिर्वात विकारात् पैत्तान् रेकः कफोद्भवान् वमनम्।
> क्षौद्रं जयति बलासं सर्पिः पित्तं समीरणं तैलम्॥

यह श्लोक त्रिदोषों के अग्र्य उपचार लिखने के उद्देश्य से दिया है। मधु, घृत और तैल ये कफ, पित्त और वायु के श्रेष्ठ औषध हैं, दोष शमन करने में समर्थ हैं (इत्यग्र्यं यत् सर्व रोगाणां औषधं शमाय अलम्।) विविध रोगों पर विविध दवाइयाँ बताने के बाद सब से आखिर जो बात कही है सो यही है। कहने का मतलब यह है कि ये तीन दवाइयाँ सब से श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे दोषशामक हैं और स्वस्थहित हैं।

## आयुर्वेद वाङ्मय पयोधि का अमृत

अष्टांग हृदय ग्रन्थ में १२० अध्याय हैं और कुल श्लोक है ७३८५। उनमें से ७३८१ श्लोक लिखने के बाद ग्रन्थकार को आयुर्वेद का सार कहने की फिर से स्फूर्ति हुई और वे लिखते हैं—

> वाते पित्ते श्लेष्मशांतौ च पथ्यं
> तैलंसर्पिर्माक्षिकं च क्रमेण।
> एतत् ब्रह्मा भाषते ब्रह्मजो वा
> का निर्मंत्रे वक्तृ भेदोक्ति शक्तिः॥

आयुर्वेद में कहीं पर भी गूढ़ता रखना ग्रन्थकार चाहता नहीं। सब स्पष्ट लिख देता है। यह निर्मंत्र है। अनुभवसिद्ध बात है। यह किसने कही यह सोचने की आवश्यकता भी नहीं है। इसके बाद केवल तीन सामान्य श्लोक लिख कर ग्रन्थ समाप्त किया है। सर्वायुर्वेद वाङ्मयपयोधि से जो अमृत निकला वह है 'परमौषध'।

## औषधि द्रव्यों का त्रिविध प्रकार

अष्टांग हृदयकार ने तैल, घृत और मधु को 'परमौषध' नाम विशेष उद्देश्य से दिया है। द्रव्य तीन प्रकार के होते हैं। "किंचित् दोष प्रशमनं किंचित् धातु प्रदूषणम्। स्वस्थवृत्तौ मतं किंचित्। त्रिविधं द्रव्यमुच्यते।" इन तीनों में जो दोषों के स्वास्थ्यानुवृत्ति के लिए काम में आता है वह परमोपयुक्त द्रव्य है। दोष शमन औषधियाँ जैसे मरिच, हरीतकी आदि और धातु प्रदूषण द्रव्य जैसे वत्सनाभ आदि केवल विशिष्ट अवस्था में ही उपयोग में आ सकते हैं। उनका सार्वकालिक उपयोग नहीं हो सकता। तैल, घृत और मधु इनका उपयोग स्वस्थ और आतुर की सभी अवस्थाओं में किया जा सकता है।

## हस्त—प्रधान यंत्र

भगवान् सुश्रुत ने कहा है—"यंत्रशतम् एकोत्तरम्। अत्र हस्तम् एव प्रधानतमं यंत्राणाम् अवगच्छ। तदधीनत्वात् यंत्र कर्मणाम्॥" यंत्र १०१ हों या १००१ हों वे सब हस्त नामक प्रधान यंत्र के अधीन हैं। अतः हस्त ही प्रधान यंत्र है। वैसे ही दोषों की दवाइयाँ जितनी भी सैकड़ों, सहस्रों हों। फिर भी उन सब में तैल, घृत और मधु ये ही

प्रधान औषध हैं। ऐसा समझ कर आयुर्वेदीय व्यवहार होना चाहिए।

आजकल बिजली से भी यंत्र चलाये जाते हैं फिर भी वह बिजली चालू करने और बन्द करने के लिए और काबू में रखने के लिए हस्त--इस प्रधान यंत्र का ही उपयोग करना पड़ता है।

## चरण--बायसिकिल--मोटर सायकिल की उपमा

दूसरा एक उदाहरण देता हूँ। पादौ गमन कर्मणि। एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए पैरों का उपयोग होता है और पैर यह गमनकर्म का परम साधन है। जब पैर की शक्ति से अधिक मार्ग क्रमण करना हो तब बायसिकिल का साहाय्य लिया जाता है। पैर ही बायसिकिल चला कर हमें दूर ले जाता है। जब सायकिल की मर्यादा से अधिक मार्ग अल्प काल में जाना होता है तब एक मोटर उस बायेसिकिल को मदद देती है। इस मोटर को चालू करने या रोकने के लिए पैरों की मदद आवश्यक होती है।

इसी प्रकार दवा में तैल, घृत और मधु ये दोषों के प्रधान औषध हैं और सहचर, शतावरी और मरिच ये उनकी सहायक शामक औषधियाँ हैं। वत्सनाभ, धत्तूर और जयपाल ये विष (धातु प्रकोपक) मोटर या बिजली के स्थान पर हैं। विष और सहायक दवाइयों का उपयोग मर्यादित है। प्रधान औषधियों का उपयोग सर्वावस्था में आवश्यक होता है।

## परमौषध का व्यापक कार्य क्षेत्र

आदमी के पास बायसिकिल या मोटर न हो, अन्य यंत्र भी न हो तो काम चल सकता है, लेकिन हाथ-पैर /ही न हो तो सब कर्म की गति रुक जाती है। वैसे ही चिकित्सक वैद्य तैल, घृत और मधु इनको छोड़ कर यदि दोषों की स्वस्थ और आतुरावस्था में शमन या शोधन चिकित्सा करने का प्रयत्न करेगा तो वह पूर्णतया यशोभाक् होगा नहीं, ऐसा अष्टांगहृदयकार कहते हैं। जब दोष प्रभूत वृद्ध होते हैं तब तीव्रतर, तीव्रतम दवाइयों का प्रयोग कर सकते हैं, लेकिन वय, अहोरात्र, भुक्त, ऋतुकाल इत्यादि के विविधावस्था में जो दोषों की अल्पवृद्धि प्रतिक्षण होती रहती है उसके शमन के लिए तैल, घृत और मधु ये प्रधान औषध हैं। बस्ति, विरेक और वमन प्रयोगों में भी और उनके पहले स्नेहन के लिए परमौषध अत्यन्त उपयुक्त है। परमौषध का कार्य क्षेत्र व्यापक है। बस्ति, विरेक और वमन का कार्य क्षेत्र अत्यन्त मर्यादित है।

## त्रिफला, त्रिकटु, त्रिमधुर (परमौषध)

आयुवद-शास्त्र में रोग की व्याख्या "रोगस्तु दोषवैषम्यम्" ऐसी की है। त्रिदोषों का वैषम्य यही रोग का प्रारम्भ है और यह वैषम्य मिटाना हो, तो त्रिदोषों का साम्य प्रस्थापित करना होगा। उसके लिए त्रिदोष-शामक तीन द्रव्यों का आवश्यकतानुसार कम-ज्यादा प्रमाण में प्रयोग करना ही सही तरीका हो सकता है। इसी उद्देश्य से त्रिफला में हरीतकी, विभीतक और आमलकी ये तीन कफ, पित्त, वात दोष-शामक तीन कषाय द्रव्य इकट्ठे किए हैं। त्रिकटु में मरिच, शुंठी और पिप्पली ये तीन कफ, पित्त, वात दोष-नाशक तीन कटु द्रव्य एकत्रित किये हैं। वैसे ही परमौषध, मीठा तैल, घृत और मधु ये तीन त्रिदोष शामक मधुर द्रव्य एकत्रित करके बनाया गया है और अन्य-अन्य रसायन, वाजीकरण और व्याधि-हरण कल्पों में उनका उपयोग किया गया है।

## परमौषधम् के गुण-वर्धक सहकारी

सुश्रुतादि ग्रन्थकार चार दोष मानते हैं तब परमौषध भी चार मधुर द्रव्यों का बन जाता है। तैल, घृत, मधु और शर्करा ऐसे मिश्रण के भी प्रयोग ग्रन्थों में मिलते हैं। जब वात प्रधान होता है, तब मधु और शर्करा के स्थान पर पुराने गुड़ का प्रयोग किया जाता है। मांस रस, दूध, पुराना गुड़, वंशलोचन, शीतोदक आदि बहुत से स्वस्थोपयोगी द्रव्य हैं जो परमौषधों के गुणों का संवर्धन करते हैं। --"शीतोदकं पयः क्षौद्रं घृतं एकैकशो द्विशः। त्रिशः समस्तमथवा प्राक्पीतं स्थापयेत् वयः।" अष्टांगहृदय उत्तर स्थान ३९--१४६। इस रीति से परमौषध के बहुत से सहकारी हो सकते हैं। ग्रन्थ में देखने से उनका पता चलता है। अपनी कल्पना से भी गुण-कर्मों का विचार करके अन्य-अन्य द्रव्यों की योजना की जा सकती है। बालकों के कृमिविकार, गल मांस-वृद्धि, यकृत् व्याधि, मांसस्नायुगत ज्वर, अस्थिमांस-क्षय, आदि रोगों का प्रतिबन्ध करने के उद्देश्य से भी अन्य-अन्य सहकारी द्रव्यों को जोड़ सकते हैं।

## सामान्य तैल, सामान्य घृत, सामान्य मधु

'परमौषध' मिश्रण के लिए कौन-सा तैल, कौन-सा घृत और कौन-सा मधु लेना चाहिए, ऐसा प्रश्न पूछा जा सकता है। जो मिल सके वह ले सकते हैं यह सामान्य उत्तर है। यदि विशिष्ट तैल, विशिष्ट घृत और विशिष्ट जाति का मधु मिल सकता हो और अवस्था विशेषानुसार वह युक्त प्रतीत होता हो, तो वैसा प्रयोग करना विशेष लाभदायक सिद्ध होगा, यह कहने की आवश्यकता नहीं। आजकल हम लोगों ने तिल तैल, भैंस का घृत और महाबलेश्वर में बम्बई ग्रामोद्योग संघ से मिलनेवाला पेटी का (Apiary) मधु, इनका उपयोग किया है। तिल तैल बद्धविट्क और अचक्षुष्य कहा है। और चरक ग्रन्थ में "एरंड तैलं वातहराणां श्रेष्ठम्" ऐसा बतलाया है, तो परमौषध में एरंड तैल का भी प्रयोग किया जा सकता है। तिल तैल 'संस्कारात् सर्वदोषजित्' है। संस्कारयुक्त तिल तैल लेना ठीक है। तिल तैल मिलता नहीं इसलिए चिकित्सा-कर्म रुक जाने का भय हो तो मीठा तैल जो मिले उसको ले कर काम चलाना चाहिए।

## 'परमौषध' सेवन के तरीके

'परमौषध' कब लेना चाहिए इसके बारे में भी विचार हुआ है। स्वयं ग्रन्थकार भी स्थान-स्थान पर, स्पष्ट लिखते आये हैं। "तैलं सर्पिर्माक्षिकं च क्रमेण"—यह क्रम बतलाया है। प्रथम तैल अनन्तर घृत और बाद में मधु इस क्रम से दिया लिया जा सकता है। प्रथम तैल लेने से वायु के स्थान पर, बीच में घृत लेने से पित्त दोष पर और पीछे मधु कफ दोष और उरस्, कंठ आदि कफ स्थान पर कार्यकर हो सकता है—"घृतं तु पित्तेऽभ्यधिके लिह्यात्"।

दूसरा क्रम यह बतलाया है। त्रिफला प्रयोग में सुबह हरीतकी, दोपहरको बिभीतक और शाम को आमलकी खाने का विधान है। वैसे ही सुबह कफ काल में मधु, दोपहर में घृत और शाम को तैल इस क्रम से भी प्रयोग कर सकते हैं। जिन्हें तैल, घृत और मधु इकट्ठा सेवन करने में आपत्ति हो, वे क्रमेण "परमौषधम्" अवश्य सेवन करें। लेकिन ये परमौषध हैं इस बात को न भूलें। (बाल वय में मधु, तरुण वय में रात्रौ घृत और वृद्ध काल में तैल बिना भूले सेवन करवाना चाहिए। कफ प्रधान बालकों को शर्करा या गुड़ की मात्रा देना ठीक नहीं।)

## 'परमौषधम्' की मात्रा

परमौषध की मात्रा क्या होगी, ऐसा पूछा जाता है। यह सौम्य स्नेहन बृंहण प्रयोग है यह ख्याल रख कर इसका उपयोग करना चाहिए। ४ घंटे में पचन हो इतने प्रमाण में सुबह दे कर उसके पाचन के बाद भोजन करना ठीक होगा। स्नेह जैसे विचारणा से दिया जाता है वैसे ही परमौषध दे सकते हैं। छोटी उम्र के बालक को तो बूंद के हिसाब से ही देना होता है। 'मात्राया न व्यवस्थाऽस्ति' यह नियम यहाँ भी स्मरण करना चाहिए।

## उत्साहवर्धक अनुभव

इस 'परमौषध' मिश्रण में रुग्ण के या स्वस्थ के प्रकृति-दोषों के अनुसार मधु, घृत और तैल का प्रमाण कम-ज्यादा किया जाता है। इस परमौषधम् का उपयोग गत दो वर्षों में बहुत से स्त्री-पुरुष चिकित्सकों ने अपने चिकित्सा-व्यवहार में किया है और उनके अनुभव उत्साहवर्धक है। अमरावती के वैद्य श्री त्र्यंबक रावजी गोगटे (आयुर्वेदतीर्थ) और उनकी सहधर्मचारिणी डॉ० सौ० ईशदयाबाई गोगटे ने परमौषधम् का काफी उपयोग अपने चिकित्सा-व्यवसाय में किया है। उनका एक निजी सूतिका-गृह भी है। वे लिखते हैं—"परमौषध कल्प का उपयोग हम लोगों ने चिकित्सा व्यवहार में प्रचुर प्रमाण में किया है। बच्चों को स्वास्थ्य संरक्षण के लिए और सर्वसाधारण स्नेहन-बृंहण द्रव्य के तौर पर उपयोग किया है।"

## बढ़िया (टॉनिक) स्नेह

"परमौषधम्" यदि चौड़े मुँह की खूबसूरत शीशी में रखा जाय और उसमें व्हॅनिल जैसा सौम्य सुगन्ध मिलाया जाय तो वह एक बढ़िया स्नेहन (टॉनिक) का स्थान अवश्य लेगा। वमन विरेचनादि पंचकर्मों में पूर्व स्नेहन के लिए प्रथम दिन ५ तोला, दूसरे दिन ७॥ तोला, और तीसरे दिन फिर ७॥ तोला परमौषध पिला कर बाद में वमन के प्रयोग हमारे चिकित्सालय में किये गये हैं। कुक्कर खाँसी (हुपिंग कफ), बच्चों की श्वास व्याधि (बाल दमा) इन व्याधियों में स्नेहन के लिए, वमनपूर्व स्नेहन के लिए और बाद में बृंहण कार्य करके दोषसाम्य प्राप्ति के लिए परमौषध उपयोग में लाया गया है।"

## अग्नि-नियामक कल्प

वैद्य श्री ग० ब० कामतजी आयुर्विद्याविशारद और श्रीमती वैद्य सौ० कमला बाई कामत आयुर्विद्याविशारद ने अपने अनुभव लिख कर भेजे हैं। वे बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। वैद्य श्री कामतजी कहते हैं—"कुछ बातें दिखने में सामान्य दिख पड़ती हैं लेकिन उसमें बहुत सार भाग होता है। 'परमौषध' यह मिश्रण ऐसा ही है। घर में, गाँव में सहज उपलब्ध तैल, घृत और मधु के मिश्रण से यह 'परमौषध' बनता है। वात, पित्त और कफ इन त्रिदोषों की वैषम्यावस्था में औषध, अन्न और अनुपान इन तीनों प्रकारों से इसका उपयोग हो सकता है। "न शोधयति यद् दोषान् समान् नोदीरयत्यपि। समीकरोति विषमान्।" यह शमन औषध की व्याख्या है। परमौषध ऐसा ही शमन औषध है। इसके प्रयोग से अग्नि कम होता है। अग्निदुष्टि की भिन्न-भिन्न अवस्था में तैल, घृत और मधु के प्रमाण में बदल करके परमौषधम् का उपयोग कर सकते हैं। पेट में शुक्तपाक होने से बार-बार भूख लगती हो तो उस पर परमौषध काम करता है, वैसे-ही अग्नि मन्द हुआ हो, तो उसमें भी परमौषध से लाभ हो सकता है। परमौषध उत्तम अग्नि नियामक कल्प है। उसका कार्य अग्नि को स्वस्थ, सम बनाना ही है।

## सूक्ष्माग्नि की दवा

परमौषध अन्न भी है और औषध भी है। आसवारिष्टों का प्रयोग दूध के साथ नहीं कर सकते लेकिन परमौषध सब वस्तुओं के साथ दिया जा सकता है। इसका Contra-indication नहीं है। आदमी की भूख अच्छी हो और वह पूरा आहार भी लेता हो किन्तु शरीर-पोषण अच्छी तरह नहीं होता हो ऐसे रुग्ण भी देखने में आते हैं। उनकी स्थूलाग्नि (कोष्ठाग्नि) अच्छी होती है लेकिन धात्वाग्नि, पाँचभौतिकाग्नि (सूक्ष्माग्नि) विकृत होती है। इस सूक्ष्माग्नि के कार्य को स्वस्थ करने की शक्ति परमौषध में है। नीरोगी बालक को परमौषध देने से उसके देह, मन, बुद्धि इनके व्यवहार में प्रगति होती है ऐसा अनुभव हुआ है। मृदस्थि (रिकेट्स्), वार्धक्य, मृद्भक्षणजन्य पाण्डु, अस्थि, क्षय ऐसी व्याधियों में परमौषध लाभकारी होता है। तैल, घृत और मधु ये सूक्ष्म स्रोतोगामी द्रव्य हैं। इनके साथ दिये गये अन्य औषध भी विशेष कार्यकारी होते हैं।

## 'परमौषध' से तौल बढ़ता है

वैद्य सौ० कमला बाई कामत ने कुछ विशेष अनुभव निवेदन किये हैं। वे लिखती हैं—"प्रसूतिशाला में एक जुडवां (Twin) बच्चे पैदा हुए। एक बालक ३ पौंड का और दूसरा उससे ४ औंस कम तौल का। वे बालक माँ का दूध भी स्वयं पी नहीं सकते थे। ऊपर से दिया हुआ दूध भी पचन होगा या नहीं, ऐसा संशय हुआ था। इनको आयुर्वेदीय बृंहण क्या देना चाहिए ऐसा प्रश्न था। उसी समय परमौषध का ध्यान आया। देश, काल और मान का विचार करके प्रमाण में बदल किया और दिन में दो बार परमौषध देना शुरू किया। इससे बहुत अनुकूल परिणाम दीख पड़ा और वे दोनों बालक अच्छे तन्दुरुस्त हो कर प्रसूतिशाला से घर गये। उस घटना के बाद मैं हरएक नवजात बालक को परमौषध देती हूँ और फल भी अच्छा मिलता है।

## बालकों का बलमांसबर्धन

दूसरा उदाहरण—दो प्रसूति आठ महीने पूर्ण होने के बाद तुरन्त हुई। नौ महीने पूरे नहीं हुए थे। इस कारण बालक बलमांसक्षीण पैदा हुए। दोनों का तौल समान ही था। उसमें से एक बालक को परमौषध देना शुरू किया। दूसरे को दिया नहीं। दसवें दिन जब दोनों का तौल लिया तब परमौषध लेनेवाले बालक का तौल २ औंस (५ तोला) अधिक मिला था। परमौषध से अग्नि दीपन-पाचन अच्छा होता है। अस्थिधातुक्षीण गर्भिणी को भी परमौषध से लाभ होता है।

## अस्थिक्षय पर उपयोग

एक गर्भिणी की परिस्थिति बहुत ही कष्टमय थी। उठते, बैठते, चलते समय उसके नयन में अश्रु भर जाते थे और काफी दर्द भी होता था। अस्थि धातु क्षीण था और अन्य रस-रक्तादि धातु भी क्षीण थे। कुल अवस्था अपतर्पणोत्थ थी। रुग्णा को प्रसूतिशाला में प्रविष्ट किया और दिन में तीन बार १-१ चम्मच परमौषधम् देना प्रारम्भ किया। अन्य भी दवा देते थे। चार ही दिन में रुग्णा की क्षुधा दीप्त होने लगी और मुँह पर तेजी आई। क्रम से परमौषध का प्रमाण भी २-३ चम्मच ऐसे बढ़ाया। प्रकृति में इतना सुधार हो गया कि रुग्णा

पैदल चल कर घर गई और आगे प्रसव भी बिना कष्ट के हुआ। यह रोग अस्थिक्षय (ऑस्टिओ मायलेशिया) का था। आहार में खट (कैल्शियम) का प्रमाण कम रहता और उसका संशोषण (ग्रहण) न होना ये दो कारण उसके बतलाते हैं। परमौषध से पोषण भी मिला और संशोषण कर्म में भी सुधार हो गया, सप्तधातु बलवान् हो गये।

## त्रिदोषों के प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए सहायक साधन

परमौषध की उपलब्धि होने से और भी एक बहुत बड़ा लाभ मिला है। वात, पित्त और कफ इन त्रिदोषों का प्रात्यक्षिक ज्ञान मिलना सुगम हुआ है। वात का स्वरूप समझने में तैल साहाय्य रूप हो सकता है। पित्त-ज्ञान के लिए घृत और कफ विज्ञान के लिए मधु उपयुक्त होगा। तैल तो बाह्य सृष्टि में विपुल प्रमाण में उपलब्ध होनेवाला प्रत्यक्ष द्रव्य है। इसके ज्यादा उपयोग से वातक्षय और कम उपयोग से वातवृद्धि होती है, यह सिद्धान्त है। अब यह प्रयोग करके कोई भी वैज्ञानिक लक्षण सारणी तैयार कर सकेगा। होमिओपैथी में द्रव्य प्रयोग से अनुभव की खोज की जाती है। वैसे ही मधु खिलाने से कफ दोष क्षय के लक्षण मिलते हैं और घृत पिलाने से पित्त दोष का क्षय होता है।

इस लेख में आयुर्वेद-शास्त्रानुसार स्वस्थ और आतुर चिकित्सा का प्रारम्भ कहाँ होता है वह बतलाया गया है। गंगा, सिन्धु, गोदावरी आदि जल महास्रोत आगे बड़े हो जाते हैं, लेकिन उनका उद्‌गम स्थान भूलना नहीं चाहिए। भगवद्‌गीता में भगवान कृष्णचन्द्रजी ने अर्जुन को उपदेश करते समय प्रथम वाक्य में क्या कहा ऐसा अभ्यासक सोचते हैं। वैसे चरक संहिता में जांगम, औद्भिद और पार्थिव द्रव्यों में सर्वप्रथम किसका निर्देश किया यह भी देखना उचित होगा। खनिज की अपेक्षा औद्भिद् और औद्भिद् की अपेक्षा जांगम औषधियों को प्राधान्य दिया है यह क्रम से ज्ञात होता है। तत्पुनः त्रिविध प्रोक्तं जांगमौद्भिदपार्थिवम्। और जांगम द्रव्यों में भी प्रथम नाम ('मधूनि') मधु का लिया है। इजिप्त में जो पिरॉमिड है उसमें सहस्रों वर्षों का मधु रखा है और वह आज भी उतना ही अच्छा है। जो वस्तु स्वयं सुरक्षित रह सकती है, वह उपयोग से दूसरे की भी अच्छी रक्षा कर सकती है।

## गोरस में 'घृत' प्रधान

दूसरा उल्लेख (गोरसाः) गोरस का है। गोरस में घृत प्रधान है। आयुर्वेदीय विचार-पद्धत्यानुसार मधु, घृत और तैल ये आरोग्य के प्रधान द्रव्य हैं। हरीतकी, शतावरी, पिप्पली आदि उनकी सहायता कर सकते हैं। किन्तु वे गौण द्रव्य हैं। व्यवहार में लोग समझते हैं कि हरीतकी आदि द्रव्य प्रधान औषधि है और मधु, घृत, तैल ये अनुपान हैं। यह गलत ख्याल है। मधु, घृत, तैल ये रुग्णावस्था में तथा स्वस्थावस्था में भी उपयुक्त हैं। यह किसी भी व्यक्ति को भूलना नहीं चाहिए।

---

[ ७१८ पृष्ठ का शेषांश ]

## सूतिका का स्वास्थ्य

**प्रसव को वेदनारहित बनाने के लिए** शास्त्रकारों ने जो उपचार कहे हैं उनमें दो-तीन विशेष स्मरणीय और आयुर्वेदिक सूतिकागारों में नियमित अमल में लाने योग्य हैं। **आठवें मास में** वातहर द्रव्यों के क्वाथ से गर्भिणी को समय-समय पर बस्ति (एनीमा) देना चाहिए। इससे गर्भ के दबाव के कारण उसकी आँतों में संचित मल की शुद्धि होती है और वायु का अनुलोमन—मलद्वार की दिशा में गति—होती है। **नवम मास में** वातहर औषधों से साधित तैल—यथा **बला तैल** अथवा **नारायण-तैल** की बस्ति देनी चाहिए। साथ ही इन तैलों में भिगोया पिचु (फाया) योनिमार्ग में रखते रहना चाहिए। इन उपचारों से वायु का कोप शान्त होता है, प्रसव का मार्ग स्निग्ध होता है, जो अवयव प्रसव की क्रिया में भाग लेते हैं वे सब मृदु और स्थितिस्थापक होते हैं। परिणामतया, प्रसव तालबद्ध, निरुपद्रव और क्लेशरहित होता है। बालक के मस्तिष्क पर दबाव न आने से उसके मस्तिष्क, ज्ञानेन्द्रियों और मन का विकास समीचीन होता है।

(सविशेष)

# आतुर-परीक्षानुष्ठान

आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी, बी० ए०, आयुर्वेदशास्त्राचार्य

## वात संस्थानीय परीक्षण

अभ्यासात् प्राप्यते दृष्टि: कर्म सिद्धि प्रकाशिनी।
रत्नादि सदसज्ज्ञानं न शास्त्रादेव जायते।।
—अ० हृ० सू० ११–५५

× × ×

वातपित्तश्लेष्माण एव देह सम्भव हेतवः।
—सु० सू० ११–३।

शरीर की निर्माण व पोषण सम्बन्धी सभी क्रियाओं में त्रिदोष ही आधारभूत हैं। अतः इनके आधार पर समग्र शरीर का विभाजन तीन प्रधान हिस्सों में होता है। यथा—

(१) **वात संस्थान**—इसके द्वारा सर्वशरीरगत क्रिया व ज्ञान-व्यापार का नियंत्रण[1] तथा प्राण-रक्षण होता है।

(२) **पित्त संस्थान**—पाचन क्रिया द्वारा शरीर के के भीतर पोषक द्रव्यों का पाचन करना और विभिन्न प्रकार के अग्निकर्मों[2] द्वारा शरीर की उष्मा का नियंत्रण रखना इस संस्थान का प्रधान कार्य है।

(३) **श्लेष्म संस्थान**—इस संस्थान द्वारा शरीरगत जितनी भी पोषण सामग्री प्राप्य है—उनको प्रदान करना और शारीरिक पोषक द्रव धातुओं[3] का नियंत्रण करके "उदक कर्म" द्वारा शरीर का पोषण करने का कार्य संपादन होता है।

इस प्रकार वात-पित्त-श्लेष्मा सम्पूर्ण शरीर की विभिन्न क्रियाओं को धारण करके शरीर की रक्षा करते हैं। संक्षेप में इनके कार्य निम्न हैं—

**वात संस्थानीय नियमित कर्म** (Organisation of normal actions)

सुश्रुत—१. प्रस्पन्दन सम्बन्धी सर्वक्रिया Hormonic and Rhythemic movements
२. उद्वहन सम्बन्धी सर्वक्रिया (Conduction)
३. पूरण सम्बन्धी सर्वक्रिया (Supplementation)

सुश्रुत[1]—४. धारण सम्बन्धी सर्वक्रिया (Sustenance or maintainance)
५. विवेक सम्बन्धी सर्वक्रिया (Elimination)

चरक[2]—१. उत्साह Animation and Efforts
२. उच्छ्वास निःश्वास (Inspiration and Expiration)
३. चेष्टा (Physical movements)
४. समाधातु गतिः
५. गतिमतां समोमोक्षः (Functional equilibrium and reciprocal movements)

चरक और सुश्रुत में वायु के प्रधान कार्य बतलाए गए हैं—

**पित्त संस्थान के अग्निकर्म**[3] (Thermogenetic actions—Normal)

१. दर्शनम् (Vision and Sight)
२. पक्तिः (Digestions)
३. उष्मा का मात्रा 'मात्रत्व (Thermogenic actions—Heat)

---

[1] सर्वा हि चेष्टा वातेन स प्राणः प्राणिनां स्मृतः।

[2] रागपक्त्योजस्तेजो मेधोष्मकृत् पित्तं पञ्चधा प्रविभक्तमग्नि कर्मणाऽनुग्रहं करोति। —सु० सू० १५–४।

[3] सन्धिश्लेषण-स्नेहन-रोपण-पूरणबलस्थैर्यकृच्छ्लेष्मा पञ्चधा प्रविभक्तः उदक कर्मणाऽनुग्रहं करोति।
—सु० सू० १५–४।

[1] प्रस्पन्दनोद्वहन-पूरण-धारण-विवेक लक्षणो वायुः पञ्चधा प्रविभक्तः शरीरं धारयति। सु० सू० १५–४ (१)

[2] उत्साहोच्छ्वास निःश्वास चेष्टा धातु गतिः समाः।
समो मोक्षो गतिमतां वायोः कर्माऽविकारजम्।।
—च० सू० १८–४९

[3] (i) दर्शनं पक्तिरूष्मा च क्षुत्तृष्णादेहमार्दवम्।
प्रभा प्रसादो मेधा च पित्त कर्माऽविकारजम्।
—च० सू० १८–५०

(ii) राग पक्त्योजस्तेजो मेधोष्मकृत्पित्तं पञ्चधा प्रविभक्तमग्नि कर्मणाऽनुग्रहं करोति। —सु० सू० १५–४(२)

४. प्रकृति-विकृति वर्ण प्रभा (Normal lusture of the body)
५. शौर्य-प्रसाद-मेधा (Intelligence cheerfulness etc.)

श्लेष्म संस्थान के उदक कर्म[1] Normal functions of श्लेष्मा)

१. स्नेह-स्नेहन (Viscility)
२. बन्ध-सन्धि संश्लेषण (Binding up of the Joints)
३. स्थिरत्व-स्थैर्यकृत् (Solidarity of the body)
४. गौरव, क्षमा, धृति (Fortitude, forbearance and Abstinence)
५. वृषता, बलम् (Strengthening of the body and sexual vigour)

इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के शारीरिक कार्यों को करके वात-पित्त व श्लेष्मा शरीर का धारण व पोषण करते हैं।

प्रधानतया ऊपर वर्णित क्रियाएं ही नाना रूपों में शरीर में प्रतिफलित होती हैं और उनके न होने या विकृत होने से नाना प्रकार के व्याधिमूलक लक्षण उत्पन्न होते हैं। अतः वातसंस्थानीय परीक्षण करने के पूर्व अविकारज और विकारज नाना विध कर्म व व्याधि लक्षणों को यहाँ पर भिन्न-भिन्न स्थानों से संकलित करके उपस्थित किया जाता है, जिससे विषय को बुद्धिगत करने में वाचकों को कठिनाई का अनुभव न करना पड़े। इसके बाद में इन दोषों का वर्गीकरण करके सभी लक्षणों का थोड़े ही लक्षणों में अन्तर्भावित करके परीक्षा की विधि का विवरण दिया गया है।

## वातः (प्राकृतः) वर्गः

स्वयम्भुरेष भगवान् वायुरित्यभिशब्दतः।
स्वातंत्र्यान्नित्यभावाच्च सर्वगत्वात् तथैव च॥
सर्वेषामेव सर्वात्मा सर्वलोक नमस्कृतः।
स्थित्युत्पत्तिविनाशेषु भूतानामेष कारणम्॥
अव्यक्तो व्यक्तकर्मा च रूक्षः शीतो लघुः खरः।
तिर्यग्गो द्विगुणश्चैव रजो बहुल एव च॥
अचिन्त्यवीर्यो दोषाणां नेता रोगसमूहराट्।
आशुकारी मुहुश्चारी पक्वाधानगुदालयः॥
—सुश्रुत नि० अ० १।५-८

विभुत्वादाशुकारित्वाद् बलित्वादन्यकोपनात्।
स्वातंत्र्याद् बहुरोगात्वात् दोषाणां प्रबलोऽनिलः॥
—वा० शा० अ० ३।८६

वाततंत्र्याश्रयो ह्येष यंत्राणि विविधानि च।
सर्वाङ्ग प्रश्रितान्येतद् बहुकर्मेति कथ्यते॥
बहुत्वेऽप्यस्य कर्माणि नानातंत्रोदितानि च।
संहृत्य वातवर्गेऽस्मिन् प्रोच्यते हितकाम्यया॥

| गुणा | आत्मरूपाणि च | आत्मकर्माणि |
|---|---|---|
| १. रूक्षः (च० सू० १) | रौक्ष्यम् (च० सू० २०) | १. उत्साहः (च० सू० १८) |
| २. शीतः ( „ ), | शैत्यम् ( „ ) | २. उच्छ्वासः ( „ ) |
| ३. लघुः ( „ ), | लाघवम् ( „ ) | ३. निःश्वासः ( „ ) |
| ४. सूक्ष्मः ( „ ), | | ४. चेष्टा (कायवाङ्मनोव्यापारः) (च० सू० १८) |
| ५. चलः ( „ ), | गतिमान् ( „ ) | ५. धातूनां (रसादीनां) समागतिः ( „ ) |
| ६. विशदः ( „ ),, | वैशद्यम् ( „ ) | ६. गतिमतां (बहिर्निःसरतां मलादीनां समोमोक्षः) (सम्यक् प्रवर्त्तनम्) ( „ ) |
| ७. खरः ( „ ), | | ७. (शरीर) तंत्र यंत्र धारणम् (च० सू० १२) |

---

१-(i) स्नेहोबंधः स्थिरत्वं च गौरवं वृषता बलम्। क्षमा धृतिरलोभश्च कफकर्माऽविकारजम्॥
—च० सू० १८-५१

(ii) संधि संश्लेषण स्नेहन पूरण रोपण बलस्थैर्यकृच्छ्लेष्मा पञ्चधा प्रविभक्त उदक कर्मणाऽनुग्रहं करोति
—सु० सू० १५-४ (३)

| गुणा | आत्मरूपाणि च | आत्मकर्माणि |
|---|---|---|
| ८. दारुणः (च० सू० १), | | ८. नानाविध चेष्ट प्रवर्त्तनम् (च० सू० १२) |
| ९. अनवस्थितम् (,, २०) | अनवस्थितम् | ९. मनोनियमनम् |
| १०. परुषः (च० वि० ८), | | १०. मनः प्रेरणम् (च० सू० १२) |
| ११. अमूर्त्तः (च० सू० १२), | अमूर्त्तत्वम् (च० सू० १०) | ११. सर्वेन्द्रियोद्योजनम् ( ,, )<br>(सर्वेन्द्रिय प्रेरणम्) |
| १२. बहुः (च० वि० ८) | | १२. सर्वेन्द्रियार्थाभिवहनम् ( ,, ) |
| १३. शीघ्रः ( ,, ) | | १३. सर्वशरीर धातु व्यूहनम् ( ,, ) |
| १४. अव्यक्तः ( ,, ) | | १४. शरीर संधानम् ( ,, ) |
| १५. व्यक्तकर्मा[1] ( ,, ) | | १५. वाक् प्रवर्त्तनम् ( ,, ) |
| १६. तिर्यग्गः ( ,, ) | | १६. हर्षोत्साह जननम् ( ,, ) |
| १७. शब्दवान् ( ,, ) | | १७. अग्निसंधुक्षणम् ( ,, ) |
| १८. स्पर्शवान् ( ,, ) | | १८. दोष संशोधनम्<br>(शरीरक्लेद शोषणम्) ( ,, ) |
| १९. रजोबहुलः ( ,, ) | | १९. मलक्षेपणम् ( ,, ) |
| २०. अचिन्त्यवीर्यः ( ,, ) | | २०. स्थूलाणु स्रोतोभेदनम् ( ,, ) |
| २१. दोषाणामेता ( ,, ) | | २१. गर्भाकृति निर्माणम् ( ,, ) |
| २२. रोगसमूहराट् ( ,, ) | | २२. आयुषोऽनुवर्त्तनाम् ( ,, ) |
| २३. आशुकारी ( ,, ) | | २३. विक्षेपः (सु० सू० २१) |
| २४. मुहुश्चारी (सु० नि० १) | | २४. प्रस्पन्दनम् ( ,, ) |
| २५. असंघात (च० सू० १२) | | २५. उद्वहनम् ( ,, ) |
| २६. योगवाही (च० चि० ३) | | २६. पूरण ( ,, ) |
| २७. अनुष्णाशीतः (वैशेषिके) | | २७. विवेकः ( ,, ) |

## पञ्चविध वातस्थानानि कर्माणि च

| प्राणस्थानानि | प्राणकर्माणि |
|---|---|
| १. मूर्धा (च० चि० २८) | १. मनोनियमनं, सर्वेन्द्रियोद्योजनम्, मनःप्रेरणम् |
| २. उरः ( ,, ) | २. श्वासः ( ) उच्छ्वासः ( ) निःश्वासः (श्वसनं-प्रच्छ्वासौच्छ्वासौ) (च० पच० २८) |
| ३. कण्ठः ( ,, ) | ३. उद्गारः ( ,, ) |
| ४. जिह्वा ( ,, ) | ४. आहरणम् (अन्नप्रवेशनम्) ( ,, ) |
| ५. आस्यम् ( ,, ) | ५. ष्ठीवनम् ( ,, ) |
| ६. नासिका ( ,, ) | ६. क्षवथुः ( ,, ) |
| ७. हृदयम् ( ,, ) | ७. प्रस्पन्दनम्, आयुषोऽनुवर्त्तनम् उत्साहः, पूरणम् |

| उदानस्थानानि | उदानकर्माणि |
|---|---|
| नाभिः (च० चि० २८) | १. उर्जा (च० चि० १८) |
| २. उरः ( ,, ) | २. बलम् ( ,, ) |

---

[1] स्वाः सिराः संचरतां वातस्य प्राकृतं कर्म—(१) क्रियाणां (काय क्रियाणां प्रसारणाकुञ्चनादीनां वाक् क्रियाणां च) अप्रतिघातः, (२) बुद्धि कर्मणां (ज्ञानेन्द्रियाणां मनसो बुद्धेश्च स्व स्व विषये)। —सु० शा० ७

३. कण्ठः (च. चि. २८)
४. वक्त्रम् (सु० नि० १)
५. नासिका (अ० सं० सू० १६)

३. वाक् प्रवृत्तिः (भाषित गीतादिः) (च० चि० २८)
४. प्रयत्नः ( „ ) ( „ )
५. वर्णः ( „ ) ( „ )

**समान स्थानानि**

१. स्वेदवह स्रोतांसि (च० चि० २८)
२. दोषवह स्रोतांसि (च० चि० २८)
३. अम्बुवह स्रोतांसि ( „ )
४. जठराग्नेः पार्श्वम् ( „ )
५. आमाशयः
६. पक्वाशयः (सु० नि० १)
७. मलवह स्रोतः (अ० सू० सू० २०)
८. शुक्रवह स्रोतः (अ० सं० सू० २०)
९. आर्त्तववह स्रोतः ( „ )
१०. नाभिः (अमरः)

**समान कर्माणि**

१. स्रोतोऽवलम्बनम् (अ० सं० सू० २०)
२. अग्निबल प्रदानम् (अग्निसंधुक्षणम्) (च० चि० २८)
३. अन्नपाचनम् } ( „ )
४. अन्नधारणम् } (अ० सं० सू० २०)
५. रसमलादि विवेचनम् (सु० नि० १)
६. किट्टाधोनयनम् (अ० सू० सू० २०)

**व्यान स्थानानि**

१. सर्वदेहः (च० चि० २८)
२. हृदयम् (अ० सं० सू० २०)
३. कटिः
४. पादौ
५. सक्थिः
६. अस्थि
७. मज्जा
८. श्रोत्रम्

**व्यान कर्माणि**

१. गतिः (काय चेष्टा व्यापारः) (धातूनां रसादीनां समागतिः) (च० चि० २८)
२. प्रसारणम् (च० चि० २८)
३. आक्षेपः (विक्षेपः) (च० चि० २८)
४. निमेषः ( „ )
५. उन्मेषः ( „ )
नानाविध चेष्टा प्रवर्त्तनम्

**अपान स्थानानि**

१. वृषणौ (च० चि० २८)
२. वस्तिः (च० चि० २८)
३. मेढ्रम् (स्त्रियाः, योनिः) (च० चि० २८)
४. उरु (च० चि० २८)
५. वंक्षणौ ( „ )
६. गुदम् ( „ )
७. अन्त्राणि ( „ )
८. पक्वाशय (सु० नि० १)
९. श्रोणिः (अ० सं० सू० २०)

**अपान कर्माणि**

१. शुक्रोत्सर्गः (च० चि० २८)
२. मूत्रोत्सर्गः ( „ )
३. आर्त्तवोत्सर्गः ( „ )
४. गर्भोत्सर्गः ( „ )
(गर्भाकृति निर्माणम्)
५. पुरीषोत्सर्गः (च. चि. २८)
६. गतिमतां (बहिर्निःसरतां) मलादीनां समोमोक्षः
७. मलक्षेपणम्

## विकृतवायोः (वात) कर्माणि

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | स्रंसः | (च० सू० २०) | 'किञ्चित स्वस्थानचलनम्' (चक्रः), देहस्रंसः, ओजःस्रंसः (च.सू.१७) |
| २. | भ्रंसः | (च० सू० २०) | 'भ्रंशस्तुदूरगतिः' (चक्रः), ओजोभ्रंश-पित्तावृत्तउदाने (च. चि. २८), मनोभ्रंशः (उदान प्रकोपने), पुंस्त्वभ्रंशः, उत्साहभ्रंशः, बलभ्रंशः (व्यान प्रकोपजे) (अ. सं. नि. १६) |
| ३. | व्यासः | ( ,, ,, ,, ) | 'विस्तरणम्' (चक्रः), त्वचो विस्तारस्त्वगाश्रितेवाते (च. चि. २८) |
| ४. | सङ्ग | ( ,, ,, ,, ) | मलमूत्रादिसङ्गः-कोष्ठाश्रितेवाते, पित्तावृत्ते व्याने-अङ्गचेष्टासङ्गः, कफावृते व्याने गतिसङ्गः । |
| ५. | भेदः | ( ,, ,, ,, ) | त्वचो भदः-त्वक्स्थितेऽनिले (सु० नि० १), सर्वांगकुपितेवाते (अ.सं.नि.१६) |
| ६. | सादः | ( ,, ,, ,, ) | अस्थ्यावृते वाते (च. चि. २८), पित्तावृत उदाने (च. चि. २८), कफावृते प्राणे, समानावृते व्याने (च० चि० २८), वातक्षये (अ. सं. सू. १९) । |
| ७. | हर्षः | ( ,, ,, ,, ) | 'वायोरनवस्थितत्वेन प्रभावाद्वा' (चक्रः), त्वक्स्थिते (सु. नि. १) |
| ८. | तर्षः | ( ,, ,, ,, ) | (तृषाधिकम्-मधुकोषे), स्नायुगतेवाते (अ. सं. सू. १८), पित्तावृते वाते, पित्तावृते समाने । |
| ९. | कम्पः | ( ,, ,, ,, ) | स्नायुगतेवाते (सु. नि. १), सर्वांग कुपिते वाते (च. चि. २८), वातवृद्धौ (अ. सं. सू.) । |
| १०. | अवमर्दः<br>(अंगमर्दः) | ( ,, ,, ,, )<br>(अ० सं०) | वर्त्तः-वर्तुलीकरणम्<br>अङ्गोऽत्यर्थं तोदो मांस स्थिते वाते (च. चि. २८) |
| ११. | चालः | (च० सू० २०) | स्पन्दः (चक्रः), शरीरस्पन्दनम् (सिरागते वाते) (च. चि. २८)। |
| १२. | तोदः | ( ,, ,, ,, ) | त्वचस्तोदस्त्वगाश्रिते वाते (च. चि. २८), अंगतोदो मांसस्थिते (च. चि. २८) |
| १३. | व्यथा | ( ,, ,, ,, ) | सर्वांगकुपिते वाते (अ. सं. नि. १५), अस्थ्यावृते वाते, मेदःस्थिते (च.चि.२८) अङ्गेषुपीड़ा-मांसगतेऽनिले (च.चि.२८), सततारुक्-अस्थिगतेवाते (च.चि.२८) मेदस्थितेऽनिले (च० चि० २८) |
| १४. | चेष्टा | ( ,, ,, ,, ) | (मन्दचेष्टया)--वातक्षये (सु. सू. १५) |
| १५. | खरत्वम् | ( ,, ,, ,, ) | त्वगाश्रिते वाते (च. चि. २८) |
| १६. | परुषत्वम् | | |
| १७. | विशदत्वम् | ( ,, ,, ,, ) | निरामवातस्य (अ. सं. सू. २१) |
| १८. | शुषिरत्वम् | ( ,, ,, ,, ) | अस्थि शौषिर्यम्, मज्जाश्रिते वाते (च. चि. २८) |
| १९. | अरुणवर्णता | ( ,, ,, ,, ) | त्वगाश्रिते वाते (च. चि. २८), रक्तगतेऽनिले (अ. सं. नि. १५), रसवर्णौ वायुना रसवर्णरहितेनापि प्रभावात् क्रियते (चक्रः) |
| २०. | कषायमुखत्वम् | ( ,, ,, ,, ) | नानात्मजे (च. सू. २०) |
| २१. | विरसमुखत्वम् | ( ,, ,, ,, ) | |
| २२. | शोषः | ( ,, ,, ,, ) | शरीरशोषः (सिरागते वाते) (च. चि. २८), अस्थिशोषः अस्थिगतेऽनिले (च. चि. २८), आस्यशोषः आमाशयगते वाते । |
| २३. | शूलम् | ( ,, ,, ,, ) | पित्तावृते कफावृते वाते, अस्थ्यावृते संधिशूलम् (संधिगते), स्नायुगते वाते (सु. नि. १) सर्वांगाश्रिते वाते (सु. नि. १), अस्थिगते सक्थिशूलम्-अस्थिगतेऽनिले । सिरा शूलं सिरागते वाते, पक्वाशयगते वाते (च. चि. २८) । |

| | | |
|---|---|---|
| २४. सुप्ति: | (च० सू० २०) | स्वाप: (सु. सं.), त्वगाश्रिते वाते (सु. नि. १), रक्तगतेऽनिले (अ.सं.१५)<br>सिरासुप्ति: सिरागते वाते (च. चि. २८), गात्रसुप्ता-अनावृते-प्राणे। |
| २५. संकोच: | ( ,, ,, ,, ) | वर्त्मसंकोच: (च. सू. १०), |
| २६. स्तंभ: | ( ,, ,, ,, ) | मुक्तस्य स्तंभ: रक्तगतेऽनिले–(च. चि. २८),स्नायुगतेऽनिले . (च.चि.२८)<br>स्तब्धता-मज्जाश्रिते वाते (अ. सं. नि. १५), सर्वांग कुपिते वाते (सु.नि.१) |
| २७. खञ्जता | ( ,, ,, ,, ) | नानात्मजे (च. सू. २०), |
| २८. कार्श्यम् | (का० पृ० ७२) | वातवृद्धौ (सु. सू. १५), त्वच: कृशता: त्वग्गते वाते (च. चि. ३१)<br>रक्तस्थिते वाते (च. चि. २८), |
| २९. उद्वेष्टनम् | ( ,, ,, ,, ) | परिवेष्टनम्-मज्जावृते वाते (च. चि. २८), |
| ३०. दशनम् | (का० पृ० ७२) | |
| ३१. भङ्ग: | ( ,, ,, ,, ) | गात्रभञ्जनम्, सर्वाङ्गाश्रिते वाते (च. चि. २८), |
| ३२. आध्मानम् | (सुदान्तसेन:), | गुदाश्रिते वाते (च. चि. २८), व्यानावृतेऽपाने (च. चि. २८),<br>वातवृद्धौ (अ. सं. सू. १९)। |
| ३३. रौक्ष्यम् | (का० पृ० ७२), | त्वचो रूक्षता—त्वग्गते वाते (च. चि. २८) |
| ३४. स्फुटनम् | ( ,, ,, ,, ) | ,, स्फुटता ,, ,, |
| ३५. विमथनम् | ( ,, ,, ,, ) | |
| ३६. क्षोभ: | ( ,, ,, ,, ) | |
| ३७. कण्ठध्वंस: | ( ,, ,, ,, ) | कण्ठोपरोध:, कण्ठशोष: (आमाशयगते वाते—(च. चि. २८),<br>नानात्मजे (च. सू. २०), |
| ३८. श्रमक: | ( ,, ,, ,, ) | मांसस्थिते वाते (च. चि. २८), मेद: स्थिते वाते (च. चि. २८) |
| ३९. विलपनम् | ( ,, ,, ,, ) | |
| ४०. कर्णनाद: | ( ,, ,, ,, ) | कर्णगते प्रकुपिते वाते (च. चि. २६) |
| ४१. विषम परिणत्ति: | ( ,, ,, ,, ) | |
| ४२. दृष्टि प्रमोह: | ( ,, ,, ,, ) | |
| ४३. विस्पन्दनम् | ( ,, ,, ,, ) | |
| ४४. उद्घट्टनम् | ( ,, ,, ,, ) | |
| ४५. ग्लपनम् | ( ,, ,, ,, ) | |
| ४६. निद्रानाश: | ( ,, ,, ,, ) | वातवृद्धौ (सु. सू. १५), |
| ४७. तार्डनम्<br>४८. पीडनम् | ( ,, ,, ,, )<br>( ,, ,, ,, ) | मांसस्थिते वाते (अ. सं. न. १५), मेद: स्थिते (च. चि. २८), |
| ४९. नाम: | ( ,, ,, ,, ) | |
| ५०. उन्नाम: | ( ,, ,, ,, ) | |
| ५१. विषाद: | ( ,, ,, ,, ) | |
| ५२. भ्रम: | ( ,, ,, ,, ) | नानात्मजे (च. सू. २०),<br>रक्तगते वाते (अ. सं. नि. १५), मेद: स्थिते (च. चि. २८),<br>मांसस्थिते ( ,, ,, ,, ,, ), पित्तावृते वाते (च. चि. २८)<br>पित्तावृते प्राणे (च. चि. २८), नानात्मजे (च. सू. २०), |
| ५३. परिपतनम् | ( ,, ,, ,, ) | ,, उदाने (सु. नि. १०), |
| ५४. जृम्भणम् | ( ,, ,, ,, ) | मज्जावृते वाते (च. चि. २८), नानात्मजे (च. सू. २०)। |
| ५५. रोमहर्ष: | ( ,, ,, ,, ) | मांसवृते ,, ( ,, ,, ,, ,, ), कफावृते समाने (च.चि.२८)<br>प्राणे व्यानावृते ( ,, , ,, ,, )। |

| | | |
|---|---|---|
| ५६. विक्षेपः | ( „ „ „ ) | |
| ५७. आक्षेपः | ( „ „ „ ) | स्नायुगते वाते (सु. नि. १), सर्वांगगते वाते (सु. नि. १) (च. सू. २०)। |
| ५८. ग्रहणम् | (सुदान्तसेनः) | |
| ५९. छेदनम् | (का० पृ० ७२) | |
| ६०. वेष्टनम् | ( „ „ „ ) | |
| ६१. श्यामवर्णः | ( „ „ „ ) | त्वग्गते वाते (च. चि. २८) |
| ६२. विश्लेषः | ( „ „ „ ) | जानुविश्लेषः (च०सू. २०) |
| ६३. व्यधः | (अ. हृ. सू. १२) | |
| ६४. पर्वसंकोचः | (च. चि. २८) | एते संकोचादयो व्याधयोऽपि भवन्ति (चक्रः), |
| ६५. पर्वस्तंभः | ( „ „ „ ) | |
| ६६. अस्थिभेदः | ( „ „ „ ) | अस्थिगते वाते (च. चि. २८), मज्जागते वाते (च. चि. २८), |
| ६७. पर्वभेदः | ( „ „ „ ) | पर्वरुजा त्वग्गते वाते ( च. चि. २८ ) अस्थिगते वाते ( „ „ ) |
| ६८. प्रलापः | ( „ „ „ ) | नानात्मजे (च. सू. १५), वातवृद्धौ (अ. सं. सू. १९) |
| ६९. प्राणिग्रहः | ( „ „ „ ) | „ ( „ „ „ „ ) |
| ७०. पृष्ठग्रहः | (च० चि० २८) | पक्वाशयस्थे वाते (अ. सं. नि. १५), नानात्मजे (च. सू. २०), |
| ७१. शिरोग्रहः | ( „ „ „ ) | प्राणावृत उदाने (च. चि. २८), |
| ७२. पाङ्गुल्यम् | ( „ „ „ ) | नानात्मजे (च. सू. २०) |
| ७३. कुब्जत्वम् | ( „ „ „ ) | स्नायुगते वाते (च० चि. २८) |
| ७४. अङ्गशोषः | ( „ „ „ ) | सिरागते वाते ( „ „ „ ) |
| ७५. गर्भनाशः | ( „ „ „ ) | शुक्राश्रिते वाते ( „ „ „ ) |
| ७६. शुक्रनाशः | ( „ „ „ ) | „ „ ( „ „ „ ) शुक्रावृते वाते अवेगोऽतिवेगो<br>„ „ (सु. नि. १) । निष्फलत्वं च (च. चि. २८) |
| ७७. रजोनाशः | ( „ „ „ ) | आर्त्तव गते वाते |
| ७८. शिरोहुण्डनम् | ( „ „ „ ) | हुण्डनं शिरःप्रभृतिनामन्तःप्रवेश (चक्रः), अन्ये तु केशभूमिस्फुटनं शंखललाट भेदश्च (चक्रः) |
| ७९. नासाहुण्डनम् | ( „ „ „ ) | घ्राणनाशः (चक्रः) |
| ८०. अक्षिहुण्डनम् | ( „ „ „ ) | अक्षिव्युदासः (चक्रः) |
| ८१. जत्रूहुण्डनम् „ | ( „ „ „ ) | वक्ष उपरोधः (चक्रः) |
| ८२. ग्रीवाहुण्डनम् | ( „ „ „ ) | ग्रीवास्तंभः (चक्रः) |
| ८३. मोहः | ( „ „ „ ) | आमाशयगते वाते (सु. नि. १), अपानावृत उदाने (च. चि. २८), वातवृद्धौ (अ. सं. सू. १९), |
| ८४. बलोपघातः | (च० सू० १८) | अस्थिगते वाते (च. चि. २८), व्याने प्राणावृते,उदानावृते प्राणे (च.चि. २८<br>वातवृद्धौ (अ. सं. सू. १९) |
| ८५. वर्णोपघातः | ( „ „ „ ) | त्वचो वैवर्ण्यं त्वग्गते वाते (सु.नि.१), रक्तगते वाते वैवर्ण्यम् (च.चि. २८ |
| ८६. सुखोपघातः | ( „ „ „ ) | |
| ८७. आयुरुपघातः | ( „ „ „ ) | व्याने प्राणावृते स्मृतिदोषः । |
| ८८. मनोव्याहर्षः | ( „ „ „ ) | |

८९. सर्वेन्द्रियोपघातः (च० सू० १८) इन्द्रियगते वाते (च. चि. २८), व्याने प्राणावृते (च. चि. २८), वातवृद्धौ (अ. सं. सू. १९)
९०. गर्भस्यातिकालाधारणम् ( ,, ,, ,, )
९१. गर्भविकारः ( ,, ,, ,, ) शुक्राश्रिते वाते (च. चि. २८)
९२. भयः ( ,, ,, ,, ) वातवृद्धौ (अ. सं. सू. १९)
९३. शोकः ( ,, ,, ,, ) ,,
९४. दैन्यम् ( ,, ,, ,, ) ,,
९५. प्राणोपरोधः ( ,, ,, ,, ) ,,

## स्रंस

१. ओजः स्रंसनम् (च० सू० १७) 'ओजोविस्रंसने' (सु. उ. ३९--४३)
२. देह ,, (च० सू० १७)
३. दन्तशैथिल्यम् (च० सू० २०) वातस्य नानात्मजे विकारे
४. स्रस्ताङ्ग (सु० उ० ३९-४०)

## भ्रंश

१. पाद भ्रंश (च० सू० २०) वातस्य नानात्मजे विकारे।
२. गुदभ्रंश ( ,, ,, ,, ) अपानप्रकोपजे (अ. सं. नि. १६)
३. योनिभ्रंश ( ,, ,, ,, ) ,, ,,
४. मनोभ्रंश उदानप्रकोपजे उदान प्रकोपजे (,, ,, ,, ,,)
५. ओजोभ्रंशः पित्तावृते ,, (च. चि. २८)
६. पुंस्त्व भ्रंशः व्यान प्रकोपजे (अ. सं. नि. १६)
७. बल भ्रंशः ,, ,, ( ,, ,, ,, )
८. उत्साह भ्रंशः ,, ,, ( ,, ,, ,, )
९. अङ्गविभ्रंशः वातस्यं नानात्मजे रोगे ( शा. प्र. ७ )

## व्यासः

१. त्वचो विस्तारः त्वकस्थिते वाते (च. चि. १८)

## सङ्गः (ग्रहः)

१. मलसङ्गः (वर्चोनिग्रहः) कोष्ठाश्रिते वाते ( च. चि. २८ ), पुरीषावृते वाते (च. चि. २८)
गुदाश्रिते वाते ( ,, ,, ,, ) वातवृद्धौ (आ. सं. सू. १९)
२. मूत्रसङ्गः (मूत्रनिग्रहः) "कोष्ठाश्रितेवाते-गुदाश्रिते" ( ,, ,, ,, ) मूत्रावृते वाते (च. चि. २८)
३. अङ्गचेष्टासंगः (गात्रविक्षेपसङ्गः) पित्तावृत्ते व्याने ( च. चि. २८ )
४. गतिसङ्गः कफावृते व्याने ( ,, ,, ,, )
५. वातग्रहः गुदाश्रिते वाते ( ,, ,, ,, )
६. क्षवथुग्रहः कफावृते ,, ( ,, ,, ,, )
७. उच्छ्वासग्रहः ,, ,, ( ,, ,, ,, ) प्राणावृत उदाने (च. चि. २८)
८. निःश्वासग्रहः ,, ,, ( ,, ,, ,, ) ,, ,, ( ,, ,, ,, )
९. वाग्ग्रहः ,, उदाने ( ,, ,, ,, )

| | | | |
|---|---|---|---|
| १०. | स्वरग्रहः | कफावृते उदाने | (च० चि० २८) |
| ११. | पार्श्वग्रहः | समानेनावृतेऽपाने | ( „ „ „ ) |
| १२. | हृद्ग्रहः | „ | ( „ „ „ ) |
| १३. | शिरोग्रहः | प्राणावृत उदाने | ( „ „ „ ) |
| १४. | अग्निसङ्गः | उदरसन्निवेशेदोषे | (सू. सू. २१) |
| १५. | अङ्गग्रहः | सामवाते | (अ. हृ. सू. १३–टीका) |
| १५. | हनुग्रहः | | (च. चि. २८) |

## नाशः

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | गर्भनाशः | ( च० चि० २८ ) | |
| २. | शुक्रनाशः | ( „ „ „ ) | |
| ३. | रजोनाशः | ( „ „ „ ) | |
| ४. | कर्मनाशः | (उदानावृते प्राणे) | (च० चि० २८) |
| ५. | वर्णनाशः | ( „ „ „ ) | ( „ „ „ ) |
| ६. | ओजोनाशः | ( „ „ „ ) | ( „ „ „ ) |
| ७. | बलनाशः | ( „ „ „ ) | ( „ „ „ ) |

## भङ्गः, भग्नः (किंचिदवशेषेणच्छिन्नम्)–चकः

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | कटिभग्न इव पीड़ा | वातज्वरे | ( च० नि० १ ) |
| २. | पार्श्व „ „ „ | „ | ( „ „ „ ) |
| ३. | पृष्ठ „ „ „ | „ | ( „ „ „ ) |
| ४. | स्कन्ध „ „ „ | „ | ( „ „ „ ) |
| ५. | बाहुः „ „ „ | „ | ( „ „ „ ) |
| ६. | अंश „ „ „ | „ | ( „ „ „ ) |
| ७. | उरोभग्न „ „ | „ | ( „ „ „ ) |

## मथितम्, बिमथितम्, विमथनम्

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | कटि मथित इव वेदना | वातज्वरे | ( च० नि० १ ) |
| २. | पार्श्व „ „ „ | „ | ( „ „ „ ) |
| ३. | पृष्ठ „ „ „ | „ | ( „ „ „ ) |
| ४. | स्कन्ध „ „ „ | „ | ( „ „ „ ) |
| ५. | बाहु „ „ „ | „ | ( „ „ „ ) |
| ६. | अंस „ „ „ | „ | ( „ „ „ ) |
| ७. | उरोमथित „ „ | „ | ( „ „ „ ) |

## हर्षः (च० नि० ३––वातगुल्मे)

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १. | दन्तहर्षः | वातज्वरे | (चि० नि० १) | |
| २. | रोमहर्षः वात गुल्मे (च. नि. ३.) | „ „ | ( „ „ „) | मांसावृते वाते (च. चि. २८)<br>कफावृते समाने ( „ „ „) |
| ३. | पादहर्षः | वातस्य नानात्मजे विकारे (शा. प्र. ७) | | |

## कम्पः, वेपथुः

| | |
|---|---|
| १. कम्पः | वातवृद्धौ (अ. सं. सू. १९) स्नायुगते वाते (सु. नि. १)<br>सर्वाङ्गाश्रिते वाते ( „ „ „ १५) |
| २. गात्रकम्पः | „ ( „ „ „ ) |
| ३. वेपथुः | (च. सू. २०) (नानात्मजे विकारे), वातज्वरे (च. नि. १) |

## व्यधः, वधः, घातः, उपघातः

| | |
|---|---|
| १. पक्षवधः | (नानात्मजे विकारे (च. सू. २०) (च. चि. २८) |
| २. सूच्येव संविद्धम् | वातजगुल्मे (च. नि. ३) |
| ३. शंकुनेव | „ („ „ „) |
| ४. बलोपघातः | च. सू. १२ „ वातवृद्धौ (अ. सू. १९), कफावृत उदाने (अ. सं. नि. १६) |
| ५. वर्णोपघातः: | „ „ „ कफावृत उदाने(„ „ १६) |
| ६. सुखोपघातः | „ „ „ |
| ७. आयुरुपघातः | „ „ „ |
| ८. सर्वेन्द्रियोपघातः | „ „ „ वातवृद्धौ (अ. सं. सू. १९), इन्द्रियगते वाते (च. चि. २८) |
| ९. पक्षाघातः | „ „ „ (च. चि. २८) |
| १०. इन्द्रियबधः | „ „ „ श्रोत्रादिषु स्थिते वाते। |

## भेदः

| | |
|---|---|
| १. त्वचो भेदः | त्वगाश्रिते वाते (सु. नि. १) |
| २. अस्थिपर्वभेदः | अस्थिस्थिते „ (च. चि. २८), मज्जाश्रिते वाते (च. चि. २८)। |
| ३. भेदः | सर्वाङ्गकुपिते „ (अ. सं. नि. १५), वृद्धे वाते समे पित्ते क्षीणे च कफे (च. सू. १७) |
| ४. नखभेदः | वातस्य नानात्मजे विकारे ( च. सू. १० ) |
| ५. जानुभेदः | „ „ „ ( „ „ „ ) |
| ६. श्रोणिभेदः | „ „ „ ( „ „ „ ) |
| ७. विड्भेदः | „ „ „ ( „ „ „ ) |
| ८. हनुभेदः | „ „ „ ( „ „ „ ) |
| ९. ओष्ठभेदः | „ „ „ ( „ „ „ ) |
| १०. अक्षिभेदः | „ „ „ ( „ „ „ ) |
| ११. तालुभेदः | „ „ „ ( अ. सं. ) |
| १२. दन्तभेदः | „ „ „ |
| १३. शंखभेदः | „ „ „ |
| १४. ललाटभेदः | „ „ „ |
| १५. अङ्गभेदः | „ „ „ „ |

## सादः

| | |
|---|---|
| १. सादः | अस्थ्यावृते वाते (च. चि. २८), पित्तावृत उदाने (च. चि. २८),<br>कफावृते प्राणे (अ. सं. नि. १६), क्षीणे वाते कफपित्तयोर्वृद्धयोः (च. सू. १७) |
| २. अङ्गसादः | समानावृते व्याने (च. चि. २८), वातक्षये (अ. सं. सू. १९)। |
| ३. अग्निसादः | वातक्षये (अ. हृ. सू. ११—कफवृद्धिलक्षणः), समान प्रकोपजे (अ. सं. नि. १६) |

४. अवसादः वातक्षेप अ० हृ० पृ० ११–कफवृद्धि लक्षणः सामवाते (अ. सं. सू. ११)
५. उरुसादः वातस्य नानात्मजे विकारे (च. सू. २०), वातज्वरे (च. नि. १)

### तोदः (वातगुल्मे–च० नि० ३)

१. त्वचस्तोदः त्वगाश्रिते वाते (च. चि. २८)
२. अङ्गेऽत्यर्थन्तोदः मांसस्थिते ,, (च. चि. २८), मेदः स्थिते वाते (च. चि. २८)
३. तोदः {सर्वांगकुपिते,, (अ. सं. नि. १५), अस्थ्यावृते वाते (च. चि. २८), वातस्य नानात्मजे विकारे (शा. प्र. ७)।
४. निस्तोदः रक्तावृते वाते (सु. नि. १), व्यानप्रकोपगे (अ. सं. नि. १६),
५. कोष्ठतोदः वातप्रकोपे (सु. सू. २१)

### वक्षस्तोदः—वातस्य नानात्मजे विकारे (च० सू० २०)

७. अङ्गतोदः सामवाते (अ. हृ. सू. १३ टीका)
८. शंखयोर्निस्तोदः वातज्वरे (च. नि. १)

### व्यथा (रुक्) (च० सू० २०)

१. ताडनम् (सुदान्तसेनः)
२. पीडनम् ( ,, ,, )
३. छेदनम् ( ,, ,, )
४. व्यधः (अ. हृ. सू. १२)
५. गुदार्त्तिः (का० पृ० २९)
६. शिरोरुक् ( ,, ,, ,, )
७. तूनी ( ,, ,, ,, )
८. प्रतितूनी ( ,, ,, ,, )
९. अंगपीडा ( ,, ,, ,, )
१०. अंगवेदना (अ. हृ. सू. १३) सामवाते (टीकायाम्)
११. अंगानामवयवानां चला वेदना—वातज्वरे (च. नि. १–२१)
,, ,, अचला ,, ( ,, ,, ,, ,, )
१२. अनियत वेदना वातगुल्मे (च. नि. ३)
१३. विपुल वेदना ,, ( ,, ,, ,, )
१४. अणुवेदना ,,
१५. संधिवेदना (संधिगतेवाते) च. चि. २८)
१६. त्रिकवेदना पक्वाशयस्थ वाते( ,, ,, ,, )
१७. अर्तिः व्यानावतेऽपाने( च. चि. २८)
१८. परिकर्त्तिका ,, ( ,, ,, ,, )

**रोगः, रुक**

१. जंघारुक् (गुदस्थिते वाते)
२. उरुरुक् ( ,, ,, )
३. त्रिक्रुक् ( ,, ,, )

**पारुष्यम्**

१. वाक्पारुष्यम्—वातवद्धौ (सु. सु. १५)
२. नखपरुषत्वम् वातज्वरे (च. नि. १–२१)
वातगुल्मे ( ,, ,, ३–७)
३. नयन ,, ,, (वातजऽपस्मारे)

(सावशेष)

से तत्काल वजन घटता है, क्योंकि शरीर में से पानी कम हो जाता है। लेकिन मेदोरोग की चिकित्सा दीर्घकालीन है और दीर्घकाल तक बार-बार विरेचन देना हानिकारक है।

आयुर्वेद में मेदोरोग में रसायन द्रव्यों का उपयोग बताया गया है। वह अन्तःस्रावों का नियमन करता है। उनमें से कुछ द्रव्य मूत्रल होने की वजह से शरीर की विकृत जलीय धातु का ह्रास करते हैं और ताकत को स्थिर करते हैं। इसतरह, वे रसादि धातुओं का सम्यक् वहन करने में सहायक होते हैं; उनमें शिलाजीत, आमलक, अरणी, गिलोय आदि मुख्य हैं। आधुनिक चिकित्सक मूत्रल द्रव्यों का उपयोग सजल शोथावस्था के अतिरिक्त उपकारक नहीं मानते।

किसी भी कारण से पैदा हुए मेदोरोग में आहार का नियमन खास जरूरी है। साधारण कामकाज करनेवाले आदमी के लिए प्रति किलोग्राम वजन पर ३५ कैलरी उत्पादक आहार शरीर-शक्ति को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक है। १५ से २० कैलरी उत्पादक आहार लेने से आदमी अपना काम-काज करते हुए प्रति सप्ताह १ से २ रतल तक वजन खोता है। १५४ रतल वजनवाले आदमी के लिए १००० से १४०० कैलरी उत्पादक आहार की हर रोज जरूरत रहती है। प्रोटीन काफी मात्रा में लेना चाहिए (एक किलोग्राम वजन के लिए १ से १.५ ग्राम) क्योंकि विशिष्ट शक्ति और धातुओं के उत्पादन में उसकी आवश्यकता है। अल्प कार्बोहाइड्रेट वाले फल और शाकभाजी लेनी चाहिए। उसकी मात्रा प्रोटीन का तीन चतुर्थांश होनी चाहिए। चर्बी की मात्रा कम-से-कम रखनी चाहिए—फी किलोग्राम वजन पर आधा ग्राम। साधारण आदमी के लिए आमतौर से प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और चरबी की मात्रा इस तरह निश्चित करना असंभव है। यहाँ इस उद्धरण को प्रस्तुत करने का अर्थ यह है कि आहार-नियमन के लिए चरबी की मात्रा कम-से-कम होनी चाहिए—ऐसा आधुनिक विज्ञान का मन्तव्य है। मलाई निकाला हुआ दूध दो ग्लास, या उतनी ही छाछ, तीन रोटी, एक अण्डा, थोड़ा-सा मांस, एक आलू और शाकभाजी—इतना आहार प्रत्येक व्यक्ति को लेना चाहिए। इतना आहार लेना आवश्यक है। भूख न लगे इसलिए ऐम्फीटेमाइन सल्फेट ५ से १० मिलीग्राम मात्रा में भोजन के आधा से एक घंटे पूर्व देना चाहिए—सुबह ११ बजे और शाम को ४ बजे। ४ बजे के बाद नहीं देना चहिए, क्योंकि उससे नींद नहीं आती।

इस तरह की चिकित्सा से वजन कम होता है, जिससे आर्तवजनित विकार, रक्तचापाधिक्य, श्वासकृच्छ्रता, शोथ, श्रमाधिक्य और संधिगत वेदना आदि मेदोरोगजनित विकार दूर हो जाते हैं।

ऊपर लिखे अनुसार मेदोरोग के सम्वन्ध में आयुर्वेद और एलोपैथी-दोनों ही के सिद्धान्त एक-से हैं। मेदोरोग का हेतु, लक्षण और चिकित्सा के विषय में दोनों का मंतव्य समान है। परन्तु चरक और अष्टांगहृदयकार ने तैलपान के गुण निम्नानुसार बताये हैं; जो द्रष्टव्य है—

प्रवृद्धश्लेष्ममेदास्कश्चलस्थूलगलोदराः।
वातव्याधिभिरा विष्टावातप्रकृतयश्च ये॥
बलं तनुत्वं लघुतां दृढ़तां स्थिर गात्रतां।
स्निग्धश्लक्ष्ण तनुत्वक्तां ये च कांक्षन्ति देहिनः॥
कृमिमोष्ठाः क्रूरकोष्ठा स्तथा नडीभिरर्दिताः।
पिवेयुः शीतले काले तैलं तैलोचिताश्च ये॥

भगवान सुश्रुत भी कहते हैं:—

कृमिकोष्ठानिलाविष्टाः प्रवृद्धकफमेदसः।
पिवेयुः तैलसात्म्याश्च तैलं दार्ढ्यार्थिनश्च ये॥

अष्टांगहृदयकार कहते हैं:—

स्थूलानाम् कर्षणाय च॥

अर्थात् आयुर्वेद के आचार्यों ने मेदोरोग की चिकित्सा में गुरु, अतर्पण और रूक्ष द्रव्यों की योजना करने का उपदेश दिया है। उनका साथ-साथ यह भी कहना है कि स्नेहों में भी तेल एक ऐसा पदार्थ है जिसका प्रयोग मेदोरोग में लाभदायक है। जो आदमी संशमन के लिए तैल के रूप में स्नेह का उपयोग करना चाहता है, उसको अन्नकाल में उसे लेना चाहिए—यथा, **'पिवेत् संशमनं स्नेहं अन्नकाले प्रकाङ्क्षतः।'** अन्न हजम हो जाने के बाद सुबह में स्नेहपान किया जाए तो कोष्ठ में चिपके हुए दोष का क्षय नहीं होता और वह दोषयुक्त स्नेह दोष का उत्क्लेश करता है और संशमन नहीं करता। इसलिए अन्नकाल में अच्छा स्नेह, अन्नयुक्त या प्रचुर तैल से संस्कृत किया हुआ अन्न लेना चाहिए। यूष के साथ तैल या केवल तैल का प्रयोग भी उचित है। इसकी पूर्ति करते हुए अष्टाङ्गहृदयकार कहते हैं—**"स्थूलानाम् कर्षणाय च।"** अर्थात् स्थूलता का नाश करके कृशता देने के लिए तैल का उपयोग किया जाता

है। कृशता किस तरह होती है, उसका वर्णन करते हुए अरुणदत्त कहते हैं—**स्थूलानाम् सूक्ष्म स्रोतो गामित्वात् सर्वस्रोतःसु तैलं प्रविश्य तीक्ष्णोष्णादिगुण योगात् मेदः स्थापयति। तत्कर्षणाच्च कर्षणं सम्पद्यते।**

अर्थात् जब स्थूल मनुष्य के स्रोत मेद से व्याप्त होते हैं, तब तैल अपने सूक्ष्म गुण से उनमें प्रविष्ट होकर तीक्ष्णोष्णादि गुणों से मेद का नाश करता है और बढ़े हुए मेद का क्षय करके कृशता पैदा करता है—वजन कम कर देता है। इस प्रकार आयुर्वेद मेदोरोग में तैल का उपयोग करने की सलाह देता है। बाह्योपचार में ही नहीं—पीने के लिए भी आयुर्वेद सलाह देता है। यह बात आधुनिक विज्ञान के अबतक के मन्तव्यों के विरुद्ध है। आम जनसमुदाय और वैद्य लोग भी इस अवस्था में तेल और तेल में तले हुए पदार्थों का निषेध करते हैं। ऐसे समय में सिर्फ तेल ही नहीं, बल्कि तमाम स्नेहों के उपयोग करने सम्बन्धी मत का समर्थन करते हुए डा० लेस्ली. जे. हेरीस Sc. D., D. Sc, Ph. D. F.R. I. C. डायरेक्टर, न्युट्रीशनल लेबोरेटरी केम्ब्रिज विश्व-विद्यालय और मेडिकल कौंसिल की, सम्मति यहाँ उद्धृत की जाती है, जो उन्होंने डाक्टर केकवीक और पोवान के अनु-संधान के समर्थन में दी थी—

"Most clinicians probably, and the lay public too, have been brought up to believe that to lose weight it is necessary to restrict not only the carbohydrate contents of the diet, but likewise the fat. There is now, however, a considerable amount of experimental evidence to indicate that there is in fact no need to restrict the fat—in fact, on the contrary, it may be a positive advantage to recommend high fat diet in the treatment of obesity. Indeed, weight loss in obese individuals was most rapid with high fat diets and somewhat less rapid with high protein diets. This is of some practical consequence and should rejoice the hearts of medical advisers and their patients alike. No longer need the overweight be urged to eschew such palatable and acceptable ordinary articles of their diet as fried fish, butter or margarine, and bacon or be wained to eat only the leanest of meat.

Medical Annual 1957 Nutrition & Vitamins. pp 275-276.

चिकित्सकों का बहुमत और आम जनसमुदाय भी इस मन्तव्य पर रूढ़ हो गया है कि वजन कम करने के लिए आहार के सिर्फ कार्बोहाइड्रेट द्रव्यों का ही नहीं, प्रत्युत् चर्बी वाले पदार्थों का भी नियमन जरूरी है। परन्तु अब इसके विरुद्ध यह प्रमाण मिलता है कि चरबीवाले द्रव्यों को कम करने की कुछ जरूरत नहीं—वरना इसके विरुद्ध मेदस्वी पुरुष का वजन कम करने के लिए ज्यादा चरबी वाले आहार द्रव्यों की योजना करनो सचमुच लाभकारक है। अधिक चरबीयुक्त आहार के सेवन से मेदस्वी आदमी का वजन शीघ्रता से सचमुच घटता था। यह परिणाम व्यावहारिक है। इस परिणाम से चिकित्सकों एवं उनके रोगियों को प्रसन्नता होगी। मेदोरोग के विषय में सभी प्रकार के स्नेह-चरबी के सेवन का उपदेश देकर आधुनिक विज्ञान ने आयुर्वेद के संतर्पण-अपतर्पण के उपक्रम की नींव पर कुठाराघात किया है। आयुर्वेद के सिद्धांत के अनुसार कफ और मेद को बढ़ानेवाले मक्खन, घी आदि पदार्थ वजन कम करने के लिए भी उपयोग में लेना चाहिए—ऐसा साबित किया गया है। वैद्यों को जागरूक होकर आयुर्वेद के सिद्धांतों पर किए गए हमलों के विरुद्ध आयुर्वेदीय सिद्धांतों को प्रत्यक्ष सिद्ध करके दिखलाना चाहिए।

शास्त्रीय और शुद्ध बैद्यनाथ रस-रसायन जाड़े में सेवन करें
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता · पटना
झाँसी · नागपुर

# मेदोरोग में चरबीयुक्त आहार का सेवन

**वैद्य मणिभाई ब्रह्मभट्ट**

साधारणतया भारत में और भारत के बाहर भी ऐसा ना जाता है कि खूब घी-दूध खाने से मनुष्य तगड़ा और शाली बनता है। साधारण स्थिति का मनुष्य भी नी दुबली-पतली सन्तान को अधिक चर्बी वाला आहार ता है, जिससे कि उसकी सन्तानें शरीर से पुष्ट और वजन भारी हों। भारतीय वैद्य और पाश्चात्य चिकित्सक ऐसा ही मानते हैं—अर्थात् चर्बी से चर्बी की वृद्धि होती है। कहा भी है—**सामान्यं वृद्धि कारणम्**—इस आयुर्वेदीय द्धान्त का अनुसरण सभी लोग करते हैं। इसी प्रकार स्वी मनुष्य का वजन कम करने के लिए घी, दूध, मधुर र गुरु आहार द्रव्यों का अत्यन्त अल्प मात्रा में सेवन रने की सलाह दी जाती है। आयुर्वेद में शरीर का जन कम करने की क्रिया को लंघन कहते हैं। "यत् चित् **लाघवकरं देहे तल्लंघनं स्मृतम्** अर्थात् देह में स क्रिया से लघुता-हल्कापन पैदा होता है उसका नाम न है। आयुर्वेद में लंघन के दस प्रकार बताए गए हैं—या—

चतुष्प्रकारा संशुद्धिः पिपासा मारुतातपौ।
पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेति लङ्घनम्॥

—चरक सू० अ० २२–९

शोधन के चार प्रकार (वमन, विरेचन, आस्थापन र रक्तमोक्षण), तृषा, पवन, ताप, पाचन, उपवास और याम। इस लंघनसमूह में से मेदस्वी मनुष्य के लिए याम आवश्यक बताया गया है। मेदस्वी पुरुष की राग्नि प्रदीप्त होती है। इसका कारण बताते हुए कारों ने कहा है कि मेद से मार्ग के आवृत्त होने से वायु ट में अग्निपार्श्व में होने के फलस्वरूप अग्नि प्रदीप्त ती है और इससे आहार का शीघ्र पाचन होता है। अति न होने से विषमाग्नि पैदा होती है।

आधुनिक विज्ञान की मान्यताएँ भी मेदोरोग के न्ध में वैसी ही हैं। आहार कम करना और व्यायामादि यों के द्वारा बढ़ी हुई शारीरिक शक्ति का व्यय मेद को रने के लिए आवश्यक है। आधुनिक विज्ञान का यह मत है कि जरूरत से ज्यादा केलोरी उत्पादन करनेवाला आहार ज्यादा समय तक लेने से मेदोरोग उत्पन्न होता है। आयुर्वेद का भी यही मत है। जरूरत से अधिक आहार लेने और मानसिक तथा शारीरिक शक्ति के अत्यल्प व्यय होने से मेदोरोग की उत्पत्ति अवश्यम्भावी है। चरक का कथन है—

अचिन्तनाच्च कार्याणां ध्रुवं संतर्पणेन च।
स्वप्नप्रसंगाच्च नरो वराह इव पुष्यति॥

कार्य की चिन्ता का अभाव, संतर्पण द्रव्यों का उपयोग (मांस, दही, दूध, घी, नवान्न आदि), अधिक निद्रा अर्थात् मानसिक और शारीरिक शक्ति का अव्यय अथवा अल्पाल्प व्यय—यह सब मेद की वृद्धि करते हैं। आयुर्वेद के आचार्यों ने भी अपनी सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति और शास्त्र के अध्ययन से मेदोरोग के निम्नलिखित कारण दिए हैं, जिनको आधुनिक विज्ञान भी मानता है। "**तदतिस्थौल्यमतिसंपूरणाद्, गुरुमधुरशीतस्निग्धोपयोगादव्यायामादव्यवायाद् दिवास्वप्नाद् हर्षनित्यत्वाद् अचिन्तनाद् बीजस्वभावाच्चोपजायन्ते।**" इनमें से 'अति संपूरण' का कारण देते हुए बताया है कि '**तीक्ष्णाग्नित्वात् प्रभूत कोष्ठवायुत्वाच्च क्षुदतिमात्रं पिपासातियोगश्च।**' आधुनिक विज्ञान भी कहता है कि A plethora of calories is the only explanation of obesity. किसी भी प्रकार का आहार अतिमात्रा में लेने, किन्तु उतने ही परिमाण में शारीरिक शक्ति का व्यय न होने से मेदोरोग होता है। निर्धन श्रेणी के लोगों में भी, जो कि सामान्यतया रूक्ष आहार लेते हैं—मेदस्वी स्त्री-पुरुष पाये जाते हैं। आधुनिक विज्ञान भी कहता है—The law of conservation of energy applies to the human body as surely as to any other machine which produces heat and performs work. When the intake of food whether protein, fat or carbohydrate, exceeds in caloric value the expenditure as work and heat, the excess will be stored in the body—tissues. Because of the relatively limited capacity of the body to store protein and carbohydrate, the greatest part of the excess is converted into and stored as fat. Thus too much food of any kind is fatteing.

हमने ऊपर बताया कि व्यायाम का अभाव मेदोरोग का प्रधान कारण है। इसका समर्थन आधुनिक विज्ञान भी करता है और बताता है कि जब मनुष्य आहार अधिक करता और शरीर-श्रम के रूप में उसकी शक्ति का व्यय नहीं होता, तब वजन बढ़ने लगता है। भग्नचिकित्सा, राजयक्ष्मा और वैसे रोगों में जब रोगी को पूरा आराम दिया जाता है और आहार भी पूरी मात्रा में रोगी लेता है, तब उसका वजन बढ़ने लगता है। आयुर्वेदाचार्यों ने मेदस्वी माता-पिता के बीज-दोष से पैदा होनेवाले मेदरोग का उल्लेख किया है। आधुनिक विज्ञान भी इस बात से सहमत है। प्राणियों में यह दोष वंशानुगत है। आयुर्वेद में अव्यवाय याने ब्रह्मचर्य मेदोरोग का कारण माना गया है। आधुनिक विज्ञान इस बात का दूसरी दलील से समर्थन करता है कि जब मनुष्य में संभोग-शक्ति का ह्रास होता है तब मेद-वृद्धि होती है। स्त्रियों में भी रजोदर्शन बन्द होने के बाद विशेषत: मेद-वृद्धि होती है। इस तरह हमारे आचार्यों का मेदोरोग का ज्ञान अद्यतन था।

कृश व्यक्ति की चिकित्सा से स्थूल व्यक्ति की चिकित्सा विशेष कृच्छ्र मानी गयी है। इसका कारण यह दिया गया है कि जठराग्नि प्रदीप्त होने की वजह से स्थूल व्यक्ति को अतर्पण सहन करना कठिन है। व्यायाम जैसा निरग्नि-स्वेद भी उसके लिए दु:खद है। आयुर्वेद में स्थौल्य—मेदोरोग—की चिकित्सा के बारे में यह क्रियासूत्र बताया है—

> गुरु चातर्पणं चेष्टं स्थूलानां कर्षणं प्रति।
> वातघ्नान्यन्नपानानि श्लेष्म मेदोहराणि च॥
> रूक्षोष्णा बस्तयस्तीक्ष्णा रूक्षाण्युद्वर्तनानि च॥
>
> —चरक, सू० अ० २१–२२

ज्वार, कांग, जौ, कोद्रव, कुलत्थ, मूंग, तुवर आदि का उपयोग आहार में हितकर बताया है। औषध के रूप में स्वतन्त्र या आहार द्रव्यों के साथ या संस्कारार्थ त्रिफला, शहद, वायविडंग, अरणी के रस के साथ शिलाजतु का प्रयोग, बृहत्पंचमूल, तक्रारिष्ट, मधूदक और अरिष्टों के उपयोग करने की सलाह दी है। जो आहार द्रव्य लघु है उसे संस्कार से गुरु बना कर उपयोग में लाने की सूचना दी है—क्योंकि लघु द्रव्य अग्नि और वायु गुण-भूयिष्ठ होने से जठराग्नि को प्रदीप्त करते हैं। जठराग्नि अधिक प्रदीप्त होने पर अधिक आहार हजम करने की शक्ति पैदा होती है जिसका परिणाम होता है मेद की वृद्धि। अतएव, जठराग्नि को मन्द करने के लिए द्रव्य को संस्कार द्वारा गुरु बना कर उपयोग में लेना चाहिए। इस तरह आहार और औषध का उपदेश दे कर शक्ति-व्यय को बढ़ाने के लिए आचार्य ने नीचे के सूत्र से विहार का उपदेश दिया है, जिससे संचित मेद का ह्रास हो—

> प्रजागरं व्यवायं च व्यायामं चिन्तनानि च।
> स्थौल्यमिच्छन् परित्यक्तुं क्रमेणाभिप्रवर्तयेत्॥
>
> —चरक, सू० अ० ३-१२-२७

अर्थात्—जागरण, व्यवाय, व्यायाम, चिन्ता आदि का क्रमश: अधिक सेवन करना चाहिए। मेदोरोग की चिकित्सा आयुर्वेद में इस तरह दी गयी है।

आयुर्वेद के चिकित्सक इन सूत्रों के अनुसार मेदोरोग में रोग की स्थिति और सुविधा को देख कर शिलाजीत, माक्षिक, त्रिफला और विडंग, तंडूलादि का प्रयोग करते हैं। गोमूत्र का प्रयोग भी इसमें किया जाता है।

### आहार-विहार

आधुनिक विज्ञान भी इसी पद्धति का अनुसरण करता है। आहार का नियमन और शक्ति का अधिक व्यय—इन दोनों सिद्धान्तों पर चिकित्सा का अवलम्बन किया जाता है—इसके अतिरिक्त कारण रूप निदान का परिवर्जन या समीकरण भी आवश्यक है। ग्रन्थियों के अन्त:स्राव की न्यूनता से पैदा होनेवाले मेदोरोग में उन ग्रन्थियों का स्राव होना चाहिए। इकट्ठी हुई चर्बी का उपयोग शक्ति और उष्मा पैदा करने के लिए करना चाहिए। शक्ति-व्यय के लिए व्यायाम अगर अहितकर न हो, तो जरूर करना चाहिए। घूमना, तैरना या अन्य खेल-कूद का व्यायाम करना चाहिए, जिससे अधिक शक्ति-व्यय हो। के अतिरिक्त स्नायु भी दृढ़ होते हैं और स्वास्थ्य की भी वृद्धि होती है। किन्तु व्यायाम से क्षुधा भी तेज होती है—इसलिए उसे मर्यादित रूप में करना चाहिए।

आयुर्वेद में "चतुष्प्रकारा संशुद्धि:" का निर्देश किया गया है। विरेचन के बारे में इस प्रकार का मत व्यक्त किया गया है—जो औषध विरेचन करते हैं, उनके उपयोग

से प्रचार हुआ। चीन देश की चिकित्सा-पद्धति भी आयुर्वेद की चिकित्सा-पद्धति से ही मिलती-जुलती है। वहाँ के इत्सिंग नामक यात्री इस बात का दृढ़तापूर्वक अनुमोदन करते हैं। महाशय जैकोलियर ने साहसपूर्वक इस प्रमाण की पुष्टि की है कि भारतवर्ष प्राचीन काल में समस्त एशिया-निवासियों से संबंधित था और सभी देशों के लोग भारत में शिक्षा प्राप्त करने के लिए आया करते थे और एशिया से ही यूरोप आदि देशों में इस विद्या का प्रसार हुआ। इस प्रकार पुरातन इतिहासों के अवलोकन से यह भलीभाँति ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में इस आयुर्वेद विज्ञान की प्रतिभा कितनी बढ़ी-चढ़ी थी। अतः इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि यूनानी आयुर्वेद की ही देन है। हाँ, उसकी अपनी शैली, अपनी पद्धति और तौर-तरीके भी उसके अपने हो सकते हैं, इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है।

यूनानी में 'रक्त' को दोष माना गया है? किन्तु आयुर्वेद में उससे कम महत्त्वपूर्ण न होता हुआ भी वह दोष नहीं माना गया है, यह अब तक के विश्लेषणों से स्पष्ट है। यूनानी विद्वान 'रक्त' को दोष मानते हैं तो मानें, इसके लिए वे स्वतंत्र हैं। किन्तु आयुर्वेद के लिए उनकी यह मान्यता प्रमाण नहीं बन सकती। जो लोग आयुर्वेद में 'रक्त' को दोष प्रमाणित करने के लिए यूनानी खून की तरफ देखते हैं, उन्हें इन तथ्यों पर ध्यान तो देना ही होगा। तथापि इस प्रसंग में यूनानी के दोषों पर थोड़ा विश्लेषण आवश्यक जान पड़ता है।

यूनानी कल्पना के अनुसार दोष चार हैं:—(१) दमा (खून) (२) बलगम, (३) सफरा, (४) सौदा अर्थात् क्रमशः शोणित, श्लेष्मा, पित्त और 'सौदा'। सौदा का अरबी शब्दार्थ है—श्याव (कण) या आहार रस के परिपाक के समय उत्पन्न एक प्रकार का तलछट।

यूनानी के चौथे दोष (सौदा, को अरबी में 'रक्त' का मल कहा गया है। किन्तु आयुर्वेद में 'पित्त' को 'रक्त' का मल कहा गया है और 'पित्त' आयुर्वेद में दोष है ही। निःसन्देह यूनानी में 'सौदा' को दोष (अखलात) माना गया है। किन्तु आयुर्वेद में आप उसको किस दोष के नाम से कहेंगे?

आयुर्वेद में 'वात' को न केवल दोष ही कहा गया है। बल्कि दोषों में सर्वप्रमुख दोष उसको माना गया है। इसलिए आचार्यों ने उसके संबंध में कहा है:—विभागकरणाद् वायुः प्रधानं दोषसंग्रहे"। अ. हृ.। "पित्तं पंगु कफः पंगुः पंगवो मल धातवः। वायुना यत्र नीयन्ते तत्र वर्षन्ति मेघवत्"॥ शार्ङ्ग०॥ "वात-पित्त-कफः देहे सर्व श्रोतोऽनुसारिणः वायुरेवहि सूक्ष्मत्वात् द्वयोस्तत्राप्युदीरिणः॥चरकः॥

इस प्रकार आयुर्वेद में 'वायु' की महनीयता स्पष्ट है। किंतु आयुर्वेद के इसी वायु का यूनानी के दोषों में कहीं नाम तक भी नहीं। तो क्या यूनानी के 'सौदा' से वह गृहीत है? वस्तुतः वह ऐसा भी नहीं हो सकता। क्योंकि तब वह 'रक्त' का मल नहीं कहा जा सकता और आहार रस के पाचन के समय उत्पन्न तलछट जो 'सौदा' को कहा गया है, वह भी यदि कहा जा सकता है तो 'वात' का विकार ही कहा जा सकता है, 'वात' नहीं। फिर आयुवद म दोषों में उसको क्या कहेंगे? कुछ भी कहें, आयुर्वेद में वह (सौदा) किसी दोष का वाचक नहीं; न यूनानी में ही वह 'वात' का परिचायक है। इस प्रकार यूनानी के 'सौदा' का आयुर्वेद के किसी दोष के साथ कथमपि सामंजस्य संभव नहीं। संभवतः आयुर्वेदीय मल वर्ग के किसी अंश का वह बोधक हो। किंतु यूनानी में रक्त, अस्थि आदि का वह (सौदा) पोषण करता है। अतः निष्कर्षतः उसको शरीर का धारक ही कहना ठीक है, किंतु आयुर्वेदीय मल वर्ग भी धारक होने के कारण शरीर को धारण करता है—"धातवो मलाख्याः" इसलिए 'मल' को कहा गया है। अर्थात् दोष-धातु के साथ 'मल' भी शरीर को धारण करता है। इस प्रकार यूनानी के 'सौदा' को आयुर्वेद का मलवर्गीय कहने में कोई अंतर विशेष नहीं प्रतीत होता। फिर वह यूनानी का दोष ही क्यों न हो?

यूनानी में 'सौदा' वात का वाचक नहीं और आयुर्वेदीय दोषों में भी वह किसी का बोधक नहीं। फिर यूनानी और आयुर्वेद में दोषों का समन्वय भला किस प्रकार किया जा सकता है? इससे स्पष्ट है, यूनानी के 'सौदा' की कल्पना आयुर्वेद की वात-कल्पना से सर्वथा भिन्न है और आयुर्वेद से विपरीत यूनानी की केवल यह एक ही कल्पना उसके दोष-चतुष्टय की कल्पना को निर्बल प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है।

समस्त रोगों का कारण दोषों को मानकर अतीत में जो आदर्श प्रस्तुत किया गया था, उसकी सम्यक् सिद्धि आयु-

वेंद की इस त्रिदोष-कल्पना से जिस प्रकार संभव हो पाती है; यूनानी के दोष चतुष्टय की कल्पना से वह संभव नहीं?

आयुर्वेद की यह मान्यता है कि त्रिदोष से बाहर व्याधि का अन्य कोई कारण नहीं :—"दोषा एव सर्वेषां व्याधि नामेक कारणम्"। विकार जातं त्रीन् दोषान्"। अ. हृ. "वात-पित्त श्लेष्माण एव मूलं तल्लिगंत्वादागमाच्च। "सर्वेषां च व्याधीनां वात-पित्त-श्लेष्माण एव मूलं। सु०

इस प्रकार त्रिदोष से बाहर व्याधि का कारण ढूंढ़ना चिकित्सा में यथार्थ नहीं है। जब त्रिदोष से अतिरिक्त व्याधि का दूसरा कोई कारण है ही नहीं; तब 'रक्त' का दोष बनाकर उसका भला क्या बनेगा? किन्तु जहाँ तक यूनानी में 'रक्त' को दोष मान लेने की बात है वह आयुर्वेद पर लादी नहीं जा सकती। यूनानी विद्वान् चाहे जिसको दोष मानें, उनकी मान्यता आयुर्वेद के लिए प्रमाण नहीं बन सकती।

यूनानी के दोषों की कल्पना का आयुर्वेद की त्रिदोष-कल्पना के साथ कोई मेल नहीं, यह उसके 'सौदा' के विश्लेषण से स्पष्ट है।

ऊपर आयुर्वेदीय दोषों में 'वात' की प्रधानता को स्पष्ट किया गया है। किंतु यूनानी में सर्वप्रमुख अखलात् (दोष) 'रक्त' को स्वीकार किया गया है। शैखुर्रईस आदि प्राचीन यूनानी वैद्य लिखते हैं कि खिल्ल (धातु या दोष) केवल 'रक्त' ही है। शेष दोष मसाले की हैसियत रखते हैं। अर्थात् अन्य दोषों का 'रक्त' से वही संबंध है जो मसाले का आहार के साथ होता है।

वस्तुत: यूनानी के दोषों का यह विवेचन केवल उसके स्थूल दृष्टिकोण का द्योतक है। आयुर्वेद के सूक्ष्म दर्शन से उसका स्पर्श तक भी नहीं। नि:सन्देह यूनानी की भांति ही आयुर्वेद में भी शरीर के लिए 'रक्त' का महत्त्वपूर्ण स्थान है, बल्कि उसके भी अधिक आयुर्वेद में उसको स्थान दिया गया है। इसीलिए उसको न केवल देह का मूल एवं धारक ही कहा गया है, बल्कि "रक्तं जीव इति स्थिति:" कहकर उसका महत्त्वपूर्ण प्रदर्शन किया गया है।

यूनानी में 'खून' से अतिरिक्त अन्य दोषों की हैसियत उन मसालों की-सी है, जो आहार का प्रसादन अर्थात सुधार करते हैं। यदि यही बात है तो मसालों के बिना आहार में पोषकतत्व मिल जायेंगे, जो शरीर के लिए आवश्यक होंगे। किंतु वात-पित्त-कफ के बिना भी शरीर की स्थिति क्या संभव है? यदि है तो आयुर्वेद इस दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं करता। वातादि आयुर्वेद में देह संभव के हेतु बताए गए हैं। यहाँ दोषों की कीमत यूनानी के मसालों से कहीं अधिक है।

आयुर्वेद में रक्त और दोष दोनों का ही महत्त्व शरीर के दृष्टिकोण से समान है और उनके एक दूसरे के बिना शरीर की स्थिति किसी प्रकार संभव नहीं। 'रक्त' शरीर का प्रमुख उपादान है, जबकि दोष उसका निमित्त। शरीर के लिए दोनों की अपेक्षा अनिवार्य है। यूनानी म जहाँ अखलातों की उपमा आहार के मसालों से दी गई है; वहाँ आयुर्वेद में सूर्य, सोम, अनिल से उनकी उपमा दी गई है। सूर्य-सोम-अनिल के बिना ब्रह्मांड का कायम रहना जिस प्रकार संभव नहीं; उसी प्रकार वात-पित्त-कफ के बिना इस शरीराण्ड का स्थिर रहना भी किसी तरह संभव नहीं। लेकिन मसालों के बिना आहार शरीर का पोषण करने में समर्थ है। तो क्या यूनानी के दोष शरीर के लिए आवश्यक नहीं—शरीर के लिए उनकी आवश्यकता क्या अपेक्षित नहीं?

यूनानी के दोषों की उत्पत्ति किस प्रकार होती है, जरा इस पर भी ध्यान दीजिए। यूनानी में मुक्त आहार आमाशय में पहुँचकर परिपक्व होते हैं और यवमण्ड की भांति श्वेत और पतले बन जाते हैं। यूनानी में इसको 'केलूस' कहते हैं। वह कैलूस आमाशय और अन्त्र से पूरा का पूरा प्रतिहारिणी शिराओं की सूक्ष्मतम शाखाओं द्वारा शोषित होकर यकृत में पहुँचता है और यकृत की क्रियाओं से फिर परिपक्व होकर शोणित श्लेष्मा-पित्त और 'सौदा' इन चार भागों में विभक्त हो जाता है। यूनानी में इन्हें ही अखलात अरबया या दोष चतुष्टय कहते हैं।

इस विश्लेषण का निष्कर्ष यह हुआ कि यूनानी के दोष पूरे के पूरे आहार के परिणाम हैं। यूनानी में आहार एवं आहार रस के परिणाम होने के बाद दोष अस्तित्व में आते हैं। न केवल आहार से पूर्व बल्कि आहार रस के परिपाक से पूर्व भी यूनानी के दोष अस्तित्व शून्य होते हैं, बल्कि होते ही नहीं। अर्थात् यूनानी दोष की उत्पत्ति आहार परिपाक के परिणामस्वरूप होती है। किन्तु आयुर्वेद में 'रक्त' को छोड़कर वात-पित्त-कफ की उत्पत्ति न केवल आहार से ही पूर्व एवं शरीरोत्पत्ति से पूर्व गर्भस्थ शरीर में बल्कि शुक्र शोणित के संयोग से भी पूर्व पृथक्-पृथक् शोणित में भी

# रक्त दोष नहीं—सुश्रुत का अभिमत

**वैद्य देवदत्त शास्त्री, विद्यावाचस्पति**

(पूर्वतोऽनुवृत्तः)

दोषों की संक्षिप्त प्रकार विधियों में निर्दिष्ट 'शोणित' यदि दोष है तो दोषों के विस्तृत प्रकार भेदों में उसका भी नाम क्यों नहीं और जब दोषों के विस्तृत प्रसार भेदों में उसका नाम नहीं तो उनके संक्षिप्त प्रसार भेदों में ही उसका निर्देशन क्यों? जब दोषों के विदग्ध वासठ प्रसार भेदों का प्रतिनिधित्व वहाँ सात दोष-भेद (पन्द्रह नहीं, क्योंकि दोषों के संपूर्ण प्रसार भेदों में 'शोणित' का निर्देशन नहीं है) करते हैं तो शेष पन्द्रह में से आठ 'शोणित'-भेद वहाँ किसका प्रतिनिधित्व करते हैं? निःसन्देह चिकित्सा में दोषों के साथ रस भेदों की अंशांश कल्पना की गई है। इसलिए जिस प्रकार विदग्ध एवं विस्तृत बासठ दोष-भेदों का प्रतिनिधित्व वहाँ सात दोष-भेद करते हैं तो बासठ रस भेदों का प्रतिनिधित्व भी संक्षिप्त दोष-भेदों के साथ कोई न कोई अवश्य होना चाहिए? तब इन संपूर्ण रस-भेदों का प्रतिनिधित्व वहाँ कौन करता है? निःसन्देह शोणित और उसके आठ भेद। वस्तुतः दोषों में संक्षिप्त प्रसार भेदों के साथ निर्दिष्ट 'शोणित' रसों का प्रतिनिधि है। क्योंकि दोषों के संपूर्ण विस्तृत प्रसार भेदों में 'शोणित' का निर्देश नहीं। इसलिए उनकी संक्षिप्त प्रसार विधियों के साथ उसका कथन उसके दोष होने का प्रतिपादन नहीं करता। क्योंकि वहाँ 'शोणित' 'रस' का वाचक है।

वस्तुतः वातादि के साथ निर्दिष्ट 'शोणित' ही संपूर्ण रस-भेदों का प्रतिनिधित्व करता है। दोषों के संपूर्ण प्रसार भेदों का प्रतिनिधित्व जिस प्रकार वहाँ संक्षिप्त प्रसार भेदों में दोष करते हैं, उसी प्रकार वहाँ संपूर्ण रस भेदों का प्रतिनिधित्व 'शोणित' 'रस' का बोधक है, इसलिए संहिताकार ने कहा है "त्रिषष्ठिधा रसभेदानां तत्प्रयोजनमुच्यते"।

संहिताकार की यह उक्ति भी तभी चरितार्थ होती है; जब वहाँ 'शोणित' के निर्देश को इन संपूर्ण रस भेदों का प्रतिनिधि मान लें। अन्यथा 'शोणित' का निर्देशन वहाँ निष्प्रयोजन सिद्ध होगा। क्योंकि दोषों के संपूर्ण प्रसार भेदों में उसका कहीं निर्देश नहीं है। अतः संपूर्ण रस भेदों का प्रतिनिधि वहाँ 'शोणित' को स्वीकार करना ही पड़ेगा, क्या वहाँ वह इसका प्रतिनिधि है ही आखिर 'शोणित' "रसस्यरागकृत्" ही तो है?

इस प्रकार विदग्ध 'दोष' तथा 'रस' यथासंख्य मिलकर व्याधि को जन्म देते हैं एवं उनके अविदग्ध भेद मिलकर शरीर को स्वास्थ्य प्रदान करते हैं।

आयुर्वेद के पंडितों को वातादि के साथ वहाँ 'शोणित' को देखकर चकराना नहीं चाहिए; न ही उन्हें इसको दोष मानकर अपनी अज्ञानता का परिचय ही देना चाहिए। संहिताकार ने न केवल 'रक्त' को दोष ही माना, बल्कि त्रिदोष का प्रतिपादन भी किया है।

संहिताकार ने सात प्रकृति पुरुष बताए हैं:—"दोषैः पृथक् द्विशः समस्तैश्च"। यदि संहिताकार 'रक्त' को भी दोष मानते तो पुरुष-प्रकृतियाँ 'नौ' होती न कि सात? आखिर दोषों से रक्त क्यों छोड़ दिया जाता? इसी प्रकार संहिताकार ज्वर के आठ भेद मानते हैं:—"दोषैः पृथक् समस्तैश्च द्वन्द्वैरागन्तुरेव च"। यदि आचार्य के मत में 'रक्त' भी दोष होता तो अवश्य ही ज्वर के दस भेद वे मानते न कि आठ? एवं 'दोषैः' से यहाँ वात-पित्त-कफ ही क्यों लिए गए? चिकित्सा कार्य का विभाग भी संहिताकार ने त्रिदोष अर्थात् वात-पित्त-कफ के अनुसार ही किया है। (देखिए सू. २१।३१।) यदि 'रक्त भी उनके मत में दोष होता तो चिकित्सा कार्य के विभागों में उसका निर्देशन क्या आवश्यक नहीं होता? ऋतुओं के अनुसार संकुचित एवं प्रकुपित होना भी संहिताकार ने वात-पित्त-कफ का ही बताया है। उन्होंने 'रक्त' को भी यदि दोष माना है तो उसके संचय-प्रकोप का निर्देशन उन्होंने वहाँ क्यों नहीं किया?

"हरेद्वसन्ते श्लेष्माणः पित्तं शरदि निर्हरेत्।
वर्षासु शमयेद्वायुम्. . . . . .इत्यादि।

यदि संहिताकार के मत में 'रक्त' भी दोष है तो उसको यहाँ क्यों छोड़ गए? जो लोग रक्त का प्रकुपित होना मानते हैं और इसी कारण उसको भी दोष कह देने से नहीं हिचकते वे बताएँ कि यदि 'रक्त' प्रकुपित एवं संचित होता

है तो उसका निर्हरण यहाँ संहिताकार क्यों भूल गए? हृदय रोग के चार भेद संहिताकार ने बताए हैं पृथक्-पृथक् एवं सन्निपात से—"चतुर्विविधैः सदोषैः"। दोषों से यहाँ उन्होंने वात-पित्त-कफ ही ग्रहण किया है। यदि 'रक्त' भी दोष है तो यहाँ हृदय रोग के चार भेद ही क्यों बताए गए? 'रक्त' को भी दोषों में समावेश करके पाँचवा भेद एक 'रक्त' का भी क्यों नहीं मान लिया गया? एवं दोषों से यहाँ वात-पित्त-कफ ही गृहीत हैं, ऐसा क्यों? उदर रोगों के आठ भेद संहिताकार ने बनाए हैं, चार दोषज सन्निपात और चार अन्य—"पृथक् समस्तैश्चेह दोषैः"। यहाँ दोषों से वात-पित्त-कफ ही गृहीत है। अन्यथा 'रक्त' भी यदि दोष होता तो उदर रोग आठ के बजाय 'नौ' क्या नहीं हो जाते और 'दोषैः से क्या रक्त भी नहीं ले लिया जाता? मूत्रकृच्छ्र भी आठ प्रकार का माना गया है। पृथक्-पृथक् दोषों से तीन, एक सन्निपातज और चार अन्य—"वातेन, पित्तेन कफेन सर्वैस्तथा"। वात-पित्त-कफ के बाद 'सर्वै'। यहाँ 'सर्वैः' से वात-पित्त-कफ ही गृहीत है 'रक्त' नहीं, ऐसा क्यों? अरोचक पाँच प्रकार का माना गया है पृथक्-पृथक् दोषों से तीन, एक सन्निपातज, एवं एक चित्तविपर्यय—"दोषैः पृथक् सह च पित्त विपर्ययात्"। यदि 'रक्त' भी दोष होता तो 'दोषैः' से यहाँ वह भी सुलभ हो जाता। इस प्रकार अरोचक पाँच के बजाय 'छः' हो जाता। उन्माद व्याधि पाँच प्रकार की कही गई है; चार पृथक्-पृथक् दोषों से तथा एक मानसिक कारणों से :—एकैकशः समस्तैश्च दोषैरत्यर्थ मूर्छितैः। मानसेन च दुःखेन स पंचविध उच्यते।"

निःसन्देह यदि 'रक्त' भी दोष है तो एक और उन्माद व्याधि हो जानी चाहिए। यहाँ 'समस्तैर्दोषैः' से वात-पित्त-कफ ही लिए गए हैं, ऐसा क्यों? इस प्रकार वात-पित्त-कफ के अतिरिक्त 'दोष' से कहीं भी 'रक्त' का ग्रहण नहीं होता।

दोषों के संबंध में न केवल संदेह ही दूर किया है बल्कि संहिताकार ने उनका स्पष्ट संख्यात्मक परिगणन भी किया है।

"त्रय एव पृथक् दोषाः उ० तं० ६६।१०।" "त्रयो दोषाः उ० तं० ६६।११। "त्रयो दोषाः बलस्योक्ताः "सू. १५।२५। "दोषत्रय यस्माच्च" चि. ३५।२२। "शिरोरोगे त्रिदोषोत्थे त्रिदोषघ्न विधिहितः" उ० तं० २६।२४। "दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव" उ० तं० २५।१३

ऊपर त्रि-त्रय से सर्वत्र 'तीनों' दोष गृहीत हैं, न कि 'तीन'। त्रि-त्रय शब्दों से सर्वत्र वात-पित्त-कफ—ये तीन ही क्यों लिए गए हैं? यदि रक्त भी दोष है तो 'तीन' में कहीं भी तो उसको स्थान मिलना चाहिए था?

यद्यपि धातु के जिनमें 'शोणित' भी सम्मिलित है तथा 'मल' के पृथक्-पृथक् निर्देशन से दोषों से 'तीन दोषों का स्पष्टीकरण भलीभाँति हो जाता है, तथापि "त्रयो दोषाः धातवश्च पुरीषंमूत्रमेवच" उ० तं० ६६।६। में संहिताकार के 'त्रयो दोषाः' के निर्देशन से वह और अधिक स्पष्ट हो जाता है। "तेनाशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः" नि० ७।१२। आश्चर्य है आचार्य ने यहाँ एक ही स्थल पर 'रक्त' को दोषों से पृथक् कर दिया है। दोषों से 'रक्त' का पृथक्त्व प्रमाणित करने का क्या इससे भी अधिक किसी प्रमाण की आवश्यकता है?

वस्तुतः रक्त दोष नहीं। कुछ लोग 'रक्त' को दोष प्रमाणित करने के लिए यूनानी पद्धति का सहारा लेने का प्रयत्न करते दिखाई देते हैं। यूनानी में 'दमा' अथवा 'खून' को अखलात अर्थात् दोष माना गया है। यदि 'रक्त' को दोष माननेवाले यह समझते हैं कि आयुर्वेद-यूनानी का अनुसरण करता है तो बिना हिचक यूनानी पद्धति के अनुसार आयुर्वेद में भी 'रक्त' को दोष मान लेने के लिये वे स्वतन्त्र हैं। किंतु उन्हें यह ज्ञात होना चाहिये कि आयुर्वेद यूनानी का अनुसरण नहीं करता, न आयुर्वेद के संहिताकार यूनानी पद्धति का ही अनुसरण करते हैं। इसके अतिरिक्त यदि यह कहा जाए कि यूनानी ही रूपांतर से आयुर्वेद का अनुसरण करता है तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी। सुश्रुत और चरक जैसी आयुर्वेदिक संहिताएँ यूनानी सभ्यता के प्रारंभ होने से बहुत पूर्व विश्वविश्रुत हो चुकी हैं। एवं सुश्रुत और चरक, संभवतः आज भी 'सरक' और 'ससरत' के नाम से वहाँ प्रसिद्ध है।

प्रसिद्ध इतिहासवेत्ताओं ने कई प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि वर्तमान चिकित्सा-शास्त्र भारतीयों की ही देन है। डॉ० वाज, डॉ० रायले, डॉ० ऐलनवेल आदि विद्वानों ने इस बात का सोत्साह समर्थन किया है कि भारतीयों का आयुर्वेद ही समस्त चिकित्साओं का आदि मूल है। प्रसिद्ध हकीम जालीनूस अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि मिश्र देश के निवासियों ने आयुर्वेद की विद्या हिंदुस्तान से प्राप्त की और मिश्र से यूनान तथा अरब में इस विद्या का रूपान्तर

स्तित्वपूर्ण होते हैं :—"सप्तप्रकृतयो भवन्ति-दोषैः पृथक् समस्तैश्च"—सु. शा.। संहिताओं में पुरुष-प्रकृतियों निर्देश इस बात के साक्षात् प्रमाण हैं ये सात कृतियां सहज होती हैं अर्थात् इनका निर्माण गर्भ ही होता है।

"शुक्र शोणित संयोगे यो भवेद्दोष उत्कटः कृति जायते"।। अर्थात् शुक्र शोणित का संयोग होने पर दोष का आधिक्य होता है, उसके अनुसार ही मनुष्य प्रकृति बनती है।

वस्तुतः आयुर्वेद के दोष यूनानी दोषों की भांति आहार- मनुष्य के आहार के परिणामस्वरूप नहीं बल्कि गर्भ ही अस्तित्व पूर्ण होते हैं, जिनपर शरीर का स्वस्थ और स्वस्थ होना निर्भर है।

इस प्रकार दोषों की कल्पना और उनकी उत्पत्ति में युर्वेद और यूनानी का आधारभूत अंतर स्पष्ट है। र भी यूनानी और आयुर्वेद में 'रक्त' का महत्त्व समान । 'रक्त' के संबंध में मतभेद है तो केवल उसके वर्गीकृत करण में है। यूनानी में 'रक्त' दोषवर्गीय है जब कि युर्वेद में वह दूष्यवर्गीय अर्थात् दोषों से दूषित होनेवाला। वतः यूनानी में 'रक्त' व्याधि का कारण हो। किन्तु युर्वेद में व्याधि के कारण केवल त्रिदोष—वात-पित्त-कफ है। क्योंकि 'रक्त' न तो स्वयं दूषित होता है; न स्वयं प्रकुपित ही होता है। बल्कि, दोष ही उसको करते हैं एवं प्रकुपित भी। अतः आयुर्वेद में किए जाने के कारण रक्त दूष्य हुआ न कि ?

आयुर्वेद की भांति यूनानी में भी 'रक्त' एक परिपक्व प्रमाणित है। तब परिपक्व होने के कारण वह पोषक ही होगा, न कि दूषित करनेवालों की तरह दोष? अतः इससे (यूनानी दृष्टिकोण से) भी यही सिद्ध होता है कि 'रक्त' दोष नहीं बल्कि दूष्य है। इसके बाद भी यूनानी में 'रक्त' को दोष माना जाए तो यह केवल उनके अपने मन की ही बात हुई; फिर इसके लिए क्या कहा जा सकता है? लेकिन उनकी यह कल्पना निष्प्राण एवं निष्प्रमाण है और उन लोगों के दिमाग का तो दिवाला ही कहना चाहिए, जो यूनानी की इस निष्प्रमाण कल्पना को आयुर्वेद के लिए प्रमाण मान लेने का प्रयत्न करते दिखाई दे रहे हैं।

रक्त आयुर्वेद में दोष नहीं। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि जो लोग 'रक्त' को दोष मान लेने का दोष सुश्रुत को देते हैं, बल्कि सुश्रुत से कुछ प्रमाण भी वे प्रस्तुत करते हैं, उसके खंडन और अपने मन के त्रिदोष के मण्डन में प्रमाण भी वे वहीं से उपस्थित करते हैं। ऐसे लोगों को चाहिये कि दोषारोपण से पूर्व वे संहिताओं का अनुशीलन करें, उनकी शब्द-योजनाओं को समझें और यथा-प्रसंग किसी बात को समझ लेने के बाद ही आरोप-प्रत्यारोप करने की चेष्टा करें। अन्यथा "पंकोहि क्षिप्तः क्षेप्तुः पतति मूर्धनि" की इस कहावत को ही चरितार्थ करेंगे। विलंबन के सिवा तब उन्हें और कुछ नहीं मिलेगा।

'रक्त' दोष नहीं, सुश्रुत ने भी उसको दोष नहीं माना, यह प्रमाणित किया जा चुका है। अन्य संहिताकारों ने तो 'रक्त' को दोष माना ही नहीं। यूनानी में भी 'रक्त' के विश्लेषण से आयुर्वेद के मत का ही प्रतिपादन होता है। तब 'रक्त' को दोष कहना अपनी अनजानता तथा "कंचुकमेव निन्दति पीनस्तनी नारी" की कहावत को ही चरितार्थ करता है। समाप्त

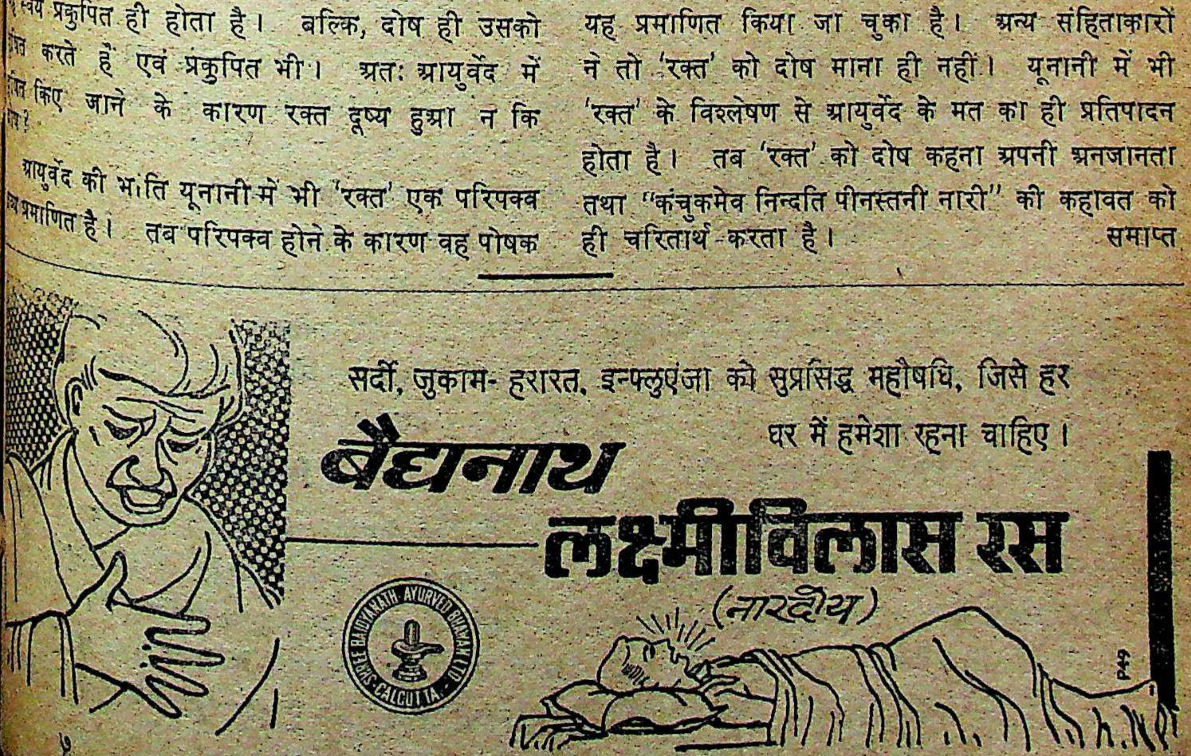

सर्दी, जुकाम- हरारत, इन्फ्लुएंजा की सुप्रसिद्ध महौषधि, जिसे हर घर में हमेशा रहना चाहिए।

बैद्यनाथ

लक्ष्मीविलास रस

(नारदीय)

SHREE BAIDYANATH AYURVED BHAWAN LTD. CALCUTTA

# भगन्दर

**कविराज गौरीशंकर श्रीवास्तव, आयुर्वेदाचार्य**

मलद्वार के चारों तरफ एक प्रकार का ऐसा नासूर होता है जिससे हर वक्त पीव सरीखा एक तरल पदार्थ रिसता रहता है। इस दुष्ट नालीक्षत को भगन्दर कहते हैं। टट्टी फिरते समय या साधारणतया मलद्वार से पीव बहती रहती है। इसका स्राव कभी बिलकुल कम हो जाता है और कभी फिर एकाएक फोड़ा-सा होकर फट जाता है और पीव झरने लगती है। मन में सदैव एक प्रकार की अशांति बनी रहती है। चलते समय अथवा पाखाना होते समय बड़ा कष्ट होता है।

## रोगोत्पत्ति के कारण

१. अतिसार, अर्श, पेचिस आदि के लगातार वेग के कारण मलद्वार की आकुञ्चकपेशी का संचालन होता है जिससे उसमें प्रदाह होकर फोड़ा बन जाता है। इस फोड़े के फटने से मलद्वार के भीतर या बाहर नासूर बन जाता है।

२. कभी-कभी मलद्वार के भीतर म्यूकस मेम्ब्रेन में क्षत या घाव हो जाता है जो बढ़कर चमड़े के पास आ जाता है और भगन्दर को उत्पन्न करता है।

३. यक्ष्मा रोग से पीड़ित व्यक्तियों को भी इस रोग से आक्रान्त होते पाया जाता है।

## प्रभेद

पाश्चात्य मतानुसार इसके तीन भेद हैं---

(१) Complete Fistula **(सीधा भगन्दर)**---यह गुदाद्वार के भीतर और चमड़े के ऊपर सीधा खुलता है। प्रोव प्रविष्ट कराने से वह रेक्टम के भीतर न जाकर रुक जाएगा। तब बाएँ हाथ की उँगली मलद्वार के भीतर डालते ही उस प्रोव की नोक अँगुली में स्पर्श होगी।

(२) Blind Internal Fistula **(अदृश्य आभ्यन्तरिक भगन्दर)**---भीतरवाला सुराख मलद्वार की आकुञ्चक पेशी से होकर रेक्टम के भीतर खुलता है।

(३) Blind External Fistula **(अदृश्य वाह्य भगन्दर)**---नासूर की एक शाखा मलद्वार और अण्डकोष के बीच वाले स्थान पर चमड़े के नीचे होकर मलद्वार से बहुत दूर नितम्ब में जाकर खुलती है।

**नोट**---यदि भगन्दर के भीतर से पेशाब निकले तो उसे यूरीनरी फिस्चुला कहते हैं। मलद्वार के अन्दर से पेशाब नहीं निकलता।

**आयुर्वेद का मत**---

आयुर्वेद के मतानुसार इसके पाँच भेद है---

(१) **शतपोतक**---अनेक व्रणों में से मल-मूत्र-वीर्य आदि का निरन्तर स्राव होता रहता है। इसमें बहुत-से छिद्र होते हैं।

(२) **उष्ट्रग्रीव भगन्दर**---यह पित्तज है। गुदा-प्रदेश में आश्रित लालवर्णवाली पकनेवाली पिडिका उत्पन्न करता है जिससे दुर्गन्धियुक्त स्राव होता है। इसका छिद्र ऊँट की गर्दन की तरह उभरा हुआ रहता है।

(३) **परिस्रावी (कफज) भगन्दर**---यह भगन्दर खुजलीयुक्त, गाढ़ा स्राव देनेवाला, कठोर, मन्द वेदनायुक्त और श्वेताभ होता है।

(४) **शम्बूकार्तव भगन्दर**---यह अनेक वर्णों वाली अनेक प्रकार की पीड़ा देने वाली, गाय के स्तन के आकार की पिडिका से उत्पन्न होता है और सन्निपातज है। इसका स्राव घोंघे के आर्तव के सदृश्य होता है।

(५) **उन्मार्गी भगन्दर**---नाड़ी व्रण में कृमि उत्पन्न होकर अनेक प्रकार के व्रणों और मुखों से मार्ग बनाते हैं तब उन्मार्गी भगन्दर बनता है। यह आगन्तुक है।

इनमें शम्बूकार्तव और उन्मार्गी भगन्दर असाध्य है, शेष तीन कष्टसाध्य।

## चिकित्सा

आधुनिक ऐलोपैथी में भगन्दर की एकमात्र औषधि अस्त्र-चिकित्सा ही है। आयुर्वेद में भी इसकी अनेक अवस्थाओं में शल्य का विधान निर्दिष्ट है। फिर भी अनेक आयुर्वेदिक औषधियों के सेवन-लेपन आदि से भी आशाजनक लाभ होता है और होम्योपैथी में तो केवल

आभ्यन्तरिक औषधि-सेवन के द्वारा इस रोग को पूर्णरूपेण उन्मूलन किया जा सकता है।

## आयुर्वेदिक औषधियाँ

१. नववार्षिक गुग्गुलु—

| | |
|---|---|
| त्रिफला | ३ तोले |
| गुग्गुलु शुद्ध | ५ ,, |
| पीपल | १ ,, |

इसकी गोलियाँ बनाकर बलाबल अनुसार सेवन करे। इससे भगन्दर, शोथ, गुल्म और बवासीर नष्ट होता है।

२. निशाद्य तैल—

हल्दी
आकका दूध
सेंधा नमक
गूगल
कनेर
इन्द्रयव

इनके कल्क से तैल को सिद्ध कर के प्रयोग करे।

३. इस क्वाथ से भगन्दर के व्रणों को धोइए—

तिल
मालकांगनी
कूठ
कोएली सोया
निशोथ
जमालगोटा
कलिहारी

ीना, मध्यप्रदेश }

अथवा

४. तिल
हरड़
हलदी
खरैटी
लोध
नीम के पत्ते
दारुहलदी

इनका क्वाथ बनाकर भगन्दर के व्रणों को धोने से वे शुद्ध होकर सूखने लगते हैं।

५. मलहम—

निसोत
जमालगोटा
नीम के पत्ते
तिल
मजीठ
मुलेठी

इनको पीस कर छान कर १०० बार धुले हुए गाय के नवनीत में मिलाकर प्रयुक्त करिए।

भगन्दर के दुष्ट व्रण यदि सूखने में न आवें तो उनपर निम्न प्रयोग करिए—

६. विलाव की हड्डी को त्रिफला के स्वरस में पीस कर लेप करिए।

वैद्यनाथ बंग भस्म

असंयम से पैदा होनेवाले रोगों तथा दुर्बलता को दूर कर शरीर को ताकत देती है। विशेष जानकारी के लिए वैद्य से सलाह लें।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

# रसशास्त्रीय संशोधन—एक सामान्य विवेचन

**श्री र० द० जायसवाल**

संसार में मानव की जब से सृष्टि हुई है तभी से रोगों की सृष्टि भी मानी जा सकती है, भले ही आरम्भ में रोगों का स्वरूप अत्यन्त सामान्य और हल्के प्रकार का रहा हो। आन्तरिक रोगों की अपेक्षा आगन्तुक रोगों तथा बाह्य परिस्थितिजन्य शल्यात्मक कष्टों की उत्पत्ति पहले हुई होगी। अपनी जीविका की खोज में मानव को जंगलों में पशुओं का सामना करना पड़ा होगा। कभी-कभी पशुओं के आक्रमण, पेड़ों के टकराने या मार्ग में गिर पड़ने आदि से शरीर पर व्रणादि हुए होंगे। आन्तरिक कष्टों में सर्वप्रथम सम्भवत: उदरशूल, अतिसार, विबन्ध और ज्वरादि की सृष्टि हुई होगी जिनका सम्बन्ध सीधा भोजन और विपाक-प्रक्रिया से है। किन्तु जिस प्रकार क्षुत्पिपासादि अन्य मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति वह अपने नैसर्गिक ज्ञान और प्रेरणा से करता था वैसे ही प्रारम्भिक शारीरिक रोगों व कष्टों का उपचार भी वह अपने स्वाभाविक ज्ञान से कर लेता होगा। ऐसा ज्ञान केवल मनुष्यों में ही नहीं, पशु-पक्षियों में भी होता है, यह देखा गया है। इस प्रकार का उपचार तीन प्रकार का हो सकता है :—

(१) आहार में परिवर्तन करके।
(२) विहार या व्यवहार में परिवर्तन करके।
(३) बाह्यवस्तु विशेषत: वनस्पति आदि की सहायता से।

बाह्य वस्तुओं की सहायता से उपचार करने में पृथ्वी पर स्वत: उत्पन्न होने वाली वनस्पतियों का सर्वप्रथम उपयोग हुआ होगा। क्योंकि मानव को अपने चारों ओर वनस्पतियों का वैभव ही दिखाई पड़ता होगा। जीवन जैसे-जैसे बढ़ता गया, वनस्पतियों का ज्ञान भी वृद्धि करता गया। प्रत्येक देश के प्राचीन चिकित्साशास्त्र वनस्पतियों के प्रयोगों से ही भरे पड़े हैं। भारत में इस शास्त्र का जितना अध्ययन हुआ वह आज सर्वविदित है। चिकित्सा को धीरे-धीरे शास्त्रीयता प्राप्त हुई। औषध-शास्त्र से जीवन की अनेक संभावनाएँ उत्पन्न हुईं, नयी आकांक्षाएँ जागृत हुईं। औषधशास्त्र से न केवल रोग-विनाश अपितु जरा-विनाश और मृत्युविनाश तक भी हो—ऐसी अभिलाषा उत्पन्न हुई। इस प्रकार चिकित्सा-शास्त्र के निम्न उद्देश्य बन गये :—

### चिकित्सा के उद्देश्य

(१) स्वास्थ्य स्थापना और सुधार।
(२) रोग-विनाश।
(३) जरा-विनाश जरा उत्पन्न ही न हो और उत्पन्न हो जाय तो उसको नष्ट किया जा सके अर्थात् रसायन व कायाकल्प।
(४) वीर्य-वर्धन (वाजीकरण) सबल, सुन्दर, सत्सन्तति उत्पन्न करने की सामर्थ्य में वृद्धि।
(५) मरण विनाश।

वनस्पतियों के द्वारा इन उद्देश्यों की प्राप्ति की भारतीय चिकित्सा-शास्त्र में पर्याप्त चेष्टा हुई और काफी सफलता भी मिली। साथ ही समाज की बदलती हुई परिस्थितियों में—सरल से बदलते हुए जटिल समाज में औषध के स्वरूप-मात्रा और परिणाम के विषय में कुछ विशेष परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत हुई। यथा :—

### नई आवश्यकताएँ

(१) औषध की मात्रा अत्यल्प होनी चाहिए जिससे रोगी को लेने में कष्ट कम-से-कम हो।

(२) औषध अरुचिकर न हो—विशेषत: बच्चों को औषध अत्यल्प और रुचिकर होनी ही चाहिए।

(३) क्षिप्र आरोग्यदायी हो—शीघ्र परिणाम दिखाने वाली औषध की आकांक्षा और आवश्यकता तो सदा से रही है किन्तु इस बदलती हुई समाज-रचना में यह गुण प्रथम द्रष्टव्य हो गया है।

जैसा कि रसेन्द्रसार-संग्रह कार ने पारद की विशेषता बतलाते हुए लिखा है :—

> "अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसंगतः।
> क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योऽधिकोरसः" ॥

(४) अल्प मूल्य की हो—भारत जैसे देश में आजकल इस गुण का बहुत महत्त्व हो गया है। प्राचीनकाल में यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण नहीं था क्योंकि चिकित्सा आजकल के समान व्यवसाय नहीं मानी जाती थी। अतः आजकल इस गुण को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता।

**तान्त्रिकों की प्रेरणा व नई खोज**

ऊपर लिखे तीन गुणों तथा पूर्ववर्णित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए चिकित्सकों की दृष्टि सृष्टि पर तीव्रता से पड़ने लगी और परिणामस्वरूप रसचिकित्सा का भारत में जन्म हुआ। किन्तु वनस्पति-चिकित्सकों की अपेक्षा रसचिकित्सा के आविष्कार में एक अन्य वर्ग का हाथ अधिक था। वस्तुतः वही वर्ग इसका आविष्कारक माना जा सकता है—वह वर्ग था-तान्त्रिकों का वर्ग। इस वर्ग का इस क्षेत्र में आने के अन्य कारण भी थे।

भारत दर्शन प्रधान-धर्म प्रधान देश रहा है। आत्मज्ञान की प्रबल आकांक्षा उसमें रही है। मोक्ष-प्राप्ति उसका परम उद्देश्य रहा है। किन्तु मुक्ति सरल नहीं है उसमें अनेक जीवन लग सकते हैं। उसके लिए एक विशेष जीवनक्रम-एक विशेष तपश्चर्या की आवश्यकता होती है। उसके लिए योगशास्त्र जैसे शास्त्रों का आविष्कार भी हुआ, धीरे-धीरे वह शास्त्र एक अत्यन्त जटिल प्रक्रियाबहुल शास्त्र बन बैठा जिसके अनुसार जीवन-सिद्धि प्राप्त करने के लिए पूरा जीवन भी पूरा नहीं पड़ता। अतः जीवन को बढ़ाने और उसे स्वस्थ व सबल रखने की आवश्यकता प्रतीत हुई जिससे योग-क्रियाओं को पूर्ण करके इसी जीवन में मोक्ष प्राप्त किया जा सके अथवा विशेष सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकें। यह आकांक्षा सामान्य व्यक्ति की स्वास्थ्य-प्राप्ति, रोग-निवारण, जराविनाश और मृत्यु पर विजय की आकांक्षा से पृथक् थी। अतएव, वह तांत्रिक वर्ग प्रयोगों में जुट पड़ा और चिकित्सा-क्षेत्र में एक नवीन क्रांति हुई। भारत में इन तांत्रिकों का युग ई० ११०० से १३०० तक माना जाता है। इस काल में वनस्पतियों के अतिरिक्त धातु-उपधातु-रत्नोपरत्नों के गुणों का आविष्कार हुआ। पारद सब का मूर्धन्य रहा, वैसे कुछ खनिजों का फुटकर प्रयोग चिकित्सा में तान्त्रिक काल से पूर्व भी होता रहा, किन्तु रस-चिकित्सा का शास्त्रीय रूप ई० ११०० से १५५० तक ही पल्लवित और पुष्पित हुआ यद्यपि कुछ विद्वान् रस-चिकित्सा को को बहुत प्राचीन मानते हैं। फिर यह ऐतिहासिक तथ्य है कि जिस युग में भारत के चिकित्सक पारद-संखिया-लोहादि का अन्तर्बाह्य सभी रोगों में खुलकर व्यवहार करते थे उस युग में पश्चिम के चिकित्सक अंधकार में ही थे। अरब के लोग ही भारत से इस विद्या को पश्चिम में ले गए जिसके आधार पर आधुनिक विज्ञान की नींव रक्खी गई।

**कठिनाइयाँ— तीन प्रश्न**

रस-शास्त्र के आविष्कर्ताओं का मार्ग सरल नहीं था ; उनके सामने अनेक कठिनाइयाँ थीं। यह स्पष्ट है कि मानव शरीर के लिए आत्मसात् होनेवाले द्रव्यों में प्राणिज द्रव्य सरलतम है, किन्तु शताब्दियों से मानव वानस्पतिक आहार पर अधिक रह रहा है, अतः सम्भवतः प्राणिज द्रव्यों से भी अधिक वानस्पतिक द्रव्य उसके लिए सात्म्य हो गये हैं। यही कारण है कि वनस्पति वर्ग की ओषधियाँ उसके लिए सरलता से आत्मसात् हो जाती हैं। इसके लिए जिस गुण की प्रधान आवश्यकता है वह है औषध द्रव्य की शरीर के अनुरूप घुलनशीलता। अतः रस-शास्त्रियों के समक्ष सर्वप्रथम यह प्रश्न उठा कि खनिजों को—पारद-लोह-सुवर्णादि को शरीर में आत्मसात् करने के लिए घुलनशील कैसे बनाया जाय? मानव के इस पार्थिव शरीर में कुछ पार्थिव द्रव्यों, खनिजों की उपस्थिति तो रहती है, किन्तु बाह्य खनिजों से शरीर का सीधा औषधात्मक सम्बन्ध कैसे स्थापित किया जाय? वनस्पति के द्वारा वह सम्बन्ध स्थापित है यह ज्ञान तो था, किन्तु इच्छापूर्वक उपचार के निमित्त किसी खनिज का शरीर में प्रवेश किस प्रकार हो सकता है—यह था प्रथम प्रश्न। इसीके उत्तर पर भावी आविष्कार निर्भर था। शायद इसका उत्तर न मिलने पर ही अन्य देशों में और इस देश में भी उससे पूर्व रस-शास्त्र का उद्भव नहीं हो सका था।

दूसरा प्रश्न था खनिज द्रव्यों, विषों और उपविषों की विषमयता, जो शरीर या शरीर धातुओं का ही नाश कर देती है—कैसे नष्ट की जाय। इसके पीछे यह मूलभूत आस्था तो काम कर ही रही थी कि यह विष भरा संसार अमृत भरा हो सकता है। सृष्टि की कोई वस्तु एक पक्षीय-एकांगी नहीं हो सकती। मानव के विनाश के लिए ही सब कुछ नहीं है, मानव के विकास के लिए—मानव के अमरत्व के लिए भी सब कुछ हो सकता है। यह दुखमय

संसार सुखमय बन सकता है। बस, वह कला सधनी चाहिए। इस कला की साधना में ही मानव संस्कृति का गौरव है।

इस प्रकार ये दो कठिनाइयाँ मुख्य थीं—

(१) अघुलनशील द्रव्यों—खनिजों—को घुलनशील शरीर में आत्मसात् होने योग्य—बनाना।

(२) द्रव्यों की विषमयता को निर्विषता में परिवर्तित करना। इन दोनों की सिद्धि के पश्चात् जो तीसरा प्रश्न स्वयं उठा—वह था—

(३) इन द्रव्यों के निर्विष तथा उपयोग योग्य होने के पश्चात् उनमें गुणों का रोग विनाशक शक्ति का अधिक अधिष्ठान किस प्रकार किया जाय। भारतीय रस-चिकित्सा शास्त्र की समस्त प्रक्रिया आप इन तीन प्रश्नों के उत्तर में ही पायेंगे।

### अन्य सम्भावनाएँ

यहाँ इस बात का संकेत करना अनुचित न होगा कि जैसे-जैसे पारदादि खनिजों की विभिन्न प्रक्रियाएँ आविष्कृत होती गईं वैसे-वैसे इन प्रक्रियाओं से कुछ नवीन आकांक्षाएँ और सम्भावनाएँ भी जागृत होने लगीं। ऐसी आकांक्षाओं में सर्वोत्कृष्ट आकांक्षा थी स्वर्ण-निर्माण की। इतिहास साक्षी है कि रस तान्त्रिकों की यह आकांक्षा पूर्ण होकर रही और यह प्रक्रिया रस-शास्त्र की एक विशेष शाखा बन गई।

इसके अतिरिक्त तान्त्रिकों ने अन्य सम्भावनाओं को भी जन्म दिया जो सामान्य तया यौगिक सिद्धियों के रूप में आती हैं जैसे आकाश-गमनादि। यह नहीं कहा जा सकता कि पारद की प्रक्रियाओं द्वारा किसी को यह सिद्धि प्राप्त हुई हो, किन्तु देहसिद्धि और लोहसिद्धि (स्वर्णादि निर्माण) ये दो सिद्धियाँ पर्याप्त मात्रा में पारद के द्वारा अवश्य पूर्ण हुई—यह निर्विवाद कहा जा सकता है। देह-सिद्धि के अन्तर्गत विशेषत: रोग-प्रशमन की प्रक्रिया की परम्परा आज तक चली आ रही है। अन्य प्रक्रियाओं को सिद्ध करना होगा।

### रस-शास्त्र आधुनिक कैमिस्ट्री से भिन्न

भारतीय रस-शास्त्र का स्वरूप समझने के लिए ऊपर लिखी प्रेरणाओं को समझ लेना आवश्यक है और जिन तीन प्रश्नों की ओर संकेत किया गया उन पर ध्यान देना भी। इनसे यह स्पष्ट होगा कि आधुनिक कैमिस्ट्री (Chemistry) और भारतीय रस-शास्त्र में विशेष साम्य नहीं है। और साम्य करना ही हो, तो रस-चिकित्सा शाखा को आधुनिक विज्ञान की उस शाखा से कर सकते हैं जिसके अन्तर्गत खनिजों और विषों का प्रयोग चिकित्सा के लिए किया जाता है। लोह-सिद्धि, जिसमें स्वर्ण-निर्माण मुख्य है—की शाखा का साम्य आधुनिक विज्ञान की उस शाखा से कर सकते हैं जिसके अन्तर्गत तत्व-परिवर्तन की चेष्टा चल रही है। किन्तु दोनों के साधनों व प्रक्रियाओं में वस्तुत: कोई साम्य ही नहीं है। भारतीय प्रक्रिया को आधुनिक विज्ञान भले ही अशास्त्रीय कहे, किन्तु उसे असत्य व अनुपयोगी कहना असम्भव है। यद्यपि यह सत्य है कि स्वर्ण-निर्माण की प्रक्रिया भारत में लुप्तप्राय-सी हो गई है; फिर भी कुछ ही वर्ष हुए कि रसायनाचार्य श्री वैद्य कृष्णपालजी ने स्वर्ण-निर्माण की प्रक्रिया प्रत्यक्ष प्रदर्शित की थी जिसका उल्लेख देहली के बिड़ला मन्दिर में आज भी अंकित है। किन्तु दुर्भाग्य का विषय तो यह है कि उस रस-शास्त्री के निधन के पश्चात् शायद वह ज्ञान लुप्त हो गया। आजकल एक प्रयत्न देव-प्रयाग में श्री नारायण स्वामीजी कर रहे हैं। सभी की आशाएँ उस प्रयोग पर लगी हुई हैं। कहा जाता है काफी प्रगति कर ली गई है।

### नई माँग

किन्तु चिकित्सा की दृष्टि से रस-शास्त्र का मुख्य क्षेत्र व्याधि-प्रशमन, रसायन, बाजीकरण और कायाकल्प आदि ही है। सन् १५५० के बाद के भारतीय अन्धकार युग में रस-शास्त्रीय प्रगति तो दूर रही, अवनति ही होती रही। अनेक प्रक्रियाएँ लुप्त हो गईं। उधर पश्चिम में इसी युग में मानो ज्ञान की—भौतिक ज्ञान की ज्योति ही जलने लगी। ऐसा लगता है कि इस काल में भारत के ज्ञानियों ने भारत-भूमि को छोड़कर योरोप में ही जन्म लेना आरम्भ कर दिया हो। वहाँ एक सर्वथा नवीन शैली में अनुसन्धान-आविष्कार की लहर दौड़ने लगी। जो सिद्धियाँ हमारे शास्त्रों के पन्नों में ही रहीं या फिर किसी महान् योगी के पास ही छिपी रहीं, उन सिद्धियों को पश्चिम के मनीषियों ने सर्वसामान्य के समक्ष उपस्थित कर दिया। उन्होंने आक्रामक प्रकाश से हमें झकझोर डाला। हमें अनुभव होने लगा कि अब केवल पुरातनवाद से शायद हमारा काम नहीं चलेगा। उन्हें तर्क श्रद्धा के बल पर प्रगति के चरण नहीं बढ़ेंगे;

और बुद्धि के प्रकाश की आवश्यकता है। आगम और अनुमान ही नहीं—प्रत्यक्ष की भी जरूरत है और वह दिव्य-चक्षुओं का नहीं, इन स्थूल चर्म-चक्षुओं का प्रत्यक्ष चाहिए। शास्त्र के वचन शास्त्र में लिखे हैं इसलिए नहीं अपितु उनकी सत्यता प्रत्यक्ष की जा सकती है—इसी आधार पर वे मान्य किये जा सकते हैं—ऐसा उद्घोष उत्पन्न हुआ। बौद्धिक जगत् की माँग हुई कि समस्त प्राचीन शास्त्र नवीन प्रकाश में देखे जाने चाहिएँ, नवीन विज्ञान की कसौटी पर कसे जाने चाहिएँ। इस माँग को जमाने की माँग कहा जा सकता है। इसकी उपेक्षा करने से वह माँग हटती दिखाई नहीं देती, प्रतीत होता है कि इसका मुकाबला भारतीय शास्त्र; चिकित्सा-शास्त्र, रस-शास्त्र सभी को करना होगा। वस्तुतः इस माँग के पीछे युगजन्य सन्देहवाद काम कर रहा है। शंका, संशय और सन्देह से तर्क-चिन्तन को उत्तेजना मिलती है। शंका या संशयजन्य कथन का स्वरूप यह है "कि आयुर्वेदीय चिकित्सा-शास्त्र अथवा रस-शास्त्र वैज्ञानिक नहीं है—तर्क शुद्ध नहीं है—अतः सत्य नहीं है—प्रगतिशील नहीं है—परिस्थिति के अनुकूल नहीं है और युग की आकांक्षा का पूरक नहीं है। यदि ऐसा नहीं है अर्थात् वैज्ञानिक है तो प्रत्यक्ष दिखलाइए।" यह वर्तमान युग के सन्देह का सार है। इस सन्देह का निवारण कैसे किया जाय—यह प्रश्न है। इससे पूर्व यह भी प्रश्न है कि सन्देह निवारण करने, प्रश्न का उत्तर देने, चुनौती का मुकाबला करने और शास्त्र को सत्य-सिद्ध करने का उत्तरदायित्व किसका है ?

### उत्तरदायित्व किसका ?

यह स्पष्ट है कि जो शास्त्र की सत्यता का दावा करता है वही उसकी सत्यता सिद्ध करने का उत्तरदायी है। आयुर्वेदीय रस-चिकित्सा करनेवाले चिकित्सकों-शास्त्रज्ञों का ही उत्तरदायित्व है कि वे अपने शास्त्र की सत्यता सिद्ध करें। किन्तु थोड़ा विचार करने पर ज्ञात होगा कि शास्त्र की सिद्धि का उत्तरदायित्व केवल वैद्यों—आयुर्वेदीय चिकित्सकों पर ही नहीं अपितु अन्य समाज पर भी है; वह खरा उतरे या न उतरे उसे परखने का उत्तरदायित्व स्वीकार करना ही चाहिए। आयुर्वेदीय औषधि बेचकर आजीविका चलाने वाले व्यापारियों, आयुर्वेदीय चिकित्सा से लाभ उठानेवाले अनेक वर्ग के व्यक्तियों का भी उत्तरदायित्व है। इतना ही नहीं, समस्त भारतीय जनता और उसकी प्रतिनिधि सरकार का भी उत्तरदायित्व है कि जिस शास्त्र के द्वारा भारत में शताब्दियों से स्वास्थ्य का संरक्षण और व्याधि का संशमन होता रहा है, उस शास्त्र के गुणों को पुनः अनुसन्धान करके उसे नवीन विज्ञान के समक्ष प्रस्तुत करे। इसके अतिरिक्त शुद्ध वैज्ञानिक ज्ञान-पिपासुओं का भी कर्तव्य है कि जिस शास्त्र में शताब्दियों का अनुभव जन्य ज्ञान संचित है—मानो एक प्रकार का ज्ञान—कोष ही है—उसकी शोध के नाम पर ही छानबीन करने की चेष्टा करें। आयुर्वेदीय ज्ञान या रस-शास्त्र की प्रक्रियाएँ केवल वैद्यों की ही सम्पत्ति नहीं है, अपितु वे समस्त समाज की है। प्रत्येक व्यक्ति को उसमें—उसकी छानबीन में—शोधन में रुचि लेनी चाहिए। समाज की और सरकार की इतनी भूमिका हो तो वैद्य अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सकते हैं, जो विशेषतः उनका है।

### महत्व का प्रश्न

खैर, वह उत्तरदायित्व किसी का भी हो और उसके लिए चाहे किसी व्यक्ति की ओर से, किसी विशेष समाज या संस्था की ओर से अथवा सरकार की ओर से प्रयत्न हो, किन्तु वह संशोधन किस प्रकार किया जाय यह अत्यन्त महत्व का प्रश्न है। इस विषय में मतभेद की काफी गुंजाइश है और वस्तुतः मतभेद है भी। ठीक से देखा जाय, तो वास्तव में वह मतभेद मौलिक नहीं, दृष्टि-भेद और लक्ष्य-भेद से उत्पन्न हुआ है। भारत में इस विषय का अनुसन्धान-कार्य कुछ तो देश की स्वतन्त्रता से पूर्व हुआ और कुछ स्वतन्त्रता के पश्चात् आरम्भ हुआ जो अभी कहीं-कहीं चल रहा है। उस पर दृष्टि डालने से ऐसा प्रतीत होगा कि उनके अनुसन्धानकर्त्ताओं अथवा उनके समर्थकों में अवान्तर दृष्टि-भेदों को छोड़ दें, तो दो मुख्य दृष्टि-भेद अवश्य दिखाई देंगे। इन्हें आप प्राच्य और प्रतीच्य भी कह सकते हैं, यद्यपि ये नाम पूर्णतः उपयुक्त नहीं हैं।

### एक दृष्टि

एक दृष्टि तो यह है कि आयुर्वेदीय वनस्पति-शास्त्र और रस-शास्त्र में जिन वनस्पतियों और खनिजों का वर्णन है उसके गुण-धर्मों की परख आधुनिक विज्ञान के आधार पर करके उन्हें आधुनिक औषध-गुण-धर्म शास्त्र (Materia-medica) में सम्मिलित कर लेना चाहिए। और

उनका उपयोग नवीन चिकित्सा विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार भविष्य में होना चाहिए। इसी आधार पर कुछ औषधों का जैसे—सर्पगन्धा-स्वर्ण मकरध्वज-वत्सनाभ आदि का अनुसन्धान हुआ भी था जो नवीन विज्ञानवेत्ताओं के द्वारा नवीन उपकरणों की सहायता से नवीन प्रयोगशालाओं में किया गया। इन विज्ञानवादियों की जिनमें कुछ वैद्य भी हो सकते हैं; यह स्पष्ट मान्यता है कि न तो आयुर्वेद का द्रव्यगुण-शास्त्र, न निदान-पद्धति ही जिसमें त्रिदोष-सिद्धान्त सम्मिलित है, आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर खरे उतर सकते हैं और मानव-बुद्धि व तर्क को सन्तोष दे सकते हैं। विभिन्न रोगों पर विभिन्न द्रव्यों-योगों का पुनः-पुनः प्रयोग करके कुछ अनुभव प्राप्त कर लिया गया है और उसकी संगति काल्पनिक रूप से निदान-सिद्धान्त व त्रिदोष-सिद्धान्त से मिला ली गई है। अतः यह आयुर्वेदीय ज्ञान आनुभविक (Empirical) और वंशानुगतिक (Traditional) है, तर्कयुक्त (Rational) तथा वैज्ञानिक (Scientific) नहीं है। ऐसी जिनकी मान्यता है वे ऐसा ही अनुसन्धान करेंगे और करने का उनका अधिकार है।

### शोध प्रक्रिया

ऐसे अनुसन्धानों में प्रयत्न यह होता है कि अनुसन्धानीय द्रव्य में रासायनिक दृष्टि से कौन-कौन से द्रव्य रहते हैं—यह शास्त्रादि की सहायता से जाना जाता है अर्थात् उसका विश्लेषण (Analysis) होता है। विभिन्न कीटाणुओं और मानवेतर प्राणियों पर प्रयोग किये जाते हैं; फिर प्रत्येक द्रव्य की शरीर के विभिन्न अवयवों पर क्या क्रिया होती है यह जानने की चेष्टा की जाती है, उस द्रव्य का मुख्य कार्य जिस तत्त्व द्वारा सम्पादित होता है उसकी खोज कर उसे मुख्य कार्यकारी तत्त्व (Acting principle) कहा जाता है, इत्यादि अनेक प्रक्रियाओं के उपरान्त औषध का उपयोग मानव पर किया जाता है। इतनी शोध में अनेक वर्ष लग जाते हैं। इसी कारण शायद इने-गिने द्रव्यों की ही शोध अब तक हो सकी है। यह कहा जा सकता है कि केवल इतनी शोध में आयुर्वेद की दृष्टि से अनुसन्धान की पूर्णता नहीं आ पाती। आयुर्वेदोक्त परिणाम के विपरीत या उससे भिन्न परिणाम आने पर तदनुसार घोषणा करना आयुर्वेद के साथ न्याय नहीं कहा जा सकता। सन्देह के कारण निम्न हैं—

(१) प्रयोगशाला में विशिष्ट परिस्थिति में जीवाणु-मानवेतर प्राणी प्रयोग के लिए रक्खे जाते हैं, उन पर होने वाला प्रयोग मानव के लिए अधूरा ही रहेगा। जिस व्याधि को एक अस्वस्थ व्यक्ति के शरीर में बढ़ने के लिए पर्याप्त समय लग गया है, उसको एक स्वस्थ पशु के शरीर में कृत्रिम रूप से उत्पन्न करना, उसके अध्ययन करने का सबसे अच्छा निर्दोष तरीका है।

(२) मानवेतर प्राणी अपने शरीर में होनेवाले कष्टों को कह नहीं सकता। केवल शारीरिक लक्षण देखे जा सकते हैं, मानसिक नहीं।

(३) आयुर्वेद के अनुसार केवल एक द्रव्य औषध रूप से बहुत कम ही प्रयुक्त होता है। अतः अन्य द्रव्य के साथ मिलकर उसका शरीर पर क्या प्रभाव होगा यह उन द्रव्यों के गुणों का योग नहीं हो सकता।

(४) एक द्रव्य का प्रयोग करने पर भी संस्कार की विभिन्नता, समय का अन्तर, व्याधि की भिन्न-भिन्न दशा और अनुपानादि की सहायता से पड़नेवाले प्रभाव में अन्तर का ज्ञान केवल ऊपरी अनुसन्धान से नहीं होगा।

(५) यह भी आवश्यक नहीं कि किसी द्रव्य का प्रभाव शरीर के किसी अवयव पर या रोग पर तत्काल और सीधा पड़े। संभव है कुछ देर से सम्पूर्ण शरीर पर स्वास्थ्यकारी प्रभाव डाल कर उस रोग या उस अवयव पर वह द्रव्य परिणाम उत्पन्न करे। आयुर्वेदीय पद्धति की यह विशेषता ही कहनी चाहिए कि उसकी ओषधियों का प्रभाव प्रायः सम्पूर्ण शरीर पर होता है और वे शरीर के सम्पूर्ण तत्त्वों को स्वस्थावस्था में लाकर रोग-विनाश करती हैं जिससे शरीर विषैले प्रभाव से बच जाता है, जो विशेषता आधुनिक चिकित्सा की विशेष ओषधियों में नहीं देखी जाती। सम्भवतः यह भेद विश्लेषणात्मक और समन्वयात्मक या संश्लेषणात्मक पद्धति जन्य हो।

अतः ऊपर लिखी अनुसन्धान-पद्धति का अनुसरण करने पर भी उसमें पूर्णता लाने की दृष्टि से स्वस्थ मानव शरीर और रुग्ण शरीर दोनों पर विश्लेषणात्मक और समन्वयात्मक पद्धति से पर्याप्त समय तक प्रयोग करने के बाद ही अन्तिम परिणाम अर्थात् औषध द्रव्य के गुण-धर्मों की घोषणा करनी चाहिए। इस पद्धति में रोग-निदान रुग्ण-परिचर्या आदि सभी प्रक्रियाएँ आधुनिक विज्ञान के अनुसार होगी और यह अनुसन्धान आधुनिक विज्ञानवेत्ता

भी कर सकता है। उसे वैद्य होने की आवश्यकता नहीं—यह स्पष्ट है।

**दूसरी दृष्टि**

दूसरी दृष्टि यह है कि आयुर्वेदीय अनुसन्धान आयुर्वेद को एलोपैथी के ढाँचे में बिठाने के लिए नहीं है। आयुर्वेद की अपनी एक दृष्टि है, वह सैद्धान्तिक रूप से स्वयं एक पूर्ण शास्त्र है। अतः ऊपर लिखी दृष्टि से किया जानेवाला अनुसन्धान आयुर्वेद के लिए लाभदायक नहीं होगा, भले ही वह एलोपैथिक के लिए हो। आयुर्वेद की निदान-पद्धति व त्रिदोष सिद्धान्त को छोड़ कर किसी औषध का प्रयोग करना आयुर्वेद की दृष्टि से शास्त्रीय नहीं कहा जा सकता। अतः अनुसन्धान शुद्ध आयुर्वेदीय दृष्टि से ही हो और उसका कर्ता वैद्य ही होना चाहिए। आयुर्वेदीय अनुसन्धान का लक्ष्य एलोपैथी के भंडार को बढ़ाना नहीं अपितु आयुर्वेद शास्त्र के शंकास्पद स्थलों को स्पष्ट करना, औषध के शास्त्रों में वर्णित गुण-धर्मों को पुनः संशोधित करना और कुछ विलुप्त प्रक्रियाओं का पुनरुद्धार करना होना चाहिए। साथ ही नवीन युग की नवीन स्वास्थ्य समस्याओं को हल करने तथा नवीन रोगों को सुनिश्चित और शीघ्र फलदायी औषध से नष्ट करने का लक्ष्य भी।

यह निश्चित है कि एलोपैथी और नवीन विज्ञान से पूर्व; भारत में रस-शास्त्र का उद्भव हुआ। अनेक प्रयोग हुए, अनेक आशुफलप्रद औषधों की खोज हुई। स्वर्ण-निर्माण के प्रयत्न भी सफल हुए और आज रस-शास्त्र पर प्राप्त ग्रन्थ उस प्राचीन काल के अनुसन्धानों के ही परिणाम हैं। अतः आज भी शुद्ध आयुर्वेदीय परम्परा से ही अनुसन्धान होना चाहिए। इस काल में भी अनेक वैद्यों ने प्रयोग किये हैं। स्वर्ण-निर्माण का भी प्रयोग किया गया है। कहीं भी आधुनिक विज्ञान की आवश्यकता नहीं पड़ी।

इतना ही नहीं, आधुनिक दृष्टि का अवलम्बन भ्रान्ति भी उत्पन्न कर सकता है। उदाहरण के रूप में—जिसे आप शुद्ध पारद, शुद्ध धातु या शुद्ध विष जैसे वत्सनाभ आदि कहेंगे वह सम्भव है आधुनिक भौतिक शास्त्र या रसायन-शास्त्र की दृष्टि से अशुद्ध हो, उसमें दूसरे तत्त्व मिले हों। किन्तु आयुर्वेद शुद्ध उसे कहेगा जिसके शरीर पर कोई प्रभाव डालनेवाले दुर्गुण नष्ट हो गये हैं। भले ही उसमें उस द्रव्य के अतिरिक्त कुछ अंश और किसी द्रव्य के भी हों। सारांश यह कि आयुर्वेदीय अनुसन्धान शुद्ध आयुर्वेद की पद्धति से ही होना चाहिए। आधुनिक विज्ञान को बीच में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है।

इस दृष्टि को, विचार-सरणी को मान्यता प्रदान करनेवालों की संख्या देश में पर्याप्त होगी। तदनुसार कुछ प्रयोग वे करते भी रहते हैं। फिर भी उनमें से कुछ विद्वानों की यह राय है कि शुद्ध आयुर्वेदीय पद्धति से अनुसन्धान करने पर भी कुछ प्रक्रियाओं में जैसे पारद के शोधन तथा मर्दन संस्कारों में आधुनिक विज्ञान और उसके उपकरणों की सहायता अवश्य लेनी चाहिए। आयुर्वेद बृहस्पति वैद्य घनानन्द पन्तजी ने यहाँ तक लिखा कि 'सूतसंस्कार करने वाले को आधुनिक विज्ञान का भी अच्छा अभ्यास होना चाहिए।' नागपुर विश्वविद्यालय में आयुर्वेद-विभाग के अध्यक्ष श्री वेणीमाधव शास्त्री जोशी जो स्वयं पारद पर अनुसन्धान कर रहे हैं, आधुनिक विज्ञान का उपयोग परमावश्यक मानते हैं।

सम्भवतः यह दूसरी दृष्टि के पुरस्कर्ताओं की ही एक अवान्तर दृष्टि है या फिर इसे तीसरी दृष्टि कहना चाहिए। किन्तु इस दृष्टि के विद्वानों को प्रायः आधुनिक विज्ञान के उपकरणों और विज्ञाताओं की सहायता मिल नहीं पाती। अतः अनुसन्धान की प्रगति ही पंगु रह जाती है। कोई परिणाम सामने नहीं आ पाता, कारण कुछ भी हो।

**दृष्टि-विवेचन**

यह प्रश्न किया जाता है कि इन दृष्टियों में कौन-सी दृष्टि उचित है। किस दृष्टि से आयुर्वेद का भविष्य उज्ज्वल बन सकता है, कौन-सा मार्ग श्रेयस्कर है, किस पथ का अवलम्बन हमें भ्रान्ति से क्रान्ति की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जायगा?

इस प्रश्न का समुचित उत्तर पाने के लिए हमें यह देखना होगा कि अनुसन्धान की वास्तविक प्रेरणा क्या है। हम अनुसन्धान वस्तुतः क्यों करना चाहते हैं? हमारी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि क्या है? वैद्य-समाज में ही नहीं, सर्वसाधारण समाज में यह आकांक्षा क्योंउत्पन्न हुई कि आयुर्वेद-क्षेत्र में अनुसंन्धान होना चाहिए। जैसा कि पीछे कहा जा चुका है। इसका मुख्य कारण आधुनिक विज्ञान का आविष्कार और उसकी प्रगति ही है, आधुनिक विज्ञान जन्य संशयवाद का ही यह तकाजा है कि किसी भी शास्त्र को ऋषिवाक्य, आर्षवचन कहकर न माना जाय,

अपितु उसका प्रत्यक्ष दर्शन किया जाय। आधुनिक विज्ञान ने प्रत्यक्ष दर्शन की सुविधा उपलब्ध कर दी है—मार्ग प्रशस्त कर दिया है। यदि उसमें कुछ त्रुटि है, तो उसको ठीक करके वैज्ञानिक साधनों से ही प्रश्नों का हल किया जाय और प्राचीन वचनों का परीक्षण किया जाय।

हतो हन्ति जराव्याधि मूर्च्छितो व्याधि घातकः।
बद्धः खेचरतां धत्ते कोऽन्यः सूतात् कृपाकरः॥

पारद जराव्याधि और अन्य व्याधि को नष्ट करता है या नहीं; आकाश में उड़ने के गति प्रदान करता है या नहीं—प्रत्यक्ष दिखलाना होगा। इस प्रकार आज का प्रत्यक्षवाद औषध-द्रव्य का गुण-धर्म प्रत्यक्ष देखना चाहता है। इतना ही नहीं वह यह भी जानना चाहता है कि उसका प्रभाव शरीर पर किस प्रकार होता है। इसका भी प्रत्यक्ष अधिक से अधिक होना चाहिए अर्थात् इस सम्बन्ध में संशयवाद के दो प्रश्न हैं:—

(१) औषध-द्रव्य का प्रभाव क्या—इसका प्रत्यक्ष।

(२) स्वस्थ और रुग्ण शरीर पर प्रभाव किस प्रकार—इसका प्रत्यक्ष।

इन प्रश्नों के उत्तर के लिए यदि आयुर्वेदीय औषधों का आधुनिक विज्ञान की पद्धति से अनुसन्धान होता हो, तो वह होना चाहिए। क्योंकि यहाँ प्रेरणा और लक्ष्य ही यह है कि आयुर्वेदोक्त औषध को आधुनिक विज्ञान पर कसकर देखा जाय। इस प्रकार जो परिणाम आये, उसको शास्त्रोक्त परिणाम से मिलाकर देखना चाहिए। भेद होने पर कारण की खोज करनी चाहिए। यदि अनुसन्धान में कोई त्रुटि नहीं हुई है और कोई अन्य कारण भी नहीं है, तो क्या गुण-धर्म-शास्त्र का निर्माण करना चाहिए। किन्तु यहाँ एक बात समझ लेनी है कि आयुर्वेदीय रस-शास्त्र जब किसी औषध के गुण-धर्म का वर्णन करता है, तो उसका अर्थ यह नहीं कि आधुनिक विज्ञान कि दृष्टि से शुद्ध द्रव्य का वह गुण-धर्म है, अपितु उस द्रव्य के ऊपर प्रयोग के पूर्व जो संस्कार किये जाते हैं, जो प्रक्रियाएँ की जाती हैं, उनके बाद ही अर्थात्, औषध रूप निर्माण होने के बाद ही वे गुण-धर्म उस द्रव्य में आते हैं। अतः आधुनिक विज्ञान से उन स्वतन्त्र शुद्ध द्रव्यों के गुण-धर्म का अनुसन्धान भले ही हो, किन्तु आयुर्वेदीय औषध के गुण-धर्मों के अनुसन्धान का जहाँ प्रश्न हो, वहाँ शुद्ध आयुर्वेदीय पद्धति से योग्य वैद्यों के द्वारा निर्मित औषधियों पर ही अनुसन्धान होना चाहिए। यदि इस प्रकार अनुसन्धान होता है, तो उससे आयुर्वेद का हित होनेवाला है—ऐसा मानने में अनौचित्य प्रतीत नहीं होता।

आधुनिक विज्ञान के कारण ही संशय उत्पन्न हो यह आवश्यक नहीं। चिकित्सा-क्षेत्र में, औषध-निर्माण, उसका रुग्णों पर प्रयोग अथवा शास्त्र का अनुशीलन व चिन्तन करते समय भी स्वतन्त्र रूप से शंकाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। और उन शंकाओं को निवृत्त करने के लिए भी स्वतन्त्र अनुसन्धान किया जा सकता है। जैसे—पारद-शुद्धि की अनेक प्रक्रियाएँ ग्रन्थों में वर्णित हैं। उन प्रकारों का अन्तर गुणों का अन्तर तो उत्पन्न नहीं करता? अथवा अनेक संस्कारों में से कुछ संस्कार छोड़ दिये जायँ, तो गुणों में क्या अन्तर पड़ता है? ये प्रयोग बिना आधुनिक विज्ञान की सहायता से भी किये जा सकते हैं। क्योंकि यहाँ आयुर्वेद-शास्त्र को आयुर्वेद की पद्धति से देखने का लक्ष्य है। अतः अनुसन्धान का यह भी एक प्रकार हो सकता है।

आयुर्वेद-शास्त्र में वर्णित अनेक प्रक्रियाएँ आज लुप्तप्राय हो गई हैं। उनके गुणों का वर्णन मिलता है। तो उनका पुनरुद्धार करने की आकांक्षा किसी में भी उत्पन्न हो सकती है। इसमें भी आवश्यक नहीं है कि आधुनिक-विज्ञान की सहायता लिया ही जाय।

धातु परिवर्तन की प्रक्रिया शुद्ध रस-शास्त्रीय दृष्टि से की जा सकती है। इस विश्वास पर भी अनुसन्धान किये जा सकते हैं जिनका स्वरूप आधुनिक विज्ञान का नहीं होगा जैसा कि एक प्रयोग 'देवप्रयाग' में चल रहा है। इस प्रकार देखने से प्रतीत होगा कि अनुसन्धानकी प्रेरणा, उसके लक्ष्य और प्रकार के भेद से अनुसन्धान-पद्धति में अन्तर पड़ता है।

**विज्ञान त्याज्य नहीं**

साथ ही यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि आधुनिक विज्ञान पश्चिम का है इसलिए उसे त्याज्य नहीं माना जा सकता। वह समस्त मानव-जाति का है। उसके विकास में भारतीय बुद्धि ने भी योग दिया है। इसी प्रकार आयुर्वेद का ज्ञान भी केवल भारत का है यह भी मानने का कारण नहीं। यदि वह ज्ञान सत्य पर—अनुभव पर आधारित है, तो वह अमिट रहेगा। आज नहीं कल उसकी सत्यता प्रकट होकर रहेगी। आधुनिक विज्ञान के साधन आज सम्भवतः अपूर्ण होने के कारण कुछ विरुद्ध परिणाम प्रकट करें, किन्तु विज्ञान वर्धनशील है। अधिक पूर्णता प्राप्त करने पर सत्य स्वयं खुलकर रहेगा। गहराई से

देखा जाय, तो अधिकतर विरोध स्वरूपजन्य नहीं दृष्टि भेदजन्य होता है। एक बार दृष्टि भेद समझ लेने पर विरोधी प्रतीत होने वाले सत्य एक-दूसरे के पूरक प्रतीत होने लगते हैं। अतः आधुनिक विज्ञान का उपयोग जहाँ आवश्यकता प्रतीत होती हो, वहाँ करने में आपत्तिनहीं होनी चाहिए। कहाँ उपयोग करना—इसकी कल्पना होनी चाहिए। वस्तुतः विज्ञान एक साधन है उसने हमारी इन्द्रियों की शवित को बढ़ाया है, लगभग नवीन इन्द्रियाँ प्रदान की है। उनका लाभ लिया जा सकता है। चश्मा पहन सकते हैं, किन्तु चश्मा के लिए आँख फोड़नी नहीं है आँख की सहायता के लिए चश्मा लेना है। अर्थात् उसकी एक मर्यादा है। वह मर्यादा, लक्ष्य और अनुसन्धान-कर्ता की बुद्धि सामर्थ्य के अनुसार कम-अधिक होती रहेगी। उसके लिए कोई कठोर नियम नहीं बनाया जा सकता। मर्यादा के अनुसार ही अनुसन्धानों का स्वरूप भी भिन्न-भिन्न रहेगा।

### अनुसन्धान का मुख्य द्रव्य

इतना विचार करने के बाद यह पूछा जा सकता है कि रस-शास्त्र का इस समय सबसे महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान किस द्रव्य पर होना चाहिए? इसके उत्तर में सम्भवतः पारद ही आयेगा। पारद रस-शास्त्र का मुख्य द्रव्य माना जाता है। पारद के प्रशंसा वचनों से ग्रन्थ भरे पड़े हैं। पारद का नाम ही रस रक्खा गया और उसके नाम पर शास्त्र का नाम 'रस-शास्त्र' पड़ा। भारत के चिकित्सक इस विषय पर एक मत होंगे कि रस-शास्त्र का प्रमुख द्रव्य रस—पारद है। अतः उसीका मुख्य रूप से अनुसन्धान होना चाहिए। रस-शास्त्र के योगों में पारद उसी प्रकार रहता है, जैसे पुष्पों की माला में धागा या सूत्र। पारद को योगवाही कहा है अर्थात्, जिस द्रव्य के साथ रहेगा उसके गुणों का वर्धन वह करेगा यदि शास्त्र वर्णित पद्धति से उसका निर्माण किया जाय। इसी कारण आजकल पारद संशोधन को ही प्रधानता दी जाती है। अनेक उपक्रम इस ओर हो रहे हैं। पारद का रस-शास्त्रीय प्रयोग दो शाखाओं में विभाजित हैं :—

(१) पारदसे स्वर्ण-निर्माणकी प्रक्रिया—लोह-सिद्ध।

(२) पारद से व्याधि-विनाश की प्रक्रिया—देह-सिद्ध।

अतः इन दो उद्देश्यों से पारद का संशोधन मुख्य रूप से होना चाहिए। कहीं-कहीं हो भी रहा है।

अनुसन्धान के स्वरूप को थोड़ा और समझ लेना आवश्यक है। अनुसन्धान शब्द के स्थान पर संशोधन, खोज और अन्वेषण शब्द का भी प्रयोग होता है। इसके परिणाम स्वरूप जब कभी कोई सर्वथा नवीन वस्तु या अज्ञात वस्तु प्रकाश में आती है, तो उसे आविष्कार शब्द से व्यक्त करते हैं। अंग्रेजी में Rescarch और Invention शब्दों का प्रयोग होता है। Rescorch अनुसन्धान प्रक्रिया है Invention आविष्कार परिणाम बशर्ते कि वह सर्वथा नूतन हो और पूर्वतः अज्ञात हो। कभी-कभी ज्ञात नियमों, परिणामों के बारे में भी उनकी विशेष पुष्टि करने या विशेष प्रत्यय के लिए भी–Verification के लिए भी अनुसन्धान किया जाता है। इस प्रकार अनुसन्धान के निम्न प्रकार हो सकते हैं :—

(१) **सोद्देश्य**—जो किसी विशेष उद्देश्य को लेकर किया जाय।

(२) **निरुद्देश्य**—जो केवल जिज्ञासा पूर्त्ति के लिए हो।

आज बहुत-से अनुसन्धान जिज्ञासा पूर्त्ति के लिए ही हो रहे हैं। एक दृष्टि से इन्हें निरुद्देश्य नहीं भी कहा जा सकता। क्योंकि जिज्ञासा पूर्त्ति स्वयं एक उद्देश्य है। इतना ही नहीं, ऐसे अनुसन्धान कर्ताओं का यह दावा भी रहता है कि इस प्रकार जो ज्ञान प्राप्त होगा उससे मानव-कल्याण के अनेक मार्ग निकल सकेंगे। उदाहरण के रूप में आज खगोल-शास्त्र की खोज, मंगल-ग्रह या चन्द्रमा पर जाने की चेष्टा, वायु-मंडल व सौर जगत् को विशेष रूप से जानने की आकांक्षा—ऐसे अनेक क्षेत्र हैं, जहाँ मानव केवल जिज्ञासा तृप्ति के लिए ही प्रयत्न कर रहा है। उसके सामने नपा-तुला उपयोग में आनेवाला कोई उद्देश्य सामने नहीं है। फिर भी यह सत्य है कि यदि मानव की बुद्धि—नैतिक बुद्धि स्वस्थ रही तो उसका उपयोग मानव-कल्याण के लिए हो सकेगा।

दूसरी दृष्टि से भी दो भेद अनुसन्धान के हो सकते हैं—

(१) सर्वथा नवीन खोज के लिए।

(२) किसी प्राचीन या ज्ञात तत्त्व, नियम या प्रक्रिया को पुनः जीवित, संशोधित या पुष्ट करने के लिए अथवा उसे अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए।

रस-शास्त्र के शोधक को यह विशेष रूप से समझ लेना चाहिए कि उसकी शोध किस रूप की है। यदि वह पारद पर अनुसन्धान करना चाहता है, तो वह किस प्रकार का

अनुसन्धान करना चाहता है। वह सोद्देश्य है या केवल जिज्ञासा-तृप्ति के लिए। किसी नवीन अज्ञात गुण या प्रक्रिया का आविष्कार करना चाहता है या कि शास्त्र में वर्णित किसी कथन-गुण या प्रक्रिया का पुनरुद्धार स्पष्टीकरण या पुष्टि। इतना स्पष्ट विचार संशोधक की बुद्धि में होना चाहिए, अन्यथा वह उलझन में फँस जायेगा। परिणाम यह होगा कि वह कोई भी फल अपनी खोज का दिखला नहीं सकेगा और अर्थ का व्यर्थ में अपव्यय होगा। इतना ही नहीं,शोध के लिए व्यय करनेवाली संस्था चाहे वह सरकारी हो, वैद्यों या औषध निर्माताओं की संस्था हो या केवल एक व्यक्ति ही व्यय करनेवाला हो—उसका उत्साह भी भंग होगा और वैद्य-समाज पर आयोग्यता का कलंक लगेगा। इसलिए संशोधक को संशोधन—अनुसन्धान के उद्देश्य की ओर उसके स्वरूप की स्पष्ट कल्पना रहनी चाहिए भलेही संशोधन का स्वरूप और उसका लक्ष्य कितना ही लघु हो।

पारद से स्वर्ण-निर्माण की प्रक्रिया के प्रयोग और तद्विषयक अनुसन्धान यदि एक से अधिक स्थान पर हो तो कोई हानि तो नहीं है, किन्तु अधिक अच्छा यह है कि वह भारत में एक ही स्थान पर हो। वर्तमान में देवप्रयाग के प्रयोग पर ही ध्यान केन्द्रित होना चाहिए। किन्तु व्याधि-प्रशमन की प्रक्रिया के निमित्त अनुसन्धान अनेक स्थानों पर हो सकता है। निर्णय करके एक-एक प्रक्रिया, द्रव्य, रोग या शोध की कोई समस्या पृथक्-पृथक् की जा सकती है—इसके लिए क्षेत्र बहुत है। अनुसन्धान के मुद्दे क्या हों, योजना क्या हो, पारद के ही नहीं रस-शास्त्र के संशोधन में संशोधन क्या है—इत्यादि, विषय पर कुछ विद्वानों का संक्षिप्त मत-प्रकाशन भी हो चुका है। पूज्य यादवजी महाराज ने भी **सचित्र आयुर्वेदके योजनांक** में कुछ संक्षेप से अपने विचार व्यक्त किये थे, उनका विस्तार किया जा सकता है नया भी सोचा जा सकता है। इसका विशेष विवेचन फिर कभी किया जायेगा। अभी एक बात की ओर ध्यान खींचना आवश्यक प्रतीत होता है कि महत्व के तारतम्य की दृष्टि से (Clinical Research) रोगोपचार-पद्धति के अनुसन्धान द्वारा पारदादि द्रव्यों के गुण-धर्मों को व्यक्त करने की ओर अधिक ध्यान दिया जाय। पारद के तथा अन्य द्रव्यों के भी योग जिस ग्रन्थ से लिए जायँ उसी ग्रन्थ के आधार पर उनका निर्माण कर उसी ग्रन्थ में बतलाए रोगों पर परीक्षण किया जाय अथवा किन्हीं विशेष रोगों को चुनकर उनके विशेष योग जिस ग्रन्थ से लिए जायँ उसी के अनुसार निर्माण कर उनका परीक्षण किया जाय। चिकित्सालय में सिद्ध वैद्य आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार चिकित्सा करे, किन्तु उनका सम्पूर्ण विवरण आयुर्वेद और एलोपैथी दोनों दृष्टियों से रक्खा जाय और उसे अधिकृत माना जाय। स्पष्ट है कि सरकारी संस्थाओं में ही यह अधिक सरलता से हो सकता है। यदि ग्रन्थोक्त परिणाम नहीं आये, तो चिकित्सक को सतर्कता से कारण की खोज करनी चाहिए। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के पारद से योग-निर्माण करके अन्तर देखना चाहिए। सारांश यह कि (Clinical Research) को प्रधानता देनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त आयुर्वेदीय पद्धति से निर्मित औषध का परीक्षण आधुनिक विज्ञान की प्रयोगशाला में हो और तदनुसार विभिन्न पद्धति से बने योगों का परिणाम विभिन्न हो, तो भी निर्माण-पद्धति के विषय में अनुसन्धान करने को उत्तेजन मिलेगा और निर्माण सम्बन्धी खोज आगे बढ़ेगी। संशोधन और संस्कार की प्रक्रियाओं से पारद में क्या भौतिक व रासायनिक परिवर्तन हुए यह वर्तमान विज्ञान से जान लेने पर भी, उनका महत्त्व तब तक नहीं होगा जब तक कि ऐसे पारद के योगों के किसी पद्धति से औषधात्मक गुणों की विभिन्नता का पता न लग जाय। उदाहरण के लिए कल्पना कीजिए कि किसी संस्कार से पारद में स्थूल नाग या वंग दोष कम हो गया, रसायन विज्ञान के द्वारा परख भी कर ली गई, तो भी इस ज्ञान का क्या उपयोग? क्योंकि आधुनिक विज्ञान ने तो इससे भी अधिक अच्छी; नाग-वंग के स्थूल दोष दूर करने की पद्धति निर्माण कर ली है। ई० मर्क कम्पनी का डबल डिस्टिल्ड पारद लगभग शुद्ध पारद ही होता है उसमें दोष अत्यल्प या नगण्य जैसा ही होता है। शायद किसी भी रस-शास्त्रीय संस्कार से भौतिक व रसायन-शास्त्र की दृष्टि से इससे अधिक शुद्ध पारद निर्माण नहीं हो सकता। अतएव, यह देखना होगा कि इस स्थूल शुद्धि का सम्बन्ध पारद के औषधात्मक गुणों पर क्या पड़ता है। यह ज्ञान तो रोगोपचार-पद्धति से ही जाना जा सकता है। कुछ सहायता जीव रसायनादि आधुनिक विज्ञान की प्रयोगशाला के प्रयोगों से भी मिल सकती है। हमारा मुख्य लक्ष्य इस समय यह सिद्ध करने का होना चाहिए कि आयुर्वेद-पद्धति से बनी हुई रसादि औषधियाँ अमुक-अमुक रोगों के विनाश के लिए सूक्ष्म है। अभी इतना संकेत करके विराम लेता हूँ।

# वातरक्तम्

### आयुर्वेदाचार्य एम० वेंकट शास्त्री

अस्य रोगस्य नाम्नैव अत्रत्यदोषदूष्या प्राधान्येन ज्ञायन्त एव। तत्तद्विरुद्ध दुष्टाहारविहारैः प्रकुपितो वायुः विरुद्धाहारविहारादिभिः प्रदुष्टेन रक्तेनावृतः स्वमार्गावरोधादत्यधिकतया प्रतिहतगतिः स्वकीय रक्तवहशिरासु प्रचरन् शरीरे वातस्थानेषु तत्रापि शरीरान्त्यभागेषु प्राधान्येन पादयोः दुष्टरक्तच्यावनेन कण्डू-पामा-वैवर्ण्य-विचर्चिकादिबहुरूपम् रोगमुद्भावयति।

एषरोगः सर्वास्वप्यायुर्वेदीयसंहितासु वातरोगवर्णनान्तरमेव वर्णितः प्रत्येकश एकस्मिन्नध्याये इत्यस्मादस्यप्राधान्यता ध्वन्यत एव। आधुनिकास्तु (डाक्टराः) रोगमेनमासाद्य एलर्जी (Alergy), फंगस् (Fungus) इच (Itch), लेप्रसी (Leprosy). नवनलेप्रसी (Nervine-Leprosy) इति प्रत्येक लक्षणस्य प्रत्येक रोगत्वेन नामानि कृत्वा चिकित्स्यन्ति, अपराध्यन्ते च चिकित्सायां।

परमाचार्यस्त्वस्य व्याधेः वायुसहायकोऽग्निर्यथा दहते ग्निः निःशेषं गृहं तथैव शरीरमिति वर्णनं कृतम्। "अग्निमारुततुल्यस्य संसर्गस्यानिलासृजोः" इति (च. चि. अ. १९)। अस्मादस्यव्याधेः दुर्निवारत्वं शीघ्रकारित्वं च द्योतते।

अस्य वातरक्तस्य द्विविधाहेतवः, वातलाहारविहाराः वायोः कारणं, रक्तदूषक आहारविहाराः रक्तदुष्टश्च हेतुरिति मिलित्वा द्विविधहेतवः पृथगुक्ताः। तत्र रक्तदुष्टेः कारणानि तु लवणाम्लकटुक्षाररसविशिष्टैर्द्रव्यैः स्निग्धोष्णासंकरभोजनैः क्लिन्न-शुष्क, जलजमत्स्याद्यनूपजन्तुमांस, पिण्याकमूलककुलत्थमाषनिष्पावपत्रशाकाद्यतिसेवन, पललेक्ष्वादिभिः दध्यारनालसौवीरशुक्तसुरासवादिसेवनैः विरुद्धाध्यशनेन च क्रोधेन दिवास्वापरात्रिजागरणाभ्यां रक्तदुष्टिः। अचंक्रमणशीलानां मिथ्याहारविहारिणां सुकुमाराणां प्रायसः कायरोगः सम्भवति दर्शयति च।

तादृशरक्तदोषेण कषायकटुतिक्तरुक्षाहाराल्पाशनानशनादिभ्यः पादौ प्रकम्पौ कृत्वा यानयानादिकरणेन च तथा उष्ट्रखरहस्त्यादिषु द्विचक्रशकटे (बाइसिकिल) यानेन च [illegible] समासनासीनात् प्रलम्बितपादतया, उष्णाकालजनितवैषम्यात्, अत्यध्वगमन, व्यवाय, वेगनिग्रहादिभिः वायुः कुपितः पूर्वोक्तकारणैर्दुष्टेनरक्तेन स्ववहसिरासु आवारितो भवति। अवरोधात् अत्यन्तकुपितःसन् वायुः— एकं सर्वांगं वा दूषयति तेन दूषणेन सौक्ष्म्यात् चलत्वात् सिरामार्गेण प्रथमतः पादमूलं गत्वा ततो पादौ करौ अंगुलीः क्रमेण गुल्फजानूर्वादि सर्वसन्धीन् विधावति। तत्र अंगुलीपर्वाणां वक्रत्वात् तत्रैवाभिहतः सन् तेषुसन्धिषु स्थानं करोति। यदि सः श्लेष्मपित्ताद्रि संसृष्टो भवति तद्दोष लक्षणानि प्रादुर्भावयति। तेषु सन्धिषु अंगुल्यग्रेषु च दुःसहान् अनेकविधान् वेदनानुभावयति।

वायोस्तु प्रकृतितः स्ववहसिरास्वेव रक्तेन सह अधिकः सम्बन्धः। प्राकृतो वायुः (व्यानः) प्रकृतिस्थं रक्तं वातस्थानानि गमयित्वा तानि पोषयति स्म। उपरिर्निर्दिष्टकारणैः दुष्टेनरक्तेनसहितः स्वनिदानकुपितो वायुः सूक्ष्मचलत्वादिगुणैरव्याहतगतिः प्रथमतः स्वस्थानं पादौ गत्वा पादमूलं प्राप्य तत्र सूक्ष्मातिसूक्ष्मसिराप्रतानैः दुष्टरक्तस्य, तत्रत्यांगुलीमूलशलाकादि स्वल्पांगुलीसन्धिषु स्वभाववक्रेषु प्रसारणे अशक्यः सन् दुष्टरक्तावरुद्धगतिः स यायुः तत्रैव दुष्टरक्तनिचयं कृत्वा पादमूलयोः सन्धिषु च बाधां जनयति। तस्मादेवावरुद्धगतित्वादत्यन्त क्रुद्धः स वायुः तिरोभूय गुल्फजानूर्वादिसन्धिषु पादमूलांगुल्यग्रेषु च सूचीभिरिव तोदः, स्फुरणं, भिद्यतेव पीड़ा, श्लेष्मानुगतः गरुताप्रतीतिः, सुप्तिः, स्पर्शहानिः, अल्पस्पर्शज्ञानो वा, सन्धिषुकण्डुः, यदा-कदा रुजः भेदश्च भूत्वा-भूत्वा नश्यतः। हस्ताग्रपादाग्रसन्धिषु वैवर्ण्यं (अरुणकृष्णादिवर्णता), मण्डलानां प्रादुर्भावः—इत्यादीन् जनयति। केषुचन नासाकर्णयोरप्यग्रे वैवर्ण्यं-सुप्ति-तोदादयः सम्भवन्ति।

अत्र यदा वातरक्ते त्वचंमांसंचाधिष्ठाय दूषयतः तदा उत्तानमिति, यदा वा मेदोऽस्थिमज्जादि गम्भीरधात्वाश्रिते भवतः तदा गम्भीरमिति च संज्ञा दत्ता चरकेण। सुश्रुतस्तु नांगीकरोति तत्। केवलं कुष्ठवदुत्तानं भूत्वा कालप्रकर्षेणावगाढं भवतीति सुश्रुताशयः। किन्तु उत्तानलक्षणानि रक्तदुष्टया पिडकादीनामदर्शनेऽपि केवल कार्ष्ण्यारुणवर्णता मात्रम् पादमूल-हस्तमूल-नासाकर्णाग्रभागेषु सतोदसुप्त्या-

दयो भूत्वा ततः क्रमशः अंगुलीवक्रता स्पर्शहीनतादि लक्षणानि दृश्यन्ते केषुचन रोगिषु। तत्र वाताधिकत्वात् वायोः सूक्ष्म-चल-शीघ्रकारित्वादिगुणत्वात् गम्भीरधात्वाश्रयीभूत्वा वायुः अंगुलीवक्रतादिकं सम्पादयतीत्यर्थः।

**उत्तानवातरक्ते**—कण्डुः, दाहः, रुक्, आयासः, तोदः, शरीरावयवेषु स्फुरणम्, त्वचः श्यावरक्तवर्णता, बाह्येत्वचि तत्र-तत्र ताम्रवर्णता च भवति।

**गम्भीरेतु**—हस्तपादाग्रसन्ध्यादिषु शोफः, स्तब्धता, काठिन्यम्, अन्तर्भावो विदारितवत्-सूचीभिस्तुद्यतेव अनिर्वाच्यापीडा, श्याववर्णता अथवा ताम्रवर्णता, दाहः, तोदः, स्फुरणं, पाकः, अनवरतं शूलदाहादियुक्ता पीडा भवति। अंगुलीसन्ध्यादिषु मज्जसु च भिन्दन्निव अन्तः भृशार्तिमान् चरति वायुः। संकोचाकर्षणादिभिर्वायुस्सर्वशरीरे चरन् अंगुलीसन्धिषु वक्रतामुत्पाद्य खञ्जत्व पंगुत्वादीन्यपि क्रमशः जनयति।

उपरिनिर्दिष्टोत्तानगम्भीरयोर्लक्षणानि मिलित्वा उत्तान गम्भीर सम्मिश्रित वातरक्तः उभयाश्रयो भवति।

**वाताधिके वातरक्ते**—शिरायामः, सिरासु शूलम्, स्फुरणम्, तोदनं, शोफः रक्तावरोधात् यत्र दोषः संचीयते तत्र शोफः वाताधिकत्वात् कृष्णवर्णो रूक्षश्च भवति। श्याववर्णत्वं शोफस्य अनवस्थितत्वं च धमनीनां अंगुलीनां अंगुलिसन्धीनां च संकोचः, अंगानां ग्रहणम्, अतीव शूलम्, अंगानामाकुञ्चनं, शीतवातादिषु द्वेषः—इत्येतानि लक्षणानि जायन्ते। एतानि वाताधिकत्वात् वातस्थानेषु प्राधान्येन—पादमूलाग्रांगुलीसन्धिषु अधिकतया परिदृश्यन्ते।

**रक्ताधिक वातरक्ते**—अतीवपीडा, शोफः, तोदः, ताम्रवर्णतात्वचः, चिमिचिमायनं अन्तस्निग्धेन वा रूक्षोपयोगेन वा व्याधिगमनाभावः, कण्डुः, पिडकादिभिः स्राव अधिको भवति।

**पित्ताधिके वातरक्ते**—विदाहः, शूलम्, मूर्च्छा, स्वेदोद्गमनं, तृष्णा, मदः, भ्रमः, रागः, पाकः, भिनत्तीवशूलम्, शोषश्च भवति।

**श्लेष्माधिकेतु**—स्तिमितत्वं, गौरवं, स्नेहाधिक्यता, स्पर्शज्ञता, अरुचिः इत्यादीनि लक्षणानि भवन्ति।

**सर्वजे**—सर्वलक्षणं सांकर्यम्, द्वन्द्वजे संसर्गजदोषलक्षणता च भवतीति विदितमेव।

**विकृति**:—एतानि सर्वाणि लक्षणानि प्रकुपितवातस्य दुष्टरक्तावृतस्य च तत्तद्दोषानुगतस्य कर्माण्येव; किन्त्वस्य रोगस्य प्रधानाधिष्ठानं शरीरे रक्तवाहिसिरा एव। प्रकृतिस्थो वायुः स्वसिरासु वातरक्तं वहन् वातस्थानानिसन्ध्यादीनि पोषयतीति सिद्धमेव। प्रकुपितोपि वायुः स्वसिरास्वेव संचरन् स्वकीयं दुष्टवातरक्तस्वरूपं दर्शयति इत्यपि च सिद्धमेव। तथाच—"क्रियाणमप्रतीघात-ममोहं बुद्धिकर्मणां। करोत्यन्यान् गुणांश्चापि स्वाः सिराः पवनश्चरन्। यदा तु कुपितो वायुः स्वाः सिराः प्रतिपद्यते। तदास्य विविधा रोगा जायन्ते वातसम्भवाः॥ (सु. शा. अ. ७ श्लो.८-९)।

अत्रांगुलिसन्धिसंकोचः, आकुञ्चनं, स्तम्भनं, शूलतोदादयः प्रकुपितस्य दुष्टरक्तावरुद्धस्य वायोः कर्माणि। समस्तं शरीरमुत्सृज्य अंगुलीषु अंगुलीसन्धिषु च क्रमशः तत्समीपस्थ गुल्फ, जनूर्वादि सन्धिषु च प्राधान्येन स्वकीयदुष्टलक्षण दर्शने तत्त्वमेतदेव भवतीति ज्ञायते यत् सर्व शरीरप्रविसृतानां सिराणां वातरक्तवहसिरास्वेव वातस्थानागतासु पादांगुलीसन्धिषु प्रथमतः प्रकोपलक्षणानां दर्शनं, ततस्त्व अंगुल्यग्रसन्धिषु संकोचः, शोफः, स्तम्भ-संकोचौ, वक्रता, खञ्जादयः संजनयतीत्येव निश्चितुं शक्यते।

नैतदेव किन्तु यानि वातस्य स्थानानि सन्ति श्रोत्रत्वगस्थ्यादीन्यपि—स्वकोपव्यापक लक्षण लक्षितानि करोति, क्रमशः तत्रापि तोद-शूल-सुप्त्यादीनि लक्षणानि स्थापयति। वायोः सूक्ष्मचलत्वाप्रतिहतगतित्वाच्छरीरस्याग्रभागेषु तत्रापि प्रथमतः स्वस्थानेषु पादाग्रकराग्रादिषु दुष्टरक्तावृतः दूषित रक्तचिह्नानि पिडका, पामा, मण्डलादीनि करोति। यदि श्लेष्मणः संसर्गस्तर्हि, स्तैमित्य-सुप्ति-कण्ड्वादीनि, पित्त संसर्गे दाहपाकोषाचोषादीनि जनयति।

आयुर्वेदीय शारीरविभागे रक्तवहानां सिराणां वर्णनं सुश्रुताष्टांगसंग्रह-हृदयादिषु यत्कृतं तत्समन्वयपूर्वकं न किञ्चिदपि रोगमुद्दिश्य विशदविपुलीकरणपुरस्सरं कुत्रापि केनापि वर्णितम्।

किन्तु दुष्टरक्तवाहिन्यः सिरा शुद्धरक्तवाहिन्योधमन्यः यद्वर्णितमास्ते आधुनिक शारीरे तदेवानुसरन्ति बहवो वैद्याः स्वकीय रोगवर्णन-प्रसंगेषु व्याख्यानेषु निबन्धेषु च। वातरक्तनाम्नः अस्य व्याधेः विपुलसम्प्राप्तिः आधुनिकशारीररीत्या कुतो न समन्वयः सम्पादितः"। आधुनिकवैद्यके तु अस्य रोगस्य रोगवद्गणनैव न कृता। किन्तु रक्तदुष्टिसामान्येनैव तच्चिकित्सा क्रियतेऽधुनातनैः डाक्टरैः। यत्र वा अंगुलीवक्रादयः संजायन्ते तदानीं नैवैन् लेप्रसीति कथयन्ति, तत्र तच्चिकित्सायां सिद्धिः कदापि न तैर्लब्धमिति श्रूयते।

रक्तपरीक्षां कुर्वन्ति किन्तु न तत्र कश्चिद्दोषो लभ्यते। कुपितस्य वायोःअदृष्टिगोचरस्य रक्तपरीक्षायां कथं रक्ते दृष्टिगोचरता। तस्मात्ते वदन्ति न त्वयि कश्चिद्रोगः, भवान् नीरोग एवासि, जहि भ्रममिति सान्त्वयन्ति। किन्तु रोगी बाधामनुभवन्नेव तिष्ठति।

अन्यच्च अस्मिन् रोगे वायो अवरोधेन तिरोगमनस्वभावा तदा-तदा तत्र-तत्र हृदयस्य वेगोऽधिको भवति। स्पन्दनमधिकं दृश्यते। तेन श्वासाधिकतापि वातकालषु प्रतीयते। स्वभावा-नाडी-अधिकवेगवती विषमा च द्योत्यते केषुचन रोगिषु। शरीरकम्पनं दोलायनत्व प्रतीतिः। शयनेऽपि भ्रमण प्रतीतिः—इत्यादीनि लक्षणानि पित्तानुगे वाताधिके सम्भवन्ति।

साधारणतया वातरक्तप्रसंग एव वात्तादिदोषाणामन्योन्यावरक लक्षणानि प्रसेकस्य वातस्य पञ्चात्मकस्यान्योन्यावरणानि, पित्तेन वातस्य, कफन वातस्य, धातुभ्यो वातस्य चावरक लक्षणानि च पृथगुक्तानि। किन्तु निदानादिषु उक्तानां रोगाणां यानि यानि लक्षणानि निर्दिष्टानि तेषु ये विभक्ततराणि लक्षणानि दुर्बोधान्यापतेयुः तदा अवरको लक्षणेषु तेषां विभागं कृत्वा केन कस्य आवरणं संजातमिति—निश्चित्य तदीया चिकित्सा अनुसरणीया। किन्तु वहुशः सदृशेषु लक्षणेषु आवरकत्वादीन्यज्ञात्वैव चिकित्सां दोषलक्षणानुरूपामनुसृत्य तत्तद्रोगेषु सिद्धि नाप्नुवन्तीति नात्राहंसन्देहः। अत्र रक्तगतस्य रक्तावृतस्य च वायोर्लक्षणेषुभेदो निर्दिष्टः। यथा—रक्तगतवातलक्षणानि—"रुजस्तीव्राः ससन्तापा वैवर्ण्यंकृशतारुचिः। गात्रेचारुंषिभुक्तस्य स्तम्भश्चासृग्गतेऽनिले॥" (च. चि. अ. २८)। रक्तावृते-पुनः—"रक्तावृते सदाहार्ति स्त्वङ्मासान्तरयोभृशम्। भवेत्सरागः श्वयथुर्जायन्ते मण्डलानि च"॥ (च. चि. अ. २८)।

रक्तावृतेवायौ रक्तदुष्टिः वातदुष्टिश्च भवति तत्र वायुः दुष्टं रक्तं प्राप्य दाहशूलौत्वङ्मासाभ्यन्तरे रक्तस्थाने करोति। रागयुक्तानि शोथयुक्तानि च मण्डलानि चर्मणि करोति। शरीरे सर्वत्र त्वचि रक्तवर्णशोफं वा जनयति। रक्तगतेत्वनिले वायुरेव दुष्टोभवति न रक्तस्य दुष्टिः तस्मात्तत्र-तीव्राः शूलादयः, त्वचि वैवर्ण्यं, कार्श्यं, अरुचिः, गात्रेषु कठिन पिण्डकोद्गमः शुक्रमात्रस्य शरीरस्तम्भोभवति।

तर्हि दुष्टो वा कुपितोवायुः कुतो प्रकृतिस्थंरक्तमेव प्राप्य रोगं जनयतीति सन्देहे हेतुवैविध्यमेवकारणमिति मन्यते। परं रक्तावृतवायोः वातशोणितस्य च लक्षणषु भेदो दृश्यते तत्र कथं समन्वय इत्युक्ते—सर्वशरीरगतस्य दुष्टिः तैस्तैर्हेतुभिर्भवति। वायोरपि स्वकारणैर्दुष्टिः संजायते। तादृश दुष्टया वायुः दुष्टरक्तेनावृतः रक्तावृत वातत्वलक्षणानि सामान्यतया प्रादुर्भावयति। वात शोणिते तु"हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतश्चाश्नतश्चेति" हेतु द्वयं निर्दिष्टम्। प्रलम्बमानहस्तपादादयो भिन्न हेतवः वातशोणित-रोगमेव जनयन्तिति हेतुविभिन्नतैवात्रापि कारणमिति समाधानमित्यलमिति प्रपञ्चितेन।

---

## सम्पादकीय

[ ७०९ पृष्ठ का शेषांश ]

यदि वे स्वयं ऐसा नहीं करते तो भी वैद्य-समाज की रीति-विधियों का अध्ययन करनेवाला कोई व्यक्ति सहज ही यह अनुमान कर सकता है कि स्थिति के स्पष्टीकरण के साथ ही आयुर्वेद महासम्मेलन में व्याप्त पाखण्ड दम तोड़ रहा है और संस्था को कुचक्र में फँसा कर रखनेवाले अपने ही कर्मों से समाज की दृष्टि में गिरते जा रहे हैं। अधिकार का दुरुपयोग करके यह लोग जो कुछ आज कर रहे हैं, वह निश्चय ही बुझते दिये की लौ का अन्तिम मचलना है।

सम्मेलन स्थगित हुआ। फिर नागपुर में स्थायी समिति की बैठक बुलाई गई। सैकड़ों सदस्य दूर-दूर से अपना समय और रुपया व्यय करके नागपुर गए, परन्तु सदस्यों के इन हजारों रुपये व्यय की चिन्ता न करके बैठक को वैधानिक कारण का बहाना लेकर स्थगित कर दिया गया। इस प्रकार यह आशा भी धूमिल हो गयी कि दिल्ली में सम्मेलन निकट भविष्य में सम्भव हो सकेगा। जब तक वैधानिक अड़चन उपस्थित है, तब तक कोई कार्य नहीं किया जा सकता। आयुर्वेद के इन कागजी रक्षकों ने कैसी विचित्र स्थिति उत्पन्न कर दी है?

इन सारी बातों से सम्पूर्ण वैद्य-समाज और विशेषकर महासम्मेलन सदस्यों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। अधिकार के मद में यह लोग कितना भी समय निकालें, परन्तु इतना निश्चित है कि जो कुछ होना चाहिए, या होने जा रहा है, उसको वे टाल नहीं सकते! एक-न-एक दिन, बहुत शीघ्र ही इन्हें अपने किये पर पछताना होगा और महासम्मेलन पर छायी हुई प्रवञ्चना की काली घटाएं मिट कर रहेंगी।

गुजरी हुई बातों को ध्यान में रखकर वैद्य-समाज को केवल इस बात पर अपनी शक्ति लगानी चाहिए कि हम अपनी संस्था की बागडोर किस प्रकार और किन सुयोग्य विद्वानों के हाथ में सौंपे! संस्था का उद्धार करके कैसे उसको यथार्थ सक्रिय प्रतिनिधि-संस्था बनावें! स्वयंभू प्रवञ्चकों के कुचक्रों के बावजूद किस प्रकार हम अपना केन्द्रीय महाविद्यालय या विश्वविद्यालय संचालित करें! कुचक्री गुटबन्दी वाले व्यक्तियों के दूषित कार्योंसे क्षोभपूरित न होकर, संयत भावना से केवल निर्माण कार्यों की सफलता का मार्ग प्रशस्त बनाने की ओर वैद्यगण सचेष्ट होवें, इतना ही समयोचित और वांछनीय है।

# ओज विषयक प्रश्नों के उत्तर

**वैद्य शंकरलाल शर्मा, भिषगाचार्य**

जनवरी १९५९ के **सचित्र आयुर्वेद** में "क्या द्विविध ओज-कल्पना श्री चक्रपाणिकृत है ?" शीर्षक मेरा लेख प्रकाशित हुआ है। उस लेखके सम्बन्ध में स्नातकोत्तर-प्रशिक्षण-केन्द्र जामनगर के श्री भगवानदासजी ने दो प्रश्न किये हैं। प्रथम—"पर ओज को हृदय की मांसपेशी में स्थान बतानेके लिए आपने हृदय के क्रिया-स्वातन्त्र्य पर अयथा चाप दिया है, ऐसा मालूम पड़ा। आप शायद जानते होंगे कि सिर्फ हृदय नहीं, ऐसे दूसरे अनेक शरीर के अङ्ग का नियन्त्रण मस्तिष्क से नहीं होता। जैसे क्षुद्रान्त्र का उदाहरण लीजिए। उसकी गण्डुपदाकृति गति के लिए मस्तिष्क का हृदय के ऊपर जितना अधिकार है उससे ज्यादा क्षुद्रान्त्र में नहीं। Miesshor's and Aurbashs Plexus जिसको कि peripheral Brain भी कहा जाता है वे आन्त्र का क्रिया-नियन्त्रण करते हैं जैसे Bundle of His हृदय में। तो आप क्रिया-स्वातन्त्र्य के कारण आन्त्र में भी पर ओज बतायेंगे ? और मूत्र में भी Albumen प्राय: आता है ऐसा जो आप लिखते हैं वह थोड़ा असम्भव सा प्रतीत होता है।

शरीर में प्रत्येक अङ्ग अपना महत्व रखता है किन्तु इनमें हृदय एक ऐसा अंग है कि जिसके क्रिया-शील न होने पर प्राणान्त हो जाता है। अतएव चरकाचार्य ने लिखा है—**"षडङ्गमङ्गं विज्ञानं इन्द्रियाण्यपचञ्चकम्। आत्मा च सगुणश्चेतश्चिन्त्यं च हृदि संश्रितम्।"** दोनों बाहु, दोनों सक्थि, शिर, शरीर का मध्यभाग, विज्ञान-आत्मसम्बन्धी विशेष ज्ञान, चक्षु आदि इन्द्रियाँ, शब्दादि पाँचों विषय, गुण सहित आत्मा, अर्थात् जीवात्मा, मन और मन का विषय चिन्त्यादि, ये सब हृदय में रहते हैं। इस विवरण से यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि शरीर में हृदय का कितना महत्व है। शरीर देखने में हृष्ट-पुष्ट मालूम पड़ने पर भी, यदि हृदय में स्वल्प भी दुर्बलता हो तो शरीर की सबलता कोई मूल्य नहीं रखती। उक्त पद्य के आगे के पद्य की व्याख्या में श्री चक्रपाणि जी ने लिखा है कि हृदय तो केवल दो अंगुल-प्रमाण है और षडङ्गादि शरीर तो बहुत बड़ा है। यह सब का सब हृदय में आश्रय भाव से किस तरह रह सकता है। तब आगे चरकोक्त पद्य—**"प्रतिष्ठाष्ठार्थं हि भावानामेषां हृदयमिष्यते। गोपानसीनामागार कर्णिकेवार्थचिन्तकैः"** की व्याख्या में लिखा है कि षडङ्गादि शरीर का और हृदय का आधाराधेय-भाव सम्बन्ध नहीं है अपितु अन्वय-व्यतिरेक सम्बन्ध है अर्थात् हृदय के रहते ही षडङ्गादि भाव की सम्यक् स्थिति रह सकती है। लिखने का तात्पर्य यह है कि शरीर में अंग-प्रत्यंगों में हृदय का सब से अधिक महत्व है। जिस हृदय पर सम्पूर्ण शरीर की स्थिति का दारोमदार हो, उसमें अन्य अंगों की अपेक्षा कोई विशेषता भी होनी चाहिये। वह विशेषता यह है कि हृदय दो अंगुल का होते हुए भी सम्पूर्ण शरीर का पालन करता है। हृदय में इतनी शक्ति कहाँ से आई, यह शंका यहाँ हो सकती है किन्तु हृदय में जो सूक्ष्म ओज है उसी से यह शक्ति मिली है। यहाँ यह शंका भी हो सकती है कि हृदय में तो प्राणवायु रहता है और पाँचोवायु में प्राणवायु का महत्त्व भी विशेष है, जैसा कि आचार्य ने लिखा है—**"प्राणो रक्ष्यश्चतुर्भ्योऽपि स्थाने हृदयस्य स्थितिर्ध्रुवा"** अर्थात् उदानादि चारों वायु की अपेक्षा प्राण-वायु की रक्षा विशेषत: करनी चाहिये। इसके अपने स्थान में रहने से ही शरीर की स्थिति ठीक रह सकती है। यह ठीक है किन्तु आचार्य ने ओज प्रकरण में ओज को "धारि" भी लिखा है, जिसका अर्थ होता है शरीर को धारण करनेवाला। तात्पर्य यह है कि शरीर को धारण करने में वात, पित्त, कफ, रसरक्तादि धातुएँ सभी हैं, किन्तु इन सब की अपेक्षा ओज का अधिक महत्व है, अतएव श्री चक्रपाणि जी ने भी लिखा है 'धारि' अर्थात् **जीवाधारक संयोगिभ्यः प्रधानत्वात्**। तात्पर्य यह है कि जीव को धारण करने वाले जितने भी संयोगी हैं, उन सब में ओज प्रधान है। अत: हृदय में ओज की प्रधानता से ही उसमें अपने से पर्याप्त बड़े शरीर को धारण करने का सामर्थ्य है। आपका प्रश्न है—"क्या क्रिया-स्वातन्त्र्य के कारण आन्त्र में भी पर ओज बतायेंगे ?" मैंने यह पहले ही लिख दिया है कि शरीर में हृदय ही एक ऐसा अंग है जो सम्पूर्ण शरीर की रक्षा करता रहता है। आन्त्र का

पोषण भी हृदय-प्रेरित रक्त से ही होता है। उसमें जो गतियाँ होती हैं वे समान और अपानवायु के द्वारा होती हैं, जैसा कि लिखा भी है—"**आमपक्वाशय चरः समानो वह्निसंगतः। अन्नं पचति तज्जांश्च विशेषान् विविनक्तिहि। पक्वाशयाशयोऽपानः काले कर्षति चाप्ययम्। समीरणः शकृन्मूत्रशुक्रगर्भार्तवान्यधः॥**" समान वायु आमाशय और पक्वाशय में रहता हुआ पाचकाग्नि से मिलकर अन्न को पचाता है और रस, मल, मूत्र को पृथक्-पृथक् विभक्त करता है और नीचे के भाग में अपान वायु रहता है जो उचित समय पर मलमूत्रादि को शरीर से बाहर करता है। आयुर्वेद के सिद्धान्तानुसार ऐच्छिक और अनैच्छिक सभी गतियाँ वायु के द्वारा होती हैं। जैसा कि ऊपर लिखा गया है आन्तों में भी गति वायु के द्वारा ही होती है। अतः आन्तों में पर ओज को मानने की आवश्यकता ही नहीं है। दूसरी बात यह है कि शास्त्र-प्रमाण से पर ओज केवल हृदय में ही रहता है, आन्त्र के लिए ऐसा कोई निर्देश नहीं मिलता। जैसा कि चरक में लिखा है—"**तत्पस्यौजसः स्थानम् तत्र चैतन्यसंग्रहः।**" हाँ, स्थूल ओज तो शरीर के सभी भागों में विद्यमान रहता है।

प्रश्न२—शास्त्र में लिखा है कि आत्मा,मन, इन्द्रियादि सभी हृदय में रहते हैं। आत्मा स्वयं निष्क्रिय होते हुए भी, मन के संयोग से क्रिया-शील होता है और हृदय में रहने के कारण हृदय की क्रियाशीलता मनः संयुक्त आत्मा के द्वारा होती है। ओज तो स्वयं चैतन्य रहित है, अतएव हृदय की क्रिया-शीलता ओज पर निर्भर नहीं है। चरक शारीरस्थान में महर्षि ने लिखा है कि —"**शरीरंहि गते तस्मिन् शून्यागारमचेतनम्। पञ्चभूतावशेषत्वात् पञ्चत्वं गतमुच्यते**" अर्थात् पञ्चमहाभूतनिर्मित शरीर से जब जीवात्मा अलग हो जाता है तो शरीर शून्य एवं अचेतन हो जाता है और पाँचों महाभूतों के रहने के कारण पञ्चत्व को—मृत्यु को प्राप्त हो गया यह कहा जाता है।

उत्तर—यह ठीक है कि शरीर में चेतनत्व मनःसंयुक्त आत्मा के द्वारा ही आता है किन्तु शरीर में आत्मा का प्रवेश भी तभी होता है जबकि ओजयुक्त शुक्र-आर्तव का संयोग गर्भाशय में हो। चरकाचार्य ने लिखा है कि—"**यत्सारमादौ गर्भस्य यत्तद्गर्भरसाद्रसः**" अर्थात् जो ओज गर्भ का भी सार है। इस पद्य की व्याख्या में आचार्य इन्दु लिखते हैं—**यद्गर्भस्यादौ सारमिव सारं, नहि तेन विना शुक्र शोणिते जीवानुप्रवेशः। यच्च गर्भरसाद्रसः, गर्भस्य योऽसौ रसः प्रथमोधातुः तस्मादपि सारः प्रसादभूतम्।**" तात्पर्य यह है कि जो ओज आदि में, शुक्रशोणित संयोगकाल में, गर्भ का सारभूत है, विना ओज के शुक्र-आर्तव में जीव का प्रवेश नहीं होता और जो ओज गर्भ का प्रथम धातु—रस का भी सारभूत है। लिखने का तात्पर्य यह है कि जीवात्मा के निवास के योग्य हृदय होगा तभी तो वह निवास कर सकेगा। वह योग्यता तो पर ओज के कारण ही आ सकेगी। यदि यह बात न होती तो आचार्य की प्रतिज्ञा "**तन्नाशान्ना विनश्यति**" अर्थात् हृदयस्थ पर ओज के नष्ट होने से मनुष्य मर जाता है, व्यर्थ होती है।

प्र. व. सेठ. गो. रा. चमड़िया
औषधालय फतेहपुर
(राजस्थान)

सुश्रुताचार्य ने भी ओज को प्राणायतन माना है। इसकी व्याख्या में आचार्य डल्हन ने लिखा है—**प्राणानाम्—अग्नि सोमवायुसत्वरजस्तमःपञ्चेन्द्रियभूतात्मनाम् आयतनम्-स्थानम्** अर्थात् ओज (सूक्ष्म) अग्निसोमादि प्राणों का स्थान है। लिखने का अभिप्राय यह है कि ओज के रहते ही प्राणों की स्थिति रह सकती है। इसी तरह आचार्य वाग्भट ने भी ओज के गुणों में "**देहस्थितिनिबन्धनम्**" लिखा है। इसकी टीका में लिखा है कि **देहस्यस्थितिः देहस्थितिस्तस्यनिबन्धनम् जीविताधिष्ठानमित्यर्थः**। इस वाक्य का तात्पर्य भी यही निकलता है कि ओज जीव का स्थान है। विना ओज के पञ्च महा- भूत निर्मित शरीर में जीव की स्थिति नहीं रह सकती।

इसी तरह आचार्य दृढबल ने भी लिखा है कि—"**हृदये मूर्ध्नो वस्तौ च नृणां प्राणाः प्रतिष्ठिताः। तस्मात्तेषां सदा-यत्नं कुर्वीत परिपालने॥**" च. सि. ९ अध्याय, अर्थात् हृदय, शिर, वस्ति (मूत्राशय) में मनुष्यों के प्राण विशेषतः रहते हैं। अतः इनकी रक्षा प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिए।

ग्रहणी, आन्त्रज्वरादि रोगों में आन्तों में क्षत हो जाते हैं और कभी-कभी रक्तस्राव भी होता है। परन्तु सम्यक् चिकित्सा से लाभ हो जाता है। किन्तु हृदय में साधारण चोट लगने से ही मूर्च्छा हो जाती है और अधिक चोट लगने से तो मृत्यु निश्चित होती है, जैसाकि चरक में लिखा है—"**तस्योपघातान्मूर्च्छायं भेदान्मरणमृच्छति**"। इसकी व्याख्या में श्री चक्रपाणि जी ने लिखा है कि **तस्य-हृदयस्य, उपघातः—किञ्चिद् हननम् तस्मान्मूर्छायं भेदात्—महोपघातात् मरणमृच्छति**। अतः महर्षियों ने हृदय की रक्षा के लिए विशेष कहा है क्योंकि शरीर में यह आवश्यक है।

आपका प्रश्न है कि "मूत्र में एलव्यूमीन प्रायः आता है, वह थोडा असम्भव है।" इसका उत्तर यह है कि स्वस्थ मनुष्य के मूत्र में तो एलव्यूमीन नहीं आता परन्तु जब मनुष्य के वृक्क कुछ विकृत हो जाते हैं और उनकी क्षरण-क्रिया शिथिल हो जाती है तब मूत्र में उक्तद्रव कभी कम और कभी अधिक रूप में आता है। यह असम्भव किस आधार पर है, कृपया लिखने का कष्ट करें।

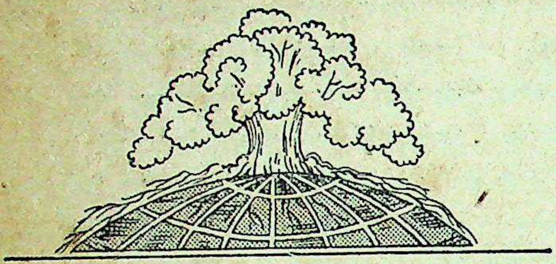

# आयुर्वेद-जगत्

## आयुर्वेद अनुसंधान परिषद्

केन्द्रीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् के ढंग की केन्द्रीय आयुर्वेदिक अनुसंधान परिषद की स्थापना का प्रश्न फिलहाल भारत सरकार के विचाराधीन है। आयुर्वेदिक चिकित्सा के मौजूदा स्तर के मूल्याङ्कन के लिए कुछ अर्से पूर्व सरकार ने एक समिति गठित की थी। इस समिति की रिपोर्ट पर फिलहाल भारत सरकार विचार कर रही है। समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि जामनगर स्थित मौजूदा भारतीय चिकित्सा अनुसंधान संस्थान आयुर्वेदिक चिकित्सा के सुधार के लिए पर्याप्त रूप से सक्षम नहीं है। समिति ने यह भी सिफारिश की है कि आयुर्वेदिक और आधुनिक चिकित्सा प्रणालियों में अधिक सहयोग होना चाहिए। प्रस्तावित केन्द्रीय आयुर्वेदिक अनुसंधान परिषद् न केवल इस समन्वय को मूर्तरूप देगी अपितु आयुर्वेद व अन्य चिकित्सा-पद्धतियों के विकास में भी सहायक होगी।

समिति की यह भी सिफारिश है कि भारत सरकार प्राचीन पाण्डुलिपियों को एकत्रित करे और उनमें से जो महत्त्वपूर्ण हों, उनका प्रकाशन करे तथा सभी भारतीय भाषाओं में उनका अनुवाद करवाए। यह भी सिफारिश की गयी है कि यह आयुर्वेदिक चिकित्सा के हित में होगा कि कतिपय परम्परागत वैद्यों द्वारा "गुप्त उपचार" सम्बन्धी किए जाने वाले दावों की छान-बीन की जाय। समिति ने देश के समस्त आयुर्वेदिक चिकित्सकों से अनुरोध किया है कि वे प्राचीन आयुर्वेदिक विद्वानों द्वारा निर्धारित नीति संहिता का शब्दशः पालन कर अपने पेशे का सम्मान कायम रखें।

## भारतीय मूल द्रव्यों से औषधियों का निर्माण

लोकसभा की प्राक्कलन समिति ने अपनी रिपोर्ट में यह मत व्यक्त किया है कि देश में स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या पेचीदा है और समिति राष्ट्रीय आयोजना समिति तथा प्रधान मंत्री के इस वक्तव्य से सहमत है कि स्वास्थ्य सम्बन्धी सारी समस्याओं का मूल कारण अपौष्टिक भोजन, आवास की असुविधा तथा जीवनोपयोगी अन्यान्य वस्तुओं का अभाव ही है।

समिति की रिपोर्ट में औषधियों के सम्बन्ध में कहा गया है कि भारतीय पदार्थों से औषधियाँ बनाने तथा भारत में ही औषधियाँ निर्माण करने की ओर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त सरकार को चाहिए कि वह आयुर्वेद यूनानी और अन्य प्रकार की औषधियां बनाने के निर्माण-सम्बन्धी तरीकों को एक स्तर पर लाने का प्रयास करे। रिपोर्ट में इस बात की भी सिफारिश की गयी है कि आयुर्वेदिक और यूनानी औषधियां जाली बनाने के जो आम तौर पर उदाहरण सामने आते हैं—उसकी ओर भी सरकार को ध्यान देना चाहिए और औषधि नियंत्रण के अधिनियम को उन पर लागू करने का प्रबन्ध करना चाहिए।

## उत्तर प्रदेश वैद्यों तथा हकीमों से प्रार्थना

जिन वैद्यों तथा हकीमों ने अपने कार्यस्थल के पते भेजे हैं उनको मैं हार्दिक बधाई देता हूँ। इस विषय में प्रगति अवश्य हुई है परन्तु यथा वांछित प्रगति का अद्यावधि अभाव सा है। जिन महानुभावों ने पते भेजने का कष्ट उठाया है वे अभी कार्यालय से उत्तर पाने की आशा न करें। पते ठीक करने के उपरान्त कार्यालय जिन की सूचना पाने में असमर्थ रहेगा, उन महानुभावों के नाम इसी पत्र में जिलेवार पुनः मुद्रित कराए जायेंगे। हकीम तथा वैद्य महानुभावों से आशा है कि वे अपने अपने पते उर्दू अथवा हिन्दी भाषा में (स्पष्ट अक्षरों में) लिखकर भेज देने की कृपा शीघ्र करें। हमारे प्राचीन रजिस्टर जिनसे गत एलक्टररोल मुद्रित हुए थे, अंग्रेजी से ही हिन्दी में रुपान्तरित किए गये थे जिससे मात्राओं तथा व्यंजनों की अशुद्धता उनमें प्रायः दृष्टिगोचर होती है। अतः आंग्ल भाषा प्रेमी वैद्यों तथा हकीमों से विशेष अनुरोध है कि वे पुनः आर्यालय को अशुद्ध लिखने के लिए वाध्य न करें।

## बैद्यनाथ बिक्री-केन्द्र का उद्घाटन

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० की नव स्थापित तृतीय शाखा का उद्घाटन गोरखपुर में श्री भैरवनाथ झा, उपकुलपति गोरखपुर विश्वविद्यालय द्वारा ससमारोह हुआ। इस अवसर पर स्थानीय सरकारी अधिकारियों के अतिरिक्त, वकील, वैद्य, डाक्टर, व्यापारी, विद्यालयों के आचार्य, अध्यापक प्रभृति उपस्थित थे। समागत महानुभावों का स्वागत करते हुए संयोजक, वैद्य सत्यनारायण शर्मा ने श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया और भवन द्वारा हो रही अनेकविध आयुर्वेदीय सेवाओं का उल्लेख किया। श्री भैरवनाथ झा, उपकुलपति गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्रति उद्घाटन करने के हेतु आभार भी व्यक्त किया।

गोरखपुर नगर वैद्य मंडल की ओर से श्री झा महोदय को मान-पत्र अर्पित किया गया जिसमें उनके व्यक्तित्व तथा पाण्डित्य पर प्रकाश डाला गया था। मान-पत्र में श्री झा महोदय से इस आशय की अपील भी की गयी कि गोरखपुर विश्वविद्यालय के अन्तर्गत आयुर्वेद के लिए एक पृथक् विभाग की स्थापना की जानी चाहिए। इस अवसर पर अनेक ख्यातिलब्ध विद्वानों के समयोपयोगी भाषण हुए। विद्वानों ने आयुर्वेद पद्धति पर प्रकाश डालते हुए कहा कि यह दोषरहित वैज्ञानिक पद्धति हैं और चिकित्सा सम्बन्धी सभी अंग इसमें समाविष्ट हैं।

गोरखपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री भैरवनाथ झा ने अपने उद्घाटन-भाषण में आयुर्वेद की वैज्ञानिकता की पूर्ण विवेचना करते हुए कहा कि यह चिकित्सा-पद्धति भारतीय जनता के जीवन में घुली मिली है और इसकी लोकप्रियता का प्रमुख कारण इसकी गुणवत्ता ही है। आपने शास्त्रीय ढंग से ही औषधि-निर्माण करने की अपील करते हुए आयुर्वेद को अधिकाधिक लोकप्रिय बनाने पर जोर दिया। आयुर्वेदोन्नति की दिशा में बैद्यनाथ प्रतिष्ठान द्वारा होरहे सत्प्रयत्नों का उल्लेख करते हुए उपकुलपति महोदय ने कहा कि बैद्यनाथ प्रतिष्ठान की तरह अन्य फार्मेसियाँ भी यदि इस दिशा में आगे बढ़ें तो आयुर्वेद का बड़ा हित हो सकता है और जनता भी इस प्राचीन चिकित्सा-पद्धति से अधिक पैमाने पर लाभान्वित हो सकती है। उद्घाटनोत्सव में सम्मिलित विशाल जन-समूह को देखकर आपने कहा कि इस विराट जन-समूह की उपस्थिति इस बात का द्योतक है कि आयुर्वेद तथा आयुर्वेद की उन्नति में संलग्न श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के प्रति जनता के हृदय में कितना बड़ा स्थान है। अन्त में संयोजक द्वारा धन्यवाद-ज्ञापन करने के बाद समारोह समाप्त हुआ।

## हकीम अजमल खां की जयन्ती

स्व० हकीम अजमल खाँ की जयन्ती तिब्बी कालेज, पटना में बिहार के राज्यपाल डा० जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में धूमधाम से मनायी गयी। माननीय राज्यपाल के अतिरिक्त बिहार सरकार के स्वास्थ्य-मंत्री श्री बीरचन्द पटेल और स्वायत्त मंत्री श्री बिनोदानन्द झा भी विशेष तौर पर आमंत्रित होकर सभा में उपस्थित थे। तिब्बी कालेज के प्राचार्य श्री अब्दुल अहद ने स्वर्गीय अजमल खाँ के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा कि हकीम अजमल चिकित्सा के क्षेत्र में एक बहुत बड़ी हस्ती थे। आयुर्वेद और तिब्बी को जीवित रखने के लिए उन्होंने जो प्रयास किए हैं, उन्हें हम भुला नहीं सकते।

इस अवसर पर भाषण करते हुए बिहार के स्वास्थ्य मंत्री श्री बीरचन्द पटेल ने कहा कि आयुर्वेद एवं तिब्बी अपनी गुणवत्ता के बल पर तमाम विपरीत परिस्थितियों से लोहा लेते हुए आज तक अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं और अब स्वतंत्र भारत की कोई भी सरकार इसकी उपेक्षा नहीं कर सकेगी। इन उभय पद्धतियों को इनका अधिकार मिल कर रहेगा।

अध्यक्ष-पद से बोलते हुए राज्यपाल डा० जाकिर हुसैन ने स्व० अजमल साहब के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित की और आगे कहा कि आयुर्वेद-तिब्बी चिकित्सा-प्रणाली का विकास परमावश्यक है। वैद्यों हकीमों एवं डाक्टरों में पारस्परिक मेल-जोल बढ़ाने पर भी आपने जोर दिया। अन्त में सधन्यवाद आयोजन समाप्त हुआ।

## बरेली में बैद्यनाथ का नया बिक्री-केन्द्र

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के बरेली स्थित द्वितीय बिक्री-केन्द्र का उद्घाटन उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्य तथा आयुर्वेद के सुपरिचित विद्वान पं० धर्मदत्तजी वैद्य एम० एल० ए० के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। उद्घाटनोत्सव में नगर के प्रतिष्ठित नागरिकों, उच्चाधिकारियों के अतिरिक्त वैद्य-हकीम बड़ी संख्या में उपस्थित

थे। इण्डियन मेडिसिन बोर्ड लखनऊ के चेयरमैन पं० दरबारी लालजी शर्मा भी समारोह में उपस्थित थे। सर्वप्रथम संयोजक की हैसियत से श्री मदनमोहन जी शास्त्री ने समागत महानुभावों का स्वागत करते हुए आयुर्वेद की महत्ता प्रदर्शित की और इसको अत्यन्त वैज्ञानिक प्रणाली बताया। श्री दरबारी लालजी शर्मा ने कहा कि आयुर्वेद एक ऐसी चिकित्सा-पद्धति है, जो सर्वथा निर्दोष कही जा सकती है—आपने इसे राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति बनाने पर जोर दिया।

पण्डित श्री धर्मदत्तजी ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि आयुर्वेद इस देश की अत्यन्त प्राचीन चिकित्सा प्रणाली है और अतीत में यह अपने विकास के चरमविन्दु पर अधिष्ठित थी। बीच में विदेशी शासन की घोर उपेक्षा के फलस्वरूप अवश्य इसके पैर लड़खड़ाए और इसकी प्रगति रुकी रही। किन्तु अपनी गुणवत्ता और वैज्ञानिकता के बल पर यह पद्धति राज्याश्रय के अभाव में भी अपना अस्तित्व बनाए रही। श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० की आयुर्वेदीय सेवाओं का उल्लेख करते हुए आपने कहा कि बैद्यनाथ औषधियां विशुद्ध आयुर्वेदिक रीति से सुयोग्य आयुर्वेदज्ञों की देखरेख में तैयार की जाती हैं और इसमें सन्देह नहीं कि बैद्यनाथ प्रतिष्ठान ने आयुर्वेदीय औषधियों को सर्वजन सुलभ कर दिया है और आयुर्वेद के हित में यह बड़ा काम हुआ है। भवन के संचालक वैद्य रामनारायण शर्मा की आयुर्वेदिक सेवाओं की चर्चा करते हुए आपने कहा कि आयुर्वेद के देशव्यापी प्रचार के लिए वैद्य जी सदैव चेष्टारत रहते हैं। अन्त में केन्द्र के व्यवस्थापक पं० मधुसूदन शर्मा, वैद्य-भूषण ने समागत सज्जनों के प्रति आभार प्रकट किया और बाद में सभा विसर्जित की गयी।

## त्रिदोष व्याख्यान माला के अंतर्गत भाषण

अयोध्या शिवकुमारी आयुर्वेद महाविद्यालय, बेगूसराय (मुंगेर) के तत्वावधान में आयोजित त्रिदोष व्याख्यान माला के अन्तर्गत गुरुकुल कांगड़ी आयुर्वेदीय महाविद्यालय के आचार्य (प्रिंसिपल) श्रीनिरंजनदेव 'प्रियहंस' के क्रमशः तीन भाषण महाविद्यालय भवन में हुए। व्याख्यान माला का प्रथम व्याख्यान "त्रिधातु के देहधारक या प्राकृत रूप का परिज्ञान", दूसरा व्याख्यान "सजीव शरीर में दोषों की उत्पत्ति" और तीसरा व्याख्यान "प्राकृत वात-पित्त-कफ का प्राकृत स्वरूप विवेचन" विषयों पर हुआ। महाविद्यालय के समस्त प्राध्यापक एवं छात्र आचार्य निरंजन देवजी की प्रवाहमयी भाषणशैली, विषय सम्बन्धी गंभीर विवेचन-शक्ति, अभिव्यक्ति की सरल प्रणाली तथा गंभीर पाण्डित्य पर मुग्ध हो गए। व्याख्यान की समाप्ति पर महाविद्यालय के प्राचार्य श्री ब्रह्मदत्त जी शर्मा ने संमाननीय अतिथि आचार्य श्री निरंजन देव जी के प्रति समस्त प्राध्यापकों एवं छात्रों की ओर से धन्यवाद-ज्ञापन किया और त्रिदोष की ऐतिहासिकता पर भी प्रकाश डाला।

इस अवसर पर छात्रों के द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम का भी भव्य आयोजन किया गया था। सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अन्तर्गत प्रहसन, अभिनय, नृत्य, संगीत, वादन तथा क्रिया शारीर विषयक सवाक् चित्रों का प्रदर्शन आदि विविध कार्यक्रम सम्पन्न हुए। आचार्य देव को छात्रों और अध्यापकों की ओर से हार्दिक अभिनन्दन विशेष समारोह का आयोजन करके किया गया तथा उनके सम्मान में प्राध्यापक समिति की ओर से एक प्रीतिभोज भी दिया गया।

## वैद्यों और रसयनशास्त्रियों का सम्मेलन

कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन कालेड़ा (अजमेर) में आगामी २७ से २९ मार्च तक वैद्यों और रसायन-क्रिया विशेषज्ञों का एक सम्मेलन होने जा रहा है, जिसमें पारद अनुसंधान सम्बन्धी विचार एवं तत्सम्बन्धी महौषधियों का प्रदर्शन किया जायगा। इस सम्मेलन में समस्त भारतवर्ष के विद्वान वैद्यों और रसायन शास्त्रियों को भाग लेने के लिए आमंत्रित किया गया है। सम्मेलन की विशेषता यह है कि सम्मेलन में प्रस्तावादि पारित न होकर केवल रस-रसायन सम्बन्धी शास्त्रीय विवेचन ही होंगे। सम्मेलन में भाग लेने वाले महानुभावों के निवास तथा भोजनादि का प्रबन्ध संस्था की ओर से निःशुल्क किया जायगा।

## औषधोपचार संबंधी प्रतिबंध का विरोध

राष्ट्रीय चिकित्सक संघ ने ने केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री श्री डी. पी. करमरकर को दिए गए एक ज्ञापन में १९४५ के "ड्रग रुल्स" में नवीन रूपसे सम्मिलित रजिस्टर्ड मैडिकल प्रैक्टिशनर की उस व्याख्या पर विरोध प्रकट किया है जिसमें संयुक्त चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा लेने वालों को भी नियमों की एच. अनुसूची में प्रदत्त औषधियों के प्रयोग करने से

वंचित कर दिया गया है। ज्ञापन में विस्तार से अनेक व्यक्तियों की सम्मति तथा अनेक राज्यों में स्वीकृत कानूनों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि इस प्रकार का परिवर्तन अनावश्यक और विभ्रम पैदा करने वाला है। अतः एलोपैथी और आयुर्वेद दोनों की शिक्षा प्राप्त चिकित्सकों पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध न लगाया जाय।

भारत सरकार ने नियमों में इस प्रकार के परिवर्तन करने की सूचना १७ जनवरी १९५९ के गजट में प्रकाशित की है। ज्ञापन में कहा गया है कि इतना महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने से पूर्व जिसका हजारों व्यक्तियों पर प्रभाव पड़ता है कोई आपत्ति आदि नहीं मांगी गई।

## जलोदर की चिकित्सा में आयुर्वेदीय अनुसंधान

भारत सरकार आयुर्वेद चिकित्सा द्वारा जलोदर रोग की चिकित्सा के लिए दिल्ली में अनुसंधान कराने की व्यवस्था कर रही है। जलोदर रोग एलोपैथिक चिकित्सा में असाध्य रोग माना जाता है। इस सम्बन्ध में केन्द्रीय स्वास्थ्य-मंत्रालय अनुसंधान करा रहा है। इस अनुसंधान में आयुर्वेद चिकित्सा के द्वारा जलोदर रोग की चिकित्सा के लिए व्यवस्था की गयी है। जलोदर रोग की चिकित्सा के सम्बन्ध में समय-समय पर सरकार जानकारी प्राप्त करती रहेगी।

दिल्ली नगर निगम के इनडोर आयुर्वेदिक अस्पताल को, जो पिछले कई वर्षों से चल रहा है, अनुसंधान के लिए चुना गया है। केन्द्रीय सरकार के आयुर्वेदिक परामर्श मण्डल ने बारह हजार रुपया प्रतिवर्ष तीन साल तक देने का निश्चय किया है। इस रुपए से इस अस्पताल में जलोदर के रोगियों के लिए ६ विस्तर रहेंगे। जलोदर रोगियों की समय-समय पर जाँच होती रहेगी।

अनुसंधान की यह व्यवस्था करने का निर्णय गत दिसम्बर मास में हुई एक बैठक में किया गया था। अब इसे चालू वर्ष में अंतिम रूप दिया जायगा। निगम के इन्डोर आयुर्वेदिक अस्पताल से कई रोगों के असाध्य रोगी लाभ उठा चुके हैं। केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय की आयुर्वेद परामर्श समिति ने कई अन्य संस्थाओं को भी अनुसंधान सम्बन्ध में सहायता दी है।

## आयुर्वेदिक पद्धति देश के अनुकूल

उदयपुर आयुर्वेदिक कालेज के वार्षिकोत्सव पर भाषण देते हुए राजस्थान के उप-स्वास्थ्य मंत्री श्री भीखा भाई ने कहा कि आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति को समुन्नत करने के लिए सरकार, वैद्यों एवं आयुर्वेद प्रेमियों के सम्मिलित प्रयत्नों की आवश्यकता है।

आपने कहा कि आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति हमारे देश की जलवायु एवं वातावरण के अनुकूल होने के साथ-साथ सुलभ एवं सस्ती है भी है। साधारण प्रयास द्वारा गाँव में इस चिकित्सा-पद्धति का लाभ पहुँचाया जा सकता है। श्री भीखा भाई ने कहा कि आयुर्वेद के छात्रों को संकल्प लेना चाहिए कि वे इस पद्धति के विकास में योगदान करेंगे। आपने विद्यार्थियों एवं आचार्यों से अनुसंधान में दत्तचित्त होकर प्रयत्न करने का आग्रह किया। स्वास्थ्य मंत्री ने आश्वासन देते हुए कहा कि जहाँ तक सरकार का सम्बन्ध है, वह आयुर्वेदोन्नति में भरसक योगदान दे रही है और देता रहेगी।

## बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय, झाँसी

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड द्वारा संचालित, श्री धमार्थ औषधालय तथा स्वास्थ्य रक्षा केन्द्र झाँसी में जनवरी १९५९ में १३८२ रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गई, जिनमें ३३८ नये रोगी आए हैं। और प्रत्येक रोग के अनुसार रोगियों की संख्या निम्न प्रकार है—वात रक्त १९, श्वेत प्रदर १७, यकृत वृद्धि ११, अजीर्ण १, प्रतिश्याय १६, ज्वर ३५, कास २०, मुख रोग १, ज्वर कास ३७, श्वास २६, वात रोग १५, उदर शूल १५, ज्वर प्रतिश्याय १५, अतिसार १७, उष्णवात ५, अर्श २, आघात ४, नेत्ररोग ४, मूत्रावरोध २, दन्तरोग ४, रक्त-प्रदर ९, शिरःशूल ४, रजःअवरोध ५, प्रसूत २, रक्तातिसार १, कृमिरोग ३, व्रण १, प्रमेह १०, कामला १, त्रिदोष ज्वर १०, अग्निमान्द्य ९, कर्णरोग २, दौर्बल्य १, आमातिसार ५, उपदंश १, उदररोग १, प्लीहा १, अम्लपित्त १, हृदय दौर्बल्य २, संग्रहणी २, गर्भाशय शूल १।

## बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय, नागपुर

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० द्वारा संचलित धर्मार्थ औषधालय नागपुर में गत जनवरी १९५९ में १३२४ रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गई, जिनमें २६१ नये और १०६३ पुरातन रोगी आए। विवरण निम्न प्रकार है—ज्वर २०, मुखपाक ५, रक्तपित्त २, जीर्णज्वर ७, वातरक्त ७, छर्दि ४, मलेरिया १२, यकृतविकार ३, दृष्टि विकार २, मन्थरज्वर ३, कृमिविकार ४, उपदंश २, अतिसार ७, नेत्रविकार ३, शोथ ३, ज्वरातिसार ४, दंतपीड़ा ४, कष्टार्तव ३, आमातिसार ७, कर्णपीडा ६, रजोवरोध ७, प्रवाहिका ३, गुल्म २, श्लीपद २, संग्रहणी ३, गण्डमाला २, बालरोग ३, उदररोग १३, वातव्याधि १२, कुष्ठ २, अम्लपित्त ५, आमवात ६, छर्दी २, ज्वर २, भ्रम २, व्रण ३, आनाह ३, हृदयदौर्बल्य ३, पांडु ३, अजीर्ण ५, आघात २, कास २६, पामा ८, श्वास ४, अर्श ३, प्रतिश्याय १०, प्रमेह ८, उष्णता ३, प्रदरविकार ६।

# समन्वय का आदर्श !!!

आयुर्वेद, एलोपैथी, यूनानी, होमियोपेथी आदि चिकित्सा-पद्धतियों के समन्वय का आज बोलबाला है परन्तु इस दिशा में जितना प्रयत्न चाहिए उतना हुआ नहीं है वस्तुतः,

## भावी पीढ़ी के मार्गदर्शनार्थ

**समन्वयात्मक पद्धति से ग्रन्थों का लेखन तथा प्रकाशन सर्वोपरि आवश्यक है**

**बैद्यनाथ-प्रकाशन**

# आयुर्वेदीय क्रियाशारीर

**समन्वयप्रधान दृष्टि से लिखे गए ग्रन्थों में मूर्धन्य** कहा जा सकता है

**ग्रन्थ के लेखक** हैं : सचित्र-आयुर्वेद परिवार के सुविदित सदस्य, सूरत के आयुर्वेद महाविद्यालय के उपाचार्य तथा मुंबई राज्य सरकार के आयुर्वेदिक रिसर्च बोर्ड के सभ्य
**वैद्य रणजितराय देसाई** आयुर्वेदालंकार, आयुर्वेदाचार्य

**संपूर्ण प्राचीन वाङमय से** दोषों, धातुओं, उपधातुओं तथा मलों की क्रिया के रूप में **शरीर-क्रिया-विज्ञान के सिद्धान्तों का दोहन और संदोहन कर** व्याख्या के व्याज से **नव्य मत भी प्रायः संपूर्ण** इस ग्रन्थ में संकलित किया गया है विषय का निरूपण इस दृष्टि से किया गया है कि विद्यार्थी **रोगों के निदान और चिकित्सा में क्रियाशारीर की उपयोगिता तथा उपादेयता** को भी समझते जाएँ

रायल अठपेजी साइज के ११०० पृष्ठों के अनेक चित्रों से युक्त ग्रन्थ का मूल्य केवल ११) रखा गया है । **आज ही** अपनी प्रति मँगाइए **अन्यथा चतुर्थ संस्करण की प्रतीक्षा** करनी होगी

प्रकाशक
श्री **बैद्यनाथ** आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
१, गुप्ता लेन, कलकत्ता—६

# यूनानी चिकित्सा-सार

लेखक

**वैद्यराज हकीम ठाकुर दलजीत सिंह**

आयुर्वेद में जैसे माधवनिदान रोग-निदान के लिए और शारंगधर, चक्रदत्त आदि रोगों की चिकित्सा के लिए प्रसिद्ध हैं, वैसे ही यूनानी (हकीमी)-चिकित्सा में कराबादीन कादरी, शिफाउल् अमराज, इलाजुल्गुर्बा आदि निदान और चिकित्सा के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक यूनानी और आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान हैं, अतएव उन्होंनें आयुर्वेदीय चिकित्सकों को भी यनानी के रोग-निदान, लक्षण और चिकित्सा का ज्ञान कराने के उद्देश्य से इस पुस्तक में यूनानी रोगों के नाम हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी आदि भाषाओं में लिखकर उसके निदान, सम्प्राप्ति, लक्षण और चिकित्सा का वर्णन सरल हिन्दी भाषा में सविस्तार से लिखा है, जिससे यह पुस्तक वैद्यों और हकीमों के लिए अत्युपयोगी हो गई है। इस पुस्तक में यूनानी सिद्धान्तानुसार सिर से लेकर पाँव तक के रोगों के निदान-चिकित्सा वर्णित हैं, स्थल-स्थल पर यूनानी और आयुर्वेदीय निदान-चिकित्सा का तुलनात्मक विवेचन भी अपने वक्तव्य में देकर लेखक ने विषय को और स्पष्ट कर दिया है। यह पुस्तक स्वर्गीय आचार्य यादवजी के निर्देशानुसार छापी गई है, जिससे इस पुस्तक की उपयोगिता का अनुमान पाठक कर सकते हैं। डबल डिमाई १६ पेजी साइज के ४३२ पृष्ठ में यह पुस्तक छपी है, फिर भी मूल्य है **केवल लागत मात्र रु० ४·५०**

**प्रकाशक**

श्री **बैद्यनाथ** आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
१, गुप्ता लेन, कलकत्ता -६

आयुर्वेदीय औषधों के निर्माण, गुण-धर्म, उपयोग आदि पर
विशद विवेचनपूर्ण महान् ग्रन्थ

# आयुर्वेद सारसंग्रह

( तृतीय संस्करण )

सम्पूर्ण आयुर्वेद-शास्त्र का मंथन कर यह महान् ग्रन्थ——**आयुर्वेद सारसंग्रह**——अनेक वर्षों के घोर परिश्रम से तैयार किया गया है। इसमें रोगों के अवस्थानुसार औषधों का गुण-धर्म और प्रयोग तथा औषध-निर्माण, औषध-अनुपान, पथ्यापथ्य आदि का पूरा विवरण सरल भाषा में समझा कर लिखा गया है। आयुर्वेद के महर्षियों द्वारा अतिप्राचीन काल से जिन प्रसिद्ध योगों का प्रयोग होता आया है और जिन प्रयोगों का चिकित्सकों द्वारा सफल परीक्षण असंख्य बार कर लिया जा चुका है, ऐसे ही सफल प्रयोगों का संग्रह इस ग्रन्थ में किया गया है। इस ग्रन्थ में परिभाषा प्रकरण के अन्तर्गत औषध-निर्माण-परिभाषा, मान-परिभाषा, सांकेतिक परिभाषा, रासायनिक परिभाषा, यन्त्र-पुट-खरल-परिभाषा, औषध-प्रयोग-विधान, पथ्यापथ्य, पारद-गंधक-हिंगुल का विशद विवेचन; शोधन-मारण प्रकरण के अन्तर्गत धातुओं का शोधन, भस्म-निर्माण और उनका गुण-धर्म विवेचन; कूपीपक्व रसायन, रस-रसायन, गुटिका-बटी, पर्पटी, लौह मण्डूर, गुग्गुलु, अवलेह-पाक, चूर्ण, आसवारिष्ट, तैल, कषाय (क्वाथ), मल्हम आदि प्रकरणों में विविध प्रकार की औषधियों की निर्माण-विधि, प्रयोग, गुण-धर्म, पथ्यापथ्य आदि सभी वैद्योपयोगी बातों का सविस्तर वर्णन किया गया है। इसके साथ ही रस-रसायन, अर्क आदि बनाने के यन्त्रों के चित्र भी दिए गये हैं, जिनसे औषधि-निर्माताओं को काफी सुविधा होगी। राष्ट्रभाषा हिन्दी में इस ढंग की यह एक ही पुस्तक है। इस पुस्तक की लोकप्रियता का सब से बड़ा प्रमाण यह है कि कुछ ही वर्षों में इसके तीन संस्करण निकल चुके हैं। सर्वसाधारण तथा चिकित्सकमात्र के लिए सर्वाधिक उपयोगी ११०० पृष्ठ के इस विशाल ग्रन्थ का मूल्य मात्र——७·०० रु० है

प्रकाशक
श्री **वैद्यनाथ** आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४६०क. नासिकापुट वा | सु. उ. १७-६२ । | Nostril, Anteior naris | [illegible] |
| ४६१. नासापुटबहिर्भित्तिः | डल्हणः (सु. सू. ३५-१२) । | Ala of the nose. (Alae nasi) | नथुना |
| ४६२. नासारन्ध्रम् | डल्हणः (सु. सू. ३५-१२) । | Nostril. | नाक का छेद, नासाविवर |
| ४६३. नासावंशः | सु. सू. ३२-४ । च. इ. ८-१० । वा. सू. ३०-३७ । | Bridge of the nose. (Bony frame work.) | नासासेतु या नासापृष्ठ (जो अस्थियों से बना है) |
| ४६३क. नासातरुणास्थीनि | डल्हणः सु. सू. १५-१२ । | Cartilaginous framework of the nose. | नासा की तरुणास्थियां |
| ४६४. नासाविवरम् | डल्हणः (सु. सू. ३४-५) । | Nostril. | नाक का छेद या द्वार |
| ४६५. नासास्थिदण्डः | डल्हणः (सु. सू. ३२-४) । | See. नासावंशः | देखें नाशावंश |
| ४६६. नासास्थीनि | च. शा. ७ | See. घोणास्थीनि | नाक की हड्डियाँ |
| ४६७. नासास्रोतः | सु. उ. २२-२० । सु. चि. ४०-६३ । वा. उ. १९-१६ । | (1) Nostril (2) Nasal meatus. | (१) नासाविवर (२) नासामार्ग |
| ४६८. नासाक्षिसन्धिः | चक्रपाणिः (च. शा. ७-११) । | Inner Canthus. | नेत्र का भीतरी कोण या कोया |
| ४६९. नासिकाग्रं नासाग्रं वा | का. पृ. २४ । च. चि. २६-५०६ । सु. शा. ८-१७ । | Tip or apex of the nose. | नासा का अग्रभाग या नोक |
| ४७०. नासिकामूलम् | का. प. ६२ । | (1) Root of the nose. (2) Upper part of the nasal cavity. | (१) नासा का मूल भाग या जड़ (२) नासा-गुहा का ऊर्ध्वभाग |
| ४७१. नितम्बः | सु. सू. २३-६ । | Buttock. Glutos. | चूत्तड़ |
| ४७२. निबन्धन्यः | सु. चि. ३-२६ । | (1) Attached muscles. (2) Ribs. | (१) अस्थियों पर लगी पेशियां (२) पर्शुकाएँ |
| ४७३. निमेषण्यः सिराः | सु. उ. ३-२५ । | Nerves to the orbicularis oculi. (From facial) | नेत्रनिमिलनी पेशी की प्रचेष्टनी नाड़ियाँ । |
| ४७४. नीलाः सिराः | सु. शा. ७-१८ । वा. शा. ३-३७ । | Veins. | हृदय के अभिमुख तथा प्रायः अशुद्ध रक्त को वहन करने वाली नीले रंग कीप्रणालियाँ । |
| ४७४क. नीलपीता वा नीले सिरे | सु. शा. ६-२७ । | Internal jugular Veins. | दो अनुमन्या सिराएं. |
| ४७५. नेत्रकोटरः (रम्) | | See. कोटरः | नेत्रकुण्ड, नेत्रगोलक को धारण करने वाला गढ़ा । |
| ४७६. नेत्रकोशः | सु. उ. १८-७ । वा. सू. २४-४ । | Palpebrae. Lids. Palpebral cover. | नेत्रच्छद, पलक |
| ४७६क. नेत्रच्छादनम् | डल्हणः (सू. १२-६) | Eye lid. | " " |
| ४७७. नेत्रनाड़ी | सु. शा. ५-२७ । | Nasolacrimal duct. | नासाश्रु प्रणालिका (वह नली जो अश्रुकोष से नासामार्ग तक जाती है ।) |
| ४७८. नेत्रपुटम् | वृ. वा. (इन्दुश्च) । | Eye lid. | नेत्रों के पलक |
| ४७८क. नेत्रान्तप्रदेशः | डल्हणः (सू. १८-१८) । | See अपांगः | अपाङ्ग देश (नेत्र का बाहरी कोना) |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ४७९. | पक्तिमार्गः | भेल. पृ. ७० । | Gastro-intestinal tract. | महास्रोत का वह भाग जहाँ मुख्य रूप से आहार का पाचन हुआ करता है, यथा आमाशय और क्षुद्रान्त्र । |
| ४८०. | पक्तिस्थानम् | च. नि. १-१७ । सु. उ. ३९-१८ । वा. नि. २-४ । | ,, | ,, ,, |
| ४८१. | पक्वस्थानम् | सु. चि. २-१२ । | Large intestine or colon. | बृहदन्त्र |
| ४८२. | पक्वाधानम् | सु. नि. १-१९ । सु. चि. ३६-२४ । | ,, ,, ,, | ,, |
| ४८३. | पक्वामाशयमध्यम् (आमपक्वाशयान्तरं वा) | सु. सू. २१-६ । (सु. शा. ९-७) । | Small intestine. | क्षुद्रान्त्र (ग्रहणी, पच्यमानाशय) |
| ४८४. | पक्वाशयः | (१) सु. सू. २१-६ । सु. चि. ३६-२८ । (२) च. शा. ३-१२ । | (1) Large intestine or colon. (2) Caecum. | (१) बृहदन्त्र (२) बृहदन्त्र का आरम्भिक भाग—पोट्टलक |
| ४८५. | पक्वाशयद्वारम् | वा. शा. ३-५१ । | Ileocolic orifice. | पोट्टलक द्वार (जिसके माध्यम से क्षुद्रान्त्र बृहदन्त्र से मिलता है) |
| ४८६. | पक्षः | सु. सू. ३२-४ । | One side of the body. Right or left half of the body. | शरीर का वामार्ध या दक्षिणार्ध |
| ४८७. | पक्ष्ममण्डलम् | सु. उ. १-१५ । | Eye lashes. Cilia. (Ciliary circle.) | बरौनी या पलक के बालों का घेरा |
| ४८८. | पक्ष्ममूलम् | मधुकोशतः (नि. ५९-९९) । | Root of the eye lashes. | बरौनियों की जड़ । |
| ४८९. | पक्ष्मवर्त्मसन्धिः | सु. उ. १-१६ । | Point of junction of the cilia with the lid margin. | बरौनी जहाँ पलकों के किनारों से लगी रहती है । |
| ४९०. | पक्ष्माग्राणि | सु. सू. २४-६ । | Free ends of the eye lashes. | बरौनियों के अग्रभाग या नोक । |
| ४९१. | पक्ष्माणि | सु. उ. १६-१ । सु. उ. ३-२९ । | Eye lashes or cilia. | बरौनी । |
| ४९२. | पक्ष्माशयः | सु. उ. ३-२९ । मधुकोशः (नि. ५९-९७, ९९) | (1) Lid. (2) Root of eye lashes. | (१) पलक (२) बरौनियों की जड़ |
| ४९३. | पच्यमानाशयः | मधुकोशतः (नि. ४३-५) | Small intestine. | क्षुद्रान्त्र या ग्रहणी |
| ४९४. | पञ्जरास्थीनि | | Ribs. | पर्शुकाएँ, जो वक्ष का पंजर बनाती है । |
| ४९५. | पटलानि | सु. उ. १-१४, १७, १८ । वा. उ. १० | Different layers or coverings of the eye or eye ball. | नेत्र के विभिन्न पर्त या आवरण । |
| ४९६. | पदम् | | Foot. | पाँव । |
| ४९७. | पयोधरौ | वा. शा. १-२१ । | Breasts. Mammary glands. | स्तनग्रन्थियाँ । |
| ४९८. | परमाणवः | च. शा. ७-१५ । | Cells of the body. | शरीर के कोषाणु । |
| ४९९. | पर्वाणि | का. पृ. ३२ । सु. सू. १५-११ । सु. चि. ४०-२८ । | Nodes or joints. | गाँठ या जोड़ |
| ५००. | पर्शुकाः | च. इ. ३-६ । | Ribs or Costae. | पसलियाँ । |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | सु. चि. ४०-२८। | | |
| ५००. पर्शुका: | च. इ. ३-६। | Ribs or Costae. | पसलियाँ। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ५०१. पर्शुकाग्राणि | वा. शा. ५-१०८। च. इ. १०-८। | Anterior ends of the ribs. | पसलियों के अग्रभाग। |
| ५०२. पवित्रांगुलि: | डल्हण: (सू. २६-१०)। | Ring finger. | देखें, अनामिका |
| ५०३. पश्चादर्ध: | सु. चि. १५-६। | Lower half of the body. | शरीर का निचला अर्धभाग |
| ५०४. पश्चिमहानव्यदन्त: | सु. नि. १६-२५। | Last molar tooth. Wisdom tooth. | आखिरी चर्वणक या अक्ल की दाढ़। |
| ५०५. पाणि: | च. वि. ८- वातलल०। | Hand. | हाथ |
| ५०६. पाणितलम् | वृ. वा. पृ. ३३७। सु. शा. ६-२६। | Palm. | हथेली। |
| ५०७. पाणिपादम् | वा. उ. ३-१२। च. चि. २८-४८। | Hands & feet. | हाथ और पैर। |
| ५०८. पाणिपादशलाका: | का. ४६। | Metacarpals & Metatrasals. | हाथ व पैर की शलाकास्थियाँ। |
| ५०९. पाणिपादहृदयानि | च. शा. ७-११। | Palms. Soles. | हथेलियाँ और पगथलियाँ (तलवा)। |
| ५१०. पाणिपादांगुलास्थीनि | का. पृ. ४६। | Digital bones or Phalanges of the hand & foot. | हाथ-पैर के उँगलियों की हड्डियाँ। |
| ५११. पाणिमूलम् | डल्हण: (सु.शा. ६-२४) (सु.सू. ३५-१२) | Wrist. | मणिबन्ध या कलाई। |
| ५१२. पाणिशलाकाधिष्ठानम् | का. पृ. ४६। | Distal row of the carpal bones. | मणिबन्धास्थियों की अधर पंक्ति। |
| ५१३. पाद: | का. पृ. ५०। | Foot. Pes. | पाँव या पैर। |
| ५१४. पादकूर्चास्थीनि | (१) सु. शा. ५-१६। (२) का. पृ. ४६। | (1) Tarsal bones, excluding talus Calcaneum. (2) Talus & Navicular. | (१) कूर्चशिर और पार्ष्णि को छोड़ कर पैर की शेष पाँचों कूर्चास्थियाँ।<br>(२) कूर्चशिर और नौनिभ नामक अस्थि |
| ५१५. पादतलम् | सु. सू. ३५-१२। सु. शा. ६-२४। | Sole. | पगथली या तलवा। |
| ५१६. पादमध्यम् | डल्हण: (सु. सू. ३५-१२)। | Sole. | ,, ,, |
| ५१६क. पादशलाकाधिष्ठानम् | का. पृ. ४६। | Second row of the tarsal bones, Cuboid & Three cunciform bones. | पादकूर्चास्थियों की द्वितीय पंक्ति–घन और तीनों कोणक अस्थियाँ। |
| ५१७. पादाग्रम् | डल्हण: (सु. सू. ३५-१२)। | Fore-foot. | पाँव का अग्रभाग। |
| ५१८. पादांगुलय: | सु. शा. ५-१६। | Toes. | पाँव की उँगलियाँ। |
| ५१९. पादांगुष्ठ: | | Big or great toe.Hallux. | पैर का अँगूठा। |
| ५२०. पायु: | सु. सू. २३-५। | (1) Rectum. (2) Anus. | गुदा। |
| ५२१. पायुवलय: | वा. शा. ५-८३। | See. गुदवलय: | देखें, गुदवलय:। |
| ५२२. पायुमेढ्रान्तरम् | सु. चि. ७-३०। | Perineum; | मूलाधार देश। |
| ५२३. पाट्वन्तदेश: | सु. नि. ४-१०। | Anal area. | गुददेश (गुदसमीपस्थ भाग)। |
| ५२४. पार्श्वम् | सु. शा. ५-४। च. शा. ७-६। का. पृ. ३४ | Side of the thorax. | छाती का पार्श्व भाग, बगल, पांसू। |
| ५२५. पार्श्वकम् | राजनिघण्टु | Rib. | पसली। |
| ५२६. पार्श्वजघनम् | सु. शा. ६-२६। | Side of the pelvis. Buttock. | श्रोणि का पार्श्व भाग या नितम्ब। |
| ५२७. पार्श्वास्थि | राजनिघण्टु: | Rib. | पसली। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ५२७क. पार्ष्णिः | सु. शा. ५-१६ । | Heel. | एड़ी । |
| ५२७ख. पार्ष्ण्यस्थि | का. पृ. ४६ । | Calcaneus. | एड़ी की हड्डी । |
| ५२८. पालिः | सु. सू. १६-१० । | Lobule. | कान की लोर या ललरी । |
| ५२९. पिच्छा | च. शा. ७-१७ । च. सू. २८-३ । वा. नि. १२-४२ । | Serous fluid or effusion, Serum. | रक्तरस या रक्तरस सदृश तरल । |
| ५३०. पिण्डिका | वा. सू. ४-४ । सु. सू. १५-११ । | Calf. | पिण्डली, जंघा का मांसपिण्ड । |
| ५३१. पित्तधरा कला | वा. शा. ३-५० । सु. शा. ४-१८ । | Intestine or Gastro-intestinal mucosa. | आमाशय तथा क्षुद्रान्त्र की अन्तःकला । (विशेषकर क्षुद्रान्त्र की) । |
| ५३२. पित्तवाहिन्यः सिराः | सु. शा. ७-६ । (सु. शा. ६-५) । | Vessels & Nerves, related to the पित्तस्थानानि | पित्तस्थानों से सम्बद्ध रक्तवाहानियाँ व नाड़ियाँ । |
| ५३३. पित्तशोणितम् | वा. शा. ३-३७ । | Venous blood. | पित्तसंसृष्ट रक्त, जो प्रायः शिराओं में बहा करता है । |
| ५३४. पित्तस्थानानि | सु. सू. २१-७, १० । वा. सू. १२-२ । | Seats of the पित्त as discribed in the Text. | पित्त के शास्त्रनिर्दिष्ट विभिन्न स्थान । |
| ५३५. पित्ताशयः | सु. शा. ५-८, ३६ । | (1) Digestive tube with its appandages. (2) Small intestine. | महास्रोत के स्थलविशेष (मुख्यतः आमाशय और ग्रहणी) और उनसे सम्बद्ध ग्रन्थियाँ, जो पाचक पित्त की क्रियाभूमि और जन्मभूमि हैं । |
| ५३६. पिप्पलकौ | च. शा. ८-५३ । | Nipples. | स्तनाग्र, चूची या बिटकनी, जो देखने में पीपल के फल जैसी होती है । |
| ५३७. पिशिताश्रितं पटलम् | सु. उ. १-१८ । | (1) Iris. (2) Uvea. | नेत्र की काली पुतली । |
| ५३८. पुत्रिका | | Antitragus. | कान का कोकरू । |
| ५३९. पुरीतत् | राजनिघण्टुः । | (1) Intestine. (2) Deodenum. (3) Spinal cord. | (१) क्षुद्रान्त्र, (२) अन्तर्नाभि (डियोडिनम), (३) सुषुम्ना । |
| ५४०. पुरीषम् | | Faeces. Faecal matter. | विष्ठा, मल । |
| ५४१. पुरीषधरा कला | सु. शा. ४-१६ । | Mucosa of the colon & Rectum. | बृहदन्त्र की अन्तःकला । |
| ५४२. पुरीषधारणम् | का. पृ. ४८ । | (1) Sigmoid colon (2) Colon. | (१) बृहदन्त्र कुण्डलिका, (२) बृहदन्त्र |
| ५४३. पुरीषवह स्रोतः | सु. शा. ६-१२ । च. वि. ५-१५ । | Small & large intestine. | दोनों आँत, विशेषकर स्थूलान्त्र । |
| ५४४. पुरीषाधानम् | भेल० । च. शा. ३-१२ । | See. पुरीषधारणम् | (१) बृहदन्त्र कुण्डलिका (२) बृहदन्त्र । |
| ५४५. पुरीषाधारः | च. शा. ७-१० । | See. ,, | ,, ,, ,, ,, |
| ५४६. पुरीषायतनम् | मधुकोशतः (नि. ३५-२०) । | See. ,, | ,, ,, ,, ,, |

See. ,, ,, ,, ,, ,,

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ५४७. | पुरीषाशयः | च. चि. १६ | Small & Large intestine. | |
| ५४८. | पुरुषेन्द्रियम् | डल्हणः (सु. चि. ३७-१०४)। | Penis. | लिंग। |
| ५४९. | पुष्पम् | सु. शा. ३-१२। | See आर्तवम् | देखें, आर्त्तवम्। |
| ५५०. | पूर्णचन्द्रा नाड़िका | भावप्रकाशतः; अनङ्गरङ्गतश्च। | External os of the uterus. | गर्भाशयमुख, जो देखने में पूर्णचन्द्र जैसा होता है |
| ५५१. | पूर्वकायः | वा. चि. ८-३। | Upper half of the body. | शरीर का उत्तरार्ध। |
| ५५१क. | पूर्वपश्चिम विभागः | च. इ. १-१०। | Anterior (Ventral) & Posterior (Dorsal) | शरीर का आगे व पीछे की दृष्टि से विभाग। |
| ५५२. | पूर्वभागः | सु. सू. ४६-१३२। | Upper half of the body. | शरीर का उत्तरार्ध। |
| ५५३. | पूर्वार्धः | सु. चि. १५-६। | ,, ,, ,, | ,, ,, |
| ५५४. | पृथुला स्नायुः (पृथ्वी वा) | सु. शा. ५-३२, ३०। | Fibrous or membranous sheet. Aponeurosis. | चौड़ी और चपटी कला जैसी स्नायु। |
| ५५५. | पृष्ठम् | सु. शा. ५-४; ११। का. ३४। | (1) Back. Dorsum (2) Posterior part of the trunk. | पिछला भाग या पीठ। |
| ५५६. | पृष्ठवंशः | सु. शा. ५-२७। सु. शा. ६-२६।<br>वा. शा. ४-१६। | Backbone. Spine, Vertebral column. | रीढ़ की हड्डी, मेरुदण्ड। |
| ५५७. | पृष्ठेषी (षि) का | च. इ. ३-५। | ,, ,, ,, | ,, ,, |
| ५५८. | पृष्ठयास्थि | का. पृ. ५०। | Vertebra. | कशेरुका। |
| ५५९. | पेशी | सु. शा. ५-३७। का. पृ. ४५। | Muscle. | मांसपेशी। |
| ५५९क. | पोट्टलकः | डल्हणः (सु. शा. ४-१७)। | Caecum: | बृहदन्त्र का पोटलीनुमा आरम्भिक भाग। |
| ५५९ख. | पोदौ | डल्हणः (सु. सू. २३-५)। | See. कटिप्रोथौ | देखें, कटिप्रोथौ। |
| ५६०. | पौरुषम् | सु. सू. ५-२६। सु. नि. ३-१६। राजनिघण्टु | (1) Penis. (2) Prostate. (3) A measure. Full length of a man with hands up. | (१) लिंग, (२) प्रोस्टेट या अष्ठीला नामक ग्रन्थि, (३) ऊँचाई या गहराई का एक नाप जो पुर्सा कहलाता है। |
| ५६१. | प्रकृतयः | सु. शा. ४-६३ से ६६ तक। | Different personalities. (Physical & Mental qualities peculiar to the individual). | विविध प्रकार का व्यक्तित्व। |
| ५६२. | प्रकोष्ठः | (१) भावप्रकाशादयः, (२) सु. सू. ३५-१२ (डल्हणश्च)। | (1) Forearm. Antibrachium, (2) Distal third of the forearm. | (१) अग्रबाहु (कोहनी से कलाई तक का भाग), (२) पहुँचा। |
| ५६३. | प्रगण्डः | भावप्रकाशः। | Arm. Brachium. | बाहु या बाँह (कोहनी से कन्धे तक का भाग)। |
| ५६४. | प्रजङ्घा | का. पृ. ३२। | Distal third of the leg. (Part below the calf.) | पिण्डली से नीचे का जंघा भाग। |
| ५६५. | प्रजननम् | का. पृ. ३२। सु. सू. २३-५। | Genitals. | जननेन्द्रियाँ, उपस्थ। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ५६६. प्रतरसन्धिः | सु. शा. ५-२७ । | Arthrodial joint. | सन्धियों का एक प्रकार, जहाँ फिसलन जैसी गति देखी जाती है । |
| ५६७. प्रतानवत्यः स्नायवः | सु. शा. ५-३१ । | Articular ligaments. | (शाखा) सन्धियों की स्नायु । |
| ५६८. प्रतिजिह्वा | राजनिघण्टुः । | Epiglottis. | स्वरयन्त्रच्छद या अधिजिह्विका । |
| ५६९. प्रतिवालाः | डल्हणः (सु. उ. ३-२९) । | Eye lashes. | (१) बरौनी, (२) परवाल । |
| ५७०. प्रत्यङ्गानि | सु. सू. ३५-१२ । सु. सू. १-३८ । सु. शा. ३-१८ । | Subdivisions of the body. (Smaller or secondary divisions) | उपाङ्ग, शरीर के उपविभाग । |
| ५७१. प्रदेशिनी | सु. सू. ३५-१२ । | Index finger. | तर्जनी उँगली, अगूठे के पास की उँगली । |
| ५७२. प्रपदम् | सु. सू. ३५-१२ । | Fore foot. | पादाग्र या पंजा । |
| ५७३. प्रपाणिकः (णिः) | च. इ. ८-२६ । वा. शा. ५-५६ । च. वि. ८-१११ । | Fore arm. Antibrachium. | प्रकोष्ठ या अग्रबाहु । |
| ५७४. प्रबाहुः | च. वि. ८-१११ (प्रमाणे) | Arm, Brachium. | प्रगण्ड, बाहु या बाँह । |
| ५७५. प्रवाहणी | सु. नि. २-५ । | First Houston's fold or valve (Pelvirectal fold.) | गुदा की ऊर्ध्व गुदवलि (नीचे से तीसरी) । |
| ५७६. प्रशाखाः | सु. चि. ३-५४ । | (1) Limb or extremities. (2) Branches. | (१) हाथ व पैर के रूप में शरीर की शाखा<br>(२) शिरा धमनी और नाड़ी के शाखाप्रतान । |
| ५७७. प्राणः | सु. सू. २८-२० । | (1) Vitality. (2) Immunity. (3) Stamen. Vigor. (4) Air. (Oxygen) | (१) जीवनशक्ति, (२) व्याधिक्षमता, (३) ओज, (४) प्राणवायु । |
| ५७८. प्राण आभ्यन्तरः | सु. सू. १७-१४ । | (1) Vitality. (2) Immunity. (3) Life. | (१) जीवनशक्ति, (२) व्याधिक्षमता, (३) ओज, (४) प्राणवायु । |
| ५७९. प्राणो बाह्यः | सु. सू. १७-१४ । | (1) Nutrition (2) Nutritious food. | (१) शरीर के तर्पक-वर्धक-धारक और यापक बाह्य भाव, (२) पोषक आहार । |
| ५८०. प्राणाः | सु. शा. ४-३ । | Some counted internal things, on which life depends. See Text. | कुछ परिगणित भीतरी भाव, जिन पर जीवन निर्भर करता है । देखें प्रकरण । |
| ५८१. प्राणपवनः | शार्ङ्गधरं संहिता । | Breathing Air, Expired or inspired. | प्राणवायु या श्वासोच्छ्वास की वायु । |
| ५८२. प्राणवहा धमन्यः | सु. शा. ४-३१ । | Arteries, conveying oxygen & Nutrition. | प्राणवायु और पोषक आहार रस रूप प्राण को वहन करनेवाली सिरा धमनियाँ । |
| ५८३. प्राणवहानि स्रोतांसि | च. वि. ५-९ । | Respiratory tract. | श्वसन संस्थान के स्रोत । |
| ५८४. प्राणायतनानि | च. सू. २९-३ । का. पृ. ५० । | Organs essential to the life. Vitals. | जीवन की दृष्टि से अत्यावश्यक कोष्ठांग या मर्मावयव । |

Vitals. मर्मावयव ।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ५८५. | प्रेक्षणकूट: | माधव नि. ८-३ । | (1) Orbital or ocular margin. (2) Eye-ball or oculus. | देखें, अक्षिकूट (नेत्रकोटर के ऊपर किनारे या नेत्रगोलक) । |
| ५८६. | प्रोथ: | भावप्रकाशत: । | Buttock or Gluteal Prominence. | चूतड़ या नितम्बपिण्ड (ढूंगा) । |
| ५८७. | प्लीहा | सु. सू. २१-७ । | Spleen. | तिल्ली । |
| ५८८. | फलं, फले वा | सु. शा. ५-४१ । सु. सू. ११-२८ । सु. चि. ७-३८ । | (1) Testes or ovaries (2) Uterus. | (१) अण्डग्रन्थि या बीजग्रन्थि, (२) गर्भाशय । |
| ५८९. | फलकोश: (षः) | सु. सू. २३-५ । सु. नि. १२-५ । | Scrotum. | अण्डकोश । |
| ५९०. | फलकोशौ | वा. नि. ११-२२, २७ । | (1) Two scrotal chambers (2) Two latral halves of the scrotum. | (१) अण्डकोश के वाम दक्षिण अर्धविभाग, (२) अण्डकोश के भीतर की दो स्वतन्त्र थैलियाँ । |
| ५९१. | फलकोशाभिवाहिन्यो धमन्य: | सु. नि. १२-४ । वा. नि. ११-२२ । | (1) Scrotal vessels or Lymphatics. (2) Testicular vessels or Lymphatics. (3) Inguinoscrotal passage. | (१) अण्डकोशानुगा धमनियाँ, सिराएँ और रसायनियाँ । (२) अण्डग्रन्थिगा धमनियाँ, सिराएँ व रसायनियाँ । |
| ५९२. | फलयोनि: | सु. सू. ११-२८ । डल्हणश्च । | Uterus. | गर्भाशय । |
| ५९३. | फलसेवनी | वा. चि. १३-३६ । | Scrotal raphe. | अण्डकोश की सीवन । |
| ५९४. | फलस्रोतसी | सु. चि. ७-३८ । | (1) Oviducts. Fallopian tubes. (2) Spermatic cords. | (१) स्त्रियों की बीजवाहिनियाँ । (२) पुरुषों की शुक्रवाहिनियाँ । |
| ५९५. | फुफ्फुस: (सम्) | सु. शा. ४-२५ । सु. शा. ५-५ । वा. शा. ३-१२ । | Lung. | फेफड़ा । |
| ५९६. | बन्धनम् | सु. चि. २२-२६ । | See. दन्तबन्धनम् | देखें, दन्तबन्धनम् । |
| ५९७. | बलम् | सु. सू. १५-२१ । च. सू. ११-३६ । | Stamen, Vigor, Immunity. | देखें, ओज या प्राण आभ्यन्तर । |
| ५९८. | बस्ति: | (१) सु. शा. ५-४ । का. पू. २२ । (२) सु. नि. ३-१८ । वा. नि. ९-१ । का. ४९ । | (1) Supra pubic region. Pubic region. (2) Urinary bladder. Vesicle. | (१) अधिबस्ति देश या पेडू । (२) मूत्राशय |
| ५९९. | बस्तिकुक्षि: | सु. उ. ५८-१० । | (1) Cavity of the urinary bladder. (2) Pelvic cavity or true Pelvis. | (१) मूत्राशय की गुहा या अन्तराकाश । (२) श्रोणिगुहा (लघुश्रोणिगुहा) । |
| ६००. | बस्तिदेश: | च. चि. ११-७५ । | (1) Suprapubic (2) Pelvis (True) region. | (१) अधिबस्तिदेश या पेडू । (२) श्रोणिगुहा (लघु) । |
| ६०१. | बस्तिद्वारम् | वा. शा. २-५३ । सु. शा. ४-२२ । | (1) Brim or outlet of the pelvis, (2) Outlet of the bladder. | (१) श्रोणिगुहा प्रवेशद्वार या निर्गमद्वार । (२) मूत्राशयद्वार । |
| ६०२. | बस्तिपुटम् | मधुकोशत: (नि. ३१-२१) । | Urinary bladder. Vesicle. | मूत्राशय । |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ६०३. बस्तिमुखम् | वा. नि. ६-२० । सु. नि. ६-१७ । | Outlet of the bladder or Internal Urethral orifice. | मूत्राशयद्वार । |
| ६०४. बस्तिमूर्धा | सु. चि. ३७-११० । माधव नि. ३२-४ । | Hypogastrium. Suprapubic region. | अधिवस्तिदेश या पेडू । |
| ६०५. बस्तिशिरः | (१) च. वि. ८- प्रमाण प्रसंगे । सु. शा. ५-३७ । (२) सु. नि. ३-१८ । | (1) Supra-pubic region. (2) Prostate. | (१) अधिवस्तिदेश या पेडू, (२) प्रोस्टेट नामक ग्रन्थि (अष्ठीला) । |
| ६०६. बस्तिशीर्षम् | च. शा. ७-११ । वा. शा. ५-१५ । | Hypogastric region. | अधिवस्तिदेश या पेडू । |
| ६०७. बहिःसिराः | माधव नि. ३६-१ । | Superficial Veins. | उत्तान सिराएँ । |
| ६०८. बहिर्मार्गाः | सु. नि. १-६० । | External or Excretory orifices. | शरीर के बाहरी दृश्य छिद्र, विशेषकर मलद्वार और मूत्रद्वार । |
| ६०९. बहिर्मुखानि स्रोतांसि | सु. शा. ५-१० । | ,, ,, ,, | शरीर के बाहरी दृश्य छिद्र, विशेषकर मलद्वार और मूत्रद्वार । |
| ६०९क. बालाः | डल्हणः (सू. २९-१०) । | Hairs. | बाल, केश, रोम । |
| ६१०. बाहुः | सु. सू. ३५-१२ । च. शा. ७-५ ।<br>च. शा. ७-६ । | (1) Upper extremity or limb.<br>(2) Arm, Brachium. | (१) ऊर्ध्वशाखा या पूरा हाथ ।<br>(२) प्रगण्ड या बाँह । |
| ६११. बाहुनलकः | का. पृ. ५० । च. शा. ७-६ । | Humerus. | प्रगण्डास्थि, बाँह की हड्डी । |
| ६१२. बाहुपिण्डिका | का. पृ. ५० । च. शा. ७-११ । | Bicipital prominence. (Fleshy bulging mass on the front of the arm.) | द्विशिरस्का पेशी के उभार से बना बाँह के सामने का मांसपिण्ड । |
| ६१३. बाहुपृष्ठम् | सु. नि. १-७५ । | Dorsum of the upper limb. | ऊर्ध्वशाखा या पूरे हाथ का पश्चिम भाग । |
| ६१४. बाहुमध्यम् | सु. शा. ८-१७ । | Front of the elbow. | कोहनी, या कोहनी के सामने का भाग । |
| ६१५. बाहुमूलम् | डल्हणः (सू. ५-१३) । | Axilla. Armpit. | कक्षा या काँख, बाँह का गढा । |
| ६१६. बाहुशिरः | डल्हणः (सू. १८-१८) । | See. अंसः | देखें, अंसः । |
| ६१७. बाहुशिरःसन्धिः | डल्हणः (चि. ३-३१) । | See. अंससन्धिः | देखें, अंससन्धिः । |
| ६१८. बाहुशीर्षम् | च. चि. २८-९५ । | See. अंसः | देखें, अंसः । |
| ६१९. बाहुसन्धिः | सु. नि. ११-१० । | Elbow joint. | कोहनी का जोड़ । |
| ६२०. बाह्यकण्डराः | डल्हणः (नि. १-७५) । | Extensor tendons or dorsal nerves of the upper limb. | हाथ की प्रसारक कण्डराएँ या नाड़ियाँ, जो बाहुपृष्ठ की ओर होती हैं । |
| ६२१. बाह्यपटलम् | सु. उ. ७-४ । | Cornia. | कॉर्निया नामक नेत्र का अच्छपटल,शुक्लतारका बहिर्भग । |
| ६२२. बाह्ययोनिः | भेल० ७२, ८३ । | Vulva. | बहिर्भग । |
| ६२३. बाह्यरन्ध्राणि | | See: बहिर्मार्गाः | देखें, बहिर्मार्गाः । |
| ६२४. बाह्यस्नायवः | सु. नि. १-५७ । | Tendons or nerves on the dorsal side of the body. | शरीर के पृष्ठ भाग की कण्डराएँ या नाड़ियाँ । |

dorsal side of the body.

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ६२५. | बिलम् | माधव नि. ३१-२४ । | Canal. Meatus. orifice. | नलिका, प्रणाली, सुरंग या छिद्र । |
| ६२६. | बीजम् | (१) च. शा. ३-२५ । सु. शा. २-३३ ।<br>(२) राजनिघण्टुः । | (1) Germ cell (a seed) sperm or ovum. (2) Marrow. | (१) गर्भबीज—शुक्रकीट, स्त्रीबीज, या दोनों,<br>(२) अस्थिमज्जा । |
| ६२७. | बीजभागः | च. शा. ३-२५ । | A part of the बीज (Chromosomes) | गर्भबीज के अंशविशेष (क्रोमोसोम्स) । |
| ६२८. | बीजभागावयवः | च. शा. ४-३१ । | Part of the बीजभाग (gene) | (गर्भ) बीजभागों के अंशविशेष, या गर्भबीज के अंशांश (जेन्स) । |
| ६२९. | बीजरक्तम् | विश्वामित्र वचनतः (शिवदास व्याख्या–सुश्रुत पृष्ठ संख्या ६०) । | Ovum. | स्त्रियों का बीजभूत अन्तःपुष्प, स्त्रीबीज या आर्त्तव । |
| ६३०. | बीजरक्तवहाः सिराः | विश्वामित्र वचनतः (शिवदास व्याख्या–सुश्रुत पृष्ठ संख्या ६०) । | Ovarian & Uterine Vessels. | अनुबीज कोषिका और अनुगर्भाशया धमनियाँ |
| ६३१. | बुक्कौ | च. शा. ७-१० । | Kidneys. | वृक्क या गुर्दे । |
| ६३२. | बुध्नः | मधुकोशतः (नि. ३-७) । | Rectum. | गुदा । |
| ६३३. | बुद्बुदम् | गर्भोपनिषत् । हारीत संहिता । | Blastocyst. Blastula. | गर्भविकास की बुद्बुदाकार अवस्था । |
| ६३४. | ब्रध्नः | च. सू. १४-१७ । च. नि. ३-७ ।<br>च. इ. ११-५ । | See बुध्नः | गुदा । |
| ६३५. | ब्रह्मरन्ध्रम् | शार्ङ्गधर संहितायामाढमल्लः । | | |
| ६३६. | भक्तमार्गः | भेल० ७० । | Alimentary canal. | महास्रोत, समग्र अन्नवह स्रोत । |
| ६३७. | भक्तायनानि | सु. उ. ५७-३ । | Different parts of the alimentary canal. | महास्रोत के विविध भाग । |
| ६३७क. | भक्षमार्गनालः | शारीर विवेकः । | Oesophagus. | अन्ननलिका, अन्ननाडी । |
| ६३८. | भगः, भगं वा | (१) सु. सू. ३५-१२ । च. वि. ८-(प्रमाणं)<br>(२) वैतरणः (सु. चि. ७-३३) ।<br>(३) सु. नि. ४-३ । | (1) Vulva or Vagina. (2) Pubes. (3) Perineum. | (१) योनि । (२) भगपीठ । (३) स्त्रियों का मूलाधार । |
| ६३९. | भगद्वारम् | भावप्रकाशतः । | Vaginal orifice. | योनिमुख । |
| ६४०. | (भग) नासिका | अनङ्गरङ्गः । | Clitoris. | भगशिश्निका, टना, नक्कू । |
| ६४१. | भगवस्तु | डल्हणः (सु. चि. ७-३३) । | Vaginal Wall | योनि प्राचीर, योनि की दीवार । |
| ६४२. | भगास्थि | का. पृ. ५० । सु. शा. ५ । च. शा. ७ | (1) Intrapubic Cartilage. (2) Body of the pubic bones. | (१) भगसन्धानिका के बीच की तरुणास्थि ।<br>(२) भगास्थियों के गात्र भाग, जो भगपीठ-स्थल पर संहित हो जाते हैं । |
| ६४३. | भुक्तमार्गः | भेल० ७० । वा. शा. ३-५१ । | Alimentary canal. | देखें भक्तमार्गः । |
| ६४४. | भुजः | | Upper limb or arm. | ऊर्ध्वशाखा, बाहु, या प्रगण्ड । |
| ६४५. | भुजमध्यम् | डल्हणः (सु. सू. ३५-१२) । | Elbow. | कोहनी । |
| ६४६. | भुजशिखरम् | डल्हणः (सु. शा. ६-२६) । | See अंसः | देखें, अंसः । |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ६४७. भूताग्नि: | | Intra cellular Enzymes. | कोषाणुओंके भीतर उपस्थित किण्वरूप अग्नि । |
| ६४८. भ्रू: | सु. शा. ५-४० । च. शा. ७-११ ।<br>सु. सू. १२-९ । | Eyebrow. | भौं । |
| ६४९. मज्जा | — | Bone marrow. | अस्थि के भीतर भरी रहनेवाली एक प्रकार की चर्बी । |
| ६५०. मज्जपेशीका | च. सि. २-२१ । राजनिघण्टु: । | (1) Meninx (2) Brain. | (१) मस्तिष्कावरण, (२) मस्तिष्क । |
| ६५१. मज्जवह स्रोतांसि | च. वि. ५-१२ । | Medullary canals. Marrow spaces. | अस्थियों के विवर या स्थान जिनमें मज्जा भरी रहती है । |
| ६५२. मणि: | सु. नि. १३-४८ । सु. उ. ५८-१५ । | Glans penis. | लिंग का मुण्डाकार अग्रभाग । |
| ६५३. मणिक: (कम्) | च. शा. ७ । च. इ. ३-५ । | Upper row of the carpal bones. | मणिबन्ध के कूर्चास्थियों की ऊर्ध्वपंक्ति । |
| ६५४. मणिकन्द: (म्) | अरुण: (वा. नि. ९-२९) । | Penis. | लिंग । |
| ६५५. मणिबन्ध: (मणिबन्धनं वा) | सु. सू. ३५-१२ । का. पृ. ३४ । | Wrist. Carpus. | कलाई । |
| ६५६. मणिबन्धसन्धि: | सु. चि. ३-३३ । | Wrist joint. | कलाई का जोड़ । |
| ६५७. मण्डलसन्धय: | सु. शा. ५-२७ । | Unions or joints, where ring like curved cartilages take parts; as in trachea. | वलयाकार तरुणास्थियों का संहित होना, यथा श्वासनाडी में । |
| ६५८. मण्डलानि | सु. उ. १-१५ । | Different circular or circle-forming structures of the eye. | नेत्र की भिन्न-भिन्न मण्डलाकार रचनाएँ । |
| ६५९. मदनदोला | रतिरहस्यम् । | Clitoris. | भगशिश्निका या भगनासा । |
| ६६०. मदनसदनम् | ,, | Vagina. | योनि । |
| ६६१. मदनसदनरन्ध्रम् | ,, | Vaginal orifice. | योनिद्वार । |
| ६६२. मदनातपत्रम् | डल्हण: (सु. शा. ३-१०) । | Clitoris with nymphae. | भगशिश्निका और लघुभगोष्ठों के मेल से बनी छत्राकार रचना । |
| ६६२क. मदनातपवारणम् | ,, (शा. ५-१०) । | | |
| ६६३. मदसिरा: | अनङ्गरङ्गत: । | Nerves & vessels of sexual excitement. | कामोत्तेजना में प्रहर्षण करनेवाली नाडियाँ और रक्त-वाहिनियाँ । |
| ६६४. मध्यम् | सु. शा. ५-३ । | Trunk. | धड़ । |
| ६६५. मध्यकाय: | का. पृ. | ,, | धड़ । |
| ६६६. मध्यमा, (मध्यामिका वा) | सु. सू. ३५-१२ । | Digitus medius. midde finger. | तीसरी या बीच की उँगली । |
| ६६७. मन: | | Mind or psyche. | मन या चित्त । |
| ६६८. मनोवह धमन्य: | मधुकोशत: (नि. २०-१) । | Pathways, through which mind operates. Associated fibres. Psychocortical routes. | देखें, चेतोवह मार्ग । |

Psychocortical routes.

| | | | |
|---|---|---|---|
| ६६९. मनोवह स्रोतांसि | च. इ. ५-४० । | pathways, through which mind operates. Associated fibres. psychocortical routes. | देखें मनोवह मार्ग |
| ६७०. मन्मथच्छत्रम् | रतिरहस्यम् । | See मंदनातपत्रम् | देखें, मदनातपत्रम् । |
| ६७१. मन्या | (१) च. चि. २८-४४ । (२) च. इ. ४-९ । सु. शा. ६-२७ । | (1) Side of the neck. (Sterno-Mastoid.) (2) Great vessels at the side of the neck—carotid arteries (3) Neck. | (१) ग्रीवा का पार्श्व भाग, जहाँ उरःकर्णमूलिका पेशी पाई जाती है। (२) ग्रीवा पार्श्व की बड़ी-बड़ी धमनियाँ, यथा मातृकादि । (३) ग्रीवा या गरदन । |
| ६७२. मयूरास्थि | डल्लण: (सु. सू. २३-६) । | Sacrum & Coccyx. | त्रिकास्थि व अनुत्रिकास्थि । |
| ६७३. मर्माणि | सु. शा. ६ । च. सि. ९ । | Vital organs or vitals. | मर्मस्थान । |
| ६७४. मर्मरिका: | सु. सू. १६ | Nerves. | (वात) नाड़ियाँ । |
| ६७५. मलधरा कला | सु. शा. ४-१७ । | Mucosa of the colon. | स्थूलान्त्र की अन्त:कला । |
| ६७६. मला: | च. शा. ६-१७ । वा. शा. ३-६३ | Excreta. Waste products. (Visciated त्रिदोष Also) | किट्ट या शरीर से बहिष्करणीय त्याज्य पदार्थ । |
| ६७७. मलाधार: | सु. नि. ३-२० । | Urinary bladder (here) or colon. | (यहाँ) (१) मूत्राशय, (२) स्थूलान्त्र । |
| ६७८. मलायनानि | च. सू. ७ । वा. सू. ११-३६ । | Excretory organs or apertures. | विविध प्रकार के मलों को शरीर से बाहर निकालनेवाल अवयव या छिद्र (शरीर के नवद्वार) । |
| ६७९. मलाशय: | शार्ङ्गधर संहिता । | Colon or Rectum. | स्थूलान्त्र या गुदा । |
| ६८०. मस्तकमज्जा | डल्लण: (शा. १०-४२) । | Brain substance. | मस्तिष्क वस्तु, भेजा, मग्ज । |
| ६८१. मस्तकम् | सु. शा. ५-४ । | (1) Hairy part of the cranium (2) Head. (3) Cranium. | (१) खोपड़ी का केशयुक्त प्रदेश (टाट), (२) शिर, (३) खोपड़ी । |
| ६८१क. मस्तकवाला: | डल्लण: (सु. सू. २९-१०) । | Hairs on the head | शिर या टाट के बाल । |
| ६८२. मस्तकस्नेह: | डल्लण: (सू. ३५-४) । | Brain matter. | मस्तिष्क वस्तु, भेजा, मग्ज । |
| ६८३. मस्तिष्कम् (ष्क:) | वृ. वा. शा. ५ । का. पू. ५१ । | Brain. | दिमाग । |
| ६८४. मस्तुलुङ्गम् | वृ. वा. शा. ५ । सु. शा. १०-४२ । सु. चि. २-७० । | ,, | दिमाग । |
| ६८५. महत् | च. सू. ३०-६ । | Heart. | हृदय (उरोहृदय) । |
| ६८६. महत् स्रोत: | सु. नि. १३-५५ । | Rectal canal. | गुद-नलिका । |
| ६८७. महाच्छिद्राणि | | Large external appertures of the body (Nine in number) | शरीर के वड़े-बड़े बाह्य छिद्र (नवद्वार) |
| ६८८. महानाड़ी | राजनिघण्टु: । | Great nerves or Tendons. | बड़ी-बड़ी नाड़ियाँ या कण्डराएँ । |
| ६८९. महानिम्नम् | च. सू. ११-४८ । | (1) Thraco-abdominal cavity. (2) Abdomen. | (१) महास्रोत (उरोगुहा व उदरगुहा) (२) उदर । |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ६९०. महाफला: | च. सू. ३०-११ । | Great blood Vessels. | हृदय से निकलनेवाली तथा अनेक शाखाओं में विभक्त होनेवाली बड़ी-बड़ी धमनियाँ या नाड़ियाँ । |
| ६९१. महामर्माणि | वृ. वा. पृ. ३२१ । | Main vital parts of the body, seven in number. | शरीर के बड़े-बड़े मर्मस्थल, जो संख्या में सात हैं |
| ६९२. महामूला: | च. सू. ३०-११ | See महाफला: | देखें, महाफला: (हृदय से निकलनेवाली बड़ी-बड़ी धमनियाँ या नाड़ियाँ । |
| ६९२क. महास्नायु: | डह्लण: (सु. शा. ५-११)-। | Big tendons or nerves. | बड़ी-बड़ी कण्डराएँ या नाड़ियाँ । |
| ६९३. महास्रोत: | (१) च. सू. ११-४८ । (२) च. नि. ३-७ । च. चि. २०-५ । (३) का. पृ. ५१ । | (1) Alimentary canal. (2) Abdominal cavity, (3) See महाछिद्राणि (See Text) | (१) मुख से गुद तक का अन्नवह स्रोत । (२) उदरगुहा । (३) शरीर के बड़े-बड़े बाह्य छिद्र (नवद्वार) । |
| ६९४. मांसम् | | Flesh or muscles. | गोश्त । |
| ६९५. मांसधरा कला | सु. शा. ४-७, ८ । | Deep fascia & Intramuscular septums. | गम्भीर प्रावरणी और पेश्यन्तराल फलक । |
| ६९६. मांसरज्जव: | सु. शा. ५-१४ । | Great musculotendinous bands or cords, as in back. | पृष्ठवंश की लम्बी-लम्बी मांसपेशियाँ । |
| ६९६क. मांसवर्त्तय: | डह्लण: (सु. सू. ४६-१३-७) | Muscular slips or digitations. | मांसपेशियों की पट्टिकाएँ । |
| ६९७. मांसवहस्रोतांसि | च. वि. ५-१२ । सु. शा. ९-९२ | Muscle fibres. (Voluntary or involuntary) | (ऐच्छिक या अनैच्छिक) मांससूत्र । |
| ६९८. मांसवहा नाड्य: | वा. नि. २-७० । | ,, ,, ,, | ,, ,, ,, |
| ६९९. मातृकासिरा: | सु. शा. ६-२७ । वा. शा. ४-२८ । | Carotid arteries (common External & Internal) Internal jugular vein. | प्रत्येक गलपार्श्व की चार मुख्य धमनी व सिरा यथा—महामातृका, बहिर्मातृका और अन्तर्मातृका धमनियाँ एवं अनुमन्या नामक सिरा । |
| ७००. मार्गा: | च. वि. ५-१७ । | Passages. | स्रोत, प्रणालिकाएँ । |
| ७०१. मुखम् | सु. नि. १६-३ । सु. चि ४-२२ । | (1) Mouth (2) Face. (3) Interlobial aperture. | (१) मुँह, (२) चेहरा, (३) मुखद्वार । |
| ७०२. मुखकुहरम् | डह्लण: (सु. उ. ४१-२१) सू. १ (२) ८ ) । | Mouth (Oral cavity) | मुखगुहा (मुँह का भीतरी अवकाश) । |
| ७०३. मुखसन्धि: | डह्लण: (सू. १८-१८) । | Mandibular joint. | हनुसन्धि । |
| ७०४. मुखस्रोतांसि | का. पृ. ९२ । | Different openings in the mouth cavity. | मुखकुहर में खुलनेवाले अनेक छिद्र । |
| ७०५. मुखान्तरालम् | शाश्वत: । | Oral cavity. | मुखकुहर, मुखावकाश । |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ७०५. | मुखान्तरालम् | शाश्वतः। | Oral cavity. | मुखकुहर, मुखावकाश। |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ७०६. | मुखायाम: | सु. सू. ३५-१२। | Length of the face. | चेहरे की लम्बाई। |
| ७०७. | मुखार्धम् | च. चि. २८-३६। | Vertical half of the face. | चेहरे का दायाँ या बायाँ अर्धभाग। |
| ७०८. | मुष्कः | सु. सू. १५-२४ सु. नि. ३-५ सु. उ. ४१-३१। | (1) Scrotum. (2) Testis or Testicle. | (१) अण्डकोश, (२) अण्डग्रन्थि। |
| ७०९. | मुष्कस्रोतः | सु. चि. ७-३६। | Spermatic cord. | वृषण बन्धनी या अण्डधारक रज्जु। |
| ७१०. | मुष्टिः | वा. सू. २७-२८। | Clenched hand. | मुट्ठी। |
| ७११. | मूत्रनाड़ी (युग्मं) | शारीरविवेक ग्रन्थः | Ureters. | गवीनी (दो)। |
| ७१२. | मूत्रपथः | च. चि. २६-३७। | Urethra. | मूत्रमार्ग। |
| ७१३. | मूत्रपुटम् | मधुकोशतः (नि. २२-६६)। | Urinary bladder. | मूत्राशय। |
| ७१४. | मूत्र प्रसेकः | सु. चि. ७-३६। | Urethra. | मूत्रमार्ग। |
| ७१५. | मूत्रबस्तिः | सु. शा. ९-७। | Urinary bladder. | मूत्राशय। |
| ७१६. | मूत्रमार्गः | सु. चि. ७-३५। च. सि. ९-३९। सु. उ. ५८-१८। | Urethra | मूत्रनली। |
| ७१७. | मूत्रस्थानम् | सु. चि. २-१२। | Urinary bladder. | मूत्राशय। |
| ७१८. | मूत्रस्रोतः | सु. नि. १३-५३। वा. नि. ९-३४। | Urethra. | मूत्रमार्ग। |
| ७१९. | मूत्रवह स्रोतांसि | च. वि. ५-१४। च. नि. ४-६। | Tubules or tubes of the Urinary tract. | मूत्रवह संस्थान की विभिन्न वाहक प्रणालियाँ। |
| ७२०. | मूत्रवहः | सु. चि. ७-३८। | Ureter. | गवीनी |
| ७२१. | मूत्रवहे धमन्यौ | सु. शा. ९-७। | Ureters. | गवीनियाँ। |
| ७२२. | मूत्रवहा नाड्यः | सु. नि. ३-२१। | Urinary tubules. | (वृक्कान्तर्गत) अन्त्र-सदृश कुण्डलीभूत सूक्ष्म मूत्र प्रणालिकाएँ। |
| ७२३. | मूत्रवाहि स्रोतः | डह्लणः (सु. उ. ५८-१८)। | Urethra. | मूत्रमार्ग। |
| ७२४. | मूत्रसेकः | सु. चि. ७-३८। | Urethra. | मूत्रमार्ग। |
| ७२५. | मूत्राधारः | च. सि. ९-५। | Urinary bladder. | मूत्राशय। |
| ७२६. | मूत्रायनम् | मधुकोशतः (नि. २७-१०)। | (1) Bladder (2) Urethra. | (१) मूत्राशय, (२) मूत्रमार्ग। |
| ७२७. | मूत्राशयः | सु. नि. ३-२०। | Urinary bladder. | मूत्र या पेशाब की थैली। |
| ७२८. | मूर्धा | माधव नि. ४४-१०। सु. सू. १८-१८। सु. उ. २५-१७। | See. मस्तकम् | देखें, मस्तकम्। |
| ७२९. | मूर्धजानि | भेल. पृ. ७२। | Hairs on the head | शिर या टाट के बाल। |
| ७३०. | मूर्धास्थि खण्डः | डह्लणः (सु. सू. २९-११)। | Cranial bone. | खोपड़ी की हड्डी। |
| ७३१. | मूलजिह्वा | राजनिघण्टुः। | Epiglottis. | स्वरयन्त्रच्छद या अधिजिह्वा। |
| ७३२. | मूलसिराः | वा. शा. ३-१८। | Main blood vessels. | मुख्य-मुख्य सिरा-धमनियाँ। |
| ७३३. | मेढ्रः, मेढ्रं वा | सु. शा. ९-१२। | Penis. | लिङ्ग। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ७३४. मेढ्रचर्म | सु. नि. १३-४७ । | Prepuce. Foreskin. | मणिच्छद, शिश्नाग्रचर्म (फोलरा) । |
| ७३५. मेढ्रद्वारम् | डल्हणः (नि. १-२०) । | External Urethral orifice. | मूत्रमार्ग का बहिर्द्वार । |
| ७३६. मेढ्ररन्ध्रम् | मधुकोशतः (नि. ४७-७) । | ,, ,, ,, | मूत्रमार्ग का बहिर्द्वार । |
| ७३७. मेढ्ररन्ध्रसन्धिः | मधुकोशतः (नि. ४७-७) । | Area sourrounding the external urethral orifice. | मेढ्रद्वार के किनारे । |
| ७३८. मेढ्रसन्धिः | मधुकोशतः (नि. ४७-७) । | Corona glandis. | मणिमुण्ड की घाई या पिछला घेरा । |
| ७३९. मेढ्रसेवनी (शेफःसेवनी) | सु. शा. ५-१५ । | Raphe of the penis. | लिंग के नीचे की सीवन । |
| ७४०. मेढ्राग्रम् | सु. सू. १८-१८ । | Glans penis. | लिंग का मणिमुण्ड भाग । |
| ७४१. मेढ्रान्त्रम् | सु. उ. ४२-१३५ । | Corpus spongiosum penis. | लिंग की मूत्र प्रसेकधरा पेशी (वह पेशी जिसमें मूत्रमार्ग होता है) । |
| ७४२. मेदः | सु. शा. ४-१२ । | Fat or fat like substance. | चर्बी या चर्बी जैसे पदार्थ । |
| ७४३. मेदःपटलम् | सु. उ. १-१८ । | Hyaloid membrane which contains the Vitreous body or humor | नेत्र की सान्द्र जलधरा कला, जिसके भीतर स्वच्छ गोंद जैसा द्रव भरा रहता है । |
| ७४४. मेदोधरा कला | सु. शा. ४-१२ । | (1) Omentum. (2) Linging of the medullary canal or a marrow space. (3) Superficial fascia of the body. | (१) उदर का वपावहन, (२) अस्थियों के भीतर की मज्जधरा कला, (३) शरीर की उत्तान प्रावरणी । |
| ७४५. मेदोनाड्यः | वा. नि. २-७० । | | मेदोवह स्रोत । |
| ७४६. मेदोवर्त्तिः | सु. चि. २-४५ । | Omentum (Folded) | उदर का वपावहन, जो सिमट कर वत्ती जैसा भी बन जाता है । |
| ७४७. मेदोवह स्रोतांसि | च. वि. ५-१२ । | | |
| ७४८. मेध्या नाड़ी | डल्हणः (सु. सू. १ (४) २५) । | Spinal cord. | सुषुम्ना नामक महानाड़ी । |
| ७४९. मेहनम् | (१) सु. उ. ५९-४ । (२) वा. सू. ७-६९ | (1) Penis. (2) Vagina or Vulva. | (१) लिंग, (२) योनि या भग । |
| ७५०. यकृत् | सु. सू. २१-७ । सु. उ. १७-२६ । | Liver. Hepar. | लीवर या जिगर । |
| ७५१. यकृत्खण्डम् | वा. नि. ७-३५ । | ,, ,, | लीवर या जिगर । |
| ७५२. यकृत्पिण्डः | वा. शा. ५-८० । सु. उ. ६-१४ । | ,, ,, | लीवर या जिगर । |
| ७५३. यकृत्प्रदेशः | सु. सू. ४६-१३७ । | Hepatic area. | यकृत् की क्षेत्रमर्यादा, जो बाहर से शरीर पर अंकित भी की जा सकती है । |
| ७५४. यन्त्राणि | च. सू. १२-८ । | Organs. | शरीर के भिन्न-भिन्न अवयव, विशेषकर कोष्ठाङ्ग । |
| ७५५. यवपङ्क्तयः | का. पृ. ३४ । | Carpal or digital furrows or creases. | उँगलियों या मणिबन्ध आदि की 'जौ' रेखाएँ (यवाकार हस्तरेखा-विशेष) । |

|  |  |  |  |
|---|---|---|---|
| ७५५. [illegible] | का. पृ. ३४ । | Carpal or digital furrows or creases. | उँगलियों या मणिबन्ध आदि की 'जौ' रेखाएँ (यवाकार हस्तरेखा-विशेष)। |

|  |  |  |  |
|---|---|---|---|
| [illegible] | [illegible] | [illegible] the blood vessels (They are usually in pairs) | [illegible] अन्य नलिकाएँ, जो प्रायः जोड़े के रूप में होती हैं। |
| ७५७. योनिः | सु. शा. ५-४३ । वा. शा. १-२२ । | (1) Vagina. (2) Female Genitals. (3) Uterus. | (१) योनिनलिका, (२) स्त्री-जननेन्द्रिय, (३) गर्भाशय । |
| ७५८. योनिकर्णिका | डल्हणः (सु. शा. ५-३९) । | Labium majus. | योनि का बृहद् भगोष्ठ । |
| ७५९. योनिकर्णिका स्रोतः | ,, ,, | Vulval entrance. | दोनों बृहद् भगोष्ठों के बीच का बहिर्भगद्वार । |
| ७६०. योनिमुखम् | सु. शा. १०-७ । सु. नि. ८-४ । | Vaginal orifice. | योनिद्वार । |
| ७६१. योनिनासा (योनिलिङ्गं वा) | रतिरहस्यम् (डल्हणः उ. ४४-३९) । | Clitoris. | भगनासा, टना । |
| ७६२. रक्तम् | सु. सू. १४-५, ६ । च. चि. १५-१५ । | (1) Blood. (2) Menstrual blood or ovum. | (१) खून, (२) मासिक स्राव का रक्त या स्त्री-बीज । |
| ७६३. रक्तधरा कला | सु. शा. ४-१० । | Endothelial lining of the circulatory system. | रक्तवह संस्थान के अवयवों की अन्तःकला । |
| ७६४. रक्तपथः | वा. शा. ३-४० । | (1) Cervical canal of the uterus. (2) External os of the uterus. | (१) गर्भाशय-मुख, (२) गर्भाशय की ग्रीवा सरणि |
| ७६५. रक्तरसः | आतङ्क दर्पणतः (नि. ३३-४) । | Fluid portion of the blood as plasma, Interstitial fluid & Lymph. | रक्त का आप्य द्रव भाग, यथा—रक्तमस्तु (सीरम), धात्ववकाशीय द्रव और लसीका । |
| ७६६. रक्तवहं स्रोतः | सु. शा. ५-१० । | External os or Vaginal orifice. | गर्भाशय-मुख, या योनि-मुख । |
| ७६७. रक्तवाहिन्यः सिराः | सु. शा. ४-६ । } | Blood vessels. (Specially of portal circulation) | रक्तवहा प्रणालियाँ—सिरा और धमनी (विशेषकर, याकृत संवहन के सम्बन्ध की) |
| ७६८. रक्तवाहिन्यो धमन्यः | सु. शा. ६-१२ । } |  |  |
| ७६९. रक्तवाहीनि स्रोतांसि | च. सू. २४-२५ । | Blood Vessels. | रक्त-नलिकाएँ—सिरा-धमनियाँ । |
| ७७०. रक्ताधारः | डल्हणः (सु. शा. ४-१७) । | Depot, reservoir, Receptacle or container of the blood, as Liver, spleen, Heart Lungs. | रक्त के मुख्य संग्रह स्थान या संचरण स्थान, यथा—यकृत्, प्लीहा, हृदय और फुफ्फुस । |
| ७७१. रक्ताशयः | सु. शा. ५-८ । | ,, ,, ,, ,, | रक्त के मुख्य संग्रह स्थान या संचरण स्थान, यथा—यकृत्, प्लीहा, हृदय और फुफ्फुस । |
| ७७२. रजः | सु. सू. १४-६ । | (1) Menstrual blood. (2) Ovum. | (१) मासिक स्राव, (पुष्पार्त्तव) ।<br>(२) स्त्री-बीज (बीजार्त्तव) । |
| ७७३. रजोवहाः सिराः | का. पृ. | Uterine & Ovarian Vessels. | अनुगर्भाशया और अनुबीजकोषिका धमनी-सिराएँ । |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ७७४. रसः | सु. सू. १४-३, १३ ।<br>च. चि. १५-३३ ।<br>(चक्रपाणिश्च) । | Nutrient fluid which circulates through the blood. | पोषक रस, जो रक्त के माध्यम से शरीर में भ्रमण करता रहता है । |
| ७७५. रसधातुः | | | |
| ७७६. रसनबन्धनम् | वा. शा. ३-१३ । | See. जिह्वाबन्धनम् | देखें, जिह्वाबन्धनम् । |
| ७७७. रसवर्त्मानि | माधव नि. १०-२ । डह्लणः (उ. ४१-१०) | Nutrient Vessels and Lymphatics. | पोषक रस का वहन करनेवाले स्रोत, यथा–धमनी-सिराएँ और रसायनियाँ (लसीका वाहिनियाँ) । |
| ७७८. रसवहा नाड़ी | सु. शा. ३-३१ । | Placenta. | अपरा, खेड़ी । |
| ७७९. रसवहानि स्रोतांसि | च. सू. २४-२५ । | See रसवर्त्मानि | देखें, रसवर्त्मानि । |
| ७८०. रसवाहिन्यो धमन्यः | सु. शा. ९-१२ । च. वि. ५-१७ । | See रसवर्त्मानि | देखें, रसवर्त्मानि । |
| ७८१. रसस्थानम् | सु. शा. ९-७ । | Heart. | हृदय । |
| ७८२. रसहारिण्यः | च. शा. ४-१५ । | See. रसवर्त्मानि | देखें, रसवर्त्मानि । |
| ७८३. रसायन्यः | च. वि. ५-१७ । | See. रसवर्त्मानि | देखें, रसवर्त्मानि । |
| ७८४. राजदन्ताः | का. पृ. ९ । | Central incisors. | ऊपर-नीचे के भीतरी कर्त्तनक या छेदक दन्त, जो संख्या में ४ हैं । |
| ७८५. रुचकानि | सु. शा. ५-२० । | Teeth (A type of the bone). | अस्थि का एक प्रकार याने दाँत । |
| ७८६. रुधिरम् | | See रक्तम् | देखें, रक्तम् । |
| ७८७. रुधिरस्थानम् | सु. चि. २-१२ । | See रक्ताधारः | देखें, रक्ताधारः । |
| ७८८. रूपवहे धमन्यौ | सु. शा. ९-५ । | Optic nerves. | दृष्टिनाड़ी युगल । |
| ७८९. रेतः | वा. शा. ३-८१ । | (1) Semen, (2) Sperm. | शुक्र या शुक्रकीट । |
| ७९०. रेतःस्थानम् | भेल० ५३ । | (1) Testicles, (2) Seminal Vesicles. | (१) अण्डग्रन्थियाँ, (२) शुक्रवस्ति या शुक्राशय । |
| ७९१. रोमकूपाः (पाणि) | वा उ. ९-१८ । सु. शा. ४-६० । का. पृ. ५१ । | Hair follicles. | त्वचा के रोमच्छिद्र । |
| ७९२. रोममालिका | डह्लणः (नि. २-६) । | Hairs. | रोमसमूह । |
| ७९३. रोममूलानि | अरुणदत्तः (वा. उ. ९-१८) । | Roots of the hairs. | बालों की जड़ें । |
| ७९४. रोमराजी (जिः) | वा. शा. ३-२४ । सु. शा. ३-१४ । का. पृ. ३३ । सु. शा. ७-२२ । | Linea nigra. (Like a hairy line) | रोमपंक्ति की तरह दिखाई देनेवाली श्याम-वर्ण रेखा । |
| ७९६. रोमाणि | डह्लणः अरुणः (शा. ३-१८) | Hairs on the body. | शरीर के बाल या रोएँ । |
| ७९७. रोमान्तः | सु. सू. २३-६ । सु. नि. २-६ । | Skin near the hairs | रोम-प्रान्त । देखें–केशान्तः । |
| ७९८. रोमावर्त्तः | सु. शा. ६-२७ । | | बालों की भँवरी । |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ७९९. [illegible] | सु. शा. ७-१८ । | Main arteries or arterial trunks. | मुख्य-मुख्य धमनियाँ या धमनीकाण्ड । |
| ८००. लक्षणम् | सु. शा. ५-४१ । | Penis. (2) External sex organs (Specially the male) | (१) लिंग, (२) स्त्री या पुरुष की बाह्य जननेन्द्रियाँ । |

|  |  |  |  |
|---|---|---|---|
| ७९९. रोहिण्यः | सु. शा. ७-१८। | Main arteries or arterial trunks. | मुख्य-मुख्य धमनियाँ या धमनीकाण्ड। |
| ८००. लक्षणम् | सु. शा. ५-४१। | Penis. (2) External sex organs (Specially the male) | (१) लिंग, (२) स्त्री या पुरुष की बाह्य जननेन्द्रियाँ। |
| ८०१. लम्बिका | राजनिघण्टुः। | Uvula. | गले का कौआ। |
| ८०२. ललाटम् | सु. शा. ५-४। | Fore-head. | शिर का रोमरहित भाग या माथा। |
| ८०३. लसीका (लसिका वा) | च. शा. ७-१४। डल्हणः (सू. २१-७)। मधुकोशः (नि. ३३-४)। | (1) Serous exudate (2) Lymph or transudate. | रक्तमस्तु जैसा परिस्राव। |
| ८०४. लाला |  | Saliva. | लार। |
| ८०५. लालाट्या सिरा | सु. शा. ८-१७। डल्हणः (सु. उ. १२-३८) | Frontal-Supra orbital Veins. | माथे की ललाटिका और अधिभ्रुवा सिराएं। |
| ८०६. लिङ्गम् | (१) कामसूत्रभाष्यम् पृ. ६३। का. पृ ३३ च. चि. २ (१)-३२। (२) सु. उ. ८-१६। | (1) Sex sign-Penis or clitoris. (2) Power of vision. | (१) शिश्न या भगशिश्निका (२) दर्शन-शक्ति। |
| ८०७. लोमानि | च. वि. ८-पित्तल ल०। | See रोमानि | शरीर पर के बाल या रोएँ। |
| ८०८. लोमकूपाः | च. शा. ७-१४। | See रोमकूपाः | रोमरन्ध्र या रोमछिद्र। |
| ८०९. लोमकूपायनानि नाभिनाड्ययनानि | च. शा. ६-२३। | Chorionic Villi. | जरायु कोरक। |
| ८१०. लोहितम् | च. शा. ६-१०। | See रक्तम् | देखें, रक्तम्। |
| ८११. लोहितवहानि स्रोतांसि | च. नि. २-४। | Blood Vessels. | रक्तनलिकाएँ। |
| ८१२. लोहिताक्षसिरा | सु. शा. ७-२२। | Femoral Vessel-before giving the branch-Profunda femoris. | औवीं धमनी व सिरा का अर्ध भाग, जो गम्भीरोरुका नामक शाखा निकलने से पूर्व तक का है। |
| ८१३. लोहितिका | सु. सू. १६-७३। | Artery. | धमनी। |
| ८१४. वक्त्रम् |  | (1) Mouth (2) Face. | (१) मुँह, (२) चेहरा। |
| ८१५. वंक्षणः | (१) सु. नि. ९-१७। सु. उ. ५५-१० (२) च. नि. २-६। च. शा. ७-११ | Groin. Inguinal region. | देखें, ऊरुमूलम्। |
| ८१६. वंक्षणसन्धिः | सु. नि. १३-२४। वा. नि. ११-२ | (1) ,, ,, ,, (2) Hip joint. | (१) देखें, ऊरुसन्धि, (२) कुछ के मत में कूल्हे का जोड़। |
| ८१७. वक्षः | सु. नि. १-५७। सु. उ. ५२-११ | Chest. Thorax. | छाती। |
| ८१८. वक्षःस्थलम् | डल्हणः (सु. सू. ३५-१०)। | Front of the chest. (Pectoral region) | सीना। |
| ८१९. वदनम् | सु. सू. १-(२) ८। | (1) Mouth (2) Face. | मुँह या चेहरा। |
| ८२०. वदनान्तरम् | सु. सू. ३५-१२। | Interlabial distance of the mouth. | मुखद्वार की लम्बाई-चौड़ाई। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ८२१. वदनान्ते | चक्रपाणि: (च. शा. ७-११)। | Angles of the mouth. | मुखकोण, जहाँ दोनों ओठों के प्रान्त मिलते हैं। |
| ८२२. वपा | च. शा. ३-१२। | (1) Abdominal fat (Extra-peritoneal fat.) | उदर के भीतर की चर्बी। |
| ८२३. वपावहनम् | च. शा. ३-१२। च. शा. ७-१०। | Omentum & Appendices epiloecae. | देखें, तैलवर्त्तिका। |
| ८२४. वपु: | | Body. | शरीर। |
| ८२५. वराङ्गम् | (१) अनङ्गरङ्गम्, (२) राजनिघण्टु: | (1) Pudendum (2) Head. | (१) भग या योनि, (२) उत्तमाङ्ग याने शिर। |
| ८२६. वराङ्गरन्ध्रम् | (१) अनङ्गरङ्गम्, (२) राजनिघण्टु: | Pudendal clift. | योनिमुख या योनिनलिका। |
| ८२७. वर्च: | सु. चि. २३-६। | Faeces. | पुरीष, विष्ठा। |
| ८२८. वर्च:स्थानम् | सु. चि. २३-६। च. सू. १५-६। | (1) Rectum, (2) Latrine. | (१) गुदा, (२) टट्टी-घर, शौचालय। |
| ८२९. वर्त्म | सु. सू. १२-९। | Eye lid. | पलक, नेत्रच्छद। |
| ८३०. वर्त्मकोष: | सु. उ. १-२२। | Eye lid, as a sac or bag. | ,, (थैली जैसे होने के कारण)। |
| ८३१. वर्त्मपटलम् | सु. उ. १-१७। | Eye lid as a curtain. | ,, (पर्दे की तरह होने के कारण)। |
| ८३२. वर्त्ममण्डलम् | सु. उ. १-१५। | Eye lids, as a circular thing. | ,, (मण्डलाकार होने के कारण) |
| ८३३. वर्त्ममण्डल तरुणास्थि | डल्हण: (सु. शा. ५-२६)। | Tarsal cartilage. | पलकों में पाई जानेवाली कार्टिलेज। |
| ८३४. वर्त्मसन्धि: | वा. उ. १०-६। | Canthus. | नेत्रकोण, जहाँ पलकों के प्रान्तर परस्प मिल जाते हैं। |
| ८३५. वर्त्मशुक्ल सन्धि: | सु. उ. १-१६। वा. उ. १०-१। | Fornix of the conjunctiva. | वर्त्मकोण, वह स्थान जहाँ पलकों की अन्त:कल पलट कर शुक्ल-मण्डल पर अक्षि गोलकत्वक् के रूप में उतरती है चढ़ती है। |
| ८३६. वलय: (वलि:) | वा. सू. २९-५। | Wrinkles. | सिकुड़न, झुर्री, झोल, शिकन, सलवट। |
| ८३७. वलयानि | सु. शा. ५-२०। | Curved, semi-circular or ring like bones as ribs & Vertebrae. | वलयाकार या अर्धवलयाकार अस्थियाँ, यथा कशेरुकाएँ और पर्शुकाएँ। |
| ८३८. वसा | माधव नि. ६०-६। | (1) Fat, particularly of the superficial fascia. | (१) चर्बी, विशेषकर उत्तान प्रावरणी की।<br>(२) चर्बी जैसा चिकना पदार्थ, यथा—मांसस्नेह। |
| ८३९. वस्तौ | का. पृ. ६। | Lateral incisor & Canine. | बाहरी कर्त्तनक और रदनक नामक नुकीला दाँत |
| ८४०. वस्नसा | राजनिघण्टु:। | (1) See. वसा (2) Superficial fascia. | (१) देखें, वसा। (२) उत्तान प्रावरणी। |
| ८४१. वाग्वाहिनी सिरा | माधव नि. २२-५२। | Hypoglossal Nerve. | जिह्वामूलिनी नाड़ी (१२ वीं शीर्षण्य नाड़ी) |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ८४१. वाग्वाहिनी सिरा | माधव नि. २२-५२। | Hypoglossal Nerve. | जिह्वामूलिनी नाड़ी (१२ वीं शीर्षण्य नाड़ी) |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ८४२. वातवहे नाड्यौ | सु. शा. ६-२५। | Bronchii. | [illegible] |
| ८४३. वातवाहिन्यः सिराः | सु. शा. ५-६। | Vessels & nerves, related to वातस्थानानि | वातस्थानोंसे सम्बद्ध रक्तवाहिनियाँ और नाड़ियाँ |
| ८४४. वातस्थानानि | च. सू. २०-९। | SeeText. | देखें, ग्रन्थोक्त प्रकरण। |
| ८४५. वाताशयः | सु. शा. ५-८। | Colon, Lungs, Arteries. | स्थूलान्त्र, फुप्फुस और धमनियाँ। |
| ८४६. वायसतुण्डम् | | Coronoid process of the mandible. | अधोहन्वस्थि का हनुकुन्त प्रवर्धन। |
| ८४७. वायसतुण्डसन्धिः | सु. सू. ५-२७। | Mandibular joint. (Here the coronoid process looks like a crow's Bill.) | सन्धि का एक भेद, जो केवल हनुसन्धि के लिए माना गया है। (यहाँ सन्धि के सामने हनुकुन्त प्रवर्धन कौए की चोंच की तरह दिखाई पड़ता है, इसलिए यह नाम रखा गया)। |
| ८४८. वाहिन्यः | | Vessels & nerves. | रक्तवाहिनियाँ या वातनाड़ियाँ। |
| ८४९. विटपः | डल्लणः (सु. नि. १-७४)। सु. शा. ६-२४ | (1) Medial part of the groin.<br>(2) Pubes. | (१) वंक्षणदेश का आभ्यन्तर भाग।<br>(२) भगपीठ या कामपीठ (पेडू का रोमयुक्त भाग)। |
| ८५०. विडाशयः | का. पृ. | Sigmoid or Rectum. (2) Colon. | (१) बृहदन्त्र कुण्डलिका या गुद।<br>(२) स्थूलान्त्र। |
| ८५१. विण्मार्गः | माधव नि. ३१-४। | Rectum or Anus. | गुदा या गुद-मुख। |
| ८५२. विपुलं स्रोतः | का. पृ. ४९। | (1) Intestine. (2) Abdominal cavity. | (१) अन्त्र या आँत। (२) उदरगुहा। |
| ८५३. विष्णुपदामृतम् | शार्ङ्गधर संहिता | (1) Oxygen (2) Air. | (१) ओषजन, (२) वायु। |
| ८५४. विसर्जनी (गुदवलिः) | सु. नि. २-५। | Second Houston's fold or valve. | गुदा की दूसरी याने मध्यम गुदवलि। |
| ८५५. विशिखान्तरम् | सु. शा. १०-९। | Vagina. | योनि या योनिमार्ग। |
| ८५६. वीर्यम् | | Semen. | शुक्र। |
| ८५७. वीर्यवाहि सिराः | शार्ङ्गधर संहिता। | Seminiferous tubules & Vas deference. | अण्डग्रन्थि के शुक्रवह स्रोत और दोनों शुक्रवाहिनी। |
| ८५८. वृक्कौ | सु. शा. ४-३१। सु. नि. ९-१८। | Kidneys. | गुर्दे। |
| ८५९. वृत्तस्नायवः | सु. शा. ५-३१। | Tendons. Nerve cords. | वर्त्तुल आकार की स्नायु, कण्डरा या नाड़ियाँ। |
| ८६०. वृत्ताङ्गानि | सु. सू. १८-१८। | Rounded or cylindrical parts of the body. | शरीर के गोल अंग या दण्डाकार अङ्ग। |
| ८६१. वृषणवटिका | वात्स्यायनः। | Testicle. | अण्डग्रन्थि, अण्डकोश के भीतर की गोली। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ८६२. वृषणौ | (१) सु. शा. ५-४। (२) सु. शा. ६-१२। (२) सु. सू. ३५-१२। (३) सु. नि. ३-१६। | (1) Scrotum–scrotal sacs. (2) Testicles. (3) Seminal vesicles. | (१) अण्डकोश (वाम-दक्षिण विभाग) (२) अण्ड ग्रन्थि (दो), (३) शुक्राशय जिन्हें अन्तर्वृषण या कटीवृषण कहा जा सकता है। |
| ८६३. वेष्टाः | सु. नि. १६-२१। | Gums. | मसूढ़े। |
| ८६४. व्यञ्जनानि | का. प. ३३। च. शा. ४-१४। | (1) Hairs. (2) Secondary sex characters. | (१) बाल या केश, (२) जन्म के बाद आगे चलकर उत्पन्न होनेवाले स्त्री-पुरुषों के भेदक चिह्न, यथा–दाढ़ी-मूँछ, स्तन-विकास आदि। |
| ८६५. शकृन्मार्गः | सु. उ. ५८-७। | (1) Rectum. (2) Anus. | मलमार्ग—गुदा या गुद-मुख। |
| ८६६. शङ्खः शङ्खको वा | सु. शा. ५-४, २०। सु. सू. १८-१८। सु. नि. १-६४। का. पृ. ५०। | (1) Temple or temporal region (2) Temporal bone. (Squamous portion only) | (१) शंखप्रदेश या कनपटी। (२) शंख-फलक नामक अस्थि। |
| ८६७. शङ्खप्रदेशः | सु. सू. १२-६। | Temple or temporal region. | कनपटी। |
| ८६८. शङ्खसन्धिः | डल्हणः (सु. उ. ६२-३३)। | Outer canthus. | नेत्र का बाहरी कोण, जहाँ दोनों पलक मिलते हैं (शंख प्रदेश की ओर पड़ने से इसे शंखसन्धि कहा गया है)। |
| ८६९. शङ्खावर्त्तः | सु. शा. ५-२७। | Squamo tympanic union. | |
| ८७०. शब्दपथः | सु. उ. २०-६। | Ear. (External, Middle & Internal ear.) | कर्ण (कर्ण के तीनों भाग–बहिःकर्ण, मध्यकर्ण और अन्तःकर्ण)। |
| ८७१. शब्दवह स्रोतः | सु. नि. १-८३। | ,, ,, ,, ,, | ,, ,, |
| ८७२. शब्दानुवहाः सिराः | सु. उ. २०-८। | Filaments of the cochlear Nerve. | शम्बूकाभिगा नाड़ी के सूत्र-प्रतान। |
| ८७३. शब्दाभिवहा नाड्यः | सु. उ. २०-७। | (1) ,, ,, ,, ,, (2) Auditory apparatus or Nerve. | (१) शम्बूकाभिगा नाड़ी के सूत्र-प्रतान। (२) श्रुतियन्त्र या श्रुतिनाड़ी। |
| ८७४. शरीरम् | च. शा. ६-४। सु. शा. ५-१। डल्हणश्च | (1) Body (Living), (2) Parts of the body. | (१) समग्र शरीर (विशेषकर जीवित)। (२) शरीर के भाग। |
| ८७५. शरीर क्लेदः | च. नि. ४-१०। | (1) Body fluid. (2) Exudate & Transudate of the body. | (१) शरीर का जलधातु। (२) शरीर के परिस्राव। |
| ८७६. शरीरधात्ववकाशाः | च. वि. ५-१७। | (1) Interstitial spaces. (2) Different conveying apparatuses. | (१) शरीरधातुओं के मध्यावकाश। (२) शरीरधातुओं को वहन करनेवाले विविध स्रोत या मार्ग। |

---

| | | | |
|---|---|---|---|
| ८७७. शरीरमध्यम् | डल्हणः (सु. ३५-१२)। | Trunk of the body. | धड़ (मध्यकाय, अन्तराधि)। |
| ८७८. शरीरार्धम् | डल्हणः (सू. ३२-४)। | See. पक्षः | देखें, पक्षः। |
| ८७९. शरीरावयवाः | डल्हणः (शा. ५-१)। च. शा. ७-१५। | Different parts or organs of the body. | शरीर के भिन्न-भिन्न भाग या अङ्ग। |

ratuses. | स्रोत या मार्ग।

| | | | |
|---|---|---|---|
| ८७७. शरीरमध्यम् | डल्हण: (सु. ३५-१२)। | Trunk of the body. | मध्य (मध्यकाय, अन्तराधि)। |
| ८७८. शरीरार्धम् | डल्हण: (सू. ३२-४)। | Sec. पक्ष: | देखें, पक्ष:। |
| ८७९. शरीरावयवा: | डल्हण: (शा. ५-१)। च. शा. ७-१५। | Different parts or organs of the body. | शरीर के भिन्न-भिन्न भाग या अङ्ग। |
| ८८०. शलाका: | का. पृ. ४-९। | Metacarpal or Metatarsal bones. | हाथ और पैरों की शलाकास्थियाँ। |
| ८८१. शलाकाधिष्ठानानि | का. पृ. ४९। | (1) Distal rows of the carpal bones in the hands. (2) Three cunciforms & Cuboid in the feet. | (१) हाथ में कूर्चास्थियों की अधर श्रेणी।<br>(२) पैर में कूर्चास्थियों की अधर श्रेणी याने तीनों कोणकास्थियाँ और घनास्थि। |
| ८८२. शष्कुलि: शष्कुली वा | सु. सू. १६-१०। | Pinna or Auricle. | बहि:कर्ण का दोने जैसा भाग (कानड़ा)। |
| ८८३. शाखा: | सु. सू. १८-१८। | Limbs or Extremities. | शरीर के शाखा जैसे भाग—हाथ, पैर। |
| ८८४. शाखासन्धय: | वा. नि. १६-१८। | Joints of the limbs. | हाथ-पैरों की सन्धियाँ या जोड़। |
| ८८५. शिर: | सु. शा. ५-३। सु. उ. १८-४८। च. सू. १७-१२। | (1) Head & Neck (2) Skull (3) Cranium. | (१) शिरोग्रीव (शिर और ग्रीवा), (२) करोटि या केवल (ग्रीवारहित) शिर। (३) शिर: सम्पुट या खोपड़ी। |
| ८८६. शिर: कपालानि | का. पृ. ५०। सु. शा. ५-२०। | Flat bones of the skull. | शिर या खोपड़ी की कपाल जैसी चौड़ी चपटी हड्डियाँ। |
| ८८७. शिरस्तालु | भेल० | Anterior Fontanelle or Bregma | ब्रह्मरन्ध्र या ब्रह्मतालुक (शिर का वह भाग जो छोटे बच्चों में अस्थिरहित होने से कोमल होता है)। |
| ८८८. शिरा | का. पृ. ५१। | Vessel, Vein, Artery Or Nerve. | रक्तनलिकाएँ—सिरा व धमनी। नाड़ियाँ। |
| ८८९. शिरोग्रीवम् | च. शा. ७-५। | Head & Neck. | शिर और ग्रीवा। |
| ८९०. शिरोधरा | च. वि. ८- (प्रमाण प्रसंगे) | Neck. Cervix. | ग्रीवा (गरदन)। |
| ८९१. शिरोऽस्थीनि | राजनिघण्टु:। | Cranial or skull bones. | शिर या करोटि की अस्थियाँ। |
| ८९२. शिश्नम् | | Penis. Phallus. | लिंग, पुरुषेन्द्रिय। |
| ८९३. शीषम् | | Cranium. | शिर या खोपड़ी। |
| ८९४. शुक्रम् | च. शा. २-४। | (1) Semen. (2) Sexual discharge. (3) Male germ cell. | (१) वीर्य, (२) मैथुनकालीन स्राव, (३) शुक्रकीट। |
| ८९५. शुक्रधरा कला | सु. शा. ४-२०। | Secreting membrane of the genital system. | प्रजनन संस्थान की स्रावोत्पादक या धारक कला |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ८९६. शुक्रवहः | सु. शा. ७-३६ । | | |
| ८९७. शुक्रवह स्रोतांसि | च. वि. ५-२ । | Efferent ducts, Epididymis, Vas defferens, Ejaculatory duct. | अण्डग्रन्थि से निकले सूक्ष्म स्रोत, अधिवृषणिका नामक अवयव, शुक्रहरणी नलिका, तथा शुक्रप्रसेक-नलिका । |
| ८९८. शुक्रवहाः सिराः | सु. शा. २-४५ । | Vessels & Nerves of the genital organs. | जननेन्द्रियों की सिरा-धमनियाँ और नाड़ियाँ । |
| ८९९. शुक्रवहे (प्रादुर्भावाय) | सु. शा. ९-२१ । | Vada Defferensia | दोनों शुक्रहरणी नलिका । |
| ९००. शुक्रवहे (विसर्गाय) | सु. शा. ९-२१ । | Ejaculatory ducts. | दोनों शुक्रप्रसेक नलिका । |
| ९०१. शुक्रवाहिनी नाड़ी | च. सि. ९-५ । | Vas defferens. | शुक्रहरणी नलिका । |
| ९०२. शुक्रहरणी | सु. चि. ७-३८ । | ,, ,, | वीर्यवाहिनी नलिका । |
| ९०३. शुक्राशयः | च. चि. २६-७० । वा. चि. ११-४२ । | Seminal vesicle. | शुक्र संचय की थैली, शुक्र वस्ति, या कटीवृषण |
| ९०४. शुक्लकृष्ण सन्धिः | सु. उ. १-१५ । | Sclerocornial Junction or Limbs. | कृष्णमण्डल के किनारे-किनारे जहाँ शुक्ल मण्डल बाह्य स्वच्छपटल से मिलता है । |
| ९०५. शुक्लतारका | डल्हणः (उ. १७-५८) । | Cornia. | नेत्र का स्वच्छ वाह्य पटल, जो 'कॉर्निया' कहलाता है । |
| ९०६. शुक्लमण्डलम् | डल्हणः (सु. उ. ४-१) । | Sclera. | नेत्र का श्वेतमण्डल, जिसे 'स्क्लीरा' कहते हैं । |
| ९०७. शेफः | च. वि. ८-११७ (प्रमाणं) सु. शा. ५-१५ । | Penis. Phallus. | लिंग । |
| ९०८. शेफःसेवनी | सु. शा. ५-१५ । | Raphe of the Penis. | लिंग के नीचे की सीवन । |
| ९०९. शोणितम् | सु. शा. ४-६३ । | See रक्तम् | देखें, रक्तम् । |
| ९१०. शोणितस्थानानि | सु. सू. २१-१६ । | See रक्ताधारः | देखें, रक्ताधार । |
| ९११. श्मश्रु | च. सू. ८-१८ । | Beard. | दाढ़ी व मूँछ । |
| ९१२. श्रवणम् (णः) | सु. उ. २०-१० । | Ear, Organ of hearing. | श्रोत्रेन्द्रिय या उसका अधिष्ठान कर्ण । |
| ९१३. श्रवण स्रोतः | सु. उ. २१-१० । | External auditory meatus. | कर्णकुहर, कर्णरन्ध्र, कान की नली । |
| ९१४. श्रोणिः (णी) | सु. सू. २१-६ । सु. सू. ३५-१२ । सु. शा. ५-१९ । | Pelvis. | कटिचक्र, जघनमण्डल । |
| ९१५. श्रोणिकर्णः | डल्हणः (सु. शा. ६-२६) । | Ala of the ilium. | जघन कपाल का पक्ष सदृश भाग । |
| ९१६. श्रोणिकाण्डः (डं) | सु. शा. ६-२६ । | (1) ,, ,, ,, (2) Hip bone. | (१) जघनकपाल, (२) श्रोणिफलक, (कूल्हे की अस्थि) । |
| ९१७. श्रोणिप्रदेशः | सु. चि. ३८-३ । | See. कटिप्रदेशः | देखें, कटिप्रदेश । |
| ९१८. श्रोणिफलकम् | अमरः | Hip bone. | नितम्ब फलक (कूल्हे की हड्डी) । |
| ९१९. श्रोत्रम् | | Ear. | कान । |

|  |  |  |  |  |
|---|---|---|---|---|
| ९१९. | श्रोत्रम् |  | Ear. | कान। |

|  |  |  |  |  |
|---|---|---|---|---|
| ९२०. | श्रोत्रपथः | वा. शा. ४-३०। | Eustachian tube. | इस प्रसङ्ग में, [illegible] नलिका (वह मार्ग जो गले से मध्यकर्ण तक जाता है)। |
| ९२१. | श्रोत्रशृङ्गाटकम् | सु. शा. ५-२७। | (1) External auditory meatus. (2) Labyrinth or maze of the ear. | (१) कर्णकुहर, कान का छेद या नली। (२) कान के जटिल मार्ग। |
| ९२२. | श्लेष्मधरा कला | सु. शा. ४-१४। | Mucous, serous & Synovial membrane. | कफ या लाला जैसे स्रावों को उत्पन्न करनेवाली कला। |
| ९२३. | श्लेष्मभुवौ | च. शा. ७-११। | Two lobes of the thyroid gland. | चुल्लिका ग्रन्थि के वाम और दक्षिण पिण्ड। |
| ९२४. | श्लेष्मस्थानानि | च. सू. २०-९। | Seats of the कफ। See Text. | शास्त्र में परिगणित कफ के स्थान। |
| ९२५. | श्लेष्माशयः | सु. शा. ५-८। शार्ङ्गधर संहिता। | श्लेष्मस्थानानि especially chest, stomach & head. | कफ के स्थान, विशेषकर आमाशय, छाती और शिर। |
| ९२६. | श्वसनाः | (१) वा. चि. २१-३१। (२) च. चि. १२-७३। | Respiratory tubes nasal cavities or meatuses. Larynx, Trachia & Bronchial tubes | श्वाससंस्थान के विभिन्न मार्ग-विशेष, यथा-नासागुहा नासासुरङ्गा, स्वरयन्त्र, श्वास-नाल और श्वासनलिकाएँ। |
| ९२७. | श्वासवह नाड्यः | चक्रपाणिः (च. चि. १२-७३)। | ,, ,, | श्वाससंस्थान के विभिन्न मार्ग-विशेष, यथा-नासागुहा, नासासुरङ्गा, स्वरयन्त्र, श्वास-नाल और श्वासनलिकाएँ। |
| ९२८. | श्वेतमण्डलम् | सु. उ. १-१५। | Sclera. | 'स्क्लीरा' नामक नेत्र का शुक्ल मण्डल। |
| ९२९. | संज्ञा | सु. उ. ४६-६। | Consciousness. | चेतना, ज्ञान, होश। |
| ९३०. | संज्ञावहा नाड्यः | सु. उ. ४६-६। | (1) Neurones on which consciousness depends. (2) Cerebral Vessels. | (१) नाड़ीकन्दकाणु, जिन पर चेतनाभिव्यक्ति निर्भर करती है। (२) शीर्षण्य याने मस्तिष्क की रक्त नलिकाएँ। |
| ९३१. | संज्ञावहानि स्रोतांसि | सु. शा. ४-३३। च. सू. २४-२५। सु. उ. ६१-८। | ,, ,, ,, ,, | (१) नाड़ीकन्दकाणु, जिन पर चेतनाभिव्यक्ति निर्भर करती है। (२) शीर्षण्य याने मस्तिष्क की रक्त नलिकाएँ। |
| ९३२. | संवरणी (गुदवलिः) | सु. नि. २-५। | Third Houston's fold or Valve (Plica Transversalis recti) | गुदा की अधर (नीचे की ओर से पहिली) गुदवलि। |
| ९३३. | संवाहिन्यः | च. शा. ४-१५। | Channels. Vessels. | शरीर की विविध नलिकाएँ। |
| ९३४. | संवृता संवृतानि शरीरच्छिद्राणि | च. वि. ५-१७। | Internal & External apertures or passages of the body. | शरीर के आभ्यन्तर और बाह्य छिद्र या स्रोत। |
| ९३५. | सकृज्जाता दन्ताः | का. पृ. ९। | Teeth of single dentition-molars. | वे दाँत जो केवल एक ही बार निकलते हैं, जैसे चर्वणक। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ९३६. सक्थि | (१) सु. शा. ५-१९ । सु. नि. १-७४, ७७ (२) सु. सू. ४६-१३१ । | (1) Lower limb (2) Thigh (Femur) | (१) अधः शाखा, टाँग, पैर, (२) ऊर्ध्व जंघा या रान । |
| ९३७. सङ्कटाङ्गम् | डल्हणः (सु. सू. १८-१८) । | Narrow or Unsuitable part of the body for bandaging. | शरीर का संकीर्ण या दिक्कतवाला भाग, (पट्टी आदि बाँधने की दृष्टि से) । |
| ९३८. सङ्घाताः | सु. शा. ५-१६ । | See. अस्थिसंघाता. | देखें, अस्थिसंघाताः । |
| ९३९. सन्धयः | सु. शा. ५-२४ । वा. शा. ३-१६ । का. ४५ | (1) See. अस्थिसंचयः (2) Union. | (१) देखें, अस्थिसन्वयः, (२) संगमस्थल, संयोग । |
| ९४०. संन्धानम् | सु. शा. ६-२४ । | Joint. | सन्धि या जोड़ । |
| ९४१. सन्धि प्रबन्धनानि | सु. नि. १-७८ । | Articular Ligaments. | सन्धियों के बन्धन या स्नायु । |
| ९४२. सन्धिबन्धाः | (१) सु. नि. १-६१ । (२) च. सू. २८-३ | (1) Muscles which support & move the joints. (2) Ligaments, Nerves. | (१) पेशियाँ, जो सन्धियों का सन्धारण और संचालन करती हैं । (२) स्नायु या बन्धन और नाड़ियाँ । |
| ९४३. सन्ध्यस्थि | वा. नि. १६-१० । | Articular ends of the bone. | अस्थियों के वे प्रान्त या सिरे, जो सन्धि-निर्माण में भाग लेते हैं । |
| ९४४. सम्बाधः | वात्स्यायनः । | Vagina. | योनि । |
| ९४५. सम्बाधाङ्गम् | सु. सू. १८-१८ । | See. सङ्कटाङ्गम् | देखें, सङ्कटाङ्गम् । |
| ९४६. सरक्तं मेदः | | Sanguineous fat. Red bone-marrow. | रक्तमिश्रित मेद या चर्बी । हड्डियों के भीतर की लाल मज्जा । |
| ९४७. सर्वाङ्गम् | माधव नि. २२-४१ । | Whole body. | संपूर्ण शरीर । |
| ९४८. सव्यदक्षिण विभागः | च. इ. १-१० । | Division into left & right. | शरीर का वाम और दक्षिण विभाग । |
| ९४९. साधनम् | | Penis. | लिंग (उपकरण-विशेष) । |
| ९५०. साधन मार्गः | कामसूत्रम् पृ. ६३ । | Vagina. | योनि । |
| ९५१. सीमन्ताः | सु. शा. ५-१७ । | Bony sutures. | अस्थियों की सीवन की तरह दिखाई देनेवाली सन्धि-रेखाएँ । |
| ९५२. सेवन्यः (सीवन्यः) | सु. शा. ५-१५ । सु. चि. ७-३८ । | Sutures & Raphe. | अस्थियों के त्वचा के और कला के जोड़ों प बनी सीवन । |
| ९५३. सितम् | सु. उ. १-११ । | See. श्वेतमंडलम् | देखें, श्वेतमण्डलम् । |
| ९५४. सिरा | | Vein, arteriy. Vessel or Nerve. | सिरा, धमनी, कोई भी नलिका या नाड़ी । |
| ९५५. सिराजालम् | वा. उ. १०-१६ । का. पृ. ७ । | Plexus of the veins, arteries or nerves. | सिरा, धमनी या नाड़ियों का जाल । |
| ९५६. सिरा प्रतानः (नम्) | माधव नि. ३८-१६ । | ” ” ” | ” ” ” |
| ९५७. सिरामुखम् | भेल. पृ. ८४ । सु. चि. २४-५२ । | Lumen or terminal ends of the (Cutaneous) vessels. | रक्त नलिकाओं के छिद्रमार्ग या उनके चरम प्रान्त (विशेषकर त्वचा में) । |

the (Cutaneous) vessels. प्रान्त (विशेषकर त्वचा में)।

| | | | |
|---|---|---|---|
| ९५८. सुख-देशः | माधव नि. ४२-५ । | Safe area of the body. | शरीर के सुरक्षित या मर्मरहित प्रदेश । |
| ९५९. सुषिरा स्नायुः | सु. शा. ५-३२ । | Thickened muscular ring, as pyloric sphincter, Ileocolic valve & sphincter of the bladder. | आशय द्वारों पर नियन्त्रणार्थ कठिन मांसतन्तुओं से बनी बन्धेजव्यवस्था यथा—मुद्रा कपाटिका, संदंश कपाटिका, बस्तिमुख मुद्रणी । |
| ९६०. सूक्ष्मकेशप्रतीकाशाः सिराः | | Fine hairlike vessels. | महीन बालों की तरह पतली-पतली रक्तनलिकाएँ । |
| ९६१. सूक्ष्मजिह्वा | राजनिघण्टुः । | Uvula. | गले की घंटी या कौआ । |
| ९६२. सूक्ष्मसिराजालम् | आतङ्कदर्पणः (माधव नि. ३८-१६) । | Fine network of the Veins. | सूक्ष्मसिराओं का जाल । |
| ९६३. सूक्ष्मस्रोतांसि | का. पृ. ५१ । | Minute openings, Vessels & ducts. | सूक्ष्मछिद्र मानो महास्रोतों के अतिरिक्त शरीर की अन्य नलिकाएँ । |
| ९६४. सूक्ष्माङ्गानि | वा. शा. १-५५ । | Minute structures or organs. | शरीर की सूक्ष्म रचनाएँ या अवयव । |
| ९६५. सूर्यमण्डलम् | भेल. ८५ । | Sympathetic part of the solar plexus. | सौरमण्डल (मणिपूरचक्र) का मध्यस्वतन्त्र नाड़ीमण्डलीय अंश । |
| ९६६. सृक्कण्यौ | च. शा. ७-११ । का. पृ. ५० । | Angles of the mouth. | मुखकोण, जहाँ दोनों ओठों के प्रान्त मिलते हैं । |
| ९६७. सोममण्डलम् | भेल० पृ. ८५ । | Parasympathetic part of the solar plexus. | सौरमण्डल (मणिपूरचक्र) का परिस्वतन्त्र नाड़ीमण्डलीय अंश । |
| ९६८. स्कन्धः | सु. शा. ६-२६ । सु. शा. ८-८ । का. ३४ । च. वि. ८- (प्रमाणम्) । | Shoulder (Scapular region) | कन्धा । |
| ९६९. स्तनः | सु. शा. ५-४ । सु. शा. १०-२६ । च. शा. ७-११, ८-५२ । | Mamma, Breast, Mammary gland. | स्तनग्रन्थि, छाती, चूँची । |
| ९७०. स्तनपिण्डः | डल्हणः (शा. ५-११) । | Rounded breast. | उभरे हुए गोल-गोल स्तन । |
| ९७१. स्तनमण्डलम् | च. शा. ४-१६ । | Mammary areola. | स्तनों का काला या श्यामवर्ण का घेरा । |
| ९७२. स्तनमुखम् | कामसूत्रम् । | Nipple. | स्तनों का अग्रभाग, ढेपनी, बिटकनी । |
| ९७३. स्तनाग्रः | ” | ” | ” ” ” |
| ९७४. स्तन्यवहाः सिराः | का. पृ. ७ । | Lactiferous ducts. | स्तनों के दुग्धवह स्रोत । |
| ९७५. स्तन्यवाहिन्यः (सिराः) | वा. चि. १३-२८ । | ” ” | ” ” |
| ९७६. स्तन्यम् | च. शा. ८-५३ । | Milk. | स्तनों में होनेवाला दूध । |
| ९७७. स्तन्याशयौ | शार्ङ्गधर संहिता । | Mammary glands. (Milk secreting gland) | दुग्ध के उत्पादक और धारक अंग—स्तन । |
| | | See आधाराः | देखें, आधाराः । |
| ९७८. स्थानानि | सु. चि. २-१२ । | | |
| ९७९. स्थालकानि | च. शा. ७-६ । का. पृ. ५० । | Facets, here costal facets. | पर्शुकामुण्डों पर या कशेरुकापिण्डों पर स्थित वर्त्तुल गढ़े । |

7

| | | | |
|---|---|---|---|
| ९८०. स्थालकार्बुदानि | च. शा. ७-६ । का. पृ. ५० । | Tubercles or heads of the ribs. | पर्शुकाग्रों के अर्बुद या उनके मुण्ड भाग । |
| ९८१. स्थिरसन्धयः | सु. शा. ५-२४ । | Synarthrosis. Fibrous or immovable joints. | निश्चेष्ट या अचल सन्धियाँ । |
| ९८१क. स्थूल गुदः | च. वि. ५-१५ । | Rectum. | गुदा । |
| ९८२. स्थूलस्नायवः | चक्रपाणिः | Big tendons or nerves. | बड़ी मोटी कण्डराएँ या नाड़ियाँ । |
| ९८३. स्थूलान्त्रम् | सु. नि. २-५ । च. शा. ३-१२ । च. शा. ७-१० । | Colon, Large intestine. | बड़ी या मोटी आँत । |
| ९८४. स्थूलास्थीनि | सु. शा. ४-१३ । | Big bones. | बड़ी-बड़ी हड्डियाँ । |
| ९८५. स्नायुः | सु.सू. २५-२१, ३७ । सु. शा. ५-३० से ३६ का. पृ. ४५ । | Hard fibrous structure-as ligaments, nerves, tendons. | कड़े सौत्रिक धातु की बनी रचनाएँ यथा—सन्धिबन्धन, नाड़ियाँ और कण्डराएँ । |
| ९८६. स्नायुजालानि | सु. शा. ५-१२ । | A network or decussation and interlacing of the स्नायु | स्नायुसूत्रों का जाल, वेणीबन्ध या गुन्थन । |
| ९८७. स्नायुप्रतानः (नम्) | सु. नि. १-५५, ५७ । मधुकोशः (नि. २२-३४) । | Distributing branches of the nerves. | नाड़ियों की फैलनेवाली शाखाएँ । |
| ९८८. स्नावा (स्नावन्) | वा. शा. ३-१७ । वा. नि. १५-१४ । | See स्नायु | देखें, स्नायु । |
| ९८९. स्पर्शनेन्द्रियम् | च. शा. १-२७ । | Sense of touch. | त्वगिन्द्रिय या त्वगिन्द्रिय की अधिष्ठानभूत त्वचा । |
| ९९०. स्फिक् (स्फिचौ) | सु. शा. ५-४ । सु. सू. २३-५ । | See. कटिप्रोथः | नितम्बपिण्ड या चूतड़ । |
| ९९१. स्मरमन्दिरम् | डल्हणः (सू. ३५-१२) । | Vulva & Vagina. | वहिर्भग और योनि । |
| ९९२. स्मरसद्म | कामसूत्रम् । | Vagina. | योनि । |
| ९९३. स्मरातपत्रम् | डल्हणः (सु. शा. ५-१०) । | Clitoris with nymphae. | देखें, मदनातपत्रम् । |
| ९९४. स्रोतःसृङ्गाटकम् | आतङ्कदर्पणम् (मा. नि. ५८-९) । | Nasal Labyrinth. | नासागुहा के जटिल मार्ग । |
| ९९५. स्रोतांसि | सु. शा. ५-१०, ९-१३ । च. वि. ५-२ । का. पृ. ५१ । वा. शा. ३-४० । | Openings, Meatuses, passages, Channels, tubes, ducts, tracts. | छिद्रद्वार, सुरंगाएँ, मार्ग, नलिकाएँ, प्रणालिकाएँ, नाड़िकाएँ । |
| ९९६. स्रोतोमार्गः | सु. शा. ६-२७ । | Lumen. Meatus. Passage. | छिद्रद्वार, सुरंगाएँ, मार्ग, नलिकाएँ, प्रणालिकाएँ, नाड़िकाएँ । |
| ९९७. स्वरवह स्रोतांसि | माधव नि. १३-१ । | Laryngeal oral & nasal passages. | स्वरोत्पत्ति और स्वर संवहन के मार्ग, यथा—स्वरयन्त्र, मुख और नासा के स्रोत । |
| ९९८. स्वेदवहस्रोतांसि | च. वि. ५-१६ । | Coiled tubular sweat glands & their ducts. | कुण्डलीभूत सूक्ष्म नलिकागुच्छों की बनी स्वेद-ग्रन्थियाँ और उनके खुलनेवाले स्रोत । |
| ९९९. षडिन्द्रियाणि | भेल. । च. सू. २६-४१ । | Special senses & mind. | पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ और मन । |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ९९९. | षडिन्द्रियाणि | मन. । च. सू. २६-४१। | Special senses & mind. | पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ और मन। |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १००१. | हनुः | सु. सू. १८-१८। सु. शा. ५-१६। | (1) Jaw, Lower or upper (especially lower) (2) Chin or mentum. | (१) जबड़ा, ऊपर या नीचे का (विशेषकार निचला), (२) ठुड्डी। |
| १००२. | हनुकास्थि | सु. चि. २२-२८। | Bone of the jaw (Mandible or Maxilae) | जबड़े की हड्डी, अधोहन्वस्थि या ऊर्ध्वहन्वस्थि |
| १००३. | हनुमूलम् | माधव नि. २२-४६। | Condyloid process of the mandible | अधोहन्वस्थि का हनुमुण्ड प्रवर्धन। |
| १००४. | हनुमूलबन्ध | च. शा. ७-६। का. पृ. ५। | Zygomatic processes of the temporal bone. | शंखास्थि के गण्ड प्रवर्धन, जो हनुमूल के रोक का काम भी करते हैं। |
| १००५. | हनुसन्धिः | सु. शा. ५-२६। सु. चि. ३-३६। | Mandibular joint. | हनुमूल की सन्धि (जबड़े की चलसन्धि)। |
| १००६. | हन्वस्थि | (१) च. शा. ७-६। (२) हन्वोरस्थि हन्वस्थि–डल्हणः (सु. नि. ११-१०) | Mandible (2) Mandible & Maxillae. | (१) अधोहन्वस्थि, (२) अधोहन्वस्थि और ऊर्ध्वहन्वस्थि। |
| १००७. | हस्तः | सु. शा. ५-३। | (1) Upper limb (2) Hand. (3) a special measurement. | (१) ऊर्ध्वशाखा, पूरा हाथ, (२) केवल मणिबन्ध के आगे का भाग, (३) एक विशेष मापदण्ड। |
| १००८. | हस्ततलम् | डल्हणः (चि. ३-३३)। | Palm. | हथेली। |
| १००९. | हस्तमणिकः | का. पृ. ४६। | Proximal row of the carpal bones. | मणिबन्ध के कूर्चास्थियों की ऊर्ध्व श्रेणी। |
| १०१०. | हस्तमूलम् | अरुणदत्तः (वा. शा. ३-१४, १५)। | Carpus. (Wrist.) | मणिबन्ध या कलाई। |
| १०११. | हस्ताग्रम् | वा. सू. २२-३२। डल्हणः (चि. ३८-५)। | See कराग्रम | देखें, कराग्रम्। |
| १०१२. | हस्तांगुलयः | | Fingers. | हाथ की उँगलियाँ। |
| १०१३. | हस्तिशुण्डी | शारीरविवेकः | See. भक्षमार्गनालः | देखें, भक्षमार्गनालः। |
| १०१४. | हानव्यदन्ताः | का. पृ. ६। | Molar teeth. | चर्वणक दन्त। |
| १०१५. | हृत्कमलान्तरम् | शार्ङ्गधर संहिता (अन्तर शब्दो भिन्नार्थकस्तेन फुफ्फुसौ ग्राह्यौ)। | Lungs. | फुफ्फुस। |
| १०१६. | हृदयम् | सु. शा. ४-३१। च. सू. ३०। (२) वा. सू. ४-६। च. वि. १-४० माधव नि. ६-१३। (३) सु. उ. ५४-३४। च. ति. ८-४। | (1) Heart (2) Epigastrium or Stomach. (3) Brain. | (१) उरोहृदय, (२) आमाशयिक प्रदेश या आमाशय (उदर हृदय), (३) मस्तिष्क या शिरोहृदय। |
| १०१७. | हृदयनाड़िका | डल्हणः (सु. शा. ४-२५)। | Bronchus. | श्वासनाल की दोनों शाखाएँ (श्वास प्रणालिकाएँ)। |
| १०१८. | हृदयबन्धनम् | सु. शा. १०-६। | Diaphragm. | महाप्राचीरा। |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १०१९. | हृदयस्थानम् | डल्हणः (सु. सू. ४६-१३०)। | See. क्रोड: | देखें, क्रोडः। |
| १०२०. | हृदयोदरम् | का. पृ. ५८। | Upper portion of the abdomen | उदरगुहा का ऊर्ध्व भाग। |
| १०२१. | ज्ञानेन्द्रियाणि | | Special senses. | विषय ग्राहक पाँचों इन्द्रियाँ। |
| १०२२. | क्षीरवहाः सिराः | च. चि. ३०-२२५। | See स्तन्यवहाशिरा | देखें, स्तन्यवहाः सिराः। |
| १०२३. | क्षीराशयः | च. चि. ३०-२२७। | See स्तन्याशयः | देखें, स्तन्याशयः। |
| १०२४. | क्षुद्रान्त्रम् | च. शा. ३-१२। च. शा. ७-१०। | Small intestine. | छोटी या पतली आँत। |

## मर्मप्रकरणम्

## Vitals or structures of Surgical importance

सु. शा. अ० ६। वा. शा. अ. ४।

### शाखामर्माणि

| संख्या | नाम | अंगुलमानम् | प्रकारः | विकल्यः | प्रभाव | तन्त्रान्तर विवरणम् | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १०२५. | क्षिप्रभू (चत्वारि) | १।२ | स्नायुमर्म | कालान्तरप्राणहरम् | आक्षेपकः | (1) First interosseous space of the foot with its contents. (2) First interosseous space of the hand with its contents. | पाँव और हाथों के प्रथम शलाकान्तरीय स्थान, तथा वहाँ की मुख्य पेशी, नाड़ी और सिरा-धमनियाँ। |
| १०२६. | तलहृदयम् (चत्वारि) | १।२ | मांसमर्म | कालान्तरप्राणहरम् | रुजा | (1) Sole with its nerves, vessels & Synovial sheaths. (2) Palm & with its nerves, vessels & Synovial sheaths. | तलवे और हथेलियों के मध्यभाग, तथा वहाँ की मुख्य नाड़ियाँ, सिरा-धमनियाँ और कण्डराकञ्चुक। |
| १०२७. | कूर्च्चः (चत्वारः) | ४ | स्नायुमर्म | वैकल्यकरम् | भ्रमणवेपने | (1) Ligaments of the tarso-metatarsal & intertarsal joints. (2) Ligaments of the carpo-metacarpal & intercarpal joints. | पाँव और हाथों के कूर्चशलाकान्तरीय और कूर्चान्तरीय सन्धियों के स्नायु-विशेष। |

intercarpal joints.

| संख्या | नाम | अंगुलमानम् | प्रकारः | विकल्पः | प्रभाव | तन्त्रान्तर विवरणम् | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १०२८. | कूर्चशिरः (चत्वारि) | १ | स्नायुमर्म | रुजाकरम् | रुजाशोफौ | (1) Side or lateral ligaments of the ankle joint, (2) Side or collateral ligaments of the wrist. | गुल्फ और मणिबन्ध सन्धि के पार्श्विक स्नायु । |
| १०२९. | गुल्फः (द्वौ) | २ | स्नायुमर्म | रुजाकरम् | रुजा, स्तब्धपादता खञ्जता वा | Ankle joint. | गुल्फसन्धि । |
| १०३०. | मणिबन्धः (द्वौ) | २ | ,, | ,, | रुजा, कुण्ठता | Wrist joint. | मणिबन्ध-सन्धि । |
| १०३१. | इन्द्रबस्तिः (चत्वारः) (भोजमते २) | १।२ | मांसमर्म | कालान्तरप्राणहरम् | शोणितक्षयः | (1) Midde of the calf. (2) Apex of the cubital fossa. | (१) जंघापिण्डिका के मध्यभाग में स्थित रक्तवाहिनियाँ व नाड़ियाँ, (२) प्रकोष्ठ त्रिकोण के शिखर के समीप की रक्त-नलिकाएँ व नाड़ियाँ । |
| १०३२. | जानु (द्वे) | ३ | सन्धिमर्म | वैकल्यकरम् | खञ्जता | Knee joint. | जानुसन्धि या घुटने का जोड़ । |
| १०३३. | कूर्परः (द्वौ) | ३ | ,, | ,, | कुणिः | Elbow joint. | कूर्परसन्धि या कोहनी का जोड़ । |
| १०३४. | आणी (चतस्रः) | १।२ | स्नायुमर्म | ,, | शोफः, स्तब्धसक्थिता शोफः स्तब्धबाहुता | (1) Quadriceps tendon & Suprapatellar bursa. (2) Triceps tendon & articular capsule. | (१) पैर में चतु:शिरस्का कण्डरा और जा[illegible] कलापुटक, (२) हाथ में त्रिशिरस्का कण्डरा और समीपस्थ सन्धिकोष । |
| १०३५. | ऊर्वी (द्वे) | १ | सिरामर्म | ,, | शोणितक्षयः, सक्थिशोषः | Femoral & Profunda vessels in the midde of the thigh. | ऊर्ध्वजंघा के मध्य में और्वी और गंभीरोरुका नामक सिराधमनियाँ । |
| १०३६. | बाही (द्वे) | १ | ,, | ,, | शोणितक्षयः बाहुशोषः | Brachial vessels & its branches in the midde of the arm. | प्रगण्ड मध्य में बाह्वी रक्तवाहिनियाँ और उनकी शाखाएँ । |
| १०३७. | लोहिताक्षम् (चत्वारि) | १।२ | ,, | ,, | लोहितक्षयः पक्षाघातः, सक्थिबाहुशोषश्च | (1) Femoral Triangle & its contents. (2) Third part of the axillary & upper portion of the brachial vessels, with branches of the brachial Plexus. | (१) ऊरुत्रिकोण और उसकी और्वी सिरा, धमनी और नाड़ी । (२) कक्षाधरा रक्तनलिकाओं का तृतीय भाग, बाह्वी रक्तनलिकाओं का ऊर्ध्व भाग, तथा कक्षानुगा नाड़ीप्रवेणी की विशिष्ट शाखाएँ । |
| १०३८. | विटपम् (द्वे) | १ | स्नायुमर्म | ,, | षाण्ढ्यमल्पशुक्रता वा | Medial portion of the groin where spermatic cord descends. | वंक्षणप्रदेश का आभ्यन्तर भाग, जहाँ वृषण-बन्धनी रज्जु पाई जाती है । |
| १०३९. | कक्षधरम् (द्वे) | १ | स्नायुमर्म<br>वाग्भटे सिरामर्म | ,<br>, | पक्षाघातः (रक्तक्षयः) | First and second part of the axillary vessels and Brachial plexus. | कक्षाधरा रक्तनलिकाओं का प्रथम और द्वितीय भाग तथा कक्षानुगा नाड़ीप्रवेणी की वेणिकाएँ |

### उदरोरसः

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १०४०. | गुदम् (एकः) | ४ | मांसमर्म (धमनीमर्म वा) | सद्यःप्राणहरम् | सद्योमरणम् | Rectum. | गुदा। |
| १०४१. | बस्तिः (एकः) | ४ | स्नायुमर्म | ,, | ,, | Urinary bladder. | मूत्राशय। |
| १०४२. | नाभिः (एकः) | ४ | सिरामर्म | ,, | ,, | Deep vital structures corresponding to the umbilical region. | नाभिप्रदेश से सम्बद्ध उदर के भीतरी मर्मावयव |
| १०४३. | हृदयम् (एकम्) | ४ | ,, | ,, | ,, | Heart. | उरोहृदय, दिल। |
| १०४४. | स्तनमूलम् (द्वे) | २ | सिरामर्म | कालान्तरप्राणहरम् | कफपूर्ण कोष्ठता, कास श्वासौ च। | Part of the pleural sac or of the lung, below the nipple. | फुफ्फुस और उसके कलाकोष का अधर भाग, जो स्तनचूचुक सीमा के नीचे पड़ता है। |
| १०४५. | स्तनरोहितः (द्वौ) | १।२ | मांसमर्म | ,, | लोहितपूर्ण कोष्ठता, कासश्वासौ च | Part of the pleural sac or of the lung, above the nipple. | फुफ्फुस और उसके कलाकोष का मध्यम भाग, जो स्तनचूचुक सीमा से ऊपर पड़ता है। |
| १०४६. | अपलापः (द्वौ) | १।२ | सिरामर्म | ,, | पूयभावगमनम् | Upper part of the lung and Pleural sac. | फुफ्फुस और उसके कलाकोष का उत्तर भाग। |
| १०४७. | अपस्तम्भः (द्वौ) | १।२ | ,, | ,, | वातपूर्णकोष्ठता कासश्वासौ च | Bronchus. | हृदय नाड़िका या श्वासनलिका। |

### पृष्ठ मर्माणि

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १०४८. | कटीकतरुणम् (द्वे) | १।२ | अस्थिमर्म | कालान्तर प्राणहरं | रक्तक्षयात् पाण्डुता विवर्णता हीनरूपता च। | Ischium of the hip bone. | श्रोणिफलक का कुकुन्दर भाग। |
| १०४९. | कुकुन्दरम् (द्वे) | १।२ | सन्धिमर्म | वैकल्यकरम् | अधःकाये स्पर्शा ज्ञानं चेष्टोप घातश्च। | Greater sciatic notch and Dorsum ischii, with sciatic nerve, in relation to them. | महागृध्रसी द्वार और कुकुन्दर पृष्ठ जो गृध्रसी नाड़ी से सम्बन्ध रखते हैं। |
| १०५०. | नितम्बः (द्वौ) | १।२ | अस्थिमर्म | कालान्तर प्राणहरं | अधःकायशोषः, दौर्बल्यञ्च। | Ala of the ilium (Portion just above and in front of the sciatic notch.) | जघनपक्ष का वह भाग जो महागृध्रसी द्वार के ऊपर और सामने की ओर पड़ता है। |
| १०५१. | पार्श्वसन्धिः (द्वौ) | १।२ | सिरामर्म | ,, | लोहितपूर्ण कोष्ठता | Sacroiliac joint (Common, Internal and External iliac vessels lie in front of the joint.) | त्रिकजघनसन्धि, जिसके सामने अधिश्रोणिका साधारणी, आभ्यन्तरी और बाह्यासिरा धमनियाँ रहती हैं। |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १०५२. बृहती (द्वे) | ११२ ,, | ,, | शोणितातिप्रवृत्तिः | Anastomoses around the scapula. | अंसफलक के चारों ओर बननेवाला धमनी-जालक । |
| १०५३. अंसफलकम् (द्वे) | ११२ अस्थिमर्म | वैकल्यकरम् | बाहुस्वापशोषौ | Portion of the brachial plexus, in relation to the scapula. | कक्षानुगा नाड़ीप्रवेणी का वह अंश, जो अंसफलक के सामने से गुजरता है । |
| १०५४. अंसः (द्वौ) | ११२ स्नायुमर्म | ,, | स्तब्धबाहुता | Coraco acromial arch, Acromio clavicular joint and sub acromial bursa. | तुण्डकूटिक चाप, कूटाक्षकसन्धि, तथा अंसकूटाधर कला पुटक । |

### ऊर्ध्वजत्रुगतानि मर्माणि

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १०५५. नीला मन्या च | ४ | सिरामर्म | जाकरम् | मूकता स्वरवैकृतम् अरसग्राहिता च | Hypoglossal and Lingual nerves. | जिह्वामूलिनी तथा रासनी नाड़ियाँ । |
| १०५६. मातृका (अष्टौ) | ४ | सिरामर्म | सद्यः प्राणहरम् | (रक्तातिस्रुतिः) | (1) Common carotid artery. (2) External carotid artery. (3) Internal carotid artery. (4) Internal jugular Vein. | (१) महामातृका धमनी । (२) बहिर्मातृका धमनी । (३) अन्तर्मातृका धमनी । (४) अनुमन्या सिरा । |
| १०५७. कृकाटिका (द्वे) | ११२ | सन्धिमर्म | वैकल्यकरम् | चलमूर्धता | Sterno mastoid muscle (upper portion with accessory nerve) | उरःकर्णमूलिका पेशी का उत्तर भाग तथा सम्बद्ध नागिनी नाड़ी । |
| १०५८. विधुरम् (द्वे) | ११२ | स्नायुमर्म (वा धमनी) | वैकल्यकरम् | बाधिर्यम् | Mastoid portion of the Temporal bone. (Macewan's triangle) | शंखास्थि का कर्णमूल पिण्ड (मेकवेन का त्रिकोण) । |
| १०५९. फणा (द्वे) | ११२ | सिरामर्म | वैकल्यकरम् | गन्धाज्ञानम् | Nasal conchae. | नासाशुक्तिकाएँ । |
| १०६०. अपाङ्गः (द्वौ) | ११२ | सिरामर्म | वैकल्यकरम् | आन्ध्यम् दृष्टचुपघातो वा | Area near the outer canthus or frontozygomatic suture. | भ्रूपुच्छ या ललाटगण्ड सीमन्त के समीप का प्रदेश |
| १०६१. आवर्त्तः (द्वौ) | ११२ | सन्धिमर्म | वैकल्यकरम् | आन्ध्यम् दृष्ट्युपघातो वा | Pterion | |
| १०६२. शङ्खः (द्वौ) | ११२ | अस्थिमर्म | सद्यःप्राणहरम् | सद्योमरणम् | Temple. | शङ्ख प्रदेश या कनपटी । |
| १०६३. उत्क्षेपः (द्वौ) | ११२ | स्नायुमर्म | विशल्यघ्नम् | | Parietal eminence. | पार्श्वकुम्भ (कनपटी से ऊपर के पार्श्व कपालोत्सेध) । |
| १०६४. स्थपनी (एका) | ११२ | सिरामर्म | ,, | | Glabella. | भ्रूमध्य या कूर्चक देश । |
| १०६५. मन्तः (सीपञ्च) | ४ | सन्धिमर्म | कालान्तरप्राणहरम् | उन्मादभयचित्तनाशाः | (1) Coronal suture. (2) Sagittal suture. (3) Lambdoid suture. (4-5) Left and right and parietosquamous sutures. | (१) पुरः सीमन्त । (२) मध्य सीमन्त । (३) पश्चिम सीमन्त । (४-५) वाम व दक्षिण पार्श्व सीमन्त । |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १०६६. | शृङ्गाटकानि (चत्वारि) | ४ सिरामर्म | सद्यःप्राणहरम् | सद्योमरणम् | Median portion of the floor of the midde cranial fossa, with petrous portions of the temporal bones and with the parts of the floors of anterior and middle cranial fossae, formed by the both wings of the sphenoid. (Important vessels & nerves of the nose, eye, tongue, ears, arerelated to this and area) | मध्यम कर्परखात का मध्यम क्षेत्र, तथा साथ में शंखाश्मकूट प्रवर्धन और अग्रिम व मध्यम कर्परखात के वे अंश, जो जतूका की दोनों पद्धतियों से बनते हैं। (इस क्षेत्र से नासा, नेत्र, जिह्वा और कर्ण की मुख्य रक्तनलिकाएँ तथा नाड़ियाँ सम्बद्ध रहती हैं)। |
| १०६७. | अधिपतिः | १।२ सन्धिमर्म | ,, | ,, | Confluеus Sinuum. | मस्तक के भीतर की सिराकुल्याओं का सन्धि सन्निपात। |

## अवशिष्ट शारीर शब्द-सूची

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १. | अङ्कः | भावप्रकाशः (बालप्रकरणं ३७, पृ. ३६)। | See क्रोड | गोदी। |
| २. | अङ्गोपाङ्गानि | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं ७०, पृ. १२)। | Divisions and subdivisions of the body. | शरीर के विभाग और उपविभाग। |
| ३. | अण्डौ | आढमल्लः (शार्ङ्गधरः १।५।४२)। | Testes. | अण्डकोश के भीतर की अण्डग्रन्थियाँ। |
| ४. | अन्तर्योनिः | इन्दुः (वृ. वा. सू. २०, पृष्ठ १४७)। | Vagina. | योनिनलिका। |
| ५. | अन्तःशरीराः त्वचः | इन्दुः (वृ. वा. सू. २०, पृष्ठ १५१)। | Dermis. | अन्तस्त्वचा (त्वचा का भीतरी स्तर)। |
| ६. | अन्तःस्रोतांसि | वृ. वा. शा. ५, पृष्ठ ३२०। | See अन्तर्मुखस्रोतांसि | देखें, अन्तर्मुख स्रोतांसि। |
| ७. | अपरार्धम् | वृ. वा. शा. ४, पृष्ठ ३१२। | Lower half of the body. | शरीर का निचला अर्धभाग। |
| ८. | अपनानि | वृ. वा. सू. ११, पृष्ठ १०१। | See स्रोतांसि | देखें, स्रोतांसि। |
| ९. | उपनस्या सिरा | वृ. वा. सू. ३६, पृष्ठ २५२। | See औपनासिकी सिरा | देखें, औपनासिकी सिरा। |
| १०. | उपस्थगर्भः | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणम् १७, पृ. ६)। | Deepest part of the vagina. | योनि का गम्भीरतम भाग। |
| ११. | उपस्थमार्गः | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं २११, पृ. २२)। | Urethra. | मूत्रमार्ग। |
| १२. | कण्ठमणिः | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणम् १७४, पृ. १६)। | Uvula. | गले का कौआ। |
| | कन्दर्पगेहः | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणम् १७, पृ. ६)। | vagina. | योनि। |
| १३. | कन्धरा | वृ. वा. शा. ६, पृष्ठ ३५२। | See ग्रीवा | देखें, ग्रीवा। |
| १४. | कालीयम् | वृ. वा. शा. ५, पृष्ठ ३२०। | See कालेयकम् | देखें, कालेयकम्। |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १५. | कुन्तलाः | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं ७१, पृ. १२)। | See केशाः | देखें, केशाः। |
| १६. | कृष्णगोलः | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं ७२, पृ. १२)। | See कृष्णमण्डलम् | देखें, कृष्णमण्डलम्। |
| १७. | कोष्ठवह्निः | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं २०५, पृ. ३१)। | See कायाग्निः | देखें, कायाग्निः |
| १८. | गन्ववेदिन्यौ सिरे | बृ. वा. शा. ६, (३२८ पृष्ठ)। | Olfactory nerves. | मस्तिष्क की दोनों घ्राण-नाड़ियाँ। |
| १९. | गर्भबीजम् | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं २३७, पृ. २५)। | Sperm or ovum. | शुक्रकीट या स्त्री-बीज। |
| २०. | गर्भवर्त्म | शार्ङ्गधर १।५।३८। | See अपत्यपथः | देखें, अपत्यपथः। |
| २१. | गर्भवर्त्मरन्ध्रम् | शार्ङ्गधर १।५।३६। | See रक्तवह स्रोतः | देखें, रक्तवह स्रोतः। |
| २२. | गर्भोपयोगि आर्त्तवम् | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं २२८, पृ. २४)। | Ovum. | स्त्री-बीज। |
| २३. | गाढस्थानम् | बृ. वा. सू. ३८, पृष्ठ २६७। | Thick fleshy part of the body. | शरीर का मोटा मांसल भाग, यथा नितम्ब आदि |
| २४. | घ्राणरन्ध्रम् | भावप्रकाशः (दिनचर्यादि प्र. ३१५, पृ. ५६)। | Nostril, Anterior naire. | नासाछिद्र, नथुना। |
| २५. | चेतनाधिष्ठानम् | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं ८१, पृ. १३)। | Whole of the body, except some senseless and bloodless structures. | सम्पूर्ण शरीर, केवल कुछ स्पर्शहीन और रक्तहीन रचनाओं को छोड़ कर, यथा—केश, लोम, नखाग्र। |
| २६. | चेतनास्थानम् | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं ८२, पृ. १३)। | Brain or Heart. | शिरोहृदय या उरोहृदय। |
| २७. | जठरानलम् | शार्ङ्गधरः १।५।४६। | See जाठराग्निः | देखें, जाठराग्निः। |
| २८. | जीवनाड़ी | भावप्रकाशः (मिश्रप्रकरणं ५०, पृ. ६२)। | Pulsating artery. | स्पन्दन करती हुई धमनी (चलती हुई नाड़ी)। |
| २९. | जीवसाक्षिणी नाड़ी | शार्ङ्गधरः १।३।१। | ,, ,, | ,, ,, ,, |
| ३०. | जीवाशयः | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं ८१, पृ. १३)। | Brain or Heart. | शिरोहृदय या उरोहृदय। |
| ३१. | तनुः | भावप्रकाशः (दिनचर्यादि प्र. ८७, पृ. ४५)। (अंगस्वेति च पाठान्तरम्)। | Body. | शरीर। |
| ३२. | तुण्डकम् (कः) | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं १७४, पृ. १९)। | Colon. (उण्डुकपर्यायः प्रतिभाति) | स्थूलान्त्र। |
| ३३. | त्वगिन्द्रियम् | भावप्रकाशः (सृष्टि प्रकरणं ११३, पृ. ७)। | Organ of the touch. | स्पर्शग्राहक इन्द्रिय। |
| ३४. | दर्शनम् | बृ. वा. ५, पृष्ठ ३१६। | See चक्षुः | चक्षु इन्द्रिय। |
| ३५. | दक्षिणाङ्गम् | शार्ङ्गधरः १।५।३९। | Right half of the body. | शरीर का दक्षिणार्ध। |
| ३६. | दृक् | बृ. वा. सू. ३, पृष्ठ १८। | See चक्षुः | देखें, चक्षुः। |
| ३७. | द्रवसमूहः | बृ. वा. शा. ५, पृष्ठ ३१६। | Liquid substances of the body. | शरीर के विभिन्न तरल द्रव्य। |
| ३८. | नेत्ररन्ध्रम् | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं ३१४, पृ. ३२)। | Rima palpebrarum. | पलकों के बीच का छिद्राकार अवकाश। |
| ३९. | पवनाशयः | शार्ङ्गधरः १।५।८। | See वाताशयः | देखें, वाताशय। |
| ४०. | पाचकाशयः | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं २५६, पृ. २७)। | See ग्रहणी | देखें, ग्रहणी। |
| ४१. | पावकः | भावप्रकाशः (दिनचर्यादि प्रकरणं २२७, पृ. ५२) | See अग्निः | देखें, अग्निः। |
| ४२. | पायुरन्ध्रम् | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं ३१४, पृ. ३३)। | Anal orifice. | गुदद्वार। |
| ४३. | पीठम् | आढमल्लः १।५।४। | Back. | पृष्ठ या पीठ। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४४. पीलुः | च. सू. २६-४८ (गंगाधर संस्करणम्)। | Palm. | हस्ततल या हथेली। |
| ४५. पुंस्त्ववाहीनि स्रोतांसि | वृ. वा. शा. २, पृष्ठ २६३। | See शुक्रवाहिनी स्रोतांसि | देखें, शुक्रवह स्रोतांसि। |
| ४६. पुरीषमार्गः | भावप्रकाशः। | See शकृन्मार्गः | देखें, शकृन्मार्गः। |
| ४७. पुरीषान्त्रम् | आढमल्लः १।५।५। | See उण्डुकः | देखें, उण्डुकः। |
| ४८. पुःफुसम् | वृ. वा. शा. ५, पृष्ठ ३२०। | See फुफ्फुसः | देखें, फुफ्फुसः। |
| ४९. पृथुलाङ्गम् | वृ. वा. सू. ३८, पृष्ठ २६६। | Broad and large part of the body. | शरीर के बड़े-चौड़े भाग, यथा—शिर आदि। |
| ५०. प्रणाली | भावप्रकाशः (गर्भ प्रकरणं २८६, पृ. ३०)। | Channel, duct, tube. | नलिका, नली, नाली। |
| ५१. बाह्यत्वक् | वृ. वा. सू. २०, पृष्ठ १५०। | Epidermis. | वाहरी त्वचा या उपचर्म। |
| ५२. बाह्यानि स्रोतांसि | इन्दुः (शा. ६, पृष्ठ ३३१)। | See बहिर्मुख स्रोतांसि | देखें, बहिर्मुख स्रोतांसि। |
| ५३. बीजमूत्रायनम् | शार्ङ्गधरः १।५।४२। | Penis or Urethra. | लिंग या मूत्रमार्ग। |
| ५४. बुद्धीन्द्रियाणि | च. शा. | Special senses. | ज्ञानेन्द्रियाँ। |
| ५५. मनोभवागारम् | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं १७, पृ. ६)। | Vagina. | योनि। |
| ५६. मनोभवागारमुखम् | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं १७, पृ. ६)। | Vaginal canal or orifice. | योनिनलिका या योनिद्वार। |
| ५७. मलमार्गाः | भावप्रकाशः (दिनचर्यादि प्र० २२, पृ. ४२)। | See मलायनानि | देखें, मलायनानि। |
| ५८. मस्तकरन्ध्रम् | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं ३१५, पृ. ३३)। | Anterior fontanelle or Bregma. | ब्रह्मरन्ध्र या शिरस्तालु। |
| ५९. महास्नायुः | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं ३१२, पृ. ३२)। | See कण्डरा | देखें, कण्डरा। |
| ६०. महास्नावानि | वृ. वा. शा. ५, पृष्ठ ३२४। | See ,, | देखें, कण्डरा। |
| ६१. मांसपेश्यः | शार्ङ्गधरः १।५।४। | Muscles. | मांसपेशियाँ या पुट्ठे। |
| ६२. मांसलावकाशाः | वृ. वा. सू. ३६, पृष्ठ २५४। | Muscular or fleshy parts. | शरीर के मोटे मांसल भाग। |
| ६३. मुखरन्ध्रम् | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं ३१४, पृ. ३३)। | Oral orifice. | मुखद्वार। |
| ६४. मेहनमार्गः | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं ३०, पृ. १०)। | Male Urethra. | पुरुषों का मूत्रमार्ग। |
| ६५. मेहनरन्ध्रम् | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं ३१४, पृ. ३३)। | External Urethral orifice in male. | पुरुषों का मूत्रद्वार। |
| ६६. रक्तवाहिसिराः | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं ८६, पृ. १३)। | See रक्तवाहिन्यः | देखें, रक्तवाहिन्यः। |
| ६७. रक्षः | भावप्रकाशः (दिनचर्यादि प्र० १४८, पृ. ४८) | See दन्ताः | देखें, दन्ताः। |
| ६८. रन्ध्राणि | भावप्रकाशः (गर्भप्रकरणं ३१५, पृ. ३३)। | Openings, orifices. apertures. | छिद्र या छेद। |
| ६९. रसवाहिका धमन्यः | शार्ङ्गधरः १।५।३। | See रसवाहिन्यः | देखें, रसवाहिन्यः। |
| ७०. रसवेदिन्यौ सिरे | वृ. वा. शा. ६, पृष्ठ ३२८। | Lingual and Glossopharyngeal nerves. | रासनी तथा कण्ठरासनी नाड़ियाँ। |
| ७१. रसेन्द्रियम् | भावप्रकाशः (सृष्टिप्रकरणं ११५, पृ. ७)। | Organ of the taste. | रस ग्रहण करनेवाली इन्द्रिय, जो जिह्वा में होती है। |
| ७२. लोचनम् | भावप्रकाशः (दिनचर्यादि प्र० ४६, पृ. ४३)। | Eye. | आँख। |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ७२. लोचनम् | भावप्रकाशः (दिनचर्यादि प्र० ४६, पृ. ४३) । | Eye. | आँख । |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ७३. वंश: | वा. शा. ३, पृ० ११३ । | See पृष्ठवंश: | देखें, पृष्ठवंश: । |
| ७४. वह्नि: औदर्य: | वृ. वा. सू. १०, पृष्ठ ६० । | See जाठराग्नि: | पेट की पाचक अग्नि । |
| ७५. वाक्प्रवर्त्तिन्यौ सिरे | वृ. वा. शा. ६, पृष्ठ ३२८ । | Hypoglossal Nerves. | जिह्वामूलिनी नाड़ियाँ । |
| ७५क. वागिन्द्रियम् | च. शा. १-२४ । | Organ of Voice. | स्वरोत्पादक अंग, विशेषकर जिह्वा । |
| ७६. विलम्बि अङ्गम् | वृ. वा. सू. ३८, पृष्ठ २६६ । | Hanging part of the body. | शरीर के लम्बे लटकनेवाले अंग, यथा–हाथ-पैर आदि । |
| ७७. शब्दवाहिन्यौ सिरे | वृ. वा. शा. ६, पृष्ठ ३२८ । | Hypoglossal Nerves. | जिह्वामूलिनी नाड़ियाँ । |
| ७८. शलाका प्रतिबन्धकानि | वृ. वा. शा. ५, पृष्ठ ३२२ । | See शलाकाधिष्ठानानि | देखें, शलाकाधिष्ठानानि । |
| ७९. शिथिलस्थानम् | वृ. वा. सू. ३८, पृष्ठ २६७ । | Loose part of the body. | शरीर के ढीले नरम भाग, यथा–नेत्र आदि । |
| ८०. शिरोद्वारम् | वृ. वा. सू. २६, पृष्ठ २२४ । | Nose. | नासा । |
| ८१. शिरोभूमि: | भावप्रकाश: (दिनचर्यादि प्र० ६८, पृ. ४४) । | See केशभूमि: | देखें, केशभूमि: । |
| ८२. शिरोरुहा: | वृ. वा. सू. ३, पृष्ठ १६ । | See केशा: | देखें, केशा: । |
| ८३. श्रवणरन्ध्रम् | भावप्रकाश: (गर्भप्रकरणं ३१४, पृ. ३२) । | External auditory orifice. | कर्णद्वार । |
| ८४. श्रुति: | भावप्रकाश: (गर्भप्रकरणं १८७, पृ. २०) । | Ear | कर्ण । |
| ८५. श्रोत्रेन्द्रियम् | भावप्रकाश: (सृष्टिप्रकरणं ११२, पृ. ७) । | Organ of hearing. | शब्दग्राहक इन्द्रिय, जो कानों में होती है । |
| ८६. समस्थानम् | वृ. वा. सू. ३८, पृष्ठ २६७ । | Part which is not thick nor thin. | शरीर का वह भाग जो न मोटा हो और न पतला, यथा–हाथ-पैर । |
| ८७. सत्त्वम् | वृ. वा. शा. ५, पृष्ठ ३१७ । | See मन: | देखें, मन: । |
| ८८. सूक्ष्मछिद्राणि | शार्ङ्गधर: १।४।१६ । | Minute apertures or orifices. | शरीर के सूक्ष्म छिद्र, यथा–त्वचा के स्वेदरन्ध्र । |
| ८९. स्तनपर्य्यन्तम् | वृ. वा. शा. ८, पृष्ठ ३५१ । | Mammary areola. | स्तनों का कृष्णमण्डल । |
| ९०. स्तनरन्ध्रम् | शार्ङ्गधर: १।५।३८ । | Mouths of the lactiferous ducts. | स्तनाग्र पर पाये जानेवाले दुग्धवह स्रोतों के छिद्र |
| ९१. स्पर्शनम् | वृ. वा. शा. ५, पृष्ठ ३१६ । | Organ of the touch. | स्पर्शग्राहक इन्द्रिय । |
| ९२. स्पर्शनेन्द्रियम् | | ” ” | स्पर्शग्राहक इन्द्रिय । |
| ९३. स्वल्पमांसदेश: | वृ. वा. सू. ३६, पृ. २६६ । | Less muscular or fleshy part. | शरीर का वह भाग, जहाँ मांस थोड़ा होता है । |
| ९४. स्वान्तम् | भावप्रकाश: (सृष्टिप्रकरणं १२१, पृ. ८) । | Mind. | मन । |
| ९५. स्वेद: | वृ. वा. शा. ५, पृष्ठ ३२६ । | Sweat. | पसीना । |
| ९६. हस्तांगुष्ठ: | वृ. वा. सू. २८, पृष्ठ २१७ । | Thumb, Polax. | हाथ का अँगूठा । |

---

स्वास्थ्य और सुख की प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन

# आरोग्य-प्रकाश

## —प्रत्येक परिवार में रहना अत्यन्त आवश्यक है !

◆

भारत-प्रसिद्ध श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड के मैनेजिंग डायरेक्टर वैद्यराज पण्डित रामनारायण शर्मा ने अनेक वर्षों के परिश्रम से इस महान ग्रन्थ—**आरोग्य-प्रकाश**—को स्वयं लिखा है। इस ग्रन्थ का एक-एक वाक्य हजारों रुपयों का काम देता है। इसके पूर्वार्द्ध के व्यायाम, ब्रह्मचर्य, भोजन, दिन-रात्रि-ऋतुचर्या, सदाचार, उत्तम विचार आदि विषयों को पढ़कर और तदनुकूल आचरण कर सदा बीमार रहनेवाला व्यक्ति भी विना दवा के ही नीरोग और तन्दुरुस्त हो जाता है।

इस ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में शरीर में पैदा होनेवाले सभी रोगों के कारण, निदान, रोग-लक्षण, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदि पर बड़ी ही सरल भाषा में सुन्दर ढंग से विवेचन किया गया है, जिनको पढ़कर विद्वान से लेकर साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति तक समान भाव से लाभ उठा सकते हैं। इसमें दवाओं के जो नुस्खे लिखे हैं, वे बहुत वर्षों के परीक्षित, कभी विफल नहीं होनेवाले और शास्त्रानुमोदित हैं। शहर हो या देहात, सब जगह इस पुस्तक के घर में रहने से रोगी को तत्काल लाभ पहुँचाया जा सकता है। औषध तैयार करने का विधान तो इस पुस्तक में बहुत ही श्रेष्ठ है, क्योंकि लेखक इस विषय के निर्णयात्मक ज्ञाता हैं। इसके ११ संस्करणों में १,०८,००० प्रतियाँ छपकर बिक चुकी हैं और बारहवें संस्करण में २० हजार प्रतियाँ फिर छापी गयी हैं। इसी से इस ग्रन्थ की लोकप्रियता और उपयोगिता का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। हिन्दी में ऐसी पुस्तक दूसरी नहीं है, यदि यह कहा जाय तो अनुचित न होगा। प्रचार की दृष्टि से इस पुस्तक का मूल्य भी बहुत कम रखा गया है। ४६० पृष्ठों की विशाल पुस्तक का मूल्य मात्र रु० २·२५, डाक खर्च ०·८८।

**नोट :**—हमारे ४ निर्माण-केन्द्रों, २५० बिक्री-केन्द्रों तथा २५ हजार एजेन्सियों में से कहीं भी यह पुस्तक खरीदी जा सकती है। इससे डाक खर्च की बचत होगी।

प्रकाशक

श्री **बैद्यनाथ** आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०

—१, गुप्ता लेन, कलकत्ता —६ —

# एक तन्दुरुस्ती हजार नियामत

यह कहावत बहुत पुरानी होकर भी हमेशा सच्ची है। संसार के सभी सुख-साधनों के बावजूद अगर आदमी के शरीर में रोगों का घर हो, तो उसके लिए दुनिया का आनन्द किस काम का? इसीलिए शास्त्रों में भी आरोग्य को ही धर्म, अर्थ और मोक्ष का मूल स्वीकार किया गया है।

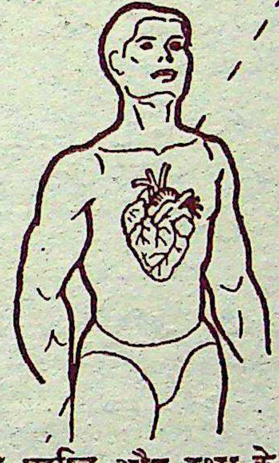

आरोग्य की प्राप्ति और रक्षा के लिए आरोग्य-शास्त्र में जो अनुभव-प्रसूत औषधियां हैं, उनमें सर्वश्रेष्ठ और सुप्रसिद्ध है :—

## बैद्यनाथ वसन्तकुसुमाकर रस

आजकल अक्सर लोगों में स्नायुदौर्बल्य, पेशाब के साथ गदले पदार्थों का निकलना, दुर्बलता एवं जवानी में बुढ़ापा के चिह्न आदि विभिन्न शिकायतें देखी जाती है। इन सभी शिकायतों के लिए इससे बढ़कर कोई दूसरी दवा नहीं है। कमजोर से कमजोर आदमी भी इसके सेवन से हृष्टपुष्ट और ताकतबर बन जाता है।

देशी दवाओं का सब से बड़ा और विश्वासी कारखाना

**श्री बैद्यनाथ** आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०

कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

## शास्त्रीय पद्धति और उत्तम मूलद्रव्यों द्वारा प्रस्तुत

# बैद्यनाथ

# रस-रसायन

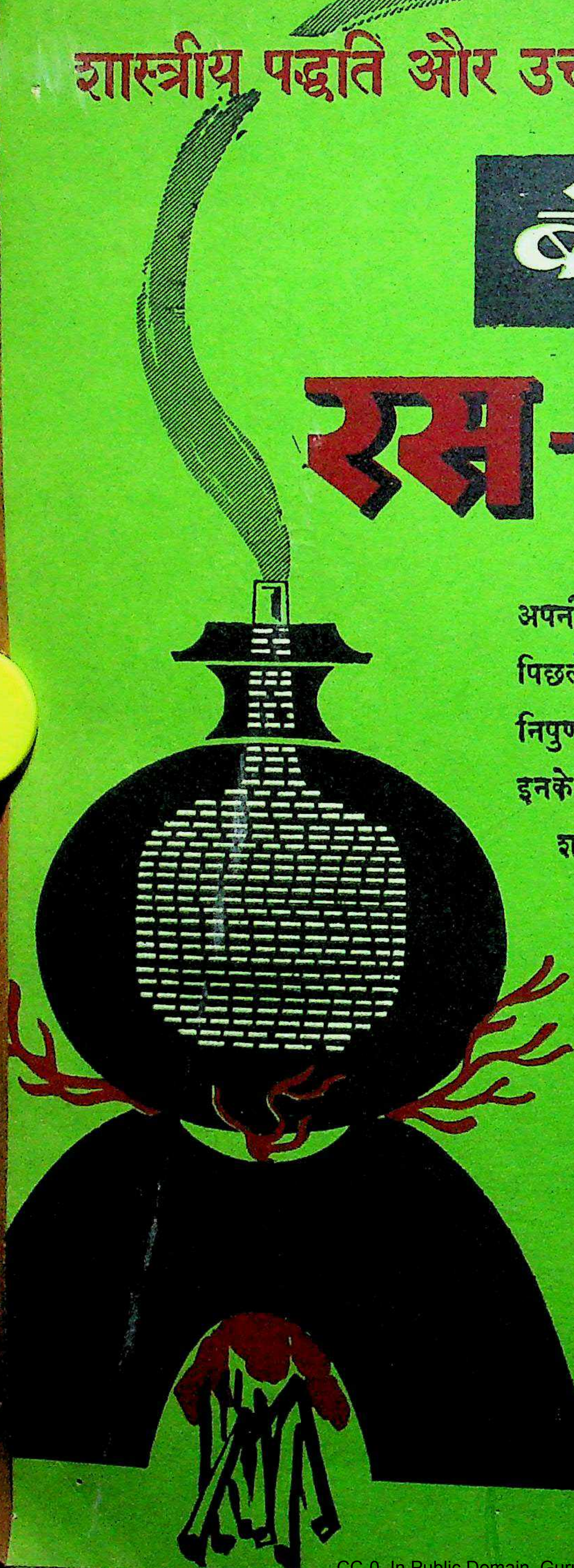

अपनी सर्वांगपूर्णता एवं सद्यः गुणकारिता के लिये
पिछले ४० वर्षों से सुप्रसिद्ध है। चिकित्सा-कार्य में
निपुण वैद्य-कविराज और आयुर्वेद प्रेमी जनता-दोनों
इनके उपयोग से लाभान्वित होते हैं। आप भी अपने
शरीर को स्वस्थ, सबल और नीरोग रखने के
लिये हमेशा इनका व्यवहार कीजिए।

**देशी दवाओं का सब से बड़ा**
**और विश्वासी कारखाना**

श्री **बैद्यनाथ**
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०

कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

# सचित्र आयुर्वेद

वर्ष ११ ] कलकत्ता, अप्रैल, १९५९ [ अंक १०

## राष्ट्र का आरोग्य—वैद्यों का कर्त्तव्य

चिकित्सकों को उपचार करने की अपेक्षा रोगों की रोकथाम को सर्वाधिक महत्त्व देना चाहिए। चिकित्सा-शास्त्र का मूलमंत्र यही है कि रोगों को उत्पन्न ही न होने दिया जाय। पंचवर्षीय योजनाओं में चिकित्सा-सेवाओं को प्राथमिकता प्राप्त हुई है और पिछले १० वर्षों में उनकी काफी प्रगति भी हुई है। ' तथापि सारे देश में चिकित्सा-सुविधाओं की माँग बराबर जारी है। इससे स्पष्ट है कि सामान्य स्वास्थ्य-सेवाएँ जनता की आवश्यकताओं के मुकाबले में पर्याप्त नहीं हैं। भारत का अधिकतम चिकित्सा-व्यवसाय अबतक निजी चिकित्सकों के हाथों में ही है, अत: चिकित्सकों पर राष्ट्रसेवा का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। चिकित्सकों का यह कर्तव्य है कि धन कमाने की भावना को वे कम महत्त्व दें और राष्ट्र को नीरोग बनाने की दिशा में अधिकाधिक सक्रिय हों।

**डा० राजेन्द्रप्रसाद**
राष्ट्रपति, भारत गणराज्य

प्रकाशक

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि
१, गुप्ता लेन, कलकत्ता-६

ताजे गुणकारी आँवलों से तैयार

परम पौष्टिक रसायन
सब समय, सबके लिए
सेवन-योग्य

बैद्यनाथ च्यवनप्राश
अष्टवर्गयुक्त

देशी दवाओं का सब से बड़ा और विश्वासी कारखाना

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि॰ कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर P91

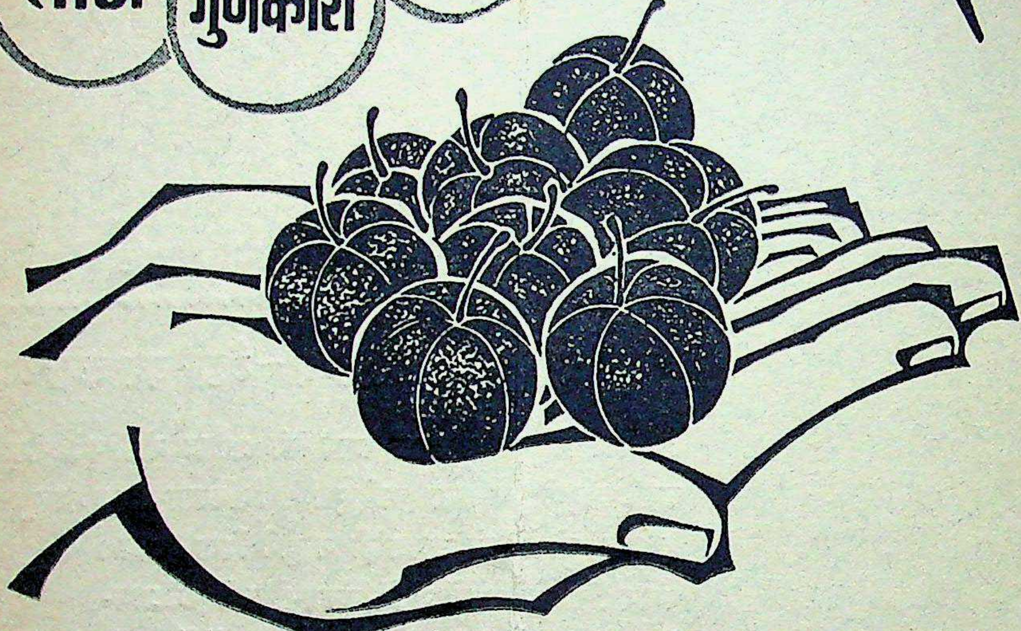

स्वास्थ्य और सुख की प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन

आरोग्य-प्रकाश

—प्रत्येक परिवार में रहना अत्यन्त आवश्यक है !

◆

भारत-प्रसिद्ध श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लिमिटेड के मैनेजिंग डायरेक्टर वैद्यराज पण्डित रामनारायण शर्मा ने अनेक वर्षों के परिश्रम से इस महान ग्रन्थ—**आरोग्य-प्रकाश**—को स्वयं लिखा है। इस ग्रन्थ का एक-एक वाक्य हजारों रुपयों का काम देता है। इसके पूर्वार्द्ध के व्यायाम, ब्रह्मचर्य, भोजन, दिन-रात्रि-ऋतुचर्या, सदाचार, उत्तम विचार आदि विषयों को पढ़कर श्रौर तदनुकूल आचरण कर सदा बीमार रहनेवाला व्यक्ति भी बिना दवा के ही नीरोग श्रौर तन्दुरुस्त हो जाता है।

इस ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में शरीर में पैदा होनेवाले सभी रोगों के कारण, निदान, रोग-लक्षण, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदि पर बड़ी ही सरल भाषा में सुन्दर ढंग से विवेचन किया गया है, जिनको पढ़कर विद्वान से लेकर साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति तक समान भाव से लाभ उठा सकते हैं। इसमें दवाश्रों के जो नुस्खे लिखे हैं, वे बहुत वर्षों के परीक्षित, कभी विफल नहीं होनेवाले श्रौर शास्त्रानुमोदित हैं। शहर हो या देहात, सब जगह इस पुस्तक के घर में रहने से रोगी को तत्काल लाभ पहुँचाया जा सकता है। श्रौषध तैयार करने का विधान तो इस पुस्तक में बहुत ही श्रेष्ठ है, क्योंकि लेखक इस विषय के निर्णयात्मक ज्ञाता हैं। इसके ११ संस्करणों में १,०८,००० प्रतियाँ छपकर बिक चुकी हैं श्रौर बारहवें संस्करण में २० हजार प्रतियाँ फिर छापी गयी हैं। इसी से इस ग्रन्थ की लोकप्रियता श्रौर उपयोगिता का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। हिन्दी में ऐसी पुस्तक दूसरी नहीं है, यदि यह कहा जाय तो अनुचित न होगा। प्रचार की दृष्टि से इस पुस्तक का मूल्य भी बहुत कम रखा गया है। ४६० पृष्ठों की विशाल पुस्तक का मूल्य मात्र रु० २·२५, डाक खर्च ०·८८।

**नोट :**—हमारे ४ निर्माण-केन्द्रों, २५० बिक्री-केन्द्रों तथा २५ हजार एजेन्सियों में से कहीं भी यह पुस्तक खरीदी जा सकती है। इससे डाक खर्च की बचत होगी।

प्रकाशक

श्री **बैद्यनाथ** आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०

१, गुप्ता लेन, कलकत्ता-६

आयुर्वेदीय औषधों के निर्माण, गुण-धर्म, उपयोग आदि पर

विशद विवेचनपूर्ण महान् ग्रन्थ

# आयुर्वेद सारसंग्रह

( तृतीय संस्करण )

सम्पूर्ण आयुर्वेद-शास्त्र का मंथन कर यह महान् ग्रन्थ--**आयुर्वेद सारसंग्रह**--अनेक वर्षों के घोर परिश्रम से तैयार किया गया है। इसमें रोगों के अवस्थानुसार औषधों का गुण-धर्म और प्रयोग तथा औषध-निर्माण, औषध-अनुपान, पथ्यापथ्य आदि का पूरा विवरण सरल भाषा में समझा कर लिखा गया है। आयुर्वेद के महर्षियों द्वारा अतिप्राचीन काल से जिन प्रसिद्ध योगों का प्रयोग होता आया है और जिन प्रयोगों का चिकित्सकों द्वारा सफल परीक्षण असंख्य बार कर लिया जा चुका है, ऐसे ही सफल प्रयोगों का संग्रह इस ग्रन्थ में किया गया है। इस ग्रन्थ में परिभाषा प्रकरण के अन्तर्गत औषध-निर्माण-परिभाषा, मान-परिभाषा, सांकेतिक परिभाषा, रासायनिक परिभाषा, यन्त्र-पुट-खरल-परिभाषा, औषध-प्रयोग-विधान, पथ्यापथ्य, पारद-गंधक-हिंगुल का विशद विवेचन; शोधन-मारण प्रकरण के अन्तर्गत धातुओं का शोधन, भस्म-निर्माण और उनका गुण-धर्म विवेचन; कूपीपक्व रसायन, रस-रसायन, गुटिका-बटी, पर्पटी, लौह मण्डूर, गुग्गुलु, अवलेह-पाक, चूर्ण, आसवारिष्ट, तैल, कषाय (क्वाथ), मलहम आदि प्रकरणों में विविध प्रकार की औषधियों की निर्माण-विधि, प्रयोग, गुण-धर्म, पथ्यापथ्य आदि सभी वैद्योपयोगी बातों का सविस्तर वर्णन किया गया है। इसके साथ ही रस-रसायन, अर्क आदि बनाने के यन्त्रों के चित्र भी दिए गये हैं, जिनसे औषधि-निर्माताओं को काफी सुविधा होगी। राष्ट्रभाषा हिन्दी में इस ढंग की यह एक ही पुस्तक है। इस पुस्तक की लोकप्रियता का सब से बड़ा प्रमाण यह है कि कुछ ही वर्षों में इसके तीन संस्करण निकल चुके हैं। सर्वसाधारण तथा चिकित्सकमात्र के लिए सर्वाधिक उपयोगी ११०० पृष्ठ के इस विशाल ग्रन्थ का मूल्य मात्र--७.०० रु० है।

प्रकाशक

श्री **बैद्यनाथ** आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०

१, गुप्ता लेन, कलकत्ता-६

# मोटापन कम करने के उपाय

लेखक

**श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी**

अत्यन्त स्थूल शरीर मानव जीवन के लिए एक अभिशाप ही है। अत्यधिक मोटे व्यक्ति किसी काम के नहीं रह जाते। उनमें स्फूर्ति नहीं रहती और वे किसी काम को तेजी से नहीं कर पाते हैं। मोटे शरीर वालों में बल की प्रायः कमी रहती है। मोटे व्यक्तियों को भूख, प्यास और नींद भी अधिक लगती है, उनकी आवाज भारी हो जाती है तथा मुख से स्पष्ट शब्दोच्चारण भी नहीं हो पाता। वायु-विकार तथा अन्य दोषों की भी उनमें वृद्धि हो जाती है। इससे मोटे व्यक्तियों की आयु भी क्रमशः घटती रहती है। प्रमेह, मधुमेह, भगन्दर, केन्सर, विद्रधि आदि रोग भी मोटे व्यक्तियों को ही अधिकतर होते हैं। कृश व्यक्ति को मोटा-ताजा बनाना तो आसान है, किन्तु स्थूल व्यक्तियों को कृश बनाने में बड़ी दिक्कत होती है। श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी ने मानवजीवन के अभिशाप——मोटापन को दूर कर स्वस्थ, सबल बने रहने के उपायों पर इस पुस्तक में सुन्दर ढंग से प्रकाश डाला है। मोटापा के दोष से जिसको अपना जीवन भार-स्वरूप लग रहा हो, उनको इस पुस्तक से आशा की नयी रश्मि दिखायी देगी। ब्रह्मचारी जी की लेखनशैली अत्यन्त सरल और सुबोध है। अतएव, यह पुस्तक सभी लोगों को पसन्द आयेगी। इतनी उपयोगी पुस्तक का मूल्य भी प्रचार की दृष्टि से बहुत कम, अर्थात्——सजिल्द का मूल्य २) और अजिल्द का १·५० है।

प्रकाशक

श्री **बैद्यनाथ** आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०

१, गुप्ता लेन, कलकत्ता —६ —

सम्पादक—कामेश्वर शर्मा 'कमल'

# विषय-सूची

| विषय | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|
| सम्पादकीय | | ८३१ |
| अब क्या कीजिएगा ? | श्री द्वारिकेश मिश्र | ८३४ |
| सूतिका का स्वास्थ्य | वैद्य रणजित राय | ८३९ |
| आयुर्वेद की निदान सम्बन्धी निपुणता | डा० पी० एम० मेहता | ८४५ |
| सिद्धौषधि-पाठ विनिश्चय | वैद्य विन्दुमाधव पण्डित | ८४९ |
| आतुर परीक्षानुष्ठान | आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी | ८५५ |
| रास्ना | आचार्य बापालाल भाई | ८६३ |
| राष्ट्रीय स्वास्थ्य की समस्या | डा० ए० लक्ष्मीपति | ८७१ |
| वैज्ञानिक नरक यात्रा | श्री विश्वामित्र वर्मा | ८७४ |
| आयुर्वेदानुसन्धान की रूपरेखा | आचार्य सुदेवचन्द्र पाराशरी | ८७७ |
| नरगिस | वैद्य उदयलाल महात्मा | ८७९ |
| दीर्घायु बनानेवाली भारतीय वनस्पति | वैद्य हरिश्चन्द्र सत्यवादी | ८८० |
| जैसे सर्पनाथ वैसे नागनाथ | श्री सत्यदेव विद्यालंकार | ८८१ |
| चेचक—कारण और निवारण | श्रीमती शान्ति अग्रवाल | ८८५ |
| बम्बई आयुर्वेदानुसंधान समिति के कार्य | | ८८७ |
| आयुर्वेद-जगत् | | ९०० |

वार्षिक मूल्य ५)  आयुर्वेद-यूनानी समन्वयांक २) रुपये  एक प्रति ५० नये पैसे

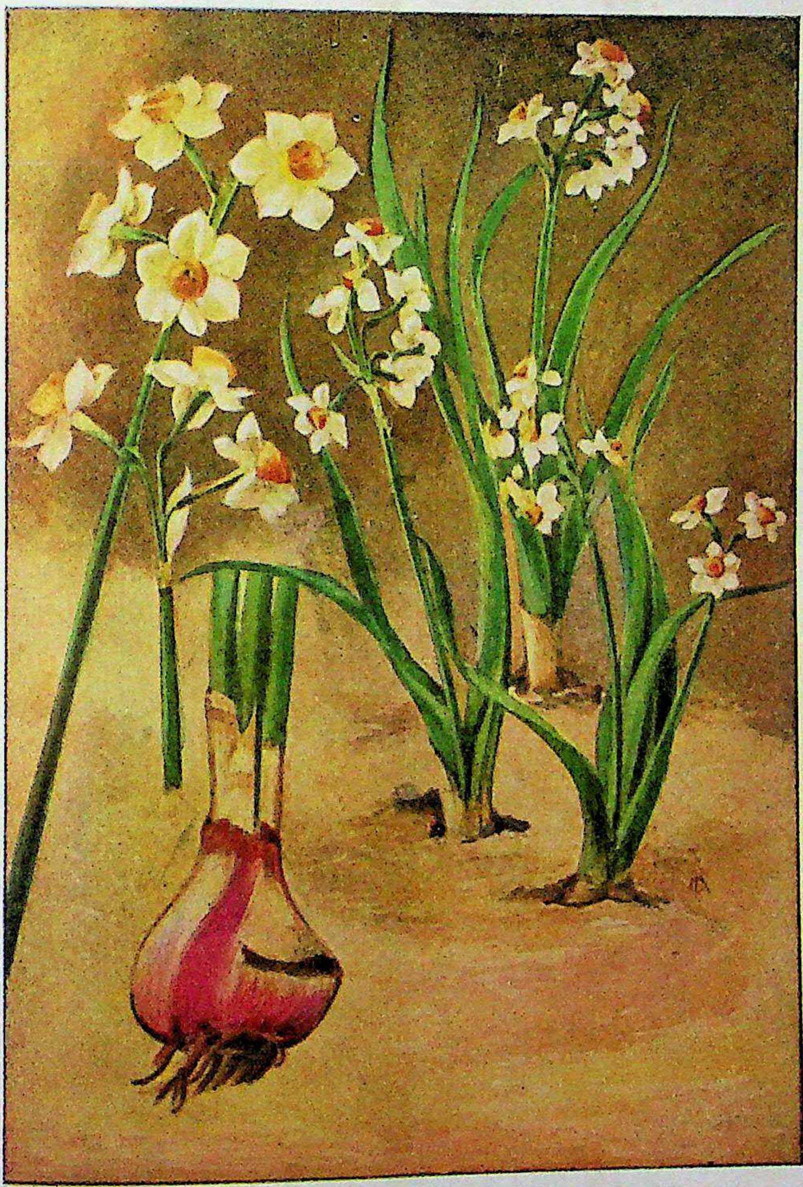

नरगिस का पौदा, प्याज नरगिस

आयुर्वेद-जगत् में सर्वजन-समादृत और सर्वाधिक बिक्री होनेवाला आयुर्वेद-विज्ञान का प्रमुख मासिक पत्र

श्री धन्वन्तरये नमः

# सचित्र आयुर्वेद

आयुःकामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् । आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥

वर्ष ११ | कलकत्ता, अप्रैल, १९५९ | अंक १०

सम्पादकीय

## संयुक्त मोर्चा बनाइए !

केन्द्रीय सरकार के १७ जनवरी '५९ के असाधारण गजट में प्रकाशित एक विज्ञप्ति द्वारा यह व्यक्त किया गया है कि ड्रग्स रूल्स १९४५ में निर्दिष्ट 'मेडिकल प्रैक्टिशनर' शब्द की परिभाषा को इस प्रकार बदल दिया जाय कि केवल एलोपैथिक डाक्टर, डेन्टिस्ट और वेटरनरी सर्जन ही मेडिकल प्रैक्टिशनर माने जावें और वैद्य-हकीम या इतर देशी चिकित्सा-पद्धति के माध्यम से चिकित्सा करने वाले व्यक्ति 'मेडिकल प्रैक्टिशनर' न माने जावें। फलतः वैद्य-हकीम उन रहे-सहे अधिकारों से भी वंचित हो जावें, जो उन्हें चिकित्सा-कार्य में अबतक मिले हुए हैं।

निश्चय ही सरकार का यह कदम, वैद्य-हकीमों के लिए, न केवल अपमानजनक है, प्रत्युत अत्यन्त घातक है। सरकार के इस निश्चय से वैद्य-हकीम उन दवाओं का प्रयोग नहीं कर सकेंगे जिनको ब्रिटिश फार्माकोपिया या इण्डियन फार्माकोपिया प्रभृति एलोपैथी औषध-संहिताओं में सम्मिलित कर लिया गया है। विचित्र बात है कि एक ओर तो सैकड़ों देशी दवाओं को, नाम बदलकर एलोपैथी-औषध-संहिताओं में मिला लिया गया है और मिलाया जा रहा है, और दूसरी ओर सरकार 'मेडिकल प्रैक्टिशनर' की परिभाषा परिवर्तित करके और वैद्य-हकीमों को उससे अलग करके उनके अधिकारों का हनन कर रही है। सरकार के इस नये कदम से वैद्य-हकीम न केवल विदेशी एलोपैथी औषधों के उपयोग से वंचित हो जायेंगे, प्रत्युत नियमानुसार उन औषधों का प्रयोग भी उनके लिए कठिन हो जायगा, जो मूलतः तो भारतीय हैं, परन्तु नाम बदल कर जिन्हें एलोपैथी औषधों में सम्मिलित कर लिया गया है। यह अत्यधिक चिन्तनीय स्थिति है। सैकड़ों देशी औषधों के एलोपैथी औषध-संहिता में आ जाने और उन पर ड्रग्स एक्ट की पाबन्दियाँ लग जाने के कारण अभी भी वैद्य-हकीम एवं देशी औषध-निर्माता, सरकार के स्वास्थ्य विभागीय इन्स्पेक्टरों से त्रस्त

रहते हैं, और आये दिन मुकदमे खड़े होते हैं; इस नये परिवर्तन से वैद्य-हकीम कितनी अधिक कठिनाई में पड़ जावेंगे, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

सरकार के इस निर्णय का औचित्य किसी भी दृष्टि से सिद्ध नहीं हो सकता। सामान्य सिद्धान्त तो यह है कि रोगी को रोग से बचाने के लिए, चिकित्सक पर किसी औषध के प्रयोग पर पाबन्दी नहीं होनी चाहिए, चाहे वह चिकित्सक किसी पद्धति का हो या औषध किसी पद्धति की हो। वैद्य-हकीम, यदि परिस्थितिवश और आवश्यकता पड़ने पर किसी एलोपैथी दवा को उपयोग में लाकर रोगी को रोग-निवृत्त करते हैं, तो वह अनुचित या अनियमित कैसे कहा जा सकता है! इसी प्रकार डाक्टर यदि आयुर्वेद-यूनानी औषधों को उपयोग में लाते हैं तो हम उसको अनुचित नहीं मानते। फिर सरकार ने अपने किसी नियम द्वारा आजतक डाक्टरों पर तो देशी औषध प्रयोग करने पर कोई प्रतिबंध लगाया नहीं, तो फिर वैद्य-हकीमों ने ही क्या अपराध किया है?

पिछले कई वर्षों से देश भर में प्रादेशिक सरकारों द्वारा आयुर्वेद-यूनानी का जो पाठ्यक्रम चलाया जा रहा है, उसमें छात्रों को एलोपैथी अधिक पढ़ाई गयी है और देशी चिकित्सा के विषय कम। इस कारण देश में हजारों ऐसे चिकित्सकों का निर्माण हो चुका है, जो मिश्रित प्रणाली पर चिकित्सा-कार्य कर रहे हैं। उनको केवल आयुर्वेद यूनानी पर आधारित ज्ञान उचित रूप में दिया नहीं गया। फलतः वे केवल आयुर्वेद-यूनानी की औषधों का प्रयोग करके अपना काम नहीं चला सकते। केन्द्रीय सरकार के इस नये कदम से उन हजारों चिकित्सकों की स्थिति कितनी विषम हो जाती है, यह बात गंभीरतापूर्वक विचारणीय है। आयुर्वेद-यूनानी की अधिकतर महत्वपूर्ण औषधों को एलोपैथी में नाम बदल कर ले लिया गया, उनको और अन्य एलोपैथी औषधों के उपयोग को जब कानूनी प्रतिबन्ध लगाकर वैद्य-हकीमों के लिए दुरूह कर दिया जायगा, तो, शनैः शनैः वैद्य-हकीमों की समाप्ति ही इसका परिणाम होगी।

जो सरकार देशी चिकित्सा-पद्धतियों के विकास में मौखिक रुचि दिखाती है, वह व्यवहार में इस दिशा में कितना विपरीत जा रही है—सरकार का उक्त निश्चय इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है। विभिन्न कानून बनाकर आसव-अरिष्टों को मद्य बना दिया गया, दवाओं के शास्त्रोक्त गुणों के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। मादक-द्रव्यों पर बन्धन लगाकर अफीम, कुचला, भांग, संखिया इत्यादि औषधोपयोगी द्रव्य वैद्य-हकीमों के लिए प्रायः अप्राप्य कर दिये गए। अनुसन्धान के नाम पर प्रमुख देशी औषधों को चुन-चुन कर एलोपैथी बना दिया गया। डाक्टर और वैद्य-हकीम के अधिकारों में आकाश-पाताल का अन्तर कर दिया गया और इस नये निश्चय से तो देशी चिकित्सक का जीवन ही समाप्त करने का दुष्प्रयत्न किया गया——इतने पर भी कैसे यह विश्वास हो कि हमारी सरकार वास्तव में देशी चिकित्सा-पद्धतियों के प्रति यथार्थ सहानुभूति रखती है? यह प्रश्न प्रत्येक वैद्य-हकीम के हृदय में उठना स्वाभाविक है। और सरकार के पास इसका कोई उचित समाधानकारक उत्तर नहीं है।

प्रश्न है कि यह सब क्यों हो रहा है और देशी चिकित्सा-पद्धति तथा वैद्य-हकीमों के विषय में सरकार के वचन और कर्म में भिन्नता क्यों है? सीधी-सी बात तो एक यही समझ में आती है कि देशी चिकित्साओं के विरोधी संगठित और सुगठित होकर अपना हर कार्य कर रहे हैं। वे सशक्त होकर सरकार को ऐसे मार्ग सुझाने और उन पर अमल कराने में समर्थ हो रहे हैं, जिनसे क्रमशः देशी चिकित्सा-पद्धतियों का ह्रास होता रहे। उसका ही यह परिणाम है कि व्यवस्थित विरोधियों के प्रभाव में आकर सरकार ऐसे कार्य कर रही है। दूसरी ओर देशी चिकित्सा-पद्धति पर जीने वालों की दशा हर दृष्टि से दयनीय है। उनमें जागरूकता नहीं। अपनी जीवन-रक्षा के नाम पर भी एक हो जाने की प्रेरणा नहीं। कठोर संकट काल में भी व्यक्तिगत महत्व, स्वार्थ और विद्वेष को त्यागने का साहस नहीं। संगठित होकर सक्रिय कार्य करने की लगन नहीं, इसका ही यह परिणाम है कि देशी चिकित्सक निरन्तर हीन स्थिति में आते जा रहे हैं और हजारों वर्ष पुरानी भारतीय चिकित्सा-पद्धतियाँ धूलि-धूसरित होती जा रही हैं।

हमें दुःख है और लज्जा भी है कि वैद्यों की अखिल भारतीय संस्था आयुर्वेद महासम्मेलन के कर्णधारों ने तो इस दिशा में कोई कदम उठाने में तत्परता नहीं दिखाई, परन्तु आल इण्डिया यूनानी-तिब्बी कान्फ्रेन्स के प्रधान मंत्री, हकीम श्री बी० एन० शर्मा ने एक वक्तव्य द्वारा सरकार के इस अनुचित निश्चय के प्रति एक आन्दोलन का श्रीगणेश किया है और वैद्यों तथा हकीमों से मार्मिक शब्दों में यह

पील की है कि वे मिल-जुल कर इस संकट का मुकाबला रें। हम श्री शर्मा की इस अपील का समर्थन ही नहीं, र्दिक स्वागत भी करते हैं। निश्चय ही देशी चिकित्सा-द्धति या उन पर आश्रित लोगों पर जो भी प्रहार किया ाता है उससे वैद्य और हकीम समान रूप से प्रभावित ते हैं।

अनेक वर्षों से हम आयुर्वेद-यूनानी के समन्वय के क्षपाती रहे हैं। 'सचित्र आयुर्वेद' के समन्वयांक द्वारा म वैद्य-हकीम समाज के समक्ष वह भूमिका प्रस्तुत कर के हैं, जिसके आधार पर आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्सा-द्धतियों में समन्वय स्थापित करके एक ऐसी भारतीय चिकित्सा पद्धति का स्वरूप निर्धारित किया जा सकता है, जो सर्वमान्य होकर भारत की राष्ट्रीय चिकित्सा-पद्धति का गौरव प्राप्त कर सकती है। वैद्य एवं हकीम समुदाय को इस प्रश्न पर बहुत गंभीरता एवं सचेष्ट होकर विचार रना चाहिए—ऐसा सर्वथा उपयुक्त अवसर अब उपस्थित है।

सरकार विभिन्न कानूनों, नियमों और संशोधनों द्वारा शी चिकित्सा-पद्धतियों पर जो कठोर प्रहार कर रही है, उनका प्रतिकार संगठित शक्ति से ही किया जा सकता है। देशी चिकित्सा-पद्धतियों के प्रति सरकार की उपेक्षा-र्ण और दमनकारक नीति से लोहा लेने के लिए यह एकमात्र उपाय है कि वैद्य और हकीम मिलकर संयुक्त मोर्चा बनावें और अपने अधिकारों की रक्षा के लिए जमकर संघर्ष करें।

हमारा सुझाव है कि यथासंभव शीघ्र ही अ० भा० आयुर्वेद-महासम्मेलन एवं ऑल इण्डिया यूनानी-तिब्बी कान्फ्रेंस—परस्पर मिलकर एक संयुक्त संघर्ष-समिति का ठन करें और आयुर्वेद-यूनानी पद्धतियों तथा वैद्य-हकीमों सम्बन्धित सभी प्रश्नों को लेकर एक व्यापक आन्दोलन का श्रीगणेश करें। सरकार के दमन, उपेक्षा या अनुचित कानूनों का प्रतिकार तथा देशी चिकित्सकों के अधिकारों की सुरक्षा और देशी चिकित्सा-पद्धतियों के विकास के कार्य—कभी भी व्यक्तिगत प्रयत्नों से सफल नहीं हो सकते। इसके लिए संगठित प्रयत्न नितांत आवश्यक ह और वैद्य एवं हकीमों के अखिल भारतीय संगठनों का यह दायित्व है कि वे इस संकट की स्थिति में मिलकर अपनी शक्ति को दो गुना करके सक्रिय प्रयास करें।

केवल वैद्य-हकीम या इनकी संस्थाएं ही अपनी रक्षा के लिए उपक्रम करें—इतने से काम नहीं चलने का। हम बार-बार इस ओर संकेत करते आ रहे हैं कि देशी चिकित्सा-पद्धतियों के लिए सरकार पर प्रभावपूर्ण दबाव डालने के निमित्त जनमत जाग्रत करना वांछनीय है और वही एकमात्र उचित, सफलताप्रद एवं सुगम मार्ग है, जिसके द्वारा हम यथार्थ लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते हैं। हमारे लिए एक सर्वथा उचित प्रश्न पर जनता की सच्ची सहानुभूति एवं प्रबल समर्थन प्राप्त कर लेना कठिन नहीं है। देश की बहुसंख्यक जनता से हमारा सीधा और गहरा सम्बन्ध है। हम ८५ प्रतिशत जनता के स्वास्थ्य की रक्षा करते हैं, फिर कोई कारण नहीं कि हमें उस ८५ प्रतिशत जनता का सहयोग न प्राप्त हो सके। आवश्यकता केवल सक्रिय प्रयत्न करने की है। और वह भी यदि हम इस सर्वथा अनुकूल एवं वांछनीय समय पर न कर सके तो हमारा यह प्रमाद निश्चित रूप से आत्मघाती सिद्ध होगा।

दुर्भाग्यवश देशी चिकित्सकों की संस्थाएं या तो कुछ व्यक्तियों का साधन बनी हुई हैं या फिर निष्क्रिय हैं। ऐसी दशा में यदि इन संस्थाओं में जीवन नहीं लाया जा सकता या संस्थाओं के माध्यम से कुछ यथार्थ कार्य नहीं किया जा सकता तो भी आयुर्वेद एवं यूनानी के प्रति वास्तविक अनुराग रखने वाले वैद्य और हकीमों का यह धर्म है कि वे इस संकट की स्थिति में आगे बढ़ कर मैदान में आवें। आयुर्वेद एवं यूनानी क्षेत्र के चुने हुए विद्वान मिलकर ही एक संघर्ष-समिति का निर्माण कर लें और कम से कम सरकार के वर्तमान रवैया को ठीक करने के लिए जनता को साथ लेकर एक प्रभावपूर्ण आन्दोलन आरम्भ करें। निश्चित है कि प्रबल जनमत के सामने सरकार को झुकना ही होगा और उसे वह अनुचित नीति त्यागनी होगी जिससे वैद्य-हकीमों की स्थिति निरन्तर संकट में पड़ती जा रही है।

क्या हम आशा करें कि वैद्य-हकीमों की अखिल भारतीय संस्थाओं के कर्णधार या प्रमुख वैद्य-हकीम इस कठिन समय में सद्बुद्धि से काम लेकर उचित मार्ग का अवलम्बन करेंगे?

---

# अब क्या कीजिएगा ?

**श्री द्वारिकेश मिश्र**

गत कुछ दिनों में आयुर्वेद महासम्मेलन-क्षेत्र में कुछ ऐसा नाटकीय एवं विचित्र घटनाक्रम घटित हुआ है, जिसके कारण प्रत्येक आयुर्वेद-हितैषी सद्वैद्य को मार्मिक वेदना तो हुई ही है; महासम्मेलन-सदस्यों जो विशाल बहुमत, यह हार्दिक आकांक्षा रखता है कि आयुर्वेद के लिए प्रस्तुत संकट-पूर्ण वर्तमान में वैद्य-समाज के जीवन एवं अधिकारों की सुरक्षा के हेतु संगठित शक्ति से कुछ प्रभावपूर्ण और यथार्थ रचनात्मक कार्य किये जावें—उसके सामने एक विचारणीय समस्या खड़ी हो गयी है कि प्रस्तुत परिस्थितियों में वह क्या करे?

सुधारवादी एवं प्रगतिशील विचार के दूरदर्शी सहयोगियों ने आयुर्वेद एवं वैद्य समाज के वास्तविक हित के लिए तात्कालिक दो ही विचार सामने रखे थे। पहला था दिल्ली में विद्यापीठ का आदर्श आयुर्वेद महाविद्यालय स्थापित करके सरकार और अधिकारियों को यह प्रत्यक्ष दिखाना कि आयुर्वेद के विकास के निमित्त उसका शिक्षण तन्त्र कैसा होना चाहिए, जिससे सरकार उससे प्रभावित होकर और प्रेरणा लेकर देश भर में एक सुदृढ़ आयुर्वेद शिक्षण-व्यवस्था का परिचालन कर सके, और हमारी विद्यापीठ सार्थक बन सके, साथ ही सर्वत्र उसके स्नातकों को मान्यता एवं सम्मान प्राप्त हो सके।

दूसरा विचार था, भारत की केन्द्रीय राजधानी दिल्ली में ही महासम्मेलन का ज़ोरदार अधिवेशन करके केन्द्रीय सरकार के मंत्रियों, नेताओं, संसद सदस्यों एवं राज्याधिकारियों को वैद्य-समाज की शक्ति एवं संगठन से प्रभावित करके आयुर्वेद पक्ष में यथार्थ दिशा में अनुकूल बनाना। अधिवेशन पर एकत्र विद्वान-वैद्यों के सहयोग से आयुर्वेद के स्वरूप, अनुसन्धान की दिशा एवं प्रकार और पाठचक्रम इत्यादि विवादग्रस्त समस्याओं का एकमत और अधिकारपूर्ण निर्णय करके ऐसी स्थिति का निर्माण करना जिससे सरकार का स्वास्थ्य विभाग आगे यह बहाना न ले सके कि आयुर्वेद के विषय में आयुर्वेदज्ञ ही एकमत नहीं हैं। सरकार के समक्ष आयुर्वेद विकास की ऐसी क्रियात्मक योजनायें प्रस्तुत करना, जिनसे वैद्यों का सार्वभौमिक हित हो और जिनके अभाव में आयुर्वेद के लिए सरकार का द्रव्य और चेष्टायें प्रायः निरर्थक दिशा में जा रही हैं। इन उद्देश्यों के साथ ही दिल्ली में अधिवेशन करने का एक यह भी लक्ष्य था कि वैद्य-समाज में व्याप्त छोटे-बड़े सभी व्यक्तिगत एवं सामूहिक विवादों का समाधान करके सौजन्यपूर्ण वातावरण बनाना और संस्था का संस्कार करके वैद्यों को अधिक व्यापक क्षेत्र में संगठित करना! यह लक्ष्य अपने आप में माङ्गलिक थे!

परन्तु, इधर महासम्मेलन क्षेत्र में जो कुछ हुआ और हो रहा है, उससे सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि हमारे ही कुछ भाइयों का एक छोटा सा गुट, न तो विद्यापीठ के आदर्श महाविद्यालय की योजना को सफल होने देना चाहता है और न ही यह चाहता है कि महासम्मेलन का अधिवेशन व्यापक रूप से दिल्ली में सम्पन्न हो सके! यद्यपि इन दोनों ही कार्यों में आयुर्वेद एवं वैद्य समाज का सार्वभौमिक हित यथार्थ रूप में निहित है—इस तथ्य से कोई भी विवेकशील वैद्य इन्कार नहीं करेगा। फिर भी यह बात गंभीरतापूर्वक विचारणीय है कि हमारे कुछ भाई, जो संस्था के रक्षक और वैद्य-समाज के हित-साधक होने का प्रचण्ड दावा करते हैं; आखिर क्यों महाविद्यालय तथा दिल्ली अधिवेशन को पसन्द नहीं करते? और क्यों गति अवरोध उत्पन्न करने के लिए ऐसे निम्न स्तर के आचरणों पर तक उतर आते हैं, जिन्हें प्रत्येक आयुर्वेद-हितैषी वैद्य नितान्त लज्जास्पद एवं कायरतापूर्ण ही कहेगा!

नवम्बर '५७ में जब दिल्ली की स्थायी समिति में विद्यापीठ-महाविद्यालय का स्थापन एवं दिल्ली में अधिवेशन करना स्वीकार किया गया, तभी भाई शिवशर्मा जी और उनके कुछ साथियों ने इन दोनों बातों का विरोध किया था। उनके कुछ समर्थकों ने दिल्ली में अधिवेशन के निश्चय पर रिफरेण्डम की कार्यवाही करने तक की धमकी दी थी। विद्यापीठाध्यक्ष-निर्वाचन के समय भाई

शिवशर्मा जी ने अपने परिपत्रों में विद्यापीठ-महाविद्यालय का स्पष्ट और तीव्र विरोध किया ही था—परन्तु कोई भी विचारशील व्यक्ति यह कल्पना नहीं कर सकता कि किसी का विरोध सामान्य व्यवहार की सीमाओं को भी लांघ सकता है। संस्थाओं में किसी प्रश्न पर परस्पर मत-विभिन्नता होना तो कोई असाधारण बात नहीं। ऐसा होता ही है। प्रत्येक सदस्य अपने स्वतंत्र विचार-प्रकाशन का अधिकारी होता है; परन्तु उसकी कोई सीमा होती है। लोकतन्त्रीय पद्धति तो ऐसी है कि किसी समुदाय में यदि हमें कोई बात पसन्द नहीं और बहुमत उसको ही चाहता है, तो हमें बहुमत का आदर करके, उसके निर्णय के साथ सहयोग करना चाहिए, विशेष कर जब कि बहुमत का निश्चय सार्वभौमिक हित का हो! यदि हम सहयोग न कर सकें तो दूसरा तरीका सभ्यता का यह होता है कि हम अपने को विरक्त रखें और सार्वजनिक हित के कामों में, कम से कम वाधक न बनें! परन्तु हमारे भाइयों ने सामान्य शिष्टाचार के इस तरीके को भी न अपनाया! यह स्थिति आश्चर्यजनक और अत्यन्त खेदपूर्ण है!

संस्था के सदस्यों में किन्हीं प्रश्नों पर मतभेद हों, तो भी, संस्था के पदाधिकारियों एवं कार्यालय को सर्वथा निष्पक्ष रहना चाहिए और संस्था के हित में हर क्रियात्मक योजना को लगन के साथ आगे बढ़ाना चाहिए—ऐसा लोक-व्यवहार का नियम है। संस्था के पदाधिकारियों और कार्यालय का नैतिक धर्म तो यह होता है कि हर संभव प्रयत्न करके सदस्यों में व्याप्त मतभेदों को शान्त करे और सौम्य वातावरण का निर्माण कर संस्था को दृढ़ बनावे, परन्तु संयोग से कहिये या दुर्भाग्य से हमारे आयुर्वेद महासम्मेलन का कार्यालय और कुछ पदाधिकारी—दोनों ही—न केवल एकपक्षीय हैं, प्रत्युत वे ऐसी रीति-नीति पर चल रहे हैं, जिससे पारस्परिक झगड़े बढ़ते रहें, गत्यवरोध बना रहे और देखने में ऐसा प्रतीत होता रहे कि वैद्य-समाज में बहुत विवाद हैं।

विद्यापीठ-महाविद्यालय और अधिवेशन—दोनों ही निश्चय पूरे डेढ़ वर्ष पहले प्रबल बहुमत द्वारा स्वीकार हुए थे। इन दोनों पर कार्यालय और कुछ पदाधिकारियों की कारगुजारियां मनन करने योग्य हैं। जहां तक विद्यापीठ-महाविद्यालय का प्रश्न है, वह दिल्ली के कुछ कर्मठ वैद्यों के उद्योग से जैसे-तैसे स्थापित हो गया है; परन्तु निश्चय ही उसमें कार्यालय ने किंचित सुरुचि से काम नहीं लिया। आरंभ से ही विद्यालय-योजना को पदाधिकारियों ने उप-समितियों के लम्बे झमेले में डाल दिया। केवल विद्यालय-प्रबन्ध की रूपरेखा-स्वीकृति के लिए स्थायी समिति की बैठक दो-दो बार कलकत्ते में बुलाकर सदस्यों का अपव्यय तो कराया ही, संस्था के कोष से पदाधिकारियों के मार्ग-व्यय पर डेढ़ हजार से ऊपर रुपया व्यय कर दिया! जिन्हें वास्तव में कोई काम करना होता है, वे काम पर लक्ष्य रख कर सुगम पद्धति अपनाते हैं और तड़ाक-फड़ाक अपना काम कर डालते हैं। कार्यालय और पदाधिकारी यदि ईमानदारी से विद्यापीठ-महाविद्यालय में सुरुचि रखते थे तो उसके सम्बन्ध में प्रबन्ध-व्यवस्था, समिति, नियम, बजट इत्यादि जो भी बातें विधानतः स्थायी समिति से स्वीकृत कराने की होतीं—उन सबको एक साथ एक ही बार में दिल्ली या अन्य किसी ऐसे स्थान पर, जहां सुविधा से कोरम पूरा हो जाय—बैठक बुलाकर कर सकते थे—उससे कार्य शीघ्र होता और संस्था का पैसा बचता—परन्तु स्पष्ट है कि वैसा नहीं किया गया और विद्यालय प्रबन्धक समिति की नियमावली अब तक विचारार्थ पड़ी है! संस्था का जो डेढ़ हजार रुपया पदाधिकारियों के मार्ग-व्यय में उदारता के साथ व्यय कर दिया गया—वही यदि विद्यालय में लगाया जाता तो कितना हितकर होता? दूसरी ओर विधानतः जब कि विद्यापीठ का सम्पूर्ण संचित कोष महाविद्यालय-योजना में लगा दिया जाना चाहिए, और जब कि इतर वैद्य व्यक्तिगत रूप से कई हजार रुपया इस योजना में देने को प्रस्तुत हैं—महासम्मेलन, जिसका वस्तुतः यह उत्तरदायित्व है, उससे केवल पांच हजार रुपया महाविद्यालय के लिए दिया गया! आज तक महासम्मेलन-कार्यालय या पदाधिकारियों ने विद्यापीठ-महाविद्यालय के व्यवस्थित संचालनार्थ वैद्य समाज से द्रव्य एवं सहयोग जुटाने का, न तो कोई उपक्रम किया, न कोई समिति बनाई, न कोई अपील प्रकाशित की! जो लोग पूर्व काल में विद्यालय के हेतु सहयोग देने को प्रस्तुत रहे, उनसे भी कार्यालय ने आज तक सहायता प्राप्त करने का कोई प्रयास नहीं किया। इसके विपरीत, ऐसा पता चला है कि महासम्मेलन के एक वेतनभोगी कर्मचारी ने, न केवल महाविद्यालय को सहायता देने वालों की उपेक्षा की, प्रत्युत उन्हें भड़काया भी! यहां तक कि विद्यापीठ महाविद्यालय के निमित्त दिल्ली की जो एक संस्था अपनी

भूमि और भवन आग्रहपूर्वक देने को प्रस्तुत थी, उसको ऐसा उलझा कर संदेहग्रस्त कर दिया गया कि महाविद्यालय के लिए वह भूमि और भवन न मिल सके और महाविद्यालय एक मँहगे किराये के स्थान में स्थापित करना पड़ा। हांडी के इन एक-दो चावलों से सहज ही यह अनुमान किया जा सकता है कि विद्यापीठ-महाविद्यालय की सफलता के लिए हमारे कुछ उत्तरदायी लोग यथार्थ रुचि किस सीमा तक रखते हैं? विचारने की बात है कि वह कार्य कहाँ तक सफल और सार्थक हो सकता है, जिसके यथार्थ उत्तरदायी कार्यकर्ता, स्वयं ही उसमें रुचि न रखें, उल्टे अड़ंगे लगावें? वास्तविक क्रियात्मक कार्य चाहने वालों का उदार सहयोग कहां तक सदुपयोगी हो सकता है, जबकि देने वाले आगे बढ़ते हों और लेने वाले उन्हें दुतकारते हों? ऐसी दुर्नीति की ग्रहदशा में हमारी विद्यापीठ-महाविद्यालय-योजना पड़ी है। यद्यपि कहने को दिल्ली के वैद्यों के सदुद्योग से महाविद्यालय स्थापित हो गया है——परन्तु अभी उसकी स्थिति लक्ष्यपूरक नहीं है और उसके लिए उत्तरदायी महानुभावों की गतिविधि सर्वांश ऐसी प्रतीत होती है कि वे यह दिखाने का बहाना तलाश कर रहे हैं कि विद्यापीठ का महाविद्यालय चलाना शक्य नहीं!

इसी प्रकार दिल्ली अधिवेशन के प्रसंग को लीजिए। इसका निश्चय भी डेढ़ वर्ष पूर्व किया गया था। उस स्थायी समिति में उपस्थित भाई शिवशर्मा जी और उनके प्रायः ग्यारह साथी दिल्ली में अधिवेशन करने के विरोधी अवश्य थे, परन्तु सवा सौ सदस्यों की उपस्थिति में शेष सब की सम्मति पक्ष में थी और दिल्ली में अधिवेशन करना प्रबल बहुमत से निश्चित हुआ था। सामान्य नैतिकता का तकाजा था कि हमारे पदाधिकारी, कार्यालय और वे लोग भी——जिन्होंने दिल्ली में अधिवेशन करने का विरोध किया था——सब मिलकर पूरी ईमानदारी के साथ सहयोग करते और ऐसी स्थिति का निर्माण करते कि अधिवेशन सर्वथा सफल हो, क्योंकि वैसा बहुमत का निश्चय था; किसी एक व्यक्ति के इच्छा-संकल्पों पर आधारित नहीं था! परन्तु यह निश्चय ही दुःखद और दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस प्रसंग में भी विरोध करने वाले अल्पसंख्यक गुट ने, न केवल अरुचि दिखाई, प्रत्युत भांति-भांति की कुचक्रपूर्ण अड़ंगेबाजी की। यह एक विचित्र स्थिति है कि कुछ लोकेषणाप्रिय व्यक्ति ऐसी अनीतियों के मार्ग पर चल रहे हैं, जिसमें संस्था निरन्तर विघटन और सर्वनाश की ओर बढ़ती जा रही है। चन्द लोगों का गठबन्धन संस्था के विशाल जनमत और लाखों वैद्यों को किस प्रकार निरुपाय बना रहा है——परिस्थितियों की यह देन कुतूहलपूर्ण है! अधिवेशन दिल्ली में करना बहुमत से निश्चित हुआ, तभी से विशाल वैद्य समुदाय तो इस उद्योग में लग गया कि हमारा यह अधिवेशन अद्वितीय रूप से सफल एवं ऐतिहासिक हो——और उन थोड़े से व्यक्तियों का गुट, बम्बई से दिल्ली तक के कुलाबे मिलाकर-इस प्रयास में संलग्न हो गया कि, यह अधिवेशन पहले तो हो ही न पाय——और यदि हो ही जावे तो ऐसी विचित्र स्थिति में हो कि सारा उद्योग ही निष्प्रभाव हो जाय! कमाल तो यह है कि थोड़े से व्यक्तियों का गुट अधिकार तंत्र और संस्था की बागडोर हाथ में होने के कारण अपना मनचाहा करने में सफल हो रहा है और वैद्य समाज का विशाल बहुमत गुटबाजों के कुचक्रों के कारण, बार-बार अपने उत्साह को कुण्ठित और कुचला हुआ देख रहा है।

घटनाक्रम का सिंहावलोकन करने के लिए आरम्भ से ही लीजिए! नवम्बर '५७ में दिल्ली-अधिवेशन के निश्चय पर रिफरेण्डम की धमकी दी गयी, जिससे शुरू में ही जहर का बीजवपन हो गया और वैद्य समाज इस बात पर शंकाकुल हो गया कि दिल्ली में अधिवेशन सम्पन्न हो सकेगा? यद्यपि इस प्रसंग में विरोध करने वाले केवल ग्यारह व्यक्ति थे जबकि दूसरी ओर एक सौ से ऊपर! उसके बाद विद्यापीठाध्यक्ष का निर्वाचन हुआ जिसमें उन्हीं शूरमाओं ने अखबारों, पत्रकों, चिट्ठियों और मौखिक गप्पों के माध्यम से ऐसी कीचड़ फेंकी और ऐसा क्षुब्ध वातावरण उत्पन्न कर दिया कि उसे देख कर वैद्य समाज अवाक् रह गया! वैद्येतर लोगों ने भी देखा तो दांतों तले अंगुली दबा ली! इतने हल-चलमय वातावरण में जो मतदान हुआ, वह गुटबन्दी वाले मठाधीशों की आशा और आदेश के जब विपरीत प्रतीत हुआ, तो उम्होंने कार्यालय और पदाधिकारियों से सांठगांठ करके उस निर्वाचन को ही अवैध घोषित करा दिया। यद्यपि मतदान को इस प्रकार अवैध घोषित करना स्वयं नितान्त अवैधानिक था, परन्तु जो थोड़े से लोगों का गुट उस चुनाव को पसन्द नहीं करता था—हमारा कार्यालय उसकी 'कान गही छेरी' है इसलिए उस गुट की इच्छा पर, बम्बई में नियम-विधान को निछावर कर दिया गया। फिर दोबारा मतदान आ। उसके

लिए नया प्रकार और नये नियम अपनाये गये! दूसरी बार के मतदान का परिणाम भी वही निकला, जिसकी आशंका से गुटबाज़ों ने पहला मतदान अवैध कराया था। दूसरे मतदान में सदस्यों का अभिमत बहुत स्पष्ट था, फिर भी गुटबाज़ों को चैन न हुआ। उन्होंने कलकत्ता की स्थायी समिति में फिर यह मांग उठवाई कि दोबारा हुए मतदान को भी अवैध घोषित कर दिया जाय। कलकत्ता स्थायी-समिति ने उस मांग को सर्वसम्मत अमान्य कर दिया और एक प्रकार से वह प्रश्न सदा के लिए समाप्त हो गया। निर्वाचन के समय बढ़े हुए ज़हर को लोग भूल गए। स्थिति कुछ शान्त हुई! परन्तु कुचक्रियों को शान्ति कहां? उन्होंने फिर एक पत्रक अंग्रेजी भाषा में एक सद्वैद्य के नाम से फर्वरी की पत्रिका में प्रकाशित कराया। उस पत्र में लिखी बातें तो सफेद झूंठ हैं ही, जिन सज्जन के नाम से वह पत्र छपा है, उनका अंग्रेजी भाषा से कोई सरोकार नहीं। ऐसी अंग्रेजी में उस प्रकार का पत्र लिखने की कला कौन कर सकता है, यह बात वैद्य समाज से छुपी नहीं। सब प्रकार से शान्त हुए विद्यापीठाध्यक्ष-निर्वाचन के प्रसंग को उस अंग्रेजी पत्र द्वारा फिर उठाकर मांग की गई कि दोबारा मतदान को अवैध कर दिया जाय——और कार्यालय तथा पदाधिकारी कुचक्रियों के अनुकूल ठहरे ही, इसलिए उन्होंने उस पत्र को प्रकाशित भी किया तथा स्थायी समिति में विचारार्थ भी रख दिया! इस कुचक्र का उद्देश्य केवल इतना रहा कि विवाद बढ़ें, आपसी मनोमालिन्य बढ़ें, भ्रान्तिपूर्ण स्थिति हो और किसी प्रकार अधिवेशन का मामला खटाई में पड़ जाय।

इसी प्रकार और भी कुछ उचित-अनुचित उपक्रम उन गुटबंदी वाले सज्जनों ने ऐसे किये, जिनसे किसी प्रकार अधिवेशन टलता जावे। पत्रिका में लगातार आक्षेपात्मक, घृणापूर्ण और परस्पर लड़ानेवाले लेख प्रकाशित होते रहे। जिन दिल्ली के सद्वैद्यों ने साहस करके महाविद्यालय और अधिवेशन——दोनों कार्यों को उत्साहपूर्वक सफल बनाने का उद्योग किया, हमारे बुद्धिशूर पदाधिकारियों ने उनको ही लांछित करने का पराक्रम कर डाला। जो हमको निमन्त्रित करे, हमारे स्वागत की तैयारियां करे, हम उसको ही गालियां दे उठें——शिष्टाचार-भ्रष्टता का इससे बड़ा उदाहरण और कहाँ मिलेगा? इन दुष्प्रयत्नों के बावजूद भी जब गुटबाजों ने देखा कि दिल्ली के वैद्यों के संगठित सद्प्रयत्न सफलता की ओर बढ़ रहे हैं और उन्होंने उद्योग करके विद्यापीठ-महाविद्यालय तो स्थापित कर ही लिया है, अधिवेशन भी अभूतपूर्व रूप में उत्साह एवं सफलतापूर्वक कर लेने की दिशा में प्रगति करते जा रहे हैं तो राजनीतिशूर ऐसे तरीकों पर उतर आये जिन्हें विध्वंसकारी के अतिरिक्त और कोई संज्ञा नहीं दी जा सकती!

कलकत्ता की स्थायी समिति में यह निश्चय हुआ था कि उसका आगामी अधिवेशन नागपुर में किया जाय। यह बात निश्चय ही उचित और वैधानिक है कि निश्चय के अनुसार नागपुर में बैठक होनी चाहिए थी। साथ ही, महासम्मेलनाधिवेशन की तिथियां और कार्यक्रम आदि की स्वीकृति का अधिकार, यद्यपि बम्बई स्थायी समिति ने अध्यक्ष जी को दे दिया था——फिर भी बीच में एक बैठक करके उसको वैधानिक रूप से स्वीकृत कराने में क्या हानि थी? परन्तु यह भी जान बूझ कर नहीं किया गया। निश्चित है कि वैधानिक औपचारिक बातों की जानकारी और पूर्ति की स्पष्ट जिम्मेवारी कार्यालय तथा पदाधिकारियों पर होती है। प्रधान मंत्री का यह उत्तरदायित्व था कि कलकत्ता-बैठक के निश्चयानुसार समय रहते नागपुर में स्थायी समिति का आयोजन करते। यदि ऐसा हो जाता तो वैधानिक नियमों की पूर्ति भी हो जाती और अच्छे स्वस्थ एवं उत्साहपूर्ण वातावरण में दिल्ली का ऐतिहासिक अधिवेशन सम्पन्न हो जाता। नये जोश में संस्था में जीवन आ जाता। परन्तु पदाधिकारी और कार्यालय यही तो नहीं चाहते, इसीलिए उन्होंने जानबूझ कर ऐसी स्थिति का स्वयं ही निर्माण कर दिया कि गुटबाजों को प्रगति में रोड़ा अटकाने का अवसर मिल गया। परिणाम यह हुआ कि संस्था और सम्पूर्ण वैद्य समाज एक बार फिर दु:खद रूप से लांछित हो गया। गुटबाजों का काम बन गया और जिस दिल्ली अधिवेशन को हर मूल्य पर नहीं होने देना चाहते थे, वह टल गया और उलझ कर रह गया।

इधर आयुर्वेद जगत् में दो-तीन सज्जनों की चर्चा बहुतायत से रही है। बम्बई के श्री मोहनलाल जी गुप्त और नागपुर के श्री गुलराज शर्मा मिश्र एवं श्री ज्वालाप्रसाद शास्त्री। नागपुर के युग्म को तो लोग पहले से ही जानते थे। विशेषकर विद्यापीठाध्यक्ष निर्वाचन के समय पण्डित गुलराज मिश्र ने श्री शिवशर्माजी की हाँ में हाँ मिला कर

एक वैद्येतर समाचारपत्र द्वारा जो निम्नकोटि का धुआँधार प्रचार कराया था, उससे वैद्य समाज उनकी मनोवृत्ति और हलचलों से भली-भाँति परिचित हो गया था—इसलिए नये वातावरण में जब उनका नाम उछल कर ऊपर आया तो किसी को कोई कुतूहल नहीं हुआ। परन्तु बम्बई के सज्जन का नाम नया-सा था, इसलिए स्वभावतः लोगों की जिज्ञासा जाग्रत हुई। विगत ७ फरवरी के लगभग दिल्ली में पण्डित शिवशर्माजी से जब पूछा गया कि यह बम्बई के श्री मोहन लालजी गुप्त कौन सज्जन हैं, तो पण्डित शिवशर्मा ने ऐसा उत्तर दिया जैसे कुछ जानते ही न हों और कभी देखा-सुना न हो! लोगों का कुतूहल स्वाभाविक था! एक ऐसा व्यक्ति जो अधिक प्रकाश में न आया हो, वह बिना किसी के पीठ पर हाथ के, कैसे वैधानिकता का इतना कट्टर अनुयायी और संस्था की 'सुरक्षा' का शिवशर्माजी सदृश निर्भीक सिपाही बन गया! लोगों ने जिज्ञासा शान्ति के लिए जब महासम्मेलन कार्यालय से उक्त सज्जन के सदस्यता-पत्र की सही प्रतिलिपि प्राप्त की तो लोगों के कौतुक की सीमा न रही। वैद्य श्री मोहनलाल गुप्त १९५४ से महासम्मेलन के आजीवन सदस्य बने हैं। फार्म ख पर उनकी सदस्यता के प्रस्तावक हैं पण्डित शिवशर्माजी, और समर्थक हैं प्रधान मन्त्री वैद्य वामनराव दीनानाथजी। मूल सदस्यता पत्र के ऊपर हमारे अष्टवर्षीय प्रधान मन्त्रीजी के कर-कमलों से एक पंक्ति अंकित है: 'इनकी रसीद पण्डित शिवशर्माजी को भेजी जावे।' इसे करिश्मा कहते हैं। सदस्य कोई बन रहा है, रुपया कोई भेज रहा है, रसीद किसी के पास जा रही है!

इन्हीं बम्बई-निवासी वैद्य मोहनलालजी गुप्त ने बम्बई हाईकोर्ट में आवेदन करके दिल्ली-अधिवेशन को रोकने के लिए स्थगनादेश जारी करा दिया, फलतः अधिवेशन स्थगित हो गया।

फिर वैधानिक न्यूनता को पूरी करने के लिए सम्मेलनाध्यक्ष महोदय ने नागपुर में स्थायी समिति का अधिवेशन बुलाया। वहाँ सौ से ऊपर सदस्य पर्याप्त रुपया व्यय करके, इस उद्देश्य से एकत्र हुए कि प्रस्तुत समस्याओं पर विचार करके गतिरोध को समाप्त करने का कोई उपक्रम किया जायगा। परन्तु चतुर गुटबाज वहाँ भी कलाबाजी दिखा गये। अपने मतलब के विषय और आगामी बजट को तो स्वीकृत करा लिया और ज्यों ही दिल्ली-अधिवेशन का विषय उपस्थित हुआ कि पण्डित शिवशर्मा ने एक वकील के साधारण से नोटिस का बहाना ले कर सम्मेलनाध्यक्ष जी को ऐसी पट्टी पढ़ाई कि वे आवेश में आ कर सभा-भंग करने की घोषणा कर बैठे। नागपुर में भी दिल्ली-अधिवेशन के भाग्य का निर्णय न हो सका।

पुनः ३१ मार्च को दिल्ली में स्थायी समिति की बैठक का आयोजन किया गया। उसको भी श्री मोहनलाल जी गुप्त के आवेदन पर दिल्ली के न्यायालय ने इन्जेक्शन दे कर रोक दिया और दिल्ली में जो सैकड़ों सदस्य एकत्र हुए वे फिर निराशा लेकर अपने-अपने घर गये।

अब स्थिति अत्यन्त ही विषम है। जब तक स्थायी समिति की बैठक नहीं होती, तब तक कोई अधिवेशन नहीं हो सकता। और स्थायी समिति बुलाई जाती है तो ठीक मौके पर कोई महारथी फिर कोई कार्यवाही न कर डाले, इसका क्या भरोसा? ऐसी स्थिति में दिल्ली का अधिवेशन अब कभी समाप्त न होनेवाली कहानी बन कर रह गया है।

स्पष्ट है कि महासम्मेलन में यह अभूतपूर्व गतिरोध उत्पन्न हो गया है। यदि ऐसी ही स्थिति रहती है तो इस पचास वर्ष पुरानी संस्था का अन्त ही भविष्यम्भावी दिखाई देता है?

जो कुछ हुआ था, हो चुका था। यदि नागपुर की स्थायी समिति में ही आगामी अधिवेशन की तिथियों आदि का निर्णय कर लिया जाता तो कम-से-कम अधिवेशन तो सम्पन्न हो जाता। परन्तु वहाँ भी जानबूझ कर सभा को अकारण ही भंग करा दिया गया और ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी गयी कि वैद्य समाज 'किंकर्त्तव्य विमूढ़' हो गया!

किया क्या जाय—यह एक बहुत विचारणीय और जटिल प्रश्न है! जिन लोगों ने गतिरोध उत्पन्न किया है और जो लोग आयुर्वेद, वैद्य समाज एवं संस्था के हिताहित को ताक में रख कर विध्वंसात्मक नीति पर जम गये हैं, उनसे तो कहा क्या जाय? शेष वैद्य समाज के समझदारों को इस पेचीदा स्थिति के निवारणार्थ कुछ करना ही चाहिए, अन्यथा अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन भी कदाचित् उस सीढ़ी पर जा कर अटकेगा, जिस पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन अटका था।

इधर की कुछ परिस्थितियाँ, ऐसे समय में उपस्थित हुई हैं, जब कि आयुर्वेद एवं वैद्य समाज के लिए वास्तविक संकट का समय है। यह वैद्य समुदाय का दुर्भाग्य ही है कि उसने एक समय ऐसे लोगों पर विश्वास किया जो आज उसके ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारने में तनिक भी संकोच नहीं कर रहे हैं। इतने के बाद भी वैद्य समाज की आँखें खुल जानी चाहिए और यदि प्रस्तुत गतिरोध की समाप्ति के लिए कोई प्रयास सफल नहीं होता तो, उसको इन निहित स्वार्थ-वाले स्वयं-भू नेताओं का सामाजिक बहिष्कार करके अपनी संस्था के उद्धार का व्यापक प्रयत्न स्वयं अपने हाथ में लेना चाहिए।

# सूतिका का स्वास्थ्य

**वैद्य रणजितराय**

(शल्य-शालाक्य तन्त्रों के समान प्रसूति-तन्त्र का क्रिया-पक्ष भी अस्पृष्ट-सा पड़ा है। इस लेख के पूर्वार्द्ध में, वैद्य रणजितरायजी ने लोकभोग्य भाषा में शास्त्र के सिद्धान्तों को विशद करते हुए कहा था कि गर्भिणी तथा प्रसूता के लिए पूर्वाचार्योपदिष्ट स्वस्थवृत्त को आचरण में लाया जाए तो बहुत-से ऐसे प्रसंग टाले जा सकते हैं जिनमें परंपरा के विच्छेद के कारण वैद्य आज परमुखापेक्षी हो गए हैं। प्रस्तुत लेख में वैद्यजी ने प्रसवोत्तर औषधोपचार का अक्षरशः निर्देश किया है। व्यवसायी चिकित्सक एवं महाविद्यालय-संबद्ध सूतिकागारों के अध्यक्ष दोनों ही लेख के इस उत्तरार्ध में निर्दिष्ट प्रणाली का अनुसरण करेंगे तो आयुर्वेद की लुप्तप्राय इस शाखा के पुनरुज्जीवनार्थ बीजारोपण के पुण्यभागी बनेंगे।

--सम्पादक)

## कतिपय आयुर्वेदीय कल्प

गर्भस्थिति, प्रसव एवं प्रसवोत्तर काल में स्त्री-शरीर ं वायु का प्रकोप न होने पाए इस दृष्टि से यशस्वी वैद्य वस्था देखकर पृथक्-पृथक् द्रव्यों और कल्पों की योजना रते हैं। आयुर्वेद के प्राचीन आचार्यों ने सर्वसाधारण उपयोग में आएँ ऐसी कतिपय कल्पनाओं का उल्लेख किया है। इनमें अधिक प्रसिद्ध एवं उपयोगी कुछ कल्पों निर्देश यहाँ किया जाता है।—

**र्भस्थिति में उपयोगी कल्प**

| | |
|---|---|
| रबत बनफ़शा | गर्भपाल रस |
| ल घृत | सुवर्णमाक्षिक भस्म |
| त्री रसायन | गुडूची सत्त्व |
| वर्णवसन्त मालती (स्पेशीअल) | प्रवाल भस्म |

**सवोत्तर उपयोगी कल्प—**

| | |
|---|---|
| शमूलारिष्ट | बोलपर्पटी इत्यादि। |

## शर्बत गुले बनफशा

गुले बनफ़शा भारत में ईरान से आता है। काश्मीर ौर पश्चिम हिमाचल में भी होता है। हकीम बन्धु सका उपयोग सविशेष करते हैं। इसके पञ्चाङ्ग का यवहार होता है। केवल पुष्प भी 'गुले बनफ़शा' नाम उपयोग में आते हैं। वैद्यों ने भी इस द्रव्य को अपना लया है। तरुण तथा जीर्ण प्रतिश्याय और कास में अन्य ूनानी और आयुर्वेदिक द्रव्यों के साथ पुष्प क्वाथ या फाण्ट रूप में प्रायः व्यवहृत होते हैं। पुष्प पित्त तथा रक्त शमन करते हैं—उनमें उष्णता आदि के रूप में किसी प्रकार की विकृति आई हो, तो उसे दूर करते हैं। इसके अतिरिक्त पुष्प विरेचन भी हैं। गुलाब या आरग्वध (अमलतास) के पुष्पों के समान बनफशा के पुष्पों का भी गुलकन्द बनाया जाता है, जो उदावर्त (कब्ज) में उपयोगी है। विरेचन कर्म के कारण बनफ़शा पित्त का शोधन भी करता है।

बनफ़शा के पुष्पों की पित्त, रक्त और उदावर्त पर इस क्रिया के कारण गुजराती में 'रतवा' नाम से प्रसिद्ध रोग पर ये अतीव उपयोगी सिद्ध होते हैं। आयुर्वेद में इस रोग को पुत्रघ्नी योनि नाम दिया गया है। यह रक्त और पित्त की विकृति एवं उदावर्त (कब्ज) के कारण शरीर में उष्णता और वायु की वृद्धि के परिणामस्वरूप होता है। (रतवा शब्द 'रक्त' और 'वात' शब्दों के संयोग से बने रक्तवात शब्द का अपभ्रंश है। यह भी इस रोग में रक्त की दुष्टि के प्रति संकेत करता है। इस रोग का हिन्दी में क्या नाम है, मैं कह नहीं सकता)। इसमें गर्भस्थिति होती है, परन्तु प्रत्येक बार उसका स्राव या पात (हेबीचुअल एबोर्शन) हो जाता है।

इस रतवा या पुत्रघ्नी योनि के लिए बनफशा के पुष्पों का उपयोग शर्बत गुले बनफशा के रूप में किया जाता है। इसमें प्रयुक्त होनेवाली चाशनी सितोपला की बनाई जाती है, जो इसकी पित्त और रक्त के शमन-शोधन की क्रिया में वृद्धि करती है।

पुत्रघ्नी योनि-नामक एक अन्य रोग भी है जिसमें प्रत्येक संतान उत्पन्न होकर तत्काल किंवा कोई डेढ़-दो वर्ष पर्यन्त काल में प्रतिश्याय, कास, ज्वर इत्यादि से पीड़ित

होकर मृत्युवश होने का वृत्तान्त उपलब्ध होता है। इस भेद में गुले बनफशा तभी उपयुक्त रहता है जब रोग का कारण पित्त और रक्त की दुष्टि हो। इसे वाग्भट ने 'जातघ्नी' नाम दिया है।

## फलघृत

शास्त्रोक्त इस योग का व्यवहार प्रायः वैद्य करते हैं। जनता में भी यह सुविज्ञात है। इसकी प्राणवान् फलश्रुति देखने से ही इसके परिणाम की कल्पना अनायास हो सकती है। इसके पाठ का निर्देश कर आचार्य कहते हैं :

> एतत् फलघृतं नाम गर्भिण्याः परमं हितम्।
> या चैवाऽस्थिरगर्भा स्यात्, पुत्रं जनयते मृतम्॥
> अल्पायुषं वा जनयेद्, या च सूत्वा पुनः स्थिता।
> सा सुताञ्जनयेन्नारी मेधाढ्यान् प्रियदर्शनान्॥

अर्थात्--यह फलघृत गर्भिणियों की सर्व व्याधियों को दूर करता है। स्त्री को बार-बार गर्भ का स्राव या पात होता हो तो इस घृत के सेवन से गर्भ स्थिर होता है। स्त्री को मृत संतान उत्पन्न होते हों, अथवा संतान अल्पायु होते हों—अमुक मास या वर्ष के होकर बालक मर जाते हों, अथवा एक बार प्रसूति होने के पश्चात् पुनः गर्भस्थिति न होती हो (काकवन्ध्या ; वन चाइल्ड स्टरिलिटी) तो इस फलघृत के सेवन से स्त्री बुद्धिशाली और रूपगुण संपन्न पुत्रों की माता बनने का सौभाग्य प्राप्त करती है। इसका पाठ तथा निर्माण-विधि निम्न निर्दिष्ट है :

मञ्जिष्ठा, यष्टीमधु, कुष्ठ, हरीतकी, बिभीतक, आमलक, सितोपला, वचा, अजमोद, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, हीरा-हींग, कटुकी, कमल, चन्दन, मुनक्का, पद्मकाष्ठ, देवदारु, मेदा, महामेदा, विदारी, काकोली, अश्वगन्धा, पिप्पली, चमेली के फूल, वंशलोचन, विडंग, कुमुद, बलामूल, कट्फल, अनन्तमूल, नागरमोथ, गोक्षुर, कण्टकारी, बृहती-- प्रत्येक एक कर्ष (एक तोला) ले, वस्त्रपूत चूर्ण बना जल में पीस कल्क बनाएँ। इस कल्क में गोघृत १२८ कर्ष, शतावरी स्वरस २४८ कर्ष तथा गोदुग्ध २४८ कर्ष मिला यथाविधि घृतपाक करें।

मात्रा तथा अनुपान : ½–१ कर्ष घृत समभाग सितोपला-सहित चाट कर ऊपर से दूध पिएँ।

## धात्री रसायन

अनुशदारवी (नोशदारु) नाम से एक कल्प हकीम भाई बनाते हैं। इसमें आधार द्रव्य च्यवनप्राश के समान ही आमले का मावा होता है। वैद्यों ने भी यह कल्प अपना लिया है तथा इसे धात्री रसायन नाम दिया है (देखिए : सिद्धयोगसंग्रह : बैद्यनाथ प्रकाशन)। यह उष्णगुण है। यहाँ जिसका उल्लेख किया जा रहा है वह यह धात्री रसायन नहीं है। परन्तु आमला और सितोपला की चाशनी से बननेवाला एक अवलेह है। आमला तथा सितोपला दोनों पित्त के शामक और रक्त के शोधक के रूप में प्रसिद्ध हैं। गर्भस्थिति के समय पित्त के प्रकोप के कारण स्त्री को मन्द ज्वर रहता हो ; नेत्र, मूत्र इत्यादि में दाह होता हो, योनिपाक हो, किंवा पित्त की उष्णता के कारण गर्भ का पोषण समीचीनतया न होता हो, तो यह धात्री रसायन अतीव उपयोगी सिद्ध होता है। योनिपाक का अर्थ है कि जैसे पित्त की उष्णता के कारण मुख आ जाता है (मुखपाक) वैसे स्त्री के योनिमार्ग अथवा गर्भाशय के मुख पर शोथ हो जाता है, या व्रण हो जाता है। परिणाम में अपत्यपथ से रक्तवर्ण स्राव होता है या स्वयं रक्त की प्रवृत्ति होती है, बस्ति प्रदेश में वेदना रहा करती है, क्वचित् समागम में भी पीड़ा होती है। ये लक्षण गर्भस्थिति के बिना भी होने संभव हैं। इन लक्षणों को देख कर किंवा तज्ज्ञ से प्रत्यक्ष परीक्षा करा कर इस योनिपाक का निदान किया जा सकता है। अंग्रेजी में इस विकृति को 'इरोझन' कहते हैं। धात्री रसायन इस रोग में उत्तम काम देता है।

## सुवर्णवसन्तमालती (स्पेशीअल)

गर्भिणी अथवा गर्भस्थ शिशु की पित्तज विकृतियों में जैसे धात्री रसायन की उपयोगिता है तद्वत् **कफ अथवा वायु के कारण हुई व्यथाओं में** सुवर्णवसन्तमालती उत्कृष्ट है। अरुचि, अग्नि की मन्दता, प्रतिश्याय (जुकाम), कास इत्यादि विकृतियाँ कफ तथा वायु के कोप के कारण सामान्यतया होती हैं। इनमें सुवर्णवसन्तमालती उपयोगी है। 'सचित्र आयुर्वेद' के ही एक पूर्व अङ्क में सुवर्णवसन्तमालती का सविस्तार परिचय दे चुके हैं। बल्य रसायन के रूप में सुवर्णवसन्तमालती बृहत् उत्तम है। परन्तु गर्भिणी एवं गर्भस्थ शिशु के सुकुमार शरीर के लिए उनका उग्रवीर्य होना संभव है। अतः इसके सुवर्णवसन्तमालती स्पेशीअल नामक सौम्य प्रकार का उपयोग सामान्यतः करने का परामर्श परंपरागत वैद्य देते हैं। गर्भस्थिति में अथवा उसके बिना भी श्लेष्मला योनि (श्वेत प्रदर) हो तो वह

भी सुवर्णवसन्तमालती के उपयोग से दूर होता है, तथा शरीर के पोषक द्रव्यों का बाहर निकलना बन्द हो जाने से गर्भिणी के शरीर और गर्भस्थ शिशु का पोषण उत्तम होता है।

## गर्भपाल रस तथा अन्य कल्प

महाराष्ट्र के वैद्यों में गर्भपाल रस का बहुत प्रचार है। इस ओर गुजरात के कई भागों में भी यह प्रचलित है। इसका पाठ अधोलिखित है :

शुद्ध हिंगुल, नागभस्म, वंगभस्म, दालचीनी, तेजबल, इलायची, शुण्ठी, कृष्ण मरिच, पिप्पली, धनिया, कृष्ण जीरक, चव्य, द्राक्षा, देवदारु——प्रत्येक एक तोला, लोहभस्म २ तोला। अपराजिता के रस की सात भावनाएँ। इस रस में डाले जानेवाले द्रव्य दीपक, पाचक, धातुओं के पोषक तथा गर्भ की वृद्धि करनेवाले हैं। हिंगुल पारद और गन्धक के योग से बनता है। नव्य रसायन की दृष्टि से रस सिन्दूर और चन्द्रोदय के घटक भी यही हैं। कई वैद्य रस सिन्दूर तथा चन्द्रोदय के स्थान पर बल्य औषध के रूप में हिंगुल का ही उपयोग कर अभीष्ट फल प्राप्त करने का दावा भी करते हैं। हिंगुल उत्तम जीवाणुहर है। नव्यमतानुसार पक्वाशय किंवा स्थूलान्त्रों में वातवर्गीय द्रव्यों की उत्पत्ति जीवाणुओं की क्रिया से कोथ (सड़ाँद) होने के कारण होती है। हिंगुल जीवाणुओं की वृद्धि को अटका कर वायु की वृद्धि नहीं होने देता। इसके अतिरिक्त जैसा कि ऊपर कहा यह उत्तम बल्य भी है। अपराजिता अथवा गिरिकर्णिका उत्तम गर्भस्थापक है। अतएव, इसकी सात भावनाएँ दी जाती हैं।

हिंगुल का एक घटक पारद है। अर्वाचीन दृष्टि के व्यक्ति पारद का उपयोग करते हुए शङ्काशील रहें यह स्वाभाविक है। परन्तु वैद्य-समाज आज सहस्रावधि वर्षों से पारद का उपयोग असंख्य कल्पों के रूप में करता आया है और इससे कोई भी विकृति हुई-हो ऐसा देखा या सुना नहीं गया।

**गर्भपाल रस की गुण-वृद्धि के लिए** इसके साथ सुवर्णमाक्षिक भस्म, प्रवाल तथा गुडूची सत्त्व का मिश्रण पुराकाल से वैद्यजन करते आए हैं। सुवर्णमाक्षिक लोह का खनिज है। इसमें ताम्र आदि धातुओं के अंश भी होते हैं। यह सौम्य रक्तवर्धक है। स्त्रियों का शरीर अग्नितत्त्वप्रधान होने से उनको सुवर्णमाक्षिक अतीव अनुकूल सिद्ध होता है। प्रवाल अस्थियों का पोषक होने के अतिरिक्त इसकी सार्वदेहिक क्रिया भी होती है। यह हृदय को बल देता है। हृदय बलवान् होने से तथा रसादि धातुओं की पुष्टि होने से मन का दैन्य दूर होता है।

## संशमनी

गुडूची पित्त के शमनार्थ अति उत्तम और सुविदित वनौषधि है। इसके क्वाथ का घन बना कर जो बटी बनाई जाती है वह संशमनी नाम से प्रसिद्ध है। यह संशमनी जीर्ण ज्वर में उत्तम है। गुडूची-सत्त्व भी प्रख्यात पित्त-शामक है।

संशमनी की पित्त-शामक क्रिया बालकों के पोषण में अति उत्तम देखी जाती है। जो कृश और दुर्बल (रिकेटी) बालक कपड़े पहनना पसन्द न करते हों, ओढ़ने के कपड़े भी फेंक देते हों, खुले शरीर फर्श पर पड़े रहने की वृत्तिवाले हों, बारी के पास या पंखे के नीचे सोना पसंद करते हों, जिन्हें मन्दज्वर रहता हो अथवा जिनका शरीर स्पर्श में उष्ण प्रतीत होता हो, विशेष तो जिनको प्रतिश्याय या कास ये कफ-वात प्रधान रोग सामान्यतया न रहा करते हों उनके शरीर की कृशता का कारण निश्चित पित्त है यह निदान करना चाहिए। कुपित पित्त अन्नपान का पचन कर उनके शरीर धातुओं का भी पचन (दहन) कर डालता है। परिणामतया उनके शरीर को पोषण न प्राप्त होने से वे कृश और दुर्बल रहते हैं। ऐसे बालकों को अन्य कोई पोषक या बल्य द्रव्य न देकर बालगुटी के रूप में केवल संशमनी देते रहने से उनका शरीर अति शीघ्र परिपुष्ट हो जाता है और सर्व व्यथाएँ दूर होती हैं। इसीसे गुडूची-सत्त्व की भी पित्त-शामक और धातुपोषक क्रिया तथा गर्भस्थिति में संशमनी और गुडूची-सत्त्व के सेवन की उपयोगिता की कल्पना की जा सकती है। इस प्रकार धातु-पोषक, बल्य, पित्त-शामक और ज्वरहर होने से ही राजयक्ष्मा में वैद्य संशमनी, गुडूची-सत्त्व तथा गुडूची-क्वाथ का मुक्तहस्त उपयोग करते हैं।

गर्भस्थिति-काल में उपयोगी कतिपय कल्पों के निर्देश के पश्चात् अब प्रसव के पश्चात् उपयोग करने योग्य एक-दो कल्पों का उल्लेख किया जाता है।

## बोलपर्पटी तथा अन्य कल्प

बोल का आर्तव अथवा मासिक की शुद्धि—सम्यक् प्रवर्तन—का कर्म प्रसिद्ध है। इसी कारण प्रसूति के अनन्तर गर्भाशय के शोधन के लिए इसकी योजना होती है। यह उत्तम वातशामक भी है। अतः गर्भस्थिति-काल में प्रकोप प्राप्त हुए वायु के शमन की दृष्टि से भी यह उपयोगी सिद्ध होता है। प्रसव के अनन्तर कम-से-कम ग्यारह दिन बोल २-२ वल्ल (१ वल्ल=३ गुञ्जा) शुण्ठी २-२ वल्ल ऐसी तीन पुड़ियाँ आगे दिए क्वाथ के अनुपान से प्रत्येक प्रसूता को देने से उसके गर्भाशय का शोधन उत्तम हो जाता है। प्रसव के अनन्तर गर्भाशय में दूषित रक्त रह जाए तो उसमें नाना प्रकार की विकृतियाँ रह जाती हैं। गर्भाशय में पाक तथा शोथ, उसके कारण बस्ति प्रदेश (पेढ़ू) में सदैव शूल , गौरव, आर्तव-प्रवृत्ति के समय किंवा समागम-काल में वेदना, पुनः गर्भधारण न होना इत्यादि इन विकृतियों के सामान्य उदाहरण हैं। इनके कारण मानसिक त्रास तथा इतर शारीरिक रोगों के प्रादुर्भाव के अतिरिक्त गृहजीवन भी क्लेशमय होने की संभावना रहती है।

प्रसव के पश्चात् उदावर्त (कब्ज) रहती हो, अथवा उपर्युक्त उपायों से गर्भशय्या की शुद्धि सम्यक् न हो तो प्रत्येक पुड़िया में २ से ३ वल्ल ऐलेय (एलुआ) की भी योजना करनी चाहिए।

तृतीय दिवस संचित पुरीष एवं वायु के अनुलोमन के लिए शुण्ठी के क्वाथ में घानी का एरण्ड तैल कोई तीन तोला देना चाहिए।

कई स्त्रियों में अपरा का कोई अंश गर्भशय्या में रह जाने के कारण उसे बाहर निकालने के प्रयास में गर्भशय्या का आकुञ्चन-प्रसारणात्मक व्यापार कई दिन चालू रहता है। (आर० पी० सी०=रिटेण्ड प्रोडक्ट ऑफ कन्सेप्शन) आयुर्वेद की संज्ञा में कहना हो तो अपरा का यह अवशिष्टांश गर्भाशय की क्रिया के प्रवर्तक अपान वायु को आवृत्त कर कुपित करता है। परिणामतया गर्भाशय से रक्तस्राव की मर्यादा सामान्य मर्यादा से अधिक दिन रहती है। इस स्थिति में बोल का ही एक कल्प **बोलपर्पटी** अत्यन्त कार्यसाधक सिद्ध होता है। इसमें पारद १ भाग, गन्धक १ भाग तथा बोल २ भाग होता है। मात्रा २ वल्ल। **कुबेराक्ष** (करञ्ज)—मज्जा के साथ देने से बोलपर्पटी अधिक गुणकारी हो जाती है। इससे गर्भाशय का आकुञ्चन बलवान् होकर अपरा का शेषांश बाहर फेंक दिया जाता है। परिणामतया उपर्युक्त आकुञ्चन की आवश्यकता न रह जाने से वह स्वयं शान्त हो जाता है। अतएव, रक्तस्राव भी बन्द हो जाता है।

कई बार गर्भस्राव, गर्भपात अथवा स्वस्थ प्रसव होने एवं अपरा सर्वांशतः निकल जाने के अनन्तर भी कुछ समय रक्तस्राव होता है। उसमें भी बोलपर्पटी और कुबेराक्ष की योजना सुन्दर कार्य करती है।

यह योजना अन्य एक विकृति में भी उपयोगी सिद्ध होती है। दौर्बल्य के कारण कई बार प्रसव के पश्चात् गर्भाशय अपना स्वाभाविक आकार (इन्वॉल्यूशन) ग्रहण नहीं करता। वातशामक होने के कारण बोलपर्पटी और कुबेराक्ष इस विकृति में भी उत्तम कार्य करती है।

रक्तप्रदर के कारणों पर दृष्टिपात करें तो उसमें कुपित वायु की भी गणना की गयी है। शूल आदि वातप्रकोप के अन्य लक्षण विद्यमान हों, तो वायु रक्तप्रदर में प्रधान था गौण रूप से कारणभूत है, यह निदान कर ऐसे प्रसंगों में भी बोलपर्पटी आदि बोल के कल्पों का सफल उपयोग सिद्ध वैद्य करते हैं। बोल वातशामक होने से ही ऐसी परिस्थिति में कार्य करता है।

प्रसव के अनन्तर कई परिवारों में **हिंगड़ा** फँकाने की भी प्रथा है। हींग के समान ही यह द्रव्य है, जो एक वृक्ष का गोंद होता है और वायु तथा गर्भाशय का शोधन करता है। इसमें हींग की उग्रता नहीं होती। हींग के सदृश ही यह भी अफगानिस्तान इत्यादि देशों से आता है। प्रसव के पश्चात् लगभग ११ दिन प्रातः-सायं कोई १-१ माशा हिंगड़ा फँकाया जाता है। यह प्रथा भी अपनाने योग्य है।

ऊपर कहा है कि प्रत्येक सूतिका को ११ दिन तक नियमित अमुक क्वाथ देना चाहिए। इस क्वाथ को आयुर्वेद में **देवदार्वादि क्वाथ** कहते हैं। कोई इस के साथ दशमूल क्वाथ की भी योजना करते हैं। दशमूल वायु और वातिक रोगों पर उत्तम कार्यकारी औषध के रूप में अतीव प्रशंसा-प्राप्त है और वैद्यों द्वारा आज भी इसका नाना रूपों में उपयोग किया जाता है। दोनों क्वाथों के पाठ नीचे दिए जाते हैं :

**देवदार्वादि क्वाथ :** देवदारु, वचा, कुष्ठ, पिप्पली, शुण्ठी, कट्फल, मुस्ता, चिरायता, कटुकी, धनिया, हरीतकी,

गजपिप्पली, धमासा, गोखरू, जवासा, कण्टकारी, अतिविषा, गुडूची, कर्कटशृङ्गी, वन्यजीरक।

**दशमूल क्वाथ**: बिल्वमूल, अरणीमूल, श्योनाक, गंभारी, पाटला, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, कण्टकारी, बृहती, गोक्षुर।

आयुर्वेद का जिन्हें यत्किंचित् भी परिचय है वे जानते हैं कि, ये द्रव्य पृथक्-पृथक् दोषों पर क्रिया करनेवाले अग्निदीपक, पाचक, जीर्णज्वरहर एवं फुफ्फुस, मस्तिष्क, यकृत्, वृक्क एवं अन्त्रों की क्रिया को सुधारनेवाले हैं। ये क्वाथ प्रसूति के पश्चात् उपयोगार्थ पुड़ियों के रूप में कई औषधविक्रेता आज भी बेचते हैं। इनसे होनेवाले लाभ भी सुविदित हैं। इन क्वाथों का सेवन कर प्रसूता यथार्थतः **नवजीवन** प्राप्त करती है। प्रत्येक प्रसूता नियमित इन क्वाथों का सेवन करे तो प्रसव उसके लिए क्लेशमय न रह कर **पुनर्जीवन की प्राप्ति का निमित्त** बन जाता है। ये दोनों क्वाथ १-१ कर्ष (कर्ष=तोला) लेकर आध सेर जल में मन्दाग्नि पर १ छटाँक शेष रहे तब तक उबालें। पश्चात् छान कर प्रातः-सायं आधा-आधा भाग लें। प्रातः सेवन कर किट्ट पानी में ही रहने दें, जिससे सायंकाल पर्यन्त उसका भी वीर्य पानी में उत्तर आए।

प्रसव के अनन्तर कई कुटुम्बों में खटिया के नीचे **अजवायन** का धूपन (धूनी) करने का प्रचार है। वायु तथा लीन कफ के शमन और शोधन के लिए यह प्रथा अति उत्तम और प्रचार में लाने योग्य है।

## दशमूलारिष्ट

ग्यारह दिन, जब तक स्त्री सूतिका कहाती है तब तक, यह औषधोपचार करने के अनन्तर ऊपर कहे अनुसार गर्भस्थिति तथा प्रसव को अन्वर्थतः एवं संपूर्णतया नवजीवन की प्राप्ति का साधन बनाना हो तो प्राचीन कौमारभृत्य भार देकर जिस के उपयोग की प्रशंसा करते हैं उस दशमूलारिष्ट का नित्य सेवन प्रत्येक प्रसूता को अवश्य करना चाहिए। जिन-जिन बहनों ने प्रसव के पश्चात् दशमूलारिष्ट का सेवन किया होगा वे तथा उनके स्वजन-परिजन अवश्य हमारे इस कथन की सत्यता का समर्थन करेंगे। इसमें डाले जानेवाले द्रव्यों पर उड़ता दृष्टिपात करें तो दशमूलारिष्ट की गुणवत्ता सरलता से समझ में आ सकती है:

दशमूल के उपरिनिर्दिष्ट द्रव्य मिलित २०० भाग; चित्रकमूल त्वक् १०० भाग, पुष्करमूल १०० भाग, लोध्र ८० भाग, गुडूची ८० भाग, आमला ६४ भाग, धमासा ४८ भाग; खदिर, बीजक, हरीतकी प्रत्येक ३२ भाग; कुष्ठ, मंजिष्ठा, देवदारु, विडङ्ग, यष्टीमधु, भारंगमूल, कपित्थ, बहेड़ा, पुनर्नवा, चव्य, जटामांसी, प्रियंगु (गहुँला), सारिवा, कृष्ण जीरक (शाह जीरा), निशोथ, रेणुकाबीज, रास्ना, पिप्पली, सुपारी, कपूर काचली, हरिद्रा, सोआ, पद्मकाष्ठ, नागकेशर, नागरमुस्ता, इन्द्रयव, शुण्ठी, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, ऋद्धि, वृद्धि (अन्तिम ८ द्रव्य अष्टवर्ग नाम से प्रसिद्ध हैं)—प्रत्येक ८ भाग।

आठगुणा जल में चतुर्थांश शेष रहे ऐसे क्वाथ करें। पश्चात् द्राक्षा २५६ भाग, जल १०२४ भाग ले तिहाई शेष रहे इतना क्वाथ कर उसमें ऊपर बताया क्वाथ मिलाएँ। पीछे इसमें मधु १२८ भाग, गुड़ १६०० भाग, धातकी पुष्प १२० भाग; चीनीकबाला, उशीर, चन्दन, जायफल, लवङ्ग, दालचीनी, इलायची, तमाल-पत्र, पिप्पली, नागकेशर प्रत्येक ८ भाग, कस्तूरी चौथाई भाग इन प्रक्षेप द्रव्यों का चूर्ण मिला यथाविधि अरिष्ट बनाएँ।

यह अरिष्ट सामान्यतः २-२ तोला प्रातः-सायं समभाग जल मिला कर पिएँ।

अरिष्ट के निर्माण-काल में अमुक परिमाण में अलकोहल उत्पन्न होता है। यह स्वयं भी जठराग्नि तथा धात्वग्नियों को प्रदीप्त करता है। रस-रक्त के अभिसरण को वेगवान् बना कर धातुओं के पोषण की क्रिया को सुधारता है, मन को प्रफुल्ल बनाता है और स्वस्थ निद्रा लाता है। चित्रकमूल आदि अग्नि-दीपक द्रव्यों की योजना के कारण जठराग्नि, तथा सार्वदेहिक अग्नियाँ प्रदीप्त होने से प्रसूता के सर्वावयव परिपुष्ट, प्रफुल्ल और लघु (हलके) हो जाते हैं। गर्भस्थिति-वश उत्पन्न हुआ अग्निमान्द्य दूर होने के कारण कारण उदावर्त (कब्ज), अतिसार आदि व्यथाएँ हुई हों, तो वे भी शान्त हो जाती हैं। आसवारिष्टों के उपयोग के समर्थन में नव्यमतानुसार एक सत्य यह उपस्थित किया जा सकता है कि इनमें संधान का कारणभूत यीस्ट रहा करता है। यह यीस्ट विटामिन बी के सभी भेदों का सर्वोपरि आश्रय है। अग्नि-विकारों को दूर करने एवं रक्त की वृद्धि करने में इस विटामिन का महत्त्व का स्थान है।

आधुनिक उपचार-क्रम के संपर्क में आए चिकित्सकों को यह सत्य सुविदित ही है। इस यीस्ट के कारण भी दशमूलारिष्ट की अन्य आसवारिष्टों के समान महत्ता है[1]।

किंबहुना, प्रसव के पश्चात् दुर्बलता के कारण प्रायः स्त्रियों को होनेवाले कास, किंचित् भी श्रम करने पर थकावट प्रतीत होना या श्वास फूल आना, अथवा जीर्ण और मन्द ज्वर रहना, राजयक्ष्मा अथवा क्षय की आशङ्का उत्पन्न करें ऐसे लक्षण एक साथ उत्पन्न हो जाना, रक्त तथा मांस की क्षीणता होकर पाण्डुरोग और उसके परिणामस्वरूप अन्य प्राणनाशक रोगों की भूमिका तैयार हो जाना—इन तथा अन्य सर्व विकृतियों पर सुन्दर कार्य करे, तथापि शरीर को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाए ऐसे द्रव्यों की आयुर्वेद के अगाध निघण्टु से चुन-चुन कर योजना इस दशमूलारिष्ट में आयुर्वेद के प्राचीन आचार्यों ने की है।

दशमूलारिष्ट के सेवन से प्रसूता का स्वास्थ्य सुधरने से उसका स्तन्य भी उचित परिमाण, गुण एवं सर्वोपरि स्वास्थ्यदायक वनौषधियों के अंशों से परिपूर्ण होने के कारण उसका बालक भी अनायास हृष्ट-पुष्ट और हँसता-खेलता हो जाए इसमें विस्मय की कोई बात नहीं। **दशमूलारिष्ट की १-१ पाउण्ड की कम से कम तीन शीशियों का कोर्श तो प्रत्येक प्रसूता को पूरा करना ही चाहिए।** आयुर्वेद का एक नम्र उपासक आयुर्वेद के इस रत्न की प्रशंसा में पृष्ठ भरे इसकी अपेक्षया दशमूलारिष्ट की एक घूँट ही इसकी गुणवत्ता की प्रतीति कराने के लिए पर्याप्त है!!

## परिशिष्ट

प्रसव के प्रकरण में शीघ्र प्रसव का बहुत महत्त्व है। प्रसव चिरकाल तक चले तो थकावट के कारण स्त्री प्रसवोपयुक्त बल-प्रयोग करने के सामर्थ्य से रहित हो जाती है। यह स्थिति सुविदित कारणों से प्रथम प्रसवा में सविशेष होती है। परिणामतया पश्चात् यन्त्र आदि की सहायता आवश्यक हो जाती है। यह स्थिति उत्पन्न ही न हो एतदर्थ सद्यःप्रसवकारक कल्प उपयोगी होते हैं। आयुर्वेद में अनेक ऐसे योग लिखे हैं। इनमें कई केवल शिखा या कटि में बन्धन से ही कार्य करते हैं। इन सब के अनुभवी प्रयोक्ता अद्यापि उपलब्ध होते हैं। इनमें एक टङ्कण का उपयोग है। आवी (प्रसव-वेदना) के प्रादुर्भाव के अनन्तर इसका प्रयोग करना चाहिए। समभाग पिप्पली और विडङ्ग के साथ इसका उपयोग अधिक गुणवत्तर होता है। यह प्रयोग ऋतुकाल में करने से गर्भस्थिति नहीं होती। भावप्रकाश, मध्यम खण्ड, चिकित्सा-प्रकरण में ८ वें अध्याय में इसका उल्लेख है।—

पिप्पलिविडङ्ग टङ्कण समचूर्णं या पिबेत् पयसा।
ऋतुसमये नहितस्या गर्भः संजायते क्वापि॥

गर्भपात के लिए भी इसका विधान ग्रन्थों में लिखा है। इसका अनुपान यद्यपि दूध लिखा है, तथापि दालचीनी तथा पिप्पलीमूल का क्वाथ लिया जाएं तो अधिक गुण होता है।

आवी-प्रादुर्भाव होते ही प्रत्येक द्रव्य २-२ वाल ले, उक्त क्वाथ के अनुपान से १५-१५ मिनट से इसे देना चाहिए। एक-दो बार देना पर्याप्त होता है। क्वाथ सुखोष्ण होना चाहिए। पिला कर गर्भिणी को वस्त्र ओढाए रखना चाहिए।

गर्भस्थिति न होने देने के लिए आर्तव के प्रायिक दिन से एक-दो दिन पूर्व उक्त परिमाण और अनुपान से तीन-तीन पुड़ियाँ तब तक दें, जब तक आर्तव-दर्शन न हो जाए। यह क्रम प्रतिमास करें। छोड़ देने पर तत्काल या स्त्री उष्ण-प्रकृति हो तो कुछ मास के पश्चात् गर्भस्थिति होती है। परन्तु एक या अनेक बार गर्भस्राव भी होना संभव है। गर्भस्थिति हो तो असली नागकेशर और अश्वगन्धा इन द्रव्यों का प्रयोग हितावह होता है।

---

[1] पाण्डुरोग में रक्त की अभिवृद्धि **लोहासव** से सर्वोत्तम होती है, यह सुचिकित्सकों का अनुभव है। इसका एक कारण इसमें यीस्ट की विद्यमानता है। अन्य कारण लोह का विलीन स्वरूप में रहना है, जो शरीर में भी स्रोतों में इसके प्रवेश और धातुओं द्वारा ग्रहण की पूर्व-निश्चिति कराता है। इसके अतिरिक्त रक्त-वृद्धिकर द्रव्य अम्ल अनुपान में अधिक कार्यक्षम होते हैं, यह अनुभव से विदित हुआ है। आसवों में किंचित् अम्लता होती ही है। लोहासव की अम्लता भी उसके विशेष प्रभाव में कारणभूत है।

# आयुर्वेद की निदान सम्बन्धी निपुणता

**डा० प्राणजीवन एम० मेहता** एम० डी०, एम० एस०, एफ० सी० पी० एस०

आयुर्वेद में व्याधियों के निदान विषयक वर्णन इस प्रकार वर्गीकृत हैं कि उनसे प्रत्येक वर्ग के लक्षणों का प्रकटीकरण काल और अनुक्रम के तारतम्य में स्वतः हो जाता है। आयुर्वेदीय पद्धति का रोग संप्राप्ति की विविध अवस्थाओं अथवा व्याधि के प्रकृत इतिहास के साथ सम्बन्ध होता है--फलतः यह पद्धति अत्यन्त व्यावहारिक और उपादेय होती है--जैसे (१) व्याधि की प्रारंभिक अवस्था में रोग-दशा विषयक निदान करने में इस पद्धति से सहूलियत होती है और (२) इसके साथ-साथ प्रारंभिक अवस्था में रोग के प्रसार को नियंत्रित करती है तथा किसी वर्ग विशेष के रोग-लक्षणों की वृद्धि की अवस्था में किस मात्रा में और कैसी औषधि देनी चाहिए, इसका भी निर्देशन करती है।

सुश्रुत ने, जो उस युग के वैज्ञानिक चिकित्सा-शास्त्र के व्यवहारतः टीकाकार कहे जा सकते हैं, रोग-लक्षणों को वर्गीकृत करने की एक आदर्श पद्धति विकसित की है। इस पद्धति के सहारे चिकित्सक आतुर की आन्तरिक अवस्थाओं से परिचित हो जाता है, साथ ही वह रोग-लक्षणों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म गतिविधियों को पूरी तरह समझ कर चिकित्सा में प्रवृत्त होता है। सुश्रुत ने उन लक्षणों को निम्नानुसार ६ अवस्थाओं में विभक्त किया है--

संचयं च प्रकोपं च प्रसरं स्थानसंश्रयम्।
व्यक्तिं भेदं य यो वेत्ति दोषाणां स भवेद् भिषक्।।
सु० सू० २१-३६

सुश्रुत के अनुसार वही व्यक्ति चिकित्सक वैद्य होने का अधिकारी हो सकता है जो रोग-सम्प्राप्ति (Pathogenesis) अथवा दोषों की विविध अवस्थाओं यथा--संचय (Summation), प्रकोप (Provocation), प्रसर (Diffusion), स्थान-संश्रय (Localisation), व्यक्ति (Manifestation) और भेद (Termination) को भलीभांति जानता है।

ऊपर जिन अवस्थाओं का उल्लेख किया गया है, उनमें प्रथम तीन अवस्थाएँ ऐसी हैं, जिनका सम्बन्ध व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व से है और जिस अवधि में ये लक्षण अभिव्यक्त होते हैं, उस अवधि में रोगाक्रान्त व्यक्ति यथासंभव प्राप्य सभी रक्षात्मक साधनों के द्वारा प्रतिकार करने का प्रयास करता है और रोग-प्रसार के आन्तरिक एवं बाह्य कारणों को विफल करने की दिशा में प्रयासी होता है। साथ ही रोगाक्रान्त व्यक्ति प्राकृतिक तौर पर सन्तुलन रखने की चेष्टा करता है और उसका पूर्ण व्यक्तित्व सभी प्रकार के शारीरिक कष्ट की अवस्था में समान और निश्चित रूप से प्रतिक्रिया प्रारम्भ कर देता है--साथ ही परस्पर सम्बद्ध मिश्रित सह लक्षण भी दिखायी देने लगते हैं अर्थात् दोष-प्रतिक्रिया स्पष्टतया परिलक्षित होने लग जाती है। प्रतिक्रिया की मात्रा रोगकारी कारणों (Pathogenic Agent), रोगाक्रान्त व्यक्ति की शारीरिक बनावट या गठन की प्रतिरोध-शक्ति तथा अन्य विविध कारणों के अनुसार घट-बढ़ सकती है।

दोष-दूषण अवस्था (Dosha-Vitiation Condition) सम्बन्धी अध्ययन का महत्व चरक ने उसकी व्यावहारिकता के कारण बताया है।

तत्र व्याधयोऽपरिसंख्येया भवन्ति, अतिबहुत्वात्; दोषास्तु खलु परिसंख्येयाः, अनतिबहुत्वात्; तस्माद्यथा चित्रं विकारा उदाहरणार्थमनवशेषेण च दोषा व्याख्यास्यन्ते।
--च० वि० ६-५

जहाँ तक व्याधि की अवस्थाओं का प्रश्न है, वे अपरिमित होती हैं। किन्तु इसके विपरीत दोष-दूषण अवस्थाएँ (Dosh-Vitiation Condition) सीमित होती हैं। अतएव, रोग-अवस्थाओं (disease condition) का जहाँ तक प्रश्न है, उन्हीं दृष्टान्तों को प्रस्तुत करूँगा जो प्राचीनों द्वारा वर्णन किए गए हैं; किन्तु जहाँ तक दोष-दूषण अवस्थाओं का सम्बन्ध है, मैं पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करूँगा।

एक दूसरी व्याख्या के द्वारा वाग्भट उपर्युक्त कथन का महत्व तथा उपादेयता और भी बढ़ा देते हैं--

सर्वेषु तेषु तेष्वनुक्तेषु चान्येष्वसंख्येयत्वा द्विकारेष्विमान्येव दोषणामात्मलिंगानि सकलशरीर व्यापीन्यव्यभिचारिणी च। तथा तत्कर्माण्युपक्रमश्च।।--अ० चू० सू० २०

प्रायः सभी दोष-विकार सम्बन्धी अवस्थाओं तथा विभिन्न रोग-दशाओं में भी--दोष के ये विशेष लक्षण और गुण जो स्वास्थ्य में व्यतिक्रम उत्पन्न करते हैं--रोगाक्रान्त व्यक्ति में सर्वप्रथम प्रकट होकर सम्पूर्ण शरीर पर छा जाते हैं, और अविचलित रूप से रोगावस्था की सम्पूर्ण अवधि तक विद्यमान रहते हैं। इतना ही नहीं, इन गुणों के प्रभावों का द्योतन भी करते और उस अवसर के लिए जिस विशेष उपचार-पद्धति की आवश्यकता होती है, उसका भी संकेत अथवा निर्देशन करते हैं।

सुश्रुत द्वारा वर्णित प्रारम्भिक तीन अवस्थाओं और व्यावहारिक चिकित्सा एवं शल्य-क्रिया के महान् आचार्य डाक्टर हान्स सेली (Dr. Hans Salye) द्वारा प्रतिपादित श्रम (Stress) सम्बन्धी नवीन मान्यताओं में एकरूपता का होना निश्चय ही एक शुभ बात है। वस्तुतः डाक्टर हान्स सेली ने आधुनिक युग में अपनी मान्यताओं (Concepts) को स्थापित करके व्याधियों के प्राकृतिक इतिहास तथा चिकित्सा विषयक मान्यताओं में महान् क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। प्रयोगों के सहारे अध्ययन करने के बाद जिन निष्कर्षों पर डा० सेले पहुँचे हैं, उसके लिए हिप्पोक्रेट स्कूल (Hippocratic School), मनः शारीरिक स्कूल (Psychosomatic School), पूर्ण व्यक्तित्व सम्बन्धी सिद्धान्तों के प्रतिपादक तथा आयुर्वेदज्ञ--ये सभी डा० सेली के सदैव आभारी रहेंगे, क्योंकि डा० सेली ने अपने प्रायोगिक अध्ययन द्वारा मानव जीवन और उसके प्रारब्ध (Destiny) विषयक सिद्धान्तों के रहस्यों का गुर (हल) ढूँढ़ने का प्रयास किया है। जहाँ तक आयुर्वेद का प्रश्न है, उसे तो डा० सेली सरीखे पाश्चात्य विद्वान् के प्रति विशेष रूप से कृतज्ञ होना चाहिए, क्योंकि उनके द्वारा प्राच्य जगत में अति प्राचीन काल में विकसित अत्यन्त आदर्शपूर्ण योजना विस्तृत और परिष्कृत की गयी है। इससे यह स्पष्ट है कि कोई भी व्यक्ति, चाहे वह किसी भी देश, सम्प्रदाय अथवा राष्ट्रीयता का क्यों न हो--मानव-ज्ञान को समृद्ध कर सकता है तथा ज्ञान के क्षेत्र में ऐसे विशिष्ट अवदान देने का दावेदार बन सकता है। डाक्टर सेली ने जो सिद्धान्त स्थिर किया है--उसे "जेनरल एडेप्टेशन सिण्ड्रोम" (जी० ए० एस०) कहते हैं। इसकी तीन अवस्थाएँ होती हैं--यथा--(१) दी एलार्म रिएक्शन (The alarm reaction), (२) दी स्टेज आफ रेसिसटेन्स (The stage of resistance), तथा (३) दी स्टेज आफ एक्झौसन (The stage of exhaustion)। (एलार्म रिएक्शन को दो स्थितियाँ होती हैं--घात और प्रतिघात)।

सुश्रुत द्वारा वर्णित प्राथमिक अवस्था की तीन स्थितियाँ प्रायः सभी रोगावस्था में पायी जाती हैं। प्रत्येक स्थिति में लक्षणों के प्रकट होने का तारतम्य किस प्रकार रहता है तथा चिकित्सा में उन लक्षणों का क्या महत्व है--उसके सम्बन्ध में अब विचार किया जायगा।

**संचय की प्रथमावस्था**--सर्वप्रथम रोगाक्रान्त व्यक्ति के शरीर में रोगकारी तत्वों का संचय (accumulation) होता है। आयुर्वेद शरीर विज्ञान (Physiology) और व्याधिशास्त्र (Pathology)--इन दोनों ही विज्ञान की पारस्परिक एकता में विश्वास करता है, जैसा कि शारीरशास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान् क्लॉड बरनाड ने किया है। आयुर्वेद का निदान सम्बन्धी त्रिदोष सिद्धान्त अत्यन्त विकसित और वैज्ञानिक है। आयुर्वेद के अनुसार वात-पित्त-कफ--इन त्रिदोषों की समावस्था में स्वास्थ्य ठीक बना रहता है और ज्यों ही इनमें विषमता आयी कि व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं--इनके असंतुलित होते ही व्यक्ति व्याधिग्रस्त हो जाता है।

रोगस्तु दोष वैषम्यं दोषसाम्यमरोगता।

--अ० सु० सू० १

सुश्रुतने संचयावस्था के पूरक सह लक्षणों (Integrative Syndrome) को तीन प्राथमिक पूरक संघटनों में वर्गीकृत किया है--और व्यावहारिक उपचार के लिए इसको बड़ा महत्वपूर्ण बताया है।

**प्रसर की द्वितीयावस्था**--इस अवस्था में त्रिदोष तत्वों की प्रकोपक प्रतिक्रिया होती है और प्रकोप अपने चरम विन्दु पर जा पहुँचता है। सुश्रुत ने प्रकोपावस्था के लिए निश्चित लक्षणोंको कारण बताया है और व्यावहारिक चिकित्सा की दृष्टि से प्रकोपावस्था को संचयावस्था के बाद दूसरा स्थान दिया है।

**प्रसर की तृतीयावस्था**--प्रसर-प्रक्रिया की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए सुश्रुत ने एक अत्यन्त अद्भुत बात लिखी है--दूषण की प्रसर-प्रक्रिया (Process of diffusion) में त्रिदोष तत्व उत्तेजक कारणों से प्रकुपित होकर बढ़ने लगता है और जिस तरह प्रकिण्व (खमीर) में उफान आता है, उसी तरह का उफान (Fermentation) आने लगता

है। इसका लाजिमी तौर पर यह परिणाम होता है कि शरीर में इसका प्रसार हो जाता है।

दोषकारी प्रभाव बढ़ता है और शरीर में––जिस प्रकार आकाश में बादल मँडराया करते हैं––ठीक उसी प्रकार चक्कर लगाना जारी रखता है––वह चक्कर तब तक नहीं रुकता जबतक कि किसी स्थान-विशेष पर रोगोत्पत्ति हो नहीं जाती।

सुश्रुत ने प्रसर-अवस्था को प्रकट करने वाले कतिपय निश्चित लक्षणों का वर्णन किया है और सुश्रुतानुसार इस अवस्था का चिकित्सा की दृष्टि से तीसरा स्थान है।

सुश्रुत ने उपर्युक्त तीन अवस्थाओं के पूरक सह लक्षणों का वात-पित्त और कफ इन तीन वर्गों में वर्गीकृत किया है। लक्षण निम्न प्रकार हैं––स्तब्धकोष्ठता, पूर्णकोष्ठत्ता, पीतावभासता, मन्दोष्मता, अङ्गानां गौरवं, आलस्य और चयकारण विद्वेष।

द्वितीय प्रकोपावस्था के लक्षणों का भी इसी प्रकार तीन वर्गों यथा वात, पित्त और कफ––में वर्गीकरण किया गया है :––कोष्ठतोद, कोष्ठसंचरण, अम्लीका, परिदाह, अन्नद्वेष, हृदयोत्क्लेद तथा अस्वास्थ्य।

तृतीय प्रसर-अवस्था के लक्षणों का जो तीन विशिष्ट वर्गों में वर्गीकरण किया गया है, वे इस प्रकार हैं––वायोविमार्गगमन, आटोप, ओष, चोष, परिदाह, धूमायन, अरोचक, अविपाक, अङ्गसाद, छर्दि और रोगसंभव।

एक चिकित्सक (वैद्य) को क्या-क्या जानना चाहिए, इसकी शिक्षा देते हुए सुश्रुत ने लिखा है कि चिकित्सक को अनिवार्यरूपेण रोग-अवस्था के काल-क्रियानुसार छः स्थितियों का ज्ञान होना चाहिए––और निम्नलिखित श्लोक में सुश्रुत रोग के काल-क्रमानुसार अध्ययन के मूलभूत सिद्धांत निरूपित करते हैं, जो इस प्रकार है––

संचयेऽपहृता दोषा लभन्ते नोत्तरा गतिः।
ते तूत्तरासु गतिषु भवन्ति बलवत्तराः॥
सु० सू० २१–३७

तात्पर्य यह है कि संचयकाल में ही यदि दोषों का अपहरण कर दिया जाए अथवा उन्हें नियंत्रित कर दिया जाए तो उसकी प्रगति रुक जाती है। किन्तु उत्तरोत्तर स्थिति में जाकर दोष क्रमशः अधिकाधिक शक्तिशाली होते जाते हैं। इस प्रकार व्यावहारिक चिकित्सा की दृष्टि से प्रत्येक अवस्था के साङ्गोपाङ्ग अध्ययन की अनिवार्यता पर विशेष जोर दिया गया है।

रोग की प्रारंभिक अवस्था में चिकित्सा करना सरल और आशुफलदायक होता है। किन्तु विलम्ब से जबकि दोषों की व्याप्ति गंभीर रूप से हो जाती है, चिकित्सा करना सरल कार्य नहीं होता।

चूँकि इन तीनों अवस्थाओं में रोग की कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं होती, इसलिए लाजिमी तौर पर उपचार भी सामान्य ही होता है। आयुर्वेद में इनको दोष की विषमावस्था (Stage of Dosha disturbance) बताया गया है, फलतः दोष का शमन करके इन्हें सन्तुलित करने की दृष्टि से ही उपचार होना चाहिए, जिससे कि पूर्ववत् स्वास्थ्य में दृढ़ता (Homoeostasis) और व्यक्ति की मनः शारीरिक स्थिति में स्थिरता बनी रहे।

सुश्रुत संहिता के टीकाकार डह्लण ने निम्न लिखित तथ्य निरूपण किया है––

(१) यदि प्रारंभिक अवस्था में चिकित्सा हो तो मामूली उपचार की ही आवश्यकता होगी किन्तु विलम्ब से चिकित्सा प्रारंभ करने पर प्रकृष्ट उपचार (Intensive Treatment) की आवश्यकता पड़ सकती है; (२) यदि रुग्णावस्था पर्याप्त गंभीर रूप धारण कर चुकी हो तो वैसी स्थिति में शोधन चिकित्सा (Purificatory Type of treatment) की जानी चाहिए। यदि सामान्य अस्वस्थता हो तो लंघन पाचन से भी काम चल जा सकता है और यदि रोग बिल्कुल ही कम हो तो शमनोपचार (Sedative Therapy) का प्रयोग किया जाना चाहिए।

वात-पित्त-कफ––इन तीनों की अनुकूलता को दृष्टिगत करते हुए उपर्युक्त जितने भी उपचार बताये गए हैं, उनके भी आगे जाकर और भी उपविभाग किये गए हैं। इतना ही नहीं, इन सब उपचारों की विभिन्न पद्धतियों को समन्वित करने का भी प्रयास किया गया है।

प्राचीनों ने औषधि-विज्ञान (Therapeutic Science) को गणित के सूत्रों की तरह सटीक और निश्चित तथा यथार्थ रूप प्रदान किया जिससे कि सामान्यजन के लिए भी यह बोधगम्य हो सके। उस प्राचीन युग में औषध या तो भोजन के साथ या पृथक् औषध ही दी जा सकती थी इसके सिवा अन्य कोई साधन नहीं था। इसलिए, रस (Taste) को छः श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया

जिससे कि दोष के तीन प्राथमिक संघटन तीन उप श्रेणियों के अनुकूल हो सके।

दोष और रस विषयक गणित सदृश सूत्रों का अन्त यहीं नहीं हो जाता। जिस प्रकार संयोग और परिवर्तन (Combination and permutation)-पद्धति से दोष के ६३ प्रकार होते हैं, उसी प्रकार उसी पद्धति से रस के ६३ प्रकार हैं।

इति त्रिषष्टिर्द्रव्याणं निर्दिष्टा रस संख्यया।
त्रिषष्टिः स्यात्तु असंख्येयारसानुरसकल्पनात्।
रसास्तरतमाभ्यां तां संख्यामतिपतन्ति हि॥

च० सू० १६

इस प्रकार रसों (Tastes) के अनुसार द्रव्यों को ६३ वर्गों में विभाजित किया गया है। ६३ की यह संख्या रस के प्रभावों पर विचार करने से बढ़कर बेहिसाब (असंख्य) हो जाती है। उसी प्रकार रसों (Tastes) की 'तर' और 'तम' अवस्थाओं पर यदि विचार किया जाय तो संख्याओं की गणना कठिन हो जाती है।

इसके अतिरिक्त दोष पर 'तर' और 'तम' अवस्थाओं की दृष्टि से भी विचार किया गया है--इसी प्रकार रस (Taste) दोष के साथ सम्पृक्त किया गया है।

प्राधान्यं पुनर्दोषाणां तरतमाभ्यामुपलभ्यते।
तत्र द्वयोस्तरः त्रिषु तम इति॥ च० नि० १-६

अर्थात् दोषों की प्रधानता 'तर' और 'तम' के लगाने से ज्ञात होती है। दो में प्रधान हो तो 'तर' और तीन में प्रधान हो तो 'तम' लगाया जाता है।

अंतिम किन्तु महत्वपूर्ण बात त्रिदोष के गुण विषयक सूक्ष्मातिसूक्ष्म गणन सम्बन्धी है।

'समवेतानां पुनर्दोषाणामंशांशबलविकल्पोविकल्पोऽस्मिन्नर्थे'।

च० नि० १-६

अर्थात् रोग के साथ समवाय सम्बन्ध से स्थितदोषों के अंशांश के बल की कल्पना को विकल्प कहा गया है। चाहे रोग को उत्पन्न करने में एक दोष हो, दो दोष हों वा तीन दोष हों। एक दोष में अंश-अंश के बल की कल्पना हो सकती है। इस प्रकार दोषों के अन्योन्याश्रय सम्बन्ध (Interrelation) के बारे में आयुर्वेद के प्राचीन आचार्यों ने गणित के सूत्र की तरह जो सिद्धान्त निरूपित किए हैं, वह व्यावहारिक उपचार की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और इन सिद्धान्तों की पूर्णता और सुतथ्यता (Precision) विषयक प्राचीनों की निपुणता इससे अभिव्यक्त होती है।

इस अवधि में संशोधन (Purification) अथवा संशमन (Sedation)-पद्धति के द्वारा दोष-शमन करने का प्रयास किया जाता है। ये सब के सब उपचार सामान्य प्रकार के हैं, और इनकी प्रतिक्रिया शरीर में प्रायः एक-सी होती है। इनसे शरीर की स्वाभाविक प्रतिरोध-शक्ति उत्तेजित हो सकती है और शरीर के सारे रक्षात्मक घटक सक्रिय हो जाते हैं--और पुनः शरीर रोगकारी आक्रामकों के साथ खुलकर संघर्ष करता है।

चतुष्प्रकारा संशुद्धिः पिपासा मारुतातपौ।
पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेति लङ्घनम्॥

चार प्रकार का संशोधन---वमन, विरेचन आस्थापन, शिरोविरेचन, प्यास (प्यास के वेग को रोकना), वायु, धूप, पाचनद्रव्य, उपवास, व्यायाम, लङ्घन, चिकित्सा (Lightening Therapy) के ये १० प्रकार हैं। इनके अतिरिक्त स्नेहन (Oleation), स्वेदन (Sedation), रक्तस्राव (Depletion of blood), अथवा अग्निकर्म (Cauterisation by heat) प्रभृति चिकित्सा की प्रमुख पद्धतियाँ हैं, जो तीनों प्रारम्भिक अवस्थाओं में प्रयुक्त होती हैं। उपचार सम्बन्धी इन पद्धतियों का आगे और भी वर्गीकरण किया गया है और त्रिदोषजन्य रोगावस्था की उग्रता अथवा तीव्रता के अनुसार उपचार सम्बन्धी ये विविध पद्धतियाँ प्रयुक्त की जाती हैं। उपचार (चिकित्सा) सम्बन्धी ये अनेक पद्धतियाँ (Types) डाक्टर सेली के सिद्धान्तों से मिलती-जुलती प्रमाणित होंगी। ये पर्यवेक्षण (Observation) क्लीनीकल सायंस के क्षेत्र में किये गये हैं। ये किस प्रकार कार्य करते हैं---यह एक ऐसी समस्या है जिसका निर्णय परीक्षात्मक विज्ञान (Experimental Science) को ही करना है। आयुर्वेद में प्रयुक्त शब्दों का प्रयोग न करके यह बात कही जा सकती है कि रोग की प्रारम्भिक अवस्था में रोगकारी कारणों (Pathogenic agents) को मनुष्य की प्रतिरोध शक्ति के साथ संघर्ष करना पड़ता है। द्वितीयावस्था में स्वेच्छया नाड़ी-संस्थान अपना कार्य करता है, तृतीयावस्था अन्तरासर्गीग्रंथि---संस्थान (Endocrine glandular system) को कार्यरूप में परिणत करती है। सामान्य चिकित्सा में इस अवस्था को निदान की अवधि (Incubation period) कहा जाता है।

(सावशेष)

**समय की मांग——**

# सिद्धौषधि-पाठविनिश्चय

**वैद्य विन्दुमाधव पण्डित**

फरवरी १९५९ का 'सचित्र आयुर्वेद' अंक पढा। इस अंक के अन्त में २४ पृष्ठों का एक परिशिष्ट छपा हुआ है। इसका नाम है 'शारीरः शब्दसंग्रहः'। आयुर्वेदशास्त्र में इतना शारीर विज्ञान संक्षिप्त है। उस को विस्तृत बनाने की आवश्यकता है। विस्तृत शारीरग्रन्थ-निर्माण करने के लिये विपुल शारीर-संज्ञाओं की आवश्यकता होती है। विस्तार के समय अधिक शारीर-शब्दों की योजना करनी होगी। किंतु आज जो शारीर-संज्ञा आयुर्वेद-संहिता-ग्रन्थों में तथा अन्यत्र उपयुक्त हैं, उनका उपयोग नये बननेवाले शारीर-ग्रन्थ में भी प्रथम करना उचित होगा। इसलिये इन पुरानी शारीर-संज्ञाओं का अर्थ को निश्चित करना होगा। इसी उद्देश्य से गत कुछ वर्षों से बम्बई राज्य में और भारत के अन्यान्य प्रदेशों में प्रयत्न हो रहे हैं, यह संतोष का विषय है। भारत के विद्वान् वैद्य लोग इस कार्य में अपना सहयोग देकर इस कार्य की पूर्ति करेंगे तो एक महान् त्रुटि समाप्त हो जायगी।

## चिकित्सा-व्यवहार-व्यवस्था के लिये

आयुर्वेदीय शारीर वाङ्मय को समृद्ध करने के लिये शारीर-संज्ञा विनिश्चय की जिस तरह आवश्यकता है, भारतीय आयुर्वेदीय चिकित्सा-व्यवहार को व्यवस्थित करने के लिये आयुर्वेदीय सिद्धौषधि-संज्ञाओं की निश्चिति भी उसी प्रकार आवश्यक है। पहले जब केवल वनस्पति-चिकित्सा प्रचलित थी तब 'अमृता' नाम से कौन-सी वनस्पति के कौन-से अंग का व्यवहार होगा यह निर्णय आवश्यक था। 'अमृता' संज्ञा जैसे 'गुडूचि' की है, वैसे ही 'अफीम' आदि विषद्रव्यों को भी दी जाती है। 'अमृत वटी' नाम से अफीमयुक्त गोलियों का व्यवहार अतिसार जैसी व्याधि में होता है। हरीतकी, आमलकी आदि को भी 'अमृता' संज्ञा दी गयी है। इसलिये गुरुपरंपरा की पद्धति के स्थान पर जब विद्यापीठीय अध्ययन-अध्यापन-पद्धति शुरू हुई है, और अखिल भारत में आयुर्वेद का अध्ययन-अध्यापन और संशोधन एक परिभाषा में होना अनिवार्य हो गया है, तब पुराने काल में जो व्यवस्था पर्याप्त-सी प्रतीत होती थी, वह आज भी वैसी ही काम देगी, ऐसा मानना उचित नही होगा।

## एक शास्त्रीय परिभाषा

आज विज्ञान के जो आविष्कार होते हैं उनको ठीक-ठीक समझने और समझाने के लिये एक शास्त्रीय परिभाषा की आवश्यकता होती है। वैसे ही आयुर्वेद में उपयुक्त प्रत्येक औषधीय द्रव्य की निश्चिति होनी चाहिये। निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महासंमेलनों में और प्रादेशिक वैद्य संमेलनों में बहुत वर्षों से वनस्पति, खनिज और प्राणिज द्रव्यों के प्रदर्शन हुआ करते हैं, तो भी आजकल एक भी संदिग्ध द्रव्य के विषय में निर्णय नहीं हो सका—यह स्थिति शोचनीय है। विभिन्न प्रान्तों में रास्ना, पर्पट आदि के नाम से विभिन्न वनस्पतियों का व्यवहार आज भी होता है और उनसे ठीक-ठीक लाभ होता है, ऐसा वहाँ के वैद्यगण मानते हैं। इनमें असली वस्तु कौन-सी है, यह निर्णय कैसे किया जा सकता है? इस प्रकार की जो संदिग्ध और अनिर्णीत औषधि-वस्तु हैं उनका प्रश्न प्रथम न उठाकर, जो-जो वस्तु सर्वसामान्य हैं,उनके बारेमें प्रथम निर्णय किया जा सकता है। और वह निर्णय करने की अत्यन्त आवश्यकता है। पहले जमाने में एक-एक वैद्य जंगल से वनस्पति लाकर उनके चूर्ण, कल्क, क्वाथ, क्षार बनाकर रोगियों को देते थे। अब नित्य-प्रति सिद्धौषधि कल्पों का व्यवहार बढ़ रहा है और आगे-आगे अधिकाधिक बढने वाला है।

## सिद्धौषधि-प्रचार बढ़ने का कारण

अग्नितुंडी, अश्वकंचुकी, आनन्द भैरव, आरोग्यवर्धिनी, इच्छाभेदी, कनकसुन्दर, कृमिकुठार, कामदुधा, गर्भपालरस, गंधकरसायन, चन्द्रकला, चन्दप्रभा, ज्वरांकुश, त्रिभुवन-कीर्ति, नागरस (नागगुटी), पंचामृतपर्पटी, प्रतापलंकेश्वर, योगराजगुग्गुलु, लक्ष्मीविलास, वातविध्वंसन रस, सूतशेखर, संजीवनी, अर्जुनासव, खदिरारिष्ट आदि सिद्धौषधियों के प्रयोग के विना आयुर्वेदीय चिकित्सा-व्यवहार करना, आजके

आयुर्वेदीय चिकित्सकों के लिये अशक्य-सा हो गया है। कज्जलि, हिंगुल, रससिंदूर आदि से युक्त जो कल्प होते हैं, वे अल्प मात्रा में गुणकारी होते हैं। रुचि में भी विशेष कड़वे-कषैले नही लगते हैं, इसलिये इनका प्रचार बढ़ा है। किंतु एक ही नाम से जो अनेक दवाएँ चलती हैं उनके घटक-द्रव्यों में और कृति में भेद होने से चिकित्सक और रुग्ण के संबन्धी जन दोनों संशय में पड़ जाते हैं और व्यवहार विगड़ जाता है। उदाहरण के लिये अग्नितुंडीरस नामक कल्प के पाठ की ओर ध्यान दीजिये। महाराष्ट्र में अग्नितुंडी रस के दो भिन्न पाठों का व्यवहार होता है। एक 'रस चंडाशु'में मुद्रित 'बसवराजीय' पाठ है :—

## अग्नितुंडी रस का एक पाठ

शुद्धं सूतं विषं गंधमजमोदाफलत्रिकम् ।
सर्जिक्षारं यवक्षारं वह्नि सैंधव जीरकम् ।।
सौवर्चलं विडंगानि सामुद्रं त्र्यूषणं तथा ।
विषमुष्टि सर्वसमां जम्बीराम्लेन मर्दयेत् ।।

**गुण-पाठ—**

मरिचाभां वटीं खादेत् वह्निमांद्यप्रशान्तये ।
सा वटी वल्लयुगुला सेविता जयति ध्रुवम् ।।
वह्निमांद्यं अजीर्णं च विषूचीं ग्रहणी गदम् ।
शूलं कोष्ठगतं वातरोगान् अन्यांश्च नाशयेत् ।।
शूलं सर्वांगजं वाऽपि शूलं वा परिणामजम् ।
आमवातं विशेषेण हन्ति तत्त्वं शिवोदितम् ।।

—बसवराजीय, रसचंडांशु

इस पाठ के अनुसार सिद्धौषधि अहमदनगर के आयुर्वेदाश्रम फार्मेसी लि० में बनती है (देखिये, औषधि गुणधर्म शास्त्र, भाग-दूसरा)। पूना की आयुर्वेद रसशाला में बनने वाले अग्नितुंडी रस का पाठ रसरत्न समुच्चयोक्त है ।।

## अग्नितुण्डी रस का दूसरा पाठ

उदराध्माननुत्यर्थं रसो ह्येष निगद्यते ।
अग्नितुंडेति विख्यातः सर्वोदरगदापहः ।।
रस गन्धाऽजमोदानां कृमिघ्न-ब्रह्मबीजयोः ।
एक द्वि त्रि चतुः पंचभागान् सविषतिंदुकान् ।।
संचूर्ण्य मधुना सर्वं गुटिकां कृमिनाशिनीम् ।
खादयित्वाऽनु तोयं तु मुस्तानां कृमिशान्तये ।।

—भारत भैषज्यरत्नाकर (२६५)

## दोनों पाठों की तुलना

अग्नितुण्डी रस के दोनों पाठों में मुख्य विषद्रव्य विषमुष्टि (कुचला) है और वह पूर्ण प्रमाण की आधी मात्रा जितना है। दोनों पाठों में इतनी ही समानता है। किन्तु प्रथम पाठ में सज्जिखार, यवक्षार, सैंधव, सौवर्चल, सामुद्रलवण ये ५ क्षार-लवण द्रव्य हैं, अजमोदा, विडंग, चित्रक, जीरक, त्रिकटु ये ७ कटु द्रव्य हैं। इनके अतिरिक्त त्रिफला, पारद-गंधक-कज्जली और मीठा तेलिया (बच्छनाग) यह विष भी है। कुल द्रव्यों की संख्या १८ है; उन्नीसवां द्रव्य विषमुष्टि है। भावना द्रव्य जम्बीराम्ल है।

## क्रिमिनाशक अग्नितुण्डी

दूसरे पाठ में १ भाग शुद्ध पारद, २ भाग शुद्ध गंधक, ३ भाग अजमोदा, ४ भाग विडंग, ५ भाग पलाशबीज ऐसे क्रमवर्धित प्रमाण में केवल ५ ही द्रव्यों का प्रयोग किया है। छठा द्रव्य विषमुष्टि है। भावना द्रव्य मधु है। क्रिमिघ्न द्रव्यों की अधिक मात्रा में इसमें योजना हुई है। इससे यह क्रिमिघ्न योग बन गया है।

## संज्ञाभेद की आवश्यकता

यदि किसी चिकित्सक ने अपने चिकित्सापत्रक में रोगी को कृमिनाश करने के लिये अग्नितुण्डी रस लिख दिया, और औषधालय में उसको अग्नितुण्डी रस नाम से प्रथम पाठ का कल्प मिला, तो रोगी को अपेक्षित कृमिनाशन कार्य का अनुभव नहीं मिलेगा। वैसे ही अनुलोमन, दीपन और शूलघ्न कार्य का लाभ दूसरे पाठ के अग्नितुंडी रस से कम मिलेगा। इन दोषों को हटाने के लिये 'अग्नितुंडी रस' यह औषधी नामक संज्ञा प्रथम पाठ के रस को ही देना उचित होगा। दूसरे पाठ के रस के लिए भी अग्नितुंडी, यह संज्ञा रखनी हो तो अग्नितुण्डी रस (कृमिघ्न) ऐसे लिखना होगा। अग्नितुंडी (क्रमांक १) अग्नितुंडी (क्रमांक २) ऐसा भी नामकरण हो सकता है। किन्तु केवल 'अग्नितुंडी' शब्द योजना भ्रमकारक ही होगी। वैसे ही केवल "आयुर्वेदाश्रम अग्नितुंडी' या 'रसशाला अग्नितुंडी' लिखने से बोध नहीं होगा। लेबल पर पूरा पाठ देने से भी रोगी कुछ नहीं समझ सकेगा। इसके लिये औषधी-संज्ञा-भेद ही होना चाहिये।

## आनन्दभैरव के पाठ-भेद

आनंदभैरव, त्रिभुवनकीर्ति, ज्वरांकुश ये तो ज्वरव्याधि की सर्वमान्य औषधियां हैं। किन्तु इनके पाठों में भी भेद-निर्माण हुए हैं। हिंगुल, विष, टंकण, मरिच और पिप्पली ये पांच द्रव्य समभाग लेने से 'आनंदभैरव' बन जाता है। किंतु इसके भावना-द्रव्य खट्टानिंबूस्वरस, आर्द्रकस्वरस, कुटजमूल और कुटजफल-क्वाथ ऐसे भिन्न-भिन्न होने से उसके प्रकार बन गये हैं। आनंदभैरव (कास), आनंदभैरव (अग्निमांद्य), आनंदभैरव (अतिसार), ऐसे नाम से व्यवहार भी होता है। किसी ने उसमें सोंठ और गंधक ये दो द्रव्य अधिक मिलाकर ७ द्रव्यों का आनंद भैरव भी बनाया है। ऐसा परिवर्तन करने से सिद्धौषधि के कार्यकारित्व में हेरफेर हो जाता है। रोगी को देने की मात्रा में भी परिवर्तन करना पड़ता है, क्योंकि अन्य द्रव्य बढ़ जाने से विष का प्रमाण कम हो जाता है। इसलिये आनंदभैरव नाम का एक ही पाठ कायम करना चाहिये और उसमें कौन-सा द्रव्य कितने प्रमाण में रहेगा, यह भी निश्चित होना चाहिए। अखिल भारत के लिये एक प्रामाणिक सिद्धौषधि पाठ चिंतामणि तैयार कर के मुद्रित कराना चाहिये और उसी के अनुसार भारतीय औषधि निर्माणशालाओं में दवाएँ बननी चाहिये।

## आरोग्यवर्धिनी-घटक की गणना

आरोग्यवर्धिनी रस जैसी सिद्धौषधियों के बारे में दूसरे ढंग की समस्या है। आरोग्यवर्धिनी का पाठ इन श्लोकों में वर्णित है :—

रसगन्धकलोहाभ्र शुल्व भस्म समांशकम् ।
त्रिफला द्विगुणा योज्या, त्रिगुणं तु शिलाजतु ।।
चतुर्गुणं पुरं शुद्धं, चित्रमूलं च तत्समम् ।
तिक्ता सर्व समा देया सर्वं संचूर्ण्य यत्नतः ।।
निंबवृक्षदलांभोभिः मर्दयेत् द्विदिनावधि ।
ततस्तु गुटिका कार्या राजकोल फलोपमा ।।
मडलं सेविता ह्येषा हन्ति कुष्ठान्यशेषतः ।।

—रसयोगसागर ३२५

इसमें शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म ये पांच द्रव्य एक-एक तोला लेने को कहा है। त्रिफला 'द्विगुणा', इस बचन से केवल २ तोला लेना, या हरीतकी, आमलकी और बिभीतक यह प्रत्येक द्रव्य २-२ तोला लेना इसका निर्णय होना चाहिए। त्रिफला में आने वाले ३ द्रव्य भिन्न-भिन्न गिने जायं, या त्रिफला को एक द्रव्य समझ कर व्यवहार में लाया जाय, इसका विचार भी निश्चित होना चाहिये।

## समुच्चयवाचक शब्दों का विचार

वैसे ही जहाँ व्योष, त्रिकटु इन समुच्चय वाचक शब्दों का प्रयोग आता है, वहाँ पर इनको तीन द्रव्य समझना चाहिये या एक समुच्चय समझकर चलना चाहिए, इसके निर्णय की भी आवश्यकता है। त्रिफला को एक द्रव्य समझकर औषधी बनाना हो तो कटुका का प्रमाण १८ तोला लेना होगा। त्रिफला के तीन द्रव्य अलग-अलग दो-दो तोले लिये तो कटुका का प्रमाण २२ तोला होगा। पहली पद्धति से कुल दवा ३६ तोला बनेगी तो दूसरी पद्धति से ४४ तोला होगी। अहमदनगर की आयुर्वेदाश्रम फार्मेसीमें हरीतकी, बिभीतक, और आमलकी अलग-अलग दो-दो तोला लेने का रिवाज है। (औषधिगुणधर्मशास्त्र भाग २ रा ) पूना आयुर्वेद रसशाला १८ तोला अन्य द्रव्य और १८ तोला कटुका लेती है (देखिये चिकित्सा प्रदीप पृष्ठ ११८)। कटुका का प्रमाण ३२ तोला से भी ज्यादा डालकर अन्य फार्मेसियों में आरोग्यवर्धिनी नं० २ बनती है, ऐसा सुना है। शायद सस्ती सिद्धौषधि बनाने के लिये ऐसा करते होंगे या गणना का और भी कुछ तरीका होगा।

## भस्मों की कृति का विचार

आरोग्यवर्धिनी रस जैसे सिद्धकल्पों में अभ्रकभस्म डालनी हो तो वह वनस्पतिमारित या क्षारमारित है तथा उनके मारण के बाद १०-२०-५०-१०० इनमें कितने पुट दिये गये हैं या देने चाहिये, इसका भी स्पष्ट विवरण भारतीय सिद्धौषधि पाठ चिंतामणि में होना चाहिए। वैसे ही लौहभस्म, ताम्रभस्म इनकी कृति भी निश्चित होनी चाहिये। सिद्धौषधियों में पड़ने वाले त्रिफला में हरीतकी नाम से कौन-सी हरीतकी (बड़ी हरड़, मामूली हरड़ या बाल हरड़) ली जाय, इसका भी विचार करना होगा।

## लक्ष्मीविलास के नाना प्रकार

दूसरे एक स्नातक लेखक ने संतत ज्वर की चिकित्सा लिखते समय लक्ष्मीविलास रस का प्रयोग बताया है। सुबह, दोपहर और शाम लक्ष्मीविलास १ रत्ती, सुवर्ण-

सूतशेखर, आधी रत्ती, कर्पूरादि चूर्ण १ माशा, और मृगशृङ्गभस्म १ रत्ती यह मिश्रण दिन में तीन बार ५-५ घंटेके बाद आर्द्रक रस और मधु के साथ देने को कहा है। संतत ज्वर में १५ दिन तक दिया जानेवाला यह लक्ष्मीविलास रस कौन-सा है, यह जानने का प्रयत्न किया तब लेखके अन्त में लक्ष्मीविलास के पाठ का विवरण मिला। सुवर्ण भस्म, रौप्यभस्म, मौक्तिकभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म वंगभस्म, कांतलौहभस्म, तीक्ष्णलौहभस्म, मुण्डलौह भस्म, नागभस्म, और शुद्ध विष, ये ११ द्रव्य एक-एक तोला, और उनके समप्रमाण रससिंदूर (११ तोला) ऐसे २२ तोला औषधि-द्रव्य का मधु में खरल करके उसको 'लक्ष्मीविलास' नाम दिया है। यह योगरत्नाकर ग्रन्थ का पाठ है। पाठ में इस सिद्धौषधि का नाम 'लक्ष्मीविलास' दिया हुआ है। किंतु इसी औषधि का नाम अहमदनगर के आयुर्वेदाश्रम फार्मेसी की औषधि-सूची में 'महालक्ष्मीविलास' दिया है। इसी औषधि-सूची में 'लक्ष्मी विलास' नाम से भैषज्यरत्नावली में प्रकाशित 'नारायणी लक्ष्मीविलास' प्रचलित किया है और 'लक्ष्मीविलास गुटी' ऐसा उसका दूसरा नाम रखा है। महालक्ष्मीविलास को 'सिद्धलक्ष्मीविलास' नाम से भी कुछ लोग लिखते हैं। 'लक्ष्मीविलास गुटी' में भस्म-द्रव्य केवल अभ्रक भस्म और उसके साथ विजया बीज (भांग बीज), विदारीकंद, शतावरीमूल, नागबला मूल, अतिबला मूल, गोक्षुर, जलवेतस बीज, कपूर, जातीफल, जातिपत्र, वरियारा बीज, धतूर बीज और पारद की गंधक-कज्जली इतने द्रव्य होते हैं। यह वनस्पतिप्रधान हृद्य कल्प है। योगरत्नाकरोक्त लक्ष्मीविलास भस्म, रससिंदूर और विष मिलाकर बनता है।

इन दोनों कल्पों में बहुत-सा अन्तर होते हुए भी उनका एक ही नाम से व्यवहार अति संदेहकारी है। अश्वत्थामा (द्रोणपुत्र) और अश्वत्थामा (गज) इनमें जैसा अन्तर था, वैसा ही अन्तर यहाँ भी है। रुग्ण-चिकित्सा-व्यवहार में एक ही नाम से दो भिन्न औषधियों का प्रयोग निश्चय ही हानिकर हो सकता है।

## डाक्टर कुंटेजी का आक्षेप

आयुर्वेदीय सिद्धौषधियों के पाठ भिन्न-भिन्न होने से चिकित्सा-व्यवहार विगड़ जाता है, यह बात आज से ७० वर्ष पूर्व बम्बई के सुप्रसिद्ध डॉ० अण्णा मोरेश्वर कुंटेजी को भी खटक रही थी। १८९० ई० में बम्बई में वैद्य-डॉक्टरों की एक सभा वैद्यवर्य प्रभुराम जीवराम औषधालय में हुई थी, तब डॉ. कुंटेजी ने आयुर्वेदीय चिकित्सा-व्यवहार का यही प्रमुख दोष बताया था। उन्होंने कहा था—'जिस औषधि की अपेक्षा हो, वह तैयार तुरंत मिलने की व्यवस्था आयुर्वेद में नहीं है। भिन्न-भिन्न आयुर्वेद-ग्रन्थों में एक ही नाम के सिद्धौषधि प्रयोग के पाठ (रचना) भिन्न-भिन्न प्रकार के दिये हुए हैं। उदाहरणार्थ, एक हिंग्वष्टक का पाठ वाग्भट का भिन्न, योगरत्नाकर का भिन्न, भावप्रकाश का भिन्न, शार्ङ्गधर का भिन्न। इनमें से कौन-से पाठ के हिंग्वष्टक का व्यवहार करना ठीक होगा, यह समझ नहीं पड़ता। वैद्यलोग एक दवा एक किताब में देखकर और दूसरी दवा दूसरी किताब के आधार पर बनाते हैं। भारत में सर्वत्र एक ही ग्रन्थ को प्रामाण्य नहीं दिया जा रहा है। यह परिस्थिति बदलनी चाहिये।''

## आसवों के लिये छाल नहीं, काष्ठ-सार

खदिरारिष्ट, अर्जुनारिष्ट जैसे आसव-अरिष्टों के बारे में भी विचार होना चाहिये। आसव बनाने के लिए खदिर का सार यानी लकड़ी (पूर्णपक्व) होनी चाहिए, ऐसा चरकसंहिता के सूत्रस्थान में (अध्याय २५) स्पष्ट शब्दों में लिखा है। (देखिये—धान्य-फल-मूल-सार-पुष्प-काण्ड-पत्र-त्वचो भवन्ति आसवयोनयः अग्निवेश संग्रहेण अष्टौ शर्करानवमीकाः। · · · · · शाल-प्रियक-अश्वकर्ण-चंदन-स्यंदन-खदिर-कदर-सप्तपर्ण-अर्जुन-असन- अरिमेद-तिंदुक - किणिही-शमी-शुक्तिपत्र—शिंशपा-शिरीष-वञ्जुल-धन्वन - मधूकैः सारासवाः विशतिर्भवन्ति)। चंदनासव बनाने के लिये वैद्य लोग चंदन (सार) लकड़ी ही लेते हैं, छाल नहीं लेते। देवदारु-अरिष्ट बनाने के लिये देवदारु की लकड़ी ली जाती है, छाल नहीं। किंतु खदिरारिष्ट और अर्जुनारिष्ट बनाने में खदिर का काष्ठ और अर्जुन का काष्ठ (लकड़ी) लेना चाहिए इस बात (शास्त्र) को भूल जाते हैं। (देखिये—औषधिगुणधर्म शास्त्र भाग ५ वां, अहमदनगर और चिकित्साप्रदीप, पूना) जिस खदिर काष्ठ से कत्था निकालते हैं ऐसे सारभूत खदिर काष्ठ से ही खदिरारिष्ट बनाना चाहिये। तब ही वह लाभदायक (कुष्ठरोगनाशक) होगा। वैसे ही अर्जुनारिष्ट अर्जुन छाल से नहीं, लेकिन अर्जुनकाष्ठ से बनाना होगा। यदि मेरा यह निवेदन अनुभव के आधार पर

गलत लगता हो तो आगे के लिये आसवारिष्ट के लिये खदिर और अर्जुन का काष्ठ न लेकर छाल ही लेनी चाहिये, ऐसा संशोधन भारतीय औषधि पाठ चिंतामणि में प्रगट करना होगा। जिन वनस्पतियों का सार लेते हैं, उन की छाल उतनी गुणकारी होती नहीं, ऐसा अनुभव है।

नासिक में खदिरकाष्ठ से कत्था बनाने के कारखाने काम कर रहे हैं। वे खदिरकाष्ठ की छाल और ऊपर की सफेद लकड़ी छीलकर अंदर का सार भाग कैसे काम में लेते हैं, मिट्टी के बर्तनों में कैसे उबालते हैं, यह सब प्रत्यक्ष देखने को मिल रहा है। सारासवों की बनावट में पूर्ण पक्व और अन्दर की लकड़ी (काष्ठसार) कैसी लेनी चाहिए इसका प्रात्यक्षिक देखने को मिल रहा है।

## वर्तमान आयुर्वेद-पद्धति-शिक्षण-दोष

आज भारत में जगह-जगह मिश्र आयुर्वेद शिक्षणपद्धति प्रचलित है और आयुर्वेद के साथ-साथ प्रचुर प्रमाण में एलोपैथी का अध्ययन करना पड़ता है। आयुर्वेदीय सिद्धौषधियाँ किसी एक ग्रन्थ के आधार पढाई नहीं जाती है। रसरत्न-रत्नसमुच्चय, योगरत्नाकर, शार्ङ्गधर, भैषज्यरत्नावली, रसयोगसागर और भारत भैषज्य रत्नाकर आदि १८-२० ग्रन्थों में कथित सिद्धौषधियाँ विद्यार्थियों की पढ़नी होती है। इतने सर्व ग्रन्थ किसी के संग्रह में नहीं होते हैं। एक ही नाम की दवा के कितने पाठ अस्तित्व में हैं, उनका भी पता विद्यार्थियों को नहीं होता। भिन्न-भिन्न आयुर्वेद महाविद्यालयों में आयुर्वेदीय निदान-चिकित्सा पढानेवाले भिन्न-भिन्न परंपरा के अधीत वैद्य होते हैं। वे अपनी-अपनी परंपरा और अनुभव के आधार पर सिद्धौषधियों के अनुभूत प्रयोग पढ़ाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि दो स्नातकों में भी आयुर्वेदीय दवाओं के बारे में विचारों का आदान-प्रदान सुचारु रूप से नहीं हो पाता। इसलिये भारत में राज्यमान्य औषधि पाठ चिंतामणि का निर्माण होना अत्यन्त आवश्यक हो गया है।

## रसशास्त्र की पढ़ाई कब होनी चाहिये ?

इन सिद्धौषधियों के पाठों का और कृति आदि का अध्ययन अभ्यास-काल के प्रथम और द्वितीय वर्षों में होता है, जब रोगनिदान और रोगचिकित्सा का अध्ययन शुरू भी नहीं होता। यह पद्धति अत्यन्त सदोष है। अभ्यास काल के तीसरे और चौथे वर्ष में निदान-चिकित्सा की पढाई होती है जब कि रसशास्त्र का अध्ययन बंद हो चुका होता है। यह भी ठीक नहीं है। तृतीय और चतुर्थ वर्षों में चरकप्रणीत औषधि प्रयोग, स्वरस-कल्क-क्वाथ-चूर्ण-क्षार-आसव-अयस्कृति आदि पढ़ाये जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अग्नितुंडी, लक्ष्मीविलास, आनंदभैरव इन नामों की दवाओं में कौन-कौन-से संघटक द्रव्य होते हैं, इनका गंभीर संस्कार आयुर्वेद-अध्ययन काल में नहीं हो पाता है और इसी कारण वे चिकित्सा व्यवहार में आयुर्वेदीय दवाओं का प्रयोग नहीं कर सकते हैं। एलोपैथी की निदान-चिकित्सा उनको तृतीय-चतुर्थ-पंचम वर्षों में पढ़ाई जाती है और उसका संस्कार उनको एलोपैथी की सिद्धौषधि देने में प्रवृत्त करता है।

## सरकारी औषधि-भंडार की योजना

प्रत्येक राज्य में सरकार की ओर से या सहायता से बहुत से आयुर्वेदीय और एलोपैथिक दवाखाने चलते हैं। एलोपैथिक औषधालयों के लिए सरकार, फार्मेसियों से विपुल प्रमाण में दवाएँ खरीद कर, सरकारी औषधि-भंडार में रखती है और भिन्न-भिन्न एलोपैथिक औषधालयों और अस्पतालों को भेजा करती है। सरकारी मेडिकल स्टोर्स प्रत्येक राज्य में होता है। किन्तु इन मेडिकल औषधि-संग्रहालयों में आयुर्वेदीय दवाएँ हमारे बम्बई राज्य में तो नहीं रखी जाती है। इसका कारण इस लेख में दिया हुआ ही है। इस राज्य में अनेक परंपरा के पढ़े हुए वैद्यवर्य हैं और इस राज्य में एक नाम से एक ही आयुर्वेदीय सिद्धौषधि का व्यवहार होता है, ऐसी परिस्थिति नहीं है। इसलिये सरकारी या अर्द्धसरकारी मेडिकल सर्विस के, या स्वायत्त संस्थान के औषधालयों में काम करनेवाले स्नातक वैद्यों को दवाओं की अपनी-अपनी स्वतंत्र मांग भेजनी पड़ती है। दवाओं के भाव अनेक फार्मेसियों से भिन्न-भिन्न आते हैं और ऑडिट ऑब्जेक्शन से बचने के लिए सस्ती दवाएँ खरीदी जाती हैं। उन नामों की दवाओं के पाठ कौन-से हैं इनका तनिक भी विचार उस समय नहीं किया जाता।

## उत्तरप्रदेश की सरकारी औषध-निर्माणशाला

मुझे खबर है कि उत्तर प्रदेश राज्य सरकार ने निजी सरकारी औषध-निर्माणशाला (फार्मेसी) खोलकर सरकारी औषधालयों को निश्चित पाठों की दवाएँ उपलब्ध करने की व्यवस्था की है। इस महान् कार्य का श्रेय उत्तरप्रदेश के डिपुटी डायरेक्टर (आयुर्वेद) वैद्यवर्य श्री कुलकर्णीजी

महोदय को है। किंतु इससे पूरे भारतवर्ष का प्रश्न हल नहीं हुआ है। भारत में १४ प्रदेश हैं और करीब २०० औषध-निर्माणशालाएं हैं। इनकी दवाओं के पाठों में एकवाक्यता होना आवश्यक है। इसी उद्देश्य को सामने रखकर बम्बई राज्य सरकार ने करीब ५ साल पूर्व आयुर्वेदीय फार्माकोपिया कमिटी नियुक्त की थी, किंतु वह कमिटी अब तक कुछ कर नहीं सकी।

## आरोग्य मंत्री जी के विचार

बम्बई राज्य के आरोग्य मन्त्री माननीय मा. सां. कन्नमवार जी और आरोग्य-उपमंत्री माननीय डॉ०एन्. एन्. कैलासजी आयुर्वेद शास्त्र को आगे वढ़ाने के लिये अति आग्रहशील हैं। वे कहते हैं कि "वैद्यगण आयुर्वेद को स्पष्टरूप में सरकार के सामने रखें और स्वयं अपने विज्ञान की समुचित उन्नति के लिये क्रियात्मक कार्य करें एवं सरकार के पास ऐसी व्यावहारिक योजना बनाकर भेजें, जिनको निःसंकोच क्रियान्वित किया जा सके साथही जिन से आयुर्वेद की ऐसी वैज्ञानिक उन्नति हो सके कि वह जनस्वास्थ्य के लिये अधिक उपयोगी सिद्ध हो।"

## डा० कैलासजी का मननीय सुझाव

दो-तीन मास पूर्व आरोग्य उपमंत्री माननीय डॉ० कैलासजी ने अपने एक भाषण में कहा था कि—"यदि वैद्य लोग अपने नित्योपयोगी सिद्धौषधियों के पाठ प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर निश्चित कर के भारत सरकार या राज्य सरकार के सामने रखेंगे तो उन औषधियों का व्यवहार बढाने की व्यवस्था सरकार की ओर से कार्यान्वित की जा सकेगी। आयुर्वेद में अनेक उत्तमोत्तम औषधों का संग्रह है, यह सर्वमान्य वस्तु है। इस विषय में मतभेद नहीं है। आयुर्वेद के अन्य सिद्धान्त सिद्ध होने में विलम्ब लगेगा। लेकिन जो दवा आयुर्वेदीय ग्रन्थोक्त पाठों के आधार पर बनाई जाती हैं उनमें मतभेद होने का कारण नहीं है। इस नाम की दवा इस ग्रन्थोक्त पाठ के आधार पर बनेगी और उसकी यह शास्त्रमान्य घटना, कृति आदि रहेगी, ऐसी घोषणा आयुर्वेदीय तज्ज्ञ वैद्यराजोंको मिलकर करनी चाहिये, जिससे भारत में सर्वत्र एक ही नाम से उस औषधि का व्यवहार शुरू हो। आज सरकार एलोपैथिक दवाएँ पूर्ण प्रमाण में नहीं दे सकती है। यदि आयुर्वेदीय दवाएँ निश्चित नाम और सर्वमान्य पाठों की मिलेंगी तो सरकार अवश्य खरीद कर अस्पतालों में देना शुरू करेगी।"

## भारतीय आयुर्वेद औषधि पाठ चिन्तामणि

आज अंग्रेजी दवाओं के पाठ जैसे ब्रिटिश फार्माकोपिया में कथित पद्धत्यनुसार होते हैं, वैसे ही एक भारतीय आयुर्वेद सिद्धौषधि पाठ-चिंतामणि निश्चित कर के उसके अनुसार बनी हुई दवाओं को ही सर्वमान्यता दी जाननी चाहिए। प्रारम्भ में २५-५० दवाओं को मान्यता देकर भी काम शुरू किया जा सकता है। और यदि आगे जरूरत हो तो सर्वसंमति से उनमें परिवर्तन भी कर सकते हैं। जब तक विद्वान् वैद्य एक आवाज से या बहुमत से भारतीय आयुर्वेदीय औषधि पाठ चिंतामणि प्रगट नहीं करते हैं तब तक आयुर्वेदीय चिकित्सा के बारे में एकवाक्यता होना असंभव है।

## नि. भा. आयुर्वेद महामण्डल का कर्तव्य

इसलिये वैद्यवर्यों को विना विलंब यह कार्य प्रारंभ करना चाहिये। ऐसा प्रयत्न करने से अन्य रूढ औषधियों पर किसी प्रकार की आपत्ति आनेवाली नहीं है। औषधि पाठचिंतामणि-उक्त दवाओं पर आज की राज्यमान्यता या सर्वमान्यता की मुहर लगेगी, वैसी अन्य दवाओं पर नहीं होगी, इतना ही अन्तर रहेगा। अंग्रेजी दवाओं में भी 'ऑफिशियल' और 'नान्-ऑफिशियल' दवाओं ऐसे के दो भेद होते हैं, वैसे यहाँ भी होंगे। प्रतिवर्ष इन पर विचार भी होता रहेगा और निश्चित होकर राज्यमान्य औषधी पाठ बनते जायेंगे। निखिल भारतीय आयुर्वेद महामंडल विद्यापीठ जैसी सर्वमान्य संस्था की ओर से इस कार्य का प्रारंभ होना सर्वथैव उचित होगा।

## वैद्यवर्यों से निवेदन

सच पूछा जाय तो वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन या धूतपापेश्वर (पनवेल) जैसी औषधि निर्माण शालायें इस विषय में अग्रणी बनकर कार्य कर सकती हैं। ऐसा करने में उनको कुछ आपत्ति आनेवाली नहीं है। उनकी दवाओं को राज्यमान्यता मिलकर उनकी दवाओं की बिक्री भी बढ़ने ही वाली है। यदि वे भी न करें तो भिन्न-भिन्न प्रदेश के विद्वान् वैद्यों को अपने-अपने प्रदेश में विशेष प्रचलित सर्वमान्य सिद्धौषधियों के ग्रन्थोक्त पाठ, घटक द्रव्य, कृति, भावना-संस्कार आदि लेख द्वारा प्रगट करके इस कार्य की नींव डालनी होगी। उत्तर प्रदेश राज्य सरकार ने पहले से सरकारी औषधि निर्माण शाला प्रारम्भ करके इस विषय में अबतक बहुत उपयुक्त अनुभव इकट्ठा किया है। यदि लखनऊ गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज के प्राचार्य श्रीमान् द. अ. कुलकर्णी जी इस शुभकार्य को हाथ में लेंगे तो यह कार्य ठीक पद्धति से संपन्न होगा। मैं उनको इस कार्य का श्रीगणेश करने की प्रार्थना करके इस विषय को समाप्त करता हूँ।

# आतुर-परीक्षानुष्ठान

आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी बी० ए०, आयुर्वेदशास्त्राचार्य

(पूर्वतोऽनुवृत्तः)

### रोगः, रुक्

| | | |
|---|---|---|
| ४. | पादरुक् | ( ,, ,, ) |
| ५. | पष्ठरुक् | ( ,, ,, ) |
| ६. | हृद्रुक् | (आमाशयस्थिते) |
| ७. | नाभिरुक् | ( ,, ,, ) |
| ९. | उदररुक् | ( ,, ,, ) |
| १०. | पर्वरुक् | (त्वग्स्थिते) |
| ११. | तीव्रारुक् | (रक्तगते) |
| १२. | दण्डहतरुक् | (मांसगते) |
| १३. | मुष्टिहतरुक | ( ,, ,, ) |
| १४. | सर्वांगरोगः | (स्नायुगते) |
| १५. | एकांगरोग | ( ,, ,, ) |
| १६. | मन्दरुक् | (सिरागते) |

### पारुष्यम्

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४. | वदन परुषत्वम् | वातज्वरे, वातगुल्मे | (च. नि. ८–१०) |
| ५. | मूत्र ,, | ,, | |
| ६. | पुरीष परुषत्वम् | वातज्वरे | (च. नि. १) |
| | | वातगुल्मे | (च. नि. ३–७) |
| ७. | त्वक् ,, | वातजेऽपस्मारे | (च. नि. ८) |

### अरुणवर्णत्वम्

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | नखानां | वातज्वरे | (च. नि १।२१) |
| | | वातजेऽपस्मारे | (च. नि. ८।८।१) |
| २. | नयनयोः | वातज्वरे | (च. नि. १।२१) |
| | | वातजेऽपस्मारे | (,, ,, ८ ) |
| ३. | वदनस्य | वातज्वरे | (,, ,, १।२१’) |
| | | वातजेऽपस्मारे | (,, ,, ८–८१) |
| ४. | मूत्रस्य | वातज्वरे | (,, ,, १।२१) |
| | | वातजेऽपस्मारे | (,, ,, ८) |
| ५. | वर्चसः | वातज्वरे | (,, ,, १।२) |
| | | वातजेऽपस्मारे | (,, ,, ८।८।२१) |
| ६. | त्वचः | वातज्वरे | (,, ,, १।२१) |
| | | वातजेऽपस्मारे | ( ,, ,, ८) |

### कृष्ण-श्याववर्णत्वम्

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १. | नखानां | वातजे गुल्मे | (च. नि. ३।७) | वातजेऽपस्मारे | ( च. नि. ८ ) |
| २. | नयनयोः | ,, ,, | ( ,, ,, ,, ) | ,, ,, ,, | ( ,, ,, ,, ) |
| ३. | वमनस्य | ,, ,, | ( ,, ,, ,, ) | ,, ,, ,, | ( ,, ,, ,, ) |
| ४. | मूत्रस्य | ,, ,, | ( ,, ,, ,, ) | ,, ,, ,, | ( ,, ,, ,, ) |
| ५. | वर्चसः | ,, ,, | ( ,, ,, ,, ) | ,, ,, ,, | ( ,, ,, ,, ) |
| ६. | त्वचाः | ,, ,, | ( ,, ,, ,, ) | ,, ,, ,, | ( ,, ,, ,, ) |

### शोथः

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | अस्थिशोथः | अस्थिस्थिते वाते | (सु. नि. १) |
| २. | शरीर शोथः | सिरागते ,, | (च. चि. २८) |
| ३. | कण्ठशोथः | आमाशयगते ,, | (च. चि. २८), वातज्वरे (च. नि. १) |

| | | |
|---|---|---|
| ४. | आस्य शोथः<br>(मुखशोथः) | आमाशयगते वाते (च. चि. २८) प्राणावृत उदाने (च. चि. २८)<br>वातस्यः नानात्मजे (च. सू. २०), वातज्वरे (च. नि. १ )<br>वातगुल्मे (च. नि. ३) |
| ५. | जंघाशोथः | गुदाश्रिते वाते (च. चि. २८) |
| ६. | ऊरुशोथः | ,, ,, |
| ८. | पादशोथः | ,, ,, |
| ९. | पृष्ठशोथः | ,, ,, |
| १०. | मज्जशोथः | वातवृद्धौ (अ. सं. सू. १९) |
| ११. | बाहुशोषः | वातस्य नानात्मजे विकारे (च. चि. सू. २०) |
| १२. | अंग शोषः | ,, ,, ,, सामवाते (अ. हृ. सू. १३ टीका) |
| १३. | तालुशोषः | वातज्वरे (च. नि. १) |

## शूलम्

पित्तावृते वाते, कफावृते वाते, मज्जावृते वाते,
पित्तावृते प्राणे, पित्तावृते उदाने (च. चि. २८)

| | | |
|---|---|---|
| १. | सन्धिशूलम् | अस्थिस्थिते वाते (च. चि. २८); मज्जाश्रिते वाते (च. चि. २८),<br>सन्धिगते वाते (सु. नि. १)। |
| २. | अस्थिशूलम् | ,, ,, (,, ,, ,,), वातस्य नानात्मजे विकारे वातवृद्धौ (अ.सं.सू.१-९) |
| ३. | सक्थिशूलम् | ,, ,, (अ. सं. नि. १५) |
| ४. | सिराशूलम् | सिरागते वाते (सु. नि. १) |
| ५. | नाभिशूलम् | पक्वाशयगते वाते (च. चि. २८) |
| ६. | शूलम् | वातगुल्मे (च. नि. ३), वृद्धेवाते समे कफे क्षीणे च पित्ते (च. सू. १९)<br>सर्वांगकुपिते वाते (सु. नि. १), पित्तावृते वाते, कफावृते वाते (च. चि. २८)<br>अस्थ्यावृते वाते (अ. सं. नि. १६), मज्जावृते वाते (च. चि. २८),<br>पित्तावृते प्राणे (च. चि. २८), समानप्रकोपजे (अ. सं. नि. १६),<br>पित्तावृते उदाने (च. चि. २८)। |
| ७. | पार्श्वशूलम् | कोष्ठाश्रिते वाते (च. चि. २८), वातस्य नानात्मजे विकारे (च. सू. २०) |
| ८. | पादशूलम् | वातस्यनानात्मजे विकारे (च. सू. २०) |
| ९. | कर्णशूलम् | ,, ,, |
| १०. | अक्षि ,, | ,, ,, |
| ११. | अंग ,, | ,, ,, |
| १२. | आमाशय शूलम् | समानेनावृतेऽपाने (च. चि. २८) |

**सुप्तिः, स्वापः (वात गुल्मे च. नि. ३) शून्यता**

| | | |
|---|---|---|
| १. | त्वचः सुप्तता | त्वगाश्रिते वाते (च. चि. २८) |
| २. | स्वापः | रक्ताश्रिते वाते (अ. सं. नि. १५), सर्वांगकुपिते वाते (सु. नि. १) |
| ३. | सिरासुप्तिः | सिरागते वाते (च. चि. २८) |
| ४. | प्रसुप्तता | रक्तावृते वाते (सु. नि. १), वातस्य नानात्मजेरोगे (शा. प्र. ७) |
| ५. | गात्रसुप्तता | व्यानावृते प्राणे (च. चि. २८) |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ६. | अंगसुप्तता | व्यानप्रकोपजे | (अ. सं. नि. १६) |
| ७. | पादसुप्तता | वातस्य नानात्मजे विकारे (च. सू. २०), वातज्वरे (च. नि. १–२१) | |
| ८. | सर्वेन्द्रियाणां शून्यत्वम् | प्राणावृते व्याने | (च. सू. २८) |

## स्तम्भः

| | | |
|---|---|---|
| १. | भुक्तस्य (अन्नस्य) स्तंभः | रक्तस्थिते वाते (च. चि. २८) |
| २. | स्तंभः | स्नायुगते वाते (सु. नि. १), कफावृते उदाने (सु. नि. १) |
| ३. | स्तम्भनम् | सर्वाङ्गकुपिते वाते (,, ,, ,,), वृद्धेवाते समे कफे क्षीणे च पित्ते (च. सू. १७), |
| ४. | अस्थिपर्वणां स्तंभः | कफावृते व्याने (सु. नि. १) |
| ५. | स्तब्धता | उदानावृते व्याने (च. चि. २८) |
| ६. | ऊरुस्तंभः | वातस्य नानात्मजे विकारे (च. सू. २०) |
| ७. | शेफस्तंभः | ,, ,, |
| ८. | ग्रीवास्तंभः | ,, ,, |
| ९. | मन्यस्तंभः | ,, ,, |
| १०. | हनुस्तंभः | ,, ,, |
| ११. | वर्त्मस्तंभः | ,, ,, |
| १२. | जिह्वास्तंभः | ,, ,, |
| १३. | अंगस्तंभः | ,, ,, |

## ग्रहणम्

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १. | पृष्ठग्रहः | (च. चि. २८) | | | |
| २. | गुल्फग्रहः | वातस्य नानात्मजे विकारे (च. सू. २०) | | | |
| ३. | त्रिकग्रहः | ,, ,, ,, | | | |
| ४. | कटिग्रहः | ,, ,, ,, | | | |
| ५. | विड्ग्रहः | कोष्ठाश्रितेवाते | (च. चि. २८), | वातवृद्धौ | (अ. सं. सू. १९) |
| | वर्चोनिग्रहः | गुदाश्रितेवाते | (,, ,, ,,), | पुरीषावृते वाते | (च. चि. २८) |
| ६. | मूत्रनिग्रहः | ,, | | मूत्रावृते वाते | (,, ,, ,,) |
| ७. | वातग्रहः (उद्गारग्रहः) | वातज्वरे | (च. नि. १) | गुदाश्रिते वाते | (,, ,, ,,) |
| ८. | क्षवथुग्रहः | कफावृतेप्राणे | (,, ,, ,,), | वातज्वरे | (च. नि. १) |
| ९. | उच्छ्वास ग्रहः | ,, ,, | (,, ,, ,,), | प्राणावृत उदाने | (च. चि. २८), |
| १०. | निःश्वासग्रहः | ,, | (,, ,, ,,) | ,, ,, | (,, ,, ,,) |
| ११. | वाग्ग्रहः | कफावृतेउदाने | (,, ,, ,,) | | |
| १२. | स्वरग्रहः | | | | |
| १३. | पार्श्वग्रहः | समानेनावृतेऽपाने | (च. चि. २८) | | |
| १४. | हृद्ग्रहः | ,, ,, | | | |
| १५. | शिरोग्रहः | प्राणावृते उदाने | (,, ,, ,,) | | |
| १६. | पाणिग्रहः | ,, ,, ,, | | | |

### विश्लेषः

१. जानुविश्लेषः वातस्य नानात्मजे विकारे (च. सू. २०), वातजे ज्वरे (च. नि. १)
२. सन्धीनां विश्लेषः वातज्वरे (च. नि. १)

### संकोचः

१. वर्त्म-संकोचः (च. सू. २०)
२. पर्व संकोचः (च. सू. २०)
३. अङ्गसंकोचः (शा. प्र. ७)
४. अस्थिसंकोचः (च. चि. २८)
५. पादसंकोचः („ „ „)
६. हस्तसंकोचः („ „ „)

**मुञ्चनम्-मोक्षः** **अतिप्रवृत्तिः**

१. शीघ्रशुक्रमुञ्चनम् शुक्रगते वाते
२. शीघ्रगर्भ मुञ्चनम् „ „
३. वर्चसोऽतिप्रवृत्तिः (अपानेनावृते व्याने)
४. मूत्रस्यऽतिप्रवृत्तिः „
५. शुक्रस्यऽतिप्रबृत्तिः „

**बधः**

१. इन्द्रियबधम् (श्रोत्रादिषुस्थिते)

**आततनम्**

१. त्वगाततनम् (त्वक्स्थे)

**रागः**

१. सरागत्वम् ( „ )

**कार्श्यम्** (रक्तगते)

१. त्वक्कार्श्यम् (त्वग्स्थे)

**च्युतिः**

१. सन्धिच्युतिः

## वातस्य नानात्मज विकाराः

१. विपादिका (च० सू० २०)
२. वातखुड्डता („ „ „)
३. गुल्फग्रहः („ „ „)
४. वातगुल्फः (काश्यपः)
५. पिण्डिकोद्वेष्टनम् (च० सू० २०)
६. गृध्रसी („ „ „)
७. जानुविश्लेषः („ „ „)
८. गुदार्त्तिः („ „ „)
९. वृषणाक्षेपः („ „ „)
१०. वंक्षणानाहः („ „ „)
११. उदावर्त्तः („ „ „)
१२. वामनत्वम् („ „ „)
१३. त्रिकग्रहः („ „ „)
१४. कटिग्रहः („ „ „)
१५. पार्श्वविमर्दः („ „ „)
१६. उदरावेष्टः („ „ „)
१७. हृन्मोहः („ „ „)
१८. हृद्द्रवः (च० सू० २०)
१९. वक्ष उद्धर्षः („ „ „)
२०. वक्ष उपरोधः („ „ „)
२१. दन्तशैथिल्यम् („ „ „)
२१. मूकत्वम् („ „ „)
२२. गद्गदत्वम् (यो०)
२३. अरसज्ञता (च०)
२४. घ्राणनाशः (च०)
२५. अशब्द श्रवणम्, अशब्दता (का०)
२६. उच्चैः श्रवणम्
२७. बाधिर्यम्
२८. तिमिरम्
२९. दन्तशैथिल्यम् (चं०)
३०. भ्रूव्युदासः
३१. केशभूमिस्फुटनम्
३२. अर्दितम्
३३. एकाङ्गरोगः

| | | |
|---|---|---|
| ३४. | सर्वाङ्गरोगः | (च. सू. २०) |
| ३५. | पक्षबधः | ( ,, ,, ,, ) |
| ३६. | दण्डकः | ( ,, ,, ,, ) |
| ३७. | दण्डापतानकः | ( ,, ,, ,, ) |
| ३८. | तमः | ( ,, ,, ,, ) |
| ३९. | हिक्का | ( ,, ,, ,, ) |
| ४०. | ग्लानिः | (यो० ,,) |
| ४१. | वातकण्टकः | (का. पू. २८) |
| ४२. | श्वासः | ( ,, ,, ,, ) |
| ४३. | बन्ध्यत्वम् | ( ,, ,, ,, ) |
| ४४. | षाण्डचम् | ( ,, ,, ,, ) |
| ४५. | प्रतिश्यायः | ( ,, ,, ,, ) |
| ४६. | वाह्यायामः | (शा. प्र. ७) |
| ४७. | अन्तरायामः | ( ,, ,, ,, ) |
| ४८. | खल्ली | ( ,, ,, ,, ) |
| ४९. | क्रोष्टुशीर्षः | ( ,, ,, ,, ) |
| ५०. | कलायखञ्जता | ( ,, ,, ,, ) |
| ५१, | तूनी | ( ,, ,, ,, ) |
| ५२. | प्रतितूनी | ( ,, ,, ,, ) |
| ५३. | पादहर्षः | ( ,, ,, ,, ) |
| ५४. | विश्वाची | ( ,, ,, ,, ) |
| ५५. | अपबाहुक | ( ,, ,, ,, ) |
| ५६. | अपतानकः | ( ,, ,, ,, ) |
| ५७. | व्रणायाम | ( ,, ,, ,, ) |
| ५८. | अपतन्त्रकः | ( ,, ,, ,, ) |
| ५९. | मिन्मिनित्वम् | ( ,, ,, ,, ) |
| ६०. | अष्ठीला | ( ,, ,, ,, ) |
| ६१. | प्रत्यष्ठीला | ( ,, ,, ,, ) |
| ६२. | अङ्गभङ्गः | ( ,, ,, ,, ) |
| ६३. | बद्ध विट्कता | ( शा. प्र. ७ ) |
| ६४. | अत्युद्गारः | ( ,, ,, ,, ) |
| ६५. | अन्त्रकूजनम् | ( ,, ,, ,, ) |
| ६६. | वातप्रवृत्तिः | ( शा. प्र. ७ ) |
| ६७. | अङ्गपीडा | ( ,, ,, ,, ) |
| ६८. | सिरास्फुरणम् | ( ,, ,, ,, ) |
| ६९. | सिरापूरणम् | ( ,, ,, ,, ) |
| ७०. | क्षिप्रमूत्रता | ( ,, ,, ,, ) |
| ७१. | स्वेदनाशः | ( ,, ,, ,, ) |
| ७२. | शुक्रातिप्रवृत्तिः | ( ,, ,, ,, ) |
| ७२. | काठिन्यम् | ( ,, ,, ,, ) |
| ७३. | प्रत्याध्मानम् | ( ,, ,, ,, ) |
| ७४. | शीतता | ( ,, ,, ,, ) |
| ७५. | भीरुत्वम् | ( ,, ,, ,, ) |
| ७६. | कण्डूः | ( ,, ,, ,, ) |
| ७७. | दृक्क्षयः | ( ,, ,, ,, ) |
| ७८. | खाञ्ज्यम् | (च० चि० २८) |
| ७८. | आयासः | ( ,, ,, ,, ) |
| ७९. | व्रघ्नम् (कोष्ठाश्रितेवाते) | ( ,, ,, ,, ) |
| ८०. | हृद्रोगः ( ,, ) | (प्राणसंवृतउदाने) |
| ८१. | शुक्रकार्श्यम् | (शा. प्र. ७) |
| ८२. | शुक्रनाशः | ( ,, ,, ,, ) |
| ८३. | गुल्मः (कोष्ठाश्रिते वाते व्यानावृतेऽपाने) | (च.चि.२८) |
| ८४. | अर्श ,, ,, | (,, ,, ,,) |
| ८५. | अश्मरी (गुदास्थितेवाते, व्यानावृतेऽपाने) | ,, ,, |
| ८६. | शर्करा ,, ,, ,, | ( ,, ,, ,, ) |
| ८७. | विसूचिका (आमाशयस्थिते वाते | ( ,, ,, , ) |
| ८८. | कासः | ( ,, ,, ,, ,, ,, ,, ) |
| ८९. | कृच्छ्रपुरीषत्वम् (पक्वाशयस्थ वाते) | ( ,, ,, ,, ) |
| ९०. | कृच्छ्रमूत्रत्वम् ,, ,, | ( ,, ,, ,, ) |
| ९१. | आनाहः (पक्वाशयगतेवाते) | (च. चि. २८) |
| ९२. | सन्तप्तः (रक्तगतेवाते) | ( ,, ,, ,, ) |
| ९३. | वैवर्ण्यम् ,, | ( ,, ,, ,, ) |
| ९४. | अरुचिः ,, | ( ,, ,, ,, ) |
| ९५. | गात्रेऽरूषि ,, | ( ,, ,, ,, ) |

### वातव्याधयः (च. चि. २८)

विमार्गस्था ह्ययुक्ता वा स्वस्थानकर्मजैः। शरीरंपीडयन्त्येते प्राणानाशु हरन्ति च॥
संख्यामप्यतिवृत्तानां तज्जानां हि प्रधानतः। अशीतिर्नखभेदाद्याः रोगाः सूत्रे निर्दशिताः॥
तानुच्यमानान् पर्यायैः सहेतूपक्रमाञ्छृणु। केवलं वायुमुद्दिश्य स्थानभेदात्तथावृतम्॥
(च. चि. अ. २८)

१. पर्वसङ्कोचः
२. अस्थि संकोचः
३. पादसंकोचः
४. हस्त संकोचः
५. सर्वाङ्गसंकोचः

१. पर्वस्तम्भः
२. अस्थि स्तम्भः
३. भुक्तस्य स्तम्भः (रक्तगते)
४. मन्यास्तंभनम्
५. हनुस्तम्भः

१. भेदः
२. पर्वभेदः: (मज्जस्थितेवाते)
३. अस्थिभेदः ( ,, ,, )
४. त्वग्भेदः (त्वक्स्थे),, )

१. पाणिग्रहः
२. पृष्ठग्रहः
३. शिरोग्रहः (प्राणसंवृतउदाने)
४. मूत्रनिग्रहः' (कोष्ठाश्रिते)
५. वर्चसो ,, ( ,, ,, ,,
६. अधोवातग्रहः
७. हनुग्रहः
८. निश्वासग्रहः } प्राणसंवृत
९. उच्छ्वासग्रहः } उदाने

१. लोमहर्षः (व्यानावृतेप्राणे)
२. प्रलापः (समानेनावृते व्याने)
३. खाञ्ज्यम्
४. पांगुल्यम् (पंगुत्वम्)
५. कुब्जत्वम् (स्नायुगते)
६. अनिद्रता
७. आक्षेपः, आक्षेपकः
८. मोहः (अपानसंवृत उदाने)
९. आयासः
१०. व्रघ्नः (कोष्ठाश्रिते)
११. हृद्रोगः ,, (प्राणसंवृत उदाने)
१२. गुल्मः ,, व्यानावृतेऽपाने)
१३. अर्शः ( ,, )
१४. आध्मानम् (गुदस्थिते) (व्यानावृतेऽपाने)
१५. अश्मरी
१६. शर्करा ( ,, )
१७. तृष्णा (आमाशयस्थे)
१८. उद्गारः ( ,, )
१९. विसूचिका ( ,, )
२०. कासः ( ,, )
२१. अंत्रकूजनम् (पक्वाशयस्थे)
२२. आटोपः (,,)
२३. कृच्छ्रपुरीषत्वम् (,,)
२४. कृच्छ्रमूत्रत्वम् (,,)
२५. आनाहम् (,,)

२६. सन्तापः (रक्तगते)
२७. वैवर्ण्यम् (त्वक्स्थे)
२८. अरुचिः (सु. नि. १)
२९. गात्रेऽर्ति (,, ,, ,,)

---

३०. अत्यर्थं श्रमितत्त्वम् (मांसगते मेदोगते),
३१. गौरवम् ( ,, )
३२. बाह्यायामः (बहिरायामः) (स्नायुगते)
३३. अन्तरायामः ( ,, )

१. गात्रसुप्तता (व्यानावृते प्राणे)
२. त्वक्सुप्तता (त्वक्स्थिते)
३. सिरासुप्तता (सिरागते)
४. सर्वेन्द्रियाणां शून्यत्वम् (प्राणावृते व्याने)
५. त्वक् सुप्तता (त्वक्स्थे मु. नि. १)

**रौक्ष्यम्** (त्वक्स्थे सु. नि. १)

१. त्वग्रौक्ष्यम् (त्वक्स्थे)

१. स्पन्दनम् (सिरागते)

**तोदः**

१. त्वक्तोदः (त्वक्स्थे)
२. अत्यर्थंतोदः (मांसस्थे)

**शूलम् (पक्वाशयस्थे)**

१. पार्श्वशूलम् (कोष्ठाश्रिते)
२. संधिशूलम् (मज्जास्थिकुपिते)
३. आमाशयशूलम् (समानावृत अपाने)

**स्फुरणम् (त्वक्स्थे सु. नि. १)**

१. गात्रस्फुरणम् (सर्वांगकुपिते)

१. अर्त्तिः (व्यानावृतेऽपाने)
२. परिकर्त्तिका (,, ,, ,,)

१. गर्भनाशः
२. शुक्रनाशः
३. रजोनाशः
४. कर्मनाशः (उदानावृतप्राणे)
५. वर्णनाशः ( ,, ,, ,, )
६. ओजोनाशः ( ,, ,, ,, )
७. बलनाशः ( ,, ,, ,, )

१. शिरोहुण्डनम
२. नासा ,,
३. अक्षिः ,,
४. जत्रु ,,
५. ग्रीवा ,,

**वेदना**

१. संधिवेदना (सर्वांगकुपितेवाते)
२. त्रिक्वेदना (पक्वाशयस्थेवाते)

३४. खल्लि, खल्ली (स्नायुगते)
३५. शोफः (सिरागते)
३६. सिरातनुता ( „ )
३७. सिरामहती ( „ )
३८. वातपूर्णदृतिस्पर्शः शोथः (सन्धिगते)
३९. प्रसरणाकुञ्चनयोः सवेदना प्रवृत्तिः ( „ )
४०. अर्दितम्
४१. मन्यास्तम्भः
४२. दण्डकः
४३. गृध्रसी
४४. पित्तावृत वातः
४५. कफावृत वातः
४६. रक्तावृत वातः
४७. मांसावृत वातः
४८. मेदसावृत वातः
आढ्यवातः
४९. मज्जावृत वातः
५०. शुक्रावृतवातः
५१. अन्नावृतवातः
५२. मूत्रावृतवातः
५३. पुरीषावृतवातः
५४. कुञ्चनम्
५५. पक्षाघातः (सु. नि. १)
५६. खुड्डवातता
५७. प्राणावृत व्यानम्
५८. व्यानावृत प्राणम्
५९. प्राणावृत समानम्
६०. समानावृत प्राणम्
६१. समानावृत अपानम्
६२. प्राणसंवृत उदानम्
६३. उदानावृतप्राणम्
६४. उदानावृत अपानम्
६५. व्यानावृत अपानम्
६६. अपानावृत व्यानम्
६७. समानावृत व्यानम्
६८. उदानावृत व्यानम्
६९. स्वेदोत्पत्यर्थम् (व्यानावृते प्राणे
७०. त्वग्दोषः ( „ „ )

७१. जडता (प्राणावृते समाने)
७२. गद्गदत्वम् ( „ „ „ )
७३. मूकता ( „ „ „ )
७४. ग्रहणीरोगः (समानेनावृतेऽपाने)
७५. पार्श्वरोग ( „ „ „ )
७६. हृद्रोगः ( „ „ „ )
७७. छर्दिः ( „ „ „ )
७८. श्वासः ( „ „ „ )
७९. बन्धनम् (अपानसंवृत उदानम्)
८०. अग्निमान्द्यम् ( „ „ „ )
(अल्पाग्निः) (उदानेनावृते व्याने)
८१. अतिसारः ( „ „ „ )
८२. वमनम् (व्यानावृतेऽपाने)
८३. उदावर्त्तनम् ( „ „ „ )
८४. स्तब्धता (उदानेनावृत व्याने)
८५. अस्वेदः ( „ „ „ )
८६. चेष्टाहानिः ( „ „ „ )
८७. निमीलनम् ( „ „ „ )
८८. वातरक्तम् (सु० नि० १)
८९. अपतानकः ( „ „ „ )
९०. दण्डापतानकः ( „ „ „ )
९१. धनुस्स्तम्भः ( „ „ „ )
९२. वातहतपक्ष्म ( „ „ „ )
९३. अपतन्त्रकः ( „ „ „ )
९४. विश्वाची ( „ „ „ )
९५. क्रोष्टुक शीर्षः ( „ „ „ )
९६. कलायखञ्जम् ( „ „ „ )
९७. वातकण्टकः ( „ „ „ )
९८. पाददाहः (सु. नि. १)
९९. अववाहुकम् ( „ „ „ )
१००. बाधिर्यम् ( „ „ „ )
१०१. मिन्मिनत्वम् ( „ „ „ )
१०२. वातष्ठीला ( „ „ „ )

**भञ्चनम्**

१. गात्रभञ्जनम्
(सर्वांगकुपिते)
गात्रचुमचुमायनम्

**स्फुटनम्**

१. संधिस्फुटनम् (सर्वांगकुपितेवाते)
२. स्फुटितालक् (त्वक्स्थेवाते)
३. नखस्फुट नम् (चक्रः)

**सादः**

१. अंगसादः (समानेनावृते व्याने)

**क्षयः**

१. मांसक्षयः (मज्जास्थिकुपिते)
२. बलक्षयः ( ,, ) प्राणावृत्तेव्याने
३. स्मृतिक्षयः ( ,, ) ( ,, ,, )
४. अग्निक्षयः (समानेनावृते व्याने) ( ,, ,, )
५. ओजोक्षयः (,, ,, ,, ,,) ( ,, ,, )
६. बलक्षयः (,, ,, ,, ,,) ( ,, ,, )

**विकृतिः**

१. शुक्रविकृतिः (शुक्रगे वाते)
२. गर्भ विकृति ( ,, ,, )

**च्युतिः**

१. सन्धिच्युतिः

पूर्वोक्त सरणी को देखने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वात के प्राकृतिक व वैकृतिक लक्षणों में स्रंस-भ्रंशादि ९५, नानात्मक व सावरण लक्षण ९६ तथा वात-व्याधि के रूप में १०१ लक्षण भिन्न-भिन्न आचार्यों के मत के संकलन करने पर होते हैं। इनकी यह संख्या २९२ के सन्निकट पहुँचती है। अविकारज वात कर्म की संख्या भी ११३ लक्षणों तक जाती है। ये लक्षण भिन्न-भिन्न तंत्रों में प्रतिपादित हैं।

इन लक्षणों को हम द्विविध प्रधान लक्षणों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम तो वे हैं, जो चेष्टा व गति से सम्बन्धित हैं और द्वितीय वे जो संज्ञा या संवेदना से सम्बन्धित हैं। पाठकों की जानकारी के लिए उनमें से कुछ यहाँ दृष्टान्त-रूप प्रस्तुत किए जाते हैं।

## गति व चेष्टा सम्बन्धी (अविकारज)

गति, श्वास, उच्छ्वास, नानाविध चेष्टा, क्षेपण, प्रस्पन्दन, उद्वहन, पूरण, विवेक, सर्वशरीर धातु व्यूहन, स्थूलाणु स्रोतसोपभेदन, गर्भाकृति निर्माण, धातूनां समागतिः, ष्ठीवन, प्रस्तरण-आक्षेप, निमेष-उन्मेष, आकुंचन, नमन, उन्मन।

**संज्ञा सम्बन्धी**——मनोनियमन, मनोप्रेरण, सर्वइन्द्रियोद्वेजन, इन्द्रियार्थाभिवहन, हर्षोत्साह जनन, अग्नि-संधुक्षण, उर्जा-बल, वाक् प्रवृत्ति, प्रयत्न।

इस प्रकार शरीर व्यापारार्थ नानाविध चेष्टा का उत्पादन, संग्रह-प्रयोजन करना तथा भिन्न-भिन्न प्रकार की शारीरिक क्रियाओं का करना व संतुलन रखना, ज्ञान तथा मनोवह क्रियाओं का धारण——यह सब कार्य वात-संस्थान करता है।

विकृत होने पर यही क्रियाएँ विभिन्न लक्षणों के रूप में उत्पन्न होती ह। पूर्वोक्त वैकृतिक लक्षणों में से कुछ का दिग्दर्शन क्रमानुसार यहाँ कराया जाता है।

**गति सम्बन्धी——**

**गति**——स्रंस, भ्रंश, व्यास, संग, कम्प, वर्त्त-चाल, सुप्ति, संकोच, स्तम्भ, खंजता, उद्वेष्टन, स्फुटन, विलपन, उद्घट्टन, नाम, उन्नाम, परिपतन, रोमहर्ष, विक्षेप, आक्षेप, ग्रहण, विश्लेष, वध, खांज्य, पांगुल्य।

**संवेदना-ज्ञान**——चेष्टा, हर्ष, तोद, भेद, व्यथा, शोष, शूल, श्रम, प्रमोह, ग्लपन, पीड़न, विषाद, मोह, बलोपघात, सुखोपघात, मनोव्याहर्ष, भय, शोक, दैन्य, प्राणोवरोध।

इन अनेक वैकृति लक्षणों को इसी प्रकार इन भेदों में विभक्त कर सकते हैं। ध्यानपूर्वक विचारें, तो वैकृति के २९२ लक्षण संक्षेप में अन्तर्भावित हो सकते हैं। इन्हें क्रिया-सौकर्य व परीक्षा-सौकर्य की दृष्टि से निम्न प्रकार रख सकते हैं——

**गति सम्बन्धी**——स्रंस, भ्रंश, व्यास, साद, स्तम्भ, ग्रह, वध, और संग। शिथिलता आकर क्रमशः वृद्धि हो कर ये लक्षण एक के बाद दूसरे होते हैं और क्रिया-हानि हो जाती है।

**स्पन्दन**——चाल, वर्त्त-मंथन, कम्ब, नामन, विनमन, विक्षेप, आक्षेप, क्षोभ, संकोच, हर्ष, ग्रहण, उद्वेष्टन, परिवेष्टन, खंज, ध्वंस और वध। गति सम्बन्धी क्रियाएँ धीरे-धीरे बढ़ कर क्षोभ व ध्वंस की स्थिति उत्पन्न करती हैं।

सुश्रुत ने वायु की अपरिमित क्रियाओं के कारण उनमें संख्या का नियमन नहीं किया है। चरक ने बहुविध वैकृतिक लक्षणों का थोड़े में समावेश किया है, जो कि विक्षेप वैज्ञानिक जँचती हैं। उनमें गति सम्बन्धी क्रियाओं को १९ प्रधान भेदों में अन्तर्भावित किया है——और स्रंस, भ्रंश, व्यास, साद, कम्प, वर्त्त, चाल, खंज, संकुचन, प्रभृति पूर्वोक्त वर्णित बहुविध लक्षण इनमें समाविष्ट हो सकते हैं।

इसी प्रकार ज्ञान सम्बन्धी लक्षणों को भी ९ प्रधान भागों यथा——तोद, भेद, व्यथा, चेष्टा, शोष, शूल, सुप्ति, हर्ष——में विभक्त कर दिया है। इनकी सांगोपांग व्याख्या क्रमशः हम आगे दे रहे हैं। साथ ही वर्गीकृत लक्षण भी स्थान, क्रिया-वैकृतिक भेद से आगे विशेष रूप में दिया जा रहा है, जिससे कि इनका ज्ञान परीक्षा-काल में ठीक प्रकार से हो। वैकृतिक लक्षणों का उद्बोधन-ज्ञापन-दर्शन भिन्न-भिन्न रूप में परिस्फुट होता है।

(सावशेष)

# रास्ना

### आचार्य श्री बापालाल भाई

**प्रसिद्ध पर्यायः–**(सं०) रास्ना, युक्तरसा, रस्या ; (हिं०) वाइसूरी ; (ले०) Pluchea Lanceolata, N.O. Compositeae. **निरुक्ति–'रस आस्वादने'** या रा दाने' धातु से रास्ना शब्द व्युत्पन्न हुआ है। **रायते रस्यते वा इति रास्ना**। तात्पर्य, 'रोगनिवृत्ति के लिए इस का सविशेष सेवन (आस्वादन) किया जाता है, अथवा वैद्यों द्वारा इसकी योजना (दान) की जाती है, अतः इसे रास्ना कहा जाता है।

**युक्तः रसः यस्याः सा युक्तरसा**। इसका रस अर्थात् तदुपलक्षित रस-गुण-वीर्य-विपाक-प्रभाव वातविकारादि में वैद्यों द्वारा युक्त (सुप्रयुक्त) होता है, अतः इसे युक्तरसा कहते हैं।

**रसे साधुः रस्या**। रस धातु की वृद्धि के लिए एवं उसकी वृद्धि द्वारा इतर धातुओं का बृंहण कर उनके क्षय की निवृत्ति के लिए और परिणामतया वात के शमन के लिए यह उत्कृष्ट (साधु) होती है, अतः इसे रस्या कहते हैं। रस शब्द से साधु अर्थ में यत् प्रत्यय हो कर यह पद बनता है।

**टीकाओं में आया परिचय :--**

१. **रास्ना गन्धनाकुली**। सु. क. ८-१०४
२. **रास्ना सुरभिः**। सु. सू. ३७-३
३. **रास्नासुरभी स्वनाम ख्याता**। सु. सू. ३८-१६
४. **सुरसा 'काँटा अमररुल' इति भाषा**। सु. चि. ६ (डल्हण टीका)
५. **रास्ना सुरभिः**। शार्ङ्गधर टीका
६. **रास्ना रस्या**। अ. हृ. सू. १५-२८
७. **रास्ना युक्तरसा**। अ. हृ. सू. १५-३ (अरुणदत्त टीका)

**परिचय ज्ञापिका संज्ञाएँ :--**

**सुगन्ध मूला**--जिसके मूल सुगन्धयुक्त होते हैं।

**अतिरसा**--जिसमें रस अधिक होता है। आगे आए सुरसा और रसाढचा पर्याय भी यही अर्थ द्योतित करते हैं।

**सुवहा**--जिससे मलप्रवृत्ति अच्छी होती है।

**श्रेयसी**--आरोग्य की रक्षा के लिए हितावह ; उत्तम रोगहर।

**एलापर्णी**--एला (इलायची) के क्षुप के सदृश पत्रयुक्त।

**सुरसा**--जिसमें रस अधिक होता है।

**रसाढचा**--रस से भरपूर।

**उत्पत्तिस्थान**--गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ, सिन्ध, उत्तर भारत।

**उपयुक्त अंग**--मूल, पत्र, पञ्चाङ्ग।

**गुण-कर्म--**

**रास्ना तिक्तोष्ण गुर्वीस्याद्विष वातास्रकासजित्।**
**शोफवानोदर श्लेष्मशमन्यामस्य पाचनी॥** ध. नि.
**रास्ना श्वास समीरास्र वातशूलोदरा पहा।**
**कासज्वर विषाशीति वातिकामय सिद्धहृत्॥** भा. प्र.
**रास्ना वातहरणाम्।** च. सू. २६
**रास्नाऽगुरुणी शीतापनयनप्रलेपनानाम्।** च. सू. २६

**रास्ना**--तिक्तरस, मधुर विपाकी, उष्ण वीर्य, गुरु, श्लेष्मशमन, उत्तमवातहर, कफवातहर एवं शोफ, कम्प, उदर, श्वास, वातरक्त तथा वातशूल इन रोगों में उपयोगी है।

**प्रयोग--**

१. **रास्ना पिण्डैः सुखोष्णैर्वा स्वेदयेत्।**
च. चि. १४-४३

२. **रास्ना सहस्र निर्यूहे तैलद्रोणं विपाचयेत्।**
**गन्धैः हैमवतैः पिष्टैरेलाद्यैश्चानिलार्तिनुत्।**
च.चि. २८-१६६

३. **रास्नायाः पलपञ्चैकं कर्षान् पञ्च च गुग्गुलोः।**
**सर्पिषा वटिकां कृत्वा खादेद्वा गृध्रसी हराम्॥**
(चक्रदत्त वातव्याधौ)

**वातश्लेष्मोल्बण अर्श में**--घी डालकर रास्ना का उपनाह तैयार कर उसकी पोटली से सुखोष्ण (सुहाती) सेक अर्श के अंकुरों पर करें।

**वात व्याधि में**--एक सहस्र तोले रास्ना के क्वाथ में एला, जटामांसी, चोरक, तालीसपत्र इत्यादि सुगन्धित द्रव्यों से १ द्रोण तैल पकाएँ। यह **रास्ना तैल** सर्व वातरोगों में श्रेष्ठ है।

**गृध्रसी में**---रास्ना मूल १ पल, गुग्गुलु ५ कर्ष इन दोनों की घी में गुटिका बनाकर खाने से गृध्रसी रोग अच्छा होता है।

## रास्ना सम्बन्धी सन्दिग्धता

रास्ना की सन्दिग्धता दूर करने के लिए निखिल भारत वैद्य सम्मेलन की ओर से ठीक-ठीक प्रयास हुए हैं। जयपुर, नासिक और करांची सम्मेलनों में इस विषय में बहुत ऊहापोह हुआ था। जयपुर के नि. भा. वैद्य सम्मेलन में रास्ना के जो नमूने आए थे उनके विषय में मैंने लिखा भी है।[१] करांची में स्व० वैद्य **पं० हरिप्रपन्नजी** ने "रास्ना याथातथ्य" पर एक निबन्ध पढ़ा था, जो करांची सम्मेलन के विवरण में मुद्रित हुआ है। सम्भवतः महासम्मेलन पत्रिका में भी यह निबन्ध छपा था।[२]

**पं० हरिप्रपन्नजी** ने इस निबन्ध में चरक, सुश्रुत और भेल--इन तीनों से रास्ना-विषयक वचन संगृहीत किए थे। करांची-सम्मेलन के अध्यक्ष वैद्यराज **रामप्रसादजी** ने इस विषय पर बोलते हुए कहा था कि "चिकित्सा व्यवसाय में मैं वृद्ध हो गया, परन्तु मैं भी रास्ना को नहीं जानता। हमारे यहाँ के पनसारी रास्ना नाम से एक प्रकार के बीज देते हैं और हम उनको ही योगों में डालकर अपना काम चलाते हैं।"

करांची में **काकनज** (Withania Coagulens) "सिन्धी रास्ना"[३] के नाम से पहचानी जाती है और यही सिन्ध में रास्ना के रूप में उपयोग में आती है। काकनज घोडाकुन अथवा अश्वगन्धा के वर्ग की वनस्पति है। अश्वगन्धा वातघ्न है इसलिए काकनज के मूल भी वातघ्न होने चाहिए। वस्तुतः सिन्धी वैद्य कहते थे कि "हम काकनज के मूल उपयोग में लाते हैं और वे उत्तम वातघ्न हैं।" मैंने योवापीर जाते रास्ते में अत्यधिक क्षुप देखे थे। इसका सिन्धी प्रादेशिक नाम "पनीरजा फोटा" है तथा हिन्दी पर्याय आकड़ी है। सिन्ध की यह आकड़ी उग्रवीर्य औषध है। इसमें वमन कराने का गुण है। अतः इसका अल्प मात्रा में उपयोग करना चाहिए। यह बड़ी मात्रा में वामक होती है और प्रभूत कफ निकालती है। करांची सम्मेलन में इनके मूल बहुत चखे थे। यह वमन कराती है इसी से इसका नाम 'आकड़ी' रखा गया प्रतीत होता है। संक्षेप में काकनज के मूल तीक्ष्ण औषध हैं, अतः सावधानी से उपयोग में लाने चाहिए। ये मूल घोड़ाकुन (अश्वगन्धा) जैसे ही लगते हैं। अधिक जिज्ञासुओंको 'रास्ना याथातथ्यम्" पढ़लेना चाहिए। इस आकड़ी के बीज बम्बई में काकनज नाम से बिकते हैं। हकीम "तुख्मे काकनज" नाम से बीज बेचते हैं। (तुख्म=बीज)।

मैंने अपने 'सिन्धी रास्ना'--नामक लेख में लिखा है कि "परन्तु बम्बई में जो काकनज के बीज बिकते हैं वे खासकर अरबस्तान की ओर से आते हैं और इसी वर्ग की एक अन्य वनस्पति के बीज हैं, जो 'हब-अल-काकनज' (Physalis Alkakenji) नाम से पहचाने जाते हैं। ये बीज और काकनज के बीज मिलते-जुलते होने से एक दूसरे के स्थान पर मिलावट के काम आते हैं और बिकते हैं।" पं० रामप्रसाद जी ने जिन बीजों की बात की थी वे कदाचित् यही हों। इनके मूल, रस और गन्ध में अश्वगन्धा से मिलते हैं।

चरक, सुश्रुत, और वाग्भट के समय में रास्ना एक थी। राजनिघण्टुकार ने तीन भेद--तृणरास्ना, पत्ररास्ना तथा मूलरास्ना गिनाए हैं।

अमरकोष में **नाकुली** के पर्यायों में "रास्ना" दी है और एलापर्णी का भी एक पर्याय रास्ना दिया है। देखिए--

**नाकुली सुरसा रास्ना सुगन्धा गन्धनाकुली।**
**नकुलेष्टा भुजङ्गाक्षी छत्राकी सुवहा च सा॥**
**एलापर्णी तु सुवहा रास्ना युक्त रसा च सा॥**

यह गड़बड़ राजनिघण्टुकार ने अधिक उलझा दी और जैसा कि ऊपर कहा, रास्ना के तीन प्रकार गिना दिए। भावप्रकाशकार ने **नाकुली** और **एलापर्णी** दोनों को रास्ना का पर्याय बता दिया। इस प्रकार अमरसिंह के समय में जो दो भिन्न-भिन्न द्रव्य थे वे (नाकुली तथा एलापर्णी) भावमिश्र के समय एक रास्ना में समा गए।

**सुरसा** तुलसी का नाम है। 'शोभनो रसो यस्या सा' यह इसकी व्युत्पत्ति है। सुरसा पर्याय अन्य कई

---

[१] देखिये : आयुर्वेद विज्ञान (श्री. दु. के. शास्त्री के सम्पादकत्व में प्रकाशित गुजराती मासिक : ग्रन्थ ९, अङ्क ६, पृष्ठ १७७-१७८)। यह पत्र बीच में बन्द हो गया था। कुछ वर्ष से पुनः प्रकाशित होने लगा है।

[२] बम्बई राज्य-सरकार द्वारा नियोजित 'कमिटी फॉर स्टेण्डर्ड ड्राग्ज एण्ड हर्ब्स', जिसका अध्यक्ष लेखक है, उसकी ओर से भी रास्ना के सम्बन्ध में प्रयत्न किया जा रहा है।

[३] देखिए : आयुर्वेद विज्ञान--ग्रन्थ १४, अङ्क ९ पृष्ठ २७७ पर मेरा लेख "सिन्धी रास्ना"

वनस्पतियों का भी है। **सुवहा** नाम भी अमरकोष में छः द्रव्यों के लिए आया है। यथा—

१. निर्गुण्डी के पर्यायों में,
२. श्वेत निर्गुण्डी के पर्यायों में 'श्वेत सुरसा' नाम से,
३. नाकुली के पर्यायों में,
४. गोधापदी के पर्यायों में,
५. सल्लकी के पर्याय रूप में,
६. एलापर्णी के पर्याय रूप में।

सुवहा नाम चरक में त्रिवृत् के पर्यायों में निर्दिष्ट है। सच पूछो तो सुवहा (जिससे ससुख मलप्रवृत्ति हो) त्रिवृत् के लिए ही योग्य संज्ञा है। वैसे तो जो भी द्रव्य सुख विरेचक हों उन सभी को 'सुवहा' कहा जा सकता है। परन्तु त्रिवृत् को चरक ने अग्र्योपहरणीय अध्याय में सुख विरेचनों में श्रेष्ठ कहा है। अतः सुवहा नाम उसीके लिए उपयुक्ततम होना चाहिए।

**नाकुली,**[1] **गन्धनाकुली** ये दोनों सन्दिग्ध हैं। पं० हरिप्रपन्नजी **ईश्वरी** (Aristolochia Indica) को गन्धनाकुली कहते हैं, और **कीडामारी** (Aristolochia Bracteata) को नाकुली कहते हैं। (देखिए : रास्ना याथातथ्य) इन दोनों वनस्पतियों के लिए नाकुली-गन्धनाकुली शब्द रखने हों तो मुझे विप्रतिपत्ति नहीं। वैसे निघण्टु देखने से तो नाकुली-गन्धनाकुली का निर्णय मुझे अशक्य लगता है। ईश्वरी और कीडामारी औषध रूपमें उपयोगी हैं यह मुझे स्वीकार्य है।

**सुगन्धा** शब्द ऐसा है कि किसी भी सुगन्धित वस्तु के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। लवन्डर, तुलसी, दमनक, तुलसी की अनेक जातियाँ—सभी सुगन्धा नाम की उम्मेदवार हैं। शार्ङ्गधर के दोनों टीकाकारों ने 'रास्ना सुरभी' इन शब्दों में रास्ना का परिचय कराते हुए 'सुगन्धा' नाम रास्ना के लिए विशिष्ट है यह द्योतित किया है। सुरभि का शब्दार्थ सुगन्धयुक्त सुविदित है।

**भुजङ्गाक्षी** भी ऐसा ही सन्दिग्ध शब्द है। कौन कह सकता है, साँप के नेत्र कैसे होते हैं? उपमान का ही परिचय न हो तो उपमेय वनौषधि का स्वरूप समझने में उससे क्या सहायता प्राप्त हो सकती है? पं० हरिप्रपन्नजी कहते हैं कि भुजङ्गाक्षी 'अधःपुष्पी'—का नाम है। परन्तु 'अधःपुष्पी' भी तो सन्दिग्ध है। राजनिघण्टु में-अधःपुष्पी को गोजिह्वा कहा है।

**एलापर्णी**—एला का अर्थ होता है इलायची। इलायची के क्षुप-सदृश जिसके पत्र हों वह एलापर्णी है। परन्तु 'एलापर्णी' शब्द 'अर्कपुष्पी' जैसा विशाल है। आक के फूल जैसे जिसके फूल हों वे सब वनस्पतियाँ अर्क पुष्पी कही जा सकती है। दद्वत् इलायची जैसे जिसके पत्र हों वे सब औषधें 'एलापर्णी' कही जाएँगी। एलापर्णी शब्द से हरिद्रा, कचूर, शठी, आर्द्रक, कुलिञ्जन, भूचम्पक, पेउ (पं० हरिप्रपन्नजी इसे मेदा का प्रतिनिधि कहते हैं) इत्यादि सभी गृहीत हो सकते हैं। इसी सादृश्य के कारण डॉ० लक्ष्मीपति, एलापर्णी **कुलिञ्जन** होनी चाहिए, अपने इस मन्तव्य की प्रत्यक्ष द्वारा पुष्टि के लिए जयपुर के नि०भा०आ०सम्मेलन में कुलिञ्जन का नमूना और उसका क्षुप ले आये थे। सुगन्धा, सुगन्धमूला, सुरसा, एलापर्णी ये सब पर्याय कुलिञ्जन पर अवश्य घटित होते हैं। अतएव उपस्थित वैद्यों का अधिकांश कुलिञ्जन को ही 'रास्ना' मानने के पक्ष में आ गया था।

भावप्रकाश में **अधुना नाकुली (नाई)** ऐसा लिख कर 'नाई' (मामज्जक, मामेजवा) को रास्ना सिद्ध करने का प्रयास भावमिश्र ने किया है। इस **नाई** को गुजरात के मध्यकालीन समर्थ लेखक वैद्य शोढल ने अपने निघण्टु में श्लोकबद्ध भी कर दिया है :—

**नाहौ तु नागजिह्वाख्या तिक्तपत्रा क्षितौ क्षुपः।**
**कृमिकृत् क्षारकर्मा च तथा मामेज्जकः स्मृतः॥**

आज भी गुजरात में यह नाई 'मामेजवो' और 'कड़वी-नाई' नामों से सुप्रसिद्ध है। मामेज्जक का संस्कृत नाम 'नागजिह्वा' किसीने रखा है। भावमिश्र ने 'नाई' को भी रास्ना माना है। हो सकता है, उस समय तृणरास्ना के लिए नाई का नमूना उनके सामने प्रस्तुत हुआ हो। औषधीय गुणरहित चाहे किसी वस्तु का उपयोग रास्ना नाम से करने की अपेक्षया तो मामेजवो (नाई) का उपयोग करना श्रेयस्कर है। गुजरात की ओर वैद्य और जनता नाई को रास्ना माननेवाले मिलते हैं।

चरक के 'अगुर्वादि तैल' के पाठ में **अश्वगन्धा रास्ना रुहा, रोहा. . .शीतवल्ली, नाकुली, गन्धनाकुली** ये सभी

---

[1] वाराहीकन्द (Disocorea species) का एक प्रकार मैंने खोद कर देखा है। वह सर्वथा नेवल (नकुल) सदृश होता है। कोई भ्रम में पड़ जाय ऐसा इस कन्द का नकुल के साथ सादृश्य था। नाकुली इसी कन्दको क्यों न माना जाए?

शब्द,जिनका प्रयोग रास्ना के पर्याय रूप में हुआ है,आए हैं। चक्रपाणिदत्त सदृश विद्वान् टीकाकार इनका परिचय **नाकुली चविका, गन्धनाकुली रास्ना भेदः, रुहा वृक्षरुहा, रोहा अञ्जलिकारिका**--इन पदों में देता है। इनके मतानुसार नाकुली चविका है, गन्धनाकुली रास्ना का भेद है तथा रुहा वृक्ष पर होनेवाला वन्दा है।

यह **वन्दा** (वृक्षरुहा) ही रास्ना है, इस मतका मूल हमें यहाँ देखने को मिलता है। भावमिश्र ने इसी कारण **रास्ना भावे च वन्दाकः** रास्ना के अभाव में प्रतिनिधि-रूप में वन्दा के उपयोग का विधान किया है। बंगाली कविराजों का आग्रह आज भी वन्दा ( Vanda Roxburghi) को रास्ना मानने के लिए चालू ही है। रास्ना का एक पर्याय **सुरसा** है। यह **सुरसा** (अच्छे रसवाला) वन्दा है। पं० हरिप्रपन्नजी का कथन मुझे आज भी पूर्णतया स्मरण है कि आर्द्र प्रदेश वासी बंगालियों को भले वन्दा वातघ्न प्रतीत होता हो, हमारे मत से तो यह **वातकर** है। और ऐसे वातकर द्रव्य को रास्ना जैसे परम वातहर रूपमें निर्दिष्ट औषध बताना बुद्धिमत्ता का काम नहीं। यदि रुहा, नाकुली इत्यादि रास्ना हों, तो चरक इन सबका एक साथ उल्लेख न करते। इससे सिद्ध है कि नाकुली, गन्धनाकुली, रुहा इत्यादि रास्ना से भिन्न हैं।

धन्वन्तरि-निघण्टु सहित राजनिघण्टु में गुडूच्यादि वर्ग में **राष्णा** (रास्ना) और करवीरादि वर्ग में नाकुली और गन्धनाकुली पठित हैं। सर्पगन्धा, सर्पसुगन्धा, नकुलेष्टा ये सब पर्याय हैं। सर्पगन्धा आज की रॉवोल्फिया सर्पेन्टीना है ऐसा प्रायः वैद्य मानते हैं, इसका मूल यह है। चरक-सुश्रुत में 'सर्पगन्धा' सर्पच्छत्रा--(गुजराती-भोंयफोडो ; अंग्रेजी-मशरूम) के अर्थ में वातघ्न है। सर्पेन्टीना नाम इस सर्पगन्धा के आधार पर ही गढ़ा गया है। हमें तो सर्प इस पूर्वपदवाली यह समग्र नामावली अगम्य ही लगती है। सर्पगन्धा नाम आज भले ही रॉवोल्फिया सर्पेन्टीना (चाँद, छोटा चाँद) के साथ अभिन्न रूप में प्रचलित हो गया हो, तथापि जो नाम रूढ़ हो चुका है उसके लिए ऊहापोह ठीक नहीं।

शिवदत्त ने रास्ना का परिचय दिया है :—

**अथ रास्ना भृङ्गपत्रा पाषाणादौ प्रजायते।**
**गिरौ च लघुरास्नाख्या ततो हीनगुणा स्मृता॥**

कहाँ भावप्रकाश आदि की परिचयज्ञापिका एलापर्णी यह संज्ञा और कहाँ यह भृङ्गपत्रा ? भृङ्गपत्रा का अर्थ भृङ्गराज जैसा किया जाए या भ्रमर-जैसा ?

## रास्ना के नाम से प्रचलित द्रव्य

किं बहुना, अब शास्त्र ग्रन्थों के आधार पर इस चर्चा को छोड़ जो द्रव्य रास्ना के नाम से अधिकांश या अल्पांश में भारत के भिन्न-भिन्न भागों में उपयोग में लाए जाते हैं उनका निर्देश करते हैं।—

१. **वाइसुरी**--उत्तर भारत और गुजरात में इसको रास्ना माना जाता है। इसका शास्त्रीय नाम है Pluchea Lanceolata, N. O. Compositeæ.

इसके पत्र में कुछ सुगन्ध होती है। इसके पत्र बाजार में रास्ना नाम से बिकते हैं। पं० हरिप्रपन्नजी इस को ही रास्ना मानते थे। यह परम वातघ्न है।

२. बंगालियों का **वन्दा** Vanda Roxburghii ; N. O. Orchidaceæ

३. **सिन्धी रास्ना**--Withania Coagulens ; N. O. Solanaceæ

४. **पञ्जाब में बिकते बीज**--Physalis Alkakenji N.O. Solanaceæ

५. **मामेजवो-कड़वी नाई**--Enicostema Littorale N.O. Gentianaceæ

६. **कुलिञ्जन**--Alpinia Galanga N.O. Zinziberaceæ

एलापर्णी तथा सुगन्धा नाम इस पर घटित होते हैं।

७. **ईश्वरी**--Aristolochia Indica N.O. Aristolochiaceæ

सापसन—पं० हरिप्रपन्न जी की गन्धनाकुली।

८. **कीडामारी** -- Aristolochia Bracteata, पं० हरिप्रपन्नजी की नाकुली।

९. **किसमिस-ई-क्वलियान्**--किसमिस कावली, अंग्रेजी नाम—Mistlelœ, लेटिन नाम Viscum Album N.O. Loranthaceæ। स्वामी हरिशरणानन्द जी इसे रास्ना मानते हैं। बम्बई में हुए गुजरात प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के समय या नि० भा० वैद्य सम्मेलन के अवसर पर स्वामी जी इसका आर्द्र नमूना पत्र-पुष्प सहित लाए थे। फल बड़े पीलु-जैसे, मुक्ता-सदृश श्वेत वर्ण के सुन्दर होते हैं।

पत्र छोटे ; मेरी धारणानुसार जिनमें से रस बहुत निकल सके ऐसे।

किसमिस कावली बहुत उपयोगी वनस्पति है। पत्र डिजिटेलिस के समान गुणकारी हैं। गर्भाशय पर इसकी क्रिया अर्गट जैसी होती है। रुहा, वृक्षरुहा, सुरसा इसे मान सकते हैं। (विस्तार के लिए देखिए : डॉ० वामन गणेश देसाई कृत औषधि संग्रह पृ० ६४८)।

१०. **राइसन**—रासन (यूनानी नाम—कुष्ठ-ई-शामी; **ईरान**) डॉ० वामन गणेश देसाई (औषधी संग्रह-पृ० ४१० पर) लिखते हैं "इसके मूल ईरान,इङ्गलेण्ड, फ्रान्स,जर्मनी, अमेरिका इन देशों में उपयोग में आते हैं। अमेरिका, फ्रान्स और जर्मनी में यह सरकार मान्य है। आयुर्वेद की रास्नामूल–असली रास्ना–यही होनी चाहिए। जहाँ-जहाँ काश्मीर में कुष्ठ होता है, वहाँ-वहाँ यह रास्ना भी होती है।"

काश्मीर में कुष्ठ के समान ही पुष्करमूल भी सहज होता है। दोनों के विविध अङ्गों में अत्यन्त सादृश्य होता है। इसी से इनकी परस्पर मिलावट भी होती है। इनके गुणकर्म भी समान हैं। अतएव परस्पर मिलावट प्रतिनिधि के रूप में उपयोग में भी लाये जा सकते हैं।

काश्मीर में पुष्करमूल Inula Racemosa N.O. Compositeæ के क्षुप हमने देखे हैं। ये अति सुन्दर, सूर्यमुखी जैसें फूलवाले तथा ५-६ फीट ऊँचे होते हैं। टंगमर्ग में लगाए भी गए हैं।

राइसन को रास्ना मानें, इसके आधार भी हैं। इसके मूल वातकफघ्न हैं ही। उधर रास्ना का भी अधिक उपयोग वात और कफ पर ही हुआ है। मूल में सुगन्ध भी है, जिससे इस पर सुगन्धा पर्याय भी घटित होता है। इसके पत्र नीचे बड़े, ऊपर को छोटे होते हुए होते हैं। डॉ०देसाई की यह रास्ना विचारणीय अवश्य है। रास्ना का निर्णय न हो, तब तक काश्मीर से ये मूल मँगाकर उपयोग में लाकर देखना चाहिए।

११. जयपुर के नि० भा० वैद्य सम्मेलन में **गोरखगाँजा से मिलता एक क्षुप** (N.O. Amarantaceæ) रास्ना के स्थान पर रखा गया था।

१२. पं० हरिप्रपन्न जी लिखते हैं : कोंकण तथा महाराष्ट्र में एक **नाउली** नामकी लता होती है, जिसके पत्र पंचकोण होते हैं और दूर से अंशतः द्राक्षा के पत्र-जैसे दिखते हैं। कई इसे भी रास्ना कहकर सन्देह में वृद्धि करते हैं। परन्तु यह भ्रम है। **रास्ना** उष्ण-वीर्य है और यह लता शीतवीर्य है। (देखिए : रास्ना याथातथ्यम्)। यह लता हमारे देखने में नहीं आई।

अब इन बारह में से किसी को रास्ना ठहराना रहा। शास्त्रोक्त रास्ना कौन-सी होगी यह निश्चय करना अशक्यप्राय है। रास्ना के स्वरूप का वर्णन करे ऐसा कोई निघण्टु-वाक्य अभी तक देखा नहीं गया। आज जितने निघण्टु हैं वे सब अमरकोष के उच्छिष्ट हैं। अतः इन बारह में से अच्छी वातकफघ्न गुणोंवाली वनस्पति प्रत्यक्ष उपयोग में लाकर निश्चय करना चाहिए। रास्ना की परम्परा नष्ट हो चुकी हैं। पुराकाल में, शिष्य गुरुमुख से प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त करते थे, इसलिए वनस्पतियों की पहचान के सम्बन्ध में जो कठिनाई हमें होती है वह उन्हें न थी। इसलिए आज तो रोगी पर प्रयोग करके, जिसमें औषधोपयोगी गुण अधिक प्रतीत हों, उस वनस्पति को ही रास्ना ठहराना चाहिए।

इस प्रयोजन से चरक, सुश्रुत तथा भेल संहिताओं से रास्ना के उल्लेख हमने एकत्र किए हैं। रास्ना कौन-कौन से रोगों या योगों में चरक ने बताई है यह इस सूची से विदित होगा।

## चरक में रास्ना

आरग्वधीये। सू. अ. ३।१८-२२-२५-२८
अनुवासनोपग दशेमान्याम्—सू. अ. ४।१३ (२६)
रास्ना वातहराणाम्—सू. अ. २५।४०
वृष्ययोगे—बृंहणगुटिकायाम्—चि. अ. २ (१) २६
ज्वरे—जीवन्त्याद्येऽनुवासने—चि. अ. ३।२६०
अगुर्वाद्ये तैले—चि. अ. ३।२६७
गुल्मे—नीलिन्याद्ये घृते—चि. अ. ५।१०६
भल्लातक घृते—चि. अ. ५।१४६
राजयक्ष्मणि—शिरःपार्श्वांसशूलिनां प्रदेहार्थे—चि. अ. ८।७८।
शुष्यतां आभ्यवहारिके—चि. अ. ८।१७०।
शोफे—उन्मर्दनार्थे—चि. अ. १२।७२।
उदरे—अवसेचनार्थे—चि. अ. १३।११०।
अर्शःसु—रास्नापिण्डैः सुखोष्णैर्वा......स्वेदयेत्—चि. अ. १४।४३।
ग्राहण्याम्—पञ्चमूलाद्ये घृते—चि. अ. १५।८८

श्लैश्मिके ग्रहणी दोषे—चि. अ. १५।१६८।

श्वासे—यूषसाधनार्थे रास्नादि द्रव्याणि—चि. अ. १७।९६[1]—चि. अ. १७।१०२।

श्वासे—सुरामण्डे प्रक्षेपार्थम्— चि. अ. १७।१०६।

कासे पिप्पल्यादि घृते— चि. अ. १८।१६

,, रास्नादि घृते— ,, ४३

,, विडङ्गादि चूर्णे— ,, ४७।

चित्रकादिप्लेहे—,, ५४[2]

वातकास चिकित्सिते—चि. अ. १८।७७

पैत्ति, केसकफे कासेप्त्वगादि लेहे चि. अ. १८।९२।

वातानुगेकफे देवदार्वादि लेहे—चि. अ. १८।११८।

सर्वकासेषु हिक्काश्वासेषु—कण्टकारी घृते—चि. अ. १८-१२७।

कासे-पद्मकादिलेहे—चि. अ. १८-१७८।

विषचिकित्सायाम्—अगदे—चि. अ. २३।२३१।

हृद्रोगे—वातजहृद्रोगे अभ्यङ्गार्थे पुनर्नवादि तैले।

कफज हृद्रोगे—चि. अ. २६।१७-८२।

वातपीनसे—चि. अ. २६।१४०।

वातिके शिरसो रोगे—रास्ना सिद्धं नस्यम्—चि. अ. २६।१६०।

वातिके शिरसो रोगे मायूर घृते—चि. अ. २६।१६३।

,, ,, ,,महामायूर घृते—चि. अ. २६।१७०

वातजस्वरभेदे तैले—चि. अ. २६।२८३।

उरुस्तम्भे तैले—अभ्यङ्गार्थे—चि. अ. २७।४१।

वातव्याधौनाडी स्वेदे—चि. अ. १८।१११।

,, चित्रकादि घृते—,, ।१२२।

,, अभ्यङ्गार्थे तैलेषु—,, ।१३०।

,, बला तैले—,, ।१४८।

,, अमृताद्ये तैले—,, ।१६१।

,, रास्ना तैले—,, ।१६५।

,, मूलकाद्य तैले—,, ।१६८।

,, मूलक तैले—,, ।१७२।

वातरक्ते—बलादि तैले—चि. अ. २९।५६।

,, द्विपञ्चमूलादि घृते—,, ।६२।

,, बलादि क्षीरे—,, ।८१।

,, अमृताद्य तैले—,, ।१०३।

योनिरोगे शूले चि. अ. ३०।५७।

,, योनौ पिचुहेतोः तैलम्—,, ।५९।

बस्तौ सि. अ. ३।१३ बलादि तैले।

,, ।३९ तैले

,, ।४८

,, ।६१

सि. अ. ४।४, १५, २०, २९।

प्रासृत योगीयायां सिद्धौ—सि. अ. ८।८, पञ्चतिक्त निरूह

,, ,, ,, ।११ प्रसृतोबस्तिः।

अनन्त वाते ,, सि. अ. ९।८७

बलवर्णवर्धनार्थे बस्तौ सि. अ. ११।३४

सि. अ. १२।१६(१) (२) (६)
१८(१) (२)
१९ (२)

## सुश्रुते रास्नाया उपयोगः

**मातुलुङ्गाग्निमन्थौ च भद्रदारु महौषधम्।**
**सहिंस्रा चैव रास्ना च प्रलेपो वात शोफजित्॥**
सु. सू. ३७।३

**एलात्रिकटुके रास्ना सरलं देवदारु च।**
**रजनी मधुकं हिंगु कुष्ठं संशोधनानि च॥**
सु. चि. ३८।५

**पञ्चमूलीबला रास्ना गुडूची सुरदारुभिः।**
सु. चि. ३८।४२ (बस्तौ)

**गुडूची त्रिफला रास्ना दशमूल बलापलैः॥**
सु. चि. ३८।४६ (बस्तौ)

**कुशादिपञ्चमूलाब्द त्रिफलोत्पलवासकैः।**
**सारिवोशीरमञ्जिष्ठा रास्ना रेणुपरूषकैः।**
सु. चि. ३८। (आ. स्थापने)

**रास्नारग्वधवर्षाभूकटुकोशीरवारिदः**
सु. चि. ३८। (निरूहे)

**सुरदारुवरा रास्ना शतपुष्पावचा मधु।**
**हिंगुसैन्धवसंयुक्तो बस्तिदोषहरःस्मृतः।**
सु. चि. ३८।१०२

**मुस्तापाठाऽमृतातिक्ता बलारास्ना पुनर्नवा।**
सु. चि. ३८।१०५ (निरूहे)

---

[1] एवं रास्नामित्यादौ रसस्य प्राधान्यम्। च. द.।

[2] इस एक ही कल्प में सुरसा और रास्ना दो पृथक् द्रव्य आए हैं। इसे फलित है कि रास्ना का पर्याय सुरसा हो तो भी सुरसा कोई पृथक् द्रव्य भी होना ही चाहिए।

रास्ना कुंकुममञ्जिष्ठा मागधी नागरैस्तथा ।

सु. उ. ३९।२४४

विसर्पादौ रास्नादि घृते ।

हरिद्रां मरिचं द्राक्षां गुडं रास्नां कणां शटीम् ।
लिह्यात्तैलेन तुल्यानि श्वासार्तो हितभोजनः ।

सु. उ. ५१।४०

लत्रिकव्योषविडङ्गशृङ्गी रास्ना वचा पद्मकदेवकाष्ठैः ।
हः समैः क्षौद्रसिताघृताक्तः कासं निहन्यादचिरादुदीर्णम् ।

सु. ३. ५२।१३.कासे

त्रिकण्टरास्ना हुतभुग्बलाभिः ।

सु. उ. ५२।२९ कफोत्कासे

ाठाऽमृताग्रन्थिकशङ्खपुष्पी रास्नाग्न्यपामार्गबलायवासान् ।

सु. उ. ५२।४२ अगस्त्यहरीतक्याम् ।

श्वदंष्ट्राश्मभिदौ कुम्भीं हवुषां कण्टकारिकाम् ।
बलां शतावरीं रास्ना वरुणं गिरिकर्णिकाम्

सु. उ. ५९।१७ (उत्तरवस्तौ)

ब्राह्मीमैन्द्री विडङ्गानि व्योषं हिंगु सुरां जटाम् ।
विषघ्नी लशुनं रास्नां विशल्यां सुरसां वचाम् ।।

सु. उ. ६२।३० (अपस्मारे)

## भेलसंहितायाम् रास्नाया उपयोगः

रास्नावचाह्यर्कमूलं हिंस्रां दन्तीन्तथैव च ।
शतपुष्पा च कुष्ठं च द्वे हरिद्रे पुनर्नवा ।

चि. १६-(उरुस्तम्भे)

रास्ना बला गोक्षुरकं मधुकं देवदारु च ।

चि. १६ (अयोरजीये श्वयथौ)

त्र्यूषणं सैन्धवं कुष्ठं मञ्जिष्ठा मधुकं तथा ।
रास्ना हरिद्रा तेजाह्वा वराङ्गं बिल्वकं त्वचम् ।

चि. २४ (कर्णरोगे)

बलामूलात्पलशतं दशमूलात्शतं तथा ।
शतावर्या गुडूच्याश्च रास्ना मधुकदारुणा ।

चि. २६ (वातरोगे)

रास्नामूलस्य कुर्वीत द्वेशते च बलाशतम् ।

चि. २६ (रास्ना तैले वातरोगे)

हरीतकी वचा रास्ना सैन्धवं साम्लवेतसम् ।
घृत मात्रासमायुक्ता नाशयत्यपतानकम् ।

चि. २६ (वातरोगे)

रास्ना श्वदंष्ट्रामञ्जिष्ठा बृहती सपुनर्नवा ।

सिद्धि, २ (उर्ध्वजत्रुरोगे नस्ये) ।

देवदारु च बिल्वञ्च रास्ना कर्कटकाह्वया ।
एरण्डोऽप्यथ पूतिश्च तैलमेभिर्विपाचयेत् ।

सि. ४ (अनुवासने) ।

पटोलपत्रमूलञ्च पिचुमन्दं शतावरीम् ।
त्रायमाणां बलां रास्नां बृहतीं कण्टकारिकाम् ।

सि. ७. (निरूहे) ।

अश्वगन्धां बलां रास्नां श्वदंष्ट्रां स पुनर्नवाम् ।

सि. ७ (निरूहे) ।

विश्वाग्निमन्थश्योनाक काश्मर्यारुत्रुपाटलाः ।
रास्नां बला गोक्षुरक यवकोलकुलत्थकाः ।

सि. ८ (निरूहे) ।

शतावरीं सहचरां रास्नां गोक्षुरकं बलाम् ।

सि. ८ (बस्तौ) ।

ये तीनों सूचियाँ देखने से रास्ना प्रलेपन, निरूहण, आस्थापन, लेखन, उत्तरबस्ति, उद्वर्तन, तैल, घृत, क्वाथ, चूर्ण, लेह, नस्य, अवसेचन, स्वेदन, यवागू, क्षीरपाक, परिषेचन इत्यादि कल्पनाओं में व्यवहृत है और वातश्लेष्मप्रशमन, श्वास, कास, अपस्मार, श्वयथु, वातरोग, अपतानक, हृद्रोग, वातरक्त, योनिरोग, कफज रोग,शुक्र दौर्बल्य, इत्यादि रोगों में रास्ना के उपयोग देखे जाते हैं। सूक्ष्म निरीक्षण से प्रतीत होगा कि वात और कफ प्रधान रोगों में रास्ना के विशेष उपयोग हुए हैं ।

रास्ना वातहराणाम् । च. सू. २५

रास्ना गुरुणी शीतापनयन प्रलेपनानाम् । च. सू. २५

उपर्युक्त वचन भी सिद्ध करते हैं कि रास्ना श्रेष्ठ वातहर है और शैत्य के निवारण के लिए इसका प्रलेप उत्तम है। अर्थात् रास्ना में स्निग्धत्व, उष्णत्व,अनुलोमकत्व अनायास सिद्ध होता है। पित्त में इसका उपयोग नहीं हुआ है। रास्ना में तिक्त रसका प्राधान्य प्रतीत होता है और उष्णवीर्य प्रधान है।

रास्ना तिक्तोष्णगुर्वीस्यात् विषवातास्त्रकासजित् ।

(ध. नि.)

रास्नाऽप्यपाचनी तिक्ता गुरूष्णा कफवातजित् ।।

(भा. प्र.)

## वायसुरी रास्ना है—पं० हरिप्रपन्नजी का मत

निघण्टुकारों ने रास्ना का जो यह तिक्तरसप्रधान गुण बताया है उसका कारण पं० हरिप्रपन्न जी यह दर्शाते हैं कि

वे लोग रास्ना से परिचित ही न थे, और यदि थे भी तो ईश्वरी तथा कीडामारी को ही उन्होंने रास्ना समझा होगा। कारण, ऊपर केवल तिक्त रस का निर्देश किया है। यत्सत्यं, ऐसी उत्तम वातहर, वनौषधि मधुर रस, मधुर विपाकी और उष्ण वीर्य ही होनी चाहिए। रास्ना नाम परिचयात्मक प्रतीत होता है। रसना=जिह्वा के साथ रास्ना के पत्र का सादृश्य है, इसीलिए यह नामकरण हुआ है। **'वाइसुरी'** नाम यह द्रव्य वायु का अनुलोमन करता है, ऐसा स्पष्ट सूचित करता है। इसलिए तर्क-वितर्क त्याग कर **वाइसुरी** को ही रास्ना स्वीकार करना चाहिए। वाइसुरी का उपयोग कर सर्व वैद्य अनुभव करें, इतना ही कहना आज तो योग्य प्रतीत होता है। प्रान्तीय अभिनिवेश त्याग कर, शास्त्रसंभाषा में सबको निष्पक्ष होकर रस लेना चाहिए।

### हमारा मत—कुलिंजन या सिन्धी रास्ना के पक्ष में

पं० हरिप्रपन्न जी को वाइसूरी के लिए पक्षपात था। हमारा अपना तो **कुलिञ्जन** और **सिन्धी रास्ना** के प्रति पक्षपात है। इन सर्व द्रव्यों का उपयोग करके अन्तिम निश्चय करना चाहिए। इनमें जो अधिक औषधोपयोगी सिद्ध हो उसको रास्ना के रूप में स्वीकार करना चाहिए। बाकी शुष्क शाब्दिक शास्त्रचर्चा में पड़े रहने से कोई लाभ नहीं।

करांची में चिरकाल निवास कर चुके एक वैद्य श्री **भोगीलाल का० दवे** (चुड़ा-सौराष्ट्र), "आयुर्वेद रहस्य" मासिक के नवम्बर-दिसम्बर १९५८ के अङ्क में रास्ना के सम्बन्ध में लिखते हैं—"करांची के व्यापारी रास्ना माँगने पर 'कट्टी सेना' नामक एक द्रव्य देते थे। कट्टी का अर्थ कड़वी (तिक्त) और सेनां का अर्थ है सनाय। (अंग्रेजीमें सनाय का नाम सेना ही है)। अर्थात् कड़वीसनाय सिन्ध की रास्ना है।" मैंने 'सिन्धी रास्ना'—विषयक जो कुछ यहाँ लिखा है, वह द्रव्य यह कट्टी सेनां ही है या उस से भिन्न द्रव्य है, इसका निश्चय कट्टी सेना को प्रयक्ष देखने से ही हो सकता है।

आयुर्वेद-रहस्य के इसी अङ्क में कविराज **मुक्तिनाथ शर्मा** भिषग्रत्न असि. डिरेक्टर स्वास्थ्य-सेवा आयुर्वेद विभाग नेपाल का भी लेख है। वे लिखते हैं कि **गाईत्यारे** नेपाल की रास्ना है। नेपाल में **गाईत्यारे** ही रास्ना के स्थान पर उपयोग में आती है। इस नेपाली रास्ना में पीपरमिन्ट सदृश सुगन्ध होतो है, मूल में भी कुछ सुगन्ध है। सो निघण्टुकारों की 'तृणरास्ना' यह होनी चाहिए। शेष—मूल रास्ना के विषय में कुछ भी कहने का कोई आधार हमारे पास नहीं है।

### उपजीव्य कृतियाँ

नि० भा० वैद्य सम्मेलन, करांची की रिपोर्ट।
वृद्धत्रयी की वनस्पतियाँ (वैद्य बापालाल भाई)।
आयुर्वेद विज्ञान (मासिक) प्रकाशक–झण्डू फार्मेसी।
आयुर्वेद रहस्य–(मासिक) प्रकाशक–गोंडल रसशाला)

हिन्दी–**वैद्य शरत्कुमार व्यास**

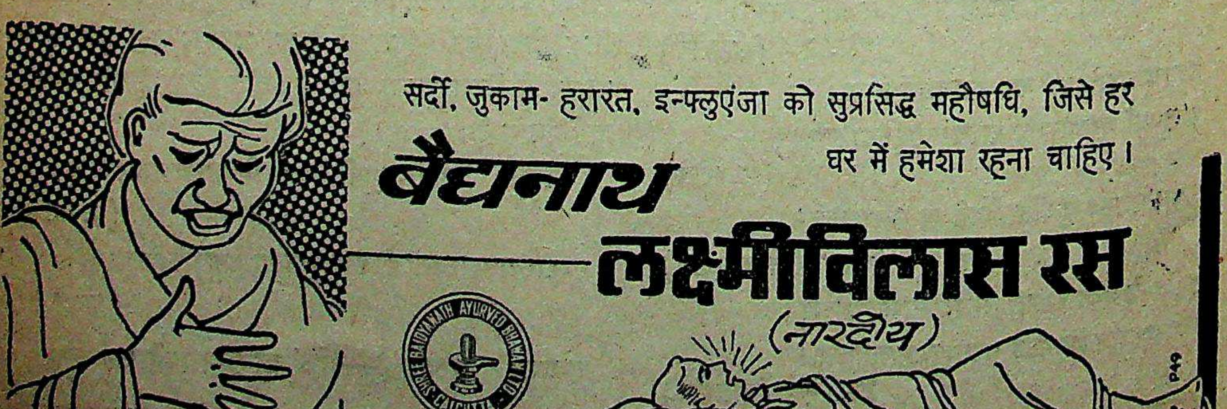

सर्दी, जुकाम- हरारत, इन्फ्लुएंजा की सुप्रसिद्ध महौषधि, जिसे हर घर में हमेशा रहना चाहिए।

वैद्यनाथ
लक्ष्मीविलास रस
(नारदीय)

# राष्ट्रीय स्वास्थ्य का समस्या

डा० ए० लक्ष्मीपति, एम० बी० सी० एम०, भिषगाचार्य

## ग्रामीण वैद्यों की मान्यता का प्रश्न

भारत के विभिन्न राज्यों के स्वास्थ्य-मन्त्रियों के प्रथम सम्मेलन में इस आशय का निर्णय हुआ था कि वैद्यों और हकीमों की सेवाएँ ग्रामीण अंचलों के स्वास्थ्य-सुधार की दिशा में प्रयुक्त की जानी चाहिए। चोपड़ा समिति ने भी अपने प्रतिवेदनों में इस आशय की एक अल्पकालीन योजना प्रस्तुत की थी कि ग्रामीण वैद्यों को प्रारम्भिक सहायता (फर्स्ट एड), प्रसूतितन्त्र तथा शिशु-कल्याण (Maternity and child welfare) और गाँव के स्वास्थ्य-सुधार सम्बन्धी कार्यों में पूर्णतया प्रशिक्षित होना चाहिए। मद्रास की पुरानी सरकार तथा आन्ध्र राज्य की वर्तमान सरकार ने भी प्रशिक्षण के लिए क्लास खोल कर लगभग एक हजार ग्रामीण वैद्यों को प्रशिक्षित किया; किन्तु कितने खेद का विषय है कि इन प्रशिक्षित वैद्यों को सरकार ने सेवा करने का कभी अवसर ही नहीं दिया। हाँ, वे दाइयाँ जो वंश-परम्परा से प्रसवकालीन सेवा-वृत्ति करती चली आ रही थीं, आधुनिक स्कूलों में प्रशिक्षित हो कर सेवा-कार्य कर रही हैं और उनकी सेवाओं का उपयोग सरकार कर रही है।

हालाँकि विभिन्न राज्य सरकारों के द्वारा जन-स्वास्थ्य विभाग में करोड़ों रुपयों की धनराशि व्यय की जाती है, किन्तु जहाँ तक ग्रामीण अंचलों का प्रश्न है, मानना होगा कि गाँव के स्वास्थ्य में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हो सका है।

## विफलता का कारण

इस बात को जोर देकर कहा जा सकता है कि ग्रामीण वैद्यों की उपेक्षा के परिणाम-स्वरूप ही हमारे प्रयास विफल होते रहे हैं। ग्रामीण वैद्य पर्याप्त कुशाग्र होते हैं और जिन अंचलों में वे वैद्यक-वृत्ति करते हैं, उनमें उनका काफी प्रभाव भी होता है। जिस एक बात की बड़ी आवश्यकता प्रतीत होती है वह यह है कि उनको प्रशिक्षण दे कर 'आधुनिक' बनाया जाय ताकि वे अधिकाधिक जनोपयोगी बन सकें।

## ६ बातें अत्यावश्यक

राष्ट्रीय स्वास्थ्य को उन्नत करने और सामाजिक कल्याण-सम्बन्धी कार्य को आगे बढ़ाने के लिए निम्नलिखित ६ बातें अत्यावश्यक हैं।

## सही दृष्टिकोण

जहाँ तक राष्ट्रीय स्वास्थ्य का प्रश्न है, इसके प्रति सही दृष्टिकोण हमें लेना चाहिए। साधारणतया राष्ट्रीय स्वास्थ्य के अन्तर्गत केवल शारीरिक स्वास्थ्य ही सम्मिलित किया जाता है, जब कि इसके अन्तर्गत हमारा नैतिक स्वास्थ्य भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। मेरे विचार से राष्ट्रीय स्वास्थ्य को उन्नत करने के लिए पंचशुद्धि यथा—देहशुद्धि, देशशुद्धि, आहार-शुद्धि, मानस-शुद्धि और आत्म-शुद्धि सम्बन्धी नियमों एवं आचारणों का पालन अत्यावश्यक है। राष्ट्रव्यापी आधार पर इनका नियमन और पालन होना चाहिए।

चिकित्सा-शास्त्र के दो उद्देश्य होते हैं—पहला स्वस्थ-वृत्तम्—अर्थात् स्वास्थ्य की अभिवृद्धि और दूसरा आतुरोपक्रमणम्—अर्थात् रोगोपचार।

अच्छे स्वास्थ्य की कसौटी यह है कि प्राकृतिक ढंग से ही वह चले—यदि वैद्य तथा उसकी औषधियों के बल पर उसकी गाड़ी चलती हो, तो कदापि यह अच्छा स्वास्थ्य नहीं कहा जा सकता। किसी भी व्यक्ति का स्वास्थ्य स्वयं उसके ऊपर ही निर्भर करता है—वह अपने जीवन में जितना ही अधिक संयमी और आत्म-नियन्त्रण रखनेवाला होगा उतना ही स्वास्थ्य की दृष्टि से वह स्वस्थ तथा सामर्थ्यवान होगा। रोग, प्रतिरक्षात्मक शक्तियों के निर्बल होने के फलस्वरूप ही उत्पन्न होता है। रोग उत्पन्न होने पर शरीर अपने जीव कोशाओं (Cells), तन्तुओं (Tissues) और मस्तिष्क की शक्ति के साथ रोग के विरुद्ध संघर्ष प्रारम्भ कर देता है।

## आधुनिक चिकित्सा द्वारा कृत्रिम स्वास्थ्य की सृष्टि

जहाँ तक आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान का सम्बन्ध है, वह मूल्याङ्कन करने पर सदोष ठहरता है और फलतः उसकी

सदोषता के बारे में छिन्न-संशय नहीं हुआ जा सकता । सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० एलेक्सिस केरेल (Dr. Alexis Carrel) लिखते हैं--"स्वास्थ्य तथा आराम सम्बन्धी समस्त सुविधाओं के बावजूद आधुनिक शिक्षित व्यक्ति की हठात् विस्तर पर अथवा दफ्तर में ही मृत्यु वैसी अवस्था (उम्र) में हो जाती है, जिस अवस्था में उसके पूर्वज जमीन गोड़ते और अन्य प्रकार के शारीरिक श्रम करते थे अथवा सपरिश्रम अपने रोजगार-धन्धे की सुव्यवस्था में लगे रहते थे ।" संक्रामक व्याधियों के बदले (जिन पर श्वेत जातियों ने निसन्देह विजय प्राप्त कर ली है) हृदय (Heart) तथा वृक्क (Kidney) से सम्बन्धित बीमारियों एवं उच्च रक्तचाप (High blood pressure) का इन दिनों प्राबल्य हो गया है। आधुनिक मानव, जो आजकल असमय हीं अधिकाधिक क्षयिष्णु होता जा रहा है, उसके मूल में उसकी मानसिक दुश्चिन्ताएँ, आर्थिक सुरक्षा का अभाव, अत्यधिक परिश्रम, शारीरिक तथा नैतिक अनुशासन की कमी और संयमहीन जीवन का होना ही है ।

## पंचशुद्धि-कार्यक्रम

चिकित्सा-शास्त्र का मार्ग अत्यन्त कण्टकाकीर्ण है। इन्जेक्शन्स देने से जो एलर्जी (Alergy) होती है, उसके कारण अनेक व्यक्तियों की मृत्यु होने के संवाद हम प्रायः ही सुनते रहते हैं। पंचशुद्धि सम्बन्धी कार्यक्रम के अधिकाधिक प्रचार के लिए आरोग्य-यात्रा का कार्यक्रम इस दृष्टि से बड़ा उपादेय हो सकता है ।

वे पाँच नियम निम्न प्रकार हैं--

(१) **देह-शुद्धि**--शारीरिक स्वच्छता ।

(२) **देश-शुद्धि**--वातावरण की स्वच्छता ।

(३) **आहार-शुद्धि**--आहार सम्बन्धी स्वच्छता अथवा शरीर और मस्तिष्क का पूर्ण पोषण ।

(४) **मानस-शुद्धि**--मन की स्वच्छता। यह आत्म-संयम पर निर्भर करती है। कहा भी गया है--"आहार शुद्धौ सत्त्व शुद्धिः" मन की स्वच्छता आहार की स्वच्छता पर बहुत हद तक निर्भर करती है ।

(५) **आत्मशुद्धि**--आत्माकी शुद्धता--आध्यात्मिकशुद्धता यह शुद्धता प्राणिमात्र को आत्मवत समझने से, गरीब तथा पीड़ितों के प्रति कारुण्य भाव रखने से उत्पन्न होती है ।

## जड़ी-बूटियों की उपयोगिता

वनस्पति-जगत् में पायी जानेवाली अनेकानेक जड़ी-बूटियाँ साधारण व्याधियों की चिकित्सा में अत्यन्त गुणकारी सिद्ध होती हैं ; इसलिए इनका जहाँ तक संभव हो सके प्रयोग होना चाहिए । जंगलों में पायी जानेवाली जड़ी-बूटियाँ तथा घर के पिछवाड़े में अपने-आप उगनेवाली अनेकानेक उपयोगी तथा बहुमूल्य वनस्पतियाँ (Drug) हमारी अज्ञानतावश नष्ट हो जाया करती हैं ।

## आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त

आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों का जहाँ तक सम्बन्ध है, इनके अन्तर्गत सत्त्व, राजस और तामस--ये त्रिगुणात्मक प्रवृत्तियाँ, जो मनुष्य के तीन विभिन्न प्रकार के स्वभाव का द्योतन करती हैं, आती हैं--इसके अतिरिक्त त्रिदोष सिद्धान्त है, जो आयुर्वेद का मूलाधार है। त्रिदोष सिद्धान्त के अनुसार वात-पित्त-कफ--इनमें विषमता उत्पन्न होने से मनुष्य व्याधिग्रस्त हो जाता है। आयुर्वेद के इन मूलभूत सिद्धान्तों का अध्ययन-अध्यापन सर्वत्र भारत में होना चाहिए--क्योंकि हमारी सभ्यता, हमारा दर्शन और हमारी जीवन-पद्धति ही उपर्युक्त दोनों सिद्धान्तों के आधारों पर टिकी है ।

आयुर्वेद सत्य पर आधारित है। आयुर्वेद ईश्वर में आस्था और विश्वास रखता है। आयुर्वेद में कहा गया है--"नास्तिक्य बुद्धि जह्यात्" अर्थात्--नास्तिकता सम्बन्धी मनोवृत्ति का परित्याग करो--जबकि पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र पूर्णतया भौतिकवादी है और 'ईश्वर' जैसी 'संज्ञा' अथवा 'सत्ता' में उसकी बिल्कुल आस्था नहीं है। आयुर्वेद की जड़ भारत की मिट्टी में बड़ी गहराई से घुसी हुई है और अद्यावधि आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति द्वारा भारत में रहनेवाली ८५ प्रतिशत जनता लाभान्वित हो रही है। आयुर्वेद न केवल इस देश की जल-वायु और प्रकृति के ही, प्रत्युत् भारतीय जनता के नैतिक, सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक जीवन के भी अनुकूल है। आयुर्वेद का मार्ग दैवी सम्पद् (Divine path) का है, जबकि पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र का मार्ग आसुरी सम्पद् का है। आयुर्वेद भारत में चिरकाल तक जीवित रहेगा, क्योंकि यह पूर्णतया वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है ।

## आयुर्वेद के आहार सम्बन्धी नियम

आहार सम्बन्धी भारतीय-शास्त्र आधुनिक विज्ञान के आहार सम्बन्धी नियमों की अपेक्षा कहीं अधिक विकसित है। आयुर्वेद में भोज्य वस्तुओं का सात्विक, राजस और तामस--इस प्रकार वर्गीकरण किया गया है। मस्तिष्क की सूक्ष्मातिसूक्ष्म शक्तियाँ यथा--स्मरण शक्ति (Memory) और बुद्धि (Intellect) को जागृत करनेवाले तथा शारीरिक गठन को सुदृढ़ एवं सबल बनाने वाले आहार पृथक्-पृथक् वर्गीकृत किये गये हैं। इसका ज्ञान आयुर्वेद के भेषज-शास्त्रीय सिद्धान्तों को जाने बिना कदापि नहीं हो सकता।

## प्राथमिक और माध्यमिक स्तर की शिक्षा

जन-स्वास्थ्य सम्बन्धी किसी भी प्रकार की योजना भारत में तब तक सफल नहीं हो सकती, जब तक कि उस योजना की नींव ग्रामीण स्तर पर रखी न गयी हो। इसलिए प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के लिए जो भी पाठ्य-क्रम निर्धारित किए जायँ उनमें आयुर्वेदीय दृष्टि से गृह-चिकित्सा (Domestic medicine) और आरोग्य-सूत्र (Rules of health) सम्बन्धी विषयों का समावेश आवश्यक है।

## आयुर्वेद की घोर उपेक्षा

जहाँ तक सरकार का सम्बन्ध है, वह आयुर्वेद के प्रति सिर्फ मौखिक सहानुभूति ही रखती है। जब राजकीय सहायता के लिए सरकार से आग्रह किया जाता है, तब सरकार रुपये की कमी तथा घाटे का वजट आदि का बहाना ढूँढ़ कर बगलें झाँकने का प्रयास करने लगती है। किन्तु एलोपैथी के लिए बड़ी-बड़ी धनराशि अनुदान के रूप में देते समय सरकार के सामने कोई कठिनाई नहीं आती--यह कैसी विडम्बना है। एलोपैथी को दी गयी सहायता का लाभ भारत के गाँवों को नहीं मिल पाता। कभी-कभी तो उक्त सहायता ही उपयुक्त व्यक्तियों के अभाव में लुप्त हो जाती है और विदेशों से कीमती वस्तुओं की पूर्ति में भी कभी-कभी काफी कठिनाई उपस्थित हो जाती है।

## स्वास्थ्य के लिये ग्राम स्वराज्य

ग्रामीण वैद्यों को मान्यता प्रदान कर आन्ध्र की सरकार ने एक बड़ा ही निर्भीक कदम उठाया है। आन्ध्र सरकार ने जन-स्वास्थ्य के लिए इन वैद्यों को जिम्मेवार घोषित कर दिया है--अगर जन-स्वास्थ्य बिगड़ता है तो निश्चय ही इसकी जिम्मेवारी इन ग्रामीण वैद्यों पर होगी। स्वास्थ्य सम्बन्धी ग्राम-स्वराज्य की योजना का अनुकरण अन्य राज्य सरकारों के द्वारा भी होना चाहिए। ग्रामीण वैद्यों के निरीक्षण में देश भर में आरोग्य-केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए। इस आन्दोलन का एक अवश्यम्भावी परिणाम यह होगा कि देश की जनता राष्ट्रीय स्वास्थ्य की दिशा में स्वयमेव प्रशिक्षित होती जायगी और उसके दैनिक आचरण स्वस्थवृत्त के नियमों से बँधे रहेंगे।

चिकित्सा-शास्त्र के अध्येताओं की नवीन पीढ़ी को व्याधि और उसकी चिकित्सा--मात्र इतने ही से सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए--बल्कि पंच-शुद्धि के सिद्धान्तों का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार करते हुए व्याधियों की रोकथाम करने की दिशा में इनका प्रशिक्षित होना अत्यावश्यक है। आसनों के द्वारा आवश्यक आत्म-नियन्त्रण की शक्ति आती है--साथ-साथ शारीरिक गठन भी दृढ़ होता है और मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है। मस्तिष्क और शरीर की शक्ति में वृद्धि होने के फलस्वरूप रोगकारक कीटाणुओं के साथ संघर्ष करने की शक्ति (Immunity) विकसित होती है।

सम्प्रति हमलोग पाश्चात्य सभ्यता के चाकचिक्य से स्तम्भित हो रहे हैं--ऐसी स्थिति में पंच-शुद्धि विषयक आन्दोलन की उपादेयता और भी बढ़ जाती है। निश्चय ही इस आन्दोलन का अन्तर राष्ट्रीय महत्त्व है।

वस्तुतः जहाँ तक मेडिकल शिक्षा सम्बन्धी पाठ्यक्रम का सम्बन्ध है, जागतिक आधार पर इसमें परिवर्तन होना चाहिए। मानव जीवन के सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक पक्षों को आज अधिकाधिक महत्त्व देना चाहिए। भारत की पुरातन सभ्यता एवं देश को भी पतनोन्मुख होने से यदि हमें रोकना अभीष्ट है तो आरोग्य-यात्रा की योजना को देश-व्यापी आधार पर क्रियान्वित किया जाना चाहिए।

## जो कार्य हमें करना है

ग्रामीण वैद्यों के लिए वह अवसर अब आ गया है, जब कि उन्हें परिस्थिति के अनुसार कार्य-संपादन करते हुए अपनी योग्यता प्रदर्शित करनी चाहिए। आयुर्वेद का भविष्य प्रत्येक गाँव में आरोग्य-केन्द्रों एवं जड़ी-बूटियों के उद्यानों की स्थापना सम्बन्धी सफलता पर निर्भर करता है। १९५९ ई० के समाप्त होते-होते आन्ध्र राज्य में २००० आरोग्य-केन्द्रों की स्थापना करने की मेरी योजना है। भारत के अन्य राज्यों को चाहिए कि वे भी इस दिशा में आगे बढ़ें और आरोग्य-केन्द्रों की स्थापना करें। आयुर्वेद की प्रगति जनता की सहायता एवं संरक्षण पर निर्भर करनी चाहिए। लोकतान्त्रिक व्यवस्था में जनता की आवाज अवश्यमेव सुनी जायगी। हमें संयुक्त हो कर कार्य करना है और इस बात का ध्यान रखना है कि हमारे आन्तरिक मतभेद के कारण हमारी प्रगति की गाड़ी रुकने न पावे।

# वैज्ञानिक नरक-यात्रा

### श्री विश्वामित्र वर्मा

संसार के सब स्थावर-जंगम प्राणी और पदार्थ की उत्पत्ति, स्थिति और लय-अग्नि (सूर्य) जल, वायु, आकाश और पृथ्वी इन पंचतत्त्वों में है। किन्तु अपनी वैज्ञानिक भ्रान्त बुद्धि से हमने पृथ्वी, जल और वायु, इन तीन तत्त्वों के साथ-साथ अपने शरीर को भी दूषित कर दिया है, अपने आविष्कारों से, रस-रसायनों से, विषाक्त पदार्थों से; इन पंचतत्त्वों का उचित उपयोग न करके, स्वयं अपना स्वास्थ्य बिगाड़ कर, संसार के वातावरण को विकृत कर दिया है, जब कि चौरासी लाख प्रकार के प्राणियों में से एक, मनुष्य को छोड़ कर बाकी ८३,९९,९९९ जाति के प्राणी प्रकृतिस्थ होकर इन पंचतत्त्वों में गुजर करते हुए स्वस्थ रहते हैं। अपनी वैज्ञानिक विकृत व्यवस्था के रहन-सहन से हमने अपने भोजन पानी, हवा तथा प्रकृति में उत्पन्न होनेवाली अन्न, साग, फल की फसलों को भी दूषित कर दिया है। अधिक फसल की कामना से भूमि में रासायनिक खाद डाल कर उसके तत्त्वों को उत्तेजित करके गहरी जुताई की जाती है जिसका फल कालान्तर में यह होगा कि पृथ्वी निःसत्व एवं वन्ध्या हो जायगी। अमेरिका में ऐसे ही अतिस्वार्थी वैज्ञानिक प्रयोग से लगभग १०० करोड़ एकड़ भूमि बर्बाद हो गई है।

जल के सम्बन्ध में भी यही बात है। सृष्टि-काल से अथवा कहिये अनादि काल से, क्योंकि सृष्टि अनादि है, विश्व के सभी प्राणी प्राकृतिक जल पीकर जीते आये हैं, उन्हें कोई रोग न हुआ और अब भी जीते हैं, मनुष्य भी अब से सौ वर्ष पूर्व तक प्राकृतिक जल, नदी, तालाब, कुआँ, झरना आदि से प्राप्त कर जीता रहा है। छोटे नगरों, गाँवों के विषय में यह सत्य है कि अब भी प्राकृतिक जल सब लोग पीते हैं, परन्तु आबादी घनी होते-होते जल प्रदाय की व्यवस्था आवश्यक हुई और वैज्ञानिक बुद्धि से घर-घर जल पहुँचाने की योजना के फलस्वरूप उसे रासायनिक पदार्थों द्वारा शुद्ध किया जाने लगा। कहा जाता है कि भूतत्त्व में केलशियम फ्लोराइड होता है वह हमें पानी के द्वारा कुआँ, नदी, तालाब में प्राकृतिक रूप में मिल जाता है, परन्तु भूतत्त्व सर्वत्र एक-सा नहीं है, अतएव कहीं-कहीं जल में वह तत्त्व न प्राप्त होने के कारण उसमें अब सोडियम फ्लोराइड डाला जाता है, क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं कि यह तत्त्व दाँतों के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। परन्तु अंधेर की बात यह है कि आवश्यकता केलशियम फ्लोराइड का है और ये डालते हैं सोडियम फ्लोराइड। दूसरी बात यह है कि भूतत्त्व से जल में प्राप्त होने वाला केलशियम फ्लोराइड प्राकृतिक होता है और ये डालते हैं रासायनिक सोडियम फ्लोराइड जो कि केलशियम फ्लोराइड की अपेक्षा ८५ गुना जहरीला होता है। यह सब जान कर स्वीडन, स्विजरलैण्ड और अमेरिका के कई सौ बड़े शहरों में, संसार के सब से बड़े शहर न्यूयार्क के भी जल-प्रदाय में, प्रबल जन-विरोध के कारण वहाँ की सरकारों ने पानी में इस विषाक्त रसायन को घोलना बन्द कर दिया है, क्योंकि डॉक्टरी मत और वैज्ञानिक प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि इस रसायन से दाँत दृढ़ होने के बजाय खराब हुए हैं। फिर भी विश्व स्वास्थ्य संघ द्वारा इसकी आवश्यकता का जो प्रचार किया जाता है और भारत जैसे देश को वैज्ञानिक अन्धविश्वास में इसके उपयोग के लिए प्रेरित किया जाता है उसमें कोई वैज्ञानिक तथ्य न हो कर केवल रासायनिक उद्योगों का स्वार्थ है। जनतन्त्र में यह कितने अन्धेर की बात है कि स्वास्थ्य-योजना और शुद्ध जल के नाम पर जनता के घर-घर यह विषाक्त जल पहुँचाया जाता है और जो लोग न पीना चाहें उन्हें भी लाचार दशा में पीना पड़ता है। आप पूछेंगे कि यदि यह रसायन विष है तो इसका तत्काल कुप्रभाव हमें क्यों नहीं मालूम होता?

केवल जल ही नहीं, हमारा भोजन भी विषाक्त होता है—बेमेल तत्त्वों के संयोग से। और उसका तत्काल प्रभाव हमारे शरीर पर केवल तीव्र विष की दशा में होता है, सूक्ष्म मात्रा में विष होने से दीर्घकाल में उसका असर प्रकट होता है जब कि वह असह्य मात्रा में संचित हो गया होता है। एक तोला अफीम या संखिया खाकर कोई

तुरन्त मर सकता है, परन्तु तिल या राई बराबर मात्रा में खाने से नहीं मरेगा, उसकी सूक्ष्म मात्रा का तात्कालिक प्रभाव किंचित् नशे के रूप में होगा, और वह विष शनैः-शनैः शरीर में संचित होते-होते, शरीर की सूक्ष्म प्रकृति को क्रमशः शिथिल करते हुए दीर्घकाल में, बहुत वर्षों में––जब कि शरीर की प्रकृति––संचित विष को सहन करने में असमर्थ होगी, उस समय रोग प्रकट हुआ अनुभव होता है। ठीक इसी प्रकार हमारे बेमेल भोजन के विकार से उत्पन्न विषों का संचय कालान्तर में रोग के रूप में प्रकट होता है, जैसे भूमि में बीज पड़ने से धीरे-धीरे वह अंकुरित होकर उगता हुआ फसल देता है। अतएव इस विषाक्त जल का भी कुपरिणाम कालान्तर से प्रकट होगा, विष बीज का फल विष ही होगा।

खेती, बागवानी में भिन्न-भिन्न प्रकार के बीज, ककड़ी, सेम, मक्का, ज्वार, चावल, गेहूँ, अमरूद, आम, इमली जैसे कालान्तर से लहलहाते फूलते-फलते हैं, इसी प्रकार ये अनेक प्रकार के खाये-पिये जानेवाले विषाक्त रासायनिक तत्त्व, पानी, भोजन और दवा के नाम से बीज रूप होकर अपनी न्यूनाधिक उग्रता से हमारे शरीर-भूमि में उग कर कालान्तर से रोग प्रकट करते हैं, कोई साध्य, कोई असाध्य।

भूमि में विषाक्त रासायनिक खाद मिला कर उसे निःसत्त्व, वन्ध्या करने, एवं जल में विष घोल कर जनता को पिलाने के साथ औद्योगिक रसायन-शालाओं से कीटमार विष बना कर मक्खी-मच्छर, खटमल, पिस्सू और सूक्ष्म कीटाणु मारने के लिए डी० डी० टी०, गेमाक्सीन आदि भूमि पर, मकानों और वातावरण में प्रसारित किये जाते हैं। सड़कों पर मोटरें चलती हैं, आसमान में हवाई जहाज चलते हैं। इनमें जलने वाले पेट्रोल की गैस भी वातावरण को विषाक्त ही करती है, और वायु जब हमारी नाक से किंचित् मात्र भी प्रवेश करती हैं उसकी गन्ध का अनुभव हमें होता है––वह भी हमारी अनिच्छा से हमारे रक्त-प्रवाह में घुल जाती है।

यहाँ तक कि खाद्य पदार्थों को, अन्न, साग, फलों को अधिक काल तक कीटाणुओं से सुरक्षित रखने के लिए भी उनमें डी० डी० टी० आदि विष-रसायन छिड़के, घोले, चुपड़े, मिलाये जाते हैं और उन सब में, दूध, मक्खन, पनीर, रोटी, आटा, मिठाई, आदि से अनेक प्रकार के रंगीन विष हमारे पेट में जाते ही हैं। और जब हम बीमार पड़ते हैं तो रोग-नाश एवं स्वास्थ्य-लाभ कराने के लिए दवा के नाम पर कड़वी, रंगीन, दुर्गन्धित विष के मिक्श्चर, गोलियाँ, और हिंसक तत्त्वों से बने, जानवरों के रस-रक्त, पीव, मवाद, मांस, ग्रन्थियों और मल-मूत्र से बने गन्दे पदार्थों के इन्जेक्शन हमारे शरीर में प्रविष्ट कर रक्त में घोले जाते हैं। इसे कहते हैं इलाज! भला ऐसे भोजन, पानी, हवा और इलाज से मानव कब तक जी सकेगा, इसका आप खूब विचार कर लीजिये।

शहरों में रहनेवाले जल-प्रदाय के जल से बचना चाहें और पोटाश परमेगनेट घोले हुए, मुर्दा कीटाणु घुले हुए कुंएँ के जल का भी परहेज करें, तथा बरसते बादलों के आसमानी जल का पीने के लिए संचय करें तो वह भी दूषित होता है, क्योंकि वैज्ञानिक प्रयोगके लिए अणु बमों के विस्फोट आजकल बहुधा प्रशान्त महासागर में जो होते हैं, उनके विष-मिश्रित समुद्री जल से बादल बनते हैं। वर्षा के जल में विश्लेषण करने पर रेडियो सक्रिय तत्त्व पाये गये हैं। मछलियों पर भी उसका प्रभाव होता है। जापान में ऐसी प्रभावित मछली के खानेसे एक बाप-बेटे बिना किसी रोग के अचानक काल-कवलित हो चुके हैं, उनके मृत-शरीर को चीर-फाड़ करके पेट में पड़े भोजन का विश्लेषण करने से यह सब हाल मालूम हुआ है। प्रकृति से भाग कर कोई कहीं नहीं जा सकता, नहीं जी सकता; और आधुनिक वैज्ञानिक इन्द्रजाल से भी भाग कर जीना कठिन है।

इस वैज्ञानिक युग की चकाचौंध में पैदा होने वाली पीढ़ी तथा वर्तमान पीढ़ी के स्वास्थ्य को देखते हुए एक अनुभवी डॉक्टर ने लिखा है कि कुछ सौ वर्षों के बाद अंधी, अपंग, नपुंसक और पागलों की दुनिया होगी।

अमेरिका में एक नौ वर्ष के बालक ने अपने भाषण में कहा है कि अच्छा बीज अच्छी भूमि में अच्छी खाद और जल पाकर उग कर अच्छी फसल देगा—यह विज्ञान हम जानते और कृषि में प्रयोग करते हैं। हमारे पूर्वजों के शरीर से ही हमें वर्तमान शरीर मिला है, और आज के असंयम, व्यसन, विषाक्त भोजन एवं वातावरण से अगली पीढ़ियों का तन-मन-निर्माण होगा। हम आगे के लिए कैसी मानव-वंशावली का निर्माण कर रहे हैं यह आज ही उत्पन्न होनेवाले अपंग, अंधे, नपुंसक, अर्द्धपागल बच्चों को देख कर अनुमान लगा सकते हैं। क्या यही है हमारी

वैज्ञानिक उन्नति का नमूना ? पूर्वकाल में मधुमेह, हृदय-रोग, रक्तचाप, पक्षाघात, अंधापन, दन्तनाश जो बूढ़ों को हुआ करते थे अब बच्चों को होते हैं। ऐसे वैज्ञानिक युग को, वैज्ञानिक भोजन, भेषज और जीवन को नमस्कार !

यदि हमें अपना इतिहास, इस संसार में अपने अस्तित्व का प्रमाण स्वस्थ-वंशावली द्वारा कायम रखना है तो हमें वैज्ञानिक विनाशकारी वृत्ति छोड़ कर प्रकृति अनुकूल अपनी जीवनचर्या, भोजन और ऋतुचर्या बनानी चाहिए जिससे हमें प्राकृतिक शुद्ध भोजन, पानी, हवा मिले और हम तन-मन को शुद्ध संयम द्वारा स्वस्थ रख सकें। किसी दूरस्थ आसमानी नरक की जो कल्पना की जाती है वह वैज्ञानिक भ्रमजाल द्वारा साक्षात् पृथ्वी पर बनाया जा रहा है। अपने असंयम, व्यसन द्वारा अर्जित अनेक भयावह रोगों में फँसे कई लाख लोगों को वैज्ञानिक इलाज करनेवाले इन नरक रूपी अस्पतालों में पड़े देखिये कि उन्हें किस प्रकारका और कितना कष्ट है। महीनों अस्पतालों में पड़े रहने के बाद भी कितने लोग अपने घरों पर असाध्य बन लाचार और निराश हो कर, अपने सम्बन्धियों के आश्रित, अथवा निराश्रित हो कर भगवान को पुकारते हुए मृत्यु का आह्वान करते हैं, परन्तु मौत भी उन्हें नहीं पूछती। यह सब अपने ही असंयम और व्यसनों की गुलामी, कुकर्म और वैज्ञानिक भ्रमजाल के परिणामस्वरूप अपना ही बनाया हुआ नरक है। अपनी जिह्वा-लोलुपता, ऐन्द्रिक गुलामी और वैज्ञानिक चकाचौंध से बना हुआ यह नरक है। जिसे हम वैज्ञानिक प्रगति कहते हैं वह है हमारी नरक-यात्रा।

इस नरक-यात्रा से बचने के साधन भी हैं--विज्ञान का आश्रय छोड़ कर, संयमी, परिश्रमी बनो, दवाओं का त्याग करो, अपना भोजन, पानी स्वयं उपार्जित करो।

शरीर को स्वस्थ एवं बलवान
बनाये रखने के लिये
**बैद्यनाथ** रस-रसायनों
का सेवन करें।
बैद्यनाथ-औषधियाँ अपनी गुण-कारिता एवं सर्वाङ्ग पूर्णता के लिये सुप्रसिद्ध हैं।

श्री **बैद्यनाथ**
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

# आयुर्वेद में अनुसन्धान की रूप-रेखा

आचार्य श्री सुदेवचन्द्र पाराशरी, शास्त्री, डी० आई० एम० एस०

**देश में सरकारी और ग़ैर-सरकारी संस्थान आयुर्वेदीय-अनुसन्धान की ओर प्रवृत्तिशील हो रहे हैं। अच्छा होता यदि वे अलग-अलग क्षेत्रों और विषयों में प्रवृत्त होतें और परस्पर सम्बन्ध रखते हुए एक दूसरे के सहायक और पूरक बन कर राष्ट्र के धन, समय और शक्ति का अधिकाधिक सुपरिणामजनक सदुपयोग कर पाते। इसी दृष्टिकोण से अनुसन्धान की दिशा में क्षेत्रानुसार विषय-निर्देश किया जा रहा है।**

**अधोनिर्दिष्ट तीन क्षेत्रों में से किसी भी क्षेत्र के विषय या विषयों अथवा एकाधिक क्षेत्र में क्रमशः या युगपत् कार्यारम्भ करना गवेषणशाला की साधन सम्पन्नता पर निर्भर है। एक स्थान पर सर्वसम्पन्नता असम्भव प्राय ही है। अतः अनुसन्धानशालाएँ पृथक्-पृथक् क्षेत्र विषयों में कार्य करते हुए, परस्पर सहयोग और सामंजस्य रखें तो कम खर्च और थोड़े समय में अधिक कार्य सम्भव है। एतदर्थ निर्देशन के लिए एक केन्द्रीय अनुसन्धान परिषद्की तुरन्त अपेक्षा है। ——सम्पादक**

## इतिहास और वाङमय सम्बन्धी गवेषणा

**(१) ऐतिहासिक गवेषणा——**

(क) आयुर्वेद के प्रवर्त्तन और क्रमिक विकास का निर्धारण——वैदिक, पौराणिक, तान्त्रिक, यावन एवं आधुनिक कालिक विकास-अवरोध-अवनति तथा पुनर्जागरण का काल-क्रमानुसार विवरण।

(ख) देव, ऋषि, रससिद्ध आचार्यों का काल व कार्य-निरूपण।

(ग) आधुनिक युग के कार्य——गतिविधियाँ, आन्दोलन, संस्थाएँ ; ग्रन्थकार, टीकाकार, गवेषक ; औषधि-निर्माता, उनके जीवनेतिहास और कार्यकलाप का कालक्रमानुसार संकलन।

**(२) वाङ्मय सम्बन्धी गवेषणा——**

(क) मूल सिद्धान्त विषयक

(अ) सृष्टि विकास, पंच महाभूत और त्रिदोष सिद्धान्त; द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवाय और द्रव्य-गुण-रस-वीर्य-विपाक-प्रभाव सिद्धान्त ; इनका परस्पर सम्बन्ध, स्वस्थवृत्त और चिकित्सा में उपयोग ; आधुनिक भौतिकी, रसायन तथा जीवविज्ञान की शाखाओं से समन्वय।

(ब) असात्म्येन्द्रियार्थसंयोग, प्रज्ञापराध, परिणाम (विप्रकृष्ट) तथा त्रिदोष (संन्निकृष्ट) हेतु व धातुमलदुष्टि-रोग-सम्प्राप्ति विज्ञान ; आधुनिक हेतु और सम्प्राप्ति-विज्ञान से समन्वय। हेतु-विपरीत, व्याधि-विपरीत, हेतु-व्याधि-विपरीत एवं हेतुसम, व्याधिसम, हेतुव्याधिसम चिकित्सा सिद्धान्त, इनमें आधुनिक चिकित्साशास्त्र, होम्योपैथी, यूनानी, प्राकृतिक आदि समस्त प्रचलित नई-पुरानी पद्धतियों का अन्तर्निवेश।

इसी आधार पर विश्व के लिए एक समन्वित चिकित्सा-विज्ञान "आयुर्वेद" की स्वाभाविक संभावना का निरूपण।

**(ख) ग्रन्थ संशोधन विषयक——**

(अ) दुष्प्राप्य प्राप्त प्राचीन ग्रन्थ संशोधन, संस्करण और प्रकाशन।

(ब) वैदिक, पौराणिक, तान्त्रिक, ज्योतिष, कर्मकाण्ड, धर्मशास्त्र, दर्शन, काव्य, कोषादि साहित्य में आयुर्वेदीय ज्ञान का विवेचन।

(स) पारिभाषिक शब्दकोष निर्णय।

(द) अष्टांग पर आलोचनात्मक व तुलनात्मक ग्रन्थ-निर्माण।

(य) सैद्धान्तिक नूतन मौलिक ग्रन्थ-प्रणयन।

(र) वैयक्तिक और सार्वजनिक स्वास्थ्य पर आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से विस्तृत साहित्य-निर्माण।

(ल) निघण्टुओं के पारस्परिक मतभेद का निरशन; उद्भिज्ज-शास्त्र दृष्ट्या वर्गीकरण ; मान, परिभाषा व मात्रा-निर्णय ; ग्रन्थोक्तगण व वर्ग-विमर्श।

(व) नवीन द्रव्यों——सीतासुपारी, निर्विषी, रक्त-विडार, मांझा, कामराज, बलराज, भोजराज, तेजराज, उशवा, सिनकोना, अर्गट, गुड़मार, बाकेरी, आदि-आदि देशी-विदेशी द्रव्यों का वर्गीकरण, प्रयोग-परिमाण के अनुसार शास्त्रीय दृष्टिकोण से गुण-धर्म निश्चित करके निघण्टुओं में समावेश।

### द्रव्यान्वेषण और भेषज कल्पना सम्बन्धी गवेषणा

(१) नवीन द्रव्यों का संकलन, गुण-धर्म परीक्षण व निर्णय ; सन्दिग्ध वनौषधि, प्राणिज एवं खनिज द्रव्य-निर्णय ।

(२) रस-संस्कार, संस्कृत रसशक्ति, पारद बुभुक्षीकरण, संस्कृत एवं धातुग्रासी पारद से चन्द्रोदयादि-निर्माण एवं उसी के बने रससिन्दूर या कज्जली से रस-निर्माण और उनका प्रभाव-परीक्षण । द्रुतिनिर्माण, उनका रासायनिक परीक्षण, खेचरी गुटिका एवं अन्य लौहसिद्धि और देहसिद्धि के प्रयोग ।

(३) शल्य चिकित्सोपयोगी आयुर्वेदिक भेषज-कल्प-निर्माण । नव्य प्रयुज्यमान कल्पों का द्रव्यगुण व त्रिदोष-सिद्धान्तानुसार परीक्षण और परिणामानुसार वर्गीकरण ।

(४) नवीन भेषज कल्पों ( Modern Therapeutic rugs.) व सूचीवेध कल्पों का आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण व त्रिदोष सिद्धान्तानुसार परीक्षण व परिणाम निरीक्षण-निर्णयानुसार वर्गीकरण करके भैषज्य व रस ग्रन्थों में समावेश ।

(५) क्रमांक १, २, ३, ४ का आयुर्वेदीय द्रव्य-गुण (Pharmacology) और त्रिदोष सिद्धान्तानुसार आमयिक प्रयोग (Therapeutics) के आधार पर गुण-कर्म प्रभाव निश्चित करके भेषज योग संहिता (Pharmacopea) का निर्माण । जिसमें पाश्चात्यों की ओर से धातु भस्मादि के शरीर में आत्मीकृत न होने से प्रभावहीन या हानिकर होने आदि आक्षेपों का सयुक्तिक और सप्रमाण निरास भी हो ।

### चिकित्सा-सम्बन्धी गवेषणा

(१) युक्ति व्यापाश्रय चिकित्सान्तर्गत:—

(क) **निदान वर्जन, संशोधन, संशमन**

(अ) संशोधनान्तर्गत:—अन्त: परिमार्जन, बहि: परिमार्जन, शस्त्र प्रणिधान ।

(ब) संशमनान्तर्गत:—लंघन, बृंहण, रूक्षण, स्नेहन, स्वेदन-स्तम्भन, षडुपक्रम तथा उपवासादि दशविध कर्म ।

(स) अन्त:परिमार्जनान्तर्गत:—पंचकर्म, बहि:परिमार्जनान्तर्गत:—अभ्यंग, उत्सादन, स्नानादि । शस्त्र प्रणिधानान्तर्गत:—शिराव्यध तथा शल्यशलाक्य प्रसूतितन्त्रोक्त विविध यन्त्र शस्त्रकर्म, क्षाराग्नि प्रयोगादि ।

(द) कल्पचिकित्सा:—पर्पटीकल्प, लौहकल्प, चन्द्रोदयादि विविध रस कल्प, शिलाजतु, पिप्पली, नागबला, भल्लातक, रसोन, ब्राह्म्यादि विविध रसायनौषधि कल्प ; तक्रकल्प, आम्रकल्प, सार्षपतैलकल्पादि विविध आहार-कल्प । इनके प्रयोग-परीक्षणों द्वारा निश्चित प्रभाव निर्धारित करना ।

(य) अगदतन्त्र:—सर्प, श्वानादि विविध जंगम तथा स्थावर (उद्भिज्ज और पार्थिव) विषों की चिकित्सा-विधियों का पूर्ण परीक्षण और मूल्यांकन ।

(र) कुष्ठ, श्लीपद, अंडवृद्धि, नेत्ररोग, अर्श आदि पर औषधि क्षार-अग्नि-शस्त्र, शिराव्यध-शिरादाह आदि शास्त्रोक्त पद्धतियों का प्रायोगिक परिणाम-निर्धारण ।

(ल) क्षय, कैन्सर (दुष्टार्बुद), मधुमेह बालपक्षाघात, आमवातिक हृद्विकार प्रभृति असाध्य घोषित रोगों में उपयुक्त अमोघ उपायों का अवस्था विशेषानुसार अन्वेषण ।

(ख) **स्वस्थहित चिकित्सा—**

(अ) रसायन:—कुटीप्रावेशिक और वातातपिक का प्रायोगिक परीक्षण और परिणाम निर्धारण ।

(ब) बाजीकरण:—शुक्रल, सुतिकर, सुतिवर्धक, स्तम्भक, पुंस्त्वकर प्रयोगों का परीक्षणपूर्वक मान निर्धारण ।

(२) **दैव व्यपाश्रय चिकित्सा—**

(क) औषध, मणि, यन्त्रादि धारण, मन्त्र प्रयोग की परीक्षा, युक्ति-विचार और परिणामांकन ।

(ख) बलि, उपहार, तीर्थ-गमनादि ; ग्रहबाधा-शमनार्थ अनुष्ठानादि की शास्त्रीय तर्क संगत पृष्ठभूमि की खोज ।

(३) **सत्त्वावजय चिकित्सा—**

(क) यमनियमादि से ले कर समाधि पर्यन्त 'मन: समाधान' के साधनों का मानस चिकित्सार्थ प्रायोगिक उपपादन ।

(ख) धी, धैर्य, आत्मज्ञानादि ; हठयोग-राजयोग-कर्मयोग-ज्ञानयोग की शरीरमन:स्वास्थ्यार्थ क्रियात्मक उपयोगिता ।

विशेष:—औषध व उपक्रम विशेष का रोगी के प्रकृति, देश, काल, वय, बल, सत्त्व, सात्म्य आदि अवस्था विशेषानुसार प्रभाव विशेष का निरीक्षण और परिणाम निरूपण आवश्यक है ।

प्राध्यापक, गवर्नमेण्ट आयुर्वेदिक
कालेज, जयपुर

# नरगिस

**वैद्य उदयलाल महात्मा**

**उत्पत्ति स्थान**--यह भारत के बगीचों में कृषि द्वारा उत्पन्न की जाती है।

**पहिचान**--यह एक पौधे का फूल है, जिसके पत्ते, शाखा, कंद और बीज प्याज के समान होते हैं। इसके फूल बहुत सुगंधित होते हैं। इसकी पत्तियाँ सफेद, नीली और पीली होती हैं। यह वसंत में फूलता है। इसकी दो जातियां हैं—

(१) प्याज की तरह, जिसमें केवल छः पत्तियाँ होती हैं। इसे **नरगिस** कहते हैं।

(२) डबल पत्तियां, जिसको सदबग भी कहते हैं। यह नरगिस की स्त्री जाति है। इसके बीज काले होते हैं। पुरुष जाति को यूनानी में बजी और स्त्री जाति को बस्तानी भी कहते हैं, इसकी जड़ को **प्याज नरगिस** के नाम से पुकारते हैं और यही सबसे अधिक मिलने वाला हिस्सा है।

## प्याज नरगिस के लाभ

यह बहुत-से रोगों के वास्ते लाभकारी और असरकारक है। विशेष वर्णन नीचे लिखे अनुसार है।

नेत्र रोगों पर—अगर आँख के कोये में खिचाव (एंठन) मालूम हो तो इसको पीसकर लेप करें, फौरन आराम होगा।

यदि आँख में नाखूना (अर्म) या जाला हो तो इसका स्वरस डालने से फायदा होता है।

चेहरे के रोग—प्याज नरगिस को पीसकर आडू के रस में मिला चेहरे पर मलने से चेहरा सुन्दर हो जाता है और दाग़ दूर हो जाते हैं।

पेट के रोग—इसके सेवन से बिना मरोड़ (एंठन) और दर्द के वमन होती हैं। इसके लिए इसको उबालकर साफ (शुद्ध) करें और १४ तोला पानी में शहद ४ तोला मिलाकर पिलावें या इसको २४ घंटे दूध में भिगो देवें। इसके पश्चात सुखाकर पीसकर सेवन करावें। इसके सेवन करने से पेट के कीड़े मरकर निकल जाते हैं। पूर्ण मात्रा—३ माशा।

पुरुषों के रोग—तिला के रूप में यह लिंगेन्द्रिय को शक्ति देता है और इससे मोटापन भी हो जाता है। प्याज़ नरगिस को आठ पहर गाय के दूध में तर रखें, फिर औटावें। इसके बाद पीसकर लेप करें।

स्त्री रोग—अपरा और गर्भाशय के दोषों को दूर करने के लिए प्याज़ नरगिस ३ माशा पीसकर माउल् अस्ल के साथ खिलाना बहुत मुफीद है। (माउल् अस्ल—शहद के साथ जल या कोई अर्क मिलाकर पकाते हैं, यही 'माउल् अस्ल' है।)

इसको पीसकर फलवर्ती बना गर्भाशय में रखने से गर्भाशय की खराब रतूबात निकल जाती है और गर्भाशय साफ हो जाता है।

चर्म रोग—झांई, गंज और बाल उड़ने के लिए इसका सिरके के साथ लेप करना फायदेमन्द है।

हर तरह के वर्म (सूजन) पर मालिश करने से सूजन हट जाती है। इसके लेप से वर्म के कारण और उपद्रव भी दूर हो जाते हैं। अगर इसको फोड़े पर पीसकर लगावें तो उसकी पीप साफ हो जाती है। गहरे घाव या पुट्ठे के घाव पर लगाने से वे बहुत शीघ्र भर जाते हैं।

यदि जख्म से खून बहुत निकल रहा हो तो इसको पीस कर बांधने से खून बन्द हो जाता है। अगर शरीर का कोई हिस्सा जल जाए तो इसको पीसकर शहद के साथ लगाने से जल्दी आराम हो जाता है। यदि शरीर में किसी जगह तीर चुभा हुआ हो और नहीं निकल सकता हो तो इसको पीसकर उस जगह बांधने से यह ढीला होकर निकल आवेगा।

## प्याज नरगिस के प्रयोग

इसके योग बहुत से रोगों में काम में लाये जाते हैं। कुछ योग निम्न हैं :—

नरगिस का तैल—प्याज़ नरगिस को कूटकर उसका रस निकाल लें। उसके बराबर मालकंगुनी का पीत तैल मिलाकर उबालें। जब पानी समाप्त होकर तैल

(शषांश ८८४ पृष्ठ पर)

# दीर्घायु बनानेवाली भारतीय वनस्पति

**वैद्य हरिश्चन्द्र सत्यवादी**

हम सौ वर्ष कैसे जीवें और ४० वर्ष से अधिक उम्र के हम दिखायी न पड़ें—ऐसी महत्वाकांक्षा प्रायः सभी की होती है और इस कथन में कहीं भी संदेह के लिए स्थान नहीं है।

विश्व का सबसे अधिक वृद्ध पुरुष ली-चिंग-युन (Li-ching-yun) का, जो २५० वर्ष की उम्र का होने का दावा करता है, कथन है कि कतिपय जड़ी-बूटियों के निरन्तर सेवन के फलस्वरूप ही वह इतना दीर्घजीवी हो सका है। जिस विशेष पौधे के सेवन से उसे इतना दीर्घायुष्य प्राप्त हो सका, वह संभवतः "Hydrocotyle Asiatica" नामक भारतीय पौधा है, जो दीर्घायुष्य प्रदान करने सम्बन्धी अपने अलौकिक गुणों के कारण पर्याप्त विख्यात है।

यह वनस्पति आकार में छोटी होती है और जमीन पर मीठा आलू अथवा झड़बेरी के पौधे (strawberry plant) की तरह फैलती है।

नड्डू नारायण नामक भारत के एक महर्षि का कथन है कि जिन मूल-द्रव्यों की हमारे आहार में कमी होती है उसकी पूर्ति इस पौधे के सेवन से हो जाती है, जिसके बगैर व्याधियों को मनुष्य पूर्णतया नियंत्रित नहीं कर सकता। इस पौधे की जड़ में मनुष्य को दीर्घायु बनाने की अलौकिक शक्ति होती है और इसकी जड़ विविध व्याधियों के चिकित्सार्थ प्रयुक्त की जाती है—किन्तु इसका व्यवहार अन्य जड़ी-बूटियों (Herbs) अथवा औषधियों के साथ किया जाता है। केवल इसकी पत्तियाँ ही दीर्घायुष्य प्रदान करने की क्षमता रखती हैं और प्रतिदिन एक अथवा दो पत्तियों का सेवन ही पर्याप्त है।

भारत और लंका निवासियों को इस पौधे की जानकारी काफी दिनों से थी; किन्तु फ्रांसीसी और ब्रिटिश सरकार ने अभी हाल ही से इस पौधे के सम्बन्ध में अन्वेषण करना प्रारंभ किया है। आहार और औषध के रूप में इसमें क्या-क्या गुण-द्रव्य हैं—इसकी छानबीन इन सरकारों द्वारा होनी शुरू हुई है।

## व्याधियों का नियंत्रण

एक फ्रांसीसी केमिस्ट को उक्त पौधे की परीक्षा करने के बाद यह पता चला कि उस पौधे की पत्तियों में मस्तिष्क के कोशाओं (Brain cells) को पूर्णतया शक्तिशाली बनाने की अद्भुत क्षमता है। फ्रांसीसी लोग इस पौधे को बड़ी सफलतापूर्वक अलजीरिया में उगाते चले आ रहे हैं।

लंकावासियों का यह दृढ़ विश्वास है कि इसी पौधे के खाने से हाथी जंगली अवस्था में सैकड़ों वर्षों तक अपनी शक्ति और यौवन को सुरक्षित रखता है। कहते हैं, इस पौधे के प्रति हाथियों का बड़ा आकर्षण होता है और वे इसे बड़े चाव से खाते हैं। यह पौधा प्रचुर रूप में जंगलों में उत्पन्न होता है।

प्रकृति ने शरीर और मस्तिष्क—दोनों के लिए आहार प्रदान किया है। Hydrocotyle नामक पौधे का जहाँ तक प्रश्न है, यह मस्तिष्क को आवश्यक पोषण प्रदान करता है। इस पौधे का सही व्यवहार करने से व्याधियाँ नियंत्रित रहती हैं तथा बुढ़ापे का शरीर पर प्रभाव नहीं पड़ता।

इस अद्भुत वनस्पति (गोटूकोला) के बारे में फ्रांसीसी और अंग्रेज वैज्ञानिकों का दृढ़ विश्वास है कि इसमें शरीर को नवजीवन प्रदान करने तथा मस्तिष्कगत कोशाओं (cells) तथा अन्तरासर्गी ग्रंथि (Endocrine Glands) को सबल बनाने की अद्भुत क्षमता होती है।

'सचित्र आयुर्वेद' के लिए विशेष

# जैसे सर्पनाथ वैसे नागनाथ

**श्री सत्यदेव विद्यालंकार**

अमरीका की मर्क कम्पनी के अलावा रूस के साथ भी विदेशी दवाइयाँ निर्माण करने के सम्बन्ध में एक समझौता प्रायः सम्पन्न हो चुका है। पाठकों के हाथों में ये पंक्तियाँ पहुँचने तक सम्भव है वह समझौता पूरी तरह सम्पन्न हो जायेगा। आयुर्वेद की दृष्टि से इन दोनों समझौतों पर जैसे सर्पनाथ वैसे नागनाथ की कहावत चरितार्थ होती है। दोनों ही आयुर्वेद की प्रगति के लिए घातक हैं और चिकित्सा के क्षेत्र में विदेशी तत्वों को प्रश्रय देनेवाले हैं। किसी ऐसे विदेशी पदार्थ के, जो स्वदेशी पदार्थ की अवहेलना करनेवाला हो, केवल स्वदेश में निर्माण करने से उसको "स्वदेशी" कहना बहुत बड़ा भ्रम और बहुत बड़ी भूल है। भले ही उसमें स्वदेशी श्रम, स्वदेशी पूंजी और स्वदेशी पदार्थों का उपयोग क्यों न किया गया हो, हम उसको स्वदेशी मानने को तैयार नहीं हैं। अंग्रेजों ने यदि भारतीयों द्वारा भारतीयों पर अपनी हुकूमत का संचालन किया होता तो उसको जैसे स्वराज्य नहीं माना जा सकता था, ठीक वैसे ही इस प्रकार निर्मित किये गये पदार्थ को स्वदेशी नहीं माना जा सकता। इसलिए स्वदेश में विदेशियों द्वारा विदेशी दवाइयाँ का निर्माण किया जाना देशी चिकित्सा-पद्धति के लिए वैसा ही घातक है जैसा कि विदेशी दवाइयों का स्वदेश में आयात किया जाना घातक रहा है। हमारी सम्मति में इसकी भी निन्दा और विरोध किया जाना चाहिए। अन्यथा विदेशी दवाइयों का स्वदेश में यह निर्माण उनके आयात से भी कहीं अधिक घातक हुए बिना न रहेगा।

रूस के साथ जो समझौता हो रहा है, कहते हैं कि उसकी सैद्धान्तिक रूप-रेखा दोनों देशों में आपस में मास्को में चर्चा-वार्ता होने के बाद तय हो चुकी है। समझौते का मसविदा जल्दी ही मास्को से नई दिल्ली भेजा जायेगा। सोवियत रूस इस समझौते के अनुसार सात वर्ष के लिए भारत को ९ करोड़ ५ लाख रु० ऋण देगा, जिस पर २॥ प्रतिशत व्याज दिया जायेगा। समझौते में प्रतिपादित योजना के अनुसार कार्य शुरू करने के लिए भूमि खरीदने, औद्योगिक बस्ती बसाने और लागत पूंजी आदि मिला कर कुल खर्च २८ करोड़ ७ लाख रुपया कूता गया है। कुल पाँच कारखाने स्थापित किये जायेंगे। इनमें भिन्न-भिन्न प्रकार की औषधियों का निर्माण किया जायेगा। एक कारखाना डॉक्टरी उपकरणों (यन्त्रों) का निर्माण करेगा। इस सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा करने के लिए एक रूसी विशेषज्ञ दल के शीघ्र ही भारत आने की सम्भावना है।

हमें यह देख कर कुछ सन्तोष हुआ है कि हमारी लोकसभा के सदस्य इन समझौतों के सम्बन्ध में काफी जागरूक हैं। परन्तु दलगत राजनीति के कारण उस जागरूकता का कुछ भी लाभ नहीं मिलता। अरण्य-रोदन की तरह लोक-सभा में होनेवाली चर्चा निरर्थक हो जाती है। अमरीका की मर्क कम्पनी के साथ किये गये समझौते के सम्बन्ध में लोक-सभा में उद्योग मन्त्री श्री मनु भाई शाह के विरुद्ध एक अविश्वास का प्रस्ताव पेश किया गया। यदि दलगत राजनीति की भावना से इस प्रस्ताव पर विचार न किया गया होता और सदस्यों ने विशुद्ध स्वदेश-प्रेम का परिचय दिया होता तो हमारी सम्मति में यह प्रस्ताव स्वीकृत हुए बिना नहीं रहता। नियंत्रण और अनुशासन से बँधे हुए कांग्रेसी सदस्य हर बात में सरकार का समर्थन करने के लिए बाध्य हैं। इस कारण भी यह प्रस्ताव स्वीकार न हो सका। परन्तु प्रस्ताव पर हुई चर्चा में जो तथ्य प्रकट हुए वे अत्यन्त उपयोगी और रोचक हैं।

प्रस्ताव उपस्थित करते हुए साम्यवादी सदस्य श्री परूलेकर ने उद्योग मन्त्री को बड़े आड़े हाथों लिया। उन्होंने अमरीकी कम्पनी के साथ किये गये समझौते को एक षड्यन्त्र बताने में भी संकोच नहीं किया। कांग्रेसी सदस्य श्री अल्वा ने भी यह कहने में संकोच नहीं किया कि इस समझौते का समर्थन नहीं किया जा सकता। मुख्य आक्षेप सदस्यों के ये थे कि समस्त आवश्यक दवाइयों के निर्माण को समझौते में शामिल नहीं किया गया है। विदेशी कम्पनी को २॥ प्रतिशत की रोयल्टी देने का अर्थ यह होगा कि आगामी दस वर्षों में वह भारत से डेढ़ करोड़

रुपया प्राप्त कर लेगी। इस समझौते के अनुसार निर्मित दवाइयाँ महँगी होंगी और गोपनीयता की जो शर्त रखी गई है वह भारत की वैज्ञानिक प्रगति के लिए बाधक सिद्ध होगी।

उद्योग मन्त्री ने अपने पक्ष का समर्थन करते हुए जो तर्क पेश किया वह संक्षेप में इस प्रकार है कि समझौता व्यक्तिगत आधार पर नहीं बल्कि राष्ट्रीय आधार पर किया गया है। इससे ९७ लाख रुपये की विदेशी मुद्रा की बचत हो सकेगी और दवाइयों की कीमत बहुत गिर जायेगी। दवाइयों के मूल्य निर्धारण करने में सरकार का प्रभावशाली हाथ रहेगा। आपने भारत सरकार की औषध निर्माण की चतु:सूत्री औद्योगिक नीति पर प्रकाश डालते हुए कहा कि—(१) भारत में ही प्राप्त होने वाले कच्चे माल से औषधियों का निर्माण हो, (२) उच्चतम गुणवाली औषधियाँ सस्ती कीमत में उपलब्ध हों, (३) औषधियों का निर्माण करनेवाली देशी और विदेशी सभी फर्मों में ऊपर से नीचे तक सभी स्तरों पर भारतीयों को प्रशिक्षण दिया जाए और (४) प्रत्येक कारखाने का अलग अनुसन्धान विभाग हो।

साम्यवादी सदस्य ने रूस के साथ औषध-निर्माण के सम्बन्ध में समझौता न करके एक अमरीकी कम्पनी के साथ समझौता करने का तीव्र विरोध किया। अब रूस के साथ भी समझौता हो जाने के कारण उनका विरोध सम्भवत: शान्त हो जायेगा। परन्तु हमारा विरोध ऐसे किसी आधार पर नहीं है। हम आयुर्वेद अथवा देशी चिकित्सा पद्धति की दृष्टि से दोनों ही समझौतों को अनिष्टकारी अथवा घातक मानते हैं। जैसा कि हमने ऊपर कहा—हमारे लिए दोनों ही समझौते जैसे 'सर्पनाथ वैसे नागनाथ' के समान हैं।

उद्योग मन्त्री ने भारत सरकार की औषध-निर्माण के सम्बन्ध में जिस चतु:सूत्री औद्योगिक-नीति का प्रतिपादन किया है उसको देखते हुए भारत सरकार को आयुर्वेद और यूनानी देशी चिकित्सा-पद्धतियों के सिवाये अन्य किसी चिकित्सा-पद्धति को प्रश्रय नहीं देना चाहिए। उद्योग-मन्त्री ने स्वीकार किया है कि देश में १२० बड़ी और २ हजार छोटी औषधि-निर्माण करनेवाली फर्में विद्यमान हैं। उनमें देश की ४०-५० करोड़ रुपये की पूंजी लगी हुई है और विदेशी पूँजी १०-११ करोड़ से अधिक नहीं है। इन दोनों समझौतों का स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि इनमें से बहुत-सी फर्में बन्द हो जायेंगी और विदेशी पूँजी काफी मात्रा में बढ़ जायेगी। परन्तु हम ऐसे किसी तर्क पर इन समझौतों का विरोध न करके मूलत: उनके विरोधी हैं। विदेशी औषधियों का निर्माण चाहे स्वदेश में स्वदेशी पूँजी द्वारा स्वदेशी श्रम से ही क्यों न हों हमारी दृष्टि में वह देशी चिकित्सा-पद्धति का विनाश करनेवाला है। उद्योग मन्त्री ने जिस चतु:सूत्री औद्योगिक नीति का प्रतिपादन किया है उसका यदि सच्चाई और ईमानदारी से पालन किया जाए तो देशी औषधि-निर्माण के उद्योग को हर हालत में प्राथमिकता दी जानी चाहिए। भारत में ही उपलब्ध होनेवाले कच्चे माल से जिस मात्रा में देशी औषधियों का निर्माण किया जा सकता है उसके कहने की आवश्यकता नहीं। भारत के वन-उपवन उन जड़ी-बूटियों और वनस्पतियों से भरपूर हैं जिनसे अत्यधिक प्रचुर मात्रा में देशी औषधियों का निर्माण किया जा सकता है। भारत की नदियों, विशेषत: गंगा के जल को अमृत कहा गया है। उसका उपयोग भी औषधि के रूप में किया जाता रहा है और उसके तट पर प्राप्त जड़ी-बूटियाँ औषधि निर्माण के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध हुई हैं। हमें यह समाचार पढ़ कर कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ कि ऋषिकेश के पवित्र तीर्थ में गंगा के तट पर स्ट्रेप्टोमाइसीन की फैक्टरी का निर्माण किया जायेगा। समाचार में बताया गया है कि विशेषज्ञों ने गंगा के जल को उसके लिए विशेष उपयोगी बताया है। रूसी विशेषज्ञों का एक दल योजना को अन्तिम रूप देने के लिए ऋषिकेश पहुँचने वाला है। कोई कारण नहीं कि इस समाचार में सन्देह किया जा सके। जिस प्रकार "स्ट्रेप्टोमाइसीन" के निर्माण के लिए विशेषज्ञों की टोलियों ने खोज व अनुसन्धान का काम किया है ठीक यदि उसी प्रकार देशी औषधियों के निर्माण के सम्बन्ध में खोज, छानबीन अथवा अनुसन्धान किया जा सके तो गंगा के तट पर उनके निर्माण के लिए अनेक कारखाने कायम किये जा सकते हैं और भारत में जड़ी-बूटियों तथा वनस्पतियों के रूप में प्राप्त कच्चे माल का सदुपयोग किया जा सकता है। इसलिए यदि वस्तुत: चतु:सूत्री नीति के प्रथम सूत्र का पालन सचाई और ईमानदारी के किया जा सकता है तो देशी औषधि निर्माण के उद्योग को वास्तव में ही प्रश्रय दिया जाना चाहिए।

इसी प्रकार औषधि निर्माण सम्बन्धी औद्योगिक नीति के जिस दूसरे सूत्र का उद्योग मंत्री ने प्रतिपादन किया है उसके अनुसार भी देशी औषधियों के निर्माण के उद्योग को प्रश्रय देना अनिवार्य हो जाता है। उनका कहना यह है कि उच्चतम गुणवाली औषधियाँ भी सस्ती कीमत पर उपलब्ध हों। हमारा यह विश्वासपूर्वक दावा है कि यदि देशी औषधियों का राष्ट्रीय आधार पर निर्माण किया जाए तो अत्यन्त गुणकारी उच्चतम औषधियाँ भी बहुत ही सस्ते दामों में उपलब्ध की जा सकती हैं। इस समय देशी औषध निर्माता भी विदेशी रंग-ढंग की नकल करने को बाध्य हो गये हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि उनका औषधि निर्माण का तरीका आम जनता के लिए कुछ महंगा हो गया है। उसको निश्चय ही बहुत सस्ता किया जा सकता है। कुछ प्रान्तीय सरकारों ने देशी चिकित्सा पद्धति को प्रश्रय देकर औषधि निर्माण का उद्योग अपने हाथ में लिया है। यह नहीं कहा जा सकता कि इसमें उनको सफलता नहीं मिली। यह अवश्य है कि विदेशी चिकित्सा प्रणाली को प्राथमिकता देने के कारण देशी चिकित्सा पद्धति की प्रायः उपेक्षा हो जाती है और इस उपेक्षा के कारण जब प्रान्तीय सरकारों का उद्योग सफल नहीं होता तब उसको घाटे का सौदा बता दिया जाता है। अब भी देहातों में सरकारी आयुर्वेद औषधालय पर्याप्त रूप में चल रहे हैं और वे निश्चित रूप से विदेशी औषधियों के चिकित्सालयों की अपेक्षा सस्ते और सफल सिद्ध हुए हैं।

उद्योग मंत्री ने सरकारी नीति तीसरे और चौथे जो सूत्र बताये हैं उनको मूर्त्तरूप देना बहुत कुछ सरकार पर ही निर्भर है। यह सर्वथा स्वाभाविक है कि देशी औषधि निर्माण के कारखानों में भारतीयों को औषधि निर्माण का प्रशिक्षण अनिवार्य रूप से दिया जायेगा; क्योंकि उसके बिना उस उद्योग की प्रगति सम्भव न रहेगी। प्रत्येक कारखाने के साथ इसी प्रकार अनुसन्धान का कार्य भी करना ही होगा। जिस उद्योग में अनुसन्धान को प्रश्रय नहीं दिया जाता उसकी प्रगति और विकास हो ही नहीं सकता। आयुर्वेदीय औषधि निर्माण का जो उद्योग बिना राजकीय आश्रय के अब तक भी जीवित है और जिसका प्रसार देश में विदेशी चिकित्सा पद्धति से कम नहीं है उसको यदि राजकीय प्रश्रय मिल सके तो यह कल्पना करना कठिन नहीं होना चाहिए कि उसका प्रचार व प्रसार देश में किस रूप में हो जाएगा।

हम यहाँ चीन और रूस की चर्चा विस्तार से नहीं करना चाहते। वहाँ प्राचीन देशी चिकित्सा प्रणाली का आधुनिक विदेशी चिकित्सा प्रणाली के साथ समन्वय करके जो प्रयोग किया गया है वह सर्वांश में अनुकरणीय है। चीन में वहाँ की प्राचीन देशी चिकित्सा प्रणाली आयुर्वेद और यूनानी की अपेक्षा कहीं अधिक उपेक्षित हो चुकी थी। पुराने ऐतिहासिक भग्नावशेषों की तरह वहाँ उसके कुछ अवशेष शेष रह गये थे। जैसे इतिहास लेखक पुराने भग्नावशेषों में से प्राचीन इतिहास की खोज अथवा अनुसन्धान करता है ठीक वैसे ही चीन की जनवादी सरकार ने प्राचीन चिकित्सा प्रणाली का पुनरुद्धार किया है। और उसको उस पुनरुद्धार करने में जो चमत्कार हाथ लगे हैं उनका कुछ वर्णन हम **"सचित्र आयुर्वेद"** में पहले कर चुके हैं। वे चमत्कार यहाँ भी हाथ लग सकते हैं। सरकार ने स्वीकार किया है कि विदेशी चिकित्सा प्रणाली में जलोदर रोग को असाध्य रोग माना गया है; किन्तु आयुर्वेद उसको असाध्य नहीं मानता। इसीलिए दिल्ली के एक चिकित्सालय में आयुर्वेद प्रणाली से जलोदर का उपचार करने के लिए सरकार की ओर से प्रयोग के रूप में विशेष व्यवस्था की गई है। ऐसे ही प्रयोगों की व्यवस्था अन्य रोगों के लिये भी की जा सकती हैं। आयुर्वेद के प्रति पक्षपात की दृष्टि से उपेक्षापूर्ण व्यवहार किया जाना अत्यन्त निन्दनीय है।

हमें यह देखकर विशेष प्रसन्नता हुई है कि स्वास्थ्य मंत्रालय की आकलन समिति ने अपने प्रतिवेदन में देशी चिकित्सा पद्धतियों के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार से यह आग्रह किया है कि वह आयुर्वेद, यूनानी, होमियोपैथी तथा प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली को प्रोत्साहन देने के लिए सक्रिय रूप से कार्य करे। उस प्रतिवेदन में यह भी कहा गया है कि कुछ मेडिकल कालेजों में आयुर्वेदिक औषधि-प्रणाली के अध्ययन के सम्बन्ध में भी व्यवस्था की जाए। क्या हम आशा करें कि आकलन समिति के प्रतिवेदन में किया गया यह निवेदन अरण्य-रोदन के समान निरर्थक सिद्ध नहीं होगा। न केवल आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली के सम्बन्ध में किन्तु अन्य अनेक विषयों के सम्बन्ध में भी किये गए ऐसे निवेदन प्रायः निरर्थक ही सिद्ध होते हैं। स्वराज्य प्राप्त हुए ११ वर्ष बीत जाने पर भी केन्द्रीय सरकार

में अंग्रेजों के मानस पुत्रों का ऐसा जमाव है कि वे किसी भी देशी बात को चलने नहीं देते। आयुर्वेद तथा देशी चिकित्सा प्रणाली के सम्बन्ध में उपेक्षा की जो शिकायत है वही शिकायत प्रायः हिन्दी के सम्बन्ध में भी होती रहती है। परन्तु हिन्दी की उपेक्षा की शिकायत करने वाले जब तब संसद में अपनी पुकार पेश करते रहते हैं; दुर्भाग्य है आयुर्वेद और देशी चिकित्सा प्रणाली का कि उसकी पुकार सुनानेवाला संसद में प्रायः एक भी सदस्य नहीं है। स्वास्थ्य मंत्रालय के बजट पर होनेवाली बहस में भी आयुर्वेद अथवा देशी चिकित्सा प्रणाली का पक्ष प्रबलता के साथ उपस्थित नहीं किया जाता। इस चहुँमुखी उपेक्षा में आयुर्वेद अपने ही पैरों पर खड़ा है और भविष्य में भी खड़ा रहेगा।

श्रीलंका का यह समाचार है कि वहाँ की सरकार ने अपने यहाँ आयुर्वेद का विकास करने के लिए परामर्श देने को एक आयुर्वेद विशेषज्ञ की मांग की है और हमारे राष्ट्रपति ने कोलम्बो योजना के अधीन उस मांग को पूरा करना स्वीकार कर लिया है। श्रीलंका की सरकार आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली की प्रगति और विकास के लिए भारत सरकार पर निर्भर करे और भारत सरकार आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली की चहुँमुखी उपेक्षा करे—यह कैसी विडम्बना है। निश्चय ही भारत सरकार के लिए यह शोभनीय नहीं।

शेषांश ]

## नरगिस

[ ८७९ पृष्ठ का

अवशेष रह जाय तो आग पर से उतार लें। ठंडा होने पर छान कर रख लें।

गुण—यह तैल बलकारक है, वायु के रोगों को दूर करता है। मात्रा—२ माशा।

इसके सिवा मालिश के रूप में वायु के सिर दर्द को और सर्दी से उत्पन्न वर्म फुफ्फुसावरण को भी मिटाता है। हमूल (फलवर्ती) गर्भाशय के मुँह को खोलता है।

चूर्ण नरगिस—प्याज़ नरगिस की ताजा जड़ को तराश कर ७ दिन वट के दूध में तर रखें। इसके बाद सुखाकर चूर्ण बनालें। गाय के दूध के साथ ३ माशा सुबह-शाम खिलावें।

गुण—वीर्य-विकारों को मिटाकर वाजीकरण करता है। २१ रोज तक सेवन करने से अजीब असर प्रगट होता है।

चूर्ण नरगिस नं० २—प्याज़ नरगिस और इसके फूल दोनों को २१ बार वट क्षीर की भावना देवें और बराबर मिश्री के साथ चूर्ण बनालें।

गुण—बलकारी और रसायन है। मात्रा—३ माशा। सुबह-शाम दूध के साथ सेवन करें और सेवन-काल में तैल, खटाई से परहेज करें।

शिगरफ भस्म—प्याज़ नरगिस बड़ा-से-बड़ा लेकर उसमें सुराख करके शिगरफ रूमी २ माशा की साबूत डली उसके अन्दर डालकर वापस उसका उसी से मुँह बन्द करके संपुट में बन्द करें और खुश्क होने पर लघु पुट दें। इस प्रकार २१ पुट देवें—बाद में खरल कर सुरक्षित रखें।

गुण—स्तंभन और वाजीकरण के लिए बहुत मुफीद है। मात्रा—आधी रत्ती। अनुपान—मलाई।

# चेचक—कारण और निवारण

**श्रीमती शांति अग्रवाल**

वसंत ऋतु में कफ-रोगों के साथ ही संक्रासक रोग भी होते हैं। चेचक एक प्रसिद्ध संक्रामक रोग है और इन दिनों इसका विशेष प्रकोप होता है। एक लम्बी अवधि तक इसके कारण लाखों जानें गईं और आज भी देश के ग्रामों तथा बाजारों में अक्सर ऐसे लोग दिखायी देते हैं जिनके सुन्दर चेहरे चेचक के कारण चौपट हो चुके हैं। मुख्यत: यह बच्चों का रोग है और बहुत घातक होता है। यों प्राय: आबाल-वृद्ध-सभी इसके शिकार होते हैं। इसकी लपेट में आने वाले २५ प्रतिशत लोग प्राय: मर जाते हैं और बचने वालों में से अनेक आँखों की रोशनी खो बैठते हैं। इतना ही नहीं, कितनों की हड्डियाँ सड़ जाती हैं।

शीतला, मसूरिका, माता आदि भी चेचक के नाम हैं। माता या बड़ी चेचक, लघु मसूरिका (छोटी माता) और रोमांतिका (ओरी) आदि इसके कई भेद हैं। किन्तु इन सबमें काले दाने वाली माता वा चेचक सबसे अधिक भयंकर और कष्टदायिनी होती है। इसके प्रभाव से रोगी भद्दा और कुरूप हो जाता है और बिना विशेष उपचार किए वह जीवन भर वैसा ही कुरूप बना रहता है। चेचक के निशान समूल तो नष्ट होते भी नहीं।

चेचक अत्यधिक सक्रामक होने के कारण बीमार व्यक्ति से फैलकर सहज ही तन्दुरुस्त आदमी को भी आक्रांत कर लेती है। चेचक के रोगी के सम्पर्क में आने वाले लोग रोग के कीटाणुवाहक बन जाते हैं और चेचक के रोगी के शव भी संक्रामक होते हैं। यही कारण है कि उनको या तो गंगा आदि नदियों में जल-समाधि देते हैं या गाड़ देते हैं।

चेचक का जन्म एक तरह के सूक्ष्म और सहज न दीखने वाले कीटाणुओं के द्वारा होता है। रोगी के नेत्र और नाक से जो कीचड़-सा निकलता है और त्वचा पर निकले हुए जो दाने सूखकर, छिलके की तरह उतरते हैं, उनसे इस रोग का विशेष प्रसार होता है। चेचक के रोगी के जूठे अन्न-जल या वस्त्रों को ग्रहण करने से भी ऐसा होता है। आशय यह कि पूरी सावधानी के साथ रोगी तथा परिवार के अन्य जनों की रक्षा करनी चाहिए। चेचक के दाने जब फूटते हैं तब उनमें से जो एक प्रकार का लसीला पदार्थ निकलता है, उसमें कीटाणु रहते हैं। इसलिए घृणा न करते हुए उसे किसी हलके और मुलायम वस्त्र वा रुई आदि से पोंछकर तुरत नष्ट करने के साथ ही हाथ साफ कर डालना चाहिए।

चेचक का आक्रमण एकाएक होता है। सारे शरीर में ठण्ढक वा सर्दी का अनुभव होना, सिर और पीठ की रीढ़ में दर्द होना, मुंह और आँखें लाल हो जाना और बुखार १०३-१०४ डिगरी तक होना—ये सभी इस रोग के लक्षण हैं। किसी-किसी को उलटी भी होती है। इन लक्षणों के तीन-चार दिन के बाद शरीर पर लाल रंग के छोटे-बड़े दाने उभर आते हैं और उनमें लसीला पदार्थ भर जाता है। बाद में वही पीब का रूप धारण कर लेता है। दूसरे शब्दों में दाने पक जाते हैं। दाने जब पकते हैं तब रोगी की हालत बहुत गंभीर रहती है।

चेचक की रोकथाम का सुगम तरीका टीका लगवाना भी है। साधारणत: इससे रोग का उन्मूलन हो जाता है। चेचक-रोगी के सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों को भी टीका लगवाना आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य है। चेचक के रोगी को अस्पताल में रखने से अच्छा रहता है; पर जहाँ यह सुविधा न हो, वहाँ उसके रहने के लिए एक हवादार, साफ कमरा चुनना चाहिए और उसकी सब वस्तुओं पर और कमरे में संक्रामक कीटाणुनाशक औषधि का प्रतिदिन छिड़काव करते रहना चाहिए। यदि समय-समय पर टीका लगवाते रहें तो इस रोग का पूर्णत: उन्मूलन हो सकता है। अत: प्रत्येक गृहस्थ वा अभिभावक का कर्त्तव्य है कि वह परिवार के प्रत्येक सदस्य को टीका लगवाने में न चूके। जन्म के बाद ६ मास से एक वर्ष की आयु तक के प्रत्येक बच्चे को चेचक का टीका लगवाना इसीलिए कानूनन अनिवार्य है। पर टीका लगाते समय भी विशेष सावधानी अपेक्षित है। टीका लगाने वाले

को स्वच्छता और व्यक्ति की शक्ति पर पूरा ध्यान रखना पड़ता है, अन्यथा नयी परेशानी खड़ी हो जाती है।

इस रोग की साधारण हालत में प्राकृतिक आहार-विहार और स्वच्छता से ही लाभ हो जाता है ; पर उपद्रवों के विशेष बढ़ने पर आवश्यक उपचार करना ही पड़ता है। शहरों तथा ग्रामों—दोनों में प्रायः चेचक के रोगी घर में रखे जाते हैं ; किन्तु उनकी पूरी-पूरी देखभाल और सेवा-शुश्रूषा नहीं हो पाती। इसका परिणाम अच्छा नहीं होता। इसलिए प्रथम तो रोगी की समुचित देखभाल की आवश्यकता है। उसकी सेवा-शुश्रूषा में तनिक भी कमी नहीं आनी चाहिए। रोगी शांतचित्त से विस्तर पर लेटा रहे। वह दानों को खुजलावे नहीं, इसका ध्यान रखना बहुत जरूरी है ; क्योंकि चेचक के दानों में विशेष जलन होती है। मिर्चा, खटाई, तेल और नमक आदि का सेवन करने से जलन और बढ़ जाती है। अतः आहार परम सात्त्विक होना चाहिए। रोगी का कमरा काफी हवादार ,साफ और प्रकाश से युक्त हो। उस कमरे में सामान ठसाठस न भरा हो और दोनों समय धूनी दी जाय। प्रकाश से मतलब सूर्य और चन्द्रमा की किरणों से है। रोगी के पीने का जल उबाल और छान कर ठंढा किया हुआ हो और दोनों समय ताजा जल उपयोग में लाया जाय। चेचक में श्वास, खाँसी और सूजन आदि उपद्रव भी हो जाते हैं। अतएव सुयोग्य चिकित्सक के परामर्शानुसार तथा रोगी की स्थिति के अनुसार उसकी समुचित चिकित्सा करनी चाहिए।

चेचक के दाने अच्छी तरह न निकले हों तो खतरे की संभावना रहती है। ऐसी स्थिति में शरीर पर काफी समय तक गीली पट्टी रखने से दाने आसानी से निकल आते हैं। ज्वर और जलन की शांति के लिए भी यही उपाय करना चाहिए। दाने निकलते हुए रुक जायँ तो चिकित्सक से भी सलाह लेनी चाहिए। इस रोग में पेट साफ रखना बहुत जरूरी है। इसलिए आवश्यकतानुसार एनीमा दिया जा सकता है। रेंड़ी का तेल, अमलतास का गूदा और अश्वकंचुकी का विधिपूर्वक प्रयोग करने से भी कब्ज में लाभ होता है। दुधमुँहे बच्चों को चेचक निकलने पर उनकी माताओं को विशेष सावधानी रखनी चाहिए। दोनों समय निम्बादि क्वाथ पीना उनके लिए अच्छा है।

चेचक में आँखों के प्रति विशेष सावधानी बरतनी चाहिए ; क्योंकि उपेक्षा करने से नेत्र-ज्योति सदा के लिए समाप्त हो सकती है। अतः नीम के क्वाथ से नेत्रों को नियमपूर्वक धोते रहना चाहिए। नीम के क्वाथ की कुछ बूँदें आँखों में छोड़ने से भी लाभ होता है। इस क्रिया के बाद तुरत आँखों को पोंछकर पलकों पर वेसलीन लगा देनी चाहिए।

चेचक और नीम का बड़ा ही गहरा सम्बन्ध है। इस रोग में नीम के विभिन्न प्रयोग रामबाण की तरह काम करते हैं। चेचक के दिनों में लोग घरों पर नीम के तोरण बाँधते और रोगी के सिरहाने नीम की डालियाँ रखते हैं। नीम की डाल से ही रोगी को हवा भी करते हैं। इसका वैज्ञानिक कारण है और वह यह कि नीम महान संक्रामक रोगनाशक वृक्ष है। संक्रामक रोगों से वर्ष भर तक बचे रहने के उद्देश्य से लोग प्रति वर्ष चैत्र शु० १ को नीम की कच्ची ताजा पत्तियाँ खाते हैं। चेचक के ज्वर में नीम की अन्तर्छाल का काढ़ा देने से बड़ा लाभ होता है। ६ माशे नीम की ताजा पत्तियाँ और पांच दाने कालीमिर्च को जल में पीस-छानकर दो सप्ताह तक नियमपूर्वक सेवन करने से इस रोग के होने का भय नहीं रहता। नीम के रस में हल्दी मिलाकर चेचक के रोगी के शरीर पर लेप करने से शीतलता का अनुभव होता है और दाने भी शीघ्र सूख जाते हैं। स्वस्थ होने के बाद भी कुछ समय तक काला मुनक्का और नीम की अन्तर्छाल को भिगोकर तथा छानकर पीते रहने सें चेचक की गरमी मिट जाती है और रक्त शुद्ध हो जाता है। नीम की कोमल पत्तियों का रस तीन माशा एक तोला शहद में मिलाकर एक सप्ताह तक सेवन करना भी अच्छा है।

## बम्बई आयुर्वेदीय अनुसन्धान समिति--

# वर्त्तमान कार्य तथा भावी कार्य की रूपरेखा

बंबई राजकीय आयुर्वेदीय अनुसंधान-समिति की प्रथम स्थापना बंबई राज्य के स्वायत शासन तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य-विभाग के ८ अगस्त १९५१ के ६२३८।३३ संख्यक प्रस्ताव के अनुसार १९५१ में हुई। स्वायत शासन विभाग तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य-विभाग के २९ सितंबर १९५५ के ए डी आर. ११५५-संख्यक प्रस्ताव तथा स्वायत्त शासन विभाग और सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग के ३० जुलाई १९५८ के ए डी आर–११५५।एच-संख्यक प्रस्ताव के अनुसार इसकी पुन: स्थापना हुई। समिति में संप्रति निम्न सदस्य हैं :

१. **वैद्य जी० वी० पुराणिक**, अध्यक्ष
२. **श्री ए० एन० नामजोशी**, एम० एस-सी० (केमिस्ट्री) एम० एस-सी० (बॉटेनी), मन्त्री
३. **वैद्य एन० एच० जोशी**, आयुर्वेद-विशारद
४. **वैद्य आर० एन० देसाई**, आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेदालंकार
५. **वैद्य आर० एस० द्विवेदी**, आयुर्वेदाचार्य
६. **वैद्य एन० बी० जोशी**, बी० ए० आयुर्विद्या-विशारद
७: **आयुर्वेदिक-नियामक**, मुंबई राज्य (पदेन)
८. **वैद्य जी० एम० वैद्य**, आयुर्वेदतीर्थ
९. **वैद्य वी० बी० जोशी** आयुर्वेदाचार्य

पुन: स्थापना के समय समिति को परामर्श देने के लिए वैद्यभूषण **गणेश शास्त्री जोशी**, राजवैद्य **जीवराम कालीदास शास्त्री** और वैद्य **हरिदत्त शास्त्री** आयुर्वेद-नियामक, मुंबई राज्य इन तीन की समिति नियुक्त की गयी। अन्तिम सदस्य पीछे से पदेन समिति के सदस्य भी नियुक्त किए गए।

सौकर्य के लिए समिति का कार्य चार विभागों में विभक्त कर प्रत्येक विभाग दो सदस्यों को सौंपा गया है। तद् यथा :

१. **आयुर्वेदीय औषध प्रमाणीकरण-विभाग**
    १. वैद्य जी० वी० पुराणिक,
    २. श्री ए० एन० नामजोशी, एम० . एस-सी० (केमिस्ट्री) एम० एस-सी (बॉटेनी) मन्त्री
२. **आयुर्वेदीय वाङ्मयानुसंधान तथा पाठ्य पुस्तक निर्माण-विभाग**
    ३. वैद्य एन० एच० जोशी, आयुर्वेद-विशारद
    ४. वैद्य आर० एन० देसाई, आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेदालंकार
३. **आयुर्वेदीय रुग्णचिकित्सात्मक अनुसंधान-विभाग**
    ५. वैद्य आर० एस० द्विवेदी, आयुर्वेदाचार्य
    ६. वैद्य एन० बी० जोशी, बी० ए०, आयुर्वेद-विशारद
४. **आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्त तथा आयुर्वेदीय उपचारों द्वारा रोगानुत्पत्ति-संबन्धी अनुसंधान-विभाग**
    ७. वैद्य जी० एम० वैद्य, आयुर्वेदतीर्थ
    ८. वैद्य वी० बी० जोशी, आयुर्वेदाचार्य

चौथे विभाग की स्थापना हाल ही में हुई है। आयुर्वेद-नियामक किसी विभाग के सदस्य नहीं हैं।

## समिति की प्रवृत्तियाँ

समिति के प्रत्येक विभाग के कार्य-क्रम का पृथक्-पृथक् निर्देश कर, उनसे संबद्ध विभिन्न विषयों की व्याख्या एवं विशदता विभागों के कार्यों के प्रसंग से की जाए तो समिति के कार्य-कलाप, उसकी पृष्ठभूमिका एवं आयुर्वेद के अनुसन्धान की विभिन्न दिशाओं के संबन्ध में समिति की विचार-धारा विशदतया ज्ञात हो सकेगी।

### (१) आयुर्वेदीय औषध-प्रमाणीकरण-विभाग

आयुर्वेदिक औषधों का प्रमाणीकरण शास्त्रीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है; साथ ही रुग्ण चिकित्सात्मक अन्वेषण का यह एक आधार है। निर्माण-क्रम से इसका विचार तीन अवस्थाओं में किया जा सकता है :

(१) कच्चे (असिद्ध) औषध-द्रव्यों का प्रमाणीकरण;
(२) कल्पों की निर्माण-विधि का प्रमाणीकरण;
(३) तय्यार कल्पों का प्रमाणीकरण।

प्रथम निर्दिष्ट कार्य का अर्थ है : आयुर्वेद के आर्द्र एवं शुष्क द्रव्यों की संदिग्धता दूर करना तथा भैषज्य-शारीर (फार्मेकोग्नॉसी) की पद्धति से उनके सूक्ष्म भौतिक एवं रासायनिक वैशिष्ट्य का अनुशीलन। समिति के इस विभाग ने इस कार्य को पहले हाथ लगाया है। रामनिवास आनन्दीलाल पोद्दार मेडीकल (आयुर्वेदिक) कॉलेज, वरली में समिति की अनुसंधान–प्रयोगशाला है, जिसमें आयुर्वेदिक औषध द्रव्यों के शारीर (फार्मेकोग्नॉसी) का अनुशीलन किया जाता है। अब तक नीचे दिए द्रव्यों पर प्रबन्ध लिखे जा चुके हैं :

## आयुर्वेदिक वनौषधियों की सूक्ष्म शारीर-परीक्षा

### प्रबन्ध-सूची

१. गुडूची Tinospora Cordifolia, Miers (Menispermaceae)
२. वरुण Crataeva religiosa, forst–(Capparidaceae)
३. कर्कटशृङ्गी Pistacia integerrima, stew (Anacardiaceae)
४. शरपुङ्खा Tephrosia Purpurea, Pers (Papilionaceae)
५. कुटज Holarrhena antidysenterica Wall (Apocynaceae)
६. कण्टकारी Solenum Zanthocarpum, Schl. (Solanaceae)
७. बृहती Solenum indicum, L. (Solanaceac)
८. अश्वगन्धा Withania Somnifera, Dun, (Solanaceae)
९. गम्भारी Gmelina arborea, R. (Verbenaceae)

इस विभाग ने प्राय: व्यवहार में आने वाली नीचे लिखी आयुर्वेदिक औषधियों एवं संभव हो तो उनकी मिलावट में प्रयुक्त होनेवाले पदार्थों के अन्वेषण का काम भी हाथ में लिया है, जिसमें लक्ष्य यह रखा गया है कि वैद्यों को इन द्रव्यों की शुद्धि-अशुद्धि की व्यावहारिक परीक्षा एवं कामचलाऊ शुद्ध द्रव्य का परिज्ञान हो सके। यह प्रयास स्वतन्त्र औषध-निर्माण करनेवाले चिकित्सकों और बड़े पैमाने पर औषध-निर्माण करनेवाली निर्माणशालाओं दोनों के लिए अतीव उपयोगी सिद्ध होगा।

(१) कुङ्कुम् (केशर)
(२) नागकेशर
(३) कस्तूरी
(४) जातीफल-जातीपत्री
(५) एला
(६) त्वक् (दालचीनी)
(७) लवङ्ग
(८) शुण्ठी
(९) हरिद्रा
(१०) कर्पूर
(११) शिलाजतु
(१२) नाडीहिङ्गु (डिकामाली)
(१३) रूमकुन्दुरु (रूमीमस्तकी)
(१४) हिंगु
(१५) मरिच
(१६) पिप्पली
(१७) कङ्कोल
(१८) अहिफेन
(१९) भङ्गा
(२०) वचा
(२१) मधुयष्टी
(२२) आकारकरभ
(२३) द्वीपान्तर वचा (चोपचीनी)
(२४) घृतकरञ्ज (वाकेरी)
(२५) आरग्वध (अमलतास)
(२६) यवानी (अजवायन)
(२७) निम्बूक (कागजी नींबू)
(२८) जम्बीर
(२९) मातुलुङ्ग (बिजौरा)
(३०) गोरोचना
(३१) अम्बर
(३२) अगरु
(३३) यवक्षार
(३४) स्वर्जिका क्षार
(३५) तिल तैल
(३६) भूमिमुद्ग तैल (मूँगफली का तैल)–मिलावट के लिए
(३७) सर्षप तैल
(३८) एरण्ड तैल
(३९) नीलगिरी तैल
(४०) घृत
(४१) कम्पिल्लक

इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए समिति यावदुपलब्ध समस्त अद्यतन साधनों और प्रक्रियाओं का उपयोग कर रही है। उदाहरणतया, क्रोमेटोग्राफिक पद्धति कतिपय द्रव्यों, यथा केशर की परीक्षार्थ सफलतापूर्वक विकसित की गयी और अपनायी जा चुकी है। इस दिशा में काम जारी है।

समिति के समक्ष विद्यमान सुमहत् कार्य तथा संनिहित साधनों को दृष्टि में रखते प्रतीत होता है कि, समस्त आयुर्वेदीय औषधों के व्यवहारोपयुक्त आदर्शों की विनिश्चिति का कार्य पूर्ण करने में कई वर्ष लग जाएँगे। यह कार्य जितना शीघ्र समाप्त हो उतनी ही त्वरित गति से अनुसंधान-संबन्धी अन्य कार्यों में प्रगति हो सकेगी। हमारी संमति में समिति को अपेक्षया अधिक धन अनुदान के रूप में मिलना चाहिए, जिससे इस प्रथमोपयुक्त कार्य का संपादन अधिक विस्तृत रूप से किया जा सके।

इस विभाग के अधीन एक आयुर्वेदिक निर्माणशाला भी है। यह प्रविभाग समिति के निरीक्षण में हो रहे रुग्ण-चिकित्सात्मक अनुसंधान-केन्द्रों को औषधकल्प देने के लिए चलाया जा रहा है। इस विभाग में कच्चे द्रव्य की जाँच प्रथम आयुर्वेदोपदिष्ट परीक्षा-प्रणाली से वैद्य करते हैं, पश्चात् अनुसंधान-शाला-प्रविभाग इनकी परीक्षा करता है। इसके अनन्तर निर्धारित पाठ का अक्षरश: अनुसरण करते

हुए एक ही निश्चित परिपाटी से कल्प तय्यार किया जाता है। इससे प्रत्येक कल्प के द्रव्य, उनके परिमाण तथा उनके गुण-धर्मों में सदैव एकरूपता रहती है। वर्तमान परिस्थिति को संपूर्ण प्रमाणीकरण की मध्यवर्ती अवस्था ही कहा जा सकता है। इसका फलितार्थ यह है कि, समिति के अधीन चल रहे रुग्ण-चिकित्सात्मक विभिन्न अनुसंधान-केन्द्रों में जो कल्प उपयोग में आएँ उनमें डाले जाने वाले कच्चे द्रव्यों की यथार्थता की पहले परीक्षा हो चुकी हो, एवं एक नियत विधि से उनका निर्माण हो जिससे प्रत्येक औषध-कल्प के संघटन में एकरूपता रह सके।

प्रमाणीकरण की द्वितीय अवस्था, अर्थात् निर्माण-विधि का प्रमाणीकरण समिति के अनुसंधान-प्रयोगशाला तथा आयुर्वेदिक निर्माणशाला इन दो प्रविभागों के संयुक्त प्रयासों से आरम्भ किया जा चुका है, एवं अहिफेन तथा विजया की शुद्धि का कार्य चल रहा है। यह कार्य भी अधिक निधि के अभाव में जितना चाहिए उतना व्यापक नहीं बनाया जा सकता है।

प्रमाणीकरण की तृतीय अवस्था, यह सुविशद है कि, प्रथम दो अवस्थाओं के बाद की है और पहली दो अवस्थाएँ पूर्णतया प्रगति कर चुकी हों तभी उसे हाथ में लेना चाहिए। तथापि, इस दिशा में भी कार्यारम्भ तो हो ही चुका है। तत्काल तो कुछ आसवों और अरिष्टों की विशिष्ट क्रोमेटोग्राफिक पद्धति से परीक्षा का कार्य चालू किया गया है। इसके परिणाम आशास्पद प्राप्त हुए हैं। औषध-कल्पों के निर्माण तथा व्यापारिक पैमाने पर आयुर्वेदिक औषध-निर्माण के व्यवसाय को नियन्त्रित करने की दृष्टि से अनुसंधान की यह दिशा अतीव उपयोगी होने से इसे सुविस्तृत करना आवश्यक होगा।

## आयुर्वेदीय वाङ्मयानुसंधान तथा पाठ्यपुस्तक निर्माण विभाग

अब तक चला आया ग्रन्थप्रधान शिक्षण जब से छूट गया तथा उसका स्थान शिक्षणालयों में अपने-अपने विषयों के निष्णातों और विशेषज्ञों द्वारा उस-उस विषय के अध्ययन के रूप में विषय-प्रधान शिक्षण-क्रम ने लिया तब से नए सिरे से लिखे गए विषयानुसारी ग्रन्थ, जिनमें प्रमाणभूत प्राचीन संहिताओं से समस्त आवश्यक वचनों का दोहन कर उनका सुसूत्रित गुम्फन एवं विशद व्याख्या की गयी हो, ऐसे ग्रन्थों की आवश्यकता बहुत-बहुत अनुभव की जाती थी। अतएव समिति ने अधोनिर्दिष्ट विषयों पर आयुर्वेदीय पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित करने का निश्चय किया :

१. आयुर्वेद दर्शनम्
२. आयुर्वेदीय शारीरम्
३. प्रत्यक्षरचनाशारीरम्
४. दोषधातुमलविज्ञानम्
५. रसादिविज्ञानम्
६. प्रतिद्रव्यविज्ञानम्
७. भेषजनिर्माणम्
८. रसशास्त्रम्
९. व्याधिविज्ञानम्
१०. रोग-परीक्षा
११. कायचिकित्सा
१२. रसायन बाजीकरणतन्त्रम्
१३. शल्यशालाक्यतन्त्रम्
१४. कौमारभृत्यम्
१५. स्त्रीरोगविज्ञानम्
१६. मनोरोग सहित मनोविज्ञानम्
१७. व्यवहारायुर्वेदः
१८. आयुर्वेदेतिहासः
१९. स्वस्थवृत्तम्
२०. अगदतन्त्रम्
२१. आयुर्वेदीय योगसंग्रहः (आयुर्वेदीय फार्माकोपीया)

इनके अतिरिक्त समिति ने आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त नीचे दिए ग्रन्थ प्रकाशित करने का भी निश्चय किया है :

२२. आयुर्वेदीय शब्दकोष
२३. आयुर्वेदोपयोगी संस्कृतपाठचपुस्तकम्

पूर्वतर समिति ने तीन पुस्तकें प्रकाशित की थीं :

१—आयुर्वेदीय-पदार्थ-विज्ञानम् ; २—स्वस्थवृत्तम्—खण्ड १ तथा २; ३—आयुर्वेदीय शारीरम्। इनमें प्रथम तथा तृतीय पुस्तक को फेकल्टी ऑफ आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी-तिब्बी सिस्टम्स ऑफ मेडिसिन, मुंबई तथा मुंबई राजकीय शुद्ध आयुर्वेदिक पाठचक्रम समिति ने अपने-अपने पाठ्यक्रम में पाठ्यपुस्तक के रूप में स्वीकृत किया है। द्वितीय पुस्तक को उक्त दोनों संस्थाओं ने आलोच्य ग्रन्थ के रूप में मान्यता दी है। आयुर्वेदीय शब्दकोश के निर्माण का कार्य पूना के वैदिक संशोधन मण्डल को सौंपा गया है। यह कार्य समाप्तप्राय है। इस आयुर्वेदीय कोष की पाण्डुलिपि कोई एक वर्ष में तय्यार हो जाएगी। पुनः स्थापित समिति का मन्तव्य है कि इन ग्रन्थों के द्वितीय संस्करणों में कतिपय मूलगामी परिवर्तन आवश्यक हैं। इस ध्येय की सिद्धि के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। समिति ने प्रस्तावित तेईस पुस्तकों की रचना आदि के विषय में अपनी ओर से रूपरेखाएँ तय्यार की हैं। पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञप्ति देकर आयुर्वेदिक विद्वानों से विषयप्रधान ग्रन्थ लिखाने की अभ्यर्थना की गयी है।

समग्र भारत के प्रतिष्ठित आयुर्वेदीय विद्वानों में से कुछ को समिति ने स्वीकृति दी है तथा उन्हें अपने-अपने निर्णीत विषय पर नमूने के रूप में एक-एक प्रकरण लिखकर समिति को देने की प्रार्थना की गयी है। नमूने के पृष्ठ 'यथावत् सूत्रित' समझे जाने पर समिति द्वारा निर्धारित

योजना एवं शैली के अनुसार तत्-तत् विषय पर एक वा अनेक लेखकों को ग्रन्थ-लेखन का कार्य सौंपा जाएगा। इनमें कई लेखकों ने पाण्डुलिपि लिखने का कार्य आरम्भ कर दिया है तथा यह विभाग उन्हें प्रकरणशः देखता भी जाता है। कि बहुना, यह कार्य भी मार्गस्थ हो चुका है। प्रत्येक पुस्तक को विषय के दोहन की दृष्टि से अधिकाधिक पूर्ण एवं उपयोगी बनाने के लिए विभाग ने प्रत्येक विषय से संबद्ध समग्र वचनों को उनके स्थल-निर्देश सहित संपूर्ण प्राचीन वाङ्मय से विषयवार संकलित करने का कार्य आरम्भ किया है।

उल्लिखित विषयवार वचन-संदोह को विभिन्न आयुर्वेदीय शिक्षणालयों के अध्यापकों, परीक्षा-संस्थाओं तथा आयुर्वेद के प्रतिष्ठित विद्वानों की सेवा में भेजा जाता है तथा उनके सुझाव माँगे जाते हैं। सुझाव प्राप्त होने पर उन पर चर्चा कर प्रत्येक विषय की सूची को अन्तिम रूप दिया जाता है। तदनन्तर ग्रन्थकार की सूची के क्रम से अपने विषय पर ग्रन्थ-लेखन की अनुमति दी जाती है। इस रीति से प्रत्येक ग्रन्थ अपने विषय को पूर्णतया व्याप्त करनेवाला बन जाएगा, ऐसी आशा रखी जाती है। लेखक के अतिरिक्त तत्-तत् विषय के अध्यापकों तथा आयुर्वेद के विद्वानों के अनुभव का भी लाभ इस पद्धति से ग्रन्थ-लेखन में उपलब्ध हो जाता है।

ग्रन्थ-लेखन के कार्य में आरम्भ में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेदिक शिक्षा-दीक्षा के भविष्य पर पाठ्यपुस्तकों का जो गहरा प्रभाव पड़नेवाला है उसे ध्यान में रखते हुए समिति पुस्तकों को यथाशक्य अधिक सर्वग्राही तथा उपयोगी बनाने के लिए संपूर्ण प्रयास कर रही है। इस कारण भी ग्रन्थ-लेखन का कार्य कुछ कालापेक्षी है। आशा की जा सकती है कि १९६० तक समिति विद्यार्थियों के हितार्थ पर्याप्त संख्या में पुस्तकें प्रस्तुत कर सकेगी।

लेखकों, प्राध्यापकों तथा विद्यार्थियों, सभी के समक्ष आयुर्वेदीय संज्ञाओं तथा उनके अर्थों में एकरूपता का प्रश्न अब तक आयुर्वेदीय पाठ्यपुस्तकों के मार्ग में कण्टक बना हुआ था। अतएव समिति ने समस्त भारत के प्रतिष्ठित आयुर्वेदीय विद्वानों की एक सभा का आयोजन 'शारीर-संज्ञा-परिषद' नाम से किया था। इसका मुख्य प्रयोजन शारीर-संज्ञाओं का प्रमाणीकरण था। परिषद् द्वारा किए गए निर्णय आयुर्वेदीय ग्रन्थ-लेखन में अतीव उपयोगी सिद्ध होंगे, इसमें संशय नहीं।

## आयुर्वेदीय वाङमयावगाहन प्रविभाग

आयुर्वेदीय अनुसंधान-समिति की दृढ़ धारणा है कि आयुर्वेद-विषयक अनुसंधान, चाहे वह किसी भी दिशा या क्षेत्र में हो, इसी कारण पूर्णतया स्थगित न होता हो तो भी प्रचुर काल की अपेक्षा तो रखता ही है कि, तत्-तत् विषय से संबद्ध वचनों का संग्रह करने में कल्पनातीत समय लगता है।

आयुर्वेदीय अनुसंधान-संबन्धी जानकारी के अधिष्ठान या स्रोत नानाविध हैं। वे न केवल आयुर्वेदीय ग्रन्थों में अभिव्याप्त हैं, अपितु वेद, संहिता, पुराण, ज्योतिष-व्याकरण आदि वेदों के अङ्ग तथा उपाङ्गों, बौद्धों तथा जैनों के शिला-लेखों, यात्रा-विवरणों, यूनानी साहित्य एवं संस्कृत, पाली, अर्धमागधी आदि में निबद्ध वैज्ञानिक तथा साहित्यिक कृतियों में भी बिखरे पड़े हैं। और अब तो ऐसी सामग्री विदेशों से भी भारत में आने लगी है जो मूलतः किसी भारतीय-भाषा में थी, पीछे से किसी विदेशी भाषा में अनूदित हो कर विदेश में गई, परन्तु जिसके मूल ग्रन्थ भारत में निःशेष हो चुके हैं।

कहना न होगा कि, आयुर्वेद के किसी एक विद्वान् के लिए इतने विशाल साहित्य का आलोडन करना अत्यन्त दुष्कर होता है। यत्सत्यं, उसका अधिकांश समय अपने अनुसंधान के विषय से संबद्ध वचनों के अन्वेषण में ही व्यतीत हो जाता है; अनुसंधान के मुख्य प्रश्न के अनुशीलन के लिए उसके पास अत्यल्प समय शेष रहता है। यह समस्या विशेषतया तब अधिक नग्न रूप में सामने आती है जब अनुसंधान रुग्ण-चिकित्सात्मक, औषध विषयक, पथ्यापथ्य संबन्धी या ऐसे ही किसी अन्य प्रकार का होता है।

वर्तमान काल में विद्या की किसी भी शाखा में विशेषज्ञता की मर्यादाएँ इतनी विस्तृत हो चुकी हैं कि क्या शास्त्रचिन्तन और क्या अर्थतन्त्र दोनों ही दृष्टियों से यही उचित समझा जाने लगा है कि किसी भी एक समस्या से संबद्ध अनेक कार्यों की पूर्णता का भार एक ही व्यक्ति या वर्ग को न सौंप कर अनेक पृथक् विशेषवित् व्यक्तियों या वर्गों को सौंपा जाना चाहिए जो परस्पर पूरक रूप से कार्य करें। तद् यथा, इस प्रणाली से कार्य करना है तो रुग्ण-चिकित्सात्मक अनुसंधान से संलग्न विशेषज्ञ को अपना चित्त केवल चिकित्सा कार्य पर ही एकाग्र करना चाहिए। ऐसा करने से उसे अपने कार्य से सम्बद्ध यावत् वचन संकलित करके ऐसे प्रविभाग द्वारा दिए जाएँगे जिसका एकमात्र लक्ष्य वचनों के दोहन का होगा। ऐसी परिस्थिति का निर्माण होने पर वह अपने कार्य को स्वल्पतम समय में और वह भी अधिक उत्कृष्टता और सफलता के साथ संपादित करने में समर्थ हो सकेगा। इस व्यवस्थित पद्धति की पूर्ति के लिए समिति के अधीन एक "आयुर्वेदीय शास्त्रावगाहन-प्रविभाग" की स्थापना आवश्यक है।

वर्तमान स्थिति में, अनुसंधान-कर्ता को प्रत्येक पुस्तक से अपने विषय से संबद्ध एक या दो पृष्ठ जितनी सामग्री संकलित करनी हो तो उसके ढूंढने के लिए अकेले हाथों पचास या इतने ही ग्रन्थों का आलोडन करना गलेपतित होता है। निश्चित है, कि इस प्रयास में उसे अन्य दृष्टियों से आवश्यक परन्तु अपने हाथ में लिए कार्य के विचार से अनावश्यक सहस्रों वचनों पर दृष्टि फिरानी होगी, पर अन्त को उन्हें छोड़ते जाना होगा। अन्य किसी क्षेत्र में अनुसंधान

करने वाले विद्वान् को अपने ही विषय-संबन्धी वचनों के दोहन के लिए इसी प्रकार इन्हीं पचास या अधिक ग्रन्थों का आमूलाग्र अध्ययन और आवश्यक तथा अनावश्यक वचनों का विवेचन करना पड़ेगा। इस प्रकार पृथक्-पृथक् प्रत्येक अनुसंधाता को इन पचास पुस्तकों की छानबीन का गहन भार उठाना पड़ेगा।

इसके विपरीत, यदि एक आयुर्वेदीय वाङ्मयावगाहन प्रविभाग स्थापित हो और उसके प्रत्येक कार्यकर्त्ता को एक-एक पुस्तक सौंप दी जाए तो वह उस पुस्तक में आए समग्र विषयों का पृथक्-पृथक् उल्लेख पृथक्-पृथक् कार्डों में करता जाएगा। इस पद्धति से कार्ड तय्यार हो जाने पर समस्त कार्यकर्ताओं के कार्ड एकत्र कर एक-एक विषय से संबद्ध वचनों वाले कार्ड पृथक् कर लिए जाएँगे। कालान्तर में समस्त पुस्तकों में आए समस्त विषयों की कार्डमय सूची तय्यार हो जाएगी। इस पद्धति से कार्य होने पर विशेषज्ञों की अनेक पीढ़ियां वचनों के ढूंढने में होने वाले समय और श्रम के व्यय से मुक्त हो जाएँगी। परिणामतया, इस श्रम-विभाजन से प्रत्येक विद्वान् अपने-अपने विशिष्ट क्षेत्र और दिशा में यथार्थ और अधिक अनुसंधान करके दिखा सकेगा। उपरिनिर्दिष्ट कार्डमय सूची कालक्रम से उत्तरोत्तर प्रवर्धमान, उत्तरोत्तर विस्तृत, उत्तरोत्तर परिपूर्ण और परिणामस्वरूप अधिकाधिक उपयोगी सिद्ध होती चली जाएगी। प्रस्तावित विभाग की स्थापना का यह अन्तिम प्रयोजन है।

समिति ने यह प्रविभाग स्थापित करने के निमित्त एक योजना राज्य-शासन को दी है। इसका औसत व्यय प्रतिवर्ष कोई ३३,००० रुपये होगा।

भारतीय वाङ्मय की अपरिमित विपुलता पर दृष्टिपात करें तो इस प्रविभाग की प्रस्ताविक सभ्य-संख्या के लिए कम से कम पन्द्रह वर्षों के लिए भरपूर काम पड़ा है। परन्तु यह कार्य आधारभूत अतएव प्रथमावश्यक और तत्कालोचित होने से न्यूनतम समय में संपादित किया जाना चाहिए। कार्यकर्त्ताओं की संख्या अनेक गुणी करके पन्द्रह वर्ष व्यापी कार्य पाँच वर्ष में पूर्ण करना श्रेयस्कर होगा। इसका फलितार्थ यह होगा कि कि इस प्रविभाग द्वारा संकलित वचनों का उपयोग समिति के ग्रन्थकार अपने-अपने ग्रन्थों के प्रथम या द्वितीय ही संस्करण के उपबृंहणार्थ कर सकेंगे। अन्यथा,कदाचित् उन्हें पाँचवें या छठे संस्करण में इस संकलन का लाभ मिलेगा।

एतावता, संपूर्ण योजना को मुक्तहस्त आर्थिक सहायता दी जाना आवश्यक है , जिससे पन्द्रह वर्ष का कार्य पाँच वर्ष की अवधि में संपूर्ण हो सके। हर्ष का विषय है कि मुंबई राज्य-शासन ने योजना को स्वीकृति दी है और निकट भविष्य में ही यह प्रविभाग चालू हो जाने की संभावना है, अलबत्ता छोटे पैमाने-पर।

## (३) आयुर्वेदीय रुग्णचिकित्सात्मक अनुसन्धान विभाग

इस विभाग को अपने कार्य के लिए नीचे निर्दिष्ट आयुर्वेदिक रुग्ण चिकित्सात्मक अनुसंधान-केन्द्र सौंपे गए हैं, जिनमें प्रत्येक में २० शय्याएँ हैं :

१. युनिवर्सल हेल्थ इन्स्टीटयूट, मुंबई (२० शय्याएँ),
२. सासून हॉस्पिटल, पूना (२० शय्याएँ)
३. सिविल हॉस्पिटल, अहमदाबाद (२० शय्याएँ)।

समिति ने भारत-सरकार से प्राप्त अनुदान का उपयोग कर नीचे निर्दिष्ट रुग्णालयों में भी १०-१० शय्याओं के आयुर्वेदिक रुग्ण चिकित्सात्मक अनुसन्धान केन्द्र स्थापित किए हैं :

१. आयुर्विद्या प्रसारक मण्डल का रुग्णालय, शींव।
२. आयुर्वेद सेवा संघ का हॉस्पिटल, नासिक।
३. श्री सूरत आयुर्वेदिक हॉस्पिटल, सूरत।
४. सेठ सखाराम नेमचन्द आयुर्वेदिक रुग्णालय, शोलापुर।
५. ताराचन्द रामनाथ आयुर्वेदिक हॉस्पिटल, पूना।

एक अन्य केन्द्र भी शीघ्र ही आरम्भ किया जानेवाला है।

अनेक स्थानों में आयुर्वेदिक रुग्णचिकित्सात्मक अनुसंधान-केन्द्रों की स्थापना का प्रयोजन यह है कि आयुर्वेदिक दृष्टिकोण के अनुसार भिन्न-भिन्न स्थानों के जलवायु तथा अन्य प्रकार की विशिष्टताओं का पृथक् परिणाम और महत्त्व होता है। तुलनात्मक अध्ययनार्थ पर्याप्त सामग्री सुलभ होने पर इस विषय की व्याख्या का मार्ग भी प्रशस्त हो सकेगा।

आयुर्वेदिक रुग्णचिकित्सात्मक अनुसंधान के संचालन में समिति का ध्येय रोग-विषयक सामग्री के आधार पर आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों को यथार्थ स्वरूप में समझना तथा उनकी व्याख्या करना है। इस बात को समझने के लिए विभिन्न विषयों से संबद्ध आयुर्वेदीय सिद्धान्त, जो अन्त को हमें रोग के मूल तक पहुँचाते हैं, उन्हें समझना उपयुक्त होगा।

१—आयुर्वेद के मत से पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु और आकाश ये पञ्च महाभूत तथा आत्मा समवेत होकर आयुर्वेद की संज्ञा में पुरुष कहाते हैं। यह पुरुष आरोग्य, रोग तथा चिकित्सा का अधिष्ठान है :

**अस्मिन् शास्त्रे पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इत्युच्यते। तस्मिन् क्रिया, सोऽधिष्ठानम्॥**

सु० सू० १।२०

२—आयुर्वेद के मतानुसार शरीर की रचना और क्रिया एवं उनका प्राकृत स्थिति में रहना या उनमें कुछ विकृति होना वात-पित-कफ इन तीन दोषों, रस-रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र इन सात धातुओं तथा पुरीष, मूत्र, स्वेद अदि मलों के अधीन है। अतएव इन तीनों को निम्न वचन में शरीर की प्राकृत या विकृत पुष्टि तथा क्रियाओं

और विक्रियाओं का मूल कहा गया है: **दोषधातुमलमूलं हि शरीरम्।** सु० सू० १५।२

३—दोष (एवं अस्थिर धातु तथा मल भी) शरीर में अपने-अपने मार्गों से नित्य संबहन करते रहते हैं। इन मार्गों को स्रोत कहते हैं। इनके चार प्रकार हैं।*

४—आयुर्वेद के मतानुसार पुरुष अमुक आहार, विहार, या चर्या का अतियोग करता है किंवा ऋतु-परिवर्तन का उस पर प्रभाव होता है तो उसके परिणामस्वरूप आहार आदि के गुणों के अनुसार उसके शरीर में तत्-तत् दोष के तत्-तत् गुण या गुणों की वृद्धि या क्षय होता है। दोषों के गुणों में हुए इस वैषम्य को उनका प्रकोप कहते हैं। इसी क्रम से धातुओं में भी विषमता होती है। देखिए:

**कालार्थकर्मनां योगो हीनमिथ्यातिमात्रकः:**
**सम्यग्योगश्च विज्ञेयो रोगारोग्यैककारणम ।।**

अ० हृ० सू० १।१९

५—उल्लिखित कारणों से ही स्रोतों की भी दुष्टि होती है, जिसे स्रोतो-वैगुण्य आदि नाम दिए गए हैं। यह स्रोतोदुष्टि दोष-प्रकोप के परिणाम रूप में भी होती है या उसके विना भी हो सकती है।

**आहारश्च विहारश्च यः स्याद् दोषगुणैः समः ।**
**धातुभिर्विगुणश्चापि स्रोतसां स प्रदूषकः ।।**

च० वि० ५।१२९

६—विषमीभूत या प्रकुपित दोषों का प्रभाव दूष्यों अर्थात् धातुओं और मलों पर होता है। इस अवस्था को दोषदूष्यसंमूर्च्छना कहते हैं।

७—प्रकुपित हुए दोष तथा विकृत दूष्य अपने-अपने सामान्य या विशेष मार्गों अर्थात् स्रोतों से सर्व शरीर में संचरण करते हुए उन शरीरावयवों (अधिष्ठानों) में आश्रय (स्थानसंश्रय) करते हैं, जो प्रादेशिक स्रोतों की अपना प्राकृत कर्म करने में असमर्थता (स्रोतोवैगुण्य) के कारण दुर्बल या विकृत हो गए होते हैं। दोषों के इस स्थानिक संचय के कारण अमुक लक्षणों का समुदाय व्यक्त होता है। इस अवस्था को निज रोग कहा जाता है।—

**शारीरास्तु अन्नपानमूला वातपित्तकफशोणितसंन्निपात-वैषम्यनिमित्ताः ।।**

सु० सू० १।२३

**एवं कुपिता दोषास्तान् तान् शरीरदेशान् आगत्य तान् तान् व्याधीन् जनयन्ति ।।**

सु० सू० २१।३२

**व्यानेन रसधातुर्हि विक्षेपोचितकर्मणा ।**
**युगपत्सर्वतोऽजस्रं देहे विक्षिप्यते सदा ।।**
**क्षिप्यमाणः खवैगुण्याद् रसः सज्जति यत्र सः ।**
**तस्मिन् विकारं कुरुते खे वर्षमिव तोयदः ।।**

अ० हृ० शा० ३।६८।६९

**प्रतिरोगमिति कुद्धा रोगाधिष्ठानगामिनीः ।**
**रसायनीः प्रपद्याशु दोषा देहे विकुर्वते ।।**

अ० हृ० नि० १।२३

इन उद्धरणों से स्पष्ट होगा कि विकारजनक अवस्था और अन्त में उससे विकार (रोग) की उत्पत्ति तभी संभव है जब दोषों का वैषम्य और स्रोतों की विकृति दोनों विद्यमान हों। अर्थात् अंशतः ये दोनों रोगोत्पत्ति के कारण हैं।

तात्पर्य: दोषों की विषमता, जो दूष्यों—धातुओं तथा मलों—को भी दूषित कर देती है वह, जब सर्वाङ्ग के (किसी एक अवयव के) स्रोतों की दुष्टि का सहकार प्राप्त करती है तो रोगोत्पत्ति का क्रम संपूर्ण होकर रोग उत्पन्न होता है, यह आयुर्वेद का सिद्धान्त है।

६—आयुर्वेदीय रुग्णात्मक अनुसंधान का लक्ष्य यह है कि रोगों के उत्पादक कारणों की शृङ्खला की प्रत्येक कड़ी को जानकर उसे नियन्त्रण में लाया जाए। इस क्रम में दोषों के वैषम्य के यथार्थतम स्वरूप अर्थात् प्रत्येक दोष के प्रत्येक गुण के दोष, क्षय या साम्य एवं उसके तरतम भाव को जानकर (अंशांश कल्पना) तदनुरूप चिकित्सा करनी चाहिए।

इस पद्धति से रोग के आरम्भक कारणों की आमूल परीक्षा कर के रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव के आधार पर रोग की निदान परिवर्जन, शोधन तथा शमन चिकित्सा के मार्ग का निर्धारण करना, एवं चिकित्सा के परिणामों का अध्ययन करके रोग-निदान की सूक्ष्म अंशांश-कल्पना के याथार्थ्य का विनिश्चय करना रुग्ण-चिकित्सात्मक अनुसंधानकर्ता वैद्य का प्रमुख कार्य है।

इस पद्धति के अनुसार अनेक रोगों से पीडित रुग्णों की पर्याप्त संख्या का परिशीलन कर उनके आधार पर आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों के स्वरूप की परीक्षा करना, उनको ऊहापोहपूर्वक समझना तथा उनकी व्याख्या करना हमारा कर्तव्य होगा। **योजना यह भी है कि उक्त रीति से प्राप्त**

---

*(१) **स्रोतांसि खलु परिणाममापद्यमानानां धातूनामभिवाहिनी भवन्त्ययनार्थेन।।**

च० वि० ५।३

(२) **स्वधातुसमवर्णानि वृत्तस्थूलान्यणूनि च ।**
**स्रोतांसि दीर्घाण्याकृत्या तानसदृशानि च ।**

च० वि० ५।२५

(३) **स्रोतांसि, सिराः, धमन्यः, रसायनः, रसवाहिन्यः, नाड्यः पन्थानः, मार्गाः, शरीरच्छिद्राणि, संवृतासंवृतानि, स्थानानि, आशयाः क्षयाः, निकेताः चेति शरीरधात्ववकाशानां लक्ष्यालक्ष्याणां नामानि भवन्ति ।।**

च० वि० ५।१४

(४) **स्रवणात् स्रोतांसि ।**

च० सू० ३०।१२

अनुभव और परिमाणों के आधार पर आयुर्वेद के चिकित्सा-क्रम को नये सिरे से व्यवस्थित किया जाए।

रुग्णचिकित्सात्मक अनुसंधान का प्रयोजन समिति की दृष्टि में यह है कि केवल आयुर्वेदोक्त पद्धति का अनुसरण करते हुए रोगों का निदान और चिकित्सा करते हुए प्राप्त सामग्री का अनुशीलन कर आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों को समझा जाय तथा उनको विशद रूप दिया जाए एवं इसी क्रम में पाश्चात्य रोग-परीक्षा-पद्धति से प्राप्त सामग्री के आधार पर, संभव हो तो, आयुर्वेद के सिद्धान्तों की व्याख्या आधुनिक संज्ञा-परिभाषा में भी की जाए। समिति द्वारा निर्धारित दिशा यह होने से समिति ने रुग्णों को आतुरालयों में प्रविष्ट कर उनकी परीक्षा, रोग-विनिश्चय तथा उपचार एकमात्र आयुर्वेदोक्त प्रणाली से करते हुए रुग्ण-चिकित्सात्मक अनुसंधान-क्रम में उपयोगी सामग्री एकत्र करने का निर्णय किया है। धारणा यह है कि, रोगियों का निदान अंशांश कल्पना-पर्यन्त दोष-दूष्य विचार आदि के रूप में शुद्ध आयुर्वेदिक मूल सिद्धान्तों के आधार पर करने से एवं केवल आयुर्वेदोपदिष्ट क्रम से ही उपचार करने से जो सामग्री संकलित होगी वह आयुर्वेदीय संहिताओं में लिखित कार्य-कारणभाव की उस समग्र शृङ्खला को सुविदित रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत कर सकेगी जिसकी परिणति अन्त में रोग के रूप में होती है। अनुसंधान के आधारभूत रोगी का रोग-विनिश्चय और उपचार विशुद्ध आयुर्वेदिक रीति-नीति से हो रहा हो उस अन्तर में, आदि से अन्त तक रोगी का व्यवस्थित इतिवृत्त आधुनिक प्रणाली से, परन्तु 'नेपथ्य में' (विहाइण्ड द कर्टेन) रखा जायगा, जिससे आयुर्वेदिक चिकित्सक को अपने निदान आदि में लेशमात्र पूर्वग्रह का अवकाश सुलभ न रह पाए। इस पद्धति के अनुसार अभीष्ट प्रमाण में सामग्री एकत्र होने का परिणाम यह होगा कि ऊहापोह के लिए अतीव उपयोगी विवरण तय्यार हो सकेगा।

इस ध्येय की सिद्धि के लिए समिति ने सम्प्रति अधोनिर्दिष्ट १३ रोग पसंद किए हैं। आयुर्वेदिक रुग्ण चिकित्सात्मक अनुसंधान के लिए रोगी ऐसे ही चुने जाएँगे जो इनमें से किसी रोग से पीडित हों।—

१. **उदर रोग** (वातोदर, पित्तोदर, कफोदर, संनिपातोदर, प्लीहोदर, यकृदुदर, )।
२. **शोथरोग** (वातज शोथ, पित्तज शोथ, कफज शोथ, संनिपातज शोथ)।
३. **आमवात।**
४. **अस्थिमज्जागत वात।**
५. **संधिगत वात।**
६. **ज्वर** (एकदोषज, द्वंद्वज, संनिपातज ज्वर, संतत ज्वर, विषम ज्वर)।
७. **अतिसार।**
८. **प्रवाहिका।**
९. **ग्रहणी रोग।**
१०. **श्वास रोग।**
११. **अम्लपित्त।**
१२. **शूल** (अन्नद्रवशूल, परिणामशूल, हृच्छूल, पार्श्वशूल—केवल ये भेद)।
१३. **कामला** (शाखाश्रित कामला, कोष्ठशाखाश्रित कामला, कुम्भ कामला)।

इतने रोग इसलिए पसंद किए गए हैं कि अनुसंधान-केन्द्रों को अधिकाधिक संख्या में रोगी पसंद करने का अवकाश प्राप्त हो। तथापि व्यवहार में तो प्रत्येक आयुर्वेदिक चिकित्सात्मक अनुसंधान-केन्द्र अपने को अभिप्रेत दो या तीन ही रोगों के रोगी लेना पसन्द करता है और उन्हीं पर अपना ध्यान पूर्णतया केन्द्रित करता है।

सर्वत्र परीक्षा के प्रकार एवं रोग के लक्षणों, उपचारों तथा दैनिक एवं अन्तिम परिणामों के उल्लेख में सुविधा तथा एकरूपता रहे इस हेतु समिति ने नीचे दिए पत्रक तथा साहित्य तय्यार किए हैं। समस्त काय चिकित्सात्मक अनुसंधान-केन्द्रों में इन का ही समान भाव से उपयोग किया जाता है :

१. आयुर्वेदीय रुग्णपत्रक।
२. तेरहों रोगों की पृथक्-पृथक् लक्षण-सारणियाँ।
३. दोषधातुमल-लक्षण-सारणी।
४. रोगियों के ज्वरोष्मा आदि का बोधक पत्रक।
५. चिकित्सा के अनुसंधान की पद्धति का बोधक पत्रक।
६. रोग के उपक्रम का विवरण भरने का पत्रक।
७. पाश्चात्य पद्धति से इतिवृत्त भरने का पत्रक।

वर्तमान काल में, विशेषतया नव्य स्नातकों में यह प्रवृत्ति बढ़ती हुई देखी जाती है कि, रोगों का रोग-प्रधान अनुशीलन न कर औषध-प्रधान अनुशीलन किया जाए। आयुर्वेद में, इसके विपरीत, विषय का अभ्यास रोग को प्रधानतया लक्ष्य में रखते हुए करनेपर भार दिया गया है। वास्तव में विद्यार्थी की कठिनाई का मूल कारण यह होता है कि, कई शिक्षणालयोंमें आयुर्वेदोपदिष्ट उक्त प्रकार से रुग्ण की परीक्षा और चिकित्सा की व्यवस्था एवं रोग-प्रधान अनुशीलन की सुविधा नहीं होती। अतएव समिति ने अनुसंधान की जो पद्धति अपनायी है वह आयुर्वेद के विद्यार्थियों, अध्यापकों और जिज्ञासुओं की उक्त कठिनाई को दूर करने में अतिशय उपयोगी सिद्ध होगी और हो भी रही है।

तथापि यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि, समिति औषध-प्रधान अनुसंधान का महत्त्व कुछ कम नहीं आँकती। इस पद्धति का भी अपना कर्यक्षेत्र है और इसके द्वारा भी मानव-जाति के ज्ञान-भण्डार में वृद्धि की ही जाएगी। परन्तु आयुर्वेद को आमूलचूल समझने तथा उसका गम्भीरतया अध्यापन करने एवं आयुर्वेद की सर्वतोमुखी उन्नति संपादन करने की दृष्टि से आयुर्वेद के उपासकों के समक्ष जो तात्का-

लिक और प्रथम अपनाने योग्य प्रकार है वह रोग-प्रधान अनुसंधान का ही है। औषध-प्रधान अनुसंधान का स्थान उसके पीछे रहेगा।

समिति आयुर्वेद के औषध-प्रधान अन्वेषण का महत्त्व यथावत् समझती है और इसी कारण यह विषय उसने अपने हाथ में लिया भी है। आवश्यक निधि प्राप्त होते ही समिति रुग्णचिकित्सात्मक औषध-प्रधान अनुसंधान के भी एक या दो केन्द्र खोलना चाहती है।

## ४. आयुर्वेदिक स्वस्थवृत्त तथा आयुर्वेदिक पद्धति से रोगों की अनुत्पत्ति विषयक अनुसंधान का विभाग

यह विभाग समिति में अभी ही जोड़ा गया है। इसका प्रयोजन आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्त या आहार-विहारका अनुशीलन करना है। उदाहरणतया, आयुर्वेद के मन्तव्यानुसार पथ्यापथ्य तथा युक्ताहार, पुरुषों की प्रकृति और आहार, पुरुषों की प्रकृति पर तत्-तत् आहार-द्रव्य का प्रभाव, आयुर्वेद के अनुसार महास्रोत तथा धात्वाशयों में विभिन्न आहार-द्रव्यों के पचन की क्रिया; दिनचर्या तथा ऋतुचर्या; जानपदिक स्वास्थ्य के संरक्षण में इनका महत्त्व; आयुर्वेद-मत से जनपदोद्ध्वंसक व्याधियाँ तथा उनका प्रतिकार इत्यादि विषयों का अनुसंधान यह विभाग करेगा।

यह विभाग प्रकृति-विनिश्चय के अनुशीलन का भी कार्य हाथ में लेना चाहता है। इसके लिए "प्रकृति-विनिश्चय किंवा स्वास्थ्य-परीक्षा पर अनुसंधान" शीर्षक एक विस्तृत योजना भी प्रादेशिक सरकार को भेजी गयी है। इस निबन्ध के अन्त में भी उसके प्रति संकेत किया गया है।

समिति का यह भी विचार है कि, सर्वसाधारण जनता, जिसमें शालाओं के विद्यार्थी भी हैं, उनमें आयुर्वेदिक जीवन के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए सरल लोकभोग्य भाषा में २५-३०, २५-३० पृष्ठों की पुस्तिकाएँ प्रकाशित की जाएँ। ये लोकोपयोगी विषयों पर लिखाई जाएँ; यथा—आहार विषयक आयुर्वेदीय सिद्धान्त, आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्त, रोगों की उत्पत्ति-संबन्धी आयुर्वेद का अभिमत तथा उनके रोकने का आयुर्वेदोपदिष्ट मार्ग, प्रकृति-भेद से आहार-विहार या चर्या, सामान्य रोग तथा उनका उपचार, प्रकृति-भेद से मलबन्ध तथा उसका आयुर्वेदोपदिष्ट उपाय इत्यादि। मुंबई राज्य की प्रादेशिक भाषाओं में तथा केन्द्र सहायता दे तो अन्य प्रदेशों की भाषाओं में भी इन पुस्तिकाओं का भाषान्तर तथा प्रकाशन करा जनता और शालाओं में इनका मुक्तहस्त वितरण कराया जा सकता है।

इस रीति से आयुर्वेद की विचार-धाराओं का प्रचार-प्रसार सर्वसाधारण में किया जाए, विशेषतया तरुण प्रजा पर उसके संस्कार डाले जाएँ तो शिक्षित वर्ग में आयुर्वेद-संबन्धी रूढ़ हुई धारणाओं को बदलने में एवं आयुर्वेद की सर्वतोमुखी उन्नति के द्वार खोलने के लिए उपयुक्त वातावरण खड़ा करने में यह योजना अत्यन्त हितावह सिद्ध होगी, इसमें लेशमात्र संशय नहीं। इस विभाग को यह कार्य भी दिया गया है।

श्री अ० ना० नामजोशी ने १९५५ में एक पुस्तिका लिखी थी, जिसमें आयुर्वेद में अनुसंधान की सामान्य रूपरेखा का दिग्दर्शन कराया गया था। इसका शीर्षक था **"आयुर्वेदिक अनुसंधान : एक रूपरेखा"**। पीछे से समिति ने अपने अधीन अनुसंधान के सामान्य सूत्र निर्धारित करने के लिए इस पुस्तिका में निर्दिष्ट मार्गों को अपनाया था।

## भावी योजनाएँ

समिति के ध्यान में आयुर्वेदीय अनुसंधान के नानाविध क्षेत्र आए हैं, जिनमें भविष्य में कार्य किया जा सकता है। समिति ने इस दृष्टि से योजनाएँ बनाकर यथास्थान सौंपी हैं।

१. समिति ने नागपुर में सौ शय्याओं के आयुर्वेदिक अनुसंधान रुग्णालय के निर्माण की अपूर्व योजना भेजी है। इसमें कफरुग्ण-वॉर्ड, पित्तरुग्ण-वॉर्ड-तथा वातरुग्ण-वॉर्ड पृथक्-पृथक् मकानों में रहेंगे जिनका निर्माण तथा अन्दर-बाहर की विशिष्टताएँ दोष-भेद से भिन्न-भिन्न रहेंगी।

२. अनुसंधान के लिए अबतक नीचे निर्दिष्ट योजनाएँ समिति ने बनाकर सरकार को सौंपी हैं।

---

### आयुर्वेदीय अनुसंधान समिति, मुम्बई

मुंबई राजकीय आयुर्वेदीय अनुसंधान-समिति द्वारा सरकार को सुझाई गई योजनाओं की सूची

| योजना एवं क्रम | योजना का विषय | आवश्यक अवधि वर्षों में | इस अवधि में आनुमानिक व्यय |
|---|---|---|---|
| १ | आयुर्वेदिक वाङ्मय-संग्रह प्रविभाग | ५ | १,६४,००८) |
| २ | प्रकृति-विनिश्चय किंवा स्वास्थ्य-परीक्षा-विषयक अनुसंधान | ५ | २,६६,२९२) |
| ३ | अखिल भारतीय आयुर्वेदिक योग-संग्रह का संकलन | ५ | ७,०६,९७७) |
| ४ | चमत्कारिक फलश्रुति वाली कतिपय परिगणित औषधों पर आयुर्वेदीय औषध-प्रधान अनुसंधान | ३ | २,६०,११८) |
| ५ | आयुर्वेदीय आहार-विहार का अनुशीलन | ५ | ४,७७,५४०) |
| ६ | आयुर्वेदोपदिष्ट उन्माद-चिकित्सा | ५ | १०,४६,०००) |

| योजना एवं क्रम | योजना का विषय | आवश्यक अवधि वर्षों में | इस अवधि में आनुमानिक व्यय |
|---|---|---|---|
| ७ | जनपद-व्यापी रोगों का आयुर्वेदोपदिष्ट अनुत्पत्तिकर मार्ग तथा चिकित्सा | ३ | २,५०,५३६) |
| ८ | गुप्त सिद्ध औषधों की प्राप्ति तथा परीक्षा | ५ | ५,६०,०००) |
| ९ | अरिष्ट-लक्षणों की परीक्षा | २ | ३०,३४४) |
| १० | आयुर्वेदिक औषध-उद्यान तथा निर्माणशाला की स्थापना की योजना | ७ | १५,६४,२२०) |
| ११ | शुद्ध-आयुर्वेदिक चिकित्सात्मक अनुसंधान के प्रसार की योजना | ५ | ७,८१,४४०) |
| १२ | प्रकृति-विनिश्चय-विषयक सामग्री का संग्रह | २ | २५,५२०) |
| १३ | आयुर्वेदिक औषधों तथा कल्पों के संग्रह-स्थानों की योजना | ५ | ६१,९००) |

आगे प्रत्येक योजना का सामान्य परिचय पृथक्-पृथक् दिया जा रहा है।

### योजना १. आयुर्वेदीय वाङ्मय-संकलन प्रविभाग की स्थापना

यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा तात्कालापेक्षी कार्य है, जिसे समिति आरम्भ करना चाहती है। इसकी उपयोगिता इस बात में है कि इसके द्वारा ही समिति के शेष सब वर्तमान या भावी विभागों को अनुसंधान-विषयक शास्त्रीय सामग्री उपलब्ध होगी। आरम्भ में समिति ने सरकार को जो योजना सौंपी थी वह पाँच वर्ष की थी। परन्तु यथार्थत: यह कार्य इतना विशाल है कि इसकी पूर्ति पन्द्रह वर्ष से कम समय में हो नहीं सकती। इतने दीर्घकाल तक अनुसंधान की अन्य प्रवृत्तियों को रोके रखना किंवा अपर्याप्त शास्त्रीय जानकारी के आधार पर ही चलाये जाना सर्वथा अनुपयुक्त होगा। अतः नया प्रस्ताव ल यह है कि कार्यकर्तृमण्डल तिगुना करके इस योजना को वेगवती बनाया जाए जिससे अन्य अनुसंधानों की आदि मूलभूत तथा सर्वोपरि प्राथमिकता रखने वाली यह योजना पाँच वर्षों में ही समाप्त हो सके।

योजना की उपयोगिता तथा इसके क्षेत्र की व्याप्ति इसी निबन्ध में पहले बता दी गयी है।

### योजना २. "प्रकृति-विनिश्चय किंवा स्वास्थ्य-परीक्षा-विषयक अनुसंधान"

दोषों का वैषम्य, उसका धातुओं-उपधातुओं तथा मलों पर प्रभाव और उसके परिणामस्वरूप शरीर, मन तथा उनकी क्रियाओं में अमुक परिवर्तनों का आविर्भाव—इन बातों का विचार करें तो आयुर्वेद में 'व्यक्ति की प्रकृति' इस शब्द से क्या अभिप्रेत है यह समझ में आ सकता है। पुरुष की प्रकृति अपरिणामी होती है। सामान्य जीवन में इसमें कोई परिवर्तन संभव नहीं है, अलबत्ता कुछ अंशों में इसे प्रभावित किया जा सकता है। आयुर्वेद के अनुसार पुरुष की प्रकृति पर ही उसका स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य तथा उसकी मर्यादा अवलम्बित होती है।

एतावता, अर्थापत्ति से पुरुष की प्रकृति की परीक्षा का अर्थ है उसके स्वास्थ्य की परीक्षा। आयुर्वेदोपदिष्ट प्रणाली से इस दिशा में अनुसंधान का अनन्य महत्त्व है। कारण, प्रकृति की ही पूर्ण परीक्षा के आधार पर बड़ी सरलता से जाना जा सकता है कि किसी पुरुष के स्वास्थ्य का स्वरूप कैसा है, एवं सामान्यतया उसे किन कारणों से कौन-से रोग होने की संभावना हो सकती है।

जैसा कि ऊपर कहा, पुरुष की प्रकृति अपरिणामिनी (अपरिवर्तनशील) होती है। इसे सर्वात्मना बदला तो नहीं जा सकता, तथापि यदि इसकी कारण-परंपरा के सब पहलुओं को यथावत् समझ लिया जाए और तदनुरूप आहार, विहार और औषध-योजना की व्यवस्था की जाए तो इसे पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया जा सकता है तथा इसकी तीव्रता को कम किया जा सकता है। स्वास्थ्य की यथासंभव सूक्ष्म, गहन और व्यापक परीक्षा का प्रयोजन यह है कि उस सहज मारण-माला की तरह तक पहुँचा जाए जो विशेष के शरीर, मन और अग्नि आदि के व्यापार के इस इतर जनों से विशिष्ट उस स्वरूप के लिए मूलतः उत्तरदायी है, जिनके कारण उसमें तत्-तत् वस्तु के प्रति इच्छा या द्वेष, उसके जीवन की विशिष्ट परिपाटी, उसका स्वभाव, उसे होने या न होने वाले विविध रोग एवं विभिन्न परिस्थितियों या अवस्थाओं के प्रति उसकी विशिष्ट प्रतिक्रिया का का निर्माण हुआ करता है। इस कार्यकारणभाव के जानने का परिणाम यह होगा कि हम उसके जीवन को अपने लिए अधिक आनन्दप्रद तथा समाजके लिए अधिक उपयोगी बनाने में समर्थ हो सकते हैं। और वह इस प्रकार।—

उसकी शारीरिक और मानसिक प्रकृति का अनुशीलन आयुर्वेद के अनुसार अंशांश विकल्प के ज्ञान पर्यन्त करने के पश्चात्, अथ च, इस प्रकृति की उत्पत्ति और आविर्भाव के हेतुभूत कारणों के परस्पर संबन्ध का ज्ञान प्राप्त करने के अनन्तर आयुर्वेद के स्वस्थवृत्तोक्त सूत्रों को दृष्टि में रखकर उसे सलाह दी जा सकती है कि अपनी प्रकृति के अनुसार उसे अपना जीवन कैसे बिताना चाहिए, उसके लिए कौन-से आहार-द्रव्य अनुकूल होंगे, उसे कोई रोग हो तो उसके लिए कैसी और क्या औषध-योजना उपयुक्त होगी, एवं उसकी दैनिक तथा रात्रि की चर्या एवं विभिन्न ऋतुओं में उसका आहार-विहार किस प्रकार का होना चाहिए। उसे जो परामर्श-पत्र दिया जाएगा उसमें उन रोगों का भी उल्लेख रहेगा, जिनसे यदि वह पत्रक में दिए स्वस्थवृत्त का पालन न करे तो, संभवतः पीड़ित हो सकता है। इस प्रकार

राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति के आरोग्य की सर्वाङ्ग-संपूर्ण परीक्षा आयुर्वेदिक विचार-सरणि के अनुसार की जाए एवं उसे आजीवन पालनीय चर्या संबन्धी निर्देश दिया जाए तो व्यक्ति, समाज तथा राज्य सभी को प्रभूत लाभ हो सकता है।

इस प्रयोजन से समिति ने व्यक्तियों की प्रकृति की परीक्षा में उपयोगी योजना की रूपरेखा बनाई है, जिसका अभ्यास करने से प्रकृति-परीक्षा का महत्त्व आर्थिक और क्रियात्मक दोनों दृष्टियों से आँका जा सकता है। आरम्भ में तो यह योजना पाँच वर्ष चलाने का प्रस्ताव है। उपयोगिता सिद्ध हुई तो इसे अन्य केन्द्रों में भी आचरण में लाया जा सकता है, जिससे राज्य के सभी विभागों के निवासियों को एवं समाज की सभी भूमिकाओं की व्यक्तियों को इसका लाभ प्राप्त हो सके।

### योजना ३. अखिल भारतीय आयुर्वेदिक योग संग्रह

समग्र देश के लए आयुर्वेदिक योग संग्रह (फार्मेकोपिया) का कार्य चिरकाल से अस्पृष्ट पड़ा है। कार्य की विशालता, इसके प्रणयन में विद्यमान गहन गुत्थियाँ और इसके संपादन के लिए आवश्यक आप्तत्व की असुलभता—इन कारणों से यह अनुभव किया जाता रहा है कि इस असाधारण कार्य की सिद्धि किसी एक संस्था के बश की बात नहीं है। स्पष्ट है कि, ऐसा उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य शक्य हो तो केन्द्रीय सरकार द्वारा, किंवा प्रादेशिक सरकारों द्वारा अथवा दोनों के परस्पर सहकार द्वारा ही किया जाना चाहिए।

समिति ने सर्वदेशीय आयुर्वेदिक योग संग्रह बनाने के लिए एक योजना प्रस्तुत की है। इसमें "भारतीय आयुर्वेदिक योग संग्रहार्थ समिति" के निर्माण का सुझाव दिया गया है। समिति के प्रस्तावानुसार इसमें समिति के सभी सदस्य तथा १४ राज्यों से पसंद किए गए ३५ मानार्ह सलाहकार (प्रत्येक राज्य से सामान्यतया २, तथा सरकार द्वारा नामजद ७) तथा एक योजना के अधीन वैतनिक आयुर्वेदिक योग संग्रह अधिकारी रहेंगे। ३५ मानार्ह सलाहकार विषय की विचारणा एवं पत्रव्यवहार के लिए प्रतिदिन कुछ घण्टे देंगे। उन्हें प्रतिमास १५० मान देय दिया जाएगा। वर्ष में कोई एक या दो बार उनकी परिषद् का आयोजन किया जाएगा। आयुर्वेदिक योग संग्रह अधिकारी वैतनिक रहेगा। वह समिति के सभ्यों के साथ मन्त्रणा करके समस्त कार्य का संचालन करेगा। समिति के सभ्य अपेक्षाकृत शीघ्र एकत्र होकर निर्णय करेंगे कि कौन कार्य मानार्ह सलाहकारों को सौंपा जाए, विवादातीत विषयों पर चर्चा करेंगे, प्रविभाग द्वारा कृत तथा अकृत कार्य की जाँच करते रहेंगे तथा भावी योजनाएँ बनाएंगे।

योजना के अनुसार कार्य ५ वर्ष तक चलेगा। इस काल के अन्त में प्रथम सर्व भारतीय आयुर्वेदिक योग संग्रह की पाण्डुलिपि तय्यार हो चुकी होगी।

### योजना ४. कतिपय शास्त्रोक्त चमत्कारी फलश्रुति वाले कल्पों पर आयुर्वेदिक रुग्ण चिकित्सात्मक औषध-प्रधान अनुसंधान की योजना

विभिन्न आयुर्वेदिक संहिताओं तथा ग्रन्थों में आई कतिपय आयुर्वेदिक औषध-कल्पों की फलश्रुति पर दृष्टिपात किया जाय तो पाठक के मन में भारी कुतूहल उत्पन्न हुए बिना न रहेगा, विशेषतया उस दशा में जबकि देखा जाता है कि कई आप्ततम तन्त्रकार भी कई आयुर्वेदीय कल्पों की प्रशंसा में आकाश-पाताल एक कर देते हैं। अतः प्रस्ताव किया गया कि, आप्त आयुर्वेदीय लेखकों तथा अधिकारियों द्वारा अपने-अपने सुप्रतिष्ठित ग्रन्थों में जिन कल्पों के विषय में ऐसे दावे किए गए हैं उनमें से कुछ की यथार्थता की परीक्षा का कार्य समिति अपने हाथ में ले। इस प्रयोजन के लिए समिति को पृथक विपुल साधन-सामग्री वाला प्रावेशिक रुग्णालय-केन्द्र रखने की आवश्यकता न होगी। सुझाव यह है कि, अधिकतम औषधीय दावों वाली औषधियों में से कुछ, लगभग पाँच, सविशेष उत्कट शक्ति वाले कल्प पसन्द किए जाएँ। समिति इन कल्पों का निर्माण पूर्णतया प्रमाणभूत पाठगों के अनुसार स्वतः करेगी और उनकी औषधीय परीक्षा के लिए आवश्यक परिमाणों के पैकिंग में सुलभ करेगी। पश्चात् समिति प्रत्येक कल्प के विषय में चिकित्सोपयुक्त निर्देश तय्यार करेगी, जिनमें उस-उस कल्प की शास्त्रीय भूमिका, उसके गुण-कर्मों तथा फलश्रुति के द्योतक मूल वचन एवं आयुर्वेद की संज्ञा-परिभाषा में स्पष्ट शब्दों में उन अवस्थाओं का उल्लेख रहेगा जिनमें उस-उस कल्प का उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार उपयुक्त साहित्य तथा सेवनार्थ उचित पेकिंग में आप्तोक्तरीत्या निर्मित औषध तय्यार हो जाने के अनन्तर समिति रोगियों के इतिवृत्त का आलेखन करने के लिए आवश्यक पत्रक (फॉर्म) एवं जिन रोगों में कोई पथ्यापथ्य सूचित करना आवश्यक होगा उनके लिए उसके निर्देशक पत्रक तय्यार कराएगी।

इसके पश्चात् समिति उन समस्त आयुर्वेदिक रुग्णालयों को, जिन में प्रावेशिक विभाग विद्यमान हो, सूचित करेगी कि समिति अमुक पाँच कल्पों की शास्त्रोक्त फलश्रुति के यथातथ्य का निर्णय करना चाहती है। ये सभी कल्प शास्त्रोक्त पाठ और पद्धति के अनुसार बना कर बिना मूल्य समिति द्वारा वितीर्ण किए जाने के लिए तय्यार रखे गए हैं। इनका उपयोग समिति द्वारा निर्धारित तत्-तत् अवस्थाओं में किया जाना है। आतुरालयों को समिति द्वारा निर्मित पत्रकों पर समिति के निर्देशानुसार निदान-चिकित्सात्मक विस्तृत विवरण रखने की प्रार्थना की जाएगी। समिति आतुरालयों के तन्त्रवाहकों से अनुरोध करेगी कि उक्त पाँच औषध-कल्पों में किसी की परीक्षार्थ प्रयुक्त रुग्ण जब भी सुलभ हों तब उन्हें अपने यहाँ प्रवेश देकर तथा निर्दिष्ट नीति-रीति के अनुसार उपचाराधीन रख कर समिति को प्रस्तवित कार्य में सहायता प्रदान करें। प्रत्येक रुग्णालय

को प्रयोगार्थ आवश्यक कल्प योग्य मात्रा में दिया जाएगा और उसका उपयोग पूर्णतया समिति-निर्दिष्ट प्रणाली से किया जाएगा। "नेपथ्य में" (बिहाइंड द कर्टेन) प्रत्येक रुग्ण का प्रारम्भिक तथा दैनिक इतिवृत्त पाश्चात्य चिकित्सा पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति के अनुसार भी रखा जाएगा। से रुग्ण-विशेष की मुक्ति के पश्चात् या उसका उपचार समाप्त होनेके अनन्तर, रुग्णालयके प्रधान चिकित्सक एवं अन्य स्थानीय परामर्शदाता की सेवा सुलभ हो सकी हो तो उनके भी प्रमाण-पत्र के साथ उनका (रुग्ण का) संपूर्ण विवरण समिति को भेजा जाएगा। उपचार के अतिरिक्त भोजन भी रुग्ण को समिति के निर्देशानुसार ही दिया जाएगा। जो रुग्णालय इस प्रकार रोगी को प्रविष्ट कर समिति की नीति-रीति का अनुसरण करते हुए उसकी चिकित्सा एवं विवरण रखने का भार वहन करते हुए समिति को अपने इस रुग्ण-चिकित्सात्मक औषध-प्रधान अनुसंधान में साहाय्य प्रदान करेंगे उनको रोगी के विशिष्ट आहार एवं अनुपान तथा नियोजित निष्णातों के निरीक्षण-कार्य में हुए व्यय की पूर्ति के रूप में प्रति-रुग्ण २०) एकमुश्त दिया जाएगा। इस योजना के अनुसार विभिन्न अनुसंधान-केन्द्रों से जो विवरण तथा परिणाम प्राप्त होते रहेंगे उनके दोहन और संपादन के लिए समिति एक छोटा-सा कार्यकर्तृमण्डल भी नियुक्त करेगी।

योजना की परमावधि तीन वर्ष की होगी। यह अवधि पूर्ण होने तक आशा की जाती है कि समिति कोई पन्द्रह-बीस प्रभावी आयुर्वेदिक औषध-कल्पों का चिकित्सा में उपयोग कर उनकी फलश्रुति की परीक्षा कर चुकी होगी, जिसके परिणामस्वरूप आयुर्वेद के औषधागार में आयुर्वेद एवं जनता दोनों के लिए उपयोगी अभिवृद्धि हो सकेगी।

### योजना ५. आयुर्वेदिक आहार-विहार के अनुशीलन की योजना

आज स्थिति यह है कि आहार शास्त्र-विषयक अनुसंधान के क्षेत्र पर आधुनिक वैज्ञानिकों और चिकित्सकों का एकच्छत्र प्रभुत्व-सा है। दैव-दुर्विपाकवश आहर-विषयक प्रायः समग्र धारणाएँ ऐकान्तिक (एकपक्षीय) हैं। कारण, उनके अनुसार अन्नपान का प्रयोजन शक्ति तथा धातुपाक की क्रिया मात्र माना जाता है। परन्तु इस विषय में आयुर्वेद के दृष्टिकोण के अनुसार आहार के प्रयोजन इससे कहीं अधिक हैं। आहार-संबन्धी आयुर्वेद के सिद्धान्त इतने मूलगामी तथा गम्भीर हैं कि उनकी आधारभूत विचारधारा का आमूलाग्र अनुसंधान अत्यावश्यक है। अपरंच, आयुर्वेद-मत से आहार पुरुषों के जीवनक्रम से भी गाढ संबन्ध रखता है।

अतएव, समिति ने आयुर्वेदोपदिष्ट आहर-विज्ञान का अनुसंधान की दृष्टि से व्यापक परिशीलन करने की योजना बनाई है। योजना का काल पाँच वर्ष का रहेगा। इस काल में आयुर्वेदिक आहार एवं पथ्यापथ्य संबन्धी सुविशद अनुशीलन पूर्णतया किया जा सकेगा, जिसके परिणाम रूप में प्रस्तुत विषय का अधिक अध्ययन करने के लिए अपेक्षित सामग्री एकत्र हो जाएगी, साथ ही आहर-विषयक आयुर्वेदिक विचारधारा भी प्रमाणों द्वारा अंशतः परिपुष्ट हो सकेगी।

### योजना ६. उन्माद की आयुर्वेदिक चिकित्सा का अनुसंधान

मानस रोगों से पीड़ित पुरुषों की आहार, विहार एवं औषध तीनों प्रकार की चिकित्सा का सविस्तार वर्णन आयुर्वेद के संहिता-ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

समिति ने एक योजना बनाई है, जिसके अनुसार मुंबई राज्यान्तर्गत ठाणा तथा यरवडा के उन्मत्तागारों (ल्यूनेटिक एसाइलम, पागलों के अस्पतालों) में प्राप्य सुविधाओं का उपयोग अनुशीलनार्थ किया जा सकेगा। इसके अनुसार प्रत्येक रुग्ण की परीक्षा और रोग-विनिश्चय आयुर्वेदोक्त निदान-पद्धति से किए जाएँगे। पश्चात् ये रुग्ण अमुक सुनिरूपित आयुर्वेदोक्त उपचार में रखे जाएँगे तथा उनके परिणामों का विवरण लिपिबद्ध किया जाता रहेगा। एतदर्थ, एक मुंबई में तथा एक पूना में इस प्रकार दो छोटे-छोटे अनुसंधान-प्रविभागों की स्थापना करनी पड़ेगी। योजना कार्य-काल पाँच वर्षों का होगा। अनुसंधान की यह अवधि समाप्त होने पर हमारे पास उन्मत्तों के विभिन्न प्रकारों पर आयुर्वेदिक विचारधारा के अनुसार गम्भीर अनुशीलन के परिणाम एवं विशिष्ट चिकित्साक्रम-सम्बन्धी प्रचुर सामग्री संचित हो जाएगी।

### योजना ७. आयुर्वेदोक्त परिपाटी से जनपद-व्यापी रोगों की अनुत्पत्ति तथा उपचार-विषयक योजना

जनपद-व्यापी रोगों की उत्पत्ति, अनुत्पत्ति (रोकथाम) एवं चिकित्साके संबन्धमें आयुर्वेद के अपने मौलिक विचार हैं। समिति ने वात-कफ ज्वर (इन्फ्लुएंजा) के गत जनपद-व्यापी प्रसार के समय इस दिशा में कुछ प्रयास किए थे और उनका परिणाम अतीव आशास्पद रहा था।

जनपद-व्यापी रोगों की अनुत्पत्ति तथा प्रतिकार के आयुर्वेदोपदिष्ट मार्ग की पूर्णतया परीक्षा की जानी चाहिए। इस लक्ष्य को दृष्टि में रख कर समिति ने संक्रामक रोगों के उपचार के लिए स्थापित विद्यमान हास्पिटलों का लाभ उठाते हुए वहाँ प्रवेशित रोगियों की आयुर्वेदिक निदान-पद्धति से परीक्षा करने, उन्हें आयुर्वेदोक्त उपचार पर रखने एवं उत्पन्न परिणामों को प्रत्यक्ष करने की एक योजना प्रस्तुत की है। आरम्भ में तो योजना का कार्य-काल तीन वर्ष का रखा जाएगा। इस अन्तर में हमारे पास किसी भी विदित जानपदिक रोग के आविर्भाव का प्रतिकार आत्यधिक परिस्थिति में करने के लिये आवश्यक उपचार-क्रम-संबन्धी पर्याप्त सामग्री एकत्र हो जाएगी।

### योजना ८. कई लोगों को विदित गुप्त सिद्ध औषधों के परिज्ञान की योजना

राजा से रंक तक प्रत्येक व्यक्ति के अनुभव में यह बात कभी न कभी अवश्य आई होगी कि अमुक लोगों के पास कुछ ऐसी चमत्कारी ओषधियाँ हैं जो तत्-तत् रोग पर जादू का-सा कार्य करती हैं। अधिकांश ने इनके विषय में केवल सुना होता है, और कइयों को इनके प्रत्यक्ष का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ होता है। देश के हित को ध्यान में रखते हुए सरकार को चाहिए कि वह इस बात के विज्ञापन की व्यवस्था करे कि जिन व्यक्तियों के पास ऐसी गुप्त सिद्ध औषधियाँ हैं उन्हें अमुक प्रकार का संरक्षण देते हुए तथा अमुक लाभ के साथ सरकार इन ओषधियों को अपने हस्तगत करना चाहती है।

समिति ने एक योजना बना है जिसके अनुसार इन प्रभावी विशिष्ट औषधों के संबन्ध की गुप्त जानकारी अथवा उनसे संबद्ध और कोई सूचना देने वाले व्यक्ति आगे आएँ और इन औषधों के फलाफल की परीक्षा की जा सके। योजना का काल पाँच वर्ष का होगा। इस अवधि में कोई ५० गुप्त सिद्ध औषधों के परिज्ञान की आशा की जा सकती है। योजना के परिणामस्वरूप ऐसे रोगों का उपचार हमारे हाथ में आ सकता है जिनके विषय में हम लाचारी अनुभव करते हैं।

### योजना ९. अरिष्ट-लक्षणों के अनुशीलन की योजना

किसी भी रुग्णालय के प्रवेशित रुग्णों की दैनन्दिन परीक्षा करते हुए सभी चिकित्सकों के अनुभव में यह बात आई होगी कि अमुक परिस्थिति उत्पन्न होने पर उन्हें यह लगने लगता है कि भविष्य अच्छा नहीं है—लक्षण ऐसे हैं कि रोगी की मृत्यु हो जाएगी। इस धारणा का कारण उनके समक्ष विद्यमान लक्षण-समुदाय हो सकता है, अथवा उपचाराधीन रुगियों की प्रतिक्रिया किंवा अनुभवजन्य प्रतिभ ज्ञान भी होना सम्भव है। आयुर्वेद के पूर्वाचार्यों ने ऐसे अगणित रुग्णों का भूयोदर्शन कर अनुभव के अधार पर उन्हें सामान्य रूप देने का प्रयत्न किया है। परिणामस्वरूप उन्होंने रुग्णों के अमुकामुक लक्षणों और वेदनाओं के समुदाय के रूप में सिद्धान्त संहिता-ग्रन्थों में उपनिबद्ध किए हैं, जिनका प्रादुर्भाव इस बात का सूचक होता है कि रोग का फल (उदर्क) तत्काल अनिष्ट जनक होनेवाला है। आयुर्वेद में इन्हें 'अरिष्ट लक्षण' नाम दिया गया है।

समिति की उत्कृष्ट इच्छा है कि आयुर्वेद के इस विशिष्ट प्रकरण की रुग्णों पर प्रायोगिक परीक्षा की जाए और उसका आमूल अभ्यास किया जाए।

अतः समिति ने मुंबई राज्य के विभिन्न आतुरालयों में आए रोगियों पर अरिष्ट लक्षणों का गहन अभ्यास करने के प्रयोजन से एक योजना प्रस्तुत की है। आरम्भ में यह योजना द्विवार्षिक रहेगी, जिसका फल यह होगा कि हमें इस अति महत्वपूर्ण विषय पर अतीव उपयोगी और रसप्रद सामग्री उपलब्ध हो सकेगी।

### योजना १०. आयुर्वेदिक औषधोद्यान तथा निर्माणशाला की योजना

अपने अधीन विभिन्न अनुसधान-केन्द्रों, आतुरालयों सहित आयुर्वेदिक सस्थाओं, वैद्यों, अन्य क्षेत्रों में कार्य कर रहे अनुसंधाताओं एवं शक्य हो तो आयुर्वेदीय औषध-निर्माणशालाओं को भी यथार्थ-पूर्व-परीक्षित आर्द्र एव शुष्क तथा सुरक्षित आयुर्वेदिक पौधे किंवा उनके उपयोगी अङ्ग सुलभ हो सकें इस प्रयोजन से समिति ने एक आयुर्वेदिक औषधोद्यान तथा निर्माणशाला की स्थापना का प्रस्ताव किया है।

निर्माणशाला आयुर्वेदिक औषधोद्यान की अङ्गभूत होगी और बड़े परिमाण में आदर्श शास्त्रोक्त पद्धति से एकरूप विविध आयुर्वेदिक कल्पों का निर्माण करेगी। शास्त्रशुद्ध कच्ची दवाइयों के संग्रह से कार्यारम्भ करती हुई यह निर्माणशाला पूर्णतया आप्तोपदिष्ट प्रणाली का अनुसरण कर आयुर्वेदिक रुग्ण-चिकित्सात्मक अनुसंधान-केन्द्रों, शासकीय संस्थाओं, अपने व्यवसाय में उपयोगाभिलाषी वैद्यों, अन्य क्षेत्रों में कार्य कर रहे अनुसंधाताओं एवं जनता को भी सर्वथा विश्वसनीय और यथार्थ औषध बनाकर दे सकेगी। इस संस्था का लक्ष्य आर्थिक लाभ प्राप्त करना या विद्यमान आयुर्वेदिक निर्माणशालाओं की स्पर्धा में उतरना न होगा।

औषधोद्यान में विभिन्न बहुवर्षायु वृक्ष, गुल्म, लता तथा क्षुप लगाये जाएँगे; साथ ही वर्षायु या द्विवर्षायु औषधियों की वर्ष या दो वर्ष में कृषि भी की जायगी, जिससे औषध-भेद से प्रति वर्ष या दो वर्षों में एक बार ताजी फसल प्राप्त की जा सकेगी। औषधोद्यान राज्य के अन्य विभागों से विशेषतया वन-विभाग की सहायता से तत्-तत् आर्द्र तथा शास्त्रशुद्ध कच्ची दवाइयाँ मँगवाएगा या अन्य राज्यों से आयात करेगा, सूक्ष्म औषधशारीर के अनुसार उनकी परीक्षा करेगा और यथावत् परीक्षा के पश्चात् उन्हें स्वच्छ एवं अवैकारिक परिस्थितियों का पालन करते हुए पैक करेगा और अन्त में जिन्हें आवश्यकता हो उन्हें इन औषधों को पहुँचाएगा। इस प्रक्रिया से देश के वन-विभाग में वर्तमान में उपलब्ध सुविशाल औषधाकर को उपयोग में लाया जा सकेगा, अथ च वन-विभाग के अधिकारियों को कतिपय अतीव फलप्रद एवं रोगनिवारक औषधों की विपुल परिमाण में कृषि करने और उनके निर्यात में वृद्धि करने की भी सलाह दी जा सकेगी।

तद्वत् आयुर्वेदिक निर्माणशाला भी औषधोद्यान द्वारा उत्पादित एवं उपपादित समस्त हस्तगत ओषधों का उपयोग करती हुई आदर्श एवं विश्वस्त आयुर्वेदिक कल्पों का निर्माण करेगी तथा उल्लिखित प्रणाली से उनका वितरण करेगी। यह निर्माणशाला व्यावसायिक आयुर्वेदिक निर्माणशालाओं के लिए प्रदीपवत् कार्य करेगी और अपने उदाहरण से उन्हें भी अपने यहाँ बनाई जानेवाली आयुर्वेदीय कल्पनाओं के

स्वरूप को सामान्यतया सुधारने में नैतिक प्रभाव का काम करेगी। परिणामतया, आयुर्वेदिक कायचिकित्सात्मक अनुसंधान का कार्य अविश्वसनीय औषधों के उपयोग से बिगड़ने की जो भीति रहती है वह न रहेगी।

गणना से हमारा निश्चय हुआ है कि कोई नौ वर्षों की अवधि में औषधोद्यान एवं निर्माण-शाला दोनों स्वाश्रयी एवं सरकार के लिए उपयोगी संस्थाएँ सिद्ध हो सकने की स्थिति मे आ जाएँगी। इनसे शासन को कर-प्राप्ति होना भी संभव है। यह आरम्भिक प्रयास सफल हुआ तो मुंबई राज्य - सरकार तथा अन्य राज्यों और केन्द्रों की सरकारें भी विविध स्थानों पर यह कार्य चालू कर सकती हैं तथा आयुर्वेद के उत्कर्ष में रचनात्मक भाग अदा कर सकती हैं।

### योजना ११. शुद्धायुर्वेदिक कायचिकित्सात्मक अनुसंधान के विस्तरण की योजना

यह योजना समिति ने इस प्रयोजन से सरकार को प्रस्तुत की है कि, इसके द्वारा राज्य के विद्यमान प्रमाणित आयुर्वेदिक रुग्णालयों, प्रमाणित आयुर्वेद महाविद्यालयों एवं संभव हो तो सरकारी रुग्णालयों की रुग्ण-शय्याओं का उपयोग किया जाए एवं इन रुग्णालयों में कार्य करने वाले रुग्ण चिकित्सात्मक विषयों के अध्यापकों की सेवा का भी लाभ उठाया जाए, जिसके फलस्वरूप रोगों तथा उनके निदान-चिकित्सा से संबद्ध विपुल सामग्री स्वल्प आयास से संगृहीत हो सकेगी, जिससे इन संस्थाओं के शिक्षण का स्तर भी अनायास उन्नत हो जाएगा। इस योजना के अवधि पाँच वर्ष की रखी गयी है। इस काल में काय चिकित्सात्मक अनुसंधान-विषयक मूलभूत प्रश्नों से संबन्ध रखने वाली अनुसंधान पर अवलम्बित प्रभूत सामग्री एकत्र हो जाएगी।

### योजना १२. प्रकृति-विनिश्चय-विषयक सामग्री के संग्रह की योजना

योजना सं० २, जिसके पृथक् प्रविभाग की स्थापना का प्रस्ताव ऊपर किया गया है लगभग उसी की परिपाटी पर यह योजना समिति ने बताकर सरकार के समक्ष उपस्थित की है। प्रस्तुत योजना का प्रचार केवल यह रहेगा कि इसमें प्रकृति-विनिश्चयार्थ उपयोगी सामग्री विद्वान् वैद्य अपने व्यवसाय के प्रसंग से एकत्र करेंगे। इसमें होनेवाले श्रम, डाक-व्यय आदि के लिए उन्हें नाममात्र पारिश्रमिक दिया जाएगा। योजना सं० २ के अङ्ग के रूप में कार्य संपादन करती हुई इस योजना के साहाय्य से भी प्रकृति-विनिश्चय में उपयोगी प्रचुर सामग्री उपलब्ध हो सकेगी।

### योजना १३. आयुर्वेदिक वनौषधियों तथा द्रव्यों के निर्माणशाला में संग्रहण की योजना

देश में सर्वत्र वनराजियों में विकीर्ण आयुर्वेदिक औषध-द्रव्यों के विद्यमान भण्डारों को उपयोग में लाने के प्रति समिति का ध्यान चिरकाल पूर्व आकृष्ट हो चुका था। इस दृष्टि से समिति ने राज्य के समक्ष जो योजना रखी है उनके अनुसार राज्य के विभिन्न भूविभागों में छोटे-छोटे संग्रहस्थान (डीपो) स्थापित किए जाएँगे, जो आयुर्वेदिक वनौषधियों तथा कच्चे द्रव्यों के संग्रहण, प्राप्ति, संरक्षण और वितरण का कार्य करेंगे, जिससे वन-उपवन में विद्यमान औषध-संपत्ति का लाभ उठाया जा सके तथा देश के कल्याण के लिए आर्थिक दृष्ट्या उपयोग किया जा सके।

आरम्भ में तो यह योजना पञ्चवार्षिक रहेगी। अनुभव से इन संग्रहस्थानों की स्थापना उपयोगी तथा अर्थ-साधक सिद्ध हुई तो योजना को अधिक स्थायी बनाया जा सकेगा तथा संग्रहस्थानों की संख्या में भी वृद्धि की जा सकेगी।

वैद्यनाथ वंग भस्म

असंयम से पैदा होनेवाले रोगों तथा दुर्बलता को दूर कर शरीर को ताकत देती है। विशेष जानकारी के लिए। वैद्य से सलाह लें।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि॰
कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

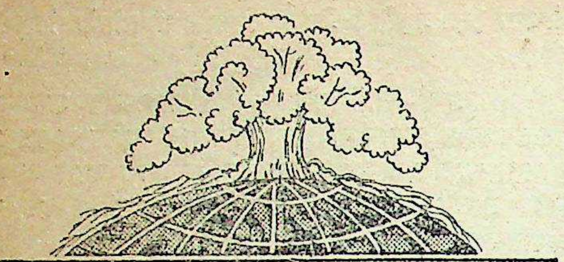

# आयुर्वेद-जगत्

## स्वदेशी चिकित्सा-प्रणालियों का विकास

केन्द्रीय सरकार की द्वितीय पंचवर्षीय योजना में १ करोड़ रुपए की व्यवस्था आयुर्वेद, यूनानी, होम्योपैथी तथा प्राकृतिक चिकित्सा सहित सभी स्वदेशी चिकित्सा-पद्धतियों के विकास के लिए की गई है। राज्य योजना में भी ५२१.८३ लाख रुपये की व्यवस्था की गयी है। इस रकम में २२१.४६ लाख रुपए की वह पूंजी भी सम्मिलित है जो स्वदेशी चिकित्सा-पद्धतियों के मौजूदा कालेजों की उन्नति तथा नए कालेजों की स्थापना के लिए है। केन्द्र किस प्रकार सहायता देगा यह बात राज्य सरकारों को बता दी गयी थी और उनसे यह भी प्रार्थना की गयी थी कि वे भारत सरकार के पास अपने-अपने प्रस्ताव भेजें जिससे उन पर केन्द्रीय सहायता के लिए विचार किया जाए। व्यक्तिगत संस्थाओं तथा राज्य सरकारों से इस पर कई प्रस्ताव आए और उन पर विचार किया गया। इस योजना के अन्तर्गत द्वितीय पंचवर्षीय योजना में अबतक ३२,६०,११७ रुपए की पूंजी स्वीकृत की जा चुकी है। इस वर्ष में आयुर्वेद, यूनानी तथा होम्योपैथी की तीन मंत्रणा-समितियों ने अपना कार्य जारी रक्खा।

## आयुर्वेद में अनुसंधान

भारतीय संसद की अनुमान समिति ने अपने प्रतिवेदन में इस बात पर अधिक जोर दिया है कि आयुर्वेद चिकित्सा-प्रणाली में अधिकाधिक अनुसंधान होना चाहिए और इस आशय की सिफारिश की है कि जामनगर स्थित केन्द्रीय देशी चिकित्सा-पद्धति अनुसंधान संस्थान के तत्वावधान में हो रहे अनुसंधान के कार्य का और भी विस्तार किया जाना चाहिए। तपेदिक के उपचार के लिए जो विभिन्न ढंग बताए गए हैं——उनका वैज्ञानिक परीक्षण होना चाहिए और उनके दावों को या तो मान लिया जाय या रद्द कर दिया जाय।

समिति ने सरकार से यह माँग की है कि आयुर्वेद-यूनानी-होमियोपैथी तथा प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणालियों में अनुसंधान-कार्य को अधिक प्रोत्साहन दिया जाय।

एम० बी० बी० एस० और सम्मिलित परीक्षाओं के पाठ्यक्रमों में समानता लाने सम्बन्धी सुझाव देते हुए इस बात पर समिति ने खेद प्रकट किया है कि बहुत-से विद्यार्थी जब एलोपैथी में प्रवेश नहीं पाते तो सम्मिलित पाठ्यक्रम में प्रविष्ट हो जाते हैं किन्तु बाद में वे लोग आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति में प्रैक्टिस नहीं करते। आयुर्वेद में अनुसंधान-कार्य बड़े पैमाने पर हो सके——इसकी आवश्यकता पर समिति ने बड़ा जोर दिया है।

## अखिल भारतीय तिब्बी सम्मेलन

अखिल भारतीय तिब्बी सम्मेलन में, जो हाल ही दिल्ली में सम्पन्न हुआ केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा प्रकाशित उस परिपत्रक का तीव्र प्रतिवाद किया गया जिसमें देशी चिकित्सा-पद्धतियों के अन्तर्गत चिकित्सा करने वाले वैद्यों, हकीमों और होमियोपैथों तथा समुचित शिक्षा प्राप्त चिकित्सकों को रजिस्टर्ड मैडिकल प्रैक्टीशनर्स की व्याख्या से निकाल दिया गया है।

सम्मेलन के महामंत्री श्री बी० एन० शर्मा ने वैद्यों, हकीमों और होम्योपैथों से जोरदार अपील करते हुए कहा कि सरकार के इस कदम का कड़ा विरोध करें, क्योंकि उनके अस्तित्व-रक्षा का प्रश्न उपस्थित हो गया है। विरोध-प्रस्ताव में कहा गया कि सरकार पुराने खण्डहरों की रक्षा के लिए प्रतिवर्ष लाखों रुपये व्यय करती है, किन्तु देशी चिकित्सा-पद्धतियों को, जिनसे आज भी करोड़ों लोग स्वास्थ्य-लाभ कर रहे हैं, विकसित करने की बात तो दूर सरकार प्रतिवर्ष ऐसे कानून और नियम बनाती जाती है जिनसे इन पद्धतियों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाय।

सम्मेलन के मंत्री ने देशी चिकित्सा-पद्धतियों के प्रति सरकारी रुख की चर्चा करते हुए कहा कि प्रारंभ से ही स्वतंत्र भारत की सरकार का रुख इन पद्धतियों के प्रति अच्छा नहीं रहा है। भूतपूर्व केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रिणी राजकुमारी अमृतकौर ने देशी चिकित्सकों पर जो प्रहार किए उनके घाव अभी हरे ही थे कि वर्तमान स्वास्थ्य-मंत्री

ने नया आदेश निकाल कर उन पर नमक ही छिड़का है। देशी चिकित्सा-पद्धति के प्रति सरकार के सौतेले व्यवहार की जितनी भर्त्सना की जाय थोड़ी है। सम्मेलन में और कई महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत किये गए।

## देशी चिकित्सा की उपेक्षा : लोकसभा में आलोचना

देशी चिकित्सा-प्रणालियों के सम्बन्ध में केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय की नीति की आज लोकसभा में कटु आलोचना की गयी। सदन में स्वास्थ्य मंत्रालय के लिए अनुदानों पर विचार किया जा रहा था। देशी चिकित्सा-पद्धति के प्रति केन्द्रीय सरकार की घोर उपेक्षा की कड़ी आलोचना करते हुए सदस्यों ने कहा कि शताब्दियों से जीवित देशी चिकित्सा-प्रणालियों के लिए केन्द्रीय सरकार ने अबतक कुछ नहीं किया। केवल सरकार बात ही बात करती रही है। कुछ सदस्यों ने इस बात पर चिंता प्रकट की कि यदि केन्द्रीय सरकार के वर्त्तमान रुख में परिवर्त्तन नहीं हुआ और पूर्ववत उपेक्षा-भाव बना रहा तो देशी चिकित्सा-पद्धतियाँ अपना अस्तित्व खो बैठेंगी।

केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री श्री डी० पी० करमरकर ने संसद-सदस्यों के उपर्युक्त आरोपों का खण्डन करते हुए कहा कि सरकार आयुर्वेद-यूनानी-पद्धतियों को प्रोत्साहित करने के लिए गंभीर प्रयत्न कर रही है। आपने कहा कि सरकार मानती है कि प्रत्येक पद्धति को इस देश में विकास करने के लिए समान अवसर प्राप्त है। जामनगर स्थित भारतीय चिकित्सा अनुसंधान-संस्थान का उल्लेख करते हुए स्वास्थ्य मंत्री ने कहा कि उक्त संस्था के द्वारा उल्लेखनीय कार्य हो रहा है और संस्था ने अनुसंधान की दिशा में अच्छी प्रगति की है। आपने आगे बताया कि सरकार एक योजना प्रारंभ करनेवाली है जिसके अन्तर्गत एक बीमारी के लिए इन पद्धतियों द्वारा सुझाए गए उपचारों का परीक्षण किया जा सके। आपने कहा कि सरकार द्वारा नियुक्त एक समिति ने विभिन्न राज्यों में भारतीय पद्धतियों के विकास का गहन अध्ययन किया है और उसकी रिपोर्ट पर सरकार विचार कर रही है। मुझे आशा है कि जो निर्णय किए जायँगे, वे भारतीय पद्धतियों के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे।

## देशी चिकित्सा-पद्धतियों को केन्द्र सहायता दे

स्वास्थ्य मंत्रालय के बारे में आकलन समिति ने जो प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है, उसमें देशी चिकित्सा-पद्धतियों के सम्बन्ध में समिति ने केन्द्रीय सरकार से यह आग्रह किया है कि वह आयुर्वेद, यूनानी और होमियोपैथी तथा प्राकृतिक चिकित्सा को प्रोत्साहन देने के लिए सक्रिय रूप से योगदान करे। समिति ने अपने प्रतिवेदन में यह भी कहा है कि कुछ मेडिकल कालेजों में आयुर्वेदिक औषधियों के बारे में भी अध्ययन की व्यवस्था होनी चाहिए। एक सिफारिश यह भी थी कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की तरह देश में चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा के प्रसार के लिए भी एक पृथक समिति बनायी जाय जो मेडिकल कालेजों, शिक्षा देनेवाले अस्पतालों और अनुसंधानशालाओं को अनुदान दे।

## आयुर्वेदिक प्रणाली पूर्ण वैज्ञानिक

जयपुर राजकीय आयुर्वेदिक कालेज में आयोजित एक सभा में भाषण देते हुए स्वामी श्री पुरुषोत्तमाचार्य ने कहा कि आयुर्वेद चिकित्सा-प्रणाली पूर्ण वैज्ञानिक, सरल, सस्ती, सर्वसुलभ और मानव प्रकृति के शत-प्रतिशत अनुकूल है—इसलिए इसका प्रसार न केवल भारत अपितु समग्र संसार में होना हितकारक है। आपने आगे कहा, आयुर्वेद के प्रयोग अब परीक्ष्य अवस्था में नहीं, किन्तु वे परीक्षित हैं। आयुर्वेद ने किसी भी रोग को असाध्य नहीं माना है। स्वामी पुरुषोत्तमाचार्य ने अपने भाषण में दक्षिण भारत के श्री शाल, नागार्जुन, अहोबिल, अदलावाद, वेंकटाद्रि आदि स्थलों में आयुर्वेदिक गवेषणात्मक परिभ्रमण के फलस्वरूप उपलब्ध वनौषधियों का प्रभावकारक परिचय भी दिया।

## मानस रोगों में सर्पगन्धा का उपयोग

प्रसिद्ध भारतीय बूटी सर्पगन्धा इन दिनों अमेरिका के चिकित्सा-जगत में विशेष लोकप्रिय होती जा रही है। कुछ समय पूर्व अमेरिकी वैज्ञानिकों ने यह खोज की थी कि न्यून रक्त-चाप (लो ब्लड प्रेसर) से पीड़ित व्यक्तियों की चिकित्सा के लिए सर्पगन्धा बहुत उपयोगी औषधि है। तब से अमेरिका में इसके उपयोग में बहुत वृद्धि हुई है। अब वैज्ञानिकों ने इस सम्बंध में अन्वेषण करके सर्पगन्धा में एक नवीन गुण होने का पता लगाया है। सर्पगन्धा के सम्बंध में वैज्ञानिकों का कथन है कि मानसिक व्याधियों की चिकित्सा में भी यह औषधि अत्यंत गुणकारी और लाभप्रद सिद्ध हो सकती है। अमेरिकी डाक्टरों ने मानसिक रोगों की चिकित्सा के लिए सर्पगंधा से एक नई औषधि भी तैयार कर

ली है और ऐसी आशा की जाती है कि निकट भविष्य में यह औषधि अमेरिका में धड़ल्ले से बिकने लग जायगी।

## नेत्रदान-यज्ञ-शिविर में पत्र-प्रदर्शनी

नेत्रदान यज्ञ शिविर रानीपुर, फुलवारी शरीफ (पटना) में एक पत्र-पत्रिका प्रदर्शनी की गयी जिसका उद्घाटन विहार सरकार के सहकारिता मंत्री श्री जगत नारायण लाल ने किया। इस प्रदर्शनी में विविध पत्र-पत्रिकाएँ आयी थीं। संपादन, प्रकाशन-मुद्रण आदि की दृष्टि से निर्णायकों को जो पत्र अच्छे जँचे उनके संपादकों को प्रशंसा-पत्र, बिहार के यातायात मंत्री श्री शाह मुहम्मद उजैर मुनीमी के हस्ताक्षर द्वारा दिए गए। प्रशंसा-पत्र प्राप्त करने वाले पत्रों में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० द्वारा प्रकाशित प्रमुख आयुर्वेदीय मासिक पत्र "सचित्र आयुर्वेद" भी था।

## असम में आयुर्वेद का विकास

ज्ञात हुआ है कि असम राज्य की सरकार आगामी वित्तीय वर्ष में राज्य में आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति के विकास की दिशा में विशेष ध्यान देगी। मैदानी क्षेत्र के ५ अस्पतालों में अगले वर्ष से आयुर्वेद विभाग खोले जायँगे। अब तक राज्य में २६ आयुर्वेदिक अस्पताल खोले जा चुके हैं—१४ और खोले जाने की योजना है। गौहाटी आयुर्वेदिक कालेज को डिग्री कालेज कर देने का निश्चय किया गया है।

## कन्याओं के लिए आयुर्वेद की शिक्षा

कन्याओं के लिए आयुर्वेदिक शिक्षा का देश में बड़ा अभाव देखकर नारी मात्र की कल्याण-कामना से आयुर्वेद का शुभ सन्देश घर-घर में पहुँचाने का संकल्प लेकर देश की सुप्रसिद्ध नारी शिक्षण-संस्था 'कन्या गुरुकुल हरद्वार" में गत पांच वर्षों में प्रयत्न करके आयुर्वेद की भी "आचार्य" श्रेणी पर्यन्त सर्वाङ्गपूर्ण शिक्षा की सुव्यवस्था की गयी है। वहाँ हिन्दी, संस्कृत और वैदिक सिद्धांतों की परीक्षाओं के अतिरिक्त आयुर्वेद की उन परीक्षाओं की सुव्यवस्था भी की गयी है जिनमें प्रति दो वर्ष बाद डिप्लोमा प्राप्त होता है और जिसके डिग्री-कोर्स को पास करके देश के सभी प्रांतों में चिकित्सा के लिए राजकीय मान्यता (रजिस्ट्रेशन) प्राप्त हो सकती है। अध्ययन सम्बन्धी सभी सुविधाएँ यथा प्रायोगिक शिक्षण के लिए चार्टर, मॉडल्स, वनौषधि-प्रदर्शनी के अतिरिक्त एक सुविशाल आरोग्यशाला का भी निर्माण किया गया है, जिसमें कन्याओं को सम्पूर्ण क्रियात्मक सुविधाएँ सुलभ हो सकेंगी। कन्याओं में आयुर्वेद का अधिकाधिक प्रचार हो सके इस बात को दृष्टि में रखकर निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गयी है।

## १९६२ से देशी कारखानों में औषधियों का निर्माण

केन्द्रीय उद्योग मन्त्री श्री मनुभाई शाह ने कहा कि सोवियत रूस के सहयोग से औषधियाँ बनाने के कुछ कारखानों में अनुमान किया जाता है कि १९६२ के मध्य से उत्पादन होने लग जायगा। आपने कहा कि भारत और रूस के बीच इन योजनाओं के बारे में करीब-करीब अन्तिम रूप से समझौता हो चुका है। औषधियों का उत्पादन करने के लिए यन्त्रादि बनाने की एक फैक्टरी और एक प्रयोगशाला होगी। एक कारखाना वैसा होगा जिसमें शल्य-चिकित्सा सम्बन्धी औजार तैयार होंगे। इन कारखानों की स्थापना हो जाने पर देश महत्वपूर्ण और बुनियादी औषधियों के मामले में आत्म-निर्भर हो जायगा। इन प्रस्तावित कारखानों पर लगभग १८ करोड़ ८० लाख रुपये व्यय होने का अनुमान लगाया गया है। आठ करोड़ रूबल विदेशी मुद्रा की इनके लिए जरूरत है, जो रूस देगा।

## कानपुर वैद्य-सभा का चुनाव

कानपुर वैद्य-सभा का वार्षिक चुनाव सम्पन्न हुआ और निम्नानुसार नवीन वर्ष के लिए पदाधिकारी चुने गए—

अध्यक्ष—पं० यदुनन्दन प्र० त्रिपाठी वैद्य, कार्यवाहक अध्यक्ष—पं० शम्भूनाथ पाण्डेय, शास्त्री प्रधान मन्त्री—सम्पतकुमार शर्मा गौड़, वैद्य प्रचार-प्रकाशन मन्त्री—पं० जटाशंकर वैद्य, आय-व्यय निरीक्षक—श्री काशीनाथ गुप्ता।

कार्य-समिति के सदस्यों के नामों की सूची अभी प्रकाशित नहीं की गयी है। नगर का अधिक विस्तार हो जाने से नगर वैद्य सभा को ५ क्षेत्रों में विभाजित कर दिया गया है, जो निम्न प्रकार है—

पूर्वक्षेत्र

अध्यक्ष—पं० जगदीशनारायण शुक्ल मंत्री—श्री रामायण वैद्य,

पश्चिमी क्षेत्र

अध्यक्ष—पं० मनीलाल शुक्ल वैद्य मन्त्री—जगदीशनारायण वैद्य,

मध्य क्षेत्र

अध्यक्ष—पं० लक्ष्मीनारायण वैद्य मन्त्री—शशिकुमार शुक्ल

उत्तर क्षेत्र

अध्यक्ष—पं० गजेन्द्र शर्मा

मन्त्री—पं० देवनारायण शुक्ल वैद्य

दक्षिणी क्षेत्र

अध्यक्ष—पं० रामनाथ त्रिपाठी, मन्त्री—पं० श्यामधर वैद्य

सभा द्वारा शीघ्र ही एक पत्रिका-प्रकाशन की योजना तैयार की गयी। एक आयुर्वेदीय विद्यालय के संचालन के सम्बन्ध में मन्त्रिमण्डल विचार कर रहा है।

## नगर वैद्य-सभा बुलंदशहर का चुनाव

गत ता० ९–३–५९ को नगर वैद्य-सभा, बुलन्दशहर का निर्वाचन हुआ, जिसमें निम्नलिखित पदाधिकारी सर्वसम्मति से चुने गए।

प्रधान—श्री रामगोविल वैद्य भिषगाचार्य, उप-प्रधान—श्री पं० सुधानिधिजी वैद्य, आयुर्वेदाचार्य, प्रधान मन्त्री—श्री पं० विश्वनाथ कौशिक वैद्य, आयुर्वेदाचार्य, उप-मन्त्री—श्री पं० किशोरीलालजी वैद्य-शास्त्री, कोषाध्यक्ष—श्री गंगाप्रसादजी वैद्य, भिषगाचार्य आय-व्यय-निरीक्षक—पं० होरामजी वैद्य, रसायनाचार्य

कार्यकारिणी—श्री पं० शंकरदेवजी वैद्य, रसायनाचार्य, श्री जगदीशशरणजी वैद्य, श्री पं० रघुवीरशरणजी वैद्य-वाचस्पति, श्री पं० राधाकृष्णजी वैद्य शास्त्री, श्री पं० विद्यानिधिजी वैद्याचार्य।

## देशी चिकित्सकों से अपील

हकीम बी० एन० शर्मा, मंत्री, अखिल भारतीय यूनानी-तिब्बी सम्मेलन ने स्वास्थ्य मन्त्री श्री करमरकर के उस भाषण पर जो उन्होंने लोक-सभा में २६–३–५९ को स्वास्थ सम्बन्धी अनुदानों के सम्बन्ध में दिया है, असन्तोष प्रकट करते हुए हिन्दुस्तान के सभी देशी चिकित्सकों से अपील की है कि वह संगठित हो कर अपने स्वत्वों के लिए प्रयास आरम्भ कर दें, क्योंकि देशी चिकित्सकों की केवल यही समस्या नहीं है कि उन्हें नवीन चिकित्सा की कुछ खास औषधियों के प्रयोग करने की आजादी दी जाये, वरन् वह अपने विरोधियों की इस मनोवृत्ति का मुकाबला करने के लिए तैयार हो जायें जो अपने देश की विद्याओं और कलाओं को तुच्छ और हीन समझती है।

श्री शर्मा ने अपने वक्तव्य में देशी चिकित्सकों को भी जिम्मेवार ठहराते हुए कहा कि उन्होंने अपने स्वत्वों की रक्षा के लिए सावधानी से काम नहीं लिया, परन्तु अब परिस्थिति को भली-भाँति समझ लेना चाहिए और उसका मुकाबला अच्छी तरह से करना चाहिए। देशी चिकित्सकों में से हर एक को यह समझ लेना चाहिए कि उनकी चिकित्सा-शैली हजारों वर्ष पुरानी है जिसके आधार पर ही डाक्टर हाव ने रक्त-संचार के सिद्धान्त को निर्धारित किया और इसलिए किसी प्रकार भी यह अवैज्ञानिक नहीं है।

हमारी चिकित्साओं पर जो आक्रमण होते रहते हैं अब उनका केवल बचाव करते रहने से ही काम न चलेगा, वरन् हमारी माँग तो अब यह है कि नेशनल हेल्थ सर्विसेज में भी हमें काम करने की आज्ञा हो तथा तिब्बी कालेजों को आर्थिक सहायता दी जाये और हकीमों और वैद्यों को डाक्टरी के समान देहातों में काम करने की भी आज्ञा हो।

श्री शर्मा ने यह भी कहा कि हमारे देश में इस समय ढाई लाख चिकित्सक हैं जिनमें से केवल साठ हजार मिले-जुले तिब्बी कालेजों से उत्तीर्ण हुए हैं। सरकार को चाहिए कि बाकी देशी चिकित्सकों को ६ महीने का रिफ़रेशर कोर्स पढ़ा कर देहातों में भेज दे, क्योंकि हिन्दुस्तान की ९० प्रतिशत आबादी देशी दवाओं पर विश्वास रखती है और यदि भारत सरकार यह समझती है कि वह देश की प्रायः ३८ करोड़ आबादी को एलोपैथी द्वारा सन्तुष्ट करने में सफल हो जायेगी तो यह एक उसकी भ्रान्ति ही है।

वास्तव में बात यह है कि कुछ स्वार्थी लोग पद के पीछे देशी चिकित्सकों का विरोध कर रहे हैं और अब वह समय आ गया है कि इनको कुचलने के लिए देश के सभी हकीम और वैद्य संगठित हो जायें, क्योंकि वर्तमान परिस्थिति ऐसी है कि उसमें देर के लिए बिल्कुल स्थान नहीं रहा है। यदि देर अथवा प्रमाद से काम लिया गया तो परिस्थिति और भी बिगड़ जाएगी। इसलिए देश के कोने-कोने के हकीमों और वैद्यों से हकीम शर्मा साहब ने अपील की है कि वह संकुचित मनोवृत्ति को समाप्त करके कार्य-क्षेत्र में आ जायें, क्योंकि हिन्दुस्तानी शासकों में अब भी एक ऐसा भयानक वर्ग मौजूद है, जो देश के स्वतन्त्र हो जाने पर भी

अपनी दासतापूर्ण मनोवृत्ति से मुक्त नहीं हुआ है और जिसे हर पाश्चात्य वस्तु अच्छी और अपने देश की हर वस्तु बिल्कुल देशी मालूम होती है।

मंत्री, अखिलभारतीथ सम्मेलन यूनानी-तिब्बी सम्मेलन ने शुद्ध आयुर्वेद का नारा लगानेवालों को भी देशी चिकित्साओं का शत्रु बतलाया है, क्योंकि उनके विचार में आयुर्वेदिक संस्थाओं के कुछ स्वार्थी व्यक्ति अपनी दुकान चलाने के लिए शुद्ध आयुर्वेद का भ्रान्त नारा लगा रहे हैं। उनका कहना है कि शुद्ध आयुर्वेद नाम की कोई चीज इस युग में उन्नति नहीं कर सकती और आल इण्डिया यूनानी-तिब्बी कान्फ्रेन्स ने इसीलिए अपनी कला की प्राचीन परम्परा को नवीन खोज के साथ ले कर चलने का निर्णय कर लिया है।

## राजकीय आ० यू० कंपाउण्डर संघ

गत ९ मार्च को राजकीय आयुर्वेद व यूनानी कम्पाउण्डर संघ उत्तरप्रदेश की कार्यकारिणी समिति की बैठक मु० हनीफ अन्सारी की अध्यक्षता में लखनऊ में हुई। सर्वप्रथम मुन्नूलाल शुक्ल, कम्पाउण्डर के निधन पर सर्वसम्मति से शोक प्रस्ताव पास हुआ और एक घण्टे के लिए कार्यवाही को स्थगित करके दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की गई। पुनः सभा १० बजे प्रारम्भ हुई और समिति ने निम्न प्रस्ताव स्वीकृत किए—

१–श्री मुन्नूलाल शुक्ल कम्पाउण्डर के बच्चों की परवरिश व शिक्षा-दीक्षा के सम्बन्ध में यह सभा सरकार से प्रार्थना करती है कि यथोचित प्रबन्ध करने की यथाशीघ्र कृपा की जाय।

२–यह सभा सरकार से प्रार्थना करती है कि जिन कम्पउण्डरों की सेवाएँ में ५ वर्ष से अधिक हो गई हैं उन्हें शीघ्रातिशीघ्र ट्रेण्ड घोषित करे और साथ-साथ ट्रेण्ड कम्पाउण्डर की सभी सुविधाएँ भी प्रदान करे तथा उन्हें इण्डियन मेडिसन बोर्ड, उत्तर-प्रदेश द्वारा पंजीकृत करने की दिशा में कदम उठावे तथा भविष्य में यही क्रम चलता रहे।

३–दक्षता-रोक पर पहुँचे हुए कम्पाउण्डरों को इफीसियेन्सी बार देने की कृपा करे।

४–(अ) यह सभा सरकार से प्रार्थना करती है कि एक वर्ष से अधिक सेवा वाले सभी कम्पाउण्डरों को यथाशीघ्र स्थाई कर दे।

(ब) हमारे कुछ कम्पाउण्डर भाई निर्धारित योग्यता के अन्दर न होने के कारण अभी तक स्थाई नहीं हो पाये हैं जबकि उनका कार्यकाल भी सन् १९३९ ई० से चला आ रहा है। उन्हें शीघ्रातिशीघ्र स्थाई करने की कृपा करे।

५–राज्य के अन्य विभागों के कर्मचारी अपने-अपने जिले में रहकर कार्य करते हैं और उनका जिले में काम करना राज्य नियम के विरुद्ध नहीं है तो कोई कारण नहीं है कि आयु० व यूनानी कम्पाउण्डर जिले में काम करने से वंचित रक्खे जायँ। इसलिए यह संस्था सरकार से प्रार्थना करती है कि अविलम्ब न्याय करके समुचित राजाज्ञा प्रकाशित करे और हम सभी अल्प वेतन भोगी कम्पाउण्डरों-को अपने-अपने जिले में काम न करने सम्बंधी कठोर नियम को अविलम्ब उठा दे।

६–राज्य सरकार द्वारा स्वीकृत १० नवीन चिकित्सालयों के भवनों की निर्माण-योजना को तुरन्त कार्यान्वित किया जाय।

७–द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत विकास-खंडों में अथवा बाहर पूर्व से चल रहे देशी चिकित्सालयों को उपेक्षित न करके सर्वसाधानसम्पन्न बनाया जाय तथा उनके स्थान पर अन्य चिकित्सालय खोले न जायँ।

८–राजकीय चिकित्सालयों में कार्य करने वाले कम्पाउण्डरों को देहाती क्षेत्रों में जिनकी आबादी एक लाख से कम है—५) पाँच रुपया हाउस एलाउन्स देने की कृपा करे।

९–सरकारी एवं अर्द्ध सरकारी कर्मचारियों को जिस भाँति रविवार को पूर्ण अवकाश मिलता है उसी भाँति कम्पाउण्डरों को भी रविवार का पूर्ण अवकाश मिलना चाहिए।

१०–यह सभा सरकार से प्रार्थना करती है कि वर्ष में कम-से-कम दो बार हर जिले में श्रीमान् जिला स्वास्थ्याधिकारी महोदय के समक्ष अपनी कठिनाइयों को सुनाने के लिए जिलेवार कम्पाउण्डर बन्धु सरकारी आदेशानुसार उपस्थित हुआ करें। अधिक अच्छा हो कि क्षेत्रीय निरीक्षक महोदय भी उक्त अवसर पर कठिनाइयाँ सुनने के लिए विद्यमान हों।

११–समिति में सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि वार्षिक अधिवेशन जून मास में किया जाय।

अन्त में सभापति ने श्री मुन्नूलाल शुक्ल, कम्पाउण्डर सदस्य के रिक्त स्थान की पूर्ति श्री रामबिशाल शुक्ल कम्पाउण्डर वरभड़ डिजला बांदा के द्वारा की।

## मलेरिया का उन्मूलन

मलेरिया उन्मूलन सम्बन्धी योजना को सफल बनाने के लिए संयुक्तराष्ट्र अमरीका के टेक्नीकल को-ऑपरेशन मिशन ने भारत सरकार को २ करोड़ ८० लाख रुपये का अनुदान दिया है। इस अनुदान को मिलाकर भारत को मलेरिया-उन्मूलन सम्बन्धीकार्य को सफल बनाने के लिए अमरीका से ४ करोड़ ८० लाख रु० का अनुदान मिल चुका है।

अमेरिका के साथ हुए एक समझौते के अनुसार भारत लगभग ७ हजार डी० डी० टी० छिड़कने सम्बन्धी यंत्र, ४५० जीप गाड़ियाँ और जीप ट्रकें, ७२० अणुवीक्षण यन्त्र (माइक्रोस्कोप), ५० लाख क्लोरीक्विन टेवलेट्स, पुस्तकें और प्रयोगशाला के यंत्र अमरीका से आयात करेगा।

हाल में अमरीका से जो अनुदान भारत को मिला है, वह मलेरिया-निबारण योजना सम्बन्धी भारत-अमरीकी सहयोग के अन्तर्गत ही—जो १९५२ में प्रारम्भ हुआ था।

## कुष्ठ रोगियों की आयुर्वेदिक चिकित्सा

आयुर्वेदीय चिकित्सानुसार कुष्ठ रोगियों की चिकित्सा हो सके, इसके लिए एक कुष्ठ अस्पताल शीघ्र ही गाँधी-स्मारक-निधि के तत्वावधान में बंगलोर से ५ मील की दूरी पर पंथरपाल्या नामक स्थान में स्थापित होने जा रहा है। इस अस्पताल की स्थापना के लिए गाँधी-स्मारक-निधि ने ६८,००० की धनराशि स्वीकृत की है। इस अस्पताल में कुष्ठ व्याधि से पीड़ित व्यक्तियों की चिकित्सा आयुर्वेदीय पद्धति से की जायगी और इस उपचार की उपादेयता का विवरण संग्रहित करके रखा जायगा। कर्णाटक के सुप्रसिद्ध वैद्य श्री वाई० पार्थनारायण पण्डित इस अस्पताल के इन्चार्ज होंगे, जो सम्प्रति श्री "कामराजेन्द्र इन्स्टीट्यूशन आफ इण्डियन मेडिसिन" बंगलोर, के अध्यक्ष हैं।

उक्त अस्पताल में २० 'बेड' की सुव्यवस्था रहेगी। देश के विभिन्न भागों में जो आयुर्वेदिक चिकित्सक कुष्ठ-व्याधि-ग्रस्त लोगों की चिकित्सा करते हैं, उन सब को इस अस्पताल में अपने-अपने निदानों के अनुसार चिकित्सा करने के लिए आमंत्रित किया जायगा।

जब इस अस्पताल में विधिवत् कार्यारंभ हो जायगा, यह अपने ढंग का भारत भर में पहला अस्पताल होगा जहाँ पर एकमात्र आयुर्वेदीय पद्धति से ही कुष्ठ-रोगियों का उपचार किया जायगा।

## आयुर्वेदीय पुस्तकों पर पुरस्कार

मध्य प्रदेशीय सरकार ने आयुर्वेद सम्बन्धी नई तथा पुरानी पुस्तकों के विषय में निम्नांकित धनराशियां निम्नांकित कार्यों के लिये उनके लेखकों को पुरस्कार स्वरूप देने की घोषणा की है।

(१) आयुर्वेद सम्बन्धी नई पुस्तकें लिखने एवं पुरानी पुस्तकों का अनुवाद करने वाले लेखकों को ४००० रु० चार हजार रुपया की धनराशि पुरष्कार दी जायगी।

(२) आयुर्वेद सम्बन्धी पुराना साहित्य क्रय करने हेतु २००० रु० दो हजार रुपया की धनराशि स्वीकृत है।

उपरोक्त विषय पर यह भी ज्ञातव्य है कि दिनांक ११-१-५६ के पश्चात् जो नई पुस्तकें लिखी गई हों, अथवा पुरानी आयुर्वेदिक पुस्तकों का उल्था (हिन्दी में) किया गया हो, उनकी ५-५ प्रतियां **प्रिंसिपल राजकीय आयुर्वेदिक कालेज ग्वालियर** के पते से प्रेषित की जानी चाहिये। जिनके पुरस्कार के विषय में कमेटी विचार करेगी।

(२) यदि आयुर्वेद सम्बन्धी पुरानी पाण्डु लिपि किसी के पास हो तो उसकी भी प्रतियां उपरोक्त पते पर प्रेषित करना चाहिये और पुराने साहित्य के सम्बन्ध में **प्रिंसिपल राजकीय आयुर्वेदिक कालेज ग्वालियर** से ही पत्र-व्यवहार करना चाहिये।

## बैद्यनाथ धर्मार्थ औषधालय, झाँसी

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि० द्वारा संचालित श्री धर्मार्थ औषधालय तथा स्वास्थ्य-रक्षाकेन्द्र में फरवरी माह में १९६० रोगियों की मुफ्त चिकित्सा की गई। जिनमें ४५६ नये रोगी आये हैं और प्रत्येक रोग के अनुसार रोगियों की संख्या निम्नप्रकार है—

ज्वर ५६, ज्वरातिसार १२, रजावरोध ३, वक्षशूल १, कण्डू ४०, आमातिसार १०, विष्टम्भ ६, ज्वरकास ७२, व्रण १, दुर्बलता १, यकृत् १७, उष्णवात ३, सन्निपात ज्वर ७, प्रतिश्याय ज्वर ४७, कास ३५, वात रोग २६, आघात ९, दन्तशूल ३, श्वेतप्रदर १३, प्रमेह ७, श्वास १८, उदरशूल ९, कर्णशूल १, मधुमेह १, अजीर्ण १, अतिसार १२, संग्रहणी १, कण्ठरोग १, प्रसूतिरोग १, नेत्ररोग ३, शिरःशूल ५, मूत्रावरोध ३, हृदयरोग २, कृमिरोग ३, अर्श ४, अम्लपित्त ३, बहुशुल १, रक्तप्रदर २, मस्तिष्क दौर्बल्य ३, अग्निमान्द्य २, शीतपित्त २, एक्जीमा २, क्षयरोग १, अण्डशोथ १, ग्रंथि वृद्धि १।

113006

# समन्वय का आदर्श !!!

आयुर्वेद, एलोपैथी, यूनानी, होमियोपैथी आदि चिकित्सा-पद्धतियों के समन्वय का आज बोलबाला है परन्तु इस दिशा में जितना प्रयत्न चाहिए उतना हुआ नहीं है वस्तुतः,

## भावी पीढ़ी के मार्गदर्शनार्थ

**समन्वयात्मक पद्धति से ग्रन्थों का लेखन तथा प्रकाशन सर्वोपरि आवश्यक है।**

**बैद्यनाथ-प्रकाशन**

# आयुर्वेदीय क्रियाशारीर

**समन्वयप्रधान दृष्टि से लिखे गए ग्रन्थों में मूर्धन्य** कहा जा सकता है

**ग्रन्थ के लेखक हैं :** सचित्र-आयुर्वेद परिवार के सुविदित सदस्य, सूरत के आयुर्वेद महाविद्यालय के उपाचार्य तथा मुंबई राज्य सरकार के आयुर्वेदिक रिसर्च बोर्ड के सभ्य **वैद्य रणजितराय देसाई** आयुर्वेदालंकार, आयुर्वेदाचार्य

**संपूर्ण प्राचीन वाङमय से** दोषों, धातुओं, उपधातुओं तथा मलों की क्रिया के रूप में **शरीर-क्रिया-विज्ञान के सिद्धान्तों का दोहन और संदोहन कर** व्याख्या के व्याज से **नव्य मत भी प्रायः संपूर्ण** इस ग्रन्थ में संकलित किया गया है विषय का निरूपण इस दृष्टि से किया गया है कि विद्यार्थी **रोगों के निदान और चिकित्सा में क्रियाशारीर की उपयोगिता तथा उपादेयता** को भी समझते जाएँ

रायल अठपेजी साइज के ११०० पृष्ठों के अनेक चित्रों से युक्त ग्रन्थ का मूल्य केवल ११) रखा गया है। **आज ही** अपनी प्रति मँगाइए। **अन्यथा चतुर्थ संस्करण की प्रतीक्षा** करनी होगी।

प्रकाशक
श्री **बैद्यनाथ** आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०
कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

# एक तन्दुरुस्ती हजार नियामत

यह कहावत बहुत पुरानी होकर भी हमेशा सच्ची है। संसार के सभी सुख-साधनों के बावजूद अगर आदमी के शरीर में रोगों का घर हो, तो उसके लिए दुनिया का आनन्द किस काम का? इसीलिए शास्त्रों में भी आरोग्य को ही धर्म, अर्थ और मोक्ष का मूल स्वीकार किया गया है।

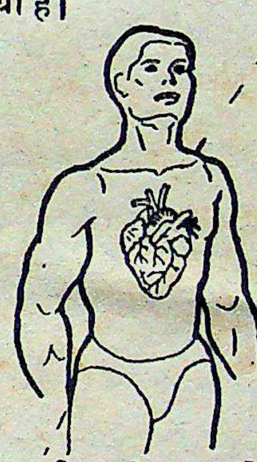

आरोग्य की प्राप्ति और रक्षा के लिए आरोग्य-शास्त्र में जो अनुभव-प्रसूत औषधियां हैं, उनमें सर्वश्रेष्ठ और सुप्रसिद्ध है :—

## बैद्यनाथ वसन्तकुसुमाकर रस

आजकल अक्सर लोगों में स्नायुदौर्बल्य, पेशाब के साथ गदले पदार्थों का निकलना, दुर्बलता एवं जबानी में बुढ़ापा के चिह्न आदि विभिन्न शिकायतें देखी जाती है। इन सभी शिकायतों के लिए इससे बढ़कर कोई दूसरी दवा नहीं है। कमजोर से कमजोर आदमी भी इसके सेवन से हृष्टपुष्ट और ताकतबर बन जाता है।

देशी दवाओं का सब से बड़ा और विश्वासी कारखाना

**श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि॰**

कलकत्ता · पटना · झाँसी · नागपुर

ओज·बलदायक

आयुर्वेदी

ओषधि

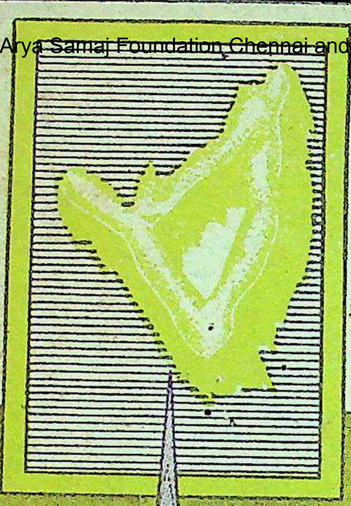

बैद्यनाथ
अभ्रक भस्म सहस्रपुटी

बैद्यनाथ
लौह भस्म सहस्रपुटी

बैद्यनाथ
मुक्ता (मोती) भस्म

बैद्यनाथ
स्वर्ण भस्म

बैद्यनाथ
वैक्रान्त भस्म

बैद्यनाथ
प्रवाल भस्म

REGISTERED TRADE MARK

SHREE BAIDYANATH AYURVED BHAWAN LTD. CALCUTTA

आयुर्वेदीय एवं पेटेण्ट
औषधियों के सबसे
बड़े निर्माता

श्री **बैद्यनाथ**
आयुर्वेद भवन प्राइवेट लि०

कलकत्ता
पटना · झाँसी
नागपुर

प्रकाशक—पं० सभाकान्त झा, १, गुप्ता लेन, कलकत्ता के लिए, जनवाणी प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स प्राइवेट लि०, कलकत्ता में

Compiled
1999-2000